Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LIB. G K V

P.K.
पुस्तक
भाग २

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या R
पुस्तक संख्या ८०
आगत पंजिका संख्या प्रटेस भा० २

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 212 R

112842

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

392

29 AUG 1987

G.9281/23011/4

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

यह पुस्तक निर्गत न की जाय
NOT TO BE ISSUED

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन
रखें । 31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112842

323

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास, बी. ए.।

CHECKED 1973

सरस्वती

112842

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०.....
आगत सं०.....
तिथि.....
गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

सन् १९०१ ई०

इण्डियन प्रेस, प्रयाग, द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचीपत्र

कन्हैया लाल—सेठ
कवि और काव्य ३२८
कमलानन्द सिंह—राजा
आलोचना और आलोचक २९७
दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का प्रेमपत्र ३९४
कार्त्तिकप्रसाद—बाबू
महारानी सूजावाई १२
दार्जिलिङ्ग का इतिहास ११५
रोशन आरा ... २१९, २५७, २९३,
किशोरीलाल गोस्वामी—पण्डित
हिन्दी काव्य (आलोचना) की समीक्षा ३
साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास ३७
कोकिलाष्टक ५५
हिन्दी काव्य के जन्मदाता लल्लूजी लाल ६८
बाबू रामकली चौधरी ७६
अमरावती १०९
निराश प्रेमिक २५०
कृष्णबलदेव वर्म्मा—बाबू
बुन्देलखण्ड पर्य्यटन ... २६३, ३०१
केशवप्रसाद सिंह—बाबू
सयाजीराव गायकवाड़ २८७
सारनाथ ३३८
गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री—पण्डित
वाणभट्ट २००, २२९, २७१,३०९
जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी—पण्डित
रत्नावली, श्रीहर्षरचित नाटिका की आख्यायिका २६, ४५
जोधासिंह मेहता—कुमार
पलुए और जङ्गली जानवर १८१
दुर्गाप्रसाद—पण्डित
त्रिलोचन मिश्र वा मियां तानसेन ... ४१८
दुर्गाप्रसाद, बी० ए०—बाबू
चन्द्रलोक ८०
पार्वतीनन्दन—लाला
दक्षिण द्वीप के प्रवासी का पत्र ... ८७
अजण्टा के गुफाओं की चित्रावली ... १२५
मुक्ति का उपाय २०७
प्रेम का फुहारा १६६
जीवनाग्नि ३६२, ३९७
महावीरप्रसाद द्विवेदी—पण्डित
वामन शिवराम, आप्टे, एम० ए० ... ७
आत्मा १७
ज्ञान ६३
विधिविड़म्बना १४७
नायिकाभेद १९५
हे कविते! १९८
कविकर्त्तव्य २३२
ग्रन्थकारलक्षण २५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक विनोद
कोकिल ३००
वसन्त ३५६
ईश्वर की महिमा ४०६
निरीश्वरवाद ३११
महिषशतक की समीक्षा ३४५
चित्रगुप्त की रिपोर्ट ३५७
माधवप्रसाद—बाबू
राजा राममोहन राय २७३
रघुनाथप्रसाद, बी० ए०—कुंवर
लखनऊवर्णन २२५
राधाकृष्ण दास—बाबू
पृथ्वीराज-प्रयाण ६१
विजयिनी विलाप ७३
रामचन्द्र शुक्ल—पण्डित
मनोहरछटा ३५२
रामनारायण मिश्र, बी० ए०—पण्डित
महादेव गोबिन्द रानाडे ११८
स्वामी दयानन्द सरस्वती ३६९
जापान के सम्राट और सम्राज्ञी .. ४१२
वागेश्वरीप्रसाद मिश्र—पण्डित
राजा भोज ११०
वेणीप्रसाद—पण्डित
श्री गुरु नानक जी ३२२
संकटाप्रसाद—मुन्शी
मि० वागेल और शीशे का कारख़ाना १४८
सम्पादक—
भूमिका १
फ़ोटोग्राफ़ी ५६, १०२, २१३, २५१, ४०३
वीसलदेवरासा १२९
भारतेश्वरी महारानी विकटोरिया ... १५७
विविध वार्त्ता १४३, १८३, २१७, २५३, २८५, ३१९, ३५१, ३९१
शिक्षा २३९
फ़तहपुर सिक्री ३७९
सिद्धेश्वरशर्म्मा—पण्डित
जापानी साहित्य ९८
प्रलय १९०
सुधाकर द्विवेदी—महामहोपाध्याय पण्डित
वनविहार पञ्चपदी १०
श्रीधर पाठक—पण्डित
वर्षाऋतु वर्णन १८९, ३००
श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, तथा पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र, बी० ए०—पण्डित
हिन्दी काव्य (आलोचना) १३४
साहित्यसमालोचना २४७, २८१, ३५३, ३८५,

आधुनिक ग्रन्थ और ग्रन्थकार ... ३७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

स्वर्गवासिनी भारतेश्वरी महाराणी एलेकज़ेण्ड्रा विक्टोरिया

जन्म—२४ मई. १८१९ । राज्य प्राप्ति—२८ जून १८३८।

विवाह—१० फरवरी, १८४० । मृत्यु—२२ जनवरी १९०१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

विष्णुवर वामन शिवराम आपटे, एम. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

बाबू रामकाली चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

श्री मान्यवर रावबहादुर जस्टिस पण्डित महादेव गोविन्द रानाडे,
एम्. ए., एल-एल. बी., सी. आई. ई., जे. पी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकवासिनी भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया
[वयस ८० वर्ष]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

[४ वर्ष]

[१० वर्ष]

[१८ वर्ष]

[२२ वर्ष]

[४१ वर्ष]

[५६ वर्ष]

[७३ वर्ष]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

श्रीमान् राजेश्वर सप्तम एडवर्ड की धर्म्मपत्नी
महाराणी एलेक्ज़ेण्ड्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

भारतेश्वर श्रीमान् सप्तम एडवर्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानवीर श्रीमान् रायचन्द प्रेमचन्द जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

वरौदानरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सिख धर्म्म के दस गुरुओं की मण्डली ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

सर कुमारपुरम् शेषाद्रि आयर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

जापान की सम्राज्ञी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

जापान के सम्राट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

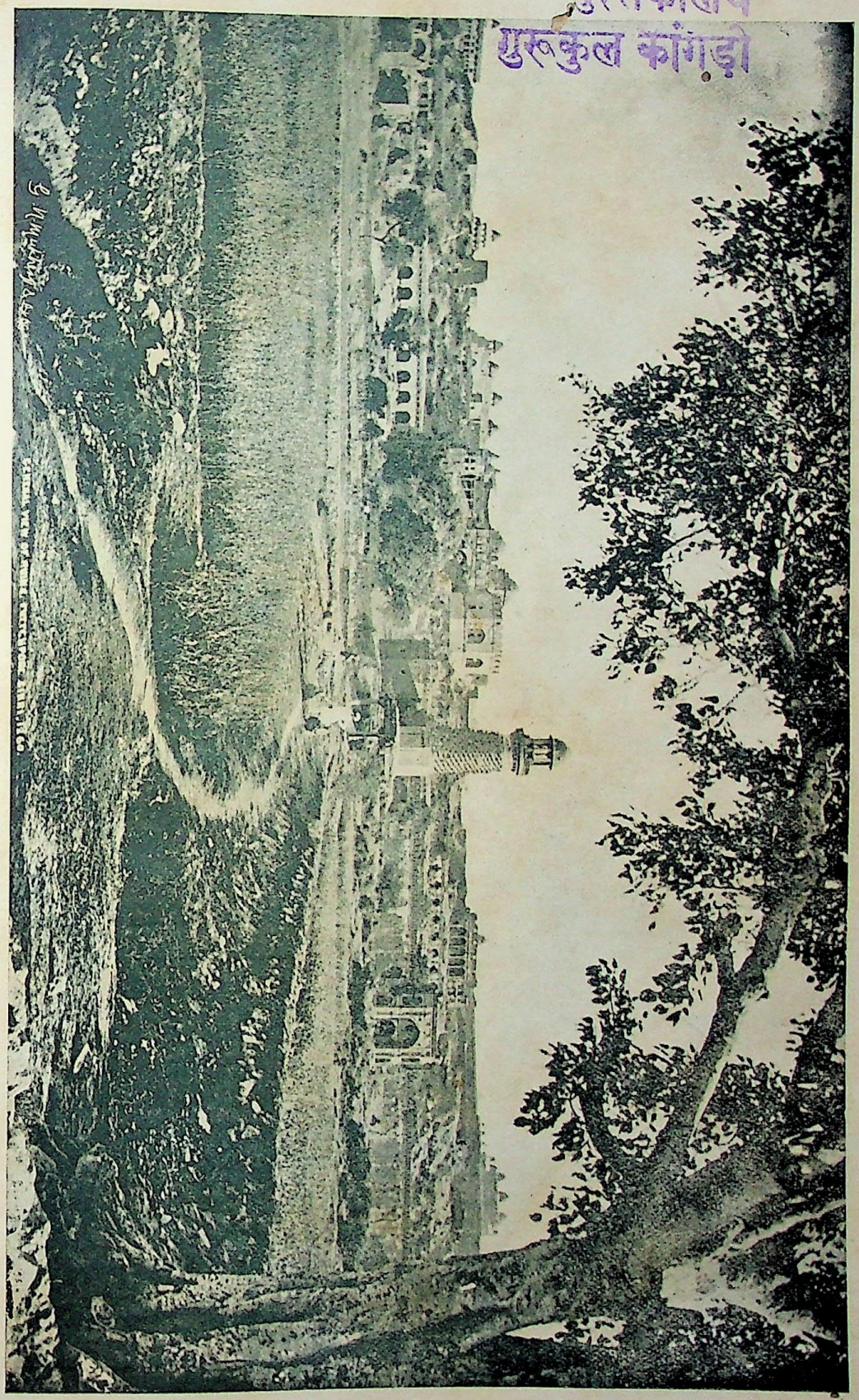

फ़तहपुर सीकरी का बाहरी दृश्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

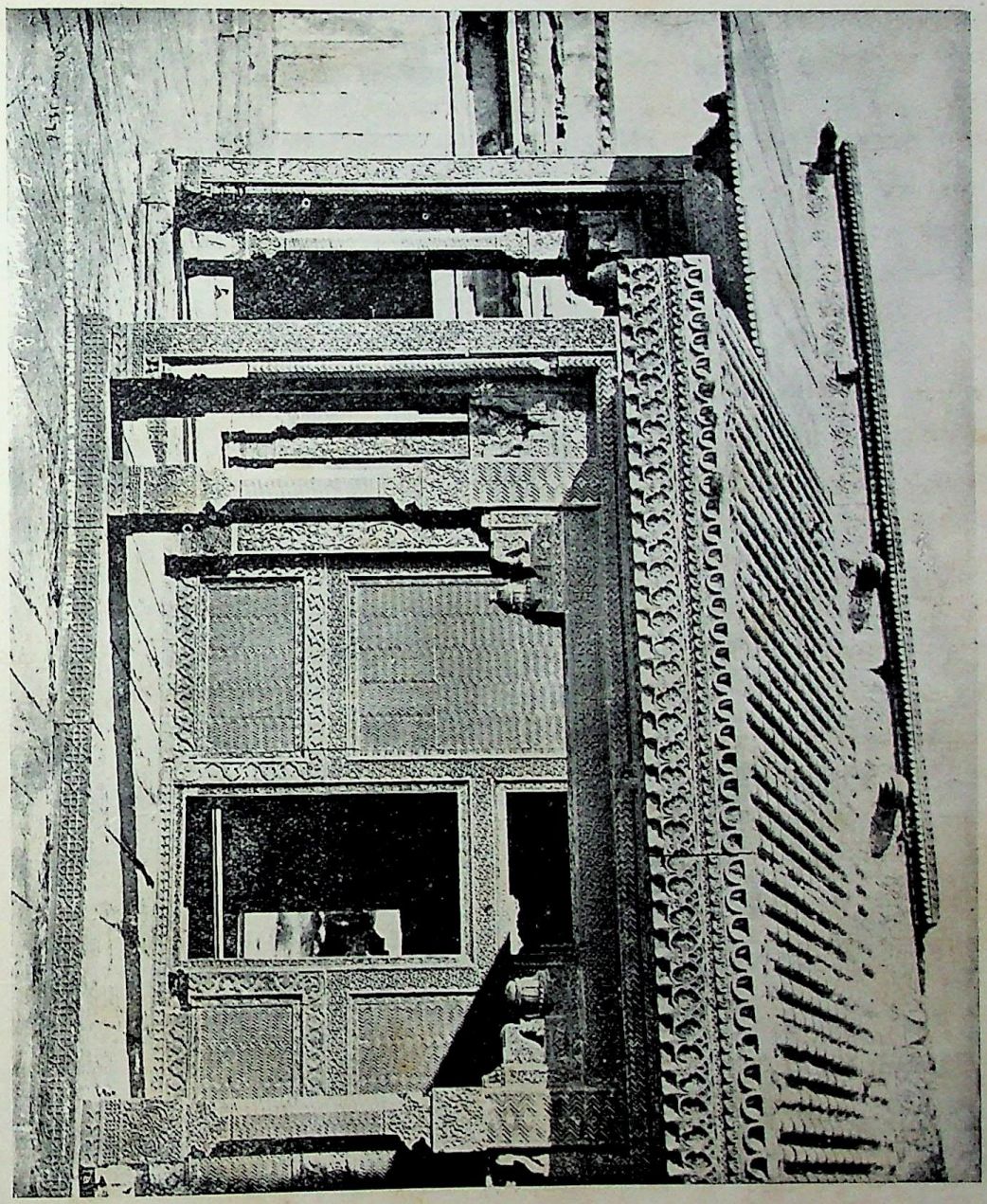

रूमी बेगम का महल—फ़तहपुर सीकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

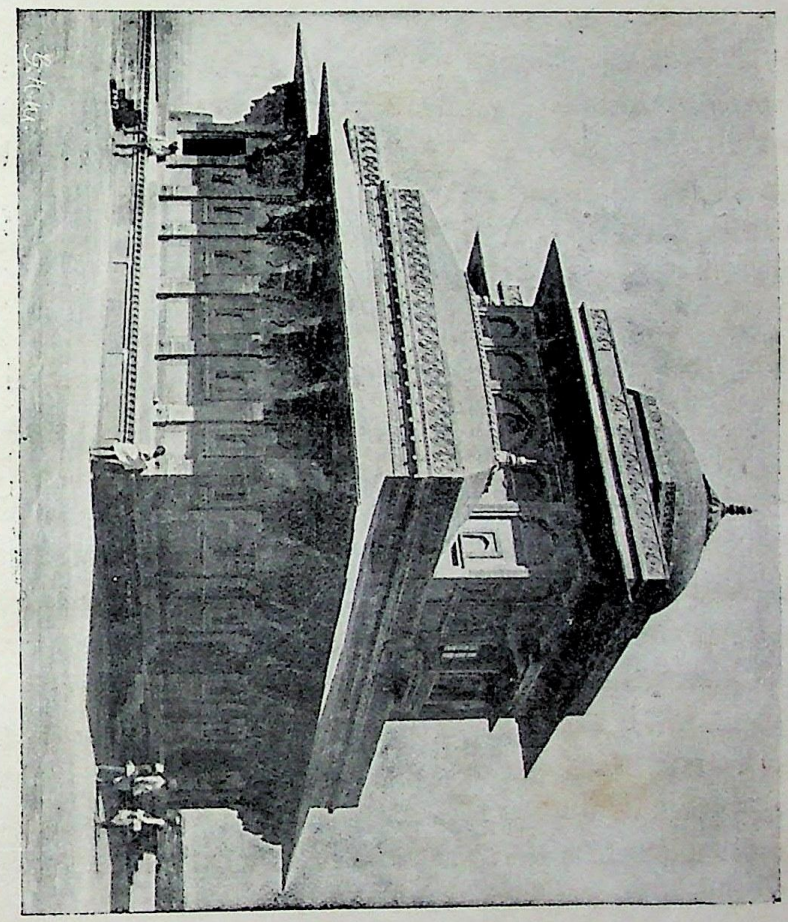

बीरबल की बेटी का महल—फ़तहपुर सीकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

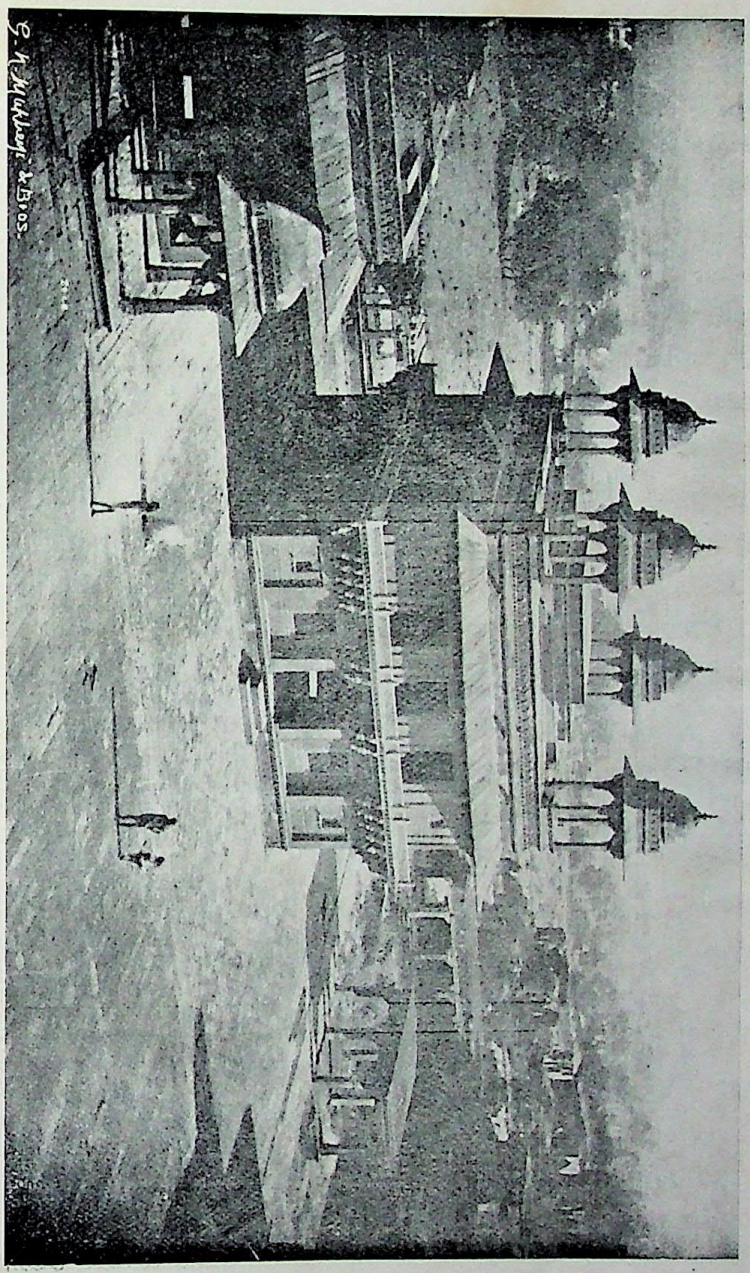

दीवान-इ-ख़ास—फ़तहपुर सीकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

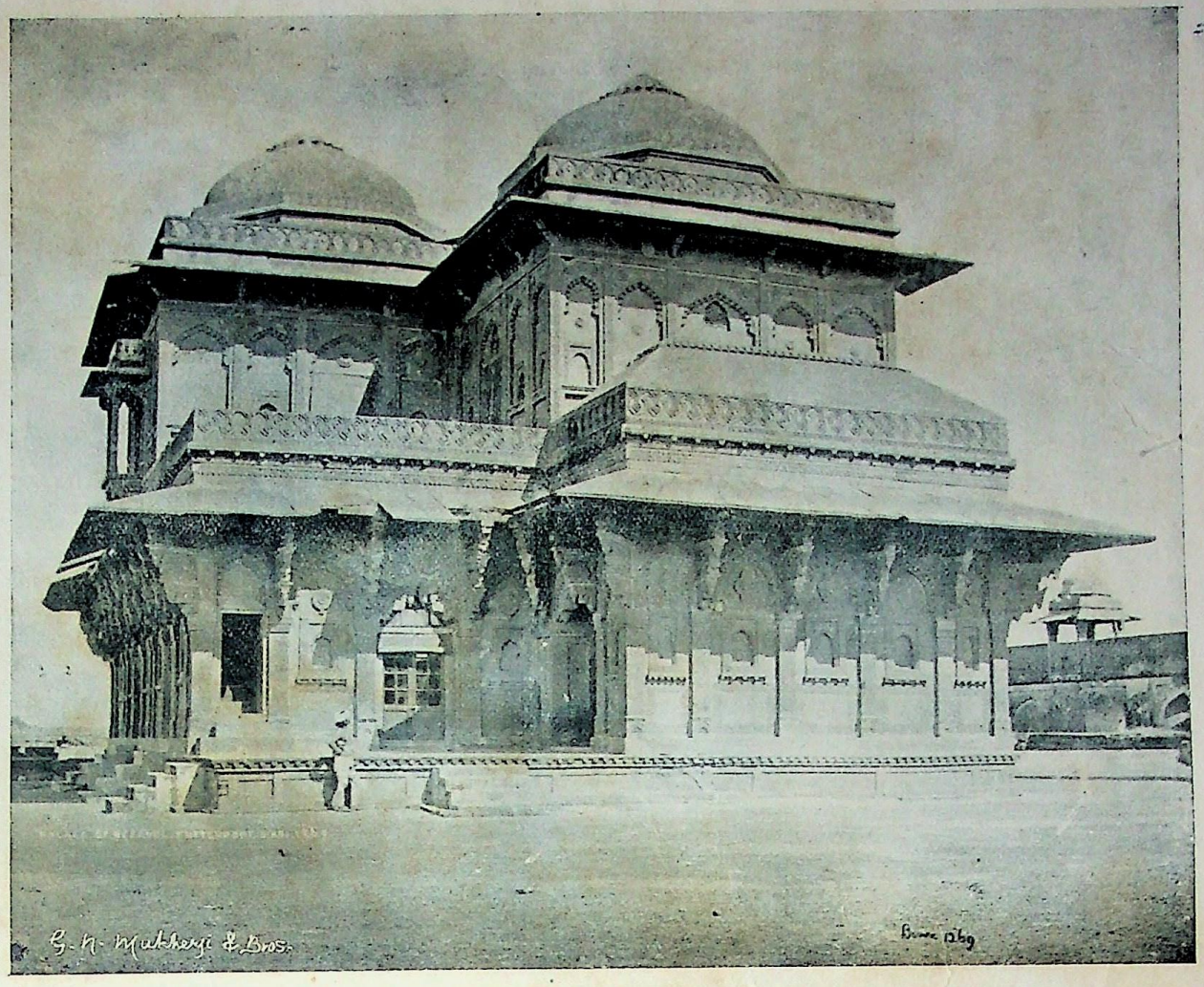

वीरबल का महल—फ़तहपुर सीकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

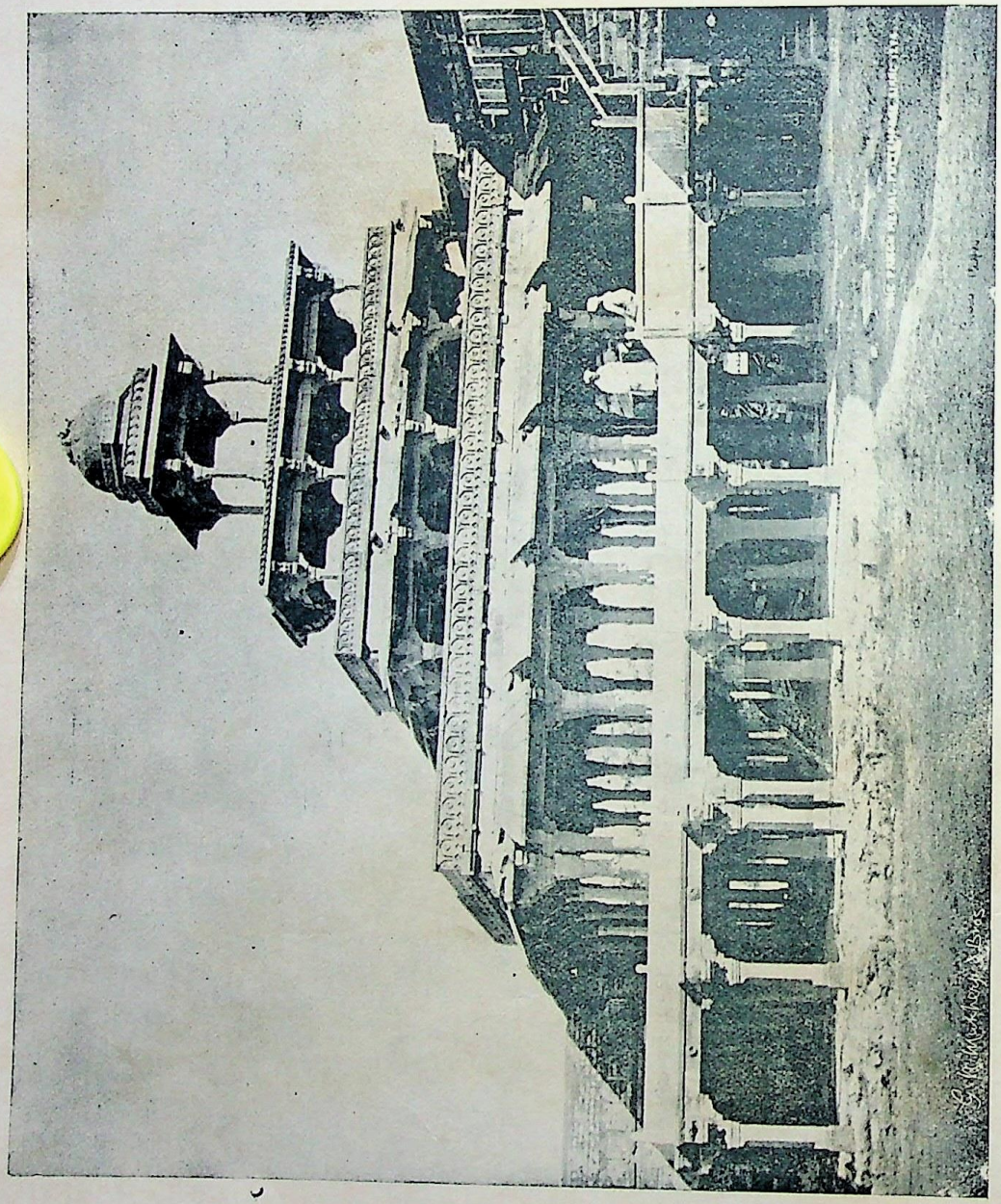

पञ्च महल—फ़तहपुर सीकरी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

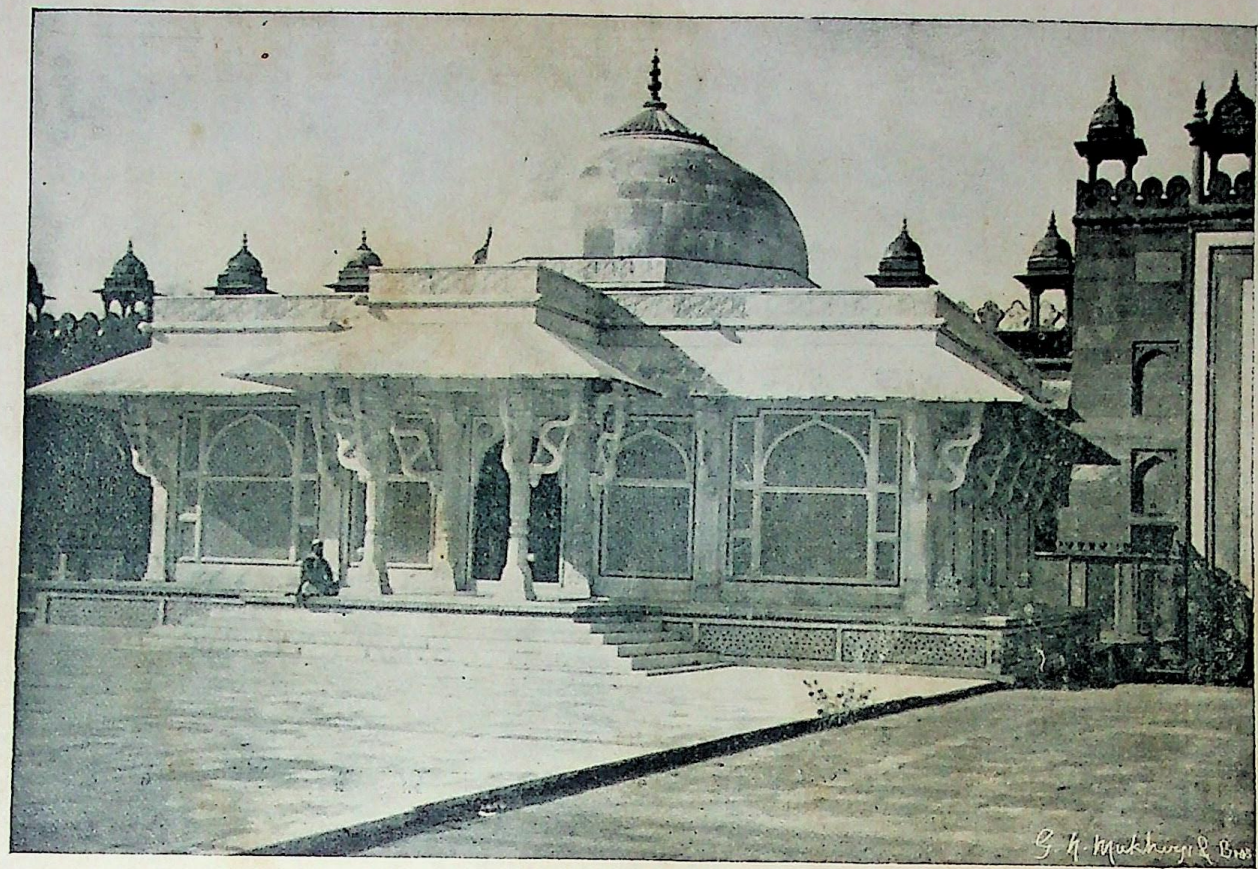

शेख़सलीम शाह चिश्ती का मज़ार—फ़तहपुर सीकरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

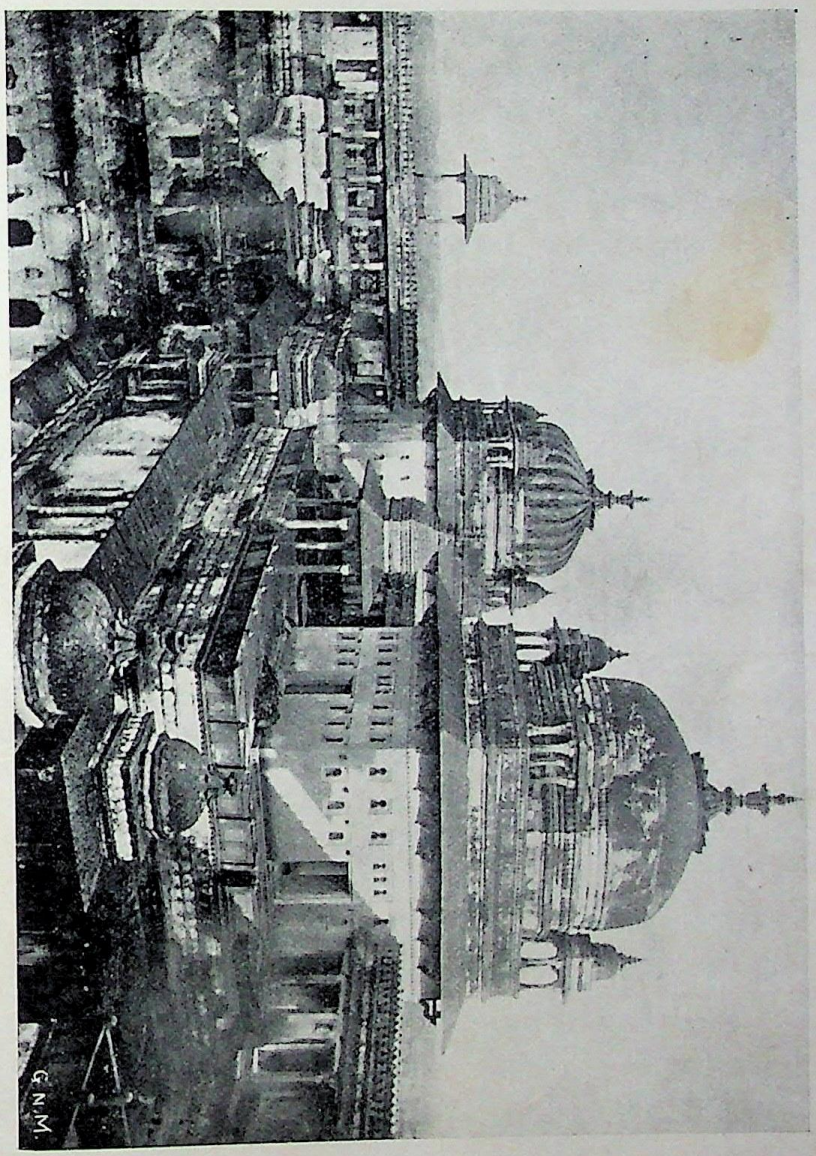

ओड़छा राजभवन का भीतरी दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

ओड़छा के गढ़ से बड़े मन्दिर का दृश्य।

झांसी का क़िला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

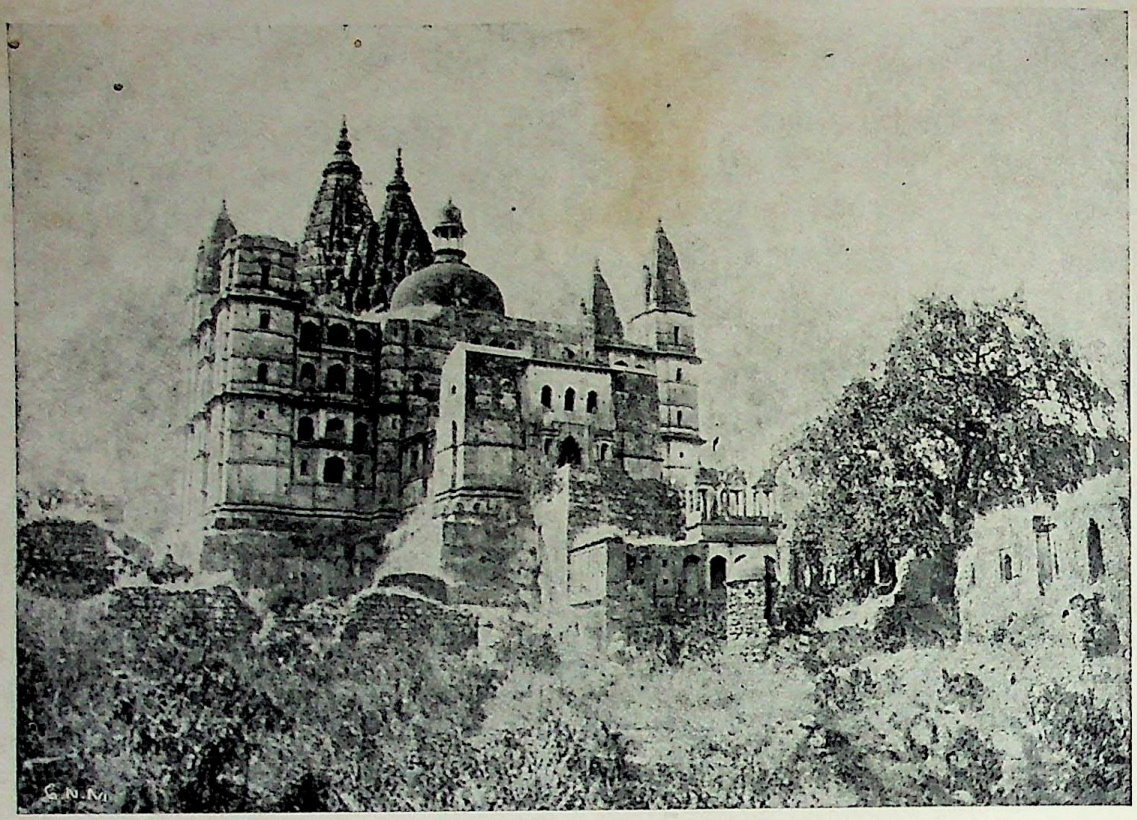

ओड़छा का बड़ा मन्दिर।

बेतवा के कोप में गढ़ और राजभवन।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी

चित्र १

चित्र २

चित्र ३

चित्र ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र ५

चित्र ६

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

चित्र ७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

चित्र ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ●
पुस्तक सं०.....
आगत सं०.....
तिथि०.....
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगडी.

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] जनवरी १९०१ ई० [संख्या १

भूमिका

आज इस नई शताब्दी के प्रारम्भ से हमारी इस सरस्वती पत्रिका का, भी नवीन वर्ष प्रारम्भ हुआ है। इन गत सौ वर्षों में भारतवर्ष ने जो कुछ परिवर्तन देखे, उन्हें पढ़ और जान कर अधिक आश्चर्य होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहां मुसल्मानों का प्रभुत्व विद्यमान था। यद्यपि अंग्रेज़ी राज्य की जड़ जम चुकी थी, पर राज्य विस्तृत न होने के कारण वे तब तो नाम मात्र के राजा थे। मुसल्मानों के अस्त के साथ ही साथ मरहट्टों का भी अस्त हुआ। उधर पञ्जाब में वीर सिक्ख जाति का उदय और अस्त भी इसी शताब्दी में हुआ और इन्हीं सौ वर्षों में बृटिश राज्य का पूर्ण प्रभाव और प्रताप इस भारत भूमि के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। बृटिश सिंह की अधीनता में देश में शान्ति फैली, रेल, तार और पोस्ट आफ़िसों का प्रचार हुआ। स्थान स्थान में विद्यालय और विश्वविद्यालय स्थापित हुए; सारांश यह कि राजनैतिक रीति पर इस देश का मानो एक प्रकार से काया पलट ही हो गया। पाश्चात्य विद्या, कला, कौशल और सभ्यता ने देश का रूपही बदल दिया। लोगों के ध्यान दूसरी ओर खिंच चले और इस बृटिश सिंह का इतना अधिक प्रभाव भारत-बासियों पर पड़ा कि हम लोगों ने निज देशीय प्रत्येक प्राचीन बात को त्याग कर सब विषयों में पाश्चात्य देशों के अनुगामी होने ही में अपना गौरव और कल्याण समझा और बृटिश सभा समाजों और उसी की स्वतंत्रता के लिये लालायित हो हम निज मनोवाञ्छा के प्राप्त करने में लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के प्रवाह के साथ इस देश-वासियों ने अपने धार्मिक विश्वास को भी बदल कर समयानुकूल बनाना चाहा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि अनेक नवीन मतों का प्रचार हुआ। कुछ लोगों ने सनातन धर्म का डङ्का पीटा और उसीकी दुहाई देने लगे और कुछ लोग हिन्दू सनातन धर्म को वैज्ञानिक रीति पर समझ, लोगों को उसी ओर आकर्षित करने लगे; निदान और परिवर्तनों के साथ भारतवर्ष में धार्मिक परिवर्तन भी अनेक हुए और यह प्रवाह भी पूर्ववत प्रवाहित हो रहा है।

देश-भाषाओं ने भी इस शताब्दी में विशेष उन्नति की। और भाषा को जाने दीजिए, आप हिन्दी की ओर ध्यान दीजिए। यह बात सब लोगों को विदित है कि हिन्दी भाषा का आदि कवि चन्द बरदाई है। यह बारहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ और प्राकृत का अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र ११५० ई० में हुआ। चन्दबरदाई के रासौ की भाषा के देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस समय उत्तरी भारतवर्ष में प्राकृत-मिश्रित हिन्दी का प्रचार था। समय के परिवर्तन-शील गुण के अनुसार भाषा में परिवर्तन होते चले और आज हम अपनी हिन्दी को बारहवीं शताब्दी की हिन्दी से बहुत भिन्न पाते हैं। हिन्दी ने प्रथम व्रजभाषा का रूप धारण किया और वह गद्य और पद्य दोनों में प्रचलित रही; यद्यपि अब गद्य में व्रजभाषा का कुछ भी नहीं अथवा बहुत कम प्रचार है और पद्य में यह अभी तक ज्यों की त्यों प्रचलित है। यह उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ कि हिन्दी ने नया रूप धारण किया। आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्म सन् १८०० में लल्लूलाल ने किया। और उनके पीछे तो अन्य प्रतिभाशाली विद्वान लेखकों ने इसे परिमार्जित कर प्रसाद-गुण-सम्पन्न किया, निदान यह उन्नीसवीं शताब्दी के ही भाग्य में था कि हिन्दी गद्य की उत्पत्ति और उसकी उन्नति हो।

हमारे विचार में तो हिन्दीभाषा के इतिहास में यह शताब्दी सदा स्मरणीय बनी रहेगी, पर अभी तक लोगों का ध्यान हिन्दी पद्य की ओर बहुत कम हुआ है। हिन्दी पद्य से हमारा आशय उस पद्य से है, जो आज कल की हिन्दी में लिखा हो और न कि प्राचीन व्रजभाषा में, व्रजभाषा की कविता चाहे मधुर हो, पर यह बात हिन्दीभाषा के लिये बड़ी निन्दा की है और उसके एक बड़े भारी अभाव को दिखाती है कि गद्य तो एक प्रकार की भाषा जो उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न हो संपन्न हुआ लिखा जाय और पद्य पुरानी भाषा में। पर हमारी आधुनिक हिन्दी अभी केवल एक शताब्दी की है, इसलिये यदि यह अभाव वर्तमान है तो कोई दुःख की बात नहीं है। इसके विपरीत यदि यह अभाव न रहता तो निस्सन्देह हिन्दी की उन्नति पर आश्चर्यित होने का अवसर था। परन्तु इन बातों के कहने से तात्पर्य यह है कि हिन्दीभाषा के लेखकगण इस ओर ध्यान दें और ऐसा करें कि जिसमें इस बीसवीं शताब्दी में इस त्रुटि की भी पूर्ति होजाय और हिन्दी सर्वाङ्ग-पूर्ण हिन्दी कहला सके। हमको विश्वास है कि सरस्वती इस अभाव की पूर्ति के लिये कुछ सहायता पहुंचा सके।

अस्तु, इस नवीन शताब्दी के साथ हमारी इस सरस्वती पत्रिका का दूसरा वर्ष प्रारम्भ हुआ। इसके प्रथम वर्ष की अवस्था में लोगों को पहिले पहल इस पर अनेक प्रकार के सन्देह हुए और कुछ उदार हृदय महानुभावों ने तो निरन्तर अपने कृपामय कटाक्षों से ही इसकी अंग पुष्टि समझी। हम इन सब महाशयों के हृदय से कृतज्ञ हैं, क्योंकि किसी न किसी प्रकार से वे हमारे सहायक ही हुए। हमारी इन सब महानुभावों से प्रार्थना है कि वे इस पत्रिका पर सदा ऐसी ही कृपा बनाए रहें।

इस वर्ष से इस बात का भी प्रबन्ध किया गया है कि लेखकों को यथा सामर्थ्य कुछ पुरस्कार भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्पित किया जाय। यद्यपि सरस्वती अभी इस योग्य नहीं हुई है कि लेखक महाशयों की उनकी योग्यता और उनके लेखों के अनुसार सेवा कर सके, पर जो कुछ सेवा हो सकेगी, हमें पूर्ण विश्वास है कि इसके लेखक गण उसे सादर स्वीकार कर इसके प्रकाशकों के उत्साह को बढ़ा, इस पत्रिका को चिर-स्थायिनी बनाने में सहायक होंगे।

इस स्थान पर कदाचित् यह लिख देना किसी प्रकार से अनुचित न होगा कि सरस्वती के प्रकाशक महाशय का उत्साह और उद्योग अत्यन्त ही सराहनीय और अनुकरणीय है, वास्तव में हिन्दी को ऐसे ही उदार हृदय महानुभावों की सहायता की आवश्यकता है। प्रकाशक महाशय इस लेख द्वारा सम्पादक समिति को, कि जिसका सम्बन्ध इस वर्ष के प्रारम्भ से कई कारणों से इससे छूटता है, अनेक धन्यवाद देना चाहते हैं और यह स्पष्ट शब्दों में कहा चाहते हैं कि समिति के योग्यता पूर्वक इस पत्रिका को वर्ष भर चलाने से वे उसके अत्यन्त बाधित हैं।

अन्त में हमारी प्रार्थना हिन्दी के लेखकों और प्रेमियों से है कि वे इस पत्रिका पर सदा कृपा बनाए रहेंगे और इसकी उन्नति में सदा दत्तचित्त रह कर सम्पादक और प्रकाशक दोनों को अनुगृहीत करेंगे और हिन्दी की उन्नति में सहायक हो अपने परम कर्तव्य का पालन करेंगे।

हिन्दी काव्य (आलोचना) की समीक्षा

पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, एम. ए., और पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी. ए., महाशयों ने सरस्वती के प्रथम भाग की बारहवीं संख्या में "हिन्दी काव्य (आलोचना)" शीर्षक एक प्रबंध लिखा है। उस प्रबंध से उक्त महाशयों का मुख्य अभिप्राय यही है 'जिसमें काव्य-प्रणाली एक प्रकार से स्थिर और निर्धारित हो जाय।' बात तो बहुत अच्छी है, पर हमे खेद के साथ कहना पड़ता है कि उस लेख से उक्त महाशयों का वह अभिप्राय किञ्चिन्मात्र भी सिद्ध न हो सका, वरन् नवशिक्षित काव्य-रसिकों को उलझन में डालने का एक उपक्रम हुआ। अतएव हम उक्त महाशयों के उस प्रबन्ध का निराकरण करना अत्यावश्यक समझते हैं, जिसमें काव्य के वे रसिक, जो इस (काव्य) के निगूढ़ तत्व को पूर्ण रीति से नहीं जानते, उक्त महाशयों के निर्धारित लक्षण के गुणदोष को भलीभांति समझ लें।

जब बाबू जगन्नाथ दास (रत्नाकर) ने साहित्य-रत्नाकर (काव्यनिरूपण खण्ड) में काव्य के यथार्थ लक्षण को पूर्ण रीति से निर्धारित कर ही दिया है तो फिर मिश्र जी का यह कहना कि,—"काव्य का कोई लक्षण तक अद्यापि पूर्ण रूप से संस्थापित नहीं है," अनुचित है।

उक्त प्रबंध के पढ़ने से जान पड़ता है कि मिश्र जी ने रत्नाकर जी के "काव्य निरूपण खण्ड" को देखा है। परन्तु यदि वे "काव्य निरूपण खण्ड" को मनोनिवेश पूर्वक पढ़कर उसके निगूढ़ तत्व के हृदयंगम करने में समर्थ होते, तो उन्हें काव्य के यथार्थ लक्षण के लिये न तो स्वयं श्रम स्वीकार करना पड़ता और न निजकृत लक्षण की भूल-भुलैयां में आप ही आप भटकना पड़ता।

काव्य-लक्षण के संबन्ध में मिश्र जी का अभिप्राय वही है जो रत्नाकर जी का है, परन्तु त्रुटि उसमें इतनी ही है कि न तो वे रत्नाकर जी के लक्षण को स्वयं समझ सके हैं और न अपने काव्य-लक्षण में निज हृद्गत भाव ही को, जैसा कि उनका मत है, यथार्थ रूप से व्यक्त करने में समर्थ हुए हैं।

(१) मिश्र जी लिखते हैं कि,—बाबू जगन्नाथ दास (रत्नाकर) बी. ए. ने अपने साहित्य-रत्नाकर (काव्य निरूपण खण्ड) में कतिपय लक्षणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डन कर जगन्नाथ पण्डितराज के लक्षण को सर्वश्रेष्ठ माना है, परन्तु उसमें भी कुछ परिवर्त्तन कर दिया। यथाः (१) "रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्दः काव्यम्" (अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रगट करने वाला शब्द काव्य है)–'जगन्नाथ पण्डितराज'। (२) "होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय"–'रत्नाकर'। इन दोनों लक्षणों में इतना ही विभेद है कि प्रथम में अर्थ और द्वितीय में वाक्य की रमणीयता प्रधान मानी गई है। यदि पण्डितराज का मत ग्रहण कीजिए तो चित्रकाव्य और पद लालित्य लक्षण के वहिर्गत हो जाते हैं और यदि रत्नाकर जी का प्रमाण मानिए तो ऐसे निर्माणों को जिनमें भाव कैसाही उत्तम क्यों न हो परन्तु वाक्य (अर्थात् बोली, भाषा या पदों की) रमणीयता न हो, काव्य न कह सकिएगा, क्योंकि "वाक्य" का अर्थ "शब्द और अर्थ या उनमें से एकभी" यह कदापि नहीं हो सकता। अतः ये दोनो लक्षण पाठक को पूर्णतया संतुष्ट नहीं कर सकते।

अब सुनिए, रत्नाकर जी ने जगन्नाथ पण्डित राज के लक्षण को प्राचीन लक्षणों में श्रेष्ठ माना है। कुछ स्वयं उन्होंने उस लक्षण को स्वीकार नहीं किया। और यह भी विदित हो कि रत्नाकर जी ने पण्डितराज के लक्षण में कुछ परिवर्त्तन भी नहीं किया है। वरन् उन्होंने पण्डितराज के लक्षण का खण्डन करके, अपना स्वतंत्र लक्षण निर्मित किया है। यदि वे पण्डितराज के लक्षण को स्वीकार करते तो उन्हें फिर उसका खण्डन करके नवीन लक्षण के निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी?

मिश्र जी ने जो यह लिखा कि,—"प्रथम में अर्थ और द्वितीय में वाक्य की प्रधानता मानी गई हैं।"

ये दोनों अर्थ निस्सन्देह मिश्र जी बहुत ठीक समझे हैं। परन्तु उक्त महाशय जो यह लिखते हैं कि "और जो रत्नाकर जी का प्रमाण मानिए तो ऐसे निर्माणों को जिनमें भाव कैसा ही उत्तम क्यों न हो परन्तु वाक्य (अर्थात् बोली भाषा या पदों) रमणीयता न हो काव्य न कह सकिएगा"। इसो प्रष्टव्य है कि यह अर्थ उन्होंने कहां से पाया क्या रत्नाकर जी ने अपने लक्षण का यह अर्थ क किया है? मुझे तो जहां तक ज्ञात है, कदापि ये अर्थ न तो लक्षणकर्ता ही ने किया है और न वा के सामान्य लक्षण और अर्थ से यह भाव निकल है। वरन् रत्नाकर जी तो स्पष्ट यह लिखते कि,—"यदि पद्मबंधादि काव्य मानें जाय तो इस लक्षण की अव्याप्ति न होगी और यदि उ रमणीयता का अभाव कह कर उनको काव्य माने, तोभी इस प्रकार से लक्षण करने में के हानि नहीं। क्योंकि जब उनमें रमणीयता है नहीं तो उनमें लक्षण की अतिव्याप्ति भी नहीं सकती और इस लक्षण का अभिप्राय वही ठह जो पण्डितराजकृत लक्षण का है। अतएव च पद्मबंधादि रमणीयता के भावाभाव से का माने जायँ, चाहे न माने जायँ, यह लक्षण दो अवस्थाओं में ठीक रहता है।"

इसका फलितार्थ यही है कि चाहे श चमत्कृति से रमणीयता हो, चाहे अर्थ चमत्कृति या दोनो से; तीनों ही अवस्था में रत्नाकर जी लक्षण शुद्ध और उपयुक्त जान पड़ता है। मि जी महाशय ने जो "वाक्य" का अर्थ "बोली भाषा या पद" किया सो किस प्रमाण से, अर्थ "बोली, भाषा, या पद" वाक्य को कहते हैं, ऐस कहां लिखा है?

मिश्र जी कहते हैं कि, "'वाक्य' का अर्थ 'श और अर्थ या उनमें से एक भी' यह कदापि नहीं सकता है।" सो यह कौन कहता है कि हो सक है। क्योंकि वाक्य को शब्द या अर्थ अथवा शब्द नहीं कहते। और न केवल शब्द-समूह-मात्र को वाक्य कहते हैं। अतएव "वाक्य" का अ क्या है? इसे हम लिखते हैं और हमें आशा है रत्नाकर जी का भी यही अभिप्राय होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सुना जाय, उसे शब्द कहते हैं, जो ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक भेद से दो प्रकार के हैं। उनमें अन्तिम भी दो प्रकार के हैं, सार्थक और निरर्थक। अर्थवान् शब्द सार्थक कहाते हैं, इनके तीन भेद हैं। संज्ञा, क्रिया और अव्यय। अव्यय को उन दोनो के साहचर्य के कारण छोड़ दें तो केवल दो ही बचे, अर्थात् संज्ञा और क्रिया, तो ये ही दोनो जब वाक्य में व्यवहृत होने की योग्यता प्राप्त करते हैं, तब वे पद कहलाते हैं। पाणिनि ने भी कहा है (तिङ् सुबन्तं पदं) अतएव पदों (शब्दों) के ऐसे समूह को वाक्य कहते हैं जो कि अर्थ बोध कराने में स्वयं पूर्ण हों। यही मत दर्पणकार का भी है (वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः) फिर तो वाक्य को बोली, भाषा या पद कहना अयुक्त है।

अब विचारने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वाक्य और शब्द में वही संबन्ध है, जो मनुष्य और आत्मा में। किन्तु वह संबन्ध नहीं है जो शरीर और आत्मा में है। जैसे आत्मा-विगत, मृतक शरीर को मनुष्य कहना अनुचित है, उसी प्रकार अर्थहीन शब्दसमूह को वाक्य कहना अयुक्त है। शब्द निस्सन्देह सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार के हो सकते हैं, क्योंकि शब्द और अर्थ में वही सम्बन्ध है जो शरीर और आत्मा में। परन्तु अर्थरहित शब्दसमूह वाक्य कहला ही नहीं सकते। अतएव वाक्य की रमणीयता से शब्दों की रमणीयता मान ग्रहण करना कदापि युक्ति-संयुक्त नहीं है। क्योंकि शब्दसमूह-मात्र को वाक्य नहीं कहते। वरन् वाक्य की रमणीयता से शब्दों के सार्थकसमूह की रमणीयता ग्राह्य है। यह रमणीयता तीन प्रकारसे आ सकती है। अर्थात् अर्थचमत्कृति, शब्दचमत्कृति और शब्दार्थचमत्कृति से। अतएव इन तीनों कारणों में से एक के भी उपस्थित रहने से वाक्य की रमणीयता हो जायगी। यदि रत्नाकर जी यह कहते कि "होय शब्द रमणीय जेहि वाक्य काव्य है सोय" तो निस्सन्देह मिश्र जी के आरोपित दूषण होते।

यहां तक तो हमने रत्नाकर जी कृत लक्षण के समर्थन करने के निमित्त संक्षेपतः जो उचित था लिखा, अब हम कुछ मिश्र जी कृत लक्षण के विषय में लिखते हैं।

मिश्र जी कृत लक्षण यह है—

"वाक्य अर्थ वा एक हूं जहँ रमणीय सु होय"

इस लक्षण से प्रतीत होता है कि भ्रम वश मिश्र जी ने वाक्य का अर्थ शब्द समझ लिया है, क्योंकि जब दो पदार्थों के विषय में यह कहा जाता है कि चाहे एक भी अमुक प्रकार का हो तो यह अवश्य निर्धारित होता है कि एक को छोड़ कर भी दूसरे का उस प्रकार का होना संभव है, परन्तु वाक्य और अर्थ के विषय में यह बात कदापि नहीं कही जा सकती, क्योंकि अर्थ में रमणीयता होते ही वाक्य की रमणीयता प्राप्त हो जाती है। अतएव यह लक्षण ही व्यर्थ है। हां, यदि मिश्र जी इस प्रकार से कहते, तो अवश्य अपना मन्तव्य प्रकाशित कर सकते—

"शब्द अर्थ पुनि दुहुनि में एकहु जिहिं रमणीय।
वाक्य कहावत काव्य सो कहु लक्षण कमणीय" ॥

यदि मिश्र जी का अभिप्राय यही है तो इसका अर्थ वही है जो इस लक्षण का—

"होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोइ"

अतएव इस लक्षण का खण्डन करना केवल भ्रम मूलक तथा भ्रमोत्पादक मात्र है।

लक्षण के विषय में इतना लिख कर अब हम संक्षेपतः उक्त लेख की और भी एकाध बातों पर लिखते हैं—

मिश्र जी लिखते हैं कि "तुकान्त का प्रयोग ही न हो तो हानि कुछ भी नहीं और सुगमता बहुत हो सकती है। पदान्त में विश्राम-चिह्न-रहित छन्दों का लिखना भाषा-साहित्य-प्रणाली में एक दूषण माना गया है, पर हम तो इसे गुण कहेंगे। कवि जब उमंग में आकर लेखनी को चञ्चल करता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक ही पद में उसका भाव नहीं समा सकता, तब उसके आवेगवशात् छन्द ऐसे झोंके खाता है कि 'चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी', फिर यह क्यों कर भाव को काट छांट कर के उसको एक ही पद में अवश्य ठूंस दे ?" इत्यादि।

प्रथम तो हम मिश्र जी से यह पूछते हैं कि 'पद' से आपका क्या अभिप्राय है ? पूर्ण छन्द, चरण, शब्द, वाक्य या क्या ? और ऐसा नियम कहां लिखा है कि एक ही तुक में कवि अपना भाव तोड़ मड़ोर कर ठूंस दे ? यह तो कवि की इच्छा पर निर्भर है कि चाहे वह अपने भाव को एक ही तुक में पूर्ण करे या चार पांच छन्दों में पूर्ण करे। परन्तु जो प्रबन्धातिरिक्त फुटकर कवित्व हैं, उनमें एक ही वृत्त में कवि को निज भाव का समावेश करना पड़ेगा। जब यह स्वच्छन्दता ही है तो फिर तुकान्त की इसमें क्या बाधा हुई ? हमारी समझ में तुकान्त का प्रयोग सुगमता का विघातक कदापि नहीं है।

मिश्र जी को सोचना चाहिए कि वास्तविक कवि वही है जो भाव पर अपना पूर्ण अधिकार रखता हो। उसे यह पूर्ण शक्ति प्राप्त है कि जितने पदों में जो और जिन छन्दों या उनके चरणों में चाहे, अपने भाव को स्वच्छन्दता से व्यक्त कर सकता है। और कवि की इसी शक्ति का नाम प्रौढ़ता है।

कवि वही है, जिसका शब्द-सागर पर पूर्ण आधिपत्य हो, वह जब किसी भाव या तुकान्त के एक शब्द की प्रतीक्षा करे उस समय उसके सन्मुख असंख्य शब्द हाथ बांधे और यों प्रार्थना करते हुए आ खड़े हों कि "आप हमें स्थान दीजिये, आप हमें स्वीकार कीजिए" इत्यादि; उस समय कवि उनमें से एक को मनोनीत कर और सबको विदा कर दे। जैसे राजा जब एक सेवक की खोज करता है तो पांच हज़ार सेवकों की दरख़ास्तें गुज़रती हैं, पर राजा उनमें से अपने कार्य्य योग्य किसी एक को चुन शेष को विदा कर देता है।

और वह राजा क्या जिसे खोजने से भी एक सेवक न मिले ! वैसे ही वह कवि नहीं, वरन् रंक है, जो शब्दों पर अपना आधिपत्य न रख कर, उन्हीं को अपना अधिपति बना डाले, तो जिनमें "प्रतिभा" के अभाव से ऐसी रंकता है, वे कवि कहलाने या काव्य निर्माण करने के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते। उन लोगों को उचित है कि समस्त स्वच्छन्दता का आकर "गद्य" ही लिखा करें क्योंकि तुकान्त के रहित करने मात्र से स्वच्छन्दता नहीं मिल सकती, वरन् छन्दों के लघु, गुरु, मात्रादि के प्रपंच तो और भी स्वच्छन्दता-विघातक हैं। इस विषय में रत्नाकर जी ने समालोचनादर्श नामक निबंध में क्या ही अच्छा कहा है—

"जात खड़ी बोली पै कोऊ भयो दिवानो।
कोउ तुकान्त बिन पद्य लिखन में है अरुझानो॥
अनुप्रास प्रतिबंध कठिन जिनके उर मांही।
त्यागि पद्य प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यों नाहीं ?
अनुप्रास कबहूं न सुकवि की शक्ति घटावैं।
बरु सच पूछौ तो नव सूझ हियें उपजावैं॥"

यद्यपि संबन्धातिशयोक्ति आदि अनेक विषयों पर लिखना शेष रह गया है, पर लेख बढ़ जाने से हम इसे यहीं समाप्त कर देते हैं। और आशा करते हैं कि जगदीश्वर की कृपा हुई तो "साहित्य" शीर्षक प्रबन्ध में काव्य के अङ्गों के वर्णन में हमारे वक्तव्य मिश्र जी के प्रबन्ध का भी सम्यक् उत्तर दे देंगे। और हम मिश्र जी से इस समीक्षा के लिये क्षमा मांगते हैं, क्योंकि हमने जो कुछ लिखा है, शुद्ध अन्तःकरण से, कि जिसमें काव्य-लक्षण-जिज्ञासु-जन भ्रम में न पड़ जायं। अतएव इस समीक्षा से द्वेषभाव न समझा जाय, यही मिश्र जी महाशयों से हमारा आन्तरिक निवेदन है।

गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वद्वर वामन शिवराम आपटे, एम्. ए.

आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखम् ॥

मालतीमाधव

इस ओर के शिक्षित पुरुषों में से जिन्होंने किसी स्कूल अथवा कालेज में शिक्षा पाई है, वे, तथा संस्कृत से प्रीति रखने वाले अन्य लोग भी, हमारे चरित्र नायक से अवश्य परिचित होंगे। आपटे कृत 'संस्कृत गाइड' और 'संस्कृत-अङ्गरेज़ी' तथा 'अङ्गरेज़ी-संस्कृत' कोश इत्यादि ग्रन्थ ऐसे प्रसिद्ध हो रहे हैं कि, प्रत्येक विद्या रसिक के पुस्तक-समुदाय अथवा पुस्तकालय में उनको सादर स्थान दिया गया है। ऐसे लोकविश्रुत विद्वान् की कुटिल काल ने वही गति की जो भवभूति की शिरोलिखित उक्ति में दिखलाई गई है। षोडश कलाओं से परिपूर्ण हुए चन्द्रमा को राहु ने ग्रास कर लिया! वामन राव को भी, विद्या की समग्र कलाओं से विभूषित होते ही, काल ने अपनी कुक्षि में सन्निवेशित कर लिया!! उनका पूर्ण अभ्युदय होते ही, वे इस नश्यमान संसार की असारता का उदाहरण हो गए। हा!

विद्वानों को अल्पायु होते देख भर्तृहरि को भी खेद हुआ है। उन्होंने कहा है कि, पहले तो ब्रह्मा पुरुषरत्न निर्माण ही नहीं करता और यदि करता भी है तो उनके शरीर को क्षणभंगुर बना देता है। इस मूर्खता का कहीं ठिकाना है!

"अहह कष्टमपण्डितता विधेः"

परन्तु कोई कोई महात्मा ऐसे तेजस्वी होते हैं कि अपनी अल्पकालिक स्थिति ही में वे ऐसे ऐसे अपूर्व काम कर जाते हैं जो, साधारण मनुष्यों से, सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहने पर भी, पूर्ण नहीं हो सकते। सायङ्काल और प्रभात की शोभा यद्यपि क्षण मात्र ही दृग्गोचर होकर लोप हो जाती है, तथापि वह उतने ही समय में लोगों को अलौकिक आनन्द दे जाती है। अङ्गरेज़ी कवि ड्यन जानसन् ने कहा है :—

In small proportions we just beauties see;
And in short measures life may perfect be.

सतारा ज़िले में सावन्तवाड़ी नामक एक स्थान है। उसके अन्तर्गत आसोलीपाल नामक ग्राम में, सन् १८५८ ई० में, वामनराव का जन्म हुआ। वामन राव जब तीन ही वर्ष के थे तभी उनके पिता शिवराम रावजी आपटे ने अपनी जीवन-लीला सम्वरण की। वामनराव के पिता के मरने पर उनकी विधवा माता अपने लड़कों को लेकर जीवन निर्वाह करने के निमित्त कोल्हापुर आई। वहां भी उस साध्वी का पीछा दुर्दैव ने नहीं छोड़ा। कोल्हापुर में उसके एक १५ वर्ष के पुत्र को निर्घृण मृत्यु ने उदरसात् कर लिया। पति भी गया; एक पुत्र भी गया! इस दुःख परम्परा को वामन राव की माता नहीं सहन कर सकी। शोकाकुल होकर, वहीं कोल्हापुर में, वह भी अपने पति और पुत्र की अनुगामिनी हुई। आठ ही वर्ष के वय में वामनराव निराश्रय और अनाथ हो गए। पिता भी नहीं! माता भी नहीं!!

अनाथों का नाथ ईश्वर है। निराश्रयों का आश्रय भी वही है। वामनराव यद्यपि माता-पिता हीन होगए, तथापि, वे, अकारण-कारुणिक परम पिता जगदीश्वर के पूर्ववत् वात्सल्य भाजन बने रहे। उसीने उन पर अपना वरदहस्त रखकर, और इस अपरिमेय दुःख को सहन करने की शक्ति देकर, उनको धैर्य धारण करने में समर्थ किया।

दक्षिण में दरिद्र ब्राह्मणों के लड़के-विशेषतः विद्यार्थी-भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वामनराव को भी यह वृत्ति अवलम्बन करनी पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक वामन जी की वृत्ति को स्वीकार करने के लिए, दुर्दैवद्वारा, इस प्रकार, विवश किए जाने पर; वामनराव ने अपने वामन नाम को सार्थक कर दिया। 'सार्थक,' हम इसलिये कहते हैं, क्योंकि वे खर्वाकृति भी थे और काम भी उनको वामन का करना पड़ा। इस प्रकार आठ ही वर्ष के वय से महादरिद्रावस्था में रह कर और भिक्षाटन से उदर पूर्ति कर वामनराव ने विद्या सम्पादन करना आरम्भ किया। दो, तीन वर्ष में मराठी भाषा भली भांति सीख कर, वे कोल्हापुर की अङ्गरेज़ी पाठशाला में प्रविष्ट हुए। वहां जाने पर भी उनकी वृत्ति वही बनी रही। उसमें अन्तर नहीं हुआ। उनको गणित और संस्कृत में बड़ा अनुराग था। इन विषयों में वे अपने सहपाठियों की सहायता करते थे और उनको प्रसन्न करके उनकी पुस्तकें मांगकर अपना काम चलाते थे। पुस्तकों को भी भिक्षा! वस्त्र की भी भिक्षा!! अन्न की भी भिक्षा!!! भिक्षा ही पर उनका जीवन निर्भर था। ऐसी विपन्न दशा में रह कर भी वामनराव ने बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन में चित्त लगाया। वे इतने कुशाग्र बुद्धि थे कि अपनी कक्षा में उनका सदैव उच्चासन रहता था। वामनराव को, अपने सहाध्यायी लड़कों को संस्कृत और गणित सिखलाते देख, उनके प्रधान शालाध्यापक ने उनसे कहा था कि "वामन! तू एक प्रसिद्ध अध्यापक होगा"! यह भविष्यवाणी सत्य निकली।

१८७३ ई० में वामनराव एन्ट्रन्स (Matriculation) परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उस समय उनका वय केवल १५ वर्ष था। इस परीक्षा में, उन्होंने, संस्कृत में, ऐसी प्रवीणता दिखलाई कि, उनको २५ रुपये की छात्र वृत्ति मिली। इस समय उनको, अपनी चिरपरिचित भिक्षा वृत्ति को नमस्कार पूर्वक बिदा करना पड़ा। तदनन्तर वामनराव ने डेकन कालेज में प्रवेश किया और १८७५ में एफ़० ए०, १८७७ में बी० ए० और १८७९ (२१ वर्ष के वय में) एम्० ए० में उन्होंने उत्तीर्णता प्राप्त की। जिस वर्ष वे एफ़० ए० की परीक्षा में सफल हुए, उस वर्ष से उनको कई छात्र वृत्तियां मिलने लगीं और लगभग ५० रु० मासिक की प्राप्ति का द्वार उनके लिए खुल गया। एम्० ए० की परीक्षा में वामनराव ने ऐसी योग्यता दिखलाई और इतने सम्मान सहित वे उत्तीर्ण हुए कि उनको उस उपलक्ष में ४०० रुपये उपहार मिले।

वामनराव का विवाह, पूना निवासी गणेश वासुदेव जोशी की कन्या से १८७७ ई० में हुआ। गणेश वासुदेव एक सर्वप्रिय, सर्वमान्य और धनी पुरुष थे। उन्होंने वामनराव की अकिञ्चनता का किञ्चिन्मात्र भी विचार न करके, केवल उनकी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता और सदाचरण पर लुब्ध होकर अपनी कन्या उनको समर्पण की। इससे व्यक्त होता है कि गणेश वासुदेव ने विद्या के सम्मुख सधनता आदिक और बातों को तुच्छ समझा। वामनराव की पत्नी यद्यपि एक धनी के घर की थी तथापि ऐसा सद्गुणी पति पाकर उसके वामनराव की निर्धनता स्वप्न में भी दुःख दायिनी नहीं हुई; उलटा उसने, इस संयोग से, अपने को परम भाग्यशालिनी माना। सुनते हैं वह रूपवती न थी; तथापि पति और पत्नी दोनों ने अपने अपने सद्गुणों से एक दूसरे को ऐसा मोहित कर लिया था कि, परस्पर कभी कलह, मतद्वैध अथवा किसी प्रकार का अप्रिय व्यवहार नहीं हुआ। वामनराव को इस पत्नी से दो कन्यायें हुईं और एक पुत्र हुआ; परन्तु, खेद है, पुत्र नहीं रहा। कन्या भी शायद, एक ही इस समय जीवित है।

दक्षिण में विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर एक विद्वान् पुरुष हो गए हैं। उनके कई एक मराठी निबन्धों का अनुवाद नागपुर निवासी पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ने नागरी में किया है। तद्वारा शास्त्री जी की विद्वत्ता और उनके नाम से नागरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रायः सभी प्रेमी परिचित होगए हैं। ये संस्कृत और अङ्गरेज़ी दोनों के परम विद्वान् थे और मराठी में 'निबन्ध माला' नामक मासिक पुस्तक निकालते थे। यह पाठशाला में अध्यापक थे। परन्तु कई कारणों से इनकी 'निबन्धमाला' के निकलने में प्रतिबन्ध होने लगा; अतएव दास्यरूपी रजतशृङ्खला इन्होंने तोड़ डाली और स्वतन्त्र होकर ये देशोपकार करने पर कटिबद्ध हुए। इन्होंने अपने मित्र गोपाल गणेश आगरकर एम्० ए० और बालगङ्गाधर तिलक बी० ए० की सहायता से 'न्यू इंग्लिश स्कूल' नामक एक पाठशाला स्थापित की। वामनराव आपटे भी, विष्णु शास्त्री की भांति, पहले अध्यापक होगए थे; परन्तु इन्होंने भी सरकारी नौकरी छोड़ दी और छोड़ कर ये भी अपने इस मित्रत्रितय के साथी हुए। १८८० ई० में यह पाठशाला स्थापित हुई। इसी के साथ 'केसरी' और 'मराठा' नामक दो पत्र भी निकलने लगे। पहला मराठी में और दूसरा अङ्गरेज़ी में। 'केसरी' में प्रायः विष्णु शास्त्री के लेख निकलते थे और 'मराठा' में वामनराव आपटे के। इन पत्रों के ऊपर १८८२ ई० में कोल्हापुर के एक प्रतिष्ठित पुरुष ने मानहानि का अभियोग चलाया; जिसका फल यह हुआ कि, आगरकर और तिलक को कारागार सेवन करना पड़ा। इस घटना से यह सिद्ध हुआ कि आगरकर, आपटे, तिलक, चिपलूणकर और पांचवें नामजोशी—इन पांचों मित्रों का आत्मा एक था; शरीर मात्र पृथक् था। लेख लिखा औरों ने, परन्तु उसका दुष्परिणाम भोगा दूसरों ने! जिस वर्ष यह घटना हुई उसी वर्ष अर्थात् १८८२ ई० में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर इस लोक से चल बसे। इन कारणों से यह शङ्का उत्पन्न हुई कि 'न्यू इंग्लिश स्कूल' भी अब अस्त हो जायगा। परन्तु ऐसा हुआ। वामनराव ने ऐसी कार्यदक्षता दिखलाई कि स्कूल का बन्द होना तो दूर रहा, उलटा उसका उत्कर्ष प्रतिदिन होने लगा।

'न्यू इंग्लिश स्कूल' का अध्यापक वर्ग ऐसा कार्य पटु, विद्वान्, चतुर और परिश्रमी था कि स्कूल की परिक्षाओं का फल बहुत ही अच्छा होने लगा और उसकी ख्याति प्रति दिन बढ़ने लगी। इस पाठशाला का यहां तक उत्कर्ष हुआ कि १८८५ ई० में यह कालेज कर दी गई और 'फरगुसन कालेज' इसका नाम हुआ। तब से वामनराव इस कालेज के प्रधान शिक्षक नियत हुए। भिक्षारत बालक वामन, प्रिन्सिपाल वामन शिवराम आपटे एम्० ए० कहलाया जाने लगा!

१८८५ से १८९२ ई० तक वामनराव ने 'फर्गुसन कालेज' की प्रधानाध्यक्षता बड़ी ही दक्षता से निवाही। इनके प्रयत्न से कालेज की अधिकाधिक उन्नति होती गई। इनकी शिक्षण पद्धति बहुत ही प्रशंसनीय थी। इनसे इनके छात्र सदा प्रसन्न रहते थे। विशेषतया जब ये संस्कृत के काव्य और नाटकों की मीमांसा करने लगते थे तब इनके विवेचन से इनके विद्यार्थियों को पराकाष्ठा का आनन्द होता था और विवेचित विषय उनके हृत्पटल में तत्काल अङ्कित होजाता था।

इस प्रकार १२ वर्ष पर्यन्त अपनी अपूर्व अध्यापन शक्ति से महाराष्ट्र देश को उत्तमोत्तम शिक्षा प्रदान करके अकाल ही में वामनराव ने परलोक के लिए प्रस्थान किया। ९ अगस्त १८९२ को-अर्थात् केवल ३४ वर्ष के वय में, वे अल्पायु हो गए! महाराष्ट्र देश का एक अलौकिक रत्न खो गया!! संस्कृत का अनन्यभक्त सर्वदा के लिये तिरोहित हो गया!!! इनकी मृत्यु से इनके मित्र-मण्डल और छात्र वर्ग को ही नहीं किन्तु महाराष्ट्र देश भर को असह्य दुःख हुआ। जस्टिस तेलङ्ग, डाक्टर भाण्डारकर, तथा डेकन कालेज और एल्फिन्स्टन् कालेज के प्रिन्सिपाल ने भी बहुत शोक किया। यहां तक कि मुम्बई के गवर्नर लार्ड हैरिस तक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके गुणों की प्रशंसा करके खेद प्रदर्शित किया *।

आपटे ने 'संस्कृत-अंग्रेज़ी' और 'अंगरेज़ी-संस्कृत' कोश, 'संस्कृत-गाइड,' 'प्राग्रेसिव एक्सर-साइजेज़' और 'कुसुम-माला' नामक कई उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं। इनका बनाया हुआ कोश बहुत ही उपयोगी है। इस कोश की प्रशंसा बड़े बड़े-विद्वानों ने की है। इनके 'संस्कृत-गाइड' की भी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इसमें आपटे ने अपने असाधारण संस्कृत ज्ञान का पूरा पूरा उदाहरण दिखलाया है। इस ग्रंथ के प्रसाद से, संस्कृत-भाषानुरागी अनेक विद्यार्थीगण, इस समय, अपरिमेय लाभ उठारहे हैं। 'संस्कृत-गाइड' आपटे की संस्कृत पारदर्शिता का आदर्श है। संस्कृत साहित्य में जितने अच्छे अच्छे ग्रन्थ हैं सब से यथेष्ट वाक्यों को उद्धरण कर, उनके द्वारा, इसमें, व्याकरण के नियमों की सिद्धता दिखलाई गई है। शब्द-शास्त्र में आपटे की विलक्षण गति थी। पाणिनि के

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्

इस सूत्र पर, सिद्धान्त कौमुदी में, भट्टोजी दीक्षित ने कहा है:—

अर्थग्रहणमस्तिनैव संबध्यते। अनन्तरत्वात्।

दीक्षित के इस कथन का, आपटे ने, अपने 'संस्कृत-गाइड' के 'तुम' प्रत्यय (Infinitive mood) प्रकरण में, सप्रमाण और सयौक्तिक खण्डन किया है। यह पुस्तक इतनी उपयोगी और सर्व-प्रिय है कि थोड़े ही काल में इसकी कई आवृत्तियां निकल चुकी हैं।

दारिद्रग्रस्त होकर भी अभिरुचि होने से मनुष्य उच्च से उच्च विद्या सम्पादन कर सकता है और अपनी विद्वत्ता के बल से वह अलौकिक प्रतिष्ठा भाजन भी हो सकता है, आपटे के चरित्र से यह शिक्षा मिलती है।

---

* लार्ड हैरिस ने पूना-निवासियों से कहा :—

Death has been busy here in the City and Cantonments this last month, and amongst those whom you have to mourn, none, I fancy, has passed away with more sincere and deeper feelings of regret than Mr. Apte. I beg very respectfully to join with you in those feelings. I know what Mr. Apte was doing for education here. I know what a labour of love it has been to him to extend the efforts of educational association with which he was connected, and how successful that labour has been. We can ill-spare such enthusiasts, but we must bow before the greater wisdom of the Almighty. I name Mr. Apte in connection with that doctrine of self-help which I am taking the liberty to inculcate, because I believe him to be a notable instance of a man raising himself to the highest level in his own line by the unaided determination of his character and his self-confidence in his power to succeed.

वन-बिहार-पञ्चपदी

पिया हो कसकत कुस पग बीच—
लखन-लाज सिय पिय सन बोली
हरुए आइ नगीच ॥ १ ॥

सुनि तुरन्त पठयो लखनहिं प्रभु
जलहित दूरि सुजान।
लेइ अंक सिय जोवत कुस कन
धोवत पद अँसुआन ॥ २ ॥

बार बार झारत कर सों रज
निरखत छत बिललात।
हाय प्रिये मान्यो न कह्यो, लखु
नहिं बन बिच कुसलात ॥ ३ ॥

सहस सहचरी त्यागि सदन मधि
सासु ससुर सुख कारि।
हठ करि लगि मो संग सहत तुम
हाहा! यह दुख भारि ॥ ४ ॥

कहत जात यों प्रभु बहु बतियां,
तिया पिया की छांह।
देइ गलबहियां चली विहँसि कहि
यह सुख नाथ अथाह ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ कुस साथरी साथ सुहाई–
जो सुख सुखनिधान निसि पाई
सों क्यों हूं न कहाई ॥ १ ॥

चहल पहल निसि राज महल बिच
चेरिन को समुदाई ।
सासु ससुर के अदब न दबकत
दुसह तुम्हार जुदाई ॥ २ ॥

मनभावन मन भावत बतियां
बतराईं तहँ नाहीं ।
तातें तहं तें सौगुन सुख वन,
विहरत दै गलबाहीं ॥ ३ ॥

गगन भगन-सोभा मन-लोभा
देखत नखत निकाई ।
जा छबि आगे सीस महल की
पवि छबि प्रगट फिकाई ॥ ४ ॥

आलस तजि आरसी विलोकहु
मंगल द्विज जुति भाई ।
बिनु गुन माल भली छबि पिय हिय
कहि सिय मुरि मुसुकाई ॥ ५ ॥

पिया जब देखी मैं फुलवरियां–
अस मन भयो धाइ गर लागौं
त्यागि सकल कुल गलियां ॥ १ ॥

लखन लाल मोहिं सेष सों लागे
बिष सी संग की अलियां ।
लाज भुअंगिनि हंकरति बाढ़ी
निरखि बाग के मलियां ॥ २ ॥

मन चाह्यो पिय संग संग डोलूं
चुनूं कुसुम की कलियां ।
गूंथि गूंथि अभरन पहिराऊँ
करि पिय संग रंगरलियां ॥ ३ ॥

मन महँ धँसो सांवरी सूरति
फँसी पिता पनजलियां ।
प्रेम नेम दुबिधा तरंग उठि
मची हिये खलबलियां ॥ ४ ॥

धनुस भंगि पितु नेम प्रेम मम
राखि लियो बिधि भलियां ।
सो इच्छा इकांत बिहरन अब,
पुरई भुज गर डलियां ॥ ५ ॥

(पिया हो) मन की मनहीं माहिँ रही–
तुव मन निज कर केस सँवारन
लाजन नाहिं कही ॥ १ ॥

सो घर जरउ जहां निज मन भरि
पिय मन रखि न रही ।
चाहि चाहि मन पछितायो बहु
नाहक नाहिँ कही ॥ २ ॥

सहस सहचरी नित घर घेरत
परी लाज के फंद ।
अँखियां भरि कबहूं नहिँ निरखीं
तुव मुख-पूरन-चन्द ॥ ३ ॥

यह वन निज कर नाथ सँवारत,
वेनी गुंथत बनाय ।
को बड़ भागिनि मो सम तिहुं पुर
यह सुख जाहि जनाय ॥४॥

कोटि मनोज लजावन भावन
तुव छवि पीयत पीय ।
अँखियां बहुत दिनन की प्यासीं
नेकु अघात न हीय ॥५॥

जियत नहिं बे पानी को मीन–
रतनाकर करिवर की मोतिया
बे पानी छवि हीन ॥१॥

बे पानी सर राजहंस लखि
होत बहुत बेहाल ।
तान अलाप मृदङ्ग न भावत
बे पानी को ताल ॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहलहात खेतन बिच शाली
बे पानी जु सुखात।
लोह घावहू बे पानी के
छन छन बहुत दुखात ॥३॥

प्राननाथ बे पानी व्यञ्जन
कोऊ न सरस सुहात।
बे पानी के नर नारी जग
अति खल नीच लखात ॥४॥

हम अबला पुनि चार पानि कर
पकरयो आप बनाय।
बे पानी अब तुव अनुगामी
कहो अनत कस जाय ॥५॥

सुधाकर द्विवेदी

महारानी सूजाबाई

बृहत् वीरभूमि राजपूताने में वीर माता, वीर पत्नी, तथा अनेक वीर रमणी हुई हैं, इन्हीं में से सूजाबाई भी एक हैं। इनकी बड़ी अलौकिक और चित्ताकर्षक कथा है, जिसे आज हम अपने प्रिय पाठकों के आगे प्रकाश कर आशा करते हैं कि यह कथा उनको मनोरञ्जक होगी।

जिस समय बूँदी का राज्य निज उन्नति साधन में चढ़ा बढ़ा था और राजपूताने के दूसरे राजाओं से सम्मानित हो रहा था, उस समय बूंदी के राज्य सिंहासन पर राजा नारायण दास शोभित थे। यह जैसे रूपवान, गुणवान और शीलवान थे वैसे ही बलवान भी थे। इनकी कीर्त्ति उस समय राजपूताने में घर घर फैली हुई थी, यहां तक कि कुलकामिनियां भी अपने गान में इनका यश गाया करती थीं। जहां इनमें एकाधार से अनेक गुणों ने आश्रय लिया था वहां एक प्रबल दोष ने भी इन्हें निज आधीन कर रक्खा था अर्थात् थोड़ा थोड़ा करते इनमें अफ़ीम का ऐसा अमल बढ़ गया था कि यह पूर्ण रूप से उसके आधीन होगए थे। राजा नारायण दास तथा चित्तौड़ के राणा रायमल में परस्पर बड़ी ही घनिष्ट मित्रता होगई थी।

परस्पर में सुख दुःख में दोनों राजे दोनों के सहायक होते और पूरे मित्र भाव का बर्ताव रखते थे। एक समय चितौड़ के राणा रायमल पर पठानों की सेना आपड़ी और उसने उन्हें घेर लिया। उस समय अपने को विवस देख राणा रायमल ने निज मित्र बूंदी राज नारायणदास को सहायता के हेतु पत्र लिखा। असहाय के सहायक राजा नारायणदास अपने मित्र की विपद सुनते ही अपनी वीर वाहिनी को ले चितौर की ओर चढ़ दौड़े। निज सैन्य लिए जाते जाते चितौड़ में पहुंचा ही चाहते थे कि मध्यान्ह होजाने के कारण स्नान भोजन का समय जान राजा ने एक ग्राम के निकट किसी स्थान में अपना डेरा डाल दिया। घोड़े पर से उतर, कमर खोल, हाथ मुँह धो, अमल कर, एक वृक्ष की शीतल छाया में पलङ्ग बिछवा, राजा विश्राम करने लगे। लेटतेही राजा को निद्रा सी आगई। इधर मक्खियों का झुण्ड मनमाना राजा के मुँह पर आ बैठने लगा। कुछ थोड़ी दूरी पर पनघट का कुआं था कि जहां ग्राम की स्त्रियां जल भरने आया करती थीं। किसी तेली की युवती उसी समय कुएं पर जल भरने आई थी। जल भर गगरी सिर पर धर चली ही थी कि राजा के देखने की उसे उत्कट लालसा हुई इसलिये गगरी लिए उस स्थान में गई जहां राजा नारायणदास पलङ्ग पर पड़े हुए थे। राजा की अवस्था देख तेलिन कहने लगी।

"फूटे राणाजी के भाग, जो ऐसे पिनकी राजा के भरोसे बैठे हैं!"

ऐसा कह लौट के वह चली थी कि वैसे ही राजा चौंक के उठ बैठे और उसकी ओर निहार बोले—

"अरी मरदानी भागी न जा, सुन तो सही।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सुनतेही बिचारी तेलिन के पाँव भारी पड़ गए, आगे को पाँव न उठा, ठमक के खड़ी होगई, इधर से राजा जाके उसके पास खड़े हुए और उन्होंने एक लोहे का मोटा छड़ मंगवाया। उधर मारे भय और लज्जा के उसका सारा शरीर पसीने पसीने हो कांपने लगा। राजा ने लोहे का जो दण्ड मंगवाया था उसका दोनों मुँह पकड़ सहज ही यों झुका दिया जैसे कोई पतली बेंत को मोड़ देता हो और हँसली सा बना उसके गले में डाल कर वे बोले—

"जब तक मैं लौट के न आऊं तब तक पहने रह और इस बीच में जो कोई बलवान हो तो उससे खुलवा लेना"!

इधर तो हंसली पहिर वह घर गई, उधर राजा ने भी कूच किया, चितौड़ में पहुंचते ही पठानों की ऐसी मार काट मचाई कि उन्हें भागते ही बन आया। पठानों को भागता देख राणा अपने प्यारे मित्र से मिलने को दौड़ आए और बड़े आनन्द सत्कार से नगर में लिवा ले गए। कुछ पहिले जहां सन्नाटा छाया हुआ था वहां आनन्द बधावा बजने लगा। माङ्गलिक वस्तुओं से राजभवन और नगर सजाया गया, सारे नगर में आनन्द की तरंगे लहराने लगीं। चितौड़ के राजा ने बड़े हर्ष और उमङ्ग से बूँदी के वीर परोपकारी और मित्र राजा का आतिथ्य किया, और सहर्ष अपने मित्र की मित्रता, बल और विक्रम की बहुत कुछ प्रशंसा की। अतःपुर-निवासिनी कुल बालाओं ने भी राज महल तथा निज निज घरों में आनन्द मङ्गल मनाया। अहा, वह भी क्या ही आनन्द का दिन बीत गया है जिस समय यहां वीर पुरुषों की लोग पूजा करते थे, आदर और सत्कार करते थे, वीर माता और वीर पत्नी अपने को धन्य मानती थीं और परोपकार परम पौरुष मानाजाता था।

रनवास में जिस समय आनन्द मङ्गल हो रहा था उस समय राजा नारायणदास की वीरता और दूसरे सदगुणों की चर्चा हो रही थी। इन प्रशंसाओं को सुन राणा रायमल के भ्राता की पुत्री परम सुन्दरी अनूठा शीलगुण-सम्पन्ना बाला ने चित्त में इस बात की दृढ प्रतिज्ञा करली कि "मैं राजा नारायणदास की रानी होऊंगी नहीं तो जन्म-भर कारी ही रहूंगी"। धीरे धीरे रनवास में कानों कान यह बात फैल गई। यह चर्चा फैलते फैलते राजा नारायणदास के कानों तक पहुंची जिसे सुन बूंदीराज को भी बड़ा हर्ष हुआ और इस अलभ्य लाभ के लिये वे उत्कंठित हुए। राणा जी ने सोचा कि बिना प्रयास के अनायास जब आप ही ऐसा सम्बन्ध आता है तो इसमें आगा पीछा या बिलम्ब क्यों करें। ऐसा विचार सहर्ष अपने अभिप्राय को बूंदीराज से कह शुभ विवाह की वे आयोजना करने लगे। एक तो विजय का उत्सव हो ही रहा था, दूसरे बिवाह का उत्सव प्रारम्भ हो गया। बाहर भीतर आनन्द बधावा बजने लगा। शुभ दिन शुभ मुहूर्त्त में पाणिग्रहण हुआ। कई दिनों तक चितौड़ में आनन्द छाया रहा और कुछ दिन के उपरान्त शुभ घड़ी में राजा नारायणदास अपनी नव बिवाहिता को बिदा करा, निज राजधानी को चले। इधर कहां तो राज्य और राजमहल में सब लोग चिन्तित हो रहे थे, कहां नव दुलहिन को निरख बड़े आनन्दिन हुए। राजा और रानी में परस्पर बड़ी ही प्रीति हुई। कुछ दिन के उपरान्त रानी गर्भवती हुई और यथा समय एक परम रूपवती कन्या उसने प्रसव की। दिनों दिन यह कन्या दूज के चाँदसी बढ़ने लगी। जैसा इसका शारीरिक सौन्दर्य्य था वैसेही इसका शील स्वभाव भी बड़ा ही सुन्दर था। राजा नारायण दास के एक पुत्र जिसका नाम सूजा और एक कन्या सूजा बाई थी। इन दोनो भाई बहिन में बड़ा ही हार्दिक स्नेह था।

काल पाके सन् १५३४ ई० में राजा नारायणदास का शरीरान्त हुआ और उनके पुत्र सूजा, अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता की गद्दी पर बैठे। पिता के ऐसे सब गुण से चाहे राजा सूजा अलंकृत न थे, पर तौभी शारीरिक और मानसिक उनमें भी वैसे ही गुण थे। एक बेर भी जो उनसे मिला वही उन पर अनुरक्त हुआ है। उस समय के प्रायः सब ही राजाओं की उनसे प्रीति थी। इतिहासों में राजा सूजा की सुन्दरता और वीरता का बहुत कुछ वर्णन है। परन्तु बड़े ही खेदकी बात है कि उनके अन्तरङ्गी मित्रों और उनकी प्रजा को उनकी परिणाम-गति पर बड़ा ही दुःख हुआ था। सदा चित्त से वे चाहते थे कि अपने अन्तरङ्गी लोगों तथा प्रजा को सब प्रकार से सुखी करें परन्तु हा दैव! कराल काल ने इच्छा पूरी न होने दी? उसका अमूल्य जीवन अभी पूरा लिखने भी न पाया था कि अकाल ही में वे कठोर काल के गाल में जा पड़े। और साथ ही देवबाला सी रूपगुणवती, निरपराधिनी सूजा बाई की दुर्लभ सौन्दर्य्य-राशि चिता पर भस्म की ढेर हो गई।

पिता की बातों को स्मरण कर, राजा सूजा ने चितोड़-राजवंश वालों से वैसा ही बर्ताव बनाए रखना चाहा जैसा उनके पिता का था। उस समय के चितोड़ के राजा रतन सिंह की बहिन से उन्होंने विवाह किया और पल्टे में अपनी प्यारी भग्नी परम रूपगुण-शालिनी सूजा बाई को रतन सिंह को ब्याह दिया, पहिले तो ये दोनो दम्पति बड़े सुख बिलास से दिन बिताने लगे। सूजा बाई के रूप और गुण से मुग्ध हो राणा रतन अपने को भाग्यवान मान बड़े सुख से रहने लगे, परन्तु हाय यह कौन जानता था कि यह अमृत मय प्रेम हला-हल हो जायगा? यह किसी को स्वप्न में भी अनुमान नहीं हुआ था कि यह सुख थोड़े ही दिनों का है। हास्यरस राशि का हास्यप्रिय स्वभाव ही उसे घोर दुख में डुबोवेगा और इस सुखमय नाटक को महादुःखान्त बना डालेगा। और यह प्यारी ठठोलबाजी चिता रूप हो दग्ध करेगी।

एक समय राजा सूजा स्नेह बस अपनी बहिन बहनोई से मिलने चितौड़ आए। भाई को पा मारे आनन्द के सूजाबाई गद गद होगई। और राजा प्रजा सभी के चित्त में आनन्द उमग उठा। एक दिन बड़े चाव से सूजाबाई ने अपने हाथ से भांति भांति की रसोंई बनाई और भाई तथा पति के साथ ही बैठा अपने हाथ से परोस, आप विजन डुलाने लगी। इधर साले बहनोई भी हंसते बोलते एक एक वस्तु की प्रशंसा कर कर भोजन करते रहे। उपहास कर राणा जी ने कहा, देखिए महाराज! आप की बहिन ने आप के लिये कितना परिश्रम किया है और कैसे प्रेम से जिमा रही है। यह सुन भाई बहिन मुस्करा के चुपके हो रहे बहुत देर तक हंसते बोलते बात चीत करते ज्योनार होती रही, परन्तु उन लोगों को यह न मालूम था कि यही अन्त सुख का दिन है और अन्त की हंसी हंस रहे हैं।

भोजन समाप्ति ही पर था कि उपहास से सूजा बाई ने कहा "भइया ने तो वीरों के ऐसा सिंहवत भोजन किया और महाराणा जी ने तो मानो लड़के सा खिलवाड़ किया!" प्रायः हंसी में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं। कभी कोई इस पर ध्यान भी नहीं देता, परन्तु होनी जो चाहे सो करे। सूजा बाई के कहने की राणा जी के हृदय में बड़ी चोट लगी। देखते देखते उनके मुंह का ढङ्ग बदल गया हितका अहित होगया। क्रोध भरे लाल लाल नेत्रों को तरेर के राणा ने सूजाबाई की ओर देखा और साथ ही बहनोई की ओर भी नैन फेरे।

राणा के रङ्ग को बदला देख सूजा ने कहा-राणा जी मैंने सूधे चित्त से कहा है, आप इस कहने का बुरा न माने, इसका बचपन से हंसने का स्वभाव है, विना हैं आगा पीछा विचारे अल्लहड़पन से हंसी कर बैठती है। आप इस पर क्षमा करो। इसी प्रकार मीठी मीठी बातों से राणा को बहुत कुछ ठण्डा किया। निदान राणा का उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध शान्त हुआ। दिखाने को तो क्रोध शान्त हुआ परन्तु चित्त में जो क्रोधाग्नि का संचार हुआ था वह न बुझी। राजा सूजा वहां जब तक रहे तब तक महाराणा से पूर्ववत हँसना बोलना तो रहा परन्तु जी से राणी जी की उस बात की चोट न मिटी। मन ही मन राणा प्रतिज्ञा करते रहे कि जब तक अपने हाथों इस सिंह का सिर न काटूंगा तब तक जी ठंढा न होगा।

अनुतप्त भ्रातृस्नेह-मयी सूजाबाई अकेले में यह कह कह रोती और पछताती थी कि हाय क्यों मैं ऐसी हंसी करने गई। जो मैं ऐसा जानती तो क्यों ऐसा कह राणा जी का जी दुखाती। कह कह रोया करती क्योंकि राणा जी के क्रूर स्वभाव को वह जानती थी। बूंदीराज के एक मात्र अवलम्ब अपने माता पिता के कुल के दीपक प्राण से प्यारे भाई सूजा के अमंगल की आशङ्का कर कर बार बार पछताती और अपने को कोटि कोटि धिक्कार देती थी। यों ही कई दिन बीतने पर राजा सूजा बहिन बहनोई से हंसी खुसी बिदा हो अपने घर बूंदी आए और सूजाबाई को अपने भाई की निज राजधानी में सुख से पहुंचने की ख़बर मिलने पर जी को धीरज हुआ। इधर राणा जी से वैसा ही हेल मेल रहा जैसा पहिले था। काल पा के सूजाबाई अपने कहे को भूल गई। और सुख से रहने लगी। पर कुटिल राणा ऊपर से तो भूल सा गया था परन्तु भीतर ही भीतर वह आग सुलगा करती थी।

समय पाके शीतऋतु का अवसान और ऋतुराज का आगमन हुआ, प्रकृतिने नवीन साज से अपना शृङ्गार सजा और अनेक प्रकार के फल और पुष्पों से बन उपवन शोभायमान हुए, मधुर पञ्चम सुर से कोकिल काकली रव कर बिरही जन को विकल करने लगीं और मंजरित आम्रवृक्षों की डालियां अपने को सुफल मान झुकने लगीं। तात्पर्य्य यह कि जिधर देखो उधर ही प्रकृति की अभिनव शोभा जन-मन मुग्ध कर रही थी। ऐसे सुहावने समय में राजपूताने के बीरगण प्रायः आखेट का उत्सव मनाया करते थे और इसी मिस से वन पर्वतों पर प्रकृति की अभिनव शोभा का आनन्द लेते थे।

ऐसे समय में राणा रतनसिंह ने राजा सूजा को पत्र लिखा कि बसन्तोत्सव उपस्थित है यदि आपका उत्साह हो तो हम लोग कुछ दिन वनों में मृगया का आनन्द लें। और बूंदीराज के बिख्यात अरण्य में इस अभिलाषा को पूर्ण करें। पाती को बांचते ही उदारबुद्धि सरलस्वभाव राजा सूजा ने बड़े हर्ष से राणा रतनसिंह को लिख भेजा कि यदि महाराज कृपा करके यहां पधारें तो मैं अपने को धन्य मानूंगा।

बूंदीराज के अधिकार में चम्बल नदी के पश्चिम तट पर ऊंचे पहाड़ों पर बहु दूर व्यापी महा अरण्य-श्रेणी राजाओं के आखेट खेलने के लिये निर्दिष्ट थी। उन वनों में भांति भांति के भयानक हिंस्र जीवजन्तुओं की कमी न थी। झुण्ड के झुण्ड महा भयानक हिंस्रक जीवों से ले नाना जाति के बिचित्र सुन्दर मृगी मृगा और खरहा आदि पशु निर्भय आनन्द से विचरा करते थे और निर्भय हो मन माना किलोल करते थे। आखेट-प्रिय राजपूत बीरगण उन्हीं जङ्गलों में जा निर्भय चित्त हो ढूंढ़ ढूंढ़ के आखेट खेलते और आनन्दित होते थे। सिंह, शार्दूल, भल्लूक, बराह, महिष, प्रभृति भयदायी जीवों को कभी अस्त्र और कभी केवल बाहुबल से बिनाश कर अपनी बीरता दिखाते थे।

यथा समय दोनों महाराजे अपनी अपनी सेनाओं के साथ आखेट खेलने चले और एक उपयुक्त स्थान में दोनो ने डेरा डाला। बड़े आनन्द, स्नेह और उत्साह से एक ही डेरे में साले बहनोई ने भोजन कर आनन्द से रजनी बिताई और भोर होने के पहले ही दोनो निद्रा से उठ, हाथ मुंह धो, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो, अपने अपने घोड़ों पर चढ़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ थोड़े से अंगरक्षक सवारों और वनरखों को साथ ले, वन में धँसे। उधर और लोग भी अपने मनमाने पथ से वन में धँसे। जिन वनों में कभी मनुष्य का नाम भी न था वहां आज मनुष्यों की भीड़ घिरी हुई है कि जिन्हें देख निश्चन्त निर्द्वन्द वनबिहारी जीवजन्तु अपने अपने प्राणभय से भीत हो भयानक शब्द करते इधर उधर भागे फिरते थे। तात्पर्य्य यह कि उस शान्तिमय वनस्थली में महाकोलाहल होने लगा। जो जिधर जिस जीव को पाता था उन्हें काटता मारता बेधता था, इधर दोनो राजे भी अपनी रूचि के अनुसार चल निकले। जब आखेट प्रारम्भ हुआ तब किसी को किसी की सुध न रही सभी अपने अपने शिकार के लक्ष्य में लीन हुए। इधर राजा सूजा राणा रतनसिंह और उनका एक साथी अपने दल से बिलगाय एक सघन बन में जा निकले। उस समय पापी क्रूर, कुटिल, दुर्बुद्धि राणा ने चिल्ला के अपने साथी से कहा—"लो न बड़ा शिकार, यही तो औसर है, क्यों चूकते हो?" ऐसा कहते हुए राणा ने अपना विषाक्त तीर सूजाराज पर चला ही दिया, राजा सूजा पूर्व शब्द सुनते ही चौकन्ने हो ज्योंही अपने को उस तीर से बचा चकित हो कुछ कहा ही चाहते थे कि चट दूसरे तीर ने उन्हें बेध ही दिया, तब उन्हें निश्चय होगया कि पामर दुराचारी कुटिल चक्रों के चक्र में पड़, आज इस विजन बन में प्राण जानाही अपने भाग्य में वदा है कि जिस समय कोई भी अपना हितू अपने पास नहीं है। दूसरा तीर ऐसे मर्म स्थान में लगा था कि राजा सूजा घोड़े पर से धड़ाम से गिर पड़े। रक्त की धार बह चली, मारे व्यथा के परम विकल और व्यथित होगए और मारे व्यथा के एक भी शब्द मुँह से न निकला, कुछ मूर्छा सी आगई। मूहूर्त एक में चैतन्य हुआ, उस समय नयन उघार देखा तो उस अन्त काल में अपने को धूल और रक्त में लपटा पड़ा पाया, आगे पीछे कोई भी अपना न दिखाई दिया, कुछ दूर पर घोड़े पर जाता अपना बहनोई दिखाई दिया, उसे देखतेही रक्तमय पीड़ा से व्यथित शरीर में क्रोध की अग्नि सी धधक उठी चाहा कि उठ खड़े हों पर शक्ति कहां थी, तो ललकार के कहा—अरे क्षत्रिय-कुल-कलङ्क, कहां भागा जाता है इधर आ। इस ललकार को सुन ही राणा लौटा और पास जाके उनके चाहा कि इस अन्तिम दीपशिखा को भी बुझादें, परन्तु जो वह पास आया कि वीर सूजा ने उसकी टंगड़ी पकड़ ऐसा झटका दिया कि चट वह घोड़े से नीचे आपड़ा और साथ ही सूजा ने एक हाथ ऐसा तरवार का मारा कि रतन भी वहां समाप्त होगया, मुँह से शब्द भी न निकलने पाया था कि प्राण पखेरू निकल भागा, इधर सूजा का प्राण भी देह त्याग परलोक को सिधारा।

कहां तो ये दोनों महाराजे वन में हँसते खेलते आखेट खेलने आए थे और कहां औचक कालवली ने मन बुद्धि के अगोचर एक ऐसा खेल खेला कि दोनों राज्य के चमकते हुए प्रदीप को बुझा दिया। जब इस हृदय-विदारिणी अनहोनी घटना का समाचार लश्कर में पहुंचा तो चारों ओर हाहाकार का तुमुल शब्द उस वन प्रदेश में गूंज उठा, रोते पीटते उस स्थान में आ दोनों मृत देहों को ले जिस समय राजधानी में पहुंचे हैं, उस समय बूँदी में करुणा रस का घोर समुद्र सा चारों ओर से उमड़ आया था, उस समय का दृश्य ऐसा करूणोत्पादक था कि जिसे देख सुन पत्थर का कलेजा भी तड़क जाता था। औरों की तो जो गति थी सो तो थी ही, परन्तु अति सुकुमारी परम दुलारी वे अबलाएं कि जिन्होंने आजन्म सिवाय सुख के दुख की परछाँई भी न देखी थी, आज उन दोनों ननद भौजाइयों पर एक साथही ऐसा अकथनीय असहय घोर दुःख का बादल आ टूटा था कि जिसके बोझ से चकित चित्र सी होगईं। हा! सूजाबाई को उस दिन की रसोई और अपनी वही बात का स्मरण आतेही अनगिनत काल सर्पों के डसने की सी ज्वाल-माला दग्ध करने लगी। उस समय न उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रोते बनता था न ससकते; बड़ी ही व्याकुल और विकल हो रही थी। किसका साहस था कि उन अबलाओं को धैर्य्य दिलाने में एक शब्द भी मुँह से निकालता, अन्तः दोनों अबलाओं ने चिता पर अपने अपने पति को गोद में देखतेले सबके देखते, अति सुकुमार देहों को भस्म में परिणत कर दिखाया। और चिरकाल के लिये अपनी अखण्ड कीर्त्ति वे इस भारतीय इतिहास में छोड़ गईं। धन्य भारत भूमि और धन्य यहां की ललनाएँ।

—बा० कार्तिकप्रसाद

आत्मा

१—आत्मा का लक्षण तर्कसंग्रह में इस प्रकार लिखा है—

ज्ञानाधिकरणमात्मा।

अर्थात् जिसमें ज्ञान रहता है उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा दो प्रकार का है। एक परमात्मा, दूसरा जीवात्मा। जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न भिन्न है, व्यापक है और नित्य है। परमात्मा सर्वज्ञ है और एक ही है। परमात्मा अर्थात् परमेश्वर का लक्षण पातञ्जल योगसूत्रों में विशेष प्रकार से निर्धारित किया गया है; अतः उसे हम, यहां उद्धृत करते हैं—

क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।

प्रथम पाद—सूत्र २४—२५।

अर्थात्, क्लेश, कर्म्म, कर्म्म के फल और संस्कारों का सम्बन्ध जिसमें नहीं, वह जीव से भिन्न ईश्वर है। उस परमेश्वर में निरतिशय ज्ञान का बीज है। इन सूत्रों पर व्यास जी ने जो भाष्य किया है उसमें लिखा है कि, अविद्यादि को क्लेश, पाप पुण्य को कर्म, कर्म्म के फल को विपाक, एवं फलानुसार वासना को आशय कहते हैं। जैसे संग्राम में जय अथवा पराजय योद्धाओं में होती है, परन्तु आरोपित राजा में की जाती है, वैसे ही आशय यद्यपि मन में होते हैं तथापि जीव में आरोपित किए जाते हैं; क्योंकि जीव ही उनके फल का भोक्ता है। एतादृश क्लेशादिकों से जो सम्बन्ध नहीं रखता वह जीव से पृथक् परमेश्वर है। ज्ञानात्मकता के विषय में व्यास जी कहते हैं कि भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालिक ज्ञान यद्यपि अतीन्द्रिय है; तथापि प्राणि मात्र उसको मन से अवश्यमेव ग्रहण करते हैं, चाहै स्वल्प, चाहै अधिक। यही ज्ञान प्रवर्द्धित होकर जिसमें सीमा की पराकाष्ठा को पहुँच जावे वही ज्ञानमय सर्वज्ञ ईश्वर है।

२—इस निबन्ध में हम जीवात्मा ही के विषय में लिखा चाहते हैं; परमात्मा के विषय में नहीं। इत उत्तर जीवात्मा को हम आत्मा के नाम से उल्लेख करेंगे।

३—हमारे प्राचीन दार्शनिक ऋषियों ने आत्मा को द्रव्य माना है। वैशेषिक सूत्रों में नव द्रव्य परिगणित किए गए हैं; यथा—पृथिवी, जल, तेज, वायु, अकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन।

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

अ. १ आ. १ सू. ५।

अर्थात् जिसमें क्रिया और गुण विद्यमान् हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। परन्तु हमारे परमोन्नतिशील अङ्गरेज़ लोगों की धर्म्मपुस्तक के अनुसार आत्मा श्वासोच्छ्वासवत् एक प्रकार का वायु * मात्र है; उसके स्थायित्व का कोई ठिकाना नहीं। जन्म के समय वह वायु नासिका द्वारा शरीर में प्रवेश करता है, और मरण के समय उसी प्रकार किसी छिद्र से बहिर्गत होकर वायुमण्डल में मिल जाता है।

*. And the Lord God formed the man of the dust of the ground, and breathed into his nostrils the breath of life, and man became a living soul. Genises 11-7.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४--चार्लस ब्राडला इत्यादि जो घोर निरीश्वरवादी हो गए हैं, उनके मत में आत्मा कोई वस्तु नहीं; अतएव वह कोई पृथक् द्रव्य नहीं माना जा सकता। इनके मत में * प्राणप्रद, जलप्रद, वातप्रद तथा कोयला जिसके अन्तर्गत रहता है-एतादृश रसायन शास्त्रोक्त चार प्रकार के वायु के संयोग से मनुष्य में चेतनाशक्ति उत्पन्न होती है और इन्हीं-के मिश्रण में व्याघात होने से वह जाती रहती है। परन्तु डाक्टर निकलसन ने पश्वादि † प्राणि सम्बन्धीय विद्याविषयक अपनी एक पुस्तक में लिखा है, कि उन्होंने एक ऐसा छोटा प्राणी देखा है, जिसका आकार चेतनोत्पादक ‡ रस से कुछ ही अधिक होता है, और यद्यपि उसके शरीर में पाचन-क्रिया-कारी कोई अवयव नहीं होते, तथापि उसके भक्ष्य का पाक उतनी ही सुकरता से होता है जितनी सुकरता से सब अवयवों से युक्त अन्य बड़े बड़े प्राणियों का होता है। डाक्टर निकलसन के अनुसार यह कहना ठीक नहीं है, कि शरीर की रचना और आवश्यक अवयवों की घटना सामान्य शारीरिक नियमों से होने ही के कारण उपरोक्त पदार्थों के मेल से चेतनोत्पादक रस उत्पन्न होता है और प्राणियों को जीवित रखता है; क्योंकि आमाशय, हृत्प्रदेश और श्वासोच्छ्वासोपयोगी नासिकादि अवयवों के न होने पर भी यह रस स्वयमेव एकत्र हुआ देखा गया है और केवल जीवित दशा ही में नहीं किन्तु मरणानन्तर भी यह उसी दशा में पाया जाता है।

इससे यह व्यक्त होता है, कि वह रस जिसे ये लोग चेतनाजनक कहते हैं, यथार्थ में प्राण-प्रद नहीं है; क्योंकि प्राणोत्क्रमण के अनन्तर भी उसे देख यही बोध होता है, कि उसमें किसी वस्तु की न्यूनता अवश्य हो जाती है, जिसके कारण उस रस के स्थित रहते भी शरीर निश्चे हो जाता है और प्राणी पञ्चत्व को प्राप्त हो जाता है। उस वस्तु को यह विज्ञान शिरोमणि अपने विज्ञान द्वारा कब जान सकेंगे, यह कौन कह सकता है? परन्तु, हां, हम अपने परम पूज्य ऋषियों के जाज्वल्यमान वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रताप से उस अज्ञान वस्तु को सहस्रशः वर्षों से "आत्मा" के नाम से अभिहित कर रहे हैं।

५—फिर क्या, आत्मा के अस्तित्व की साक्षी निरीश्वरवादी पाश्चात्यों ही के देशवासी विद्वान् नहीं देते? शारीरिक शास्त्र के तत्वों के खोज में जिन्होंने निरतिशय परिश्रम किया है उन प्रतिष्ठित विद्वानों के सिद्धान्तानुसार प्राणिमात्र के शरीर में एक ऐसी अद्भुत् शक्ति है जो स्वभाव ही से अपने को रक्षित रखने में तत्पर रहती है। वैद्यक विद्या के पारदर्शी डाक्टर भी इसकी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि जीवधारियों में एक ऐसी रोग-हारक शक्ति है जो रोगियों को निरोग करके उन्हें उनकी पूर्व स्थिति को पहुंचाने में सदैव प्रस्तुत रहती है और उसीके कारण सारे रोग नाश को प्राप्त होते हैं; औषधोपचार केवल गौण साधन समझना चाहिए। यह कथन सर्वतोभाव से सत्य जान पड़ता है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो भूमण्डल के समस्त अवाक् पशु औषधोपचार के बिना किसी प्रकार रोग-मुक्त न होते और निरुपाय होकर क्षुद्राति क्षुद्र रोगों के निवारणार्थ हम लोगों को, उन्हें भी, अनेकानेक कल्क, क्वाथ, वटिका, रसादि सेवन कराना पड़ते। इस रोग-हारक स्वयंभू शक्ति को डाक्टर लोग अपने अपने बुद्धि वैभवानुसार चित्र विचित्र नाम रखते हैं; परन्तु हमलोग उसे वही द्विवर्णात्मक "आत्मा" कह कर पुकारते हैं।

६—आत्मा में क्रिया और गुण होने के कारण आर्यावर्त के दर्शनशास्त्र-वेत्ताओं ने उसे द्रव्य माना है और लिखा है—

* Oxygen, Hydrogen, Nitrogen and Carbon.
† Manual of Zoology, 6th Ed., page 7.
‡ Protoplasm.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता,
मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः ।

प्रश्नोपनिषत् ।

अर्थात् ज्ञानमय आत्मा ही को पुरुष कहते हैं। वह आत्मा ही है जो देखता है, स्पर्श करता है, सुनता है, घ्राण लेता है, आस्वादन करता है, मनन करता है, जानता है और (समस्त कार्य कलाप) करता है। परन्तु ज्ञान-निष्ठ द्रव्य-लक्षण-लक्षित आत्मा को अध्यात्म-विद्या-विशारद कोई कोई पाश्चात्य विद्वान् नहीं मानते; और यदि मानते भी हैं तो उसे निराकार एवं कल्पित और अतात्विक मानते हैं। इस प्रकार का मानना न मानने ही के बराबर है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता; तथापि उसे चेतनाशक्तियुक्त तत्व मानना ही पड़ता है।

७–जिस प्रकार दर्पण तथा अन्य साकार भौतिक पदार्थों का संयोग होने से दर्पण में उन पदार्थों का प्रतिबिम्ब देख पड़ने लगता है; अथवा जैसे मोम के पत्र के ऊपर शिलालेख के अक्षर तद्वत् अंकित हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा में सारे भौतिक पदार्थों का ज्ञानात्मक चित्र चित्रित हो जाता है। यदि आत्मा को सत्य नहीं मानते तो एतादृशी घटना कदापि सम्भव नहीं हो सकती; क्योंकि जो यथार्थ में है ही नहीं, उस वस्तु में अन्य वस्तुओं की छाया पड़ना अथवा उनके स्वरूप का प्रतिफलन होना किसी प्रकार युक्ति-सम्मत नहीं; निराकार और कल्पित पदार्थों में साकार पदार्थों का चित्र खचित होते किसीने नहीं देखा। दर्पण चाहे कितना ही सूक्ष्म और मोम का पात्र कितना ही पतला तन्तुमय क्यों न हो, तथापि होना उनका अत्यावश्यक है, क्योंकि बिना उनकी स्थिति के पदार्थों का प्रतिबिम्बित और अंकित होना सर्वथैव असम्भव है। अतएव आत्मा की सत्यता में शंका नहीं हो सकती।

८–अध्यात्म विद्या के वेत्ता योरोपीय विद्वान् कहते हैं, कि जागतिक पदार्थों का प्रथम ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों को होता है, फिर मन को होता है और अनन्तर आत्मा को होता है, यदि आत्मा भी यथार्थ में कोई वस्तु है। एतादृशी कल्पना करने से ज्ञानेन्द्रियां और मन दोनों को साकार मानना पड़ता है, क्योंकि आकार रहित वस्तुओं में आकार सहित जड़ात्मक भौतिक पदार्थ कदापि अंकित नहीं हो सकते। फिर मन एक अदृश्य निराकार अन्तरिन्द्रिय है, उसमें कहिए किस प्रकार साकार पदार्थों का रूप निरूपित हो सकता है? यही दशा दूसरी ज्ञानेन्द्रियों की भी है, जो सर्वतोभाव से निराकार हैं। इन्द्रियों से हमारा अभिप्राय दृग्गोचर शरीर के चक्षुरादि अवयवों से नहीं; किन्तु जिन्हें नेत्रों से देख नहीं सकते, ऐसी स्पर्श, श्रवण, दर्शनादि, ज्ञानात्मक शक्तियों से है। अतः ये निराकार इन्द्रियां भी साकार भौतिक पदार्थों का स्वतन्त्रतया ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकतीं। एक उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए, हमारा व्यायाम करने का समय है। इच्छा करते ही हमारे हस्तद्वय नीचे की ओर बढ़ते हैं, और बीस बीस सेर के मुद्गल उठा कर लीलाक्रम से उन्हें हिलाना आरम्भ करते हैं। अब यदि आत्मा को निराकार, कल्पनामय और शून्य मानते हैं, तो, कहिए, इस साकार जड़ात्मक मन भर के भार का उठाना कैसे सम्भव है? यदि कहिए हस्त द्वारा; तो हस्तद्वय को किसने उठाया? यदि कहिए मस्तिष्क में स्थित ज्ञानतन्तुओं के प्रवाह ने; तो फिर वही प्रश्न उद्भूत होता है कि उस प्रवाह को किसने प्रवाहित किया? अतएव जब तक आत्मा को तत्व न मानोगे और समस्त शारीरिक व्यापारों का कर्त्ता उसे न स्थिर करोगे तब तक इस प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा नहीं मिल सकता।

९–आत्मा के अतिरिक्त मनुष्य तीन भागों में विभक्त है:–शरीर, इन्द्रिय और मन। अब हमको इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की परीक्षा करनी है, कि इन तीनों में से किसीमें आत्मा की अति व्याप्ति तो नहीं होती; अर्थात् आत्मा का लक्षण जो ज्ञानात्मकता है वह इनमें पाई जाती है अथवा नहीं।

१०—प्रथम शरीर की परीक्षा करेंगे। गौतम मुनि ने अपने न्यायदर्शन में शरीर का यह लक्षण लिखा है—

चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।

अध्याय १, सूत्र ११।

अर्थात् चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थ इनके आश्रय को शरीर कहते हैं। चेष्टा से चलन वलन आदि सारे कार्यकलाप; इन्द्रिय से पंच ज्ञानेन्द्रिय; अर्थ से ज्ञानेन्द्रियद्वारा पदार्थों के संयोग वियोग का ज्ञान और तज्जनित सुख दुःखादि समझने चाहिए। जैसे मृत्तिका से घर बनता है, वैसे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पांच तत्वों के मेल से शरीर बनता है। यह नियम * है कि जो जिस वस्तु से बनता है उसका गुण उसमें न्यूनाधिक भाव में अवश्य रहता है। यदि शरीर को सचेतन और सज्ञान मानते हैं तो इन पांच पदार्थों को भी तद्वत् मानना पड़ता है, क्योंकि यह नहीं हो सकता कि कार्य में जो वस्तु देख पड़े वह कारण में न पाई जावे। परन्तु पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश को कभी किसीने सचेतन और सज्ञान देखा है? कभी नहीं। अतएव चेतनत्व और ज्ञानात्मकत्व शरीर का नहीं है, किन्तु अन्य किसी वस्तु का धर्म है और जिसका वह धर्म है उसीको आत्मा कहते हैं। यदि शरीर का धर्म होता तो जब तक उसका लोप न हो जाता तब तक तद्धर्म्म का भी लोप न होना चाहिए था; क्योंकि धर्म्मी और धर्म्म का यही स्वभाव है; परन्तु मरणान्तर शरीर पूर्ववत् बना रहते भी ज्ञान का अभाव हो जाता है, इसलिए यह सिद्ध हुआ कि पञ्चभूतात्मक शरीर ज्ञानवान् नहीं; अतः आत्मा का उससे पृथक् होना प्रमाणित है।

११—शरीर के अनन्तर इन्द्रियों का विचार करना है। "घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः" इस न्याय सूत्र के प्रथमाध्यायोक्त १२वें सूत्रानुसार ज्ञानेन्द्रियाँ पांच हैं—नासिका, रसना, नेत्र, त्वचा और श्रोत्र, ये ज्ञानेन्द्रियां "पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति भूतानि" इस तेरहवें सूत्रानुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चभूतों से उत्पन्न हुई हैं। घ्राण लेना, आस्वादन करना, देखना, स्पर्श करना और सुनना यह इन पंचेन्द्रियों के यथाक्रम पांच विषय हैं। इन्द्रियों से हमारा अभिप्राय शरीर के नेत्रादि अवयवों से नहीं किन्तु उन अवयवों में देखने, सुनने, स्पर्श करने, सूंघने और आस्वादन करने की शक्ति जिनमें है, ऐसे आन्तरिक अदृश्य इन्द्रियों से है। ये इन्द्रियां आत्मा को इस पांच प्रकार के ज्ञान का साक्षात्कार करा देने की साधक हैं; परन्तु देह के उन उन अवयवों से पृथक् हैं। यह सुन कर आश्चर्य्य न करना चाहिए क्योंकि कभी कभी यह देखा गया है, कि कान का आकार नष्ट होजाने पर भी श्रवण-शक्ति में व्यत्यय नहीं आता; और नेत्र के आकार में विशेष परिवर्तन न होने पर भी आलोक शक्ति जाती रहती है। रातको बहुतेरे मनुष्यों को कुछ भी नहीं देख पड़ता। यह ज्ञानेन्द्रियों के पृथक् होने का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यही दशा अपरेन्द्रियों की भी समझना चाहिए। फिर, सुषुप्ति में, जब शरीर के समस्त अवयव निश्चेष्ट होजाते हैं, उस समय भी मनुष्य स्वप्नावस्था को प्राप्त होकर नाना प्रकार के दृश्य देखता है; नाना प्रकार के सुगंधित पुष्पों का सुवास लेता है; नाना प्रकार के मनोहर वाक्य सुनता है; और नाना प्रकार के मधुर, कटु, तिक्त आदि रसों का आस्वादन भी करता है। यदि ये इन्द्रियां दृग्गोचर अवयवों से भिन्न न होतीं तो सुषुप्ति में

* कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः—वैशेषिक सूत्र अ०२, आह्निक१, सूत्र २४; अर्थात् कारण में जो गुण होता है वही कार्य में भी देखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्र से कुछ न देख पड़ता, कर्ण से कुछ न सुन पड़ता, और हस्त द्वारा स्पर्श करने से कुछ भी ज्ञान न होता। इन इन्द्रियों में ज्ञानात्मकता नहीं है। ज्ञानात्मकता आत्मा ही में है। आत्मा इनके द्वारा बहिर्विषयों का ज्ञान मात्र प्राप्त करता है; परन्तु स्वयं इन्द्रियों में किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता। विद्युद्यन्त्र की बैटरी और तार में जो सम्बन्ध है, वही आत्मा और इन्द्रियों में भी है। जैसे विद्युच्छक्ति तार में नहीं, किन्तु बैटरी में गुप्त रीति से विद्यमान् रहती है और तार द्वारा प्रवाहित होकर, अपेक्षित स्थान को जाकर पुनरपि उसी बैटरी में प्रविष्ट होजाती है, वैसे ही ज्ञान आत्मा में विद्यमान् रहता है और इन्द्रियों के द्वारा भौतिक पदार्थों से संयोग करके पूर्ववत् आत्मा में लीन होजाता है। इन्द्रियों को चेतन और सज्ञान नहीं मान सकते; क्योंकि लोक में अनुभव करते हैं, कि रूप का देखनेवाला रस और गन्ध का अनुमान कर-सकता है; ऐसे ही रस का जानने वाला रूप और गन्ध का अनुमान करसकता है। किसी खट्टे पदार्थ को देखते ही मुख से पानी टपकने लगता है; अतः यदि सब इन्द्रियों का परिचालक एक न होता तो यह व्यापार कदापि सम्भव न था; क्योंकि नेत्र से देखे गए पदार्थ का ज्ञान रसना को होना नैसर्गिक नियमों के विरुद्ध है। जो जिसे देखे अथवा सुनेगा उसका प्रत्यभिज्ञान उसीको होगा; अन्य को नहीं। जिस फल को हमने प्रथम देखा और आस्वादन किया है उसको द्वितीय वार देखते ही आस्वादन किए बिना उसके पूर्व रस का स्मरण हो आना स्मृति का स्वभाव है। यह स्मृति आत्मा का धर्म्म है, जिससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियां स्वतन्त्र ज्ञानवान् नहीं हैं; किन्तु आत्मा को जागतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराने को साधन मात्र हैं। एक इन्द्रिय द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान यदि एक वार भी होजाता है तो कालान्तर में उस वस्तु का संयोग अन्येन्द्रिय द्वारा होने से भी प्रथम ज्ञान का तत्काल स्मरण आत्मा को होता है; इसी-से यह व्यक्त है कि, इन समग्र इन्द्रियों का परि-चालक आत्मा है। जो पदार्थ हमने नेत्र द्वारा देखा था उसे हाथ से स्पर्श करते हैं और जिसे स्पर्शे-न्द्रिय द्वारा स्पर्श किया था उसे नेत्र से देखते हैं। इस प्रकार का ज्ञान एक विषयक और एक कर्त्तृक है; न तो इसका कर्त्ता देह है और न इन्द्रिय; अतएव नेत्र और त्वगिन्द्रिय से एकही विषय का जो अनुभव करनेवाला है वह देह और इन्द्रिय से भिन्न आत्मा है। इन्द्रियों से आत्मा के भिन्न होने का सबसे बड़ा प्रमाण एक यह है कि, इन्द्रियों के नष्ट हो जाने से तद्द्वारा प्राप्त किया गया पूर्वज्ञान नष्ट नहीं होता। अन्धे होजाने अथवा नेत्रों को समूल निकाल लेने से भी रूप रंग आदि का किया हुआ पूर्वज्ञान यथावत् बना रहता है; जिसका फलितार्थ यह निकलता है कि, इन्द्रियां ज्ञान की केवल साधक हैं; ज्ञाता कोई अन्य ही है।

१२–इन्द्रियों की परीक्षा के अनन्तर अब मन के परिक्षण की बारी है। गौतम मुनि ने अपने न्याय सूत्रों में लिखा है—

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।

अध्याय १, सूत्र १६।

अर्थात् अनेक ज्ञानों की एक साथही उपपत्ति न होने से जान पड़ता है, कि ज्ञानेन्द्रियों के अति-रिक्त ज्ञानसाधन का और भी कोई कारण है। घ्राण आदि इन्द्रियों का गन्धादि-अपने अपने विषयों के साथ सम्बन्ध रहते भी एक समयावच्छेद करके उन उन विषयों का ज्ञान आत्मा को नहीं होता; क्योंकि इन्द्रियों का सम्बन्धीय एक दूसरा सहकारी कारण है, जिसका संयोग होने से ज्ञान होता है और जिसका संयोग न होने से ज्ञान नहीं होता है। इस सहकारी कारण ही को मन कहते हैं। मन के संयोग की अपेक्षा न करके केवल इन्द्रिय और विषय के संयोग ही को ज्ञान का कारण मानें तो एक साथ अनेक ज्ञान होने चाहिएं; परन्तु यह अनुभव के विरुद्ध है; क्योंकि एक ही साथ चाहे नेत्र

112842

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से देखते, कान से सुनते और त्वचा से स्पर्श करते रहें; परन्तु इन तीनों क्रियाओं को करते समय जिस इन्द्रिय के साथ मन का संयोग होगा उसी इन्द्रियजन्य ज्ञान का आत्मा को अनुभव होगा। जिस समय नेत्र द्वारा अपने किसी प्रियजन की प्रतिकृति को अवलोकन करने में कोई तल्लीन हो-जाता है, उस समय सिर के ऊपर यदि कर्णभेदक दुंदुभी भी बजाकरें तो सुनाई नहीं पड़ता। इस-का यही कारण है, कि मन नेत्रेन्द्रिय युक्त होजाने से कर्णेन्द्रिय के कार्यों का उसे कोई समाचार नहीं मिलता और इसीलिये आत्मा को कर्ण से सन्निकृष्ट विषयों का ज्ञान भी नहीं होता। आत्मा और इन्द्रियों के मध्य में मन तार का सा कार्य्य करता है। आत्मा उसे जिस इन्द्रिय से संयुक्त कर देता है उसीके कृतविषयों का उसको साक्षात्कार होता है; और जिससे वह उसे संयुक्त नहीं करता, वह चाहे विषयों से कितना ही सन्निकर्ष करे, तथापि आत्मा को तज्जनित ज्ञान नहीं होता। मन के होने का एक और प्रमाण यह है कि, स्मृति आदि विषय, जिनका किसी इन्द्रिय से संयोग नहीं, वे केवल मन के द्वारा जाने जाते हैं। यदि मन न होता तो पूर्वकृत कार्यों का स्मरण किस प्रकार होता? मन अन्तरिन्द्रिय है; आत्मा उसके द्वारा विषयों का मनन करता है। यह कार्य अन्येन्द्रियों द्वारा नहीं होसकता। सुख, दुःख, स्मरणादि का ज्ञान केवल मन से होता है; अतएव उसे एक पृथक् इन्द्रिय मानना ही पड़ता है। जब मन का इन्द्रिय होना सिद्ध होगया, तब उसे सचेतन और सज्ञान कदापि नहीं कह सकते; क्योंकि, इन्द्रियों का चालक कोई अन्यही होना चाहिए; इन्द्रियां स्वयमेव बिना किसी प्रेरक के किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकतीं। यदि मन में ज्ञानात्मकता होती तो अनेक विषयों का ज्ञान उसे एक बार ही होजाता; परन्तु यह अनुभव के सर्वथैव विरुद्ध है; तस्मात् शरीर, इन्द्रिय और मन के अतिरिक्त समस्त विषयों के ज्ञाता आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है।

१३—आत्मा का होना तो सिद्ध हुआ परन्तु उसके न देख पड़ने से उसके अस्तित्व में यदि शंका की जावे तो एतादृशी शुष्क शंका का समाधान सहज ही में हो सकता है। गौतम मुनि अपने न्याय सूत्रों में लिखते हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखादिज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

अध्याय १, सूत्र १०।

अर्थात् इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःखादि का ज्ञान आत्मा का लिङ्ग अर्थात् चिन्ह है। अभिलषित वस्तु के देखने से आनन्द होता है, जिससे जान पड़ता है कि आनन्द का अनुभव करनेवाला शरीर में कोई अवश्य है। इसी भांति द्वेष, प्रयत्नादि के विषय में भी जानना चाहिए; परन्तु यदि यह कोई अच्छा समाधान न समझा जावे, तो हमारा यह प्रश्न है कि इस विस्तृत विश्व में समस्त वस्तुओं का ज्ञान क्या नेत्रेन्द्रिय से होना सम्भव है। ऐसे थोड़े ही पदार्थ हैं जिन्हें नेत्र से देख सकते हैं। अनुमान से जिनका ज्ञान होता है, ऐसेही अधिक हैं। यह देखने में आता है कि जितने अद्भुत अद्भुत विज्ञान हैं उनके कारण सदैव गुप्त रहते हैं, नेत्र से नहीं देखे जासकते; परन्तु ऐसा होने से क्या कोई उनके अस्तित्व में शंका करता है? पृथ्वी की आकर्षणशक्ति को लीजिए। वालुका की छोटी से छोटी कणा को लेकर सूर्यमण्डल तक सारे पदार्थ इस आकर्षण नियम से नियमित हैं। इसीके कारण ग्रह, नक्षत्र और राशियां अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करती हैं; इसीके कारण ग्रहण पड़ता है और इसीके कारण ऋतुओं में भी परिवर्तन होता है। किंबहुना अल्प से अल्प भी पदार्थ इस शक्ति के नियमों से बहिर्भूत नहीं हैं; परन्तु हम पूछते हैं कि, इस अद्भुत और जगद्व्यापिनी शक्ति को क्या किसी ने देखा है? किसी ने नहीं। फिर जब इसका अस्तित्व स्वीकार है तो हमारे आत्मा ने क्या अपराध किया? न्यूटन * महाराज के ऊपर

* पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को आर्य्यभट्ट, वराहमिहिर आदि हमारे पूर्वाचार्य पहले ही से जानते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इतना विश्वास, कि उनका वचन वज्रलेख समझ लिया गया; और हमारे ऋषियों के ऊपर इतना अविश्वास, कि नाना प्रकार से आत्मा की सिद्धि करके समझाने पर भी शंका !

दूसरा उदाहरण विद्युत् का लीजिए। जितने जागतिक पदार्थ हैं सबमें यह न्यूनाधिक भावसे व्याप्त रहती है और घर्षण तथा अन्य रसायनिक प्रयोग द्वारा प्रबुद्ध किए जाने पर वह अपना भीषण प्रभाव प्रकट करती है। जिस समय तारयन्त्र पर नियमित रीति के अनुसार आघात किया जाता है तत्क्षणात् विद्युत् की अदृश्य धारा शतशः और सहस्रशः मील तक फैले हुए तार से होती हुई इच्छित स्थान पर पहुंच जाती है; और वहां पर पहुंच कर, यन्त्र में सूइयों को दाहिनी बाईं ओर वेग से हिलाती है; चुम्बक में प्रवेश करके कर्णभेदक शब्द करती है; घण्टी बजाती है और नाना प्रकार के वाक्य पेन्सिल अथवा स्याही से काग़ज़ के ऊपर लिख तक देती है। इतनी आश्चर्य कारक घटनाएं तो अवश्य देख पड़ती हैं; परन्तु घटनाओं का कारण विद्युद्देवी फिर भी दृष्टि गोचर नहीं होती। तो क्या इससे विद्युत् के अस्तित्व में शङ्का की जा सकती है ? कदापि नहीं। तड़ियन्त्र की वार्ता तो कुछ सूक्ष्म भी है; अब तो रेल भी तड़ित् द्वारा चलाई जाने लगी है, और घर घर में नेत्र प्रतिघातकारी दीपक भी तड़ित् ही के जलने लगे हैं। इन सब उदाहरणों से व्यक्त होता है, कि अनेक पदार्थों का आदि कारण अदृश्य रहता है। उसका अस्तित्व उसके अद्भुत अद्भुत कार्यों ही से अनुमान किया जाता है। यही दशा आत्मा की भी है। अति सूक्ष्म होने के कारण वह यद्यपि दृष्टि से नहीं देखा जा सकता; तथापि इन्द्रियों के व्यापारादि और सुख दुःखादि के अनुभव से उसका अस्तित्व भली भांति प्रमाणित होता है।

१४–इस प्रस्ताव के आदि में आत्मा का जो लक्षण लिखा गया है उसके अनुसार आत्मा नित्य है, अर्थात् जनन के प्राक् भी वह था और मरण के अनन्तर भी वह रहेगा। इससे यह ध्वनितार्थ निकलता है कि आत्मा अविनाशी है। अतएव आत्मा का अस्तित्व प्रतिपादन कर के अब उसके नित्यत्व के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है।

१५–संसार में जो कुछ परस्पर विरोधी है, उसकी उत्पति सदैव अपने विरोधी से होती है। यह सर्वव्यापक सिद्धान्त है। विरोधी वस्तुओं अथवा गुणों से हमारा अभिप्राय पाप पुण्य, मलिन उज्वल, उच्च नीच, कटु मिष्टादिवत् जितने युग्म हैं, उनसे है। उदाहरणार्थ जब हम कहते हैं, कि अमुक पदार्थ अधिक होगया तब यह सूचित होता है कि वह पहले न्यून था और पश्चात् न्यून से अधिक हुआ। अधिक और न्यून परस्पर विरोधी हैं। अतः जैसे न्यून में कुछ मिला देने से वह अधिक होजाता है वैसेही अधिक से कुछ खींच लेने से वह न्यून होजाता है। इसी भांति अशक्त बलवान् से और बलवान् अशक्त से, उच्च नीच से और नीच उच्च से, तथाच वेगगामी मन्दगामी से और मन्दगामी वेगगामी से उत्पन्न होता है। जितने परस्पर विरोधी युग्म हैं उनके अङ्गद्वय के मध्य दो प्रकार की उत्पादकशक्तियां स्थित रहती हैं जो पहिले से दूसरे और दूसरे से पुनः पहिले में पाई जाती हैं। दीर्घ और ह्रस्व के मध्य वृद्धि और ह्रास स्थित हैं; इसीलिये हम कहते हैं, कि एक वृद्धि को और दूसरा ह्रास को प्राप्त होता है। इन उदाहरणों से प्रमाणित है, कि विरोधी अपने ही विरोधी से उत्पन्न होता है, और दो विरोधियों के मध्य परस्पर उत्पादकता का सदैव सम्बन्ध रहता है। इस सिद्धान्तानुसार जैसे सुषुप्ति का विरोधी जागरण है वैसेही जीवन का विरोधी मरण है। सुषुप्ति और जागरण इन दोनों में दो प्रकार की उत्पादक शक्तियां हैं, अर्थात् सुषुप्ति से जागरण की और जागरण से सुषुप्ति की उत्पत्ति होती है; यह नहीं कि कोई मनुष्य सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होकर जाग्रत न होवै, और जाग्रत होकर फिर कभी निद्रित न होवै। इसी प्रणाली द्वारा जीवन और मरण में स्पष्ट विरोध होने के कारण यह कहने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई आपत्ति नहीं, कि मरण से जीवन और जीवन से पुनरपि मरण की उत्पत्ति होती है; अर्थात् जो कुछ जीवित है सब मृत से उत्पन्न हुआ है और जो कुछ मृत हो चुका सब जीवित ही से मृत्यु को पहुंचा है। आत्मा की स्थिति ही जीवन और आत्मा का शरीर त्यागही मृत्यु है; अतः उपरोक्त उदाहरण के अनुसार उसका नित्यत्व सिद्ध है। यह नहीं हो सकता कि और सारे विरोधी युग्मों को तो परस्पर एक दूसरे से उत्पत्ति हो; परन्तु मृत और जीवित की न हो। नैसर्गिक नियम सदृश व्यापक होते हैं, उनमें अपवादकता सम्भव नहीं। जीवन और मरण जिनसे आत्मा ही का प्रादुर्भाव और लोप समझा जाता है, वे परस्पर एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं। जब यह सिद्ध होगया तब आत्मा की अविनाशकता पृथक् सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती। यदि आत्मा को श्वासोच्छ्वासवत् तरल और विनाशवान् पदार्थ मानते हैं और यह शङ्का करते हैं कि एक बार मृत्यु को प्राप्त होने से उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है तो यह भी साथ ही मानना पड़ता है कि जो कुछ इस जगत् में है किसी समय सभी मृत्यु को प्राप्त हो जावैगा; जीवित का नाम भी शेष न रहैगा; क्योंकि, यदि मृत देहस्थ आत्मा का पुनर्जन्म न मान कर प्रति वार प्रति आत्मा की किसी अन्य पदार्थ से उत्पत्ति स्थिर करते हैं, तो वह सब अन्य पदार्थ अवश्यमेव कालान्तर में नष्ट होकर इस विस्तृत विश्व को शून्यमय कर देवैंगे। किं बहुना, स्वयं यह विश्व ही यदि आत्मा में परिणत होकर एक दिन विनष्ट हो जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। परन्तु यह नितान्त निर्मूलक कल्पना है। ईश्वरीय नियमों में त्रुटि नहीं होती; अतः आत्मा को नित्य अर्थात् अविनाशी मानना ही चाहिए।

१६—ग्रीस देश में साक्रेटिस नाम का एक महान् तत्ववेत्ता हो गया है। आत्मा के नित्यत्व-विषय में जो प्रमाण हमने ऊपर दिया वह उसीके सिद्धान्तों के अनुसार है। हमारे देशवासी दर्शनशास्त्र के आचार्यों ने भी आत्मा का नित्यत्व अनेक प्रकार से सिद्ध किया है। उनके कहने का संक्षिप्त सारांश यह है, कि उत्पन्न हुए बालक को इस जन्म के अज्ञात हर्ष, भय और शोक के कारणों से हर्ष, भय और शोक होते देख पड़ता है। ये विकार स्मरण की परम्परा से होते हैं; अन्यथा नहीं। स्मरण की परम्परा प्रथमाभ्यास के बिना नहीं हो सकती; और प्रथमाभ्यास पूर्व जन्म के बिना नहीं हो सकता जिससे यह सिद्ध है, कि शरीर के विनाश होने पर भी आत्मा रहता है और पुनर्वार जन्म लेता है। यदि ऐसा न मानोगे तो अत्यल्प बालकों को होने वाले हर्षादि विकारों का और क्या कारण कहोगे? जैसे पञ्चभूतात्मक पद्मादि पुष्पों का प्रफुल्लित और मुकुलित होना आदि विकार उष्ण, शीत और वर्षा कालादि कारणों से होते हैं, वैसे ही बालक में व्याप्त आत्मा को हर्ष शोकादि विकारों का कारण प्रथम जन्म में अभ्यास के स्मरण की परम्परा ही है; दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार सद्योजात बालक अथवा बछड़े को उत्पन्न होते ही दूध पीने के लिये व्यग्र देखकर प्रथम जन्माभ्यस्त भोजन में प्रवृत्ति प्रकट होती है, क्योंकि यह सदैव अनुभव किया जाता है, कि आहार के अभ्यास से उत्पन्न स्मृति के योग से बुभुक्षित प्राणियों को भोजन की इच्छा होती है; और पूर्व शरीर के बिना यह इच्छा तत्काल उत्पन्न हुए जीव को नहीं हो सकती। इससे अनुमान होता है, कि यह जीव पहिले किसी शरीर में स्थित था और उस शरीर में इसने भोजन का अभ्यास किया था। अब यह प्रथम शरीर को परित्याग करके दूसरे शरीर में आया है और बुभुक्षा से क्लेशित होकर पूर्वाभ्यस्त आहार के स्मरण से दुग्ध पान की इच्छा करता है; अतः यह प्रमाणसिद्ध है कि देह के ध्वंस होजाने से आत्मा का ध्वंस नहीं होता।

आत्मा के नित्यत्व का एक और भी प्रमाण यह है कि वेदान्त, सांख्यादि शास्त्रोक्त आत्मवचनानुसार वीतराग पुरुष का जन्म नहीं होता। केवल सराग अर्थात् ऐसे जीव जिन्हें सांसारिक विषयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बद्ध कर रक्खा है वही पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। पूर्व जन्म में अनुभव किए गए विषयों की चिन्ता ही राग का मूल कारण है और विषयों की चिन्तना, पूर्वजन्म में, बिना शरीर के हो नहीं सकती; अतएव यह स्पष्ट है कि आत्मा प्रथम शरीर में भोगे हुए विषयों का स्मरण करता हुआ उनमें आसक्त होता है। इसी भांति प्रथम शरीर का उसके पहले शरीर के साथ और वैसे ही उसका उसके पहले शरीर के साथ सम्बन्ध जान लेना चाहिए। जीव का शरीर के साथ अनादि सम्बन्ध होने और राग की परम्परा भी अनादि होने से इस प्रकार भी आत्मा का नित्यत्व सिद्ध है।

उपरोक्त आशय, हमने, गौतम-न्यायसूत्रों के भाष्य से उद्धृत किया है। सूत्र ये हैं—

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः
पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत्तद्विकारः।
नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्।
प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।
वीतरागजन्मादर्शनात्।

अध्याय ३ सूत्र १९, २०, २१, २२, २५।

१७—आत्मा के लक्षण में यह कहा गया है कि वह व्यापक है। अतएव उसके व्यापकत्व की भी संक्षिप्त समालोचना करके इस प्रस्ताव को हम पूर्ण करते हैं। संसार में जितने पदार्थ हैं सूक्ष्मतया विचार करने से उन सबका तत्व एक ही जान पड़ता है। जितने घट देखने में आते हैं, चाहे छोटे चाहे बड़े, सबका मूल तत्व मृत्तिका है। उसी प्रकार सुवर्ण के जितने आभूषण हैं, चाहे वे आकार में कैसे ही हों और चाहे वे कितने ही नामों से अभिहित किए जाते हों, मूल तत्व उनका सुवर्ण है। इससे स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न आकार और संज्ञा को प्राप्त होने से पदार्थों के आदि तत्व में भिन्नत्व नहीं आता। सुवर्ण वस्तु नेत्र से देखते हैं और उसके आकार को जब चाहें बिगाड़ सकते हैं। लम्बे को चौड़ा और चौड़े को लम्बा बनाने में कोई कठिनता नहीं पड़ती। यहां तक कि उसे गलाकर जलवत् तरल और भाफ भी कर डालते हैं; परन्तु तिसपर भी उसका अत्यन्ताभाव नहीं होता; जिससे यह विदित होता है, कि सुवर्ण का मूल तत्व गुप्त है। वह एक ऐसा तत्व है कि किसी प्रकार उसका नाश नहीं होता; सुवर्ण को चाहे तुम जिस रूप रङ्ग का कर डालो, उसके विद्यमान् रहने से सुवर्ण का अभाव नहीं होने पाता। यह आदितत्व आत्मा ही है। जैसे प्राणियों में आत्मा के स्थित रहने ही से शरीर की वृद्धि, ह्रास और अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं वैसे ही भौतिक पदार्थों के विषय में भी समझना चाहिए। यदि उनमें आत्मातत्व न रहता तो उनकी स्थिति किसी प्रकार सम्भव न थी। जिस तत्व के कारण सुवर्ण सदृश जड़ात्मक पदार्थों के भी रूप रङ्गादि का ज्ञान लोगों को होता है, वह अवश्यमेव ज्ञानवान् होगा; क्योंकि जो स्वयं ज्ञान नहीं रखता वह औरों को ज्ञान का कारण कैसे हो सकेगा? ज्ञानात्मकता ही आत्मा का लक्षण है; जिसे, विचार पूर्वक देखने से, वालुका की कणा से लेकर प्रकाण्ड सूर्यमण्डल तक सभी पदार्थों में पाते हैं; अतएव आत्मा को व्यापक कहना प्रमाण-सङ्गत अंगीकार करना चाहिए।

१८—सुवर्णादि पदार्थों में भी जब उनका सत्व रूप होकर आत्मा व्याप्त है तब मनुष्य में उसके व्यापकत्व का विश्वास न करना महीयसी मूर्खता है। प्राणिमात्र में व्याप्त आत्मा के अस्तित्व का निरूपण ऊपर हो चुका है; तथापि यहां भी प्रसंगानुसार हम पुनर्वार इतना अवश्य कहना चाहते हैं, कि प्रति शरीर में देह, देहावयव और इन्द्रियादि से भिन्न, चेतन सरूप, विज्ञानमय, आत्मा का निवास है; और वह अपने अस्तित्व को "हम" इस शब्द से सूचित करता है। "हमारी देह", "हमारा हाथ", "हमारी पैर", "हमारा मुख" और "हमारा मन" इत्यादि वाक्यों से प्रमाणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है कि देह, हाथ, पैर, मुख और मन को अपना कहने वाला उनसे भिन्न और कोई है; क्योंकि यह बात व्यवहार सिद्ध है कि जिसके ऊपर जिसका स्वत्व रहता है वह सदैव उससे पृथक् होता है; यह नहीं, कि यदि हम कहें कि "हमारी लेखनी", तो लेखनी से हमारा ही ज्ञान हो; नहीं, लेखनी से भिन्न उसके स्वामी "हम" पृथक् ही हैं। फिर, जब मनुष्य शयन करता है तब आत्मा और इन्द्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सुषुप्ति अवस्था में शरीर व्यापारशून्य हो जाता है और अहम्भाव का ज्ञान भी जाता रहता है; तथापि "हम" जिसे संस्कृत में "अहम्" कहते हैं, वह फिर भी जागृत रहता है और मनुष्यों के जगने पर उस "हम" का शरीर के साथ संयोग होते ही तुरन्त यह स्मरण हो आता है कि "आज हम सुख से सोए"। यदि यह "हम" शरीरादि से पृथक् व्यापक और ज्ञानमय न होता तो एतादृश स्मरण भी कभी न होता; क्योंकि यह सम्भव नहीं कि कार्य का कर्त्ता एक हो और क्रिया-जन्य स्मरण दूसरे को हो। निद्रितावस्था में भी वह 'हम" पूर्ववत् प्रबुद्ध रहता है। यह "हम" ही आत्मा है। ज्योतिःस्वरूप होने के कारण यह आत्मा सोते, जागते, सदैव, अशेष कार्य कलाप का साक्षी समझा जाता है। प्रति शरीर में व्याप्त आत्मा उस अद्वितीय और सर्वज्ञ परमात्मा ही का अंश है। अविद्या से बद्ध होने के कारण आत्मा को कर्म्मजन्य फल भोग करना पड़ता है; परन्तु परमात्मा को नहीं; यही उसमें और परमात्मा में अन्तर है। स्वभावतः आत्मा, परमात्मा के समान निर्विकार, चैतन्य और ज्ञानमय है। शङ्कराचार्य जी भी यही कहते हैं—

प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः
सदसदिति विशेषं भासयन्निर्विशेषः।
विलसति परमात्मा जागृदादिष्ववस्था-
स्वहमहमिति साक्षात् साक्षिरूपेण बुद्धेः॥

विवेकचूड़ामणि।

अर्थात् प्रकृति के विकार से भिन्न, शुद्ध-बोध-स्वभाव, निर्विशेष, परमात्मा सत् और असत् के भेद को बताता हुआ तथैव जागृदादि अवस्था में "अहं" "अहं" इस प्रकार बुद्धि का साक्षात् साक्षिरूप होता हुआ घट घट में विद्यमान है।

रत्नावली

[महाकवि श्रीहर्ष रचित नाटिका की आख्यायिका

(१)

कौशाम्बी नगरी में आज मदनोत्सव की धूम धाम मची हुई है। बसन्त ऋतु के आने से नगर-निवासी जन बड़े उमङ्ग के संग कामदेव की पूजा की तैयारी कर रहे हैं। ऐसे समय कौशाम्बी के अधिपति महाराज उदयन (बत्सराज) भी अपने मित्र बसन्तक के साथ राज-प्रासाद के सबसे ऊँची छत पर बैठे हुए नगर निवासियों के उत्साह और कुतूहल को देख रहे हैं। बीच बीच में हँसोड़ बसन्तक भी अपनी बेतुकी बातों से महाराज को हँसाता और आप भी हँसता जाता है। उसी समय अन्तःपुर से महारानी बासवदत्ता की भेजी हुई मदनिका और चूतकलिका नाम की दो परिचारिकाओं ने आ, हाथ जोड़ और सिर झुका कर निवेदन किया कि, "महाराज! श्रीमहारानी जी ने हम दोनों को श्रीमहाराज के पास भेजा है और आज्ञा की है—(रुक कर और लज्जा से आंखें नीची करके) और प्रार्थना की है कि 'आज हम मकरन्दोद्यान में रक्त अशोक के नीचे भगवान कामदेव की पूजा करेंगी, सो महाराज भी वहां अवश्य पधारें'।

बसन्तक—"क्योंरी ढीठ! महारानी ने महाराज को आज्ञा की है!"

महाराज—"हां हां! इस मदनमहोत्सव में प्रार्थना करने के बदले महारानी का आज्ञा करना ही अधिक शोभा पाता है। (दासियों से) महारानी से कह देना कि हम अभी मकरन्दोद्यान और इस बसन्तोत्सव के योग्य वेश बना कर वहां आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सुन, दोनों परिचारिकाएं सिर झुका कर चली गईं और महाराज भी बसन्तक का हाथ पकड़े हुए गहने कपड़े पहिरने के लिये अपने रत्नागार की ओर चले।

(२)

इधर महारानी बासवदत्ता मकरन्द उद्यान में जाकर, लाल अशोक के नीचे कामदेव की मूर्त्ति स्थापन करके पूजा की तैयारी करने लगीं। और सागरिका, कांचनमाला तथा और भी अनेक परिचारिकाएं पूजा की सामग्री सँजोने लगीं। इतने में महारानी ने न जाने क्या सोच कर, सागरिका की ओर देखकर कहा, "प्रिय सखी, सागरिका! आज सब जनी तो मदन-महोत्सव में लगी हुई हैं और महल में सारिका का पिञ्जरा योंही पड़ा है, कहीं ऐसा न हो कि अकेलापाकर वह सारिका पिञ्जरे में से उड़ जाय। इसलिये तू जल्दी से वहीं जा और सारिका की रखवाली कर।"

इतना सुनते ही सागरिका ने अपने हाथ की पूजा की सामग्री कांचनमाला को दे दी और "बहुत अच्छा" कह कर मन में यों सोचती हुई महल की ओर बढ़ी कि, 'सारिका की रखवाली का भार तो मैं अपनी प्रिय सखी सुसंगता को दे ही आई हूं, यह बात महारानी भी जानती हैं, फिर क्यों जान बूझ कर इन्होंने मुझे यहां से खदेड़ा! अच्छा! अब मैं इन्हीं लताओं की ओट से छिपकर देखूंगी कि मेरे पिता के यहां जिस रीति से कामदेव की पूजा होती है वैसी ही यहां भी होती है या दूसरी बिधि से"। यह सोच कर सागरिका महल में न जाकर लताओं के एक झुरमुट में सब-की आंख बचा कर छिप गई और वहीं से मदन-महोत्सव का आनन्द लेने लगी।

यह सागरिका कौन है, कहां से आई है, किसकी लड़की है, ये बातें कोई नहीं जानता। पर महारानी बासवदत्ता की परिचारिकाओं में से इतना तो सभी जानती हैं, कि 'कुछ दिनों से कहीं से आकर सागरिका महारानी बासवदत्ता की सहेली बनकर रहती है" यद्यपि सागरिका अपना परिचय किसीको नहीं देती और जो कोई उसके सच्चे परिचय पाने के लिये बहुत हठ करता है, तो वह एक लम्बी सांस लेकर चुप हो जाया करती या दूसरी बात छेड़कर बात उड़ा देती है; पर तौभी वह बड़ी ही सुशीला और अद्वितीय सुन्दरी है। यद्यपि वह बासवदत्ता की सखी है पर सच तो यों है कि उसके रूप रङ्ग के आगे महारानी बासवदत्ता को भी अपना सिर झुकाना पड़ता है; और वह भी सागरिका के ठीक ठीक परिचय को न जानकर भी अपने मन में यही निश्चय करती हैं कि "हो न हो सागरिका भी किसी बड़े राज घराने की लड़की होगी"। यही सब सोच समझ कर और सागरिका की अतुल रूपराशि देख कर महारानी बासवदत्ता उसे बराबर अपनी आंखों के आगे रखती हैं और इस बात की भी पूरी चौकसी रखती हैं कि किसी प्रकार से भी यह महाराज की आंखों तले न पड़ने पावै। बस, इन बातों से यही निश्चय होता है कि आज भी महारानी ने सागरिका को इसीलिये मकरन्द उद्यान से टाल दिया है कि जिसमें महाराज इसे न देखलें।

(३)

इधर तो महारानी बासवदत्ता ने रक्त अशोक के नीचे कामदेव की मूर्त्ति स्थापित की, और उधर अपने सखा बसन्तक को साथ लिए महाराज उदयन भी मकरन्द उद्यान में पधारे। महाराज को देख बासवदत्ता ने उठ कर उन्हें आसन दिया और उनके बैठने पर उनकी आज्ञा लेकर कामदेव की पूजा प्रारम्भ की। इधर लता ओट में से लाल अशोक के नीचे बिराजमान महाराज को देख कर सागरिका ऐसी मोहित हुई कि थोड़ी देर तक उसे अपनी सुधि न रही; फिर जब उसे चेत हुआ तो वह राजा को देखकर मन ही मन यों कहने लगी, "अरे, यह क्या! यह तो कोई अपूर्व काम-देव हैं! अहा! पिता के घर तो केवल इनका चित्र ही देखती थी, पर यहां तो ये (अनङ्ग) अङ्ग धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके विराजमान हैं। अच्छा मैं भी यहीं से इन्हें पुष्पाञ्जलि दूं"। इतना मन ही मन सोच और अञ्जलि में फूल भर कर वह कहने लगी, "हे भगवन्, अनङ्ग! आज आपने अङ्ग धारण करके मुझे दर्शन दे कृतार्थ किया। मैं जन्म की दुखिया हूं, इसलिये आपसे यही बिनती करती हूं कि आपका दर्शन मेरे लिये शुभदायक हो; बस, इससे अधिक और मेरी कोई अभिलाषा नहीं है, क्योंकि जब मैंने आपके दुर्लभ दर्शन पाए तो फिर मुझे अब और क्या चाहिए?" इतना कहकर सागरिका ने, जहां खड़ी थी वहीं से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर प्रणाम किया और मन में कहा कि भला, जब तक पूजा हो रही है, तब तक तो इन्हें मन भर कर देखलूं; फिर ये दर्शन दुर्लभ हो जायंगे"। यों सोच कर वह जब तक महारानी वासवदत्ता पूजा करती रहीं, लता ओट से खड़ी खड़ी देखती रही, और जब पूजा समाप्त होने पर आई तो धीरे धीरे सबकी आंख बचा कर महल की ओर चली।

सागरिका ज्यों ही चली थी कि कुछ सुन कर ठठकी। उसने सुना और फिर कर लता ओट से देखा कि महारानी वासवदत्ता महाराज को मदनमहोत्सव की बधाई दे रही हैं और महाराज उनकी बधाई को हर्ष से ले रहे हैं। यह कौतुक देख कर सागरिका चौंकी और मन में कहने लगी "अरे यह क्या! जिन्हें मैं अब तक अङ्गधारी अनङ्ग समझे हुई थी, वे महाराज उदयन हैं? ऐं! क्या इन्हींके लिये पिता ने मुझे यहां भेजा था? हाय, दुर्भाग्य ने कैसा चौका लगाया; अस्तु, इतने पर भी, पराधीनता के ताप से कुम्हलाने पर भी मेरा हृदय इन्हें देख कर कमल सा खिल गया! फिर भी मैं बड़ी अभागिन हूं कि मनोरथ तो दूर रहा, मन भर कर महाराज को देख भी न सकी।" यह कह और सबको जाते देख कर आप भी धीरे धीरे दबे पांव वहां से चल दी। इधर महाराज तथा महारानी भी अपने अपने मार्ग से गए। केवल रक्त अशोक के नीचे फूलों का ढेर मात्र उद्यान की शोभा बढ़ाने के लिये रह गया।

(४)

यद्यपि सागरिका को उसके सुशील स्वभाव के कारण सभी चाहते थे, पर सुसंगता नाम की परिचारिका से उसका बड़ा स्नेह था और सुसंगता भी उसे अपनी सहोदरा भगिनी की भांति चाहती थी; और सच तो यों है कि सागरिका का इस राजभवन में यदि कोई सच्चा हितू था तो केवल सुसंगता ही थी। इन दोनों में कोई बात छिपी नहीं रहती थी और दोनों का मन मिल कर एक हो गया था। इसीसे बराबर एक दूसरे की भलाई और सहायता करती थीं। यही कारण है कि जब कामदेव की पूजा करके महारानी बासवदत्ता अपनी परिचारिकाओं के साथ मकरन्द उद्यान से लौटीं और उनके साथ सागरिका को न देखा तो सुसंगता घबड़ाई और मन में सोचने लगी कि 'सागरिका कहाँ रह गई'! किन्तु जब उसने कांचनमाला नाम की परिचारिका से सुना कि 'महारानी ने सागरिका को उद्यान में जाते ही महल में भेज दिया था' तब सुसंगता चुप चाप बिना किसीसे कुछ कहे सुने मकरन्द उद्यान की ओर सागरिका को खोजने चली। मार्ग में उसकी भेंट सागरिका से हुई। तब सुसंगता ने सागरिका से पूछा कि, "तुझे तो महारानी ने उद्यान से पहुंचते ही महल में लौट आने के लिये कहा था, फिर तू अब तक कहां थी? देख! वे सब पूजा करके घर भी गईं और तू अभी तक यहीं भटक रही है। क्या मार्ग भूल गई, या भांग पी ली है? मैं तुझे देख कर घबड़ाई हुई तुझे ढूंढ़ने को निकली। ऐं! आज तुझे क्या होगया जो पगली की तरह झूम रही है, बोलती भी नहीं"।

सागरिका को सुसंगता प्राण से बढ़ कर चाहती थी, इसीलिये उसने इतनी बातें सागरिका को कह सुनाईं। पर आज तो सागरिका अपने में न थी, इसलिये उसने केवल इतना ही कह कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना पल्ला छुड़ाया कि "सखी! न जाने क्यों मेरा जी मिचला रहा है, सिर घूम रहा है, रह रह कर घुमटा सा आजाता है; मैं तो यहीं बेसुध पड़ी थी। अब कुछ जी सम्हला तो महल को चली आती हूं। पर तू महारानी से कुछ न कहिओ"।

यद्यपि आज सागरिका ने सुसंगता से बिलकुल झूठ कहा और अपने भेद को भी छिपाया, पर उसने सब सच जाना और हाथ थाम कर सागरिका को अन्तःपुर में लेजाकर पलङ्ग पर लिटा दिया।

दूसरे दिन मध्यान्ह के समय जब फिर सागरिका बिना कहे सुने कहीं खसक दी तो सुसंगता घबड़ाई और उसे खोजने चली। मार्ग में निपुणिका दासी के मुँह उसने सुना कि "सागरिका घबड़ाई हुई चित्र लिखने का डब्बा लिए हुए अभी कदली-कुञ्ज की ओर गई है"। यह सुन कर सुसंगता भी उसी ओर चली और कदली-कुञ्ज में जाकर क्या देखती है कि सागरिका एक हाथ में चित्र पट और दूसरे हाथ में वर्त्तिका लिए और आगे रङ्गों का डिब्बा खोले बैठी हुई आप ही आप लम्बी लम्बी उसाँसें लेती और बीच बीच में कुछ बकती झकती चित्र लिख रही है। उसकी ऐसी दशा देख सुसंगता उसके पीछे चुप चाप खड़ी होगई और उसके सारे कुतूहल को ध्यान देकर देखने लगी। पर सागरिका को सुसंगता के आने की तनिक भी आहट न मिली और वह उनमनी सी होकर आपही आप बकने लगी, "हायरे, अमाने मन! तनिक धीरज धर; अरे मूर्ख! जिस वस्तु का पाना दुर्लभ है, उसके लिये क्यों इतनाम चल रहा है? रे मूढ़! अब भी समझ, नहीं तो जन्म भर इस ठंढी आग में जलने और भांति भांति के कष्ट उठाने के और कुछ भी हाथ नहीं आवेगा। हाय! जिसे एक बार देखने से तू इस दशा को पहुंचा, उसीको फिर देखने के लिये ललच रहा है! अरे दुष्ट! जन्म से मेरे साथ रह कर आज तू मुझे छोड़ कर उस व्यक्ति के पास दौड़ता है जिसे तेरी कुछ भी टोह नहीं है। हाय रे निर्लज्ज! तुझे तनिक लज्जा भी नहीं आती। अरे! जो कहीं उसने भी तुझे निरादर करके दूर कर दिया, जिसके लिये तू मुझे छोड़ रहा है, तो सोच तो, मूर्ख! फिर तू किसका होकर कहां रहेगा! पर इसमें तेरा कुछ दोष नहीं है, निश्चय तू कामबाण से घायल हो मुझे छोड़ कर भागता है; तो अच्छा! मैं कामदेव ही को क्यों न कोसूं? भगवान् मन्मथ! तुम त्रैलोक्य-विजयी होकर बिचारी अबलाओं पर बाण चलाते हो? धिक्कार है तुम्हारी इस निर्लज्जता पर! परन्तु तुम्हे लज्जा क्यों आने लगी? तुमतो अनङ्ग ठहरे; लज्जा तो उसे न होती है, कि जो अङ्गवाला हो! जब अङ्ग ही नहीं तो लज्जा कहां! अच्छा, तो लो! शिवद्रोह की ज्वाला से भस्म होकर अब निरपराधिनी अबलाओं को भस्म करो!!! हाय!" इतना कहते कहते सागरिका लम्बी लम्बी उसांसें लेने और चित्र लिखने लगी। और जब चित्र पूरा होने पर आया तब फिर आप ही आप कहने लगी, "चित्र लिखने में न जाने क्यों यद्यपि मेरा हाथ कांप रहा है तौभी मैंने एक प्रकार से अपने हृदय-बल्लभ का अपने मनमानता चित्र बनाही लिया। तो अब इसी चित्रही को मन भर कर देखूं और अपने उमड़ते हुए मनको धीरज दूं। क्योंकि अब सिवाय इसके और दूसरा उपाय ही क्या है?"

सागरिका के पीछे खड़ी हुई सुसंगता अपनी प्रिय सखी के सब कौतुक देखती और उसकी अनहोनी बातें सुन रही थी। सुसंगता ने सागरिका के लिखे हुए चित्र को देख कर मन में कहा, "प्यारी, सखी, सागरिका! तू धन्य है, और क्यों न होगी? भला! राज-हंसिनी मान-सरोवर को त्याग कर क्या गढ़ेले में कभी रह सकती है?"

सामने चित्र रक्खे हुए सागरिका फिर आपही आप कहने लगी, "हाय! इन निगोड़ी आंखों के उमड़ने के कारण चित्र बनाकर भी इसे मन भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नहीं देख सकती !" इतना कह कर ज्योंही उसने आंसू पोछने के लिये सिर ऊँचा किया त्योंही सुसंगता को खड़ी देख कर चिहुंक उठी और डरके मारे जल्दी से अपने आंचल के भीतर चित्र छिपाने लगी। फिर बोली, "प्यारी सखी, सुसंगता ! तू यहां कहां ? अच्छा आ, बैठ"। सुसंगता बैठते बैठते सागरिका के हाथ से बर जोरी चित्र छीन कर बोली, "प्यारी, सागरिका ! तैने यह किसका चित्र खैंचा है ?" सागरिका ने बात बना कर कहा "इस मदन-महोत्सव में केवल उसी देवता (कामदेव) का जिससे इस उत्सव से पूरा सम्बन्ध है।"

सागरिका ने हँसकर कहा, "सच है, और तेरी चतुराई पर मैं निछावर हूं। परन्तु सखी ! बिना रति के यह कामदेव का चित्र केवल सूनाही नहीं, वरन् फीका भी लगता है; इसलिये, ला, कूर्चिका मुझे दे, मैं इस (कामदेव) की जोड़ी मिला दूं"। यह कह कर सुसंगता सागरिका के हाथ से बरजोरी वर्त्तिका लेकर उस चित्र में उसी (सागरिका) की छवि लिखने लगी। सुसंगता के इस रङ्ग ढङ्ग को देखकर सागरिका ने बनावटी क्रोध से कहा, "क्योंरी, सुसंगता ! तूने इस चित्रपट पर मेरा चित्र क्यों बनाया ?"।

सुसंगता ने हँसकर कहा, "सखी ! तू व्यर्थ मुझपर कोप दिखलाती है। तूने जैसा कामदेव का चित्र लिखा, मैंने रति का भी वैसा ही चित्र खैंच दिया; इसमें चिढ़ने या नाक भौं सिकोड़ने की कौनसी बात हुई, जो तू इतनी बिगड़ उठी ?"

सुसंगता की परिहासमय बातों को सुनकर सागरिका ने मन में समझ लिया कि "मेरे मन के भाव को या प्रीति की छिपी आग को सुसंगता जान गई, तो अब इससे क्यों छिपाऊं ?" यों सोचकर उसने कहा, "सखी ! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है; देख, ऐसा न हो कि इस भेद को दूसरा जानले और मुझे फिर मुंह दिखाने की भी संसार में ठौर न रहै।"

सुसंगता बोली, "प्यारी इसमें लज्जा किस बात की है ? तुझ सी कन्या-रत्न को ऐसाही बर चाहिए जैसा कि तूने आप परख निरख कर चुन लिया है"।

सागरिका, "नहीं, सखी ! तू मेरी लज्जा पर पानी न फेर ! देख, मैं बड़ी दुखिया हूं, मुझपर दया कर।"

सुसंगता—"अच्छा, सखी ! मैं ऐसा ही करूंगी जिसमें इस भेद को और कोई न जानले (चिहुंक कर) अरे ! बड़ी भूल हुई ! देख (पिंजरे की ओर उङ्गली उठा कर यह निगोड़ी सारिका बड़ी खोटी है, यदि इसने मेरी तेरी बातें सुन कर स्मरण कर ली हों तो अनर्थ का सामना है। यह निगोड़ी और किसके सामने यदि इस समय की सुनी हुई बातें रटने लगेगी तो क्या करूंगी ?"

सुसंगता की इस बात ने सागरिका के हृदय को हिला दिया। वह भय-चकित हो कभी सारिका की ओर और कभी सुसंगता की ओर निहारने लगी और फिर बोली, "सखी, सुसंगता ! यह तो बहुत बुरा हुआ, अब क्या करूं ?"

इस बात का उत्तर सुसंगता कुछ दिया ही चाहती थी कि "बन्दर भागा, बन्दर भागा; हटो भागो, दुष्ट बन्दर सोने की जञ्जीर तुड़ा कर इसी ओर आता है"। इस कोलाहल को सुन कर दोनो भयभीत हो, उठ खड़ी हुईं और कदली-कुञ्ज के बाहर निकल कर इधर उधर देखने लगीं। फिर सागरिका ने सुसंगता से कहा, "सखी, अब क्या होगा ?" सुसंगता ने उसका हाथ थाम कर कहा "डर क्या है ? मैं तो तेरे साथ ही हूं। आ, इस तमाल-वृक्ष की ओट हो जायं। निगोड़ा बन्दर आप सीधे कूदता फांदता चला जायगा"।

सागरिका,—"अच्छा, तो चित्रपट उठा लाओ नहीं तो कोई देख लेगा"।

सुसंगता—"पगली कहीं की ! वह देख (उङ्गली से दिखा कर) दुष्ट बन्दर आ पहुंचा, अब चुप चाप छिपजा, फिर चित्र को लेकर निहारा कीजियो"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों कह कर सुसंगता, सागरिका का हाथ थाम्हे हुए तमाल की ओट होकर बन्दर का कौतुक देखने लगी। इतने ही में उद्यान के लतागुल्मों को नोचता खसोटता वह उत्पाती बन्दर भी आ पहुंचा, और सारिका का पिञ्जरा खोलता हुआ आगे भागा। पिञ्जरा खुलते ही सारिका भी उसमें से पर झाड़ कर निकली और उड़ कर एक ऊंचे वृक्ष पर जा बैठी। यह देख सुसंगता बड़ी घबड़ाई और सागरिका से यों कहती हुई जल्दी से आगे बढ़ी कि, "सखी, तू भी झट पट मेरे पीछे आ। देख नगोड़ी सारिका उड़ी जा रही है, उसे पकड़ें, नहीं तो महारानी वासवदत्ता के कोप से निस्तार पाना कठिन हो जायगा"।

(५)

उधर तो दोनों जनी सारिका के पकड़ने में दौड़ धूप करने लगीं और इधर उसी समय बसन्तक का हाथ पकड़े हुए महाराज उदयन भी मकरन्दोद्यान में पधारे। बसन्तक कहने लगा—"प्रिय मित्र! बड़े अचम्भे की बात है कि एक चुटकी खाद देते ही माधवी लता कैसी लहलहा उठी! जिसको एक चुटकी खाद ने ऐसा प्रभाव दिखलाया, वह श्री खण्डदास सिद्ध प्रशंसनीय है"।

राजा—"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? मणि, मंत्र और औषधि का प्रभाव अकथनीय है और उद्भिद-विद्या का भी ऐसा ही प्रभाव है कि सूखे लकड़ में भी बात की बात में नई कोंपल निकल आती है, औ"—

बसन्तक—(रोक कर) "मित्र! ठहरो! कान लगा कर सुनो तो यह किसकी बोली है?"

राजा—(कान लगा कर) "यह तो स्त्री के कण्ठ की सी ध्वनि है, पर बड़ी क्षीण है; हो न हो यह महारानी की प्राण से भी प्यारी सारिका है"।

बसन्तक—(ऊपर देख कर) "सच है। मित्र! यह देखो ऊपर वाली डाल पर बकवादिन मैना बैठी हुई बड़ बड़ा रही है"।

राजा—"चुप रहो, सुनो, मैना क्या कह रही है"? दोनो कान लगा कर सुनने लगे और मैना आप ही आप बोलने लगी।

सारिका आप ही आप कहती है—

"इस चित्रपट पर मेरा चित्र क्यों बनाया? सखी! तू व्यर्थ कोप दिखाती है। तूने जैसा कामदेव का चित्र लिखा, मैंने वैसा ही रति का भी चित्र बना दिया"।

बसन्तक—"परन्तु मित्र! इसका अर्थ क्या है?"

राजा—"हमें जान पड़ता है कि किसी स्त्री ने अतिशय प्रेम के वशीभूत हो, अपने प्रियतम का चित्र बनाया हो, और फिर उस (प्रियतम) के देखने पर बात बना कर उस (चित्र) को कामदेव का बतलाया हो, और इसी छल पर उस स्त्री के प्रेमी ने उसी (चित्रपट) पर अपनी उसी (प्यारी) का चित्र भी बना कर उसे रति का चित्र बतलाया हो। फिर इन्हीं बातों को किसी ढब से सुनकर यह सारिका उसी सुनी हुई बात की आवृत्तिकरती हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि इस (सारिका) का यह स्वभाव है कि जो बात सुनती है उसीको बार बार रटा करती है, जब तक कि कोई दूसरी बात न सुनले"।

इसपर बसंतक कुछ और पूछा चाहता था कि उसे राजा ने रोक दिया और कहा, "मित्र! ठहरो, सुनो मैना और क्या कह रही है"।

सारिका बोलने लगी, 'प्यारी! इसमें लज्जा किस बात की है? तुझसी कन्यारत्न को ऐसा ही बर चाहिए।"

राजा ने सुन कर कहा, "इसमें तो कुछ गूढ़ रहस्य की सी झलक आती है।" इतने में मैना उड़ कर कदली-कुञ्ज में जा बैठी और दोनो उसके पीछे पीछे वहीं पहुंचे। वहां पर सागरिका के लिखे हुए चित्रपट पर बसन्तक की दृष्टि पड़ी और उसने उस चित्रपट को उठा और राजा के हाथ में देकर कहा, "लो, मित्र; तुम बड़े भाग्यवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस चित्रपट में उसी विरहिनी का चित्र होगा, जिसकी बात मैना कह रही थी। और वह निठुर प्रेमी भी आप ही हैं, कि उस विरह में झुलसती हुई कामिनी की सुधि तक नहीं लेते।"

यह सुन और बसन्तक के हाथ से चित्रपट लेकर राजा हर्ष, आश्चर्य और कौतुक से उस (चित्र) को ध्यान पूर्वक देखने लगा।

प्रियपाठक! सागरिका ने राजा उदयन ही का चित्र बनाया था, वह राजा ही पर मोहित हो अपने प्राण निछावर कर बैठी थी। उसने जिसे कामदेव समझ कर चित्रित किया था वह राजा उदयन ही था, अस्तु।

इधर तो राजा बसंतक के साथ कदली-कुञ्ज में बैठा हुआ बड़े चाव से उस चित्र को, जिसमें कि उसी (राजा) के पास ही एक आलोकसामान्य सुन्दरी चित्रित थी, देख रहा था; और उधर सारिका के हाथ न आने से निराश हो कर सागरिका और सुसंगता दोनो जनी चित्रपट लेने के लिये कदली-कुञ्ज की ओर लौटीं। और ज्योंहीं वे दोनों कुञ्ज के भीतर कुछ दूर गई होंगीं कि उन्होंने बसन्तक के साथ बैठे हुए राजा को उसी चित्र का अवलोकन करते देखा। राजा को देख कर दोनों ठिठकीं और लताओं की झुरमुट में छिप कर देखने लगीं कि राजा के आगे अब इस चित्र का क्या परिणाम होता है।

जब राजा को चित्र में आंख गड़ाए देर हो गई, तब बसन्तक ने उसके ध्यान-भंग करने के लिये युक्ति से कहा—

"मित्र! यह सुन्दरी सिर झुकाए हुए क्यों लिखी गई है?"

राजा—(चिहुंक कर) "मित्र, देखो! यद्यपि यह कामिनी चित्र में लिखी हुई भर है, परन्तु तिस पर भी बल-पूर्वक हमारे हृदय में पैठी जाती है"।

यह सुन कर सुसंगता ने सागरिका को चुटकी भर कर धीरे से कहा, "ले, सखी, तू बड़ी बड़-भागिन है, तेरा प्यारा तुझीको सराह रहा है।"

सागरिका—(लज्जा से सिर नीचा कर के) "सखी! तू क्यों व्यर्थ मुझे पानी पानी किए डालती है!"

बसंतक,—"पर मेरी बातों का तो उत्तर दो। यह सुन्दरी अवनत-मुख क्यों लिखी गई है?"

राजा—"मित्र! वह सब तो मैना कही गई है।"

बसन्तक—"परन्तु, मित्र! इस चित्र से तुम्हारी आंखें क्या ठंढी हुईं?"

यह सुनते ही सागरिका ने दोनो हाथ से अपने हृदय को भरजोर पकड़ कर मन ही मन कहा, "बस, इस बात का उत्तर ही मेरे मरने या जीने का कारण होगा। हे मन, तनिक धीरज धर।"

राजा ने बसन्तक की बात का उत्तर दिया "मित्र! आंख ठंढी होने को क्या कहते हो। हम तो यही समझते हैं कि यदि यह चित्र-लिखी सुन्दरी शीघ्र हमें न मिली तो हमारे जीने के दिन पूरे हुए समझना।"

राजा का उत्तर सुनते ही सागरिका मारे हर्ष के गदगद हो वहीं बैठ गई। उसे चुटकी भर कर सुसंगता ने कहा, "ले सखी, अब तो तेरे मनोरथ पूरे होने में देर नहीं है।"

इधर तो सागरिका प्रेम में मतवाली हो रही थी, और उधर राजा चित्र लिए पागल सा हो रहा था, दोनो की ऐसी दशा देख कर चतुर सुसंगता ने सागरिका से कहा—

"सखी, जिसके लिये तू बावली हो रही है वह तो सामने ही है।"

सागरिका—(बनावटी क्रोध से) "वाह तू बक क्या रही है? मैं किसके लिये आई हूं?"

सुसंगता—"वाह रे घुड़की! तू इतना तनती क्यों है? तूही सुध कर कि चित्र लेने आई थी या नहीं?। जो आई हो तो दो डग आगे बढ़ कर महाराज से उसे मांग क्यों नहीं लेती?"

सागरिका—(झिझक कर) "चल, दूर हो यहां से; मुझ से ऐसी बातें न किया कर"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसंगता-(हंसकर) "अच्छा, न करूंगी, पर ठहर जा, मैं ही तेरे चित्रपट को लाए देती हूं।"

इतना कह कर ज्यों ही सुसंगता घूम कर राजा की ओर बढ़ी होगी कि उसे देख कर राजा और बसन्तक दोनो सकबकाए और जलदी जलदी केले के पत्ते से चित्र को ढांपने लगे। सुसंगता ने आगे बढ़ कर कहा, "महाराज की जय होय!"

राजा—"अरी, सुसंगता? तुझे यह कैसे मालूम हुआ कि हम यहां हैं?"

सुसंगता—"केवल इतना ही नहीं, वरन् मैं चित्रपट का भी सब वृत्तान्त जानती हूं, सो जाकर महारानी जी से कहूंगी।"

इतना सुनते ही राजा और बसन्तक दोनो घबड़ाए। फिर राजा ने बात बना कर कहा, "सुसंगता! सुन, यह सब एक कौतुक भर था, तू व्यर्थ इस भेद को महारानी से मत कहियो; नहीं तो उन्हे दुःख होगा।"

सुसंगता—"तो आप मेरा एक कहा करिए तो मैं भी महारानी जी से इस भेद को न कहूंगी। वरन् जहां तक होसकेगा, इसे छिपाए रहूंगी।"

राजा—(जल्दी से) "वह कौनसा काम है? जल्दी कह। हम तुझ पर प्रसन्न हैं, तू जो कहेगी, सो करेंगे।"

सुसंगता—"यही कि इस चित्रपट पर जिस सुन्दरी को आप देख रहे हैं, वह मेरी प्यारी सखी सागरिका है। उसने जबइ स चित्रपट पर आपका चित्र खैंचा तो मैंने परिहास से आपके बगल में अपनी सखी का भी चित्र बना दिया। पर ऐसा करने से वह मुझसे रूठ गई है, सो आप दया कर उसे मना दीजिए। यहीं पासही उस (उंगली से दिखा कर) लता की ओट में वह बैठी है। यदि इतना काम आप मेरा कर दीजिए, तो मैं भी महारानी जी से कुछ न कहूंगी।"

यह सुनतेही राजा फड़क उठा और उसने आतुरता से पूछा, "बता, बता! कहां है वह हमारे हृदय की आराध्य देवी? कहां है, जल्दी बता?"

इतना सुनतेही सुसंगता बड़ी प्रसन्न हुई और राजा को लिए हुए वहीं पहुंची, जहां सागरिका बैठी थी। पीछे पीछे बसन्तक भी था। सागरिका राजा को सामने देख हृदय में बड़ी प्रसन्न हुई और उठ खड़ी हुई, पर लज्जा से सिर झुकाए हुए थी।

बसन्तक—(सागरिका को देख कर) "वाह वाह मित्र! हो तुम बड़े भाग्यशाली। देखो! ऐसी सुन्दरी कन्या नरलोक में तो क्या देवलोक में भी न होगी। हमारे जान विधाता इसे बना कर स्वयं इसकी अलौकिक गढ़न पर विस्मित हुआ होगा।"

राजा—(हर्ष से)"मित्र! सच कहते हो। देखो! ब्रह्मा ने इस स्त्री-रत्न को बना कर इसके नेत्र-कमल के आगे अपने कमलासन के दलों की आभा निरी फीकी देखी होगी, और तब निश्चय उसने आठों आंखें फाड़ फाड़ कर और चारों सिर हिला हिला कर आप ही अपने को असंख्य धन्यवाद दिया होगा।"

यह सुन सागरिका ऐसी लज्जित हुई कि सुसंगता की ओर रिस से घूरती हुई चल खड़ी हुई। उसे जाते देख राजा ने उसके सम्मुख आकर बड़े चाव से कहा, "हे सुन्दरि! यद्यपि तू ऊपर से रूखापन दिखाती है, पर तेरा अन्तर अतिशय सरस है। तू जाने के लिये इतनी उतावली क्यों कर रही है?" राजा के इतने कहने पर भी जब लज्जा-वश सागरिका जाने ही लगी तब सुसंगता ने परिहास से राजा से कहा,—"महाराज इसका बड़ा तीखा स्वभाव है। इसलिये आप इसके दोनों हाथ थाम्ह कर इसे प्रसन्न कीजिए।"

यह सुन, राजा ने बड़े अनुराग से सागरिका के दोनों हाथ पकड़े और वह बिचारी लज्जा के भारसे झुकी जाने लगी। अवसर देख कर बसन्तक ने कहा, "लो, मित्र! आज तुम्हें अपूर्व श्री का लाभ हुआ"

राजा,—"सच है, यह सुन्दरी साक्षात् लक्ष्मी है और इसके करतल-युगल पारिजात के नवीन दल हैं। नहीं तो पसीने के बहाने से इनमें से अमृत क्योंकर टपकता"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसंगता ने सागरिका की ओर कटाक्ष कर के कहा, "प्यारी, सखी ! तू बडी कठोर है। देख महाराज तेरा इतना आदर करते हैं, और तू तनिक भी नहीं प्रसन्न होती।"

सागरिका—(भौंवे तानकर) "तू अब भी चुप नहीं होती ? चल दूर हो, यहां से !"

सुसंगता—(हंस कर) "प्यारी, सागरिका, अपनी सहेलियों पर अकारण इतना रोष करना तुझे नहीं फबता"।

सागरिका—"चल, परे हो, अब मैं तुझसे कभी न बोलूंगी"।

बसन्तक—"यह तो सचमुच बासवदत्ता ही है"

बसन्तक के मुख से इतना निकलतेही राजा ने घबरा कर सागरिका का हाथ छोड़ दिया और वह भी डर कर सुसंगता के साथ जलदी से भाग कर एक लता की ओट में जा छिपी। तब राजा ने चारो ओर देख कर बसन्तक से पूछा, "क्यों ! कहां है बासवदत्ता ?"

बसन्तक,-"मित्र ! बासवदत्ता यहां कहां है ? हमने इस सुन्दरी के कोप को देख कर कहा था कि यह भी बासवदत्ता ही सी है। इसमें भी बड़ा क्रोध भरा हुआ है"।

राजा—(पश्चात्ताप करके) "दूर हो, पागल ! तैने अनाप शनाप बक कर सारा सुख-स्वप्न भङ्ग कर दिया। भाग्यों से ऐसी रसीली 'रत्नावली' हाथ आई थी, पर उसे गले में न डाल सके, तूने बीच ही में उसे हमसे दूर कर दिया"।

(६)

राजा इस प्रकार सागरिका के लिये मनमें पछतावा कर रहा था कि इतने ही में नवमल्लिका की क्यारियों में घूमती हुई महारानी बासवदत्ता भी कांचनमाला के साथ कदली कुञ्ज में आ पहुंची और वहां राजा को देख अचरज मान कर बोली-"महाराज की जय होय ! प्राणनाथ, आप यहां अकेले क्या कर रहे हैं ?"

राजा एकाएक बासवदत्ता को देख कर बहुत ही सकपकाया और कुछ उत्तर न दे सका। इतने ही में बासवदत्ता की दृष्टि उस चित्रपट पर पड़ी और चट उसने चित्र उठा कर देखा। देखते ही मारे क्रोध के वह थर थर कांपने लगी, फिर राजा की ओर कोप से घूर कर बोली—"प्राणनाथ ! इस चित्र को किसने लिखा है ?" यह सुनते ही राजा सटपटा कर नीचा मुंह करके उत्तर सोचने लगा।

इतने ही में बसन्तक बात गढ़ कर कहने लगा-"महारानी जी आप इस चित्र के विषय में कोई दूसरा विचार न करें। इस चित्र का यह वृत्तान्त है कि हमने अपने प्रियमित्र (महाराज) से इस बात पर विवाद किया कि अपना चित्र आपही कोई भी नहीं बना सकता। बस, हमारी इसी बात का खण्डन करने के लिये महाराज ने अपने हाथ से अपना चित्र बना डाला"।

राजा—(शीघ्रता से) "हां प्रिये ! बसन्तक ने जो कहा, इसे सच जानो"।

बासवदत्ता-(राजा से) "प्राणप्रिय ! तो फिर यह दूसरी स्त्री-मूर्त्ति बसन्तक जी की लिखी हुई होगी ?"

राजा,-"ऐं,ऐं ! हां ! ठीक ? तो यह मूर्त्ति, तो"-

बसन्तक—महारानी जी ! यह मूर्त्ति तो निरी कल्पित है। आप कुछ आशंका न करें"।

राजा—"और सच तो यों है, कि इस स्त्री को चित्र देखने के पहिले कभी नहीं देखा"।

बसन्तक—"हम यज्ञोपवीत की शपथ खा कर कहते हैं कि आज के पहिले इस सुन्दरी को हम लोगों ने कभी नहीं देखा"।

इतने में रानी का क्रोध बढ़ता देख उसकी परिचारिका कांचनमाला ने धीरे से उस (रानी) के कान में कहा-"महारानी जी ! यदि ऐसा हो भी तो क्या आश्चर्य है ? कभी कभी कोई बात घुणाक्षर न्याय की भांति मिल भी जाया करती है"।

बासवदत्ता—"तू निरी सीधी सादी है, इस प्रपञ्च को क्या समझेगी ? चुप रह ! तैने इतना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न समझा कि महाराज और बसन्तक ने कैसी वक्रोक्ति से भरा हुआ उत्तर दिया है। (राजा से) प्राणेश्वर ! मेरे माथे में पीड़ा होने लगी, सो मैं जाती हूं। परमेश्वर आपका मनोरथ पूरा करे, आप प्रसन्न रहें"।

राजा—(अंचल का छोर पकड़ कर) "प्रिये ! प्रसन्न हो, कोप को दूर करो; विचार कर देखो, इसमें हमारा कुछ भी अपराध नहीं है। तुम्हारे मन ने झूठी आशङ्का को धारण किया है। हाय ! तुम्हारे भयानक क्रोध के आगे हमारी बुद्धि चकरा गई है, कोई ठीक ठीक उत्तर नहीं सूझता। इसलिये, प्रिये ! क्षमा करो, ठहरो"।

बासवदत्ता—(विनय से अंचल को छुड़ा कर) "प्राणेश्वर ! आप व्यर्थ खेद न करें। सचमुच मेरे माथे में पीड़ा होने लगी है।"

इतना कहकर अपनी परिचारिका कांचनमाला के साथ बासवदत्ता चली गई और राजा नीची नार किए सोच विचार में डूब गया। उसकी ऐसी अवस्था देख बसन्तक ने कहा—"लो मित्र ! आज तुम्हारे अच्छे चन्द्रमा थे कि चट पट बासवदत्ता रूपी अकाल मेघ तुम्हारे सामने से टल गया।"

राजा—"बसन्तक ! तू महा मूर्ख है, जो महारानी के यों चले जाने से प्रसन्न होता है। उसके कोप में पड़कर हमें पतङ्ग की भांति भस्म होना पड़ेगा"।

बसन्तक—"अरे ! अब तो वह चली गई न ! फिर तुम क्यों इतना पछतावा करते हो ?"

राजा—"मित्र ! तुम रानी के कोप की गम्भीरता नहीं जानते। अब जबतक हम उसे प्रसन्न न करलें, हमारा निस्तार नहीं है"।

बसंतक—"ऐसा है, तो चलो ! अन्तःपुर में चलकर चण्डी देवी को प्रसन्न करें"।

(७)

राजा उदयन बसन्तक के साथ महल की ओर चला और उसने रानी के पास जाकर बड़ी बिनती की, पर उस गुरु-मानवती रानी का तनिक भी मान दूर न हुआ। अब रानी बासवदत्ता तो सिर की पीड़ा का बहाना किए कोप-भवन में बैठी दिन बिता रही है, और राजा सागरिका के विरह में खाना, पीना, सोना और हँसना बोलना छोड़कर दिन रात लम्बी लम्बी उसांसें लेता हुआ, बड़ी कठिनता से दिन काट रहा है।

राजा की रुग्नावस्था का समाचार सुन कर महारानी बासवदत्ता ने रुष्ट रहने पर भी राजा के समाचार लेने को अपनी प्यारी परिचारिका कांचनमाला को भेजा है। परन्तु बिलम्ब होने पर भी जब कांचनमाला न लौटी तो महारानी ने घबड़ा कर मदनिका नाम की परिचारिका को कांचनमाला को ढूंढने के लिये भेजा।

मदनिका कांचनमाला को ढूंढ़ती हुई जारही थी कि मार्ग में कौशाम्बिका नाम की परिचारिका से उसने सुना कि "कांचनमाला महाराज का समाचार लेकर आरही है। यह कह कर कौशाम्बिका तो अपने काम को चली गई और मदनिका थोड़ी ही दूर और आगे गई होगी कि उसे कांचनमाला लौटती हुई मिली। मदनिका को देख कर कांचनमाला ने पूछा, "तू कहां चली ?"

मदनिका—"तुझी को खोजने के लिये महारानी जी ने मुझे भेजा है"।

कांचनमाला—"तो चल ! जलदी से चलकर रानी जी को एक आनन्द-समाचार सुना ऊं"।

मदनिका—"क्या ! महाराज आरोग्य हैं ?"

कांचनमाला—"उन्हें केवल सागरिका के रूपोन्माद रोग ने घेर रक्खा है"।

मदनिका—"तो यह तो कोई आनन्द का समाचार नहीं है"।

कांचनमाला—"तो सुन ! उस चित्रपट को देख कर, जिसमें कि महाराज के साथ सागरिका का चित्र लिखा गया है, महारानी ने उस (सागरिका) पर रुष्ट होकर उसकी चौकसी का भार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसंगता को सौंपा है और सुसंगता पर प्रसन्न होकर महारानी जी ने उसे अपने पहिरने के वस्त्र भी पुरस्कार में दिए हैं। सो वही सुसंगता बसन्तक से मिलकर यह कह रही थी कि "आज सायंकाल के समय सागरिका को वही कपड़े पहिना कर महारानी वासवदत्ता के वेश में महाराज से माधवीलता-मण्डप में मिलाऊंगी"। बस यही आनन्द समाचार है, जिसे मैं चलकर महारानी जी को सुनाऊंगी"।

मदनिका ने कहा,—"हां! सखी! यह सचमुच आनन्द-समाचार है, और जान पड़ता है कि इस समाचार को सुनकर महारानी तुझे गहरा पुरस्कार देंगी"।

बस, यों बातें करती हुईं दोनों अन्तःपुर में गईं।

(८)

अपने निभृत-निवास में पर्य्यङ्क पर पड़ा हुआ, राजा उदयन सागरिका की चिन्ता कर रहा है। इतने ही में हँसते हुए बसन्तक ने आकर कहा, "लो, मित्र! सब ठीक है, उठो, चिन्ता छोड़ो। हमारे रहते तुम क्यों खेद करते हो?"

बसन्तक की बातों में ऐसी आकर्षण-शक्ति थी कि जिसे सुनतेही राजा चट शय्या से उठ बैठा, और उसका हाथ पकड़ कर पूछने लगा, "कहो, मित्र! क्या ठीक किया है?" यह सुन कर बसन्तक ने राजा के कान में कुछ कहा, जिसे सुन वह ऐसा हर्षित हुआ कि चट उसने अपने हाथ के कड़े उतार कर बसन्तक को पहरा दिए और कहा, "तो, मित्र! अब कितना दिन और शेष है?"

बसन्तक ने कहा, "कुछ थोड़ा सा; देखो! संध्यावधू संकेत करके सूर्य्य को अपनी ओर आने के लिये त्वरा करा रही है, और वह भी संध्या के आवाहन से मुग्ध होकर शीघ्रता से अस्ताचल की ओर पैर बढ़ाता हुआ चला जारहा है"।

राजा—"सच है, अब दिन बीतने में विशेष बिलम्ब नहीं है। तो, अच्छा! चलो, धीरे धीरे उसी ओर चलें"।

इस प्रकार कह कर राजा उदयन चुप चाप धीरे धीरे बसन्तक के साथ माधवीलता-मण्डप में पहुंचा। उस समय अन्धकारने चारों ओर से वहां अपना अधिकार जमा लिया था। वहां पहुंच कर बसन्तक ने कहा, "मित्र! तुम यहीं ठहरो, तो हम जाकर आपकी नई प्यारी सागरिका को ले आवें।"

राजा—"अच्छा, मित्र! पर विलम्ब मत करना। क्योंकि प्रियतमा का क्षणिक वियोग भी अब कल्पसम हो रहा है"।

"आप उतावले न होइए" यह कह कर बसन्तक सागरिका को लाने के लिये चला गया और राजा वहीं अकेला बैठा बैठा एक एक पल को युग के समान बिताने लगा। इधर तो माधवीलता-मण्डप में सागरिका के लिये राजा टकटकी लगाए बैठा है और उधर कांचनमाला के साथ वासवदत्ता चित्रशाला के द्वार पर, जहां कि छिप कर सागरिका के लिये बसन्तक आकर बैठा था, आई।

प्रिय पाठकों को ध्यान रहे कि बसन्तक और सुसंगता में यह बात पक्की हुई थी कि सन्ध्या समय वासवदत्ता का रूप धारण करके सागरिका चित्रशाला के द्वार से आवैगी। यह बात धूर्ता कांचनमाला ने सुन कर महारानी वासवदत्ता से कही। यही कारण है कि वासवदत्ता कांचनमाला को सुसंगता की भांति सँवार कर और आप घूंघट काढ़ कर चित्रशाला के द्वार पर आई। वहां पहिले ही से बसन्तक बैठा था। कांचनमाला ने सुसंगता की भांति उसे इंगित किया और वह चट पट उठ कर कांचनमाला को सुसंगता और वासवदत्ता को सागरिका समझ कर तथा उन दोनों को अपने साथ लेकर राजा के समीप माधवीलता-मण्डप की ओर चला। [शेष आगे]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] फरवरी १९०१ ई० [संख्या २

साहित्याचार्य्य
पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

भारतवर्ष में ऐसा विरलाही कोई विद्यारसिक मनुष्य होगा जो अनेक-गुण-मण्डित पण्डितवर सुकवि साहित्याचार्य्य भारत-रत्न भारतभूषण घटिका-शतकीय, शतावधानी, अनेक विद्यालंकृत अम्बिकादत्त व्यास के नाम से अपरिचित हो। हा हन्त! आज वही श्रद्धेय विद्वद्रत्न से भारत रहित है और उनकी असामयिक मृत्यु से पठित समाज को जो हानि हुई है, उसकी शीघ्र पूर्त्ति होनी कठिन है।

राजपूताने में जयपुर के समीप भानपुर नामक ग्राम में प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित ईश्वरराम जी गौड रहते थे। इनके पूर्वज डेढ़ दो सौ वर्ष पूर्व मण्डा ग्राम से यहां आ बसे थे। इनका पराशर गोत्र, यजुर्वेद, तीन प्रवर, और "भींडा" नाम से प्रसिद्ध कुल था। इनके प्रपौत्र पण्डित हरिराम जी "धूला" ग्राम के रावत जी के आश्रय में रहते थे, परन्तु हरिराम जी के पुत्र पण्डित राजाराम जी "धूला" से सम्बन्ध छोड सकुटुम्ब काशी चले आए और यहां के प्रसिद्ध ज्योतिषियों में गिने जाने लगे। इनके अनेक सन्तानो में चिरञ्जीवी दोही हुए, ज्येष्ठ पण्डित दुर्गादत्त जी* और कनिष्ठ पण्डित देवीदत्त जी।

इनके दो पुत्र और तीन कन्याएं थीं। बड़े पुत्र पण्डित गणेशदत्त जी और छोटे इस चरित्र के नायक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी हुए।

व्यासजी का जन्म, जब कि इनके पिता सकुटुम्ब अपनी जन्मभूमि (जयपुर) को गए थे, वहीं

* ये दुर्गादत्त जी वेही हैं जो कवि मण्डली में दत्त कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जीवनचरित्र पुस्तकाकार छप गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिलावटी महल्ले में सम्वत् १९१५ वैक्रमीय चैत्र शुक्ला अष्टमी को हुआ था।

पांचवें वर्ष में व्यास जी को अक्षरारम्भ कराया गया और खेल कूद के साथही साथ अमरकोष और रूपावली का अभ्यास कराया जाने लगा। घर की स्त्रियां भी पढ़ी लिखी थीं, इसलिये इनकी शिक्षा उत्तमता से होने लगी। आठ नौ वर्ष के वय में इन्हें शतरञ्ज और सितार का भी चसका लगा और कविता का व्यसन हुआ।

दस वर्ष के वय में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित घनश्याम जी के द्वारा इनका यज्ञोपवीत कराया गया और गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेव जी के पास, जो कविता में अपना नाम 'निजकवि' रख गए हैं, व्यास जी भाषा-काव्य का अध्ययन करने लगे। उस समय उक्त गोस्वामी जी के पास काशी के प्रसिद्ध कवियों में से मणिदेव के पुत्र सुप्रसिद्ध हनुमान कवि, द्विजकवि, पण्डित मन्नालाल, गोस्वामी दम्पतिकिशोर, पञ्जाब के बाबा निहाल सिंह, आदि भाषा काव्य पढ़ने जाते थे। उन लोगों के पाठ सुनने से व्यास जी की प्रतिभा दिन दिन बढ़ने लगी और उक्त गोस्वामी जी से और व्यास जी के पिता दुर्गादत्त जी से अतिशय स्नेह था, इस कारण उक्त गोस्वामी जी व्यास जी को शुद्ध चित्त से काव्य के सुगूढ़ मर्मों को समझाते थे, जिसके कारण ये बहुत ही शीघ्र काव्यकुशल हो गए और काव्य के प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, मर्कटी, पताका आदि का अच्छी तरह अभ्यास करने लगे।

फिर तो इनकी कविता का श्रीगणेश हुआ और सं० १९२६ में जोधपुर के राजगुरु ओझा तुलसी दास जी जब काशी आए तो उनके दरबार में, जहां कि सैकड़ों कवि और पण्डित वर्त्तमान थे, व्यास जी ने "जनि तोरहु नेह को कांचो तगा" वाली समस्या की पहिले पहिल पूर्त्ति की, जिसकी दर्बार में सबने बड़ी प्रशंसा की। उस समय व्यास जी केवल बारह वर्ष के बालक थे।

फिर गोलघर के महाराज श्रीगोस्वामी कृष्ण चैतन्य देव जी ने व्यास जी को कथा कहने की ओर झुकाया और अपने यहां प्रति एकादशी को एकादशीमाहात्म्य कहवाने लगे और जब व्यास जी ने वयोवृद्धि और विद्यावृद्धि के साथ ही साथ पहिले पहिल गोलघर में श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध की कथा कही तो उक्त गोस्वामी जी ने इन्हें 'व्यास' की उपाधि दी, क्योंकि इनकी "व्यास" की पदवी परम्परागत नहीं है।

जब सम्वत १९२७ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने कवितावर्द्धिनी सभा स्थापित की तो उसमें व्यासजी को भी बुलाया, क्योंकि उसके पूर्व भारतेन्दु जी इनको कवित्व शक्ति से परिचित हो चुके थे। उस सभा में पहिली समस्या यह दी गई थी—

"चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी"

इस समस्या पर बाबू साहब ने यह भी आज्ञा दी थी कि प्रातःकाल का वर्णन हो। इस समस्या पर जो पूर्त्तियां हुईं उनमें व्यासजी की कविता बाबू साहब ने सबसे अच्छी ठहराई, क्योंकि व्यास जी के अतिरिक्त और किसी कवि की पूर्त्ति में भी "विकटोरिया" और "कटोरिया" का यमक न था। इस पूर्त्ति के सहित बाबू हरिश्चन्द्रजी ने अपने "कविवचन सुधा" नामक पत्र में जो अपना मत प्रकाशित किया था उसे हम ज्यों का त्यों नीचे उद्धृत करते हैं—

"कविवचन सुधा, जि० २, कार्त्तिक कृष्ण ३० सम्वत १९२७, वाराणसी (ता० ४)।

अम्बिकादत्त गौड़

आनँद तें परजा विकसे सब, कौंल से कोससिरी हरखानी।
सेवकिनी चिरियाँ सम चारिहुँ, ओर तें बोलि रहीं मृदुबानी।
भोर प्रताप सों जाको प्रताप, लखें इमि अंबिकादत्त बखानी।
पूरी अमी की कटोरिया सी, 'चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विलक्षण बालकवि की बुद्धि भी विलक्षण ही है और अवस्था उसकी केवल बारह ही वर्ष की है। हम इसके और समाचार भी लिखेंगे।"

उसी समय काशिराज महाराज ने धर्मसभा स्थापित की थी और उसमें छात्रों की परीक्षा होती थी, तथा जो छात्र परीक्षोत्तीर्ण होता उसे पारितोषिक भी मिलता था। व्यासजी ने भी साहित्य में वहां जाकर परीक्षा दी और उत्तीर्ण होने पर पारितोषिक बांटते समय काशिराज महाराज श्रीमदीश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर ने इन्हें अत्यल्पवय में पारितोषिक का अधिकारी देख आश्चर्य किया और कुछ प्रश्न किए, जिनका उत्तर व्यासजी ने श्लोकबद्ध दिया। तब तो महाराज साहब बहुत ही चकित और प्रसन्न हुए और अपनी सभा के प्रधान विद्वान् पण्डितवर श्री ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य्य* से कहा कि यदि आप कृपा पूर्वक इस बालक को कुछ पढ़ाया करें तो यह बहुत शीघ्र व्युत्पन्न हो जायगा और व्यासजी से कहा कि आप कभी कभी आया कीजिए।

जिस समय व्यासजी का वय केवल बारह वर्ष का था उस समय एक वृद्ध तैलङ्ग अष्टावधान काशी में आए और उन्होंने जगत प्रसिद्ध गुणग्राही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के यहां अपना अवधान-कौशल दिखलाया। उस समय बाबू साहब ने उपस्थित महाशयों की ओर देख कर कहा कि यदि इस समय कोई काशीवासी विद्वान् भी इसी प्रकार का कुछ चमत्कार दिखलावै तो काशी का नाम रह जाय। यह सुन व्यास जी ने विनीत भाव से कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं एक सरस्वती यंत्र में कविता करूं। सुनते ही बाबू साहब ने सस्नेह दवात कलम कागज इनके सामने सरकाया और आज्ञा दी। फिर व्यास जी ने इस प्रकार के कोष्ठ को बना कर

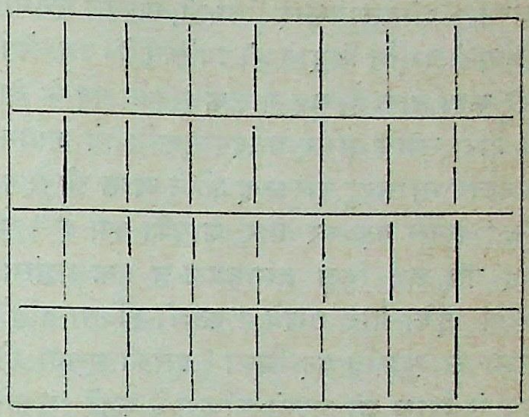

पूछा कि किस विषय का वर्णन हो। इस पर भारतेन्दु जी के सहोदर अनुज बाबू गोकुलचन्द्र जी ने कौतुक पूर्वक कहा कि इस (अंगुली से दिखा कर) घड़ी का वर्णन हो। इस पर व्यास जी ने कहा कि इन कोष्ठों में आप जहां जहां जो जो अक्षर कहें मैं लिखता जाऊं, सब कोष्ठ भर जाने पर सीधा बांचने में अभिलषित वर्णन छन्दोबद्ध तयार हो जायगा।

निदान इस विषय का मर्म तैलंग शतावधान को समझा दिया गया और वे ही अपने इच्छानुसार उक्त यंत्र के कोष्ठों में अक्षर भरने लगे। अन्त में कोष्ठ की पूर्त्ति होने पर यह श्लोक बन गया—

"घटी सुवृत्ता सुगतिर्द्वादशाङ्कसमन्विता।
उन्निद्रा सततं भाति वैष्णवीव विलक्षणा"॥

इस विलक्षण अवधान के होते ही साधुवाद से भारतेन्दु जी का दीवानखाना गूंज उठा और उसी विषय पर तैलंग शतावधान ने एक और श्लोक बनाने के लिये अनुरोध किया। इस बेर बाबू गोकुलचन्द्र जी ने कोष्ठों में अक्षर भरे और पूरे होने पर यह छन्द बन गया—

"घटी खटखटा-शब्द-व्याजेन कथयत्युत।
रामं रट रट प्राज्ञ किमन्यैर्विफलैः श्रमैः"॥

यह सुन कर शतावधान ने कहा कि "सुकविरेषः"। इसपर बाबू हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि लीजिए अब आपको सुकवि का ख़िताब मिल गया।

* इन्होंने "शृङ्गाररत्नाकर" नामक एक अद्वितीय साहित्य ग्रन्थ बनाया है जिसका एक भाग तो छपा था जो अब नहीं मिलता और दूसरा भाग लिखित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय बनारस संस्कृत कालेज के अध्यापक पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित बेचनराम त्रिपाठी प्रभृति विद्वान् भी उपस्थित थे। उन लोगों ने भी कहा ठीक है, यह बालक सुकवि पद के योग्य है और समय पाकर अवश्य सुकवि हो जायगा। अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने व्यास जी से कहा कि "इससे बढ़ कर और आपको क्या दें" और यह कह कर निज हस्तकमल से एक प्रशंसापत्र लिख दिया और उसमें "काशी-कविता-वर्द्धिनी सभा से सुकवि पद मिला" इसकी सूचना दी। तब से व्यास जी अपनी कविता में कहीं 'सुकवि' और कहीं पूरा नाम देने लगे।

तेरह वर्ष के वय में व्यास जी का विवाह हुआ। उसी वर्ष ये अपने पिता के साथ डुमरावँ राजधानी में गए थे। वहां के महाराज राधिकाप्रसाद सिंह बहादुर ने इनकी विलक्षण बुद्धि चातुरी और कविता से प्रसन्न होकर इन्हें दो मास अपने यहां रक्खा और बराबर समस्या पूर्त्ति और श्रीमद्भागवत के श्लोकों की व्याख्या कराई।

धीरे धीरे व्याकरण और साहित्य के साथ साथ इधर तो इन्हें सांख्ययोग, वेदान्त आदि दर्शन-शास्त्रों का चसका लगा और उधर सितार जल-तरंग, नसतरंग और संगीत का शौक बढ़ा, पर उत्तमता यह थी कि एक से दूसरे काम में बाधा नहीं पड़ती थी। इनके पिता वृद्ध हो चुके थे इसलिये कुटुम्ब-पोषण-भार भी इसी अल्पवय से इनके ऊपर पड़ने लगा। तब ये किसी उद्योगवश रानी बड़हर के यहां अनुष्ठान करते और कथा कहते थे। वहां पण्डितों का वितर्क सु कर इन्हें शास्त्रार्थ का भी व्यसन हुआ और ये व्याकरण और न्याय के खर्रे घोखने लगे।

स० १९३३ में काशीगवर्नमेण्ट कालेज के ऐंगलो-संस्कृत विभाग में व्यास जी ने नाम लिखाया। उसी समय इन्होंने अङ्गरेज़ी के साथ बङ्गला, उर्दू, मराठी और गुर्जर भाषा का भी अभ्यास करना आरम्भ किया। उन्हीं दिनों काशी से "आर्यमित्र" नामक एक पत्र निकलने लगा था। व्यास जी ने उसमें पहिले पहिल "हमारा कर्तव्य" शीर्षक लेख लिखा और फिर तो धीरे धीरे ये हिन्दी के अच्छे अच्छे पत्रों में लेख लिखने लगे। उसी अल्पवय में इन्होंने पहिले पहिल "प्रस्तार दीपक" और "ललिता नाटिका" लिखी फिर तो काल पाकर इन्होंने शतावधि ग्रन्थ लिख डाले, जिनके विषय में हम इस प्रबन्ध के अन्त में लिखेंगे।

स० १९३४ में ऐंग्लो की उत्तम कक्षा तक पढ़ कर व्यास जी ने अङ्गरेज़ी का अभ्यास घर ही पर करना प्रारम्भ किया। उसी वर्ष व्यास जी ने काश्मीराधीश के संस्कृत विद्यालय में नाम लिखाया और वहां की साहित्य परीक्षा दी।

स० १९३७ में काशी गवर्नमेण्ट कालेज में आचार्य्य परीक्षा नियत हुई। यह परीक्षा और सब परीक्षाओं से उत्तम है। इसलिये व्यास जी ने काश्मीराधीश का विद्यालय छोड़ कर गवर्नमेण्ट कालेज में नाम लिखाया और एक वर्ष के पूरे परिश्रम करने के पश्चात् स० १९३८ में साहित्य की परीक्षा पास की और गवर्नमेण्ट से इन्हें "साहित्याचार्य" की उपाधि मिली।

यद्यपि स० १९३१ में व्यास जी की माता का देहान्त हो गया था, परन्तु पिता जी के रहने से ये बहुत स्वतन्त्र थे, पर स० १९३७ में इनके पिता जी का भी परलोक बास हो गया और उसी दुःखपूर्ण अवस्था में इन्हें "उपाधि" परीक्षा भी देनी पड़ी। व्यास जी भाग्यशाली थे कि ऐसे अवसर में भी परीक्षोत्तीर्ण हुए।

फिर बड़े भ्राता गणेशराम जी से कलह और गृहविवाद होने के कारण व्यास जी दुखी हो कर विदेश जाने को उद्यत हुए। उसी अवसर में पोरबन्दर के बल्लभकुलीय गोस्वामी जीवनलाल जी से इनका साक्षात् हुआ। वे व्यास जी से कु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ने लगे। उनके साथ व्यास जी कलकत्ते गए और वहां तीन मास रहे। इस बीच में इनके वहां पर अट्ठाईस व्याख्यान सनातन-धर्म पर हुए और अनेक सभाओं में पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हुए, जिनके वृत्तान्त उस समय के कलकत्ते के सार-सुधानिधि, उचितवक्ता और भारतमित्र आदि पत्रों में छपे थे।

कलकत्ते से आने पर व्यास जी ने स० १९३८ में वैष्णवपत्रिका नामक मासिक पत्रिका निकाली, परन्तु उसके दो नम्बर से अधिक न छपे। पीछे वही पत्रिका पीयूषप्रवाह नाम धर कर निकली जो व्यास जी के जीवित काल तक येन केन प्रकारेण निकलती रही।

अभ्यास करते करते व्यास जी की धारणा यहां तक बढ़ी कि वे २४ मिनट अर्थात् १ घड़ी में सौ श्लोक बनाने लगे। इसे देखकर काशी की ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा ने इन्हें स० १९३८ में "घटिकाशतक" पद सहित एक चांदी का पदक (तमग़ा) दिया।

यह सब कुछ था, पर जीविका के कष्ट और ऋण से व्यास जी ऐसे दुखी हो रहे थे की स० १९४० में ३५) रु० मासिक वेतन पर मधुवनी स्कूल के अध्यक्ष बन वहां चले गए। थोड़े ही दिनों में व्यास जी ने वहां अनेक सभाएं स्थापित कीं और पचास से अधिक व्याख्यान दिए। वहीं पर इन्होंने मैथिली भाषा का भी अभ्यास किया था।

वहां पर व्यास जी ने एक ऐसा अद्वितीय कार्य किया कि जो इनकी कीर्त्ति को चिरकाल पर्यन्त अचल रक्खैगा। वह यह है कि उस समय वहां की शिक्षा-प्रणाली बड़ी दूषित थी और विद्यार्थियों की परीक्षा का कोई द्वार न रहने से वे निराश और अव्युत्पन्न रह जाते थे। यह सब दशा देखकर व्यास जी ने संस्कृत शिक्षा की व्युत्पादक अभिनव प्रणाली निकाली, जो उस समय तो लोगों को बहुत ही बुरी लगी, पर आजदिन उसी प्रणाली के प्रभाव से शतावधि विद्यार्थी प्रति वर्ष परीक्षोत्तीर्ण होते हैं। इस प्रणाली के चिरस्थायी करने के लिये व्यास जी ने सबसे पहिले उद्योग किया और "विहार संस्कृत सञ्जीवन" समाज स्थापित किया। इस कार्य में व्यास जी के विरोधी असंख्य और सहायक केवल एक मात्र विहार के स्कूलों के इन्सपेक्टर पोप साहब थे। पोप साहब ने व्यास जी की इस विषय में बड़ी सहायता की और इन्हींको उस समाज का प्रधान कार्यसम्पादक बनाया। इसके दृढ़ करने के लिये व्यास जी ने कई नगरों और अनेक राजधानियों में तीन सौ के लगभग व्याख्यान दिए और इतने रुपए एकत्र कर दिए कि अब चिरकाल पर्यन्त बिना किसीकी अर्थ सहायता के संस्कृत सञ्जीवन समाज का कार्य चला जायगा। पोप साहब के विलायत जाने पर उनके पीछे के अधिकारियों ने चाहा कि इस समाज को तोड़ दें, पर केवल एक मात्र व्यास जी के सन्नद्ध रहने के कारण विरोधियों की कुछ न चली और आशा है कि यह समाज चिरस्थायी रह कर सदैव व्यास जी की विमल कीर्ति की घोषणा करता रहैगा।

बिहार में व्यास जी ने सौ से अधिक धर्म सभाएं और अन्यान्य सुनीति सभाएं तथा साहित्य सभाएं स्थापित कराईं जिनमें अभी तक बहुत सी वर्त्तमान हैं। बारह वर्ष से अधिक बिहार में रहकर सातसौ से अधिक व्याख्यान व्यास जी ने दिए, जिनका लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज दिन बिहार प्रान्त निवासी व्यास जी के लिये आर्त्तनाद कर रहे हैं।

स० १९४२ में ये मधुवनी के स्कूल से इस्तीफा देकर बांकीपुर चले आए। पर फिर स० १९४३ में चालीस रुपए मासिक वेतन पर मुजफ़्फ़रपुर स्कूल के हेड पण्डित बनाकर वहां भेजे गए। वहां पर भी इन्होंने सभाओं और वक्तृताओं की धूम मचादी और सबसे उत्तम काम यह किया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहार में जितनी सभाएं ये स्थापित कर चुके थे, उन सभों की महासम्मिलनी हरिहरक्षेत्र में (संवत् १९४३) की, जिसके प्रधान सहायक महाराज दरभंगा, महाराज हथुआ और मुजफ़्फ़रपुर के रईस बाबू परमेश्वर नारायण महता और बाबू रामेश्वर नारायण महता थे। इस महासम्मिलनी में दूर दूर के नगरों से सहस्रावधि लोग निमन्त्रित होकर आए थे।

स० १९४४ में ये भागलपुर ज़िला स्कूल में ५०) रु० मासिक पर भेज दिए गए। यहां पर भी इन्होंने सभाओं और वक्तृताओं के प्रभाव से लोगों को अपना अनुयायी बनाया और अपना व्यास यन्त्रालय स्थापित किया।

संवत १९४५ में संस्कृत में सोमवत नाटक बनाकर इन्होंने महाराज दरभंगा को समर्पित किया और महाराजा साहब ने भी उसके परिवर्त्तन में इनका अपने योग्यतानुसार सम्मान किया। इस नाटक को देखकर ज़िला मैमनसिंह के रामगोपालपुर के प्रसिद्ध ज़मींदार बाबू योगीन्द्रनाथ चौधरी ने व्यास जी को बुलाया। वहां की पण्डितमण्डली में एक दिन संस्कृत में और दूसरे दिन बङ्गभाषा में इनके मनोहर व्याख्यान हुए जिनका वृत्तान्त ढाका प्रकाश आदि सामयिक बंगला पत्रों मे छपा था।

संस्कृत में इन्होंने शिवराजविजय नामक एक सुललित और वृहत् उपन्यास लिखा है। पहिले उसे महाराज हथुआ छपवाया चाहते थे, पर उनके परलोकवासी होने पर सुना है कि दरभङ्गा-नरेश महाराज रामेश्वरसिंह बहादुर सहायता से वह ग्रन्थ छप रहा है, जिसके पूर्ण हो जाने की आशा है।

भारत-धर्म-महामण्डल (दिल्ली) से "बिहार-भूषण" पद के सहित एक सोने का तमग़ा जोकि महाराज मिथिलेश्वर की ओर से बांटा गया था, व्यास जी को मिला।

संवत १९४८ में बिहारी-बिहार की लिखि पुस्तक को कोई चुरा लेगया। तब फिर व्यास ने पूर्ण परिश्रम के साथ इस अद्वितीय ग्रन्थरत्न पूर्णकिया। यह महाराज अयोध्यानरेश की सहायता से छपा है।

संवत १९५१ में काशी की महासभा में की रौलीनरेश गोस्वामी महाराज श्रीबालकृष्णल ने "भारतरत्न" पद के साथ सुवर्ण पदक व्यास को दिया। उसी समय वल्लभकुलीय गोस्वा जीवनलाल जी के साथ इन्होंने डेरा गाजीखां, डे इस्माइल ख़ां, आदि तक की यात्रा की। यह या डेढ़ वर्ष में पूरी हुई।

संवत १९५३ में इनकी बदली भागलपुर छपरे में की गई। पटना कालिज के संस्कृत फ़ेसर होने के पूर्वतक ये छपरेही में अध्या कराते रहे।

महाराज अयोध्यानरेश ने "शतावधान" सहित इन्हें सुवर्ण पदक तथा सम्मान पत्र प्रद किया और बम्बई के वल्लभकुलीय गोस्वामी श्यामलाल जी ने महासभा करके "भारतभूष पद सहित सुवर्ण पदक दिया। इन सभों के अ रिक्त व्यास जी को सैकड़ों प्रशंसापत्र और सम्मा पत्र बड़े बड़े राजदर्बार से मिले हैं जिनका उल्ले स्थानाभाव से नहीं हो सकता।

व्यास जी ने भारतवर्ष की यात्रा अनेक स में कई बार करके की है और उसका विवरण बड़ी उत्तमता से लिखा है, पर वह प्र अप्रकाशित और अपूर्ण ही रह गया।

संवत १९५५-५६ में इन्हें सौ रुपए मासिक पटना गवर्नमेण्ट कालिज के संस्कृत प्रोफेसर पद मिला। पर दैव-दुर्विपाक-वशतः अस्वस्थ शरीर से इसे भोगने न पाए रुग्नावस्था के कई झोंके झेलते झेलते कई उदरामय व्याधि की असह्य यन्त्रणा भोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नीसवीं नवम्बर सन् १९०० को इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे। इनके लोकान्तरित होने से अवश्य भारतवर्ष का एक अद्वितीय रत्न चला गया। बिहार निवासियों को इनके ऐसा पुरुष रत्न मिलना कठिन है। हिन्दी भाषा की भी इनके उठ जाने से विशेष क्षति हुई है। इनकी मृत्यु पर शोक प्रकाशार्थ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का जो अधिवेशन हुआ उसमें यह निश्चय हुआ है कि व्यास जी के स्मरणार्थ सभा में उनका एक चित्र लागया जाय और उनके प्रकाशित ग्रन्थों के छपने का यथासाध्य उद्योग कियाजाय * ।

अब व्यास जी के विषय में और उनके ग्रन्थों के विषय में हम संक्षेपतः कुछ लिख कर इस प्रबन्ध को समाप्त करेंगे।

व्यास जी में 'सभा चातुर्य्य' सर्व प्रधान गुणथा। ये अपनी वाक्चातुरी से अनायास लोगों को मोहित कर लेते थे। इनकी धर्म-विषयक वक्तृताएं हृदय ग्राहिणी और सरस होती थीं, केवल साहित्याचार्य्य की उपाधि पाने पर भी ये अन्यान्य दर्शन-शास्त्रों में कुशल, बहुश्रुत, बहुदर्शी और बहुज्ञ थे। इनके गद्य पद्य कैसे होते थे, यह सब पर विदित ही है, तथापि उस विषय में केवल इतनाही कहना बहुत होगा कि जैसे ये अद्वितीय बुद्धिसम्पन्न और सरस थे, वैसी सरसता इनके गद्य पद्य में नहीं है। यद्यपि हमारी इच्छा थी कि व्यास जी के ग्रन्थों की विशद आलोचना करें, पर प्रबन्ध के बढ़जाने से इस विषय को स्वतन्त्र प्रबन्ध के लिये रहने दिया है। हां, हिन्दी भाषा की लेख-प्रणाली के कतिपय विषयों में इनका विचित्र मत था और ये "इनने, उनने, इनीका, उनीका" इत्यादि विलक्षण शब्दों का प्रयोग करते थे। ये कुछ आत्माभिमानी भी थे और अपने सामने औरों की सम्मति को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। इन्होंने अपनी गद्य-काव्य-मीमांसा में श्रीहर्ष आदि महाकवियों पर भी सफ़ाई के हाथ फेर कर अपना उत्कर्ष स्थापित किया है। ये काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सभासद भी थे, और इन्होंने सभा में एक दिन "त्वरितलेखन प्रणाली" की रचना का आभास प्रगट किया और कहा था कि इस विषय में हम सब नियम बनाचुके हैं, अब कतिपय लोगों को सिखलाना भर शेष है। इसपर सभा ने एक पारितोषिक नियत किया था कि जो व्यक्ति इस त्वरित-लेखन प्रणाली की उत्तम परीक्षा सभा में देगा उसे इतना पारितोषिक दिया जायगा और श्री-नगर, पूर्नियां, के राजा कमलानन्दसिंह बहादुर ने भी उस व्यक्ति के लिये विशेष पारितोषिक देना स्वीकार किया था। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अस्वस्थता-वश न तो व्यास जी किसी-को यह विद्या सिखला ही सके और न किसी व्यक्ति ने उसके सीखने का उद्योग ही किया और वह विद्या व्यास जी के हृदयान्तर ही में रह गई। अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु व्यास जी के उठजाने से धर्मसमाज हिन्दीसमाज और बिहार प्रान्त को एक विशेष हानि सहनी पड़ी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

व्यास जी ने अपने जीवितकाल में जितने ग्रन्थ लिखे, उनकी नामावली नीचे प्रकाशित की जाती है। इस नामावली में जिन पुस्तकों पर (क) चिन्ह है, वे अपूर्ण रह गई हैं और जिनपर (ख) चिन्ह है वे पूर्ण तो होगई हैं पर अभी छपी नहीं हैं और शेष छप गई हैं। १ (क) प्रस्तार दीपक (हिन्दी भाषा)। २ (ख) गणेश शतक (संस्कृत)। ३ (क) शिवविवाह। ४ सांख्य-सागर-सुधा। ५ पातञ्जलप्रतिबिम्ब (संस्कृत)। ६ (क) कुण्डली

* काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने यह सिद्धान्त कर कर रक्खा है कि जिनका वह विशेष सम्मान करना चाहेगी उनका चित्र सभाभवन में लगा देगी। अभी तक सर ऑण्टोनी मैकडोनेल, पण्डित मदनमोहन मालवीय, बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह और पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के चित्र बनवाने का निश्चय हो चुका है। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्पण (संस्कृत)। ७ सामवत नाटक (संस्कृत)। ८ (क) इतिहास संक्षेप (संस्कृत)। ९ (क) रेखागणित (संस्कृत)। १० ललिता नाटिका (ब्रजभाषा)। ११ (क) रत्नपुराण (संस्कृत)। १२ (ख) आनन्द मञ्जरी (ब्रजभाषा)। १३ (क) चिकित्सा चमत्कार (दग्ध हो गया)। १४ अबोध निवारण (हिन्दी भाषा)। १५ गुणाशुद्धि प्रदर्शन (संस्कृत)। १६ ताशकौतुक पच्चीसी (हिन्दी भाषा)। १७ (क) समस्या-पूर्त्ति-सर्वस्व (संस्कृत)। १८ रसीली कजरी (हिन्दी भाषा)। १९ द्रव्यस्तोत्र (संस्कृत)। २० चतुरङ्ग चातुरी (हिन्दी भाषा)। २१ गोसङ्कट नाटक (हिन्दीभाषा)। २२ महा ताशकौतुक पचासा (हिन्दी भाषा)। २३ तर्कसंग्रह (भाषा टीका)। २४ सांख्यतरङ्गिणी (भाषा टीका)। २५ क्षेत्रकौशल (हिन्दी भाषा)। २६ (ख) पण्डित प्रपंच (हिन्दी भाषा)। २७ आश्चर्य वृत्तान्त (हिन्दी भाषा)। २८ (क) छन्दः-प्रबन्ध। २९ रेखागणित (भाषा)। ३० धर्म को धूम (ब्रज भाषा)। ३१ दयानन्दमतमूलोच्छेद (हिन्दी भाषा)। ३२ दुःख-द्रुम-कुठार (संस्कृत) ३३ पावस पचासा (ब्रज भाषा कवित्त)। ३४ कलियुग और घी (हिन्दी भाषा)। ३५ (क) दोषग्राही और गुणग्राही। ३६ उपदेशलता (हिन्दी)। ३७ सुकवि सतसई (ब्रज भाषा)। ३८ मानस प्रशंसा (ब्रज भाषा)। ३९ (क) आर्य-भाषा सूत्रधार (संस्कृत), ४० (क) भाषा भाष्य (हिन्दी)। ४१ पुष्पवर्षा (ब्रज भाषा)। ४२ भारत सौभाग्य नाटक (हिन्दी)। ४३ विहारी विहार (ब्रज भाषा-व्यास जी के यावतीय ग्रन्थों में यह सर्व प्रधान है)। ४४ रत्नाष्टक (संस्कृत)। ४५ मन की उमङ्ग (हिन्दी और ब्रज भाषा)। ४६ कथा कुसुम (संस्कृत)। ४७ पुष्पोपहार (हिन्दी और ब्रज भाषा)। ४८ मूर्त्तिपूजा (हिन्दी-यह भी अद्वितीय ग्रन्थ है)। ४९ संस्कृताभ्यास पुस्तक (संस्कृत और अंग्रेज़ी)। ५० कथाकुसुम कलिका (हिन्दी भाषा)। ५१ (क) प्राकृत प्रवेशिका (सं०)। ५२ संस्कृत सञ्जीवन (हिन्दी भाषा)। ५३ प्राकृत गूढ़शब्दकोश। ५४ (क) अनुष्टुप् लक्षणोद्धार (संस्कृत)। ५५ शिवराज विजय (संस्कृत उ न्यास)। ५६ बाल व्याकरण (संस्कृत और अंग्रेज़ी ५७ हो हो होरी (ब्रज भाषा)। ५८ झूलनभ्रम (ब्रज भाषा)। ५९ स्वर्गसभा (ब्रज भाषा) ६० विभक्ति विभाग (हिन्दी भाषा)। ६१ (क) पढ़े पत्थर (हिन्दी)। ६२ सहस्रनाम रामायण (संस्कृत)। ६३ गद्यकाव्य मीमांसा (संस्कृत) ६४ (क) मरहट्ठा नाटक (हिन्दी)। ६५ साहित्य नवनीत (हिन्दी)। ६६ (ख) वर्णव्यवस्था ६७ विहारी चरित्र (हिन्दी)। ६८ (ख) आश्रम धर्म निरुपण। ६९ अवतार कारिका (संस्कृत)। ७० अवतार मीमांसा (हिन्दी)। ७१ विहारी व्याख्या कार चरितावली (हिन्दी)। ७२ (क) पश्चिमयात्रा (हिन्दी)। ७३ (ख) स्वामिचरित (संस्कृत) ७४ (ख) शीघ्रलेखप्रणाली (हिन्दी भाषा-नागरी प्रचारिणी सभा को चाहिए कि इस अद्वितीय ग्रन्थ के मुद्रित कराने का पूर्ण उद्योग करे) ७५ गद्य काव्यमीमांसा (हिन्दी)। ७६ (क) श्यामविनोद (ब्रज भाषा)। ७७ (ख) रांचीयात्रा (हिन्दी भाषा)। ७८ (ख) निज वृत्तान्त।

व्यास जी की एक विवाहिता कन्या, विधवा पत्नी और राधाकुमार नाम का एक ग्यारह बारह वर्ष का पुत्र है। बालक के पढ़ने लिखने का प्रबन्ध व्यास जी के कार्य कर्त्ताओं को पूर्णरीति से करना चाहिए।

सुना है कि श्रीनगर (पूर्णिया) के गुणग्राही राजा कमलानन्दसिंह बहादुर ने २०) रु० मासिक व्यास जी की विधवा पत्नी के भरण पोषण और पुत्र के पठन पाठन के लिये नियत कर दिया है। यदि यह बात सत्य है तो राजा साहब ने अवश्य ही मेव यह बहुत ही प्रशंसनीय और अद्वितीय उदारता का परिचय दिया है।

जगदीश्वर व्यास जी की पुनीत आत्मा को शान्ति प्रदान करें यही हमारी प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नावली

[गत अङ्क के आगे]

चंद्रोदय होने के कारण हलकी चांदनी वहां फैल गई थी और राजा उत्कण्ठित हो कर वहीं पर चारो ओर घूम रहा था। इतने ही में बसन्तक ने शीघ्रता से आगे बढ़कर सागरिका के आने की सूचना दी, जिसे सुनतेही आनन्द से विह्वल होकर राजा सागरिका के आगे बढ़कर गद्गद कण्ठ से कहने लगा–"प्यारी, सागरिके! अब तो अपने वचनामृत से हमारे तापित हृदय को शीतल करो!"

राजा के ऐसे आदर के वचन, जोकि उसने सागरिका जानकर कहे थे, बासवदत्ता के हृदय में विषैले बाण के समान लगे, जिससे विकल होकर उसने अपने मन में कहा,–"हा! जब महाराज ही स्वयं अपने मुख से ऐसा कह रहे हैं तो अब क्या सन्देह शेष रहगया? हाय! जब इनका हृदय सागरिका के प्रेमसागर में निमग्न हो रहा है तो फिर ये क्यों मुझसे प्रेमसंभाषण करेंगे?"

बासवदत्ता तो मनही मन इस प्रकार सोच रही थी और उसे चुप देख कर बसन्तक ने कहा–सागरिका! क्या तुम भी महारानी बासवदत्ता की भांति कठोर होगईं, जो भाग्यों से ऐसे अवसर के मिलने पर भी खुलकर महाराज से प्रेमालाप नहीं करतीं? सुनो! महारानी बासवदत्ता की कठोर बातें सुनते सुनते महाराज के कान दुखने लगे हैं, इसलिये अब तुम अपनी अमृतभरी बातों से उनमें अमृत चुवाओ"।

एक तो राजा की बातों से बासवदत्ता का हृदय विदीर्ण होही चुका था, उसपर बसन्तक की बातें तो मानो नमक की भांति उसमें लगीं, जिससे घबराकर उसने धीरे से कांचनमाला के कान में कहा–"कांचनमाला! सुना तूने? अब नहीं सहा जाता। हा! मैं अब ऐसी कटुभाषिणी हो गई! और बसन्तक जी मधुरभाषी हुए?"

कांचनमाला ने भी उसी प्रकार धीरे से बासवदत्ता के कान में कहा–"महारानी जी! आप घबराँय नहीं, इसका भरपूर बदला लेलिया जायगा। अभी आप धीरज धर कर अंत तक देख तो लें कि क्या क्या कौतुक होते हैं।"

राजा ने फिर कहा—"प्रिये प्राणवल्लभे! सागरिके! आजतक सुनते आते थे कि चन्द्रमा को देखकर कमल संकुचित होते हैं, पर आज यह बात मिथ्या प्रतीत हुई। क्योंकि तुम्हारे मुखचन्द्र के दर्शन के लिये हमारे नेत्रकमल पहिले ही से खिल उठे हैं।"

यद्यपि बासवदत्ता ने कांचनमाला के समझाने से अपने को बहुत सम्हाला, पर राजा की ऐसी उक्ति सुनकर उससे न रहा गया और चट अपने घूंघट पट को उलट कर राजा से कहा–"आर्यपुत्र! सच है। पर क्या मैं सचमुच सागरिका हूं? हो सकती हूं; क्योंकि सागरिका के लिये आप ऐसे उन्मत्त हो रहे हैं कि सारे संसार को सागरिकामय देख रहे हैं।"

इस अद्भुत कौतुक को देखकर राजा और बसन्तक ऐसे घबरा गए कि थोड़ा देर के लिये दोनों आपे में न रहे। राजा बज्रपात होने से भी इतना चकित न होता, जितना कि सागरिका के स्थान पर बासवदत्ता के प्रकाश को देख कर हुआ। थोड़ी देर तक उसके मुख से एक शब्द भी न निकला, जैसे काठ मारगया हो। थोड़ी देर पीछे अपनेको सम्हाल कर उसने बड़ी अधीनताई से कहा–"प्यारी बासवदत्ता हमारे अपराध क्षमा करो, प्रसन्न हो।"

बासवदत्ता–"बस, आर्यपुत्र, बस! अब आप हमसे न बोलिए। अब आज से आप कटुभाषिणी बासवदत्ता को मरी समझिए, और उससे अपराध क्षमा कराइए जिसके आगे आप अपराधी हैं।"

बसन्तक ने अवसर देख कर कहा–"श्रीमती महारानी जी! आप बड़ी दयालु हैं; हमारे मित्र का अपराध, प्रथमापराध, क्षमा करिए"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बासवदत्ता ने झिड़क कर कहा—"क्यों बसन्तक जी ! आप फिर मुझसी कटुभाषिणी से बोलते हैं और आपको लज्जा नहीं आती ? आपको धिक्कार है!"

राजा—(बासवदत्ता के पैरों में गिर कर) "प्रिये ! प्राणवल्लभे ! अपने अपराधी दास पर अनुग्रह करो।"

बासवदत्ता—(पैर खींचकर) बस, महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए और सच पूछिए तो अपराधिनी तो मैं हूं, क्योंकि सागरिका और आपके मिलाप में विघ्न डाल कर मैंने ही महा अपराध किया है। अस्तु आपका मनोरथ पूरा हो, मैं जाती हूं।"

इतना कह कर राजा के बहुत बिनती करने पर भी बासवदत्ता कांचनमाला को साथ लिए चली गई, और उसके चले जाने पर राजा अपनेको बार बार धिक्कारने और कहने लगा कि—"हा ! अब जब तक हम बासवदत्ता को प्रसन्न न करलें, हमारा निस्तार नहीं है।" यद्यपि उसे बसन्तक अनेक प्रकार से प्रबोध देता था, पर वह किसी प्रकार धीरज नहीं धारण करसकता था, वरन् अपनी मूर्खता पर बार बार पश्चात्ताप करता था कि—"हा ! हमने आंख रहते भी अन्धे होकर बासवदत्ता को न पहिचाना !!! कहीं ऐसा न हो कि हमारे निरादर से दुखी हो महा मानवती बासवदत्ता अपने प्राण दे दे। इसलिये उसे शीघ्र प्रसन्न करना चाहिए" यह सोच कर राजा बसन्तक के साथ महारानी बासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिये चला।

(१०)

प्रिय पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि जब बासवदत्ता ने कांचनमाला से सुना था कि आज मेरे ही वेश में सागरिका राजा से मिलेगी, जिसके प्रधान उद्योगी बसन्तक और सुसंगता हैं, तब उसका विश्वास सुसंगता के ऊपर से भी जाता रहा और उसने अपनी और और परिचारिकाओं पर इस बात का भार दिया कि वे सब सागरिका को अपने आंखों की ओट न होने दें। यह बात सागरिका को बहुत ही बुरी लगी और उसने ऐसे पराधीन जीवन से मरजाना उत्तम समझा।

सागरिका को सुसंगता ने बासवदत्ता के पहिले ही से पहिरा दिए थे, पर सुसंगता निरुपाय थी कि क्योंकर इतनी आंखों में झोंक कर सागरिका को ले जाय; परन्तु सुसंगता को तो अवसर न मिला और सागरिका किसी से सबकी आंख बचा कर संगीतशाला से निकल अशोक बन में पहुंची और वहां जाकर लता फांसी अशोक में डालकर अपने गले में उसे लगाने का विचार करने लगी। मरने के लिये कटिबद्ध होकर एक बार सागरिका अपनी दशा को विचार कर खूब रोई और गद्गद कण्ठसे आपही आप कहने लगी,—"हा माता हा पिता हाय ! आज तुम्हारी अभागिनी कन्या सचमुच अनाथिनी हो कर अपने प्राण देती है।" इतना कह कर ज्योंही गले में फांसी लगाना चाहती थी कि राजा आकर बलपूर्वक उसके हाथ पकड़ लिए।

राजा बसंतक के साथ महारानी बासवदत्ता को मनाने के लिये जाता था। मार्ग में अशोक वृक्ष में फांसी लगाकर सागरिका को प्राण देते देख शीघ्रता से आगे बढ़कर उसने हाथ पकड़ लिए। ऐसे अवसर में राजा को देख सागरिका भी चकाई और मनही मन कहने लगी—"अरे ! ये तो मेरे साक्षात् हृदयेश्वर महाराज हैं ! अहा इनको देखकर तो अब मरने की इच्छा जाती रही किन्तु पराधीनता के जीने से मरना अच्छा और फिर ऐसा अवसर भी न मिलैगा। इसलिये प्राणप्रिय के दर्शनों से कृतार्थ हो सुख से फांसी लगाकर मरूं !" इस प्रकार मन में सोचकर सागरिका ने राजा से कहा—"महाराज ! इस अभागिनी को छोड़ दीजिए। हाय, मैं चिरदुःखिनी पराधीन हूं। मेरे लिये इतना ही परम मङ्गल है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको देखते देखते सुख से मर सकूंगी। फिर मुझे ऐसा अवसर न मिलेगा, इसलिये दयाकर मुझे छोड़ दीजिए। हाय! आप मुझ अनाथिनी के लिये महारानी के आगे क्यों अपराधी बनते हैं?" इतना कह कर सागरिका बिलख बिलख कर रोने और बलपूर्वक अपने हाथ छुड़ा कर फिर अपने गले में फांसी डालने लगी।

राजा ने झपट कर फिर उसका हाथ पकड़ लिया और उसके मुख को देखकर आश्चर्यित हो बसंतक से कहा, "अहा! मित्र! वेश को देखकर जिसे हमने बासवदत्ता समझा था, वह प्यारी सागरिका निकली। अहा, धन्य भाग्य, कि हम ऐसे अवसर पर पहुंच गए, नहीं तो प्यारी के चिर-वियोग में हमें आजन्म जलना पड़ता"। इतना बसंतक से कहकर फिर उसने सागरिका को हृदय से लगाकर कहा—"प्रियतमे! सागरिके! ऐसा भी दुःसाहस कोई करता है?"

प्रसन्न होकर बसंतक ने कहा—"मित्र, प्यारी का यह अचिंतनीय समागम तुम्हें चिर-सुख-दायी हो।"

राजा—"निस्संदेह, मित्र! इस समय तो बिना मेघ के अमृतवृष्टि हुई।"

बसंतक—"सच है, किन्तु कुसमय की आंधी की भांति यदि महारानी बासवदत्ता न आन पड़ें, तो यह अमृतवृष्टि निस्संदेह प्रेमबाटिका के नवीन अंकुर को पल्लवित करेगी"।

राजा—(सागरिका से) "क्यों! प्रिये! क्या हम तुम्हारे संभाषण योग्य नहीं हैं?"

सागरिका ने अपने हाथ छुड़ा लिए और सिर झुका कर कहा—"बस! महाराज, रहने दीजिए, मिथ्या प्रेम और झूठी उदारता न दिखलाइए। आप क्यों व्यर्थ एक अज्ञात-कुलशीला अनाथिनी बालिका के लिये अपनी रानी के प्रेम की उपेक्षा करके आप उसकी आंखों में अपनेको हलका करते हैं?"

राजा—(आतुरता से सागरिका का हाथ पकड़ कर) "हा! प्रिये! क्यों व्यर्थ हृदय बेधकर उसपर नमक छिड़कती हो? हा! हम क्योंकर अपना हृदय चीर कर तुम्हें दिखलावें! प्यारी! सागरिका! अभी तक तुम्हें हमारे प्रेम में सन्देह है?"

सागरिका—"आपकी बातों का क्या ठिकाना? यदि अभी महारानी आपड़ें तो आप मुझे बिन जानी पहचानी सी करके उन्हींके चरणों में लोटने लगेंगे।"

राजा—"प्यारी! तुम समझी नहीं। सुनो! रानी बासवदत्ता के साथ तो हमारा बनावटी प्रेम है और सच्चा प्रेम तो जो कुछ है वह केवल तुम्हारे ही ऊपर है, इस बात को हम शपथ खाकर कहते हैं..." इतना कहते कहते एका एक कांचन माला को साथ लिए हुए बासवदत्ता पहुंच गई और उसे देखकर सबके सब ऐसे घबरागए कि किसीसे कुछ करते धरते न बना। मानो सब चित्र लिखे से जहां के तहां खड़े रहे।

प्रिय पाठकों को स्मरण होगा कि जब राजा ने पांव पड़कर बासबदत्ता को प्रसन्न कराना चाहाथा, तोभी वह किसी तरह न मानी और चली गई थी। फिर कुछ क्रोध के दूर होने पर उसने आपही आप सोचा कि "महाराजा ने मेरे पैरों में सिर तक धर दिया और मैं न मानी, यह मेरी बड़ी भूल हुई। इसके बदले में अब मैं स्वयं चलकर महाराज को मनाऊं"। यों सोचकर बासबदत्ता कांचनमाला के साथ आ रही थी और जब अशोक बाटिका के पास पहुंची तो उसे कई लोगों के बोलचाल की आहट लगी। तब वह पैर दबाए हुए धीरे धीरे वहां पहुंची और फिर राजा, बसन्तक और सागरिका की जो कुछ बातें हुई थीं एक एक करके सब उसने सुनलीं और झटपट आगे बढ़कर क्रोध से कांपती हुई राजा के वाक्य में वाक्य मिलाकर बोली, "...खाकर कहते हैं—"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी कठिनता से राजा ने अपनेको सम्हाला और हाथ जोड़कर निवेदन किया—"देवी! बिना विचारे व्यर्थ हमें दोषी न समझो। हम सागरिका का तुम्हारा सा वेश बिन्यास देखकर ठगे गए, हमें अभीतक यही प्रतीत था कि तुम्ही फांसी लगाकर..."

वासवदत्ता (शीघ्रता से) "हां, हां, मैंही फांसी लगाकर मरने योग्य हूं। अच्छा, अब आप चुप रहिए। आपकी चतुराई अब एक न चलेगी, मैं सब समझ और सुन चुकी हूं"। यों राजा से कह कर फिर उसने कांचनमाला से कहा—"अरी! इसी लतापाश से इस उत्पाती बसन्तक और इस ढीठ छोकड़ी को बांधके अन्तःपुरमें लेचल"। कांचनमाला "जो आज्ञा' कहकर बसन्तक और सागरिका को लतापाश से बांधकर आगे आगे चली और पीछे पीछे महामानवती वासवदत्ता भी गई। और थोड़ी देर तक उसी अशोक बन में अकेला राजा सोच सागर की तरङ्गों में डूबता उतराता हुआ अपने शयनमन्दिर की ओर गया।

(११)

अन्तःपुर के बहिर्द्वार से निकल प्रमोदबन में आकर हाथ में रत्नमाला लिए सुसङ्गता फूट फूट कर रोरही थी। थोड़ी देर में उसकी हिचकी थम्ही और फिर आपही आप वह प्रलाप की भांति बकने लगी—"हा! प्यारी, सखी, सागरिके! तू कहां गई? क्या हुई? अब मैं कैसे तुझे पाऊं, क्योंकर तेरे भोले भोले मुखड़े को देखूं? ऐ वैरी विधाता! तेरी मूढ़ता पर धिक्कार है!!! हा! जिसे तू कमलदल से भी कोमल उपकरणों से बनाता है, उसीको बज्र की पैनी धार से काटने भी लगता है? हाय! जो तुझे ऐसाही करना था तो मेरी प्राण समान प्रियसखी सागरिका को तूने ऐसे रूप लावण्य से क्यों भूषित किया? हा! प्यारी, सागरिका! निश्चय अब तू इस संसार में जीवित नहीं है, क्योंकि तूने अपने जीने की आशा को तिलांजलि देकर ही अपनी इस अलौकिक और बहुमूल्य रत्नमाला को मुझे दिया है कि यह किसी ब्राह्मण को दान कर दी जाय। पर अब मैं किस ब्राह्मण को खोजूं? बसन्तक को देती, पर उसे तो महारानी जी ने बांधकर बन्दी बना रक्खा है"।

इस प्रकार आपही आप सुसङ्गता प्रलाप कर रही थी कि इतने ही में बसंतक उसके सामने पहुंच कर बोला—"अरी! इन बन्धन में हम कब रहने लगे? प्रिय मित्र (राजा) के कहने से महारानी ने बन्धनमुक्त ही नहीं किया, वरन् अपने हाथ से मुझे भरपेट मेवे के लड्डू भी खिलाए!"

बसन्तक को एकाएक सामने देखकर सुसङ्गता कुछ प्रसन्न हुई और बोली—"तो क्या महारानी महाराज से जो इतनी ऐंठ रही थीं, सो प्रसन्न हो गईं?"

बसन्तक—"क्यों न होंगीं? जब बार बार महाराज ने नाक रगड़ी तो कहां तक मान बना रहे। हम तो छूट गए पर बिचारी सागरिका का क्या हुआ, इस बातका कुछ भी पता नहीं लगता। हमने अन्तःपुर में बहुत ढूंढ़ लगाई पर कुछ फल न हुआ।

सुसङ्गता—"अजी! जब मुझीको प्यारी सागरिका का पता न मिला, तो तुम्हारी क्या गिनती है? हा! प्यारी सागरिका! तेरे ऊपर क्या बीत रही है, सोभी मैं नहीं जान सकती!" इतना कह कर वह रोने लगी। उस धीरज देते हुए बसन्तक ने कहा—"तू इतना घबराती क्यों है? हमने तो सुना है कि महारानी जी ने उसे अपने नैहर उज्जयिनी में भेज दिया है"।

सुसङ्गता—"यह तुम्हारा केवल भ्रम है। महारानी जी ने लोगों की, विशेष कर महाराज की आँखों में धूल डालने के लिये यह झूठा कोलाहल मचा दिया है। और सागरिका को महल ही में किसी गुप्त स्थान में बांध कर छिपा रक्खा है।

बसन्तक—"हा! सुन्दरी, सागरिके! तेरी ऐसी दुर्दशा का वृत्तान्त सुनकर महाराज के प्राणों पर आबनैगी"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसङ्गता–"बसन्तक जी महाराज ! प्रिय सखी सागरिका अपने जीने की आशा छोड़ कर अपने गले की यह अमूल्य रत्नमाला इसलिये मुझे देती गई है कि यह किसी योग्य ब्राह्मण को दान कर दी जाय। इसलिये आप इसे ग्रहण करिए"।

बसन्तक–(आंखों में आंसू भर कर) "हा ! ऐसी दशा में हम इस रत्नमाला के लेने के लिये हाथ बढ़ावें ? हमें तूने महापात्र समझा है क्या ?"

सुसङ्गता ने गिड़गिड़ा कर कहा—"प्यारी सागरिका पर दया करके आप इसे ले लीजिए"।

सुसङ्गता के बहुत आग्रह करने पर बसन्तक ने यह सोच कर कि "अच्छा, इसी रत्नमाला को दिखला कर प्रिय मित्र को धीरज देंगे" उसे लेलिया और कहा–"क्यों, सुसङ्गता ! ऐसी रत्नमाला सागरिका के पास कहां से आई ?"

सुसङ्गता—"बसन्तक जी ! इस रत्नमाला को देख कर मुझे भी बड़ा अचरज हुआ था और मैंने उससे पूछा भी था। पर उसने आकाश की ओर देख कर लम्बी सांस ली और कहा–"सुसङ्गता ! मेरा भाग्य लौट गया है, इसलिये अब तू इस भेद को जान कर क्या करेगी; यह कह कर वह रोने लगी, तो फिर मैंने भी अधिक उससे पूछपाछ करना उचित न समझा। पर इतना तो निश्चय है कि यह रत्नमाला सामान्य घर का नहीं है। निश्चय जानो सागरिका अवश्य किसी बड़े राजघराने की लड़की है।

बसन्तक–"ठीक है, ऐसा ही होगा; हम भी ऐसा ही अनुमान करते हैं। अच्छा, अब तू छिपे छिपे सागरिका की टोह लगा, और हम महाराज के चुटीले चित्त को बहलाने का प्रयत्न करें"।

इतना कह और रत्नमाला पोटली में बांध कर बसन्तक तो राजा उदयन के शयनागार की ओर गया और बार बार अञ्चल से आंखें पोछती हुई सुसङ्गता अन्तःपुर में गई।

(१२)

राजा पलङ्ग पर पड़ा पड़ा करवटें बदल रहा था, बारबार उसासें ले ले कर आप ही आप बक झक कर रहा था, सागरिका की बिरहाग्नि उसे अच्छी तरह संतप्त कर रही थी, इतने ही में उसे धीरज देने के लिये बगल में पोटली बांधे बसन्तक पहुंच गया। ऐसी अवस्था में उसे देखकर राजा को उसी प्रकार धीरज हुआ, जैसे जल में डूबते हुए व्यक्ति को एक काठ के टुकड़े को पाकर होता है।

राजा ने उठकर बसन्तक को गले लगाया और पूछा–"क्यों मित्र ! महारानी की कोपाग्नि में पड़ कर तुम सहजही में क्यों कर छूट आए ?"

बसन्तक ने कहा–"मित्र, महारानी ने तो हम-पर ऐसी कृपा की कि हमें उसने छोड़ ही नहीं दिया, वरन् अपने हाथों से उत्तम उत्तम पदार्थ भोजन कराए और ये सब कपड़े गहने दिए ? और हां, तुम्हीने तो हमें छोड़ देने के लिये बहुत कुछ कहा सुना था ?"

राजा–"अच्छा, अब यह कहो कि सागरिका के साथ महारानी ने कैसा बर्ताव किया और अब वह कहां और किस दशा में पड़ी है ?"

राजा के प्रश्न को सुनकर बसन्तक ने अपना सिर झुका लिया। उसकी आँखें डबडबा आईं और कण्ठ रुँध गया। उसकी ऐसा दशा देख राजा को सांप सा डस गया। थोड़ी देर तक तो वह भी बेसुध की भांति चुपचाप बैठा रहा, पर थोड़ी ही देर में लम्बी सांस लेकर और बसन्तक का हाथ पकड़ कर कहने लगा–"क्यों मित्र, तुम चुप क्यों होगए ? तुम्हारी आकृति से जान पड़ता है कि प्यारी सागरिका का कुछ अमङ्गल हुआ है। हाय ! हाय ! क्या सचमुच उस अनाथिनी ने प्राण त्याग दिया ? हाय ! प्रिये ! प्राणाधिके ! हृदयेश्वरी ! सागरिके !" यों कह कर राजा मूर्च्छित हो शय्या पर गिर पड़ा। उसकी ऐसी अवस्था देख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसन्तक घबरा गया। उसने सोचा कि–"अब जो हम इस समय कुछ बात न बनावेंगे तो यह सागरिका के असह्य वियोग में तुरन्त प्राण तज देगा"–यों सोच कर उसने गुलाब जल छिड़क कर राजा को चैतन्य किया और कहा, "मित्र! धीरज धरो, उतावले न बनो"। परन्तु राजा ने उसके समझाने पर ध्यान न दिया और आप ही आप पागल की भांति बकने लगा–"रे निलज्ज प्राण! अब तू किस आशा पर इस कलेवर में टिका है? तेरी सर्वस्व सागरिका दूर गई और तू अभी तक उसका अनुगामी न हुआ? जल्दी कर जिसमें प्यारी दूर न जाने पावै"।

बसन्तक ने उसका हाथ पकड़ कर कहा–"कुछ सुनते समझते भी हो, या योहीं पागल बन बैठे! सागरिका का हुआ क्या है? उसे तो महारानी ने अपने बाप के घर उज्जयिनी नगरी को भेज दिया है। बस इसी कारण से हम इस अप्रिय सम्वाद को नहीं कहते थे, पर तुमने कुछ और ही समझा।"

राजा–(लम्बी सांस लेकर) "हाय! बासवदत्ता ने बड़ा अन्याय किया, अस्तु। परन्तु, मित्र! यह बात तुमने किससे सुनी?"

बसन्तक–"सुसङ्गता से; और यह लो, सागरिका अपनी रत्नमाला तुम्हारे लिये देती गई है, कि जिसमें इसे देख कर प्राणनाथ को धीरज हो।" यह कह कर उसने रत्नमाला राजा के हाथ में दी, जिसे उसने लेकर हृदय से लगाया और कहा–"हाय, यह रत्नमाला भी हमारी ही भांति अभागिन है कि प्यारी के गले से अलग हो गई। पर फिर भी प्यारी की प्रतिनिधि हो कर यह हमारे अधीर चित्त का आश्वासन करती है। (आंखों में आंसू भर कर) मित्र! अब प्राणप्यारी सागरिका का मिलना दुर्लभ है"।

बसन्तक ने कहा–"कुछ दुर्लभ नहीं है। तुम धीरज धरो। हम उसके मिलने का जल्दी ही कोई न कोई उपाय अवश्य करेंगे"।

यद्यपि बसन्तक की बातों से राजा को कुछ ढाढ़स हुआ, पर उसका चित्त ठिकाने नहीं हुआ। उसी समय एक ऐसी घटना हुई कि जिससे राजा का ध्यान सिमट कर एकत्र हुआ और कुछ काल के लिये वह प्रकृतिस्थ होगया।

उसका वृत्तान्त यों है कि कुछ काल पूर्व राजा ने अपने प्रधान सेनापति रुमण्वान को कोशलपुर जीतने के लिये सेना के साथ भेजा था; सो वह विजय का डङ्का बजाता हुआ ठीक इसी समय पहुंचा, जब राजा सागरिका के लिये शोकाकुल हो रहा था।

द्वारपालिका बसुन्धरा से रुमण्वान के आने का समाचार पाकर राजा ने चट उसे अपने समीप बुलाया और उससे कोशलपुर के शीघ्र विजय होने के वृत्तान्त को सुनकर बड़ा हर्ष प्रगट किया, तथा रुमण्वान को बहुत बड़ा पुरष्कार दे कर बिदा किया।

रुमण्वान के जाने पर फिर राजा सागरिका की चिन्ता से शोकाकुल हो जाता, यदि ठीक उसी समय उसके पास महारानी बासवदत्ता की परिचारिका काञ्चनमाला न पहुंचती। उसने राजा को प्रणाम करके कहा कि–"प्रभो! महारानी जी के पीहर (उज्जयिनी) से शंवर सिद्ध नाम का एक ऐन्द्रजालिक आया है सो महारानी जी की इच्छा है कि आप भी प्रमोदबन में पधारें, जो कि अन्तःपुर के प्रासाद के सम्मुख है, तो उसका खेल देखा जाय"।

काञ्चनमाला के उत्तर में राजा ने इतना ही कहा कि–"उसे कहो अपने खेल की सामग्री ले कर आवै, हम अभी आते हैं"। और फिर वह बसन्तक के साथ प्रमोद वन में पहुंचे।

वहां महारानी बासवदत्ता और उसकी असंख्य परिचारिकाएं उपस्थित थीं। महारानी ने आगत-स्वागत करके राजा को रत्न की चौकी पर बैठाया और आप भी राजा की बाईं ओर दूसरी रत्न चौकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बैठीं। पीछे सब परिचारिकाएं चँवर छत्र आदि लिए खड़ी हुईं। राजा की दहिनी ओर स्वर्ण चौकी पर बसन्तक बैठा। इस प्रकार सब ठीक ठाक होने पर वह ऐन्द्रजालिक भी वहां बुलाया गया। क्योंकि वह बासवदत्ता के नैहर का था, इसलिये उससे परदा नहीं किया गया।

ऐन्द्रजालिक ने राजा रानी को प्रणाम करके खेल प्रारम्भ किया और चँवर हिला हिला कर अनेक प्रकार के विचित्र कौतुक तथा अद्भुत दृश्य यथा-क्रम से दिखलाए।

उसके अपूर्व कौतुक पर सभी मोहित, चकित, पुलकित और स्तम्भित हुए। उसी समय अवसर देख कर बसन्तक ने उठ के ऐन्द्रजालिक के कान में कहा—"सिद्ध जी! इन प्रपञ्चों को बस करो, यदि महाराज से भरपूर पुरष्कार की आशा हो तो उन्हें 'सागरिका' दिखलाकर प्रसन्न करो"।

बसन्तक की बातों का ऐन्द्रजालिक उत्तर भी न देने पाया था कि द्वारपालिका बसुन्धरा ने आ कर राजा से निवेदन किया कि—"प्रभो! महामन्त्री यौगन्धरायण ने निवेदन किया है कि सिंहलेश्वर के भेजे हुए उनके प्रधान मन्त्री वसुभूति आपके कञ्चुकी वाभ्रव्य के साथ आए हैं, सो श्रीमान उनसे अभी भेट करें। इतने में आवश्यक कार्यों को पूरा करके मैं भी आता हूं"।

सिंहलेश्वर के प्रधान मन्त्री के आगमन समाचार को सुनकर सभी प्रसन्न हुए और बासवदत्ता ने राजा से कहा,—"प्राणेश्वर! तो, इस समय ऐन्द्रजालिक का कौतुक बन्द किया जाय। क्योंकि मेरे मामा के यहां से मन्त्रीवर वसुभूति आए हैं उनसे अभी मिलना चाहिए"। रानी की सम्मति को मान कर राजा ने इन्द्रजाल के खेल को बन्द किया और वसुभूति की अगवानी के लिये बसन्तक को भेजा।

ऐन्द्रजालिक ने अपनी सामग्री को समेट कर कहा—"महाराज! मेरा एक खेल और देखने लायक है"। इसपर राजा ने कहा "हां! फिर किसी समय देखा जायगा!!!" यह सुनकर ऐन्द्रजालिक चला गया।

बसन्तक जब वसुभूति के सामने पहुंचा तो उसने सागरिका की रत्नमाला बसन्तक के गले में देखकर (क्योंकि उस समय वह माला बसन्तक के गले में थी) वाभ्रव्य के कान में कहा कि—"ऐं! यह तो राजकुमारी की रत्नमाला है!"

वाभ्रव्य—"हां, है तो सही, इससे पूछें कि यह माला तुमने कहां पाई?"

वसुभूति,—"अभी ठहरो! जरा भली भांति सोच विचार लें तब पूछेंगे; क्योंकि इस राजभवन में भी रत्नों का अकाल नहीं है।"

इतने ही में बसन्तक वसुभूति और वाभ्रव्य के निकट पहुंच गया और उन दोनों को बड़े आदर के साथ राजा के समीप ले आया। राजा ने भी उन दोनों को उचित आसन पर बैठाया और वे दोनों भी राजा रानी को प्रणाम करके आसन पर बैठ गए। फिर कुशलप्रश्न के पश्चात् राजा के पूछने पर वसुभूति ने अपने आने का वृत्तान्त यों कहा—"महाराज! मेरी कहानी निरी दुःख से भरी हुई है, जिसके स्मरण करने से भी कलेजा फटा जाता है; पर क्या कहूं, कहता हूं, सुनिए! हमारे महाराज सिंहलेश्वर की एक रत्नावली नाम की कन्या थी। उनका हाथ देखकर एक सिद्ध ने भविष्यत वाणी कही थी कि जो इस कन्या को व्याहैगा वह निश्चय चक्रवर्त्ती राजा होगा। उसके बातों की टोह आपके मन्त्रीवर यौगन्धरायण को लगी और उन्होंने आपका हित समझ कर वह कन्या आपके लिये सिंहलेश्वर से मांगी। पर उन्होंने यह कह कर अपनी कन्या को देना नहीं स्वीकार किया कि मैं अपनी भांजी बासवदत्ता के हृदय पर अपनी ही लड़की को सपत्नी रूप से नहीं बिठलाया चाहता"। इस उत्तर को सुनकर महामन्त्री यौगन्धरायण ने आपके कंचुकी (उंगली दिखाकर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाभ्रव्य को सिंहलेश्वर के पास भेजकर यों कहवाया कि 'लीजिए, अब रत्नावली के देने में आप अस्वीकार न कीजिए, क्योंकि आपकी भांजी वासवदत्ता लवणानल में जलमरी।' तब निरुपाय हो, सिंहलेश्वर ने आपसे सम्बन्ध बनाए रखने के लिये रत्नावली मेरे साथ कर दी और मैं जहाज़ पर चढ़कर भारतवर्ष की ओर चला। किन्तु दैवी दुर्घटनावश समुद्र में किसी पहाड़ से टकरा कर जहाज जल में डूब गया और साथ ही रत्नावली, मैं और वाभ्रव्य तथा और जितने व्यक्ति जहाज पर थे, सभी डूब गए।"

इतना सुनते सुनते वासवदत्ता की आखों से चौधारे आंसू बहने लगे और वह अपनी ममेरी बहिन रत्नावली के लिये लम्बी लम्बी उसासें लेने लगी। यद्यपि यागन्धरायण ने झूठ मूठ वासवदत्ता को 'जली मरी' कह कर उसकी सौत बनाने के लिये रत्नावली को मँगवाया था, पर इस बातको सुनने से उसे कुछ भी कष्ट न हुआ, क्योंकि वह चाहती थी कि जिसमें राजा का अभ्युदय हो वही मेरे लिये सर्वोपरि सुख है। परन्तु अब उसी रत्नावली के लिये, कि जो यदि जीती होती तो अपनी सौत बनती, वासवदत्ता बडा खेद करने लगी। थोड़ी देर में सब कोई कुछ कुछ शान्त हुए। तब राजा के कहने पर वसुभूति ने अपनी कहानी यों पूरी की—

"किसी प्रकार काठ के टुकड़े के सहारे से बहता बहता मैं किनारे लगा और कई दिन पीछे कंचुकी वाभ्रव्य से भी भेंट हुई। वे भी मेरी ही भांति बचे थे। बस, फिर हम दोनों आपके दर्शन को यहां आए। हाय! रत्नावली खोकर अब जीते जी मैं किस तरह सिंहलेश्वर को अपना मुहं दिखाऊंगा"।

अवसर जानकर बसंतक ने कहा—"आप लोग अपने अपने दृष्टान्त के अनुसार धीरज रखिए। जिस विधाता ने आप लोगों को डूबने से बचाया है, आश्चर्य नहीं कि वही रत्नावली को भी जीती जागती लाकर मिलादे।"

अब वाभ्रव्य ने बसंतक से उस रत्नमाला के विषय में कुछ पूछना चाहा था कि इतने ही में "आग लगी, आग लगी" का भयानक कोलाहल चारो ओर से सुनाई देने लगा, जिसे सुनकर ये लोग भी चिहुंक उठे और देखने लगे कि कहां आग लगी है। परन्तु उन लोगों को दूर नहीं जाना पड़ा। सामने ही अंतःपुर के सबसे बड़े प्रासाद में ऐसी भयानक आग लगी हुई दिखाई पड़ी मानो आग का पहाड़ खड़ा हो। धूएं के साथ अग्निशिखा आकाश तक जाती थी और चारों ओर से केवल यही ध्वनि सुनाई पड़ती थी कि "आग लगी! आग लगी!!"

अपने महल में ऐसी भयानक आग लगी हुई देख कर वासवदत्ता बड़ी घबराई और रोकर राजा से बोली, "हाय! हाय! मैं बड़ी राक्षसी हूं। प्राणनाथ! रक्षा करो, मैंने डाह से सागरिका को अपने महल में सोने की सांकल से बांध रक्खा है, उसे बचाओ। हाय! प्यारी, सागरिका!"

वासवदत्ता के मुख से सागरिका का वृत्तान्त सुनकर राजा उस अग्नि समुद्रमें कूद पड़ा, बसन्तक, वभ्रव्य, वसुभूति और वासवदत्ता ने हजार समझाया, लाख सिर पटका, पर राजा ने किसी की एक न मानी और यही कहता हुआ आग में घुस गया कि—"अब हम भी सगरिका के साथ ही जल मरेंगे।"

जब राजा आग में धंस गया तो वासवदत्ता भी अपनेको धिक्कारती हुई कि "इन सब उपाधियों की जड़ मैं ही हूं" आग में घुस गई। फिर तो बसन्तक भी यह कह कर कि "प्रिय वयस्य के बिना अब हम भी जीकर क्या करेंगे" आग में कूद पड़ा। पीछे पीछे 'हाय हाय करते हुए वसुभूति और वाभ्रव्य भी अग्नि में घुस गए और वासवदत्ता की परिचारिकाएं भी रोती पीटती आग में चली गईं और सबको ग्रास करके अग्नि देवता आकाश पर्यन्त अपनी शिखा की दिव्य छटा पहुंचाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)

इधर तो यह सब हुआ, और उधर राजा ने क्या किया सो सुनिए। विरह अग्नि के ताप के आगे राजा इस प्रलयाग्नि को तुच्छ समझ अन्तःपुर में बासवदत्ता के शयन मन्दिर में पहुंचा। घर धूएं से भर गया था, बड़ी कठिनता से उसने सागरिका को ढूंढ़ निकाला। ऐसे समय में एकाएक राजा को अपने सामने देख कर सागरिका ने मन में कहा—"मैंने तो समझा था कि यह आग छिनभर में मेरे सारे संताप को दूर कर देगी, पर हाय! प्राणनाथ को देख कर तो फिर जीने की इच्छा होती है"। यह सोचकर राजा से बोली—"प्राणपति! मुझे बचाओ"।

राजा ने सागरिका को हृदय से लगाकर कहा—"प्राणाधिके, सागरिके! डरो मत। यह आग तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। क्योंकि तुम्हारा समागम स्वयं सारे संतापों को दूर करता है"।

इतना कह कर एकाएक राजा चिहुंक कर ठठक रहा, क्योंकि उसने देखा कि एकाएक वह प्रलय की सी आग न जाने कहां लोप हो गई; और सब वस्तु ज्यों की त्यों थी मानो वहां कहीं आग लगी ही न थी। इतने ही में बासवदत्ता, वसन्तक, वसुभूति, वाभ्रव्य और सब परिचारिकाएं "आश्चर्य, आश्चर्य!!" कहती हुई वहीं पहुंच गईं। फिर तो राजा के साथ मिलकर सभी आश्चर्य करने लगे कि ऐसी भयानक आग गई किधर, और ऐसी गई कि उसने अपना चिन्ह तक न छोड़ा!!! राजा ने कहा—"ऐं! यह स्वप्न था, या जादू?"

वसन्तक ने कहा—"हमें जान पड़ता है कि यह उसी ऐन्द्रजालिक की दुष्टता थी। वह दुरात्मा कहता था कि 'अभी एक खेल और दिखलाना बाकी है' सो यह उसीने खेल खेला होगा"।

बासवदत्ता—"उस बिचारे ऐन्द्रजालिक को अब बुरा भला न कहो"।

वसन्तक—"इसलिये कि प्रिय मित्र को इसी बहाने सागरिका प्राप्त हुई"।

इतने ही में सागरिका को देखकर वसुभूति ने वाभ्रव्य के कान में कहा—"इस कन्या का रूप तो हमारी राजकुमारी 'रत्नावली' से पूरा मिलता है! यह क्या बात है?"

वाभ्रव्य—"और वसन्तक के गले की माला का भी अच्छा मेल मिल रहा है!"

वसुभूति ने वाभ्रव्य से सम्मति करके राजा से पूछा कि—"महाराज, यह कन्या आपके पास कहां से आई?"

इसपर बासवदत्ता ने कहा—"यह बात महाराज नहीं जानते। मुझे महामंत्री यौगन्धरायण ने सागर से पाकर इसको दिया और इसका नाम 'सागरिका' बतलाया था।"

इस बात से वसुभूति को निश्चय होगया कि यही सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है। इतने ही में रत्नावली ने वसुभूति को चीन्हा और "हाय! मन्त्री वसुभूति!" इतना कहकर रोदिया। तब तो बासवदत्ता घबराई और कंचुकी वाभ्रव्य से पूछने लगी कि—"क्या मेरे मामा की लड़की, मेरी छोटी बहिन रत्नावली यही है?"

"इसमें कुछ भी सन्देह नहीं" यह कहते कहते महामन्त्री यौगन्धरायण भी वहीं पहुंचे।

यह आश्चर्यजनक वृत्तान्त को सुनकर राजा स्तम्भित हो गया। उसने यौगन्धरायण से पूछा "ऐं! महाकुलसम्भूत सिंहलेश्वर महाराज विक्रमबाहु की कन्या रत्नावली यही हैं?"

यौगन्धरायण—"हां, महाराज!"

इतना सुनते बासवदत्ता दौड़कर रत्नावली का बन्धन खोलने लगी और राजा ने यौगन्धरायण से कहा "यह तुम्हें क्योंकर मिली?"

यौगन्धरायण—"सिद्ध की बात सुनकर मैंने सिंहलेश्वर से ....."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने बात काटकर कहा—"यह सब तो हम मन्त्री वसुभूति से सुन चुके हैं। तुमने इसे कहां पाया सो कहो।"

यौगन्धरायण—"जिस समय रत्नावली लकड़ी के सहारे से समुद्र के तीर पर लगी, उस समय कौशाम्बी के धनदास नामक एक महाजन की दृष्टि उसपर पड़ी। धनदास ने रत्नावली के गले में बहुमूल्य रत्नमाला देखकर समझा कि यह किसी बड़े घराने की लड़की होगी, यह सोचकर वह इसे मेरे पास ले आया। मैंने उस कन्या को पहिचान लिया क्योंकि उसका चित्र मैं देख चुका था। अतएव मैंने सागरिका उसका नाम रक्खा और मुख्य भेद को छिपा कर इसे रानी के हाथ सौंप-दिया कि यदि यह अन्तःपुर में रहैगी तो कभी न कभी आपकी दृष्टि इसपर अवश्य पड़ेगी। फिर इसको ब्याह कर आप अवश्यमेव चक्रवर्त्ती होंगे और सिद्ध की भविष्यवाणी भी सत्य होगी। सो मेरे सोचे हुए सब कार्य सिद्ध हुए।"

यौगन्धरायण की बात सुनकर राजा ने हँस कर कहा—"तो इससे जान पड़ता है कि बहुत से काम आप हमसे बिना पूछे भी कर डालते हैं। वाह! यहां तक हो गया और हमें कुछ खबर तक नहीं!"

यौगन्धरायण—"स्वामिन्! मन्त्रीपन सहज नहीं है। बहुत से ऐसे कार्य आजाते हैं, जिनका निबटेरा मैं स्वयं करता हूं और फिर ऐसे कामों को बिना पूछे करने में कोई दोष नहीं जिनमें आपही की पूरी पूरी शुभचिन्तना हो।"

राजा—"ठीक है। तो क्या यह ऐन्द्रजालिक का बखेड़ा भी आपही ने रचा था?"

यौगन्धरायण—"इसमें भी कोई सन्देह नहीं, क्योंकि यदि ऐसा मैं न करता तो आप महल के भीतर सांकल से बँधी हुई रत्नावली को क्योंकर पाते और वसुभूति जी को भी इसकी क्या खबर लगती? अस्तु। मेरा जहां तक बस चला मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया, अब महारानी जी ने अपनी बहिन को पहिचान लिया है इसलिये अब जो यह उचित समझें सो करें"।

इतने में वासवदत्ता ने रत्नावली के बन्धन खोलकर उसे गले लगाया और हँस कर यौगन्धरायण से कहा—"मन्त्री जी! आपने अपनी चाल के आगे सबकी चाल धीमी कर दी। अब जो आप इतनी बातें बना रहे हैं, सो सीधी तरह योंही क्यों नहीं कह देते कि 'रत्नावली महाराज को देदो'।

बसन्तक—"इसमें अधिक कहने का क्या प्रयोजन है? बुद्धिमान के लिये संकेतमात्र बहुत है"।

वासवदत्ता—"अच्छा, प्यारी बहिन, रत्नावली, आ, मैंने तुझे बिना जाने बूझे बहुत सताया; पर अब मैं बड़ी बहिन के योग्य कोई काम करूं"। यह कह कर वासवदत्ता ने अपने हाथसे अपने वस्त्राभरण पहिराकर रत्नावली को सँवारा और राजा के सामने लाकर कहा—"प्राणवल्लभ! आप मेरी प्यारी बहिन को ग्रहण करिए, और देखिए, इसके माता, पिता, बन्धु, बांधव, सब दूर देश में हैं, इसलिये आप इसके साथ ऐसाही बर्त्ताव करिएगा कि जिसमें यह उन्हें स्मरण कर दुखी न हो।"

राजा ने आदर से रत्नावली का हाथ पकड़ कर वासवदत्ता से कहा—"देवी! तुम्हारे अनुग्रह का पुरष्कार हम आदर से ग्रहण करते हैं और निश्चय जानो रत्नावली के विषय में तुम्हें कभी सोच न करना पड़ेगा"।

बसन्तक ने उछल कर कहा, "भगवति वासवदत्ते! आपका देवी नाम आज यथार्थ हुआ"।

इस उत्सव में वह 'रत्नमाला' जो बसन्तक को सुसङ्गता ने दी थी, बसन्तक ने पुरष्कार में पाई और आनन्द ध्वनि से सारा राजप्रासाद गूंज उठा।

जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोकिलाष्टक

भाषा-पद्यानुवाद-समेत

(१)

हे कोकिल ! कुरु मौनं जलधरसमयेऽपि पिच्छिला पृथ्वी ।
विकशितकुटजकदम्बे, वक्तरि भेके कुतस्तवावसरः ॥

सवैया

बैठत क्यों नहिं मौन गहे ,
सुनु कोकिल ! मीत ! ये सीख हमारी ।
मेघन के धनि ऊधमसों ,
जहँ कीच मई ही भई छिति सारी ॥
फूले फले कुटजादि कदम्बन की ,
जहँ सोहति है चहुँ धारी ।
दादुर की टिटकारनि मैं ,
तुव बोलिवेकी है कहां अब पारी ॥

(२)

अस्यां सखे ! वधिरलोकनिवासभूमौ,
किं कूजितेन खलु कोकिल ! कोमलेन ।
एतेहि दैवहतकास्तदभिन्नकर्णास्त्वां,
किन्नमेवकलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥

सवैया

सुनु, मीत ! कहा बहिरे जन की ,
या निवासथलीन पैं जाइबे मैं ।
अरु कोकिल ! बारहि बार तिन्हैं ,
मधुरे निज बैन सुनाइवे मैं ॥
जिनकों बिधि बाम दियोही नहीं ,
जुग कानकों आपु बनाइवे मैं ।
नहिं चूकहिंगे मतिहीन कछू ,
हठि आंगुरी तोहि दिखाइवे मैं ॥

(३)

येनोषितं रुचिर पल्लवमञ्जरीषु,
श्रीखण्डमण्डित रसालवने सदैव ।
दैवात्स कोकिलयुवा निपपात निम्बे,
तत्रापि रुष्टबलिपुष्टकुलैर्विवादः ॥

सवैया

चन्दन पूर रसाल के कानन ,
सुन्दर पल्लव मंजरि माहीं ।
जाने निवास कियो चित चाहि कै ,
कोकिल कूजित-कंठ सदाहीं ॥
सोई दिनानि के फेरनिसों ,
इत आइ परयो अब निंब के पाहीं ।
ह्याऊं बलीमख काग कठोर ,
अकारन वाद विवाद कराहीं ॥

(४)

येनानन्दमये बसन्तसमये, सौरभ्यहेलामिलद्-
भृङ्गालीमुखरे रसाल शिखरे, नीताः परा वासराः ।
आकालस्य वशेन कोकिलयुवा, सोऽप्यद्य सर्वा दिशो-
भ्राम्यद्वायसचंचुघातविदलन्मूर्द्धा मुहुर्धावति ॥

सवैया

जाने सुगन्धसने मदआते ,
बसंत के भृङ्गन सों सरसायो ।
सुन्दर साल रसालन ही पै ,
सदा सुख सों निज द्योस गँवायो ॥
सोई दसोहूं दिसान मैं कोकिल ,
भागहि तें भ्रम भूरि भुलायो ।
कागन के इन चोचन की,
सिर ठोकर खात फिरै भरमायो ॥

(५)

काकैः सह प्रवृद्धस्य, कोकिलस्य कलागिरः ।
खलसङ्गोऽप्यनैष्ठुर्य्यं कल्याणप्रकृतेः क्वचित् ॥

दोहा

बाढ़ेहूं संग काक के, कोकिल के कल बैन ।
खल संग करिहु न कहुं सुजन, गहैं निठुरता ऐन ॥

(६)

भ्रातः ! कोकिल ! कूजितेन किमलं, नार्घर्यत्य नष्टेगुणं ।
तूष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे ॥
प्रोद्दामद्रुमसङ्कटे कटुरटत्काकावली संकुलः ।
कालोऽयं शिशिरस्य सम्प्रति सखे ! नायं वसन्तोत्सवः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवैया

कोकिल ! मीत ! न बोलु कछू ,
कहु, नीचन ने गुन जान्यो कितै कब !
यातें रहै चुप होइ कछू दिन ,
सूखे पलास के कोटर मैं दब ॥
ऊंचे महीरुह की फुनगीन पैं ,
बोलत काग कठोर इतै अब ।
ये पतझार के द्योस अबै ,
पर बोलियो तूहू बसंत लगै जब ॥

(७)

तव तद्वाचि माधुर्य्यं जातं कोकिल कूजितं ।
यैः पोषितोऽसि तानेव जातपक्षो जहासि यत् ॥

सोरठा

पाई अधिक मिठासु, तैं कोकिल निज बैन मैं ।
कारन पाल्यो जासु, होत पाँख त्याग्यो तिनहिं ॥

(८)

काके त्वयिच विभेदः स्वरूपतो नास्ति हे कोकिल !
काकः काकः स्वरतस्त्वमपि तथैव पिकः पिक इति ॥

दोहा

तेरे अरु, पिक ! काक के, भेद रूप मधि नाहिं ।
तू कोकिल सुरसों भयो, वह पुनि काक कहाहिं ॥

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(५)

फ़ोटो उतारने में कभी कभी नेगेटिव अनेक कारणों से बिगड़ जाता है (१) निर्दिष्ट अथवा आवश्यक काल तक प्लेट को एक्सपोज़ न करने से प्लेट का फिल्म पतला पड़ जाता है। इसी कारण से तसबीर छापते समय चित्र अच्छा न होकर अधिक काला होजाता है। इस अवस्था में निम्न लिखित उपाय के करने से चित्र कुछ अच्छा हो सकता है।

नेगेटिव में जहां पतला पड़ गया है उसे घना करने को, अर्थात् जहां से कालिमा अधिक आती है उसे कम करने को, अंग्रेज़ी में इन्टेन्सीफाईंग (Intensifying) कहते हैं। इस कार्य में अनेक प्रकार के मसालों को काम में लाना पड़ता है। सब लोगों के सुबीते के लिये यहां पर एक साधारण रीति का वर्णन कर दिया जाता है।

पहिले जिस नेगेटिव का फिल्म पतला पड़ गया हो उसे ६, ७ मिनिट तक पानी में भली भांति धो लो। यदि नेगेटिव पर कुछ तिलहट देख पड़े तो एक रिकाबी में कुछ सोडा पानी में घोल कर उसमें नेगेटिव को पहिले धोओ और तब पुनः पानी में उसे धोओ। इसके पीछे नीचे लिखे अर्क को बनाओ–

मरकरी आफ़क्लोराइड	१० ग्रेन
पानी	१ आउंस

जिस दिन नेगेटिव को इन्टेन्सीफ़ाई करना हो उसके एक दिन पहिले इस अर्क को बना रखना चाहिए क्योंकि मरकरी को पानी में घुलते कुछ अधिक समय लगता है। इसलिये अर्क को बिना एक दिन पहिले बनाए उससे अच्छा काम नहीं हो सकता। इसे बड़ी सावधानी से काम में लाना चाहिए, क्योंकि यह पारे से बनता है और घाव पर लग जाने से हानि पहुंचाता है। एक रिकाबी में इस अर्क का साधारण अंश लेकर उसमें पानी मिला दो और नेगेटिव को उसमें इस भांति से रख दो कि फिल्म ऊपर की ओर हो और वह उस अर्क में डूबा रहे। थोड़ी ही देर में नेगेटिव का काला रङ्ग बदलने लगेगा और वह सुन्दर सफ़ेद रङ्ग का हो जायगा। देखते देखते जब नेगेटिव का रङ्ग सफ़ेद काग़ज़ सा हो जाय तब उसे उस रिकाबी में से निकाल कर साफ़ पानी में धोओ और एक दूसरी रिकाबी में इतना पानी भर दो कि जिसमें वह नेगेटिव अच्छी तरह उसमें डूब जाय। इस पानी में १०, १२ बूंद लाइकर अमोनिया मिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उस नेगेटिव को उसमें रख दो। तुम्हारे देखते ही देखते उसका रंग फिर गाढ़ा काला हो जायगा। अब नेगेटिव को निकाल कर अच्छी तरह पानी में धोओ, पीछे सुखा कर उससे काग़ज़ पर तसवीर छापने से वह अच्छी आवेगी।

(२) यदि नेगेटिव का फिल्म किसी कारण से घना हो जाय तो उसको काम लायक बनाने के लिये उसे नीचे लिखे अर्कों में कुछ क्षण धोना चाहिए। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि डेवलप करते समय ध्यानपूर्वक कार्य न करने से फिल्म मोटा पड़ जाता है। यदि उसी समय सावधानी से कार्य किया जाय तो उसका मोटा पड़ना असम्भव है।

ऐसे मोटे फिल्म वाले नेगेटिव को स्थायी अर्थात् फ़िक्स्ड करते समय, अर्थात् डेवेलप करके उसे फिक्सिंग बाथ में धोते समय, नियत परिमाण से कुछ अधिक हाइपो के मिला देनेही से प्लेट का फिल्म मोटा न पड़ेगा।

फेरो साइनाइड आफ़ सलिडेसन को रेड प्रूसियट आफ़ पोटाश के साथ मिला कर धोने ही से कार्यसिद्धि होगी, अथवा केवल साइनाइड आफ़ पोटाश को पानी में घोल कर उससे प्लेट को धोने से फ़िल्म पतला पड़ जायगा।

प्लेट के फ़िक्स्ड हो जाने पर भी उसे पुनः हाइपो में धोने से फिल्म पतला सड़ सकता है पर पुनः हाइपो में धोने पर उसे भली प्रकार से पानी से धो लेना आवश्यक है।

(३) कभी कभी प्लेट को डेवलप करते समय उसका फिल्म चारो ओर से सिकुड़ कर बीच में फैल जाता है। इसको अंगरेज़ी में फ्रीलिङ्ग (freeling) कहते हैं। यह दोष कभी कभी प्लेट के ठीक न होने से उत्पन्न होता है। डेवलपर में अधिक क्षार पदार्थ के रहने से, वा उसके अधिक तेज़ न होने से अथवा हाइपो के अधिक पड़जाने से प्लेट की यह दुर्गति होती है। यदि प्लेट की यह अवस्था फ़िक्सिङ्ग बाथ में धोते समय हो जाय तो प्लेट को बड़ी शीघ्रता से ५ मिनिट तक फिटकरी के पानी में भिगो दो। यदि इससे भी प्लेट ठीक होता न जान पड़े तो दानेदार फिटकरी को काम में लाओ। यदि प्लेट में चित्र के निकलते निकलते वा उसके डेवलप होते ही फिल्म पतला पड़कर सिकुड़ने लगे तो उस अवस्था में प्लेट का ठीक कर लेना नितान्त कठिन है। इस अवस्था में डेवलपर बनाने के लिये जिस पानी से काम लेना हो उसमें निमक मिला देना उचित है। यदि अक्सलेट डेवलपर से प्लेट धोना हो तो उसे पहिले फिटकरी के पानी से धो लेना चाहिए।

कभी कभी प्लेट के फिल्म को सिकुड़ने से रोकने का एक यह भी उपाय है कि उसके चारों ओर मोम लगा कर तब उसे डेवलप करो। बरफ़ के पानी के प्रयोग करने से सुन्दर तसवीर बन सकती है।

(४) समय समय पर प्लेट का फिल्म अनेक कारणों से पतला पड़ता जान पड़ता है। ऐसे प्लेट से तसवीर छापने पर भी अच्छा फल कभी नहीं प्राप्त होता। इसके अनेक कारण हैं जिनका नीचे वर्णन किया जाता है। इनपर ध्यान रख कर काम करने से इस दोष से चित्र के बिगड़ जाने का भय नहीं रहता। फ़िल्म के पतले पड़ जाने के कारण ये हैं—डेवलपर का कम होना, उसमें तेज़ी की कमी, और नियत समय से अधिक काल तक एक्सपोज़ होने से, कभी कभी प्लेट के पुराने होने से अथवा उसके शीत स्थान में पड़े रहने से यह दोष उत्पन्न होता है और प्लेट में उसे डेवलप करने पर फुटकियां फुटकियां पड़ जाती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि अमोनिया मिला कर डेवलप करने से प्लेट अच्छा और स्पष्ट नहीं निकलता। इसका कारण यह है कि शीशे में से आवश्यकतानुसार अमोनिया निकालते निकालते उसका ग्यास उड़ जाता है। इससे उसमें तेज़ी नहीं रहजाती और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे डेवलपर के प्रयोग करने से चित्र के कभी स्पष्ट आने की आशा नहीं की जा सकती। इससे बचने का उपाय यह है कि अमोनिया जब मोल लिया तो उसमें से कुछ अलग दूसरी शीशी में रख लिया और बाकी एक रक्षित स्थान में रख छोड़ा। जो अलग ले लिया हो उसमें उतनाही पानी मिला देना चाहिए जितना अमोनिया है और तब उसे अवश्यकतानुसार काम में लाना चाहिए। कथित कारणों से यदि प्लेट पतला पड़ जाय तो उसे इन्टेन्सीफ़ाई कर लेना चाहिए।

(५) अनेक कारणों से प्लेट के ऊपर एक प्रकार का धुंधलापन कभी कभी देखने में आता है। इसको अंग्रेज़ी में फ़ाग कहते हैं। इसमें से, लाइट फ़ाग (हलका धुंधलापन), केमिकल फ़ाग (रासायनिक धुन्धलापन), ग्रीन फ़ाग (हरा धुन्धलापन) और आलकाली फ़ाग प्राय देखने में आते हैं।

लाइटफ़ाग–किसी प्रकार से प्लेट में चांदना लगजाने से इस प्रकार का धुन्धला पन उसपर आजाता है। केमिकल-फ़ाग भिन्न भिन्न द्रव्यों के परस्पर संयोग अथवा रासायनिक उपादान मूलक किसी चूक के हो जाने से इस प्रकार का दोष उत्पन्न होता है। ग्रीन फ़ाग–यदि प्लेट नियत काल से कम समय तक एक्सपोज़ किया जाय और डेवेलप करते समय इसे ध्यान से अधिक देरतक डेवलप करने से तसवीर साफ़ साफ़ निकल आवेगी। उसे रासायनिक द्रव्यों में रखने से यह दोष होता है। प्लेट के अधिक पुराने होने से भी यह दोष हो जाता है, परन्तु इससे प्रिण्ट करने में कोई विशेष हानि न होगी। आलकाली फ़ाग–डेवलपर में अमोनिया सोडा आदि क्षारीय पदार्थों की मात्रा अधिक पड़जाने से इस प्रकार का धुन्धलापन प्लेट पर आ जाता है।

विदेश में फ़ोटो उतार कर उसे डेवेलप कर चित्र के देखने की इच्छा हो और वहां कोई स्थान ऐसा न हो जो अन्धकार गृह का काम देसके तो साथ में एक डार्क टेण्ट ले जाना चाहिए। यह ठीक अन्धकार गृह का काम देता है। इसमें किस

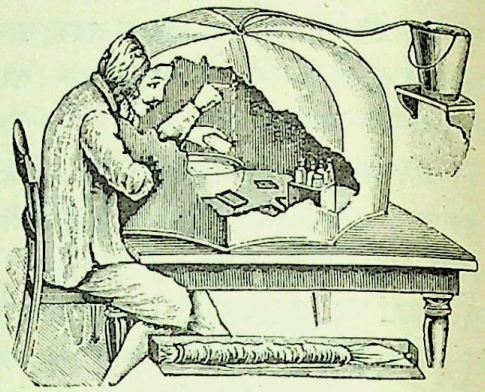

डार्क टेण्ट

प्रकार सामिग्री को सजाना और काम करना चाहिए यह ऊपर दिए चित्र को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट विदित हो जायगा।

नेगेटिव वार्निश

नेगेटिव को स्थायी रखने के लिये उस पर "नेगेटिव वार्निश" लगाना चाहिए, नहीं तो छापते समय उसपर दाग लगजाने की आशङ्का रहती है। नेगेटिव को सुखा लेने के अनन्तर उसे आग पर कुछ गरम करके और उसी आगसे थोड़ी दूर पर हट के जिसमें कि उसको कुछ कुछ आग की गरमाहट पहुंच सके, प्लेट को बांए हाथ की वृद्ध तर्ज्जनी और मध्यमा अँगुली से पकड़ कर उसके फ़िल्म का भाग ऊपर को करके दहने हाथ से धीरे धीरे उपयुर्क्त वार्निश को प्लेट की दहनी ओर सामने से लगाओ, और प्लेट के चारो ओर वार्निश लग जाय तब जो बचजाय उसे पुनः शीशी में डालदो; तदनन्तर इसी प्रकार सीधा प्लेट रखके १५ सेकंड तक उसे हिलाते रहो, जिससे उपर्युक्त वार्निश प्लेट के किसी भाग में अधिक जम न जाय। इस क्रिया के करने के पीछे प्लेट को पुनः आग पर सेकके सुखा लेना चाहिए।

नेगेटिव वार्निश करने के पहिले वा पीछे रिटच करना होता है, अर्थात् नेगेटिव के वे स्थान जो छापने में साफ़ न दिखाई देते हों वा अधिक काले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हों, उन स्थानों पर पेन्सिल से काला करदेने वा करालेने से उसका दोष जाता रहता है।

रिटचिङ्ग वक्स

इस कार्य के करने में कुछ ड्राइङ्ग जानने की आवश्यकता है, क्योंकि बिना इसके जाने शेड और लाइट अर्थात् छाया और आलोक को ठीक ठीक नहीं रख सकते। पहिले पेन्सिल को आगे से खूब महीन बनाकर, नेगेटिव को शीशे के फ़िल्म पर रिटचिङ्ग मिडियम लगा के सुखा लो और तब धीरे धीरे बिन्दु बिन्दु करके पेन्सिल से कार्य्य करो। पहिले पहल इसके सीखने वाले के लिये तो यह काम कुछ कठिन है, इसी कारण से प्लेट के पीछे की ओर लाल स्याही वा लाल रङ्ग के लगा देने से भी यह रिटच का काम होजाता है।

उपर्युक्त कार्य्य के समाप्त होने के पीछे चित्र छापना होता है।

चित्र के छापने के पहिले मनुष्य को चित्र उतारने के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक ज्ञात होता है। प्रत्येक शिक्षार्थी को प्रथम अपने इष्ट मित्र और कुटुम्बियों के चित्र उतारने की विशेष इच्छा होती है। पहिले कहा जा चुका है कि मनुष्य का प्रकृत चित्र उतारने के लिये एक विशेष स्थान की आवश्यकता है कि जहां विशेष न तो घाम हो और न रुका हुआ स्थान हो कि जहां उचित रीति से प्रकाश पहुंचता ही न हो। इस कार्य्य के लिये लाइट रूम में जैसा उत्तम चित्र उतर सकता है वैसा दूसरे स्थान पर नहीं उतर सकता। इस प्रकार से चित्र उतारने के लिये एक ग्लास लाइट रूम अर्थात् एक शीशे का रोशनीदार मकान बनाना आवश्यक है।

यह घर पूर्व पश्चिम कम से कम २०–२५ फ़ीट लम्बा और ८-१० फ़ीट चौड़ा होना चाहिए और वह ऊंचा भी ९–१० फ़ीट होना चाहिए। इसके पूर्व की ओर तख़्ते से एक दम बन्दकर दो और उत्तर की ओर पूर्व की ओर से तीन फुट और पश्चिम की ओर से दस फुट तख़्ते से बिलकुल बन्दकर दो। इसी प्रकार दक्षिण ओर भी तख़्ते से एकदम बन्दकर दो। पश्चिम ओर ठीक बीचो बीच में तीन फुट चौड़ी और छः फुट लम्बी एक खिड़की

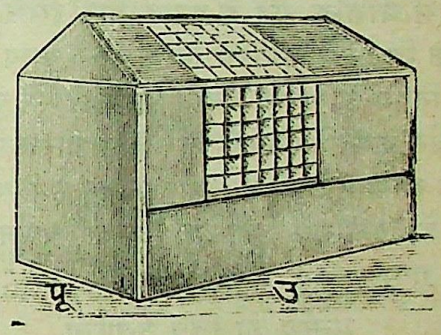

शीशे का घर

रखकर बाकी सब जगह बन्दकर दो। उत्तर ओर वाले सात फुट स्थान में (घर २० फ़ुट लम्बा है) जो खुला हुआ है, घिसी हुए कांच की टट्टी लगा दो; इस प्रकार ऊपर दिए हुए चित्र के अनुसार छत बना लेना चाहिए। उत्तर की ओर वाला पूर्व और पश्चिम का कोना जिस तरह तख़्ते से बन्द किया गया है, इस घर की छत भी उसी प्रकार काठ या क्रिकेट से बन्द करनी होगी; केवल बीच वाली जगह सात फुट घिसे हुए कांच से बन्द करनी होगी, और छत के दक्षिण ओर भी ठीक उत्तर ओर की भांति छावनी करनी चाहिए। इस शीशे के घर Glass room) के भीतर कांच के नीचे और बगल में सादे कपड़े का पर्दा लगाना चाहिए। यह पर्दा इस तरह लगाना चाहिए कि जब चाहे सरका दिया जासके। और एक नीले रंग का पर्दा दक्षिण ओर वाले कांच के नीचे इस तरह से टांग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खो कि जिसमें आलोक गृह में अपने इच्छानुसार आलोक को घटा बढ़ा सको।

घर के भीतर पूर्व की ओर व्याक ग्रौण्ड (Back ground) परदा लटका कर उसके डेढ़ फीट सामने जिसका चित्र उतारना है, उसे बैठाओ। फिर अपने क्यामरा को लगा कर पहिले कही हुई रीति से फ़ोकस कर लो। कुछ दिन अभ्यास करने ही से इस विषय में अच्छी तरह जानकारी हो जायगी। तात्पर्य यह कि आदर्श मूर्त्ति पर उत्तम रीति से छाया आलोक का लाना ही लाइट रूम का मुख्य प्रयोजन है।

इस आलोक गृह के बनाने और इससे काम लेने के विषय में कतिपय स्मरण रखने योग्य वैज्ञानिक नियम हैं, परन्तु उनका इस छोटीसी पुस्तक में वर्णन करना कठिन है और वे साधारण फोटोग्राफ़ी सीखने वालों के विशेष जानने के विषय भी नहीं हैं, इसलिये यहां पर उनका वर्णन नहीं किया गया।

मनुष्य का चित्र उतारना

मनुष्य का चित्र उतारने के लिये खुला हुआ या खुलासा स्थान होना चाहिए, क्योंकि फ़ोटोग्राफ़ी सीखने वालों में बहुतेरे ऐसे भी होते हैं जिन्हें लाइटरूम या आलोक गृह के बनवाने का सामर्थ्य या सुबीता नहीं है। पर जिन्हें ऊपर कहे हुए घर के बनवाने का सामर्थ्य है, उन्हें चाहिए कि घर के आगे, छत के ऊपर या किसी खुले से स्थान में इस आलोक गृह को बनवावें। पहिले जो घर बनाने के नियमादिक लिखे गए हैं, उन्हें कोई भूल न जाय। फिर आलोकगृह के बनने पर उसकी दीवार हलके नीले रंग से रंग देनी चाहिए। और जिन्हें वैसे घर के बनवाने में सुबीता न हो, वे दालान बरामदे या अच्छी तरह उंजाले घर में चित्र उतारें।

जिसका चित्र उतारना है, उसे ऐसेही उंजाले स्थान में बैठा कर पहिले कही हुई रीति के अनुसार फ़ोकस करना चाहिए। जिसका चित्र उतारना है, उसे अच्छी तरह बैठाना चाहिए, अर्थात् उस अवस्था, सज धज और उसके साधारण हाव भा समझ कर जैसे बैठाने में वह उत्तम जचे, वैसे उसे बैठाना चाहिए। उसकी अवस्था की ओर रखने का कारण यही है कि यदि वह व्यक्ति अस दरिद्र हो, सब कोई उसे दरिद्र जानते हों तो उस पहिराव दरिद्र के योग्य होना चाहिए, क्योंकि अच्छी पहिरावा पहिरा कर चित्र उतारने पर अच्छा होने पर भी एकाएक उसे कोई पहिच न सकेगा। जैसे कोई अध्यापक ब्राह्मण सब रामनामी की उपरनी और हरिनाम की झो धारण करता हो, और उसे सब कोई कर्मिष्ठ ब्रा समझते हों, उसीको यदि तुम कोट पतलून पहि साहब बना कर चित्रउतारो तो उस चित्र को कर कोई भी उस ब्राह्मण को न पहिचान सके। इसलिये जिस व्यक्ति की जो पोशाक हो उसे पोशाक पहिरा कर चित्र उतारना चाहिए। स्वाभाविक रीति से जो व्यक्ति खड़े या बैठे रहने जिस भाव से रहता हो उसे उसी प्रकार बैठा कर खड़ा करके चित्र उतरना चाहिए। कोई कोई बांई या दहिनी ओर जरा सिर टेढ़ा रखते हैं, कोई सीना ऊंचा करके खड़े होते हैं, और कोई स्वभाव से ही दांत निपोरे रहते हैं; अतएव उन लो को उसी प्रकार स्थिर करके चित्रउतारना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति का चित्रउतारना उसके बैठाने का ढंग शिल्पियों (Artist) पसन्द पर निर्भर हैं। यहां पर जिनका चि उतारना हो, उनके बैठाने के विषय में कई एक कहते हैं। जिसका चित्र उतारते हो, उसे अत्य सरल भाव से बैठाओ, उसके हाथ पैर आदि आगे बढ़े या पीछे खैंचे न हों। नेत्र क्यामारा ओर कुछ तिरछे हों, और उसी स्थान पर नेत्र लिये एक निर्दिष्ट स्थान दिखला दो। वृद्ध व्यक्तियों को यन्त्र से कुछ दूर थोड़ा तिरछे भ (Sideway) से बैठाओ। इकहरे बदन के दुबले पतले व्यक्तियों को ठीक सामने और यन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ पास बैठाओ। लम्बे हाथ पैर वालों को उन्हें कुछ सिकोड़ कर बैठाओ। हाथ को ऊंचा या नीचा न दीख पड़े। अथवा एक हाथ बगल वाले टेबिल के ऊपर रखकर दूसरे हाथ में पुस्तक या और कुछ धरादो। टेबिल के ऊपर वाले हाथ की आधी मुट्ठी बन्धी हुई हो। पहिले आलोक और छाया का (Light and Shade) विषय जो कहा गया है उसमें गड़बड़ न होने पावे। इसका ध्यान रक्खो जिन लोगों का मुख अधिक गोल या थोड़ा हो, नेत्र छोटे या नासिका सकरी और छोटी हो, उन लोगों को तिरछे से बैठाना चाहिए; अर्थात् उन लोगों का एक बगल तो समस्त देख-पड़े और दूसरा बगल थोड़ा दिखलाई दे। जिनका मुख अत्यन्त सुन्दर और नासिका और नेत्र भी वैसेही हों, उन लोगों को इस ढव से बैठाना चाहिए कि जिसमें उन लोगों के एक बगल के ४ भाग के ३ भाग और दूसरे बगल के ४ भाग का १ भाग अच्छी तरह से स्पष्ट दिखलाई दें। यदि एक ही प्लेट पर दो व्यक्तियों के चित्र उतारने हों तो एक व्यक्ति को दूसरे की ओर कुछ घुमाकर बैठाना चाहिए या एक ही टेबिल के बाएं और दहिने, दोनो ओर दो कुर्सियों पर दोनो को कुछ घुमाकर बैठाना चाहिए, जिसमें यह जान पड़े कि मानो वे दोनो आपस में बात चीत कर रहे हैं। और उन दोनों में से प्रत्येक व्यक्ति की एक एक बाहु टेबिल के ऊपर रखवानी चाहिए। एक संग अनेक व्यक्ति का या परिवार का चित्र उतारना हो तो आलोक चित्रकार की बहुदर्शिता की आवश्यकता होती है। ऐसी जगह उनके पसन्द पर ही कार्य्य निर्भर है। तौभी जब जिस अवस्था का चित्र उतरना हो, उस समय चित्र में एक या अनेक व्यक्ति अपने अपने स्वाभाविक भाव ही से बैठे या खड़े हों। अस्वाभाविक भाव का चित्र कभी न उतारना चाहिए। शिशु और बालकों का चित्र सहज और स्वाभाविक अवस्था में उतारना चाहिए।

जिस व्यक्ति का चित्र उतारना हो उसे काले रङ्ग के कपड़े पहिराने चाहिएं। फीके रङ्ग के कपड़े पहिरने से चित्र सादा या सफ़ेद हो जाता है और उत्तम नहीं होता। पीले और लाल रङ्ग के कपड़े पर चित्र उत्तम नहीं उतरता। नीले रङ्ग का कपड़ा चित्र में सफेद हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि न बहुत गाढ़े और न बहुत हलके रङ्ग के कपड़े पहिरने चाहिएं।

लाचारी से यदि सफ़ेद कपड़े पहिर कर चित्र उतरवाना पड़े तो खूब साफ़ या धोया कपड़ा न पहिर कर कुछ मैला कपड़ा पहिर कर चित्र उतरवाना चाहिए।

[क्रमशः]

पृथ्वीराज-प्रयाण

जननी हमैं सीख अब दीजै।
परम कुपूत पूत तेरो यह
ताहि बिदा अब कीजै॥

पूत कुपूत होत बहुतै पै
होत कुमाता नाहीं।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि
होतै रही सदाहीं॥

करिकै यहै भरोस मातु मांगत
तुम पै कर जोरे।
छमियो सब अपराध हमारे
पुत्र-सनेह निहोरे॥

करिकै बहुत साध जनमायो
बहु आसा करि पोष्यो।
राज छत्र दै मान बढ़ायो
सबहि भांति संतोष्यो॥

पै या भाग्यहीन नैं माता!
कोउ आसा न पुरायो।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर
दिन दिन अधिक सतायो;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त-प्रवाह बहाइ, जीति बहु
देस छत्र सिर धारयो ।
राज बढ़ावन लोभ मातु हम
देश बन्धु बहु मारयो ॥

सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो
छलियन के छल हारयो ।
हाय मातु ! तोहि दै मलेच्छ कर
चहत विदेश सिधारयो ॥
परम पवित्र शस्य धन पूरित
रत्नमई सुखदाई ।
जासु अनूप रूप पै सुरगन
रहत सदा ललचाई ॥

रही अनादि काल सों पालित
जो आरज भुज छाहीं ।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम
राखि सके हठ नाहीं ॥

मातु ! बहुत सुख पायो तुम मम
पुरुषन के आधीना ।
अब वह सुख सपने से ह्वैहैं
हाय दैव ! कह कीना ॥

यद्यपि हम सबही विधि दोषी
लग्यो कलङ्क हमारे ।
पै निर्दोष मातु सब भांति हि
जौ जिय न्याय बिचारे ॥

अपुनेहि भाई बन्धु आपुही
करैं जो छल अरु द्रोहा ।
तौ रच्छा ह्वै सकै कौन विधि
जौ बिधिही बुधि मोहा ॥

ताहू पैं निज भुज प्रताप
दुष्टन कों दियो भगाई ।
छली ह्वोर छल सों जीते
याकी नहिं हमैं हँसाई ॥

होनहार जो रह्यो भयो अब
सोच किए फल नाहीं ।
मातु विदा अब देहु हाय !
बिछुरत तुव पद नख छाहीं ॥

पुण्य भूमि मैं जनमि हाय ! अब
मरन चल्यो मरुदेसा ।
आर्यध्वजा दै शत्रु हाथ मैं
यह अति हाय कलेसा ॥

अपुने किए कर्मफल भोगन
मैं कछु दुख मोहि नाहीं ।
पै जननी तुव भावि दसा
बिचारि हृदय फटि जाहीं ॥

ये देवालय वेदशास्त्र ये
यह गोब्राह्मण पूजा ।
यह पवित्रतम धर्मभाव जग
मैं न जासु सम दूजा ॥

हाय ! महाद्रोही मलेक्ष कर
परि सब कलुषित ह्वैहैं ।
पाप ताप पूरित भुव करिकै
घोर यंत्रणा दैहैं ॥

जाकी विद्या कला और
कौशल की छटा लुभाई ।
इकटक देखत रहत जगत
मोहित ह्वै सुधि बिसराई ॥

होइ यवन पददलित सोइ सब
माटीही ह्वै जैहैं ।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी
कछु दिन माहिं लखैहैं ॥

जा भारत प्रताप दिसि लख जग
चख चकचौंधी लागै ।
हाय ! कहा सो लुटिहै पद तर
सोचत ही बुधि भागै ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै
कंठ रुद्ध ह्वै आयो।
चल काफ़िर क्या रोता है
इक यवन ढकेलि सुनायो॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर-
जोरि जननि पग लागी।
देश बन्धु दिसि हेरि बचन
बोले भारत रसपागी॥

भैया! मैया दै मलेक्ष कर
हम तौ जात बिदेसा।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौं बस
होइ न याहि कलेसा॥

जद्यपि पराधीन भए पै जौ
आत्मपनौ न बिसरिहौ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहौ
तौ अरि सीस बिहरिहौ॥

जैसे भई दसा यह सो तुम
निज नैनन हिं निहारौ।
दूर बहाइ खोर सो इक ह्वै
भारत मातु उबारौ॥

जिनि भूलौ निज पुरुषन के
गौरव की भ्रात कहानी।
सिमिटि शत्रु बल मेटि उबारौ
भारत भुव सुख खानी॥

सुनत बचन ये म्लेक्ष सैन चहुं
दिसि सों गरजन लागी।
मुसुक बांधि भारत गौरव कों
भारत सों लै भागी॥

चिर स्वतंत्रता चिर गौरव चिर
सुख छन मांहि बिलाई।
बँधि-चिर-दिन दासत्व-शृङ्खला,
भारत भुव बिलखाई॥

दीन बन्धु निज बिरद सम्हारौ
दीन दुखित दुख हारौ।
हे भारत भुवनाथ हाथ गहि
भारत भूमि उबारौ॥

बा० राधाकृष्णदास

ज्ञान

कपिलमुनि कृत सांख्य शास्त्र के अनुसार—ज्ञानही से अपवर्ग की प्राप्ति होती है। यह मत सांख्यकार ही का नहीं किन्तु प्रायः सभी दर्शनों का है। धूमयान, तड़ियन्त्र, सूक्ष्मदर्शकयन्त्र इत्यादि समस्त अघटित घटना ज्ञान ही के विजृम्भण का फल है। यह लौकिक वार्ता हुई। पारलौकिक विषय में, ज्ञान से जब निःश्रेयस तक की सिद्धि संभव है, तब ईश्वर का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व आदि प्रमाणित करना ज्ञान साध्य समझने में कोई आपत्ति नहीं। अतः ज्ञान के विषय में हम कुछ कहना चाहते हैं।

२—जो कुछ हम जानते हैं वही ज्ञान है। परन्तु जानने के कई प्रकार हैं। पृथक् पृथक् आचार्य्यों ने इन जानने के प्रकारों की पृथक् पृथक् संख्या नियमित की है, जिनमें तीन मुख्य हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। शेष प्रकार इन्हीं तीनों के अन्तर्भूत समझने चाहिए।

३—नदी, पर्वत, गृह, वाटिका, सरोवर इत्यादि को हम नेत्र से देखते हैं। अतएव इन ज्ञातव्य विषयों के साथ चक्षुरिन्द्रिय का संयोग होने से हमको यह ज्ञान होता है कि यह सरोवर है, यह नदी है, यह पर्वत है, इत्यादि। इस प्रकार के ज्ञान को चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं। यदि किसी मनुष्य से, जिसे सरोवर का ज्ञान हुआ है, पूछें कि तुमको क्या ज्ञान हुआ, तो सहस्रशः प्रयत्न करने पर भी सरोवर का नाम लिए बिना ज्ञान के आकार को वह कदापि स्पष्ट करके बतलाने में समर्थ न होगा। इससे यह विदित होता है कि ईश्वरीय संकेता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुसार जितने विषय हैं, उनमें से एक एक ने एक एक विशिष्ट ज्ञान को बांध सा लिया है।

इसी प्रकार, सायङ्काल, गृह में बैठे हुए अकस्मात् बहिरुद्यान में मयूर की उच्च केका को श्रवण करने से श्रावण प्रत्यक्ष होता है। तथैव वहीं, उद्यान में, कुसुमित कुन्द की सुवास आने से घ्राणज प्रत्यक्ष होता है। इसी भांति त्वाच और रासन प्रत्यक्ष भी जानने चाहिए। यह पांच प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान पंच ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु, श्रवण, घ्राण, त्वचा और रसना–जन्य है। इसके अतिरिक्त मानस प्रत्यक्ष भी होता है, परन्तु मन अन्तरिन्द्रिय होने के कारण बहिर्विषयों के साथ उसका संयोग होना संभव नहीं; अतः अन्तर्ज्ञान-मात्र मानस प्रत्यक्ष के द्वारा होता है।

४—उपर्युक्त प्रकार का ज्ञान, ज्ञानकक्षा में तभी सन्निवेशित हो सकता है। जब वह सर्वतोभाव से शुद्ध हो। अशुद्धतादोषदूषित होने से संशय अथवा भ्रम में उसकी अतिव्याप्ति हो जाती है।

एक आधार में दो कोटियों का अवलम्बन करने से जो ज्ञान होता है, उसे संशय कहते हैं। यथा अन्धेरे में किसी ने किसी मनुष्य को देखकर यह विकल्प किया कि यह मनुष्य है अथवा वृक्ष? तो ऐसे स्थल में वह यथार्थ ज्ञान नहीं, किन्तु केवल संशय कहा जाता है। इसी प्रकार, जब किसी पदार्थ के विषय में और का और ही ज्ञान होता है, तब उसे भ्रम कहते हैं। यथा पीतल को सुवर्ण समझना इत्यादि। एतादृश संशयात्मक और भ्रमात्मक ज्ञान, विषयों का यथार्थत्व विदित होने से विनष्ट हो जाता है, परन्तु एक प्रकार का आहार्य ज्ञान, जो जान बूझकर होता है वह पदार्थों का निश्चय हो जाने पर भी बना रहता है। यथा नाट्यशाला में शकुन्तला और दुष्यन्त को अवलोकन कर, यथार्थ में यह जानने पर भी कि यह शकुन्तला और दुष्यन्त नहीं किन्तु कोई अन्य व्यक्ति उनके वेश में है, उस आहार्य ज्ञान का तिरोभाव नहीं होता।

५—दूसरे प्रकार का ज्ञान अनुमान ज्ञान कहलाता है। जब दो पदार्थों का नियत साहचर्य होता है, अर्थात् दोनों सदैव एकही साथ रहते हैं, तब एक पदार्थ को जानकर दूसरे का भी ज्ञान हो जाना अनुमान के नाम से अभिहित होता है। अपने घर का द्वार बन्द करके। भीतर बैठे हुए जब हम निकटस्थ वाटिकास्थित मयूर की गम्भीरध्वनि श्रवण करते हैं। तब हमको ध्वनि का कर्णद्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता है; परन्तु मयूर का ज्ञान हमारे प्रत्यक्ष होने का विषय नहीं, कारण, उसे हम नेत्रेन्द्रिय द्वारा नहीं देख सकते। तब कहिए, हमने किस भांति जाना कि यह मयूर की ध्वनि है? अनुमान द्वारा; क्योंकि हमने इसके पूर्व बहुत बार देखा कि एतादृशी ध्वनि मयूर ही के कंठ से निकलती है। इसी प्रकार, यदि, उस समय, अथवा समयान्तर में, हमको कुसुमित केतकी का सुवास मिले तो हम उस सुवास का घ्राणज प्रत्यक्ष करके यह अनुमान करेंगे कि खदिरादि को सुगन्धित करने के लिये, घर में, केतकी पुष्प कहीं अवश्य रक्खा है। इस स्थान पर सुवास का ज्ञान प्रत्यक्ष का विषय और केतकी के अस्तित्व का ज्ञान अनुमान का विषय हुआ।

उपर्युक्त अनुमानद्वय में मयूर और केतकी "साध्य" हैं; केका और सुगन्ध उसके साधन के "हेतु" हैं; वाटिका और घर, जिनमें हेतु द्वारा साध्य की सिद्धि की गई है, वे "पक्ष" हैं। इनके अतिरिक्त "सपक्ष," "व्याप्ति" और "परामर्श" भी तर्कशास्त्र के संज्ञाशब्द हैं; परन्तु इनके विवरण की यहां आवश्यकता नहीं।

६—इस विस्तृत विश्व में इतने विषय हैं कि अल्पजीवी और अदूरदर्शी अल्पज्ञ मानव ज्ञानेन्द्रिय द्वारा कदापि उन सबका प्रत्यक्ष करने में समर्थ नहीं हो सकता। जैसे एक मनुष्य समस्त वस्तुजात को प्रत्यक्षीभूत नहीं कर सकता, वैसेही उसे अनुमान द्वारा भी नहीं जान सकता। अतः प्रत्यक्ष और अनुमान के बहिर्भूत एक प्रकार के ज्ञान-साधन की आवश्यकता शेष रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७–हमनें कभी इंगलेण्ड यात्रा नहीं की; अतः हमने लण्डन नगर भी नहीं देखा और तदन्तर्गत पारलियामेण्ट का प्रचण्ड मंडप भी नहीं देखा; तो क्या हम स्वेज़ कनाल, लण्डन नगर और पारलियामेण्ट मंडप का कुछ भी वृत्त नहीं जान सकते? जान सकते हैं। विश्वसनीय और विद्वान् मनुष्य जो वहां गए हैं और जाकर उन स्थलों को अवलोकन करके पुस्तक द्वारा तत्तद्वर्णन उन्होंने प्रकाशित की हैं, उन वर्णनों को पाठ करके, तीन सहस्र कोल की दूरी पर भारतवर्ष में बैठे बैठे, हमको उन उन विषयों का स्थूल ज्ञान होने में कोई व्यत्यय नहीं आता। ज्ञान-साधन के इस तीसरे प्रकार को "शब्द" कहते हैं।

८–जैसे दूसरों के प्रत्यक्ष किए गए विषयों का उनकी लिखी हुई पुस्तकों के द्वारा हमको ज्ञान होता है, वैसेही दूसरों के अनुमान किए गए विषयों का भी उसी भांति हमको ज्ञान होता है। यदि ऐसा न होता तो नाना प्रकार के आश्चर्यजनक शोध और घटानाएं जो हम इस समय देख रहे हैं, कदापि इस दशा को न प्राप्त होतीं, क्योंकि ऐसे अनेक विषय हैं, जिनके जानने के लिये एक व्यक्ति की विद्या, बुद्धि और अध्यवसाय बस नहीं। ऐसी दशा में एक विद्वान् अनुमानादिसाधन द्वारा जो सिद्ध करता है, वह पुस्तकस्थ करके औरों के विचार करने के लिये छोड़ जाता है। और विद्वान् उस लेख को समझ, उसके आगे ज्ञानार्जन करने का प्रयत्न करते हैं, और तदुपार्जन के साधनों का अवलम्बन करके उस मित ज्ञान को अधिकाधिक बढ़ाते जाते हैं। न्यूटन* ने पृथ्वी की माध्याकर्षण शक्ति का शोध करके ग्रन्थ द्वारा उस शोधज्ञान का वितरण समग्र भूमण्डल में किया, जिसकी सहायता से अपर विद्वानों ने अनेकानेक अन्य प्राकृतिक नियमों का भेद जाना, और नाना प्रकार के कलाकौशलादिक निर्म्माण किए; अथ च तद्द्वारा और भी अनेक विज्ञानविद्याओं की उन्नति की। न्यूटन के सिद्धान्तों का यदि वे लोग आदर न करते और यह कह कर उनको त्याज्य समझते कि जो कुछ हमने स्वयं नहीं देखा अथवा अनुमान द्वारा स्वयं प्रमाणित नहीं किया वह विश्वसनीय नहीं, तो विज्ञान विद्या इस उन्नतावस्था को कदापि न पहुंचती।

९–तर्कशास्त्र वाले ज्ञानसाधन के कारणीभूत प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द को प्रमाण नाम से उल्लेख करते हैं, क्योंकि विषयों का अस्तित्व प्रमाणित किए जाने पर तदनन्तर इन्द्रियों को तदाकार वृत्ति प्राप्त होती है। शब्दप्रमाण को योरप के तत्ववेत्ता पृथक् प्रमाण नहीं मानते; परन्तु हम स्वदेशीय दर्शनशास्त्रसम्मत विषय को लिखते हैं, अतः

---

* न्यूटन का नाम इस स्थल पर हमने इस कारण से दिया है कि इस समय जिस स्कूल अथवा कालिज के विद्यार्थी से यह प्रश्न किया जाता है कि भूमि की आकर्षणशक्ति का प्रथमतः ज्ञान किसने प्राप्त किया, तो वह तत्काल न्यूटन का नाम लेता है, क्योंकि पाठशालाओं में प्रचलित पुस्तकें न्यूटन की प्रशंसा से पूरित हैं और इस शक्ति को आदि में इन्हीं महात्मा ने जाना यह ठौर ठौर पर उनमें लिखा है। विद्यार्थीजनों का इसमें क्या अपराध? जैसी उनको शिक्षा मिली है वैसाही उनमें उसका फल भी फलित हुआ है। उनसे यदि यह कहें कि इस विषय में न्यूटन का नाम ग्रहण करना भूल है तो वे इसे शतशः प्रमाण देने पर भी कठिनता से मानेंगे।

अतएव उदाहरणार्थ हमको भी न्यूटन ही का आश्रय लेना पड़ा। तथापि हम यह अवश्य लिखना चाहते हैं कि न्यूटन नहीं किन्तु हमारे भास्कराचार्य ने भूमि की आकर्षणशक्ति को पहिले पहिल जाना था। न्यूटन सन् १६४२ में उत्पन्न हुआ। भास्कराचार्य सन् ११५० ई० के मध्य में हुए। इन्होंने अनुमान ५०० वर्ष न्यूटन के पहिले अपने गोलाध्याय ग्रन्थ के भुवनकोश नामक अध्याय में लिखा है—

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समान्तात् क्व पतत्वियं खे?

भावार्थ—पृथ्वी में एक प्रकार की आकर्षणशक्ति है जिसके बल से वह आकाशस्थित जड़ पदार्थों को अपनी ओर खींच लेती है, इसीसे वे पदार्थ गिरते से हैं ऐसा बोध होता है। समतल आकाश में पृथ्वी कहां गिरेगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरोपीय दर्शन की कोटियों के खण्डन मण्डन का विचार करना सामयिक नहीं समझते। फिर उन लोगों ने एक एक विषय को इतना गहन और विस्तृत लिखा है कि पहिले उसका यथार्थतया समझना ही कठिन है, और यदि यथा-कथञ्चित् समझा भी तो तादृश बुद्धिवैभव और विद्वत्ता उपार्जन किए बिना उनके लेखों पर टिप्पणी करते बैठना हमारा सम्मत नहीं।

१०—शब्द प्रमाण का लक्षण हमारे यहां कपिल और गौतम तथा प्रायः सभी ऋषियों ने इस प्रकार लिखा है—

आप्तोपदेशः शब्दः।

अर्थात् आप्त के उपदेश को शब्द कहते हैं। अब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि आप्त किसे कहते हैं। आप्त का भी लक्षण सबने एकही लिखा है। जो प्रामाणित और विश्वासपात्र है तथा जो आकांक्षा, योग्यता और सन्निद्धि के नियमानुसार सार्थक सम्भाषण करता है उसे दर्शनशास्त्र के आचार्यों ने आप्त नाम से अभिहित किया है। "चींटी ने हाथी को निगल लिया" इस प्रकार के असम्बद्ध प्रलाप जो नहीं करता, अथ च "हूं मैं पाठ गीता करता आज" इस प्रकार के दूषित वाक्य जो नहीं बोलता, और जो समाज की दृष्टि में विश्वसनीय है उसीका वाक्य "शब्द" कहा जा सकता है और उसीका उपदेश अथवा सिद्धान्त माननीय हो सकता है। ऐसे ही पुरुष जो कुछ लिखते हैं अथवा कहते हैं वह प्रत्यक्ष और अनुमान से पृथक् ज्ञानोपार्जन का एक तीसरा प्रकार समझा जाता है।

११—आप्तोपदेश के विषय में हमारे यहां बड़ा गड़बड़ है। वेद, उपनिषत्, दर्शन और धर्मशास्त्र में जो कुछ लिखा है सभी मान्य माना जाता है, चाहे उनमें लिखे हुए नियमों के अनुसार मनुष्य व्यवहार करै अथवा न करै और कृत सिद्धान्तों को सत्य समझै अथवा न समझै। इससे अनेक अनिष्ट उत्पन्न होते हैं और समाज में नाना प्रकार की कुत्सित परिपाटियों को उठा देने में अनेक आपत्तियां आती हैं।

१२—किस ग्रन्थकार की आज्ञा माननी और किसकी न माननी चाहिए इसकी मीमांसा करना अति कठिन है। स्थूलतया देखने से प्राचीन ऋषि जिन्होंने उपनिषत्, दर्शन और धर्मविधायक ग्रन्थ लिखे हैं, सभी विश्वासपात्र कहे जाने के योग्य हैं। इन्होंने अपने काम के लिये कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। यदि कीर्त्ति के निमित्त ग्रन्थरचना की, ऐसा कहें तो भी कुछ हानि नहीं; क्योंकि यशः प्राप्ति के लिए एतादृश विषयों पर पुस्तक लिखने में असत्य का अवलम्बन करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर, इन ऋषियों को "सत्यधन" "तपोधन" इत्यादि विशेषण दिए जाते थे, जिससे विदित होता है कि ये परम धर्मनिष्ठ और सत्यवादी थे। अतः मनुष्य मात्र के उपकारार्थ जो कुछ इन्होंने लिखा है, उस पर अविश्वास करना मूर्खता है। यह यथार्थ है, तथापि ईश्वर के अतिरिक्त अल्पबुद्धि मनुष्य कदापि सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता। ये ऋषि भी मनुष्य ही थे, महाज्ञानी थे; विशेष बुद्धिमान थे परम प्रतिभावान् थे; यह हमने माना; परन्तु ईश्वरवत् सर्वज्ञ थे, यह कहना अवश्य अत्युक्ति कही जायगी। अतएव सम्भव है कि इनके भी ग्रन्थों में यत्र कुत्र भ्रम रह गया हो।

१३—जितने विज्ञान विषय हैं, उनके भ्रम का संशोधन उन विषयों में पारदर्शी होकर भूत शोधद्वारा विद्वद्जन कर सकते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस समय प्रोफ़ेसर बोस ने "तड़िल्लहरी"* नामक एक विज्ञान को सिद्ध करके उसका अस्तित्व प्रमाणित किया है। यदि कालान्तर में उनका सिद्धान्त अन्य विद्वानों द्वारा अन्यथा प्रमाणित हो जायगा तो हमको उसपर अविश्वास करने में कोई अनौचित्य नहीं। माध्याकर्षण विषयक न्यूटन का मत सभी विद्वज्

* Elecrtic waves.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्य करते हैं; परन्तु प्रकाश विषयक उसके मत को न मान कर फ़्रेनेल का सिद्धान्त शिरोधार्य्य करते हैं; क्योंकि उसने प्रमाणित करके बताया है कि न्यूटन का मत इस विषय में ठीक नहीं। इससे यह व्यक्त होता है कि विज्ञान विषय में एक व्यक्ति का एक मत यथार्थ और अन्यमत अयथार्थ हो सकता है; परन्तु अयथार्थ मत पर अविश्वास तब तक नहीं प्रकट किया जाता, जब तक कोई अन्य तत्ववेत्ता विद्वान् उसे भ्रमात्मक न सिद्ध कर दिखावें। इस नियमानुसार पतञ्जलि-मुनि ने योग साधन द्वारा ईश्वर का ज्ञान* होना लिखा है, जिसका खण्डन तब तक नहीं हो सकता जब तक कोई अन्य महात्मा योग सिद्धि से यह प्रमाणित न कर देवै कि ईश्वर का ज्ञान उस अवस्था को पहुंचने पर भी नहीं होता। पतञ्जलि स्वयं योगी थे और उन्होंने जो कुछ लिखा है अनुभव करके लिखा है, अतः उनके वाक्यों को आप्तोपदेश मानना और उनपर विश्वास करना सर्वथैव उचित है।

१४—उपर्युक्त प्रतिपादन से यह सिद्ध हुआ कि दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जब तक सप्रमाण खण्डन नहीं किया गया तब तक उन्हें न मानना और उनके आविष्करण करने वालों को असत्यवादी अथवा भ्रमिष्ठ कहना किसी प्रकार युक्तियुक्त नहीं। अब हमको यहां पर अपने स्मृतिग्रन्थों के विषय में कुछ कहना है, क्योंकि वे भी आप्तवाक्य की गणना के अन्तर्गत समझे जाते हैं।

१५—जितने प्रकार की विधि निर्धारित होती हैं, देश, काल, जन समाज की अवस्था और उसके कल्याण का विचार करके निर्धारित होती हैं। अपने देश में पहिले सभी शस्त्रधारण कर सकते थे, परन्तु ऐसा होने से अनेक उपद्रव उद्भूत होते देख गवर्नमेण्ट ने उस विधि का खण्डन कर एक नूतन विधि द्वारा शस्त्रधारण का निषेध कर दिया। इसी प्रकार, पहले पति पत्नी समागम में पत्नी के वय का बिचार न किया जाता था, परन्तु कारणवशात् अब एक नियम इस विषय का भी गवर्नमेण्ट को प्रचलित करना पड़ा है। हमारे मनु और याज्ञवल्क्य ने जो संहिता बनाई हैं, उनकी रचना भी इसी प्रकार समाज की आवश्यकतानुसार की गई है। इन ग्रन्थों को बने सहस्रशः वर्ष हो गए, अतएव सर्वथैव असम्भव जान पड़ता है कि तत्कालीन अवस्था और आवश्यकतानुसार जो समस्त नियम उस समय स्थिर किए गए थे, वे अब इस समय भी आवश्यक समझे जावें; क्योंकि काल और देशपरत्व के कारण सारे नियम सदैव उपयोगी नहीं हो सकते। यदि ऐसा न होता तो गवरनर जनरल को प्रतिवर्ष नए नए ऐक्ट कदापि न "पास" करने पड़ते और पिनल-कोड की धाराओं में वारम्वार परिवर्तन करने का भी कदापि क्लेश न उठाना पड़ता।

मनु अथवा याज्ञवल्क्य अथवा और स्मृतिकारों ने जो नियम स्थिर किए हैं उनका सर्वतोभाव से परिपालन इस समय नहीं हो सकता, क्योंकि समाज के आचार विचार और व्यवहार में अब आकाश पाताल का अन्तर हो गया है। इन स्मृतियों में कहे गए नियमों का प्रतिदिन ही उल्लंघन होता है, परन्तु बड़े बड़े विद्वान् और माननीय गृहस्थ यह कहते संकोच करते हैं कि उनमें परिवर्तन की आवश्यकता है। जहांतक उनकी दिनचर्य्या का आधार, समयानुसार बनी हुई अतएव अनेक विषयों में परस्पर विरोधी स्मृतियों में मिलता है, तहां तक वे उसे सशास्त्र कहते हैं; परन्तु जब नहीं मिलता तब उनको रूढ़ि का अवलम्बन करना पड़ता है।

स्मृतियों की गणना धर्म्मशास्त्र में है। "सरस्वती" का नियम है कि ऐसे लेख जिनका

* ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोप्यन्तरायाभावाश्च। योगदर्शन प्रथमपद, २९ सूत्र—अर्थात् तब परमेश्वर का ज्ञान होता है और नानाप्रकार के विघ्नों का नाश भी हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमानकालिक धर्म्मविषयों से सम्बन्ध है, उसमें नहीं छप सकते। अतएव स्मृतियों के किस प्रकार के वचन इस समय के अनुकूल हैं और किस प्रकार के वचन प्रतिकूल हैं, इसका विवरण हम यहां पर नहीं कर सकते।

१६–यहां तक जो कुछ लिखागया उससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान तीन प्रकार का है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शाब्द। विश्वसनीय और प्रामाणिक पुरुषों के कथन से जो ज्ञान होता है उसीको शाब्दज्ञान कह सकते हैं। ऐसे पुरुषों में वे सब गुण, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है, होने चाहिए, और उनका कथन देश, काल और सामाजिक व्यवस्था के प्रतिकूल न होना चाहिए।

पण्डित लल्लू लाल कवि

(हिन्दी-गद्य के जन्मदाता)

आज दिन जो हिन्दी भाषा नवयौवना कामिनी की भांति अपने नए नए रूप रङ्ग के उमङ्ग में अपनी मनोहर छटा दिखलाती हुई हृदयवानों के चित्त को बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रही है, उसके जन्मदाता स्वर्गीय महात्मा लल्लू लाल जी हुए।

ये गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे और आगरे के महल्ले बलका की बस्ती (गोकुलपुरा) में रहते थे। इनके पिता का नाम चैनसुख जी था, ये बड़े दरिद्र थे और पुरोहिताई का काम किया करते थे।

संवत १८२०–२२ वैक्रमीय के लगभग* इनका जन्म हुआ, और ये संस्कृत फारसी और ब्रजभाषा पढ़ने लगे। जब संवत १८४० में इनके पिता का देहान्त हो गया और इन्हें पौरोहित्य कर्म में रुचि न हुई और दरिद्रता अधिक सताने लगी, तब ये जीविका के लिये घूमते फिरते संवत् १८४३ में वङ्गदेश (मुर्शिदाबाद) में गए। वहां पर कृपा सखी के शिष्य गोस्वामी गोपालदास से इनसे परिचय हुआ और फिर तो इनके सत्संग से गोस्वामी जी ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने मुर्शिदाबाद के नवाब मुबारकुद्दौला से इनकी भेंट कराई। और नवाब भी इनके गुणों से रीझ कर इनपर बहुत प्रसन्न हुए फिर तो गोस्वामी गोपालदास और नवाब मुबारकुद्दौला के आग्रह से सात वर्ष तक ये मुर्शिदाबाद ही में रह गए और इनकी जीविका का भी भली भांति निर्वाह होता रहा। परन्तु संवत् १८५० गोस्वामी गोपालदास के मरने से ये ऐसे उदास हुए कि नवाब से हठपूर्वक विदा होकर कलकत्ते गए और बावन लक्खी श्रीमती रानी भवानी* के पुत्र राजा रामकृष्ण से परिचय होने पर उन्हीं के आश्रय में कलकत्ते में रहने लगे। यहां पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि इनकी स्त्री भी इनके साथ थीं क्योंकि दम्पति में बड़ा प्रणय था।

कलकत्ते के बाबू लोगों ने प्रगट में तो लल्लू लाल जी का बड़ा आदर किया पर कुछ सहायता उन्हें न दी, इस बात को स्वयं लल्लू लाल जी लिखते हैं–"उन्हींके थोथे शिष्टाचार में जो कुछ वहां से लाया था, बैठ कर खाया"। इसके अनन्तर कई वर्ष तक उन्हें जीविका का कष्ट बना रहा और मुर्शिदाबाद के छोड़ने और नवाब के आग्रह की उपेक्षा करने का अब उन्हें परिणाम देख पड़ा। पर फिर भी वे इतने दृढ़ और आत्माभिमानी थे कि कई वर्ष तक कष्ट पाने पर भी स्वतः प्रवृत्त होकर मुर्शिदाबाद के नवाब की शरण न गए।

निदान तीन वर्ष तक घोर अर्थकष्ट को भोग कर सम्बत् १८५३ में ये जीविका का अनुसन्धान करते हुए श्रीजगदीश पुरी तक गए और जगदीश्वर (जगन्नाथ) की स्तुति के समय जो इन्होंने स्वयं बना कर निर्वेदाष्टक पढ़ा था उसका पहिला दोहा यह है–

---

* क्योंकि इनके जन्मके संवत् का पक्का पता नहीं लगता।

* रानी भवनी का वृत्तान्त राजा शिवप्रसाद ने अपने गुटका में लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विश्वम्भर बनि फिरत हौ, भले बने महराज।
हमरी ओर निहारि कै, लखौ आपुनो काज॥"

निदान उनके दैन्यप्रलाप को जगदीश्वर ने सुना और नागपुर के राजा मनियां बाबू, जो उस समय जगन्नाथ दर्शन को आए थे, और जगदीश के मन्दिर में खड़े खड़े इनके अनर्गल अश्रुप्रवाह के साथ करुणोत्पादक निर्वेदाष्टक को सुन रहे थे, इनपर बहुत दयार्द्र हुए और इन्हें अपने साथ नागपुर चलने के लिये आग्रह करने लगे। परन्तु लल्लू लाल जी के ग्रह ऐसे प्रतिकूल थे कि ये राजा साहब के साथ नागपुर चलने में सम्मत न हुए और फिर कलकत्ते ही लौटने का विचार करने लगे। जब राजासाहब ने इनकी रुचि कलकत्ते ही जाने की देखी तो सौ रुपए से इनका सत्कार किया और कलकत्ते के पादरी बुनर साहब के नाम अनुरोध पत्र भी लिख दिया।

निदान जगदीशपुरी से लौटकर जब ये कलकत्ते आए तो दीवान काशीनाथ* के यहां ठहरे और पादरी बुनर साहब से भेंट की। उस समय न तो अंग्रेज़ी का इतना प्रचार था और न लल्लू लाल जी अच्छे विद्वान् ही थे, थोड़ी सी टूटी फूटी अंग्रेज़ी, थोड़ी बहुत संस्कृत और अच्छी तरह से ब्रजभाषा तथा गुजराती जानते थे; अतएव पादरी साहब ने पहिली ही भेंट में इनके पाण्डित्य को जानलिया, तिसपर भी इन्हें आशा दी कि—"अपने भरसक हम तुम्हारी सहायता करेंगे"।

फिर दीवान काशीनाथ और पादरी बुनर साहब ने लल्लू लाल जी का परिचय डाक्टर रसल साहब से कराया और रसल साहब ने बड़े आदर के साथ इन्हें ईष्ट इंडिया कम्पनी के उच्चाधिकारी श्रीमान डाक्टर गिलकिरिस्त साहब से मिलाया और गिलकिरिस्त साहब की भेंट ही लल्लू लाल जी के विख्यात होने और दिन फेरने में प्रधान कारण हुई।

निदान डाक्टर गिलकिरिस्त साहब ने हिन्दी गद्य में ग्रन्थ बनाने के लिये लल्लू लाल जी को उत्साहित किया और अर्थ साहाय्य के अतिरिक्त मज़हर अलीख़ां विला, और मिरज़ा क़ाज़म अली ज़बां नाम के दो सहायक लेखक दिए। तब लल्लू लाल जी ने पूर्ण परिश्रम करके एक वर्ष में (संवत १८५७, सन् १८०४ ई०) निम्नलिखित चार ग्रन्थ लिखे।

१—सिंहासन बत्तीसी—सुन्दरदास कृत ब्रजभाषा ग्रन्थ का खड़ी बोली में अनुवाद।

२—बैतालपचीसी—इस ग्रन्थ को शिवदास कवि कृत संस्कृत पुस्तक से शूरन मिश्र ने ब्रजभाषा में किया और इसी ब्रजभाषा से लल्लू लाल जी ने खड़ी बोली में अनुवाद किया।

३—शकुन्तला नाटक—संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद।

४—माधोनल—मधवानल नामक संस्कृत पुस्तक संवत १५८७ की लिखी हुई अभी तक बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में रक्खी है, इसीका लल्लू लाल जी ने हिन्दी अनुवाद किया।

यह सब तो हुआ, पर लल्लू लाल जी की वास्तविक उन्नति का जो मूल कारण हुआ, वह हम नीचे लिखते हैं।

आगरे के तैरने वाले प्रसिद्ध हैं, अतएव लल्लू लाल जी भी अच्छे तैराक थे। एक दिन तीसरे पहर ये कलकत्ते में गङ्गा तट पर टहल रहे थे कि इन्होंने एक अंगरेज़ को जल में डूबते हुए देखा। बस, चट ये कपड़े उतार और अपने प्राण को तुच्छ समझ जल में कूद पड़े और दोही गोते में अंग्रेज़ को बाहर तीर पर ले आए। वह अंग्रेज ईष्ट इण्डिया कम्पनी का एक उच्च कर्मचारी था, अतएव उसने अपने प्राण रक्षक लल्लू लाल की कृतज्ञता न भुलाई; इन्हें एक सहस्र रुपए नक़द दे कर एक छापाख़ाना करा दिया और कम्पनी से अनुरोध करके कलकत्ते के फ़ोर्ट-

* इन्हीं दीवान साहब के प्रौत्र बाबू दामोदरदास खत्री अब तक वर्त्तमान हैं जो कलकत्ते बड़े बाज़ार के संवलिया जी के मन्दिर के अधिष्ठाता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलियम कालेज में ५०) रु० महीने की नौकरी भी दिलवाई। बस यही समय लल्लू लाल जी की उन्नति का प्रथम सोपान हुआ।

संवत १८५७, सन् १८०४ ई०, में ये फ़ोर्टविलियम कालेज के अध्यापक हुए। फिर तो दिन दिन इनका सम्मान बढ़ने लगा। छापाखाना घर का था, बस इनके ग्रन्थ अधिकता के साथ छपने और बिकने लगे। आत्मोन्नति के साथ साथ इनका उत्साह और भी बढ़ा और ग्रन्थ रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति बढ़ती गई।

लल्लूलाल जी ने जो संस्कृत प्रेस नामक अपना छापाखाना खोला था, उसमें ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत कुछ अर्थ साहाय्य दिया था। उसी छापेखाने में इनके ग्रन्थ छपने और बिकने लगे। देखिए उस समय इनके ग्रन्थों की ओर लोगों की इतनी रुचि थी कि इनकी छपवाई रामायण ३०), ४०), ५०) को और इनका बनाया तथा छपवाया प्रेमसागर १५), २०), ३०) को बिकता था, पर समय के फेर से अब वे सब ग्रन्थ टके टके हो गए हैं।

लल्लूलाल जी ने और भी अनेक ग्रन्थ लिखे—

५–माधवविलास–स्वरचित नाटक।

६–सभाविलास। अहा! ऐसा कौन सा पाठ्यसंग्रह होगा जिसमें इसमें का विषय संगृहीत न हो! यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नाना-प्रकार की कविताओं का अच्छा संग्रह है। इस संग्रह से लल्लूलाल जी ने मानो लोगों को संग्रह की एक अद्भुत शैली दिखलादी। इसीकी छाया पर राजा शिवप्रसाद के गुटके आदि अनेक संग्रह बने हैं। पहिले यह पुस्तक पाठशालाओं में पढ़ाई भी जाती थी, पर अब उठगई है।

७–प्रेमसागर। आबाल-वृद्ध-बनिताओं में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसने इस पुस्तक को देखा या स्कूलों में पढ़ा न हो? आज दिन पाठशालीय संग्रहों में ऐसा कोई बिरलाही संग्रह होगा जिसमें इस (प्रेमसागर) का कुछ न कुछ अंश न हो। सन् १५६७, संवत् १६२४, में चतुर्भुज दास ने व्रजभाषा में दोहे चौपाइयों में भागवत दशम स्कन्ध का अनुवाद किया था उसीके आधार पर लल्लूलाल जी ने यह ग्रन्थ रचा। यह ग्रन्थ सन् १८०९ तक नहीं छपा था, परन्तु अब तो दहीं दहीं हो गया है।

८–राजनीति—यह ग्रन्थ संस्कृत के हितोपदेश नामक ग्रन्थ का व्रजभाषा में अनुवाद है। इसे लल्लूलाल जी ने संवत् १८६९, सन् १८१२, ई० में बनाया था।

९–भाषा कायदा–अर्थात् हिन्दी भाषा का व्याकरण। इसकी एक प्रति अब तक बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी में रक्षित है। यह ग्रन्थ छप चुका था पर बहुतायत से प्रचलित न हुआ।

१०–लतायफ़ हिन्दी–हिन्दी, उर्दू और व्रजभाषा में सौ कहानियों का संग्रह। यह उसी समय में लल्लूलाल जी ने "न्यू सैक्लोपीडिया हिन्दुस्तानी (New Cyclopædia Hindustani) के नाम से छापी थी।

११–लालचन्द्रिका। इस पुस्तक के विषय में साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास यह लिखते हैं—

"लल्लूलाल के ग्रन्थों में सबसे उत्तम 'लालचन्द्रिका' है, और इसी ग्रन्थ से इनकी विद्या की सारगर्भिता प्रकट होती है। यह बिहारी सतसई के आज़मशाही क्रम के अनुसार उसी ग्रन्थ पर टीका है। यह ग्रन्थ पहिले पहिल लल्लूलाल ने स्वयं अपने ही छापेखाने में सन् १८१९ ई० में छपवाया था" *।

* बिहारी बिहार में सा० चा० पं० अम्बिकादत्त व्यास जो लालचन्द्रिका पर आलोचना की है विस्तारभय से उसे हमने छोड़ दिया, क्योंकि यदि लालचन्द्रिका की आलोचना हम लिखते तो लल्लूलाल जी के समस्त प्राप्त ग्रन्थों पर आलोचना लिखनी पड़ती, परन्तु स्थानाभाव के कारण हम ऐसा न कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लल्लूलाल जी राधावल्लभीय सम्प्रदाय के वैष्णव हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि इन्होंने श्रीकृष्ण चरित ही पर विशेष लिखा है और प्रायः अपने ग्रन्थों के आरम्भ में वैसा ही मङ्गलाचरण किया है जैसे लालचन्द्रिका के प्रारम्भ में "श्री राधावल्लभो जयति" और समाप्ति में "श्री राधा-कृष्ण प्रसादात्संपूर्णम्" ॥

सन् १८२४ ई० में ये फ़ोर्टविलियम कालेज से पेन्शन लेकर अपने छापेखाने को नाव पर लाद आगरे आए और वृद्धावस्था के दिन सुख से काटने लगे।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि लल्लूलाल जी चार भाइयों में सबसे बड़े तो थे, और भाइयों को सन्तति हुई, पर इन्हें कोई सन्तान न हुआ।

कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि घर का बन्दोबस्त और छापाखाना खोल कर लल्लूलाल जी फिर कलकत्ते गए और वहीं मरे। परन्तु कब मरे, इस बात का पता नहीं लगता। हां, सन् १८२४ ई० तक उनका जीवित रहना निश्चित है।

वस्तुतः लल्लूलाल जी कुछ बड़े विद्वान् वा कवि न थे। यदि आज कल वे होते तो कदापि वे इतने यश के भागी न हो सकते, परन्तु जिस समय वे हुए थे, समय हिन्दी भाषा का अस्तित्व भी न था। इसलिये उन्होंने हिन्दी गद्य-प्रणाली का जन्मदान कर जो कुछ लिखा वही बहुत कुछ समझना चाहिए। बस, जब तक संसार में हिन्दी भाषा का अस्तित्व रहैगा इसके जन्मदाता और आदि कवि लल्लूलाल जी अमर बने रहैंगे।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने इनके विषय में बहुत उचित लिखा है कि—

"इसमें सन्देह नहीं कि लल्लूलाल जी ने हिन्दी गद्य लिखने का अपने भविष्यत् विद्वानों को पथ दिखला दिया और पूर्ण परिश्रम और विद्याभ्यास में जीवन व्यतीत किया और हिन्दी गद्य को उस समय सिंहासन पर बैठाया जिस समय गुर्जर भाषा और वङ्ग भाषा वालिका थीं। यदि उस समय से आजतक सुलेखक लोग हिन्दी की सेवा करते तो यह सारे भारत में चक्रवर्त्तिनी होती और ऐसा कदापि न होता कि उर्दू की पताका उड़े और इसे कहीं स्थान न मिले। इस लिये हिन्दी भाषा के परमोन्नायक विद्वान् लल्लूलाल कवि को कोटिशः धन्यवाद देना यावत् हिन्दी के रसज्ञों का धर्म है।"

हम उपर्युक्त वाक्य में व्यास जी से पूर्ण सहमत हैं और समझते हैं कि लल्लूलाल जी की इस अद्भुत उपकारिता को समस्त हिन्दी के सुलेखक मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेंगे। और यहां पर हम व्यास जी की आत्मा के लिये अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि इस जीवन चरित्र के लिखने में हमको उनके लेखसे (लल्लूलाल जी के ग्रन्थों के अतिरिक्त) विशेष साहाय्य मिला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होम डिपार्टमेंट—पबलिक—नंबर ५१०

विज्ञापन

स्थान कलकत्ता—ता० ५ फ़र्वरी सन् १९०१ ई०

श्रीमान् महाराजाधिराज और क़ैसर हिन्द की यह प्रसन्नता हुई है कि उन्होंने निम्न लिखित सन्देशपत्र हिन्दुस्तान के वालियान रेयासत तथा प्रजागण के नाम प्रेषित किया है:—

"हिन्दुस्तान के वालियान रेयासत और प्रजागण के नाम—

"हमारी प्यारी और परम शोचनीय माता के विलपित स्वर्गवास द्वारा हमें उत्तराधिकार में वह राजसिंहासन मिला है जो एक दीर्घ और प्राचीन वंशपरंपरा से होकर हमको प्राप्त हुआ। हमारी इस समय यह अभिलाषा है कि वालियान रेयासत तथा अपने हिन्दुस्तान के राज्य के निवासियों को अपनी ओर से सलाम भेजें और उनके कल्याण के निमित्त अपनी हार्दिक आकांक्षा का उन्हें निश्चय दिलावें। हमारी यशस्विनी और शोचनीय पूर्वाधिकारिणी इस देश की प्रथम महाराज्ञी थीं जिन्होंने हिन्दुस्तान के राजकार्यों का शासन स्वयं अपने ऊपर लिया तथा उस विस्तृत देश के राज्यशासन को और अपने अविरल सम्बन्ध की सूचक क़ैसराहिन्द की उपाधि स्वीकार किया॥

"हिन्दुस्तान से सम्बन्धित सम्पूर्ण विषयों में श्रीमती महाराज्ञी क़ैसराहिन्द अविकार्य्य गंभीर आत्मीय अनुराग प्रगट करती थीं और उनके राजसिंहासन तथा स्वयं उनके शरीर के प्रति हिन्दुस्तान की कोट्यानिकोटि प्रजा की ओर से सूचित राजभक्ति तथा प्रेम भाव से हम भली भांति अभिज्ञ हैं॥

"उक्त श्रीमती के दीर्घ और प्रतापी राज्य के अन्तिम वर्ष में दक्षिणी अफ्रिका के युद्ध में (हिन्दुस्तान के) वालियान रेयासत की ओर से समर्पित महती राज्यनिष्ठ सहायता द्वारा और (हिन्दुस्तान की) देशी सेना की ओर से अपने निज देश की सीमाओं के परे (देशान्तर में) की हुई पराक्रमी परिचर्याओं द्वारा यह (उपरोक्त प्रेमभक्ति) भाव सुस्पष्ट प्रकार से प्रदर्शित हुआ था॥

"उक्त श्रीमती ही की अभिलाषा के कारण तथा उन्हींकी अनुज्ञापूर्वक यह हुवा कि हम हिन्दुस्तान देखने आये और उस प्राचीन तथा प्रसिद्ध अधिराज्य के वालियान रेयासत प्रजागण तथा नगरों के विषय अपने को साक्षात् प्रकार से परिचित किया॥

"हम उन गम्भीर अनुभवों को जो हमको उस समय प्राप्त हुए कभी भी बिस्मरण न करेंगे और प्रथम महाराज्ञी क़ैसराहिन्द के प्रधान दृष्टान्त का अनुकरण करते हुवे उक्त श्रीमती के किये प्रकार अपने हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण प्रजावर्ग की सामान्य समृद्धि के लिये साधन करने का तथा उन लोगों की अक्षय राजभक्ति और प्रेमभाव के योग्य होने का उद्योग करेंगे॥

कोट विण्डसर
ता० ४ फ़र्वरी सन् १९०१ ई०

(हस्ताक्षर) एडवर्ड (आर) और (आई)"

हस्बुल हुक्म० जे. पी. हिवेट

गवर्नमेन्ट हिन्द का सेक्रिटरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] मार्च १९०१ ई० [संख्या ३

विजयिनी विलाप

अरे आजु चारहु दिसा
छायो कहा विषाद।
नर नारी व्याकुल फिरत
पूरित आरतनाद॥
श्याम ध्वजा फहरात क्यों
जित तित लखियत आज।
श्याम बसन धारन कियो
क्यों सब राज समाज॥
मुख मलीन अति छीन दुति
क्यों सब लोग लखात।
करिकै कृपा बताइए
मेरो हिय अकुलात॥
'कहा तुम्हैं नहिं खबर' खबर
अनरथ की आई।
भारतेश्वरी बिजयिनि यह
जग छोड़ि सिधाई॥
तोरि जगत सों नेह
मोरि मुख जग के सुख सों।
छोरि सबै धन धान्य
बोरि जग सागर दुख सों॥
बिमल कीर्ति फैलाइ,
लोक करिकै यह निज बस।
गई करन वह लोक विजय
फैलावन निज जस॥
मातृ हीन सब प्रजा वृन्द
करि, जगत रूलाई।
मातु विजयिनी हाय हाय
सुरलोक सिधाई॥
भई अनाथिनि दिग दिगन्त
लौं पृथ्वी सारी।
सब भूमण्डल आजु
शोक की मूरति धारी॥
हाय दया की मूर्ति
हाय विकटुरिया माता।
हा! अनाथ भारत को दुख
में आश्रय दाता।
दीन करून धुनि यही
चहूं दिसि गूंज रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदासीनता महा बेबसी
बरसि रही है ॥
हैं हैं कहत कहा अरे
सांचहि फूटे भाग ।
मातु विजयिनी ने कहा
छांड्यो सुत अनुराग ॥
जासु दया पूरित हृदय
लखि जन मुखहि मलीन ।
पघलि चलत हो धीर तजि
मेटन को दुख दीन ॥
सो किमि गही कठोरता,
लखि निज प्रजा समाज ।
दीन दुखी बिलखत, गई
कैसे तजिकै आज ॥
निज के दुख तृन सम तजति
लखि कोउ प्रजा मलीन ।
सो आश्वासन देत किन
सबहि प्रजा लखि दीन ॥
अहह ! दैव कीनी कहा
तोहि दया नहिं नेक ।
क्यों तुम नित प्रति दीन कों
देत कलेस अनेक ॥
तापैं भारत पैं कछू
तुम्हरो कोप बिसेख !
जबहि यासु कछु दिन फिरत
तबहिं सकत नहिं देख ॥
बहु दिन के बहु दुःख सहि
जबहिं विजयिनी गोद ।
हतभागी भारत लह्यो
जबहीं कछू हिय मोद ॥
तबही तुम निर्दय दई
सुख की सो आधार ।
हरि लीनी अनयास ही
बोरि दुःख मजधार ।
क्यों तुम कों न्यायी कहत
क्यों दयालु तुव नाम ।
न्याय रहित निर्दय अतिहि
तेरे सब ही काम ॥
अथवा भारत के विषय
भूलत तुम निज बान ।
भेद बताओ बेगिही
व्याकुल अतिसय प्रान ॥
दीन दयाल दयानिधान हरि
भारत सों क्यों रूठे ।
निज अपराध और पैं डारत
न्यायी भए अनूठे ॥
बिनु तुव अनुशासन इक पातहुं
डोलि सकत नहिं प्यारे ।
फिर क्यों ताको फल भोगत ये
भारत प्रजा बिचारे ॥
कहो कौन के कहे महा-
भारत में सबहिं लराई ।
भारत को निर्जीव कियो तुम
सबै भांति जदुराई ॥
बचे बचाए कों प्रभासथल
आपुस में कटवाई ।
हा हा ! भारत कों अनाथ करि
आपहुं गए सिधाई ॥
हा ! कबहूं वे दिन फिर ह्वैहैं
वह समृद्धि सुख सोभा ।
कै अब तरसि तरसि मसूसि कै
दिन जैहैं सह छोभा ॥
कहां परीक्षित कहँ जनमेजय
कहँ विक्रम कहँ भोज ।
नंद वंश कहँ चन्द्रगुप्त कहँ
हाय कहां वह ओज ॥
काल बिबस जौ गए नृपति वे
तौ क्यों उनके बालक ।
भए न उनके सम, काकी अज्ञा
उपजे कुल घालक ॥
पृथीराज जयचन्द कासु
प्रेरण सों बैर बढ़ाई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपुस मैं कटि मरे विदेशी
यवनहिं लियो बुलाई ॥
वाही दिन भारत स्वतंत्रता
जड़ मैं तेल पिलाई ।
बैठे आप तमासा देखत,
फिरैं सबै बिलखाई ॥
मथि लीने सब सहज प्राकृतिक
गुण भारतवासिन के ।
रहि गए सीठी छाछ सदृश ये
दर दर चुनते तिनके ॥
अकबर जहांगीर से शाहन कों
किन राज दिवायो ।
होनहार दाराशिकोह कों
क्यों हाथी भड़कायो ॥
आपुस के झगड़े बढ़ाइ क्यों
कियो अराजक देशहिं ।
दीन प्रजा दुख भार दुखित ह्वै
कहं लौं सहै कलेशहिं ।
ऐसे मैं करि कृपा भेजि न्यायी
अंगरेजहिं राजा ।
सूखत धान अमृत बरसा सो
कियो कछुक सुख साजा ॥
इतनो कसर कहो क्यों राखी
जासों सब दुख भाजत ।
महरानी क्यों इतै आइ नहिं
भारत मांहि बिराजत ॥
निज नैननि लखि निज रैयत दुख
दया हृदय उपजावति ।
दारिद फलइ अविद्या दुख कों
भारत सों भगवावति ॥
भला सोऊ नहिं सही रहतिं
जीवित जो पै महरानी ।
तऊ उतहि सों बैठि हरति दुख
बरसि सुधा सम बानी ॥
सोऊ सही गई नहिं तुमसों
तिनको हूं हरि लीनो ।

अहह ! दैव निर्दय तुम अतिसय
महा कष्ट यह दीनो ॥
तिरसठ बरस जासु छाया सुख
कीनो भारतबासी ।
ताकों अनायास हरि लीनी
सब कछु आसा नासी ॥
रे बीसवीं सदी तेरो पैरो
कैसो जग आयो ।
या बसुधा को अमलचन्द्र हरि
चहुं दिसि तम फैलायो ॥

जाको प्रताप छायो दिगंत ।
जाके प्रताप बसुधा कपंत ॥
जो अबला कुल मैं जनम लीन ।
अतिसय सबलन कों जेर कीन ॥
जाके प्रताप दिनकर डरात ।
दिन रहत सदा नहिं होत रात ॥
जाको मुख ताकत अति ससंक ।
महिपाल जगत के मनहुं रंक ॥
जाको प्रताप सागर तरङ्ग ।
लै करत जगत मैं नाच रङ्ग ॥
फहरात विजय ध्वज अति उतङ्ग ।
लखि लखि सब अरि हिय रहत दङ्ग ॥
अटि सकत न जासु प्रताप दाप ।
जिमि हरि पद अरयो न जगत नाप ॥
जल पियत सिंह अरु अजा साथ ।
विद्युत ठाढ़ी जहं बांधि हाथ ॥
जा सम न और तिय सुनी कान ।
जनमे न जगत नर जा समान ॥
जाकी न दया को कहूं अंत ।
लहि जासु छांह सब सुख बसंत ॥
जो जीव मात्र पै करत प्रीत ।
मनु निज कुटुम्ब सम सबै मीत ॥
सुनि जासु सुधासम मधुर बैन ।
सब प्रजापुञ्ज अति लहत चैन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति कृपा प्रेम भरि जासु दीठ।
लखि, हरत प्रजा के दुखहिं नीठ॥
सो अमित गुननि की रासि मात।
हा हा! बिनु जीवन है लखात॥
तजि सबै दया अरु मोह हाय!
सुरलोक गई कैसे सिधाय॥
तजि अखिल भुवन सागर अगाध।
भुव तीन हाथ कीन्ही समाध॥
हा हा! यह दुख नहिं सह्यो जात।
चहुंओर यहै धुनि है सुनात॥
हा मातु! हाय हा मातु हाय!
तजि नेह कितै तू छिपी जाय॥
बोलत न हाय क्यों निठुर होय।
देखो न पुत्र तुव रहे रोय॥
कहं गई तुम्हारी दया माय।
किन लेत दुखित सुअ हिय लगाय॥
हा हा! बिधिना तुम भए बाम।
मैया ने प्रीति तजी ललाम॥
हैं सुने जगत बहु पूत ढीठ।
पै तजत न मैया प्रीति नीठ॥
करि अबस माय-सुत दिय छुड़ाय।
तो सों न निठुर बिधि कछु बसाय॥

यह मानी इक दिन अवसि जग मैं मरनो होय।
पै निज स्वारथ हेतु लगि धीर धरत नहिं कोय॥
नहिं संसय इन नैं लह्यो पूर्ण आयु सुख पूर्ण।
पै निज स्वारथ कों सुमिरि होत हृदय अति चूर्ण॥
अस्तु—न कछु बस आपुनो भगवत इच्छा माहिं।
तासों करि संतोष अब यह मांगत प्रभु पाहिं॥
कीरति बिमल सदैव जगत मैं अविचल राजै।
परमातमा समीप पवित्रातमा विराजै॥
रहै वंस मैं राज लच्छमी नित थिर होई।
रहै प्रजा नित सुखी दुखी जग होइ न कोई॥
तुव असीस या देस को दुख दारिद सबही बहै।
उन्नति गौरव सब पूर्व सम यह भारत फिर सों लहै॥

बा० राधाकृष्णदास

बाबू रामकाली चौधरी

इनका जन्म सन् १८२८ ई० के अक्तूबर महीने की २३वीं तारीख को कृष्णनगर (ज़िला नदिया) में मामा के घर हुआ। इनकी पितृभूमि नदिया ज़िले का ऊलाग्राम और पिता का नाम बाबू नवीनचन्द्र चौधरी था।

इनके पिता कलकत्ते में एक मर्चेण्ट आफ़िस में साधारण नौकरी करते थे। किन्तु जब बालक रामकाली का केवल दस वर्ष का वयक्रम था उस समय उनकी मृत्यु हो गई। तदनन्तर उनकी विधवा पत्नी अपने एकमात्र शिशु (रामकाली) को लेकर काशीवासिनी हुईं।

काशी आकर वे बंगाली टोले में एक सम्बन्धी के यहां रहीं और उस सम्बन्धी ने भी उन दोनों मा बेटों की सब भांति से यथाशक्ति सहायता की।

उसी सम्बन्धी ने बालक रामकाली को पहिले जयनारायन्स कालेज में पढ़ने बैठाया और फिर कुछ दिन पीछे उन्हें बनारस कालेज में भर्ती किया।

रामकाली बाबू की माता अपने पुत्र की चाल चलन पर पूरा ध्यान रखतीं और बराबर उन्हें अच्छी अच्छी शिक्षा दिया करती थीं। अएतव इनकी रुचि सुधरती और विद्या की ओर बराबर झुकती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ये जल्दी जल्दी स्कूल के माष्टरों को वशीभूत करते हुए पारितोषिक के सहित उच्च श्रेणी में क्रम क्रम से प्रवेश करने लगे।

इन्होंने प्रथम तीन वर्ष जूनियर स्कालरशिप और फिर तीन वर्ष सीनियर स्कालरशिप पाया। ये सीनियर के फर्स्ट डिपार्टमेण्ट तक पढ़े, क्योंकि उस समय बी. ए., एम्. ए. इत्यादि की परीक्षाएं प्रचलित नहीं हुई थीं और उस समय की अन्तिम पढ़ाई सीनियर तक ही थी।

ये छात्रावस्था के अनन्तर बनारस कालेज के प्रिन्सिपल जे. आर. व्यालेण्टाइन, एल्.एल्.डी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोदय के अनुरोध से सन् १८५० ई०) बनारस के कमिश्नर रीड साहब से कानून पढ़ने लगे।

बाबू गोबिन्दचन्द्र सान्याल, जिनके पुत्र बाबू शरच्चन्द्र सान्याल आज कल मध्यप्रदेश के सिविल जज हैं, और बाबू रामकाली चौधरी ने बराबर साथ पढ़ा, और साथ ही परीक्षा भी दी थी। उस समय के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर टामसन साहब से व्यालेण्टाइन साहब ने अनुरोध किया कि इन दोनों को कोई उत्तम स्थान दिया जाय। इस पर लाट साहब ने इन दोनों महाशयों को बुलाया तो सही, पर उस समय उनके अधीन कोई काम खाली न था, इसलिये उन्होंने इन दोनों महाशयों से आगरे की कचहरी में उर्दू शिरिस्ते का काम सीखने के लिये कहा।

जब बाबू रामकाली कोर्ट में काम करते थे उस समय (सन् १८५५ ई०) इन्होंने वहां के कलक्टर साहब के कहने से अंग्रेज़ी की छोटी छोटी पुस्तकों का अनुवाद उर्दू में किया, जो ग्रामीण पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लगीं।

टामसन साहब के मरने पर सर जे. आर. कालविन साहब ने उन दोनों को यह कह कर जवाब दिया कि "गवर्नमेण्ट तुमलोगों को कोई काम न देगी, इसलिये तुम लोग आप अपना काम खोज लो"। यह सुनकर बाबू गोबिन्दचन्द्र ने तो अपने अनुसन्धान से छपरे ज़िले की दीवानी कचहरी में अनुवादक का काम पाया और बाबू रामकाली से आनरेबुल ड्रमन्ड साहब आगरे के ज़िलाधीश ने महियर के राजकुमार को ५०) रु० मासिक वेतन पर पढ़ाने के लिये कहा। इस पर इन्होंने एक वर्ष के लिये यह कार्य स्वीकार किया और बराबर ड्रमन्ड साहब के साथ दौरे में भी ये रहने लगे।

इसी अवसर में मैनपुरी की दीवानी कचहरी में जहां पर कि काक्स साहब जज थे, अनुवादक की जगह जो कि नब्बे रुपये मासिक की थी, खाली हुई। बाबू रामकाली ने उसके लिये दरखास्त दी और वह मंजूर हुई। तब ये वहां काम करने लगे।

सन् १८५६ के मई के अन्त में गाज़ीपुर में सौ रुपए मासिक का एक स्थान खाली हुआ। यह सुन कर इन्होंने वहां के जज टी. सी. प्लाउडन साहब के पास दर्खास्त दी और उसकी मंजूरी होने पर ये वहां जाकर काम करने लगे।

ये बड़ी योग्यता के साथ प्लाउडन साहब के अधीन में अनुवादनक का काम करने लगे। कुछ दिन पीछे प्लाउडन साहब एक वर्ष की छुट्टी लेकर विलायत गए और उनके स्थानापन्न होकर ए. रास साहब जज का काम करने लगे। वे बाबू रामकाली के काम से ऐसे प्रसन्न हुए कि अपने फ़ैसले में भी इनकी सलाह लेते और बराबर इनपर कृपा रखते थे।

इतने में बलवे की धूम चारो ओर से मचने लगी। उस समय ग़ाज़ीपुर जिले में महमदाबाद की मुन्सिफ़ी खाली हुई और रास साहब ने कृपा कर के यह काम बाबू रामकाली को दिया। इस काम को इन्होंने ऐसी अच्छी रीति से चलाया कि रास साहब बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने इनके लिये सदर दीवानी अदालत से अनुरोध किया कि "यह बहुत योग्य कार्यकुशल व्यक्ति है, अतएव हमारी जमानत पर इन्हें वहां की मुन्सिफ़ी दी जाय"। इस पर सदर दीवानी से आज्ञा हुई कि "उन्हें परीक्षा देनी चाहिए"। तब परीक्षा लेने के लिये बनारस आदि चार ज़िलों के चार जजों की एक कमेटी हुई, उसमें बाबू रामकाली परीक्षा देकर पास हुए। हुए तो सही, पर उस समय बलवे के कारण महमदाबाद में बड़ा उपद्रव था; कई थाने के थानेदार मारे गए थे, इसलिये रास साहब ने इनसे कहा कि "अभी कुछ दिन तुम यहीं कचहरी करो। फिर गदर की शान्ति होने पर ये महमदाबाद में कचहरी करने लगे। उस समय ये तीसरे दर्जे के मुन्सिफ़ थे।

सन् १८५९ ई० में छुट्टी पूरी होने पर प्लाउडन साहब विलायत से आए। उन्होंने आकर बाबू राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काली के कामों की जांच करने पर इतनी प्रसन्नता प्रगट की कि अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "यह व्यक्ति किसी समय में एक अनुभवी और योग्य हाकिम होगा"।

फिर सन् १८६१ में प्लाउडन साहब ने बलिया के उन मुन्सिफ़ों को निकाल कर, जो कि अंग्रेज़ी नहीं जानते थे, १५०) रु० मासिक वेतन पर इन्हें दूसरे दर्जे का मुन्सिफ़ बना कर वहां भेज दिया।

सन् १८६२ ई० में जजी के अफ़सरों के मासिक वेतन और दर्जे का नया नियम प्रचलित किया गया। उसके अनुसार प्रथम श्रेणी के मुन्सिफ़ का मासिक वेतन ४००), द्वितीय श्रेणी का ३००) और तृतीय श्रेणी का २००) निश्चित हुआ। इसके अनुसार तब से बाबू रामकाली को ३००) रु० मासिक मिलने लगे। उसी सन् में ये बलिया से अव्वल दर्जे के मुन्सिफ़ होकर इलाहाबाद बदल गए और ४००) रु० मासिक पाने लगे।

सन् १८७३ ई० में ये मिर्ज़ापुर के सदरआला हुए और ५००) रु० मासिक वेतन पाने लगे। वहां से इनकी बदली कानपुर को हुई और वहां ये ६००) से ८००) तक मासिक वेतन के अधिकारी हुए।

उस समय जस्टिस टर्नर इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज थे। वे बाबू रामकाली के फैसले को बहुत पसन्द करते थे, यहां तक कि उन्होंने अपने पत्र में बाबू रामकाली को लिखा था कि "इधर आपके ३० फ़ैसलों की हाईकोर्ट में जो अपील हुई उसमें केवल आपके किए हुए तीन फैसलों में परिवर्त्तन हुआ"।

सन् १८७७-७८ के लगभग ये बनारस की अदालत खफ़ीफ़ा के जज नियत हो कर आए। फिर कुछ दिनों पीछे जौनपुर के सदरआला हुए। तदनन्तर इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, इत्यादि ज़िलों में इनकी बदली होती रही और सन् १८८४ ई० में इन्होंने दीवानी विभाग की २५ वर्ष की नौकरी पूरी की, क्योंकि उस समय इनकी अवस्था भी ५ वर्ष की हो चुकी थी।

उस समय हिन्दुस्तानी आदमी हाईकोर्ट का ज नहीं होता था। फिर विलायत से आज्ञा आई कि हिन्दुस्तानी आदमी भी जज बनाया जाय। इ आज्ञा के आने पर हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टि स्टुअर्ट साहब ने तीन व्यक्तियों के नाम लिखे-

१-बाबू रामकाली चौधरी।
२-बाबू काशीनाथ विश्वास।
३-बाबू द्वारिकानाथ विश्वास।

परन्तु तीनों बंगाली ही थे, इसलिये गवर्नमेण्ट ने पश्चिमोत्तर और अवध प्रान्त में बंगाली को हाई कोर्ट की जजी देना उस समय उचित न समझा और बाबू रामकाली को इलाहाबाद की खफ़ीफ़ा अदालत की जजी ही दी गई। यह पद भी इनसे पहिले किसी हिन्दुस्तानी को नहीं दिया गया था।

अप्रैल सन् १८८४ ई० में पेन्शन लेकर ये काशी में आकर रहने लगे और अपने जीवित काल पर्य्यन्त सर्वसाधारण के हितकर कामों में दत्तचित्त रहे।

अनेक वर्ष तक ये बनारस के म्युनिसिपल कमिश्नर, औनरेरी मेजिष्ट्रेट और बोर्ड के वाइस चेयरमैन रहे। इसके अतिरिक्त बनारस में कांग्रेस होने से स्टांडिङ्-कांग्रेस कमेटी के ये आजन्म प्रेसीडेन्ट रहे और निम्नलिखित सभा सोसाइटियों के भी ये प्रेसीडेन्ट रहे।

(१) कारमाइकेल लाइब्रेरी-बनारस।
(२) बंगाली टोला असोसियेशन—बनारस।
(३) बंग साहित्यसमाज-बनारस।
(४) बंगाली टोला स्कूल-बनारस।
(५) एचीसन आर्फ़नेज-बनारस।
(६) टोटल एब्स्टिनेन्स सोसाइटी-बनारस।

इसके अतिरिक्त ये काशी की नागरीप्रचारिणी सभा के एक परम सुयोग्य और हिन्दीहितैषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभासद थे. और "नागरी मेमोरियल" के समय इन्होंने सभा की बहुत कुछ सेवा की थी। केवल यही नहीं, वरन् काशी में जो सर्वसाधारण का हितकारी कार्यारंभ होता, ये उन सबो कार्यों में उत्साह से अग्रसर होते और कार्य को हाथ में लेकर कभी पीछे नहीं हटते थे।

इनकी सुजनता, सहनशीलता, मिलनसारी, और सत्यप्रियता का उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि "ऐन्टी-कांग्रेस" के प्रधान मुखिया सर सैयद अहमद ने इनके विषय में यों कहा था कि "He is an honest enemy."

सन् १८९३ ई० में ये प्रांतिक लेजिस्लेटिव काउंसिल के मेम्बर गवर्नमेण्ट की ओर से बनाए गए, पर कुछ दिन पीछे जब गठिया रोग से बहुत ही अशक्त हुए तब इन्हें काउंसिल की मेम्बरी छोड़नी पड़ी।

यद्यपि इनका धर्मविश्वास सांख्य के "ईश्वरासिद्धेः" अर्थात् ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता, इसके अनुसार था, पर न तो वे पूरे नास्तिक थे और न किसी धर्म विशेष पर अपना द्वेष प्रगट करते थे।

ये प्रातःकाल कोसों तक पैदल भ्रमण करते और लकसे पर एक अच्छे बाग में सुन्दर बंगले में जो कि सन् १८८४ ई० में इनकी माता के मरने पर बनवाया गया था, रहते थे। इनकी सच्चरित्रता, सत्यभाषिता और सर्वप्रियता के जानने वालों की कमी बनारस में नहीं है। ये ऐसे अवसर पर चुप रह जाते जब कि मिथ्या बोलने का प्रयोजन पड़ता और समस्त दुर्व्यसनों से भी इन्होंने अपनेको मरण पर्यन्त बचाया।

हम ऊपर कह आए हैं कि इनका मत सांख्य के "ईश्वरासिद्धेः" के अनुकूल था, पर यह बात ये बराबर कहा करते थे कि लोग बिना समझे बूझे नास्तिक कह बैठते हैं, पर मैं वस्तुतः नास्तिक नहीं हूं, परन्तु ईश्वर का अस्तित्व मान लेने पर भी मेरी बुद्धि सांख्य के उस वाक्य से पूर्णतया सहमत है कि ईश्वर सिद्ध नहीं किया जा सकता। अस्तु उनके साथियों में कुछ थोड़े से महाशयों के नाम नीचे लिखे जाते हैं, जिनसे उनकी सहृदयता और सर्वगुण-प्रियता स्पष्ट प्रतीत होगी—

गोसांई शिवदत्त गिर, बाबू हरिनाथ मैत्र, मुन्शी रामकिशुन, बाबू राजचन्द्र सान्याल, बाबू नारायण सिंह स्वर्णकार, मुन्शी हरबंश लाल, बाबू अविनाशी लाल, बाबू गिरीशचन्द्र दे, राजा शंभूनारायण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, मुन्शी माधो लाल।

इनके अतिरिक्त बनारस के सभी रईस और विद्वानों से इनसे अच्छी तरह हेलमेल था।

इनके तीन लड़के और दो लड़कियाँ हुई, इनमें से बड़े पुत्र बाबू रामचन्द्र चौधरी, एम्. ए., एल्. एल्. बी., इटावे में दूसरे दर्जे के मुन्सिफ हैं, मध्यम पुत्र बाबू आनन्दकुमार चौधरी, एम्. ए., एल्. एल्. बी., वकील, आजमगढ़ में वकालत करते हैं, और छोटे पुत्र बाबू शरत्कुमार चौधरी आजकल गवर्नमेन्ट कालेज बनारस में पढ़ते हैं।

बाबू रामकाली चौधरी एक वर्ष से गठिया रोग से अशक्त और पीड़ित थे, और १६ अक्तूबर सन् १९०० ई० की रात को १० बजे परलोक सिधारे।

अहा! अब बाबू रामकाली संसार में नहीं हैं, पर उनकी कीर्त्ति चिरकाल तक उज्वल रहेगी। एक साधारण पितृहीन बालक बिना सहायता के क्योंकर पढ़ लिख कर उन्नततम अवस्था को पहुंच सकता है, रामकाली बाबू की जीवनी इसका उदाहरण है और बिभिन्न जाति, धर्म, समाज और देश के लोगों का भी मनुष्य क्योंकर प्रियपात्र हो सकता है, इस बात की भी साक्षी उनकी जीवनी है। अस्तु, अब इससे बढ़ कर बाबू रामकाली के भाग्य की सराहना और कर्त्तव्य की पूर्त्ति और क्या हो सकती है कि उन्होंने तीनों पुत्रों को योग्य विद्वान् और कर्मक्षम बना कर तथा बिपुल धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके लिये छोड़कर संसार छोड़ा। जगदीश्वर उनकी अविनश्वर आत्मा को शान्ति दे और हमारे देश के लोग रामकाली बाबू सरीखे व्यक्तियों के उदाहरण को देखकर अपने को भी साधारण अवस्था से असाधारण पद पर पहुंचाने की चेष्टा करें।

यद्यपि रामकाली बाबू का सम्बन्ध काशी से ही अधिक रहा और यहीं उन्होंने अपने जीवन का बहुत काल बिताया, पर इसमें सन्देह नहीं है कि काशी में यदि कोई व्यक्ति साधारण प्रजा का मुखिया बना तो वह येही थे इनकी मृत्यु से जो स्थान खाली पड़ गया है उसकी पूर्त्ति अब लों नहीं हुई है और न होने की आशा है। ईश्वर हमारे देश के पढ़े लिखे धनाढ्य लोगों को ऐसी बुद्धि दे कि वे वास्तव में प्रजा के कृपापात्र बनकर उनका उपकार करसकें।

चन्द्रलोक

सरस्वती के गत वर्ष के अंकों में पाठकों ने चन्द्रलोक की यात्रा का वृत्तान्त तो पढ़ा होगा। वह उपन्यास की भांति एक कहानी थी। किन्तु आज हम पाठकगणों के बोध के हेतु चन्द्रलोक के उस यथार्थ वृत्तान्त को, जो आज तक वैज्ञानिकों को गणित और यंत्रों द्वारा विदित हुआ है और जो सब प्रकार से आश्चर्ययुक्त है, लिखते हैं।

हमारे शास्त्रकारों ने चन्द्रमा को केवल चन्द्र-देव ही नहीं कहा है, वरन् उसे लोक कह कर भी लिखा है; जिसका तात्पर्य्य यह है कि चन्द्रमा में भी एक सृष्टि है। आशा की जाती है कि यह बात शीघ्र ही सिद्ध हो जायगी। इसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। इसके पहिले चन्द्रमा क्या है, हमसे वह कितनी दूर है, कितना बड़ा है, कितना गुरु है, उसकी कैसी गति है और वह वास्तव में किन किन वस्तुओं से बना है इस बात का लिखना आवश्यक है।

जिस प्रकार से बुद्ध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और शनि आदि ग्रह हमारे सूर्य्य के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं, उसी प्रकार यह चन्द्रमा इस गोल पृथ्वी के चारों ओर घूमा करता है और सदैव घूमता रहेगा, अर्थात् यह कहा जा सकता है कि यह भी एक ग्रह है जो आकाश में पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के कारण उसकी परिक्रमा करता है। इस छोटे से लेख में यह लिखना कि चन्द्रमा क्योंकर इस भूगोल के चारों ओर घूमता है और आकाश में क्यों नहीं छटक जाता, उचित नहीं जान पड़ता।

रात्रि के समय यद्यपि यह आस पास के तारों और ग्रहों की सेना में बहुत बड़ा और अधिक प्रकाशित देख पड़ता है, परन्तु वास्तव में यह तारों और ग्रहों से बहुत ही छोटा है। यह एक ठोस गोला है जिसका व्यास २१६० मील का है। पृथ्वी का व्यास इसके व्यास से लगभग ४ गुणा है अर्थात् चन्द्रमा इतना छोटा है कि यदि ४९ चन्द्रमाओं का एक गोला बनाया जाय तो वह इस पृथ्वी के बराबर होगा। पृथ्वी से निकट होने के कारण यह बड़ा दीख पड़ता है। इसका मार्ग दीर्घवृत्तीय है, इसी कारण यह कभी पृथ्वी के समीप और कभी उससे दूर हो जाता है, पृथ्वी के केन्द्र से इसके केन्द्र की दूरी निकट होने पर २२५७१९ मील और दूर होने पर २५१९४७ मील होती है; इन दोनों दूरियों का भेद २६२२८ मील है, अर्थात् इसकी सरदल दूरी २३८७९३ मील है। इसी कारण से चन्द्रमा किसी पूर्णिमा को बड़ा और कभी छोटा दीख पड़ता है।

पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में इसको २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११½ सेकेण्ड लगते हैं और यह पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है और पृथ्वी भी अपनी कीली पर पश्चिम से पूर्व की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर घूमती है, इसी कारण से हम भूगोल-वासियों को चन्द्रमा की एक परिक्रमा का समय २९ दिन १२ घण्टा ४४ मिनट का विदित होता है। इसकी तीन गति हैं-अर्थात् (१) पृथ्वी के चारो ओर घूमना, (२) सूर्य के चारो ओर इस पृथ्वी के साथ घूमना और (३) अपनी कीली पर दूसरे ग्रहों के समान घूमना। पर इस चन्द्रमा में यह विचित्रता है कि इसको अपनी कीली पर घूमने में भी उतना ही समय लगता है जितना कि पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाने में, अर्थात् चन्द्रमा का रात और दिन मारे २९½ दिनों के बराबर होता है।

पृथ्वी अपनी कीली पर लगभग २४ घण्टे में घूम जाती है और सूर्य के चारो ओर घूमने में उसे ३६५ दिन ६ घण्टे लगते हैं। पर हमारा चन्द्रमा २९½ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा करता है और इसी समय में अपनी कीली पर फिर जाता है। इसी कारण से हमलोग उसके एकही ओर के भाग को सदैव देखते हैं, अर्थात् हमको चन्द्रमा में एकही प्रकार के चिन्ह सर्वदा दीख पड़ते हैं। पर वास्तव में हमलोग उसके अर्द्ध भाग से भी कुछ अधिक अंश को देखते हैं, जिसका यह कारण है कि इसकी कीली इसके मार्ग के धरातल से समकोण नहीं जाती, वरन् १½ अंश झुकी रहती है। इसीसे कभी चन्द्रमा के ऊपर का और कभी नीचे का कुछ अंश दीख पड़ता है और यह बात दूरवीक्षण-यन्त्र से स्पष्ट विदित होती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि चन्द्रमा कभी एक टेढ़ी लकीर सा, कभी आधा और कभी पूरा क्यों देख पड़ता है और कभी कभी इसमें ग्रहण क्यों लगता है? सुनिए, चन्द्रमा के घटने बढ़ने का कारण यह है कि यह एक अंधकारमय गोला है और स्वयं चमकने वाला नहीं वरन् सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

अतएव अब यह बात स्पष्ट होगई कि चन्द्रमा का वही अर्द्ध भाग प्रकाशित होगा जो सूर्य्य की ओर होगा। अब यदि पृथ्वी भी चन्द्रमा के उसी ओर हो, जिस ओर सूर्य्य है तो हमको उस (चन्द्रमा) का आधा चमकता हुआ भाग एक गोल चक्कर की नांई वैसाही देख पड़ेगा जैसा कि हम पूर्णिमा को देखते हैं; और यदि पृथ्वी दूसरी ओर हो, अर्थात् चन्द्रमा बीच में हो तो हमको कुछ न देख पड़ेगा, क्योंकि हमारे सामने वही अर्द्ध भाग होगा जो सूर्य्य से प्रकाशित नहीं है। यह अमावास्या हुई।

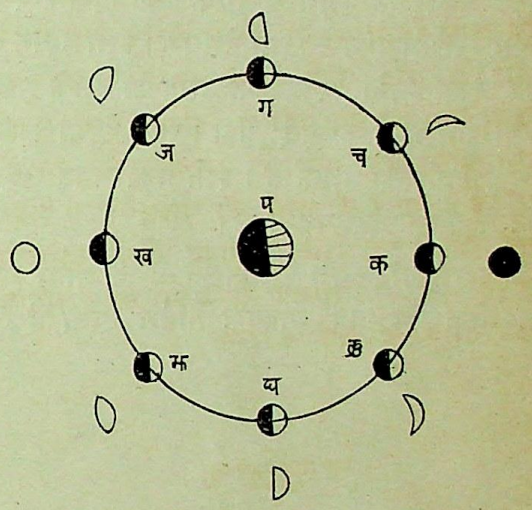

चित्र १—चन्द्रमा के विभिन्न प्रकार के रूप

ये बातें चित्र १ के देखने से विदित होंगी। यदि हम सूर्य्य को दहिनी ओर मानें तो चन्द्रमा चाहे किसी स्थान पर हो उसका दहिना अर्द्ध भाग प्रकाशित रहेगा। इस चित्र में प पृथ्वी और क ख ग घ च छ ज झ चन्द्रमा हैं। बड़ा चक्र चन्द्रमा का मार्ग है जिसे वह (चन्द्रमा) पृथ्वी के चारो ओर घूमने में बनाता है। यदि पहिले चन्द्रमा को क स्थान पर मानें तो उसका अर्द्ध भाग जो प्रकाशित है पृथ्वी के सन्मुख न होगा, वरन् सूर्य्य की ओर पड़ेगा, और ऐसी अवस्था में हमें वह अर्द्ध भाग दृष्टिगोचर न होगा जैसा कि अमावस्या को होता है। अब यदि ख स्थान पर चन्द्रमा आवे तो उसका अर्द्ध प्रकाशित भाग पृथ्वी की ओर होगा और हमको वह एक गोल चक्र की नाईं देख पड़ेगा, जैसा कि पूर्णिमा को होता है। एक बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी विदित होती है कि अमावास्या को सूर्य्य, चन्द्र और पृथ्वी, ये तीनों एकही रेखा में होंगे। जब चन्द्रमा ग और घ स्थानों में आवेगा तो हमलोग उसके अर्द्ध चमकते भाग का केवल अर्द्ध भाग देखेंगे और हमको वह आधी रोटी का सा विदित होगा जैसा कि दोनों पक्ष की अष्टमी को देख पड़ता है। जब च छ स्थान पर होगा तो उसके अर्द्ध प्रकाशित भाग का एक अंश दिखाई देगा जैसा कि चौथ का चन्द्रमा होता है। इसी प्रकार से जब ज झ स्थानों पर चन्द्रमा होगा तो उसके अर्द्ध प्रकाशित भाग का कुछ अंश छिपा रहेगा जैसा कि द्वादशी को होता है। इसी प्रकार वह सदैव घटता बढ़ता देख पड़ता है।

परन्तु पाठकगण पूछ सकते हैं कि प्रायः दूज वा तीज को जब आकाश निर्मल होता है तो

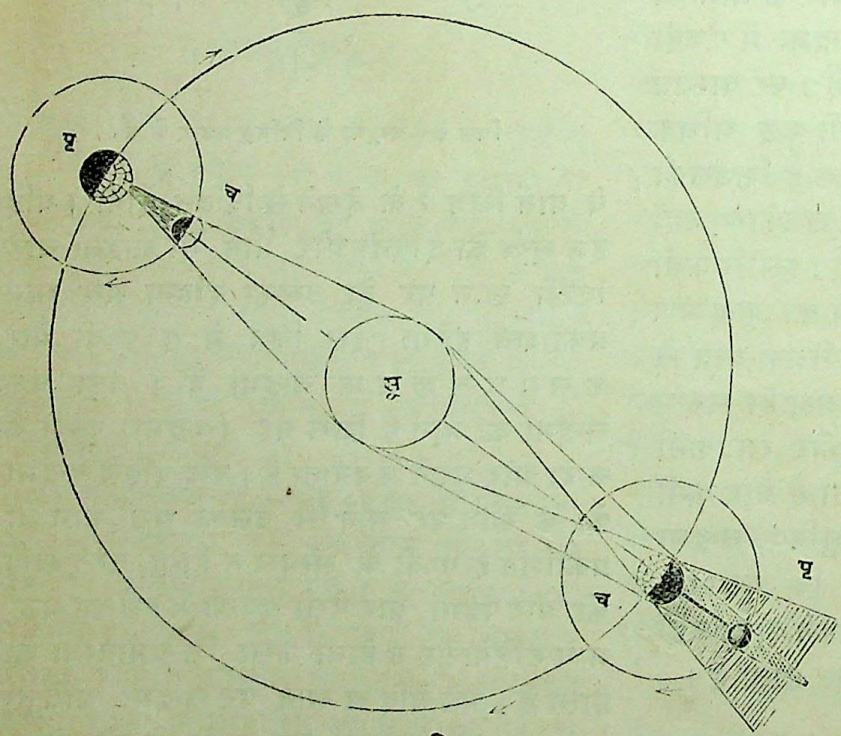

चित्र २

चन्द्रमा सूर्यास्त के उपरान्त एक टेढ़ी लकीर सा देख पड़ता है, पर उसीके साथ उसका शेष भाग भी धुन्धला सा स्पष्ट दिखाई देता है, इसका क्या कारण है? वास्तव में यह शेष भाग पृथ्वी के प्रतिबिम्ब से कुछ प्रकाशित हो जाने से दिखाई देता है। क्योंकि जिस प्रकार से चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब से पृथ्वी रात्रि समय प्रकाशित होकर उसकी कौमुदी से कवि और नायक नायिकाओं के चित्त को आनन्दित कर संसारी जीवों को मोहित करती है, उसी प्रकार से चन्द्रमा भी पृथ्वी के प्रतिबिम्ब से जो उस समय सूर्य्य के बिम्ब से प्रकाशमान होती है, चमकता है। पर यह प्रकाश बहुत मन्द होता है। यदि हम चन्द्रलोक में जाकर इस पृथ्वी को देखें तो हमको यह पृथ्वी ठीक एक बड़े चन्द्र के समान दिखलाई देगी और चन्द्र की नाईं घटती बढ़ती विदित होगी। इस पर आप कहेंगे कि अमावास्या के दिन ऐसा चन्द्रमा क्यों नहीं दिखलाई देता, पृथ्वी का प्रतिबिम्ब तो अवश्य उस पर पड़ता है। सुनिए, उस समय चन्द्रमा सूर्य्य के सामने होने से उसके प्रकाश के तेज से नहीं दिखाई देता। अब यह प्रश्न होता है कि चन्द्र और सूर्य्य ग्रहण कैसे होते हैं? आप कह चुके हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारो ओर घूमता और पृथ्वी सूर्य्य की परिक्रमा करती है। जब पृथ्वी और सूर्य्य के ठीक बीच में चन्द्रमा आजाय तो अवश्य चन्द्र की ओर से सूर्य्य का कुछ अंश या पूर्ण भाग ढक जायगा तब हम लोगों को सूर्य्य ग्रहण विदित होगा और चन्द्र का प्रकाशित भाग सूर्य्य की ओर होने से हमको नहीं दीखेगा, उस दिन अमावस्या होगी। इसी से सूर्य्य ग्रहण अमावस्या को होता है, दूसरी किसी तिथि को नहीं होता, और ग्रहण उसी स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाई देगा जो उस समय सूर्य्य और चन्द्रमा से सरल रेखा में होगा। चित्र २ में दहिनी ओर देखने से विदित होगा कि जब पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य्य एक सरल रेखा में होंगे तो सूर्य्य का चन्द्रमा की ओर में होने से पृथ्वी पर छाया पड़ेगी और जिस स्थान में छाया रहेगी वहां वालों को ग्रहण दिखाई देगा। इसी प्रकार चन्द्रमा जब पृथ्वी के पीछे, जिस समय पूर्णमासी होती है, घूमता हुआ जायगा और तीनों (सूर्य्य, पृथ्वी और चन्द्र) जब एक सरल रेखा में होंगे तब चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ेगी, सूर्य्य का प्रतिबिम्ब उस पर न पड़ सकेगा। चन्द्रमा पहिले हलकी छाया में पश्चिम से पूर्व की ओर जाता दिखाई देगा और फिर गहरी छाया में (चित्र २ में बाएं चित्र को देखिए) इस प्रकार का पूर्ण ग्रहण पौने दो घण्टे तक रह सकता है। प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्या को ग्रहण न होने का कारण यह है कि चन्द्रमा का मार्ग और पृथ्वी का मार्ग एक धरातल में नहीं है। यदि ऐसा होता तो प्रति पन्द्रहवें दिन ग्रहण लगता। दोनों के मार्ग का धरातल एक दूसरे से ५ अंश का कोण बनाता है जो केवल दो स्थान पर एक दूसरे को काटता है। जब उन्हीं दोनों स्थानों पर चन्द्रमा आता है तभी तीनों एक सरल रेखा में होते हैं और ग्रहण लगता है। यह सब तो इसकी गति का वृत्तान्त है। अब दूरवीक्षण यन्त्र से देखने में क्या विदित होता है सो सुनिए।

केवल नेत्रों से देखने पर चन्द्रमा में कुछ कुछ लाञ्छन (दाग) मालूम पड़ते हैं, जिन्हें हमलोग बाल्यावस्था में जानते थे कि बुढ़िया बैठी चरखा कात रही है। पर ऐसा नहीं है। दूरवीक्षण यन्त्र से देखने में इसमें बड़े बड़े पहाड़ मैदान ज्वालामुखी पर्वत और पहाड़ियां दिखाई देती हैं। केवल यही नहीं, वरन् इन ऊंचे पहाड़ों की परछाईं भी दिखाई देती है जो बढ़ती घटती है। जिस प्रकार से इस

चन्द्रमा का चित्र

भूमि पर सूर्य्योदय के समय प्रत्येक खड़ी वस्तु की परछाईं बहुत लम्बी होती है और जैसे जैसे सूर्य्य ऊपर आता जाता है, वह घटती जाती है, उसी प्रकार चन्द्रमा के पहाड़ों की परछाईं भी बढ़ती घटती है। इस परछाईं को नापने से पहाड़ों की उंचाई मालूम हो सकती है। जब चन्द्रमा को बड़े दूरवीक्षण यन्त्र से देखा जाता है तो ये पहाड़ घाटियां बहुत स्पष्ट दिखाई देती हैं। ज्योतिषियों ने चन्द्रमा के उस अधिक भाग को जो दिखाई देता है भली भांति नाप डाला है। आंखों से देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उसमें का स्थान कुछ अधिक चमकदार और कुछ धुन्धला दिखाई देता है, परन्तु यन्त्र से देखने पर यह भ्रम जाता रहता है और अधिक प्रकाशित स्थान पहाड़, और धुन्धले स्थान सरपट मैदान दीखते हैं. और इन पहाड़ों में ज्वालामुखी पर्वत भी मालूम पड़ते हैं जो इतने बड़े हैं कि इस पृथ्वीतल पर इनके बराबर एक भी पर्वत नहीं है। इन पर्वतों में जो सबसे ऊंचा है और जिसका नाम डोरफेल रक्खा गया है, २६६९० फीट है। रामपर्ट नामक एक दूसरा पहाड़ २३८५० फीट ऊंचा है। इसी प्रकार और भी कई एक ऊंचे ऊंचे शिखर हैं। इनकी ऊंचाई देखने से विदित होता है कि हिमालय पर्वत के समान ये ऊंचे हैं। महाशय मांडलर ने चन्द्रमा में इनके उपरान्त ३९ और ऐसे पर्वतों की ऊंचाई नापी है जो योरप के प्रसिद्ध पहाड़ मौन्ट ब्लांक से अधिक ऊंचे हैं। ब्लांक की चोटी १५८७० फीट ऊंची है। सारांश यह कि यद्यपि चन्द्रमा पृथ्वी से बहुत छोटा है पर इसके पहाड़ पृथ्वी के पर्वतों के बराबर ऊंचे हैं। उनमें ज्वालामुखी ऐसे भयङ्कर हैं कि उनके व्यास १ मील से लेकर ४२ मील तक हैं।

चन्द्रमा में ज्वालामुखी पहाड़ के क्रेटर

इसका बोध इस प्रकार हो सकता है कि विसूवियस पहाड़ फूट कर ज्वाला से गले पत्थर और राख आदि बड़े वेग से निकलने पर उसके पास दो बड़े बड़े प्रसिद्ध नगर हरक्युलेनियम और पाम्पिआई ऐसे दबे कि लगभग १५०० वर्ष तक उनका पता नहीं लगा, केवल २५० वर्ष से इनके पता मट्टी खोद कर नगर के निकलने से मालूम हुआ। अब वह ज्वाला शान्त है और इसकी ज्वाला निकलने वाले मुंह की चौड़ाई आधी मील भी नहीं है। आज कल इस प्रकार के पर्वत जो चन्द्रलोक में हैं सब ठण्ढे प्रतीत होते हैं। इन बड़े भयङ्कर ज्वालामुखी के फूटने से कैसा महाप्रलय उस भूमि पर हुआ होगा, इस बात को पाठकगण स्वयं विचार सकते हैं। यदि उस समय में जीवधारी वहां रहे होंगे तो वे सबके सब उस निकली हुई अग्नि में जो सैंकड़ों कोस तक फैली होगी भस्म हो गए होंगे, क्योंकि इन पहाड़ों के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि ये किसी समय में बड़े वेग से फूटे हैं और इनकी भयङ्कर अग्नि बहुत दूर तक पहाड़ियों की नाईं फैली हुई अब तक देख पड़ती है। इस समय तक कोई पहाड़, जिनसे ज्वाला निकलती हो, नहीं देख पड़े हैं, पर आशा है कि जो बड़े बड़े यन्त्र इस समय बनाए गए हैं, उनसे देखने पर यदि होंगे तो अवश्य देख पड़ेंगे। विद्वानों का यह मत है कि चन्द्रलोक छोटा होने के कारण उसके भीतर की उष्णता सब निकल गई है और अब यह गोला ठण्ढा हो गया है। क्योंकि जो अग्नि और ज्वाला आदि पर्वतों द्वारा इस पृथ्वी पर निकलती है वह हमारे गोलाकार पृथ्वी के भीतर की अग्नि है। जब हमारी पृथ्वी की उष्णता निकल जायगी तो इस पृथ्वी पर भी कोई ज्वालामुखी पर्वत जीवित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा और सब चन्द्रलोक के पर्वतों की नाईं ठण्ढे हो जायंगे।

अब तक ज्योतिषियों का यह मत रहा है कि चन्द्रमा में न तो वायु है और न जल। इसका प्रमाण वे लोग यह देते थे कि उसमें न तो कोई जल का चिन्ह है और न बादल दिखाई देते हैं। और दूसरी बात यह कही जाती है कि जब चन्द्रमा किसी ग्रह या तारे के सामने होकर जाता है तो वह तारा एक दम से उसके पीछे लुप्त हो जाता है। यदि चन्द्रमा के चारों ओर वायु होती तो यह बात न देख पड़ती, वरन् वह तारा पहिले चपटा और धुन्धला होकर क्रमशः लुप्त होता। इन बातों को देख कर अब तक यही विचार किया जाता था। पर नहीं, इसमें वायु है इस बात का पता यन्त्रों से लगा है। यह वायु अत्यन्त सूक्ष्म और पतली अर्थात् हलकी है। इसका प्रमाण यों मिलता है कि यदि उसके चारों ओर जैसा कि इस पृथ्वी पर है, वायु न होती तो वहां बहुत शीत होता, यहां तक कि वहां दिन को भी ५० डिगरी की सरदी होती। पर यन्त्रों से जांचने पर यह बात नहीं पाई जाती। पहिले कहा जा चुका है कि चन्द्रमा का एक दिन रात २९½ दिन का होता है, अर्थात् उसकी रात्रि हमारे १४ दिन १८ घण्टे की होती है और आधे गोले में रात्रि इतनी लम्बी होने के कारण यदि वहां वायु बिलकुल न होती तो इतनी सर्दी होती कि जितनी साइबीरिया के महा भयानक मैदानों में या उत्तरी ध्रुव पर भी नहीं है। इसके उपरान्त पाठकगण भली भांति जानते हैं कि जिस दिन बदली होती है वा जिस समय वायु में धूल अधिक होती है, उस रात्रि को सर्दी कम मालूम होती है, अर्थात् पृथ्वी के ठण्ढी होने से वायु बादल वाष्प और धूल आदि को रोकती है। यदि इस पृथ्वी पर वायु तनिक भी न होती तो आज दिन हमलोग भी सदैव मोटे ऊनी वा रोएं-दार कपड़ों में कसे होते, ढाके की मलमल के कपड़े बनाने की न सूझती और ढाका इस कारीगरी के लिये न प्रसिद्ध होता। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा में जितनी सरदी इस समय है उससे बहुत अधिक होती, यदि वहां वायु न होती। पर पाठकगण कह सकते हैं कि यह तो हमने माना कि वहां वायु है और बहुत सूक्ष्म है, पर जल का होना विदित नहीं होता, क्योंकि यदि जल वहां होता तो बादल अवश्य देख पड़ते। पर थोड़ा सा विचारने पर यह शङ्का जाती रहती है।

आप जानते हैं कि बादल क्या वस्तु है? यह जल का वाष्प है, जो ठण्ढक पाने पर घना होकर दिखलाई देता है। और यह वाष्प वायु में हलका होने के कारण तैरता रहता है। अब यदि वायु बहुत हलकी हो जाय तो कभी बादल न देख पड़ेंगे, क्योंकि वाष्प वायु में ठहरेगा नहीं, वरन् तनिक सरदी पाने पर वह जम कर पृथ्वी पर उसी दम गिर जायगा, अर्थात् बादल पैदा होने के हेतु वायु का वाष्प से भारी होना आवश्यक है। यही कारण है कि चन्द्रमा में बादल आदि नहीं पैदा होते। वायु वहां की बहुत सूक्ष्म है। तो बादल के न होने से हमारा यह अनुमान कि चन्द्रमा में जल नहीं कुछ ठीक नहीं है। पर यह हो सकता है कि जल द्रव अवस्था में न हो, क्योंकि वहां सरदी इस पृथ्वी से अधिक है।

अब चन्द्रमा के प्रकाश का वृत्तान्त सुनिए। यदि सूर्य के प्रकाश को श्वेत मानें तो चन्द्रमा का रंग मटमैला धुंधला पीला सा है। पर अंधेरी रातों में हमको यह मधुर हलके नीले रंग का सा, जिस-के देखने से शीतलता प्राप्त होती है, मालूम होता है। पर यह हमारा भ्रम है। हम यह कह कर इसकी मधुरता को घटाना नहीं चाहते कि वास्तव में न तो यह ठण्ढक पहुंचाता है और न उस रंग का है जैसा कि देख पड़ता है, वरन् भूरे रङ्ग का है। हमें भय है कि कवियों के हृदय को यह सुन कर कष्ट होगा। इसका प्रकाश इतना सूक्ष्म है कि सूर्य के प्रकाश से ५४७५१३ गुणा कम है। अर्थात् ५४७५१३ पूर्णिमा के चन्द्रमा एकत्र किए जांय तो इन सबका प्रकाश हमारे सूर्यदेव के प्रकाश के बराबर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सुनिए, पेरिस की प्रदर्शनी में एक ऐसी दूरबीन बना कर दिखाई गई है जिसके द्वारा चन्द्रमा देखने में इतना निकट देख पड़ेगा मानो १८ कर यन्त्र के बड़े लेन्स पर पड़ता है। तब यन्त्र के दूसरी ओर उस वस्तु का कई सहस्र गुणा बड़ा होकर चित्र बड़े श्वेत परदे पर पड़ता

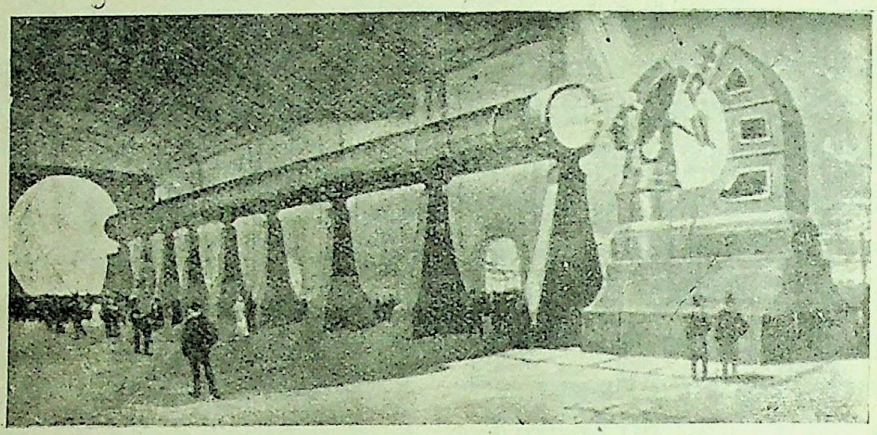

पेरिस प्रदर्शनी में दूरवीक्षण यन्त्र

कोस (३६ मील) पर है। प्रायः दूरबीनों से एकही समय में एक मनुष्य किसी वस्तु को देख सकता है, पर इस दूरवीक्षण यन्त्र में यह विचित्रता है कि सैंकड़ों आदमी एकही बेर जिस ग्रह को चाहें देख सकेंगे। इस दूरवीक्षण यन्त्र की लम्बाई १९७ फीट है जिसमें सबसे बड़ा कांच का लेन्स लगभग ५० इञ्च व्यास का है। इस कांच का स्वयं बोझ ६६० सेर अर्थात् १६ मन २० सेर है। इतने बड़े लेन्स के बनाने में बड़ा परिश्रम और द्रव्य व्यय हुआ, अर्थात् केवल लेन्स के बनाने में ४५००० रुपए व्यय हुए। इसके बनाने वाले पेरिस नगर के एक प्रसिद्ध पुरुष एम० मानटोइस साहब हैं। दूरबीन का बोझ ५८० मन है और यह ५ फीट मोटा है। इससे यदि चन्द्रमा देखा जाय तो वह १८ फीट चौड़ा देख पड़ता है। यह यन्त्र बड़े बड़े खम्भों पर सुला कर रक्खा हुआ है। इसके आगे एक बड़ा दर्पण इस प्रकार से लगा है कि चारो ओर घूम सकता है। जिस वस्तु को देखना हो उसका प्रतिबिम्ब इस प्रकार से इस दर्पण पर डालते हैं कि इससे आया हुआ प्रतिबिम्ब फिर जिसको सहस्रों पुरुष देख सकते हैं; मानो वह मेजिक लालटेन के चित्र की नाईं देख पड़ता है जैसा कि चित्र देखने से विदित होगा। अब ज्योतिषियों ने इस यन्त्र से काम नहीं लिया है, पर आशा की जाती है कि जब लोग इसमें भली भाँति आँख लगा कर देखेंगे तब चन्द्रमा में यदि जीव आदि होंगे तो अवश्य देख पड़ेंगे। अब पाठकों को कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु जब कोई विषय विचित्र दिखाई देगा तो आशा है कि इस पत्रिका में उसका समाचार हम प्रकाशित करेंगे, क्योंकि चन्द्रमा में जीव का होना सम्भव है।

अभी कुछ काल हुआ कि 'अवध अखबार' में प्रकाशित हुआ था कि हरशल महाशय ने, जो एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के पौत्र हैं, गत जनवरी में एक बड़े यन्त्र द्वारा कुछ ऐसी वस्तु चलती फिरती चन्द्रमा में देखी जो जीव के समान थी। इसके उपरान्त उन्होंने मनुष्यों के स्वरूप वाले जीव देखे जिनके देह पर लम्बे लम्बे बाल थे, पर ये बातें उसी समय में देख पड़ती हैं जब आकाश अत्यन्त निर्मल रहता है। आशा की जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पेरिस वाले यन्त्र से, जो इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा और शक्तिवान् है, ये जीव स्पष्ट देख पड़ेंगे और शीघ्रही इसका वृत्तान्त विदित हो जायगा। ईश्वर की महिमा का पारावार नहीं है। जब उसने पृथ्वी पर जीव उत्पन्न किए तो चन्द्रलोक में यदि इस प्रकार के नहीं जैसे कि इस पृथ्वीतल पर हैं तो अन्य प्रकार के जीव अवश्य उत्पन्न किए होंगे।

दक्षिण द्वीप के प्रवासी का पत्र

प्यारे मित्र, यह तुमको मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि देश में बहुत कुछ चेष्टा करने पर भी मेरी जीविका का कुछ भी उपाय न हुआ और कई वर्षों तक क्लेश सहने के अनन्तर मैंने इस टापू में ही चले आने का विचार कर लिया। यह भी तुम्हें पहिले पत्र में लिख चुका हूं कि कैसे कैसे दुःख और कठिनाइयां झेल कर निदान यहां आकर मैं बस गया और एक प्रकार से पेट भरने की चिन्ता से निश्चिन्त हो खेती बारी के काम में लग गया। सच पूछो तो यह एक बड़ा ही सुन्दर देश और यहां के रहने वाले असभ्य और गवांर होने पर भी बड़े भले हैं। वे बड़े सीधे सादे और बुद्धिमान हैं, और जब से हमारे कप्तान साहब ने उनके मुखिया से मेल कर लिया है, तब से वह हमलोगों का मित्र और रक्षक बन गया है और हमलोगों ने इन लोगों के साथ बैलों का व्यापार भी कर लिया है। वे तो हमें बैल, गाय, आदि चौपाए दे जाते हैं और हमलोग उसके विनिमय में लोहा और तामा उन्हें दिया करते हैं। लोहे से वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं, और इस वस्तु का मूल्य भी वे बहुत चढ़ चढ़ के लगाते हैं। पर, हाय, भाइ, तुम्हें पहिली चिट्ठी लिखने के अनन्तर मेरे भाग्य में ऐसी ऐसी दुर्दशा भोगनी लिखी थी, कि कभी किसी मनुष्य को ऐसा होना सम्भव नहीं है। अब मैं तुमसे वह वृत्तान्त कहता हूँ कि यदि यह किसी उपन्यास में लिखा जाता तो लोग असम्भव जान कभी इसका विश्वास तक न करते। पर मेरा यह वृत्तान्त बहुत ही सत्य है। इस पृथिवीतल में बहुतेरी ऐसी बातें नित्य हो रही हैं जिनका ज्ञान तक किसीको नहीं है और न किसीकी बुद्धि में वे सम्भव जान पड़ती हैं। लोग ऐसी बातों को स्वप्न में भी नहीं देखते होंगे।

मेरी चमेली को तो लड़काई से ही तुम जानते हो और बटुकपुर में हम लोगों के ब्याह के समय भी तो तुम उपस्थित थे। मुझे स्मरण है कि तुमने उसके उस बालरूप ही को कैसा सराहा था और मुझे ऐसे स्त्रीरत्न के मिलने पर बड़भागी बताया था। परन्तु, मित्र, बहुत दिनों से तुमसे हमलोग बिछुड़े हुए हैं, तुम मेरी प्रतीत नहीं करोगे पर इस समय के उसके रूप रंग से और तब से आकाश पाताल का भेद है। जब वह हमारे खेतों में अपने बालक को गोद में लिये घूमा करती है तो मैं समझता हूं कि ऐसी मोहिनी प्यारी लक्ष्मी किसी दूसरे मनुष्य के घर न होगी।

अस्तु एक दिन कारू मुखिया मेरे पास आया और अपने द्विभाषी के मुख से वह अपने प्रताप के बड़े बड़े व्याख्यान सुनाने लगा। उसके पास इतने गांव हैं, उसमें ऐसे ऐसे गुण हैं, इतने मनुष्य उसके अधीन हैं, वह यहां ये ये बातें देश के हित के लिये करना चाहता है, इत्यादि इत्यादि आंय बांय शांय, अपनी हूश, जर्मन, अंग्रेज़ी, मन्द्राज़ी, जाने कहां कहां की भाषाओं की एक मसालेदार खिचड़ी पका कर उसने मेरे कानों में ठूंसनी आरम्भ कर दी। सुनते सुनते हँसी के मारे मेरा पेट फूल रहा था। पर फिर जो कुछ उसने कहा उसे सुन कर मैं सन्न हो गया। उसने अपने व्याख्यान को यह कह समाप्त करवाया कि मेरी चमेली को वह अपना किया चाहता है और उसके बदले में मुझे चार बैल देने पर तैयार है; मैं जब चाहूँ चमेली के परिवर्त्तन में अच्छे से अच्छे बैल चुन कर उसके यहां से ले लूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वह यह सब हाथ मूंह हिला कर कहलवा रहा था, उस समय मेरी स्त्री भी वहीं उपस्थित थी। इस अद्भुत वाणिज्य के ढङ्ग को, और विशेष कर इसके कहने की रीति को सुन कर वह तो खिल-खिला कर हंस पड़ी। कारू ने सोचा कि उसके समान मर्य्यादावान् पुरुषरत्न के आश्रय-लाभ की सम्भावना से वह बड़ी प्रसन्न हुई है, और फिर अपनी गोल गोल आंखों को फाड़ कर इस भांति वह उसकी ओर प्रेम से निहारने लगा कि मैं उसे ठीक ठीक लिख कर नहीं बता सकता। द्विभाषी के द्वारा उसने एक और बौछाड़ आरम्भ कर दी कि जिससे ज्ञात हुआ कि कैसे कैसे सुख और आनन्द मेरी स्त्री के भाग्य में होंगे। उनमें से एक तो यह था कि उसके चढ़ने के लिये एक बड़ा मोटा ताज़ा बैल रहेगा जिसके सींगों की नोकें सोने से मढ़ी होंगी।

कारू सुखिया

मेरे ऊपर उसने जो अनुग्रह और कृपादृष्टि की उसके लिये मैंने कारू को अशेष धन्यवाद दिए। परन्तु यह कहना ही पड़ा कि स्त्री का बैलों के साथ मैं बदला नहीं कर सकता हूं, क्योंकि वह मेरी अर्धाङ्गिनी है और केवल मृत्यु ही से हम दोनों का साथ छूट सकता है। परन्तु उसको ऐसे नाते का होना सम्भव नहीं जान पड़ा। वह बारम्बार समझाने लगा कि सभी लोग अपनी स्त्री और बेटियों को बेच दिया करते हैं, और स्त्री स पुरुष ही के आज्ञाधीन है, वह जैसा चाहे उस साथ वर्ताव कर सकता है। ताम्बुको से उ बहुत सी स्त्रियां मंगवाई हैं; वे सब कुआरी तौभी किसीके लिये उसने दो गाय से अधि नहीं खर्ची; परन्तु मेरी स्त्री उसकी आंखों जचगई थी इसी कारण देश भर में अच्छी से अच चार स्त्रियों का मूल्य अकेली उसीके लिये देने को तैयार है। अन्त में उसने बिना कुछ आ पीछा किए अपनी स्त्री के बेचडालने के लि बारम्बार मेरी प्रार्थना की। और जब मैंने उस अन्त में साफ साफ कह दिया कि पृथ्वी के कि रत्न से भी मैं अपनी स्त्री का परिवर्त्तन नहीं करने क तब तो वह कुछ खिसियाया सा जान पड़ा; अप अगूंठा दांतों से काटने, और भौंहें सिकोड़ने ल और चुपचाप कुछ देर तक सोचता रहा, बारम्ब मेरी स्त्री की ओर आंखें फाड़ फाड़ कर बड़े च से देखने लगा, और फिर बड़े जोर से अपना भा भूमि में गाड़ कर उसने मेरी स्त्री का मूल्य दस गा और एक सांड़ लगा दिया और एक युवा कुआ कन्या घलुए में मुझे देने लगा। जब मैंने इस बा को भी स्वीकार न किया तो बड़ी घृणा से थोड़ सा मुसकरा कर उसने कहा "तू बुद्धिहीन का पुत्र है!" उसने यह भी मुझसे कहा कि कभी इसके लिये मुझे पछताना पड़ेगा। तीन बार उसने इस वाक्य का उच्चारण किया और बड़े क्रोध में आक वहां से वह चला गया। भाई, क्या तुम्हें विश्वास हो सकता है कि इसके लिये मुझे पछताना पड़ा है!

मेरा छोटू इस समय ग्यारह महीने का था और अपनी माँ ही का दूध पीता था। जिस सम का वृत्तान्त मैं लिख रहा हूं, ठीक उन्हीं दिनों, प दिन रात्रि को हमारी छोटी बस्ती को वनमानुषों ने आकर घेर लिया। वनमानुस क्या हैं तुम जानते हो? ये पशु हैं। वन में रहते हैं और आकृति प्रकृति बहुत सी बातों में मनुष्यों से मिलते जु हैं। ये लोग प्रायः मनुष्यों की बस्तियों पर आ टूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और फल फलहरी रतालू और गाजरों का सत्यानाश कर जाते हैं। उसी दिन से हमलोग बहुत सी बन्दूकें रातदिन भर कर रख छोड़ते थे और एक पहरे का भी प्रबन्ध हमलोगों ने कर लिया था। यह लुटेरे बनैले कुछ दिनों में फिर एक दिन आ पहुंचे। इनके आक्रमण से हमलोग निश्चिन्त नहीं रह सकते थे, क्योंकि वे बड़े बली और हिंसक पशु हैं, और हमारी बन्दुकों में साधारण गोलियां भरी थीं। हमलोगों को पहिले देखते ही वे भाग खड़े हुए और ऐसी तीव्रता से भागे कि हरिण का पीछा कर वह पकड़ भी लिया जा सकता है पर उनका पीछा करना कुछ काम रखता है। एक बार बहुत पास से उनपर बन्दूक चलाने पाए थे और निस्सन्देह कई एक को गोली लग भी गई होगी, क्योंकि रक्त का चिन्ह लगातार हमको मिलता गया था। नदी के तीर तक उनका पीछा हमलोगों ने किया, और फिर वे तैर कर पार उतर गए और उनका कोई पता न चला।

इन सब लुटेरों में से एक बच्चे के अतिरिक्त और कोई नहीं गिरा। इसको मैंने अपनी गोद में

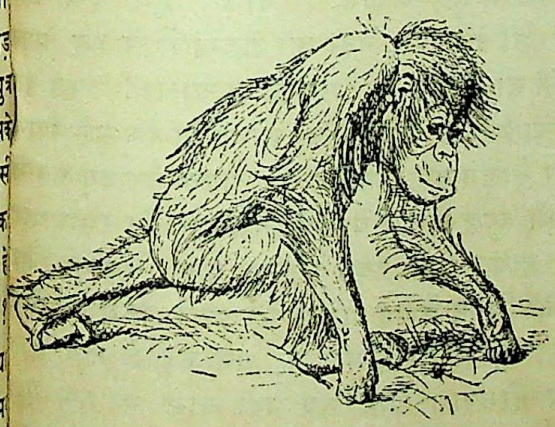

बनमानुस का बच्चा (राजकुमार)—जो छूट गया था

उठा लिया। वह ऐसी आर्त्त दृष्टि से मेरी ओर निहारने लगा और बालकों की भांति चिल्लाने लगा कि मेरा चित्त भर आया। एक भूत छः फीट से भी अधिक ऊंचा—यह देख कर कि उसका बच्चा छूट गया है, एक बड़ा भारी सोंटा हिलाता हुआ लौट पड़ा, और मेरी ओर दांत फाड़ कर घूरने लगा। मैं तो बच्चे को छोड़ देना ही चाहता था, क्योंकि उसे मार डालने की इच्छा मुझे नहीं थी। परन्तु मैं विचार ही रहा था कि मेरे सङ्गियों में से कई मनुष्यों ने उस कदाकार भयङ्कर जीव पर गोलियां चलाईं कि जिनसे चोट खाकर उसे फिर उलटे पांव भागना पड़ा; परन्तु भागती बेर मुड़कर उसने मेरी ओर हाथ मुंह हिला कर कुछ चिन्ह से किए, मानो उसने यह कहा कि बचा, संभले रहना, इसका मज़ा हम तुम्हें चखवाएंगे। इतने में मेरे एक नौकर ने उस बच्चे का काम तमाम कर दिया।

उसके दूसरे ही दिन सवेरे मेरी स्त्री एक टहलनी को लेकर बाहर मैदान में गौओं का दूध दुह रही थी। मैं बगीचे में था और छोटू अपनी मा के पास फूल नोच नोच कर खेल रहा था। अकस्मात् स्त्रियां मेरे गृह के भीतर से एक भीषनाकार बनमानुस को बड़े वेग से निकलते देखकर डरगईं और चिल्ला उठीं। ऐसा मालूम हुआ कि भय से वे गूंगी हो गई थीं और बुद्धि उनकी उस समय लुप्त हो गई थी, क्योंकि एक बार चिल्लाने के अतिरिक्त कोई भी कुछ न बोली जब तक कि उस राक्षस ने आकर मेरे बालक को न उठा लिया और उसे लेकर वह लम्बा हुआ। मेरे पास तो स्त्रियां न आईं परन्तु वे उस पशु के पीछे पीछे दौड़ने लगीं। मैं समझता हूं कि वे यह नहीं जानती थीं कि क्या कर रही हैं। उनके भयसूचक आर्त्तनाद को सुनकर मैं यह समझ कर कि गाएं स्त्रियों पर कूद पड़ी हैं, जहां पर दूध दुहा जाता था वहां दौड़ आया, क्योंकि यहां के चौपाए किसी कारण से जब क्रुद्ध होते हैं तो धक्का देकर गिरादेते हैं। परन्तु गौओं के निकट मेरे पहुंचने के पहिले ही बालक को लेकर बनमानुस आधमील आगे निकल गया था और केवल थकी हुई स्त्रियां चिल्लाती हुई उसके पीछे पीछे दौड़ रहीं थीं। बहुत देर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं नहीं समझ सका कि यह हो क्या रहा है, परन्तु मेरे हाथ में फावड़ा था उसीको लिए हुए बिना सोचे विचारे मैं भी उसी ओर दौड़ा। स्त्रियों तक पहुंचने के पहिले ही मेरे प्यारे बालक के भय से रोने का शब्द मेरे कानों में आया। उस समय जिस भय का सञ्चार मेरे हृदय में हुआ, मनुष्य के हृदय में ऐसा कोई भाव कभी उदय नहीं होता है जिसके साथ उसकी तुलना की जाय। मेरी नसें ढीली हो गईं और सारा शरीर बेकाम और बलहीन हो गया। मुझे जान पड़ता है कि मैं अभ्यास से बहुत शीघ्र ही दौड़ा होऊंगा, परन्तु प्रति मुहूर्त्त में ठोकर खा रहा था, और ज्योंही कि मैं अपनी स्त्री के समीप होकर दौड़ा था, वह पृथिवी पर गिर पड़ी थी। मेरी दासी, केलानी ने, जो उसी देसवासिनी थी, उस समय अपनी बुद्धि का परिचय दिया। वह बिना किसीके कहे ही, और बिना किसीको जताए कि वह कहां है और क्या कर रही है, सब लोगों का साथ छोड़कर बस्ती में और और मनुष्यों को समाचार देने के लिये दौड़ गई। इस कार्य को उसने बड़ी शीघ्रता से करडाला। मैं बेदम, और दुःख से पीड़ित और बलशून्य होकर दौड़ ही रहा था, परन्तु, हाय, आगे क्या बढ़ता था, मैं पीछे ही छूटता जाता था।

मैं समझता हूं कि यदि समय से निकला होता तो सम्भव है कि उस राक्षस तक पहुंच भी जाता, परन्तु अब तो नैराश्य ने मुझे विकल कर दिया। और सच तो यों है कि वह पशु कुछ बहुत दौड़ा भी नहीं; जितना कि ये लोग दौड़ सकते हैं उसका आधा भी वह नहीं दौड़ पाया, क्योंकि लड़के को लिए हुए वह ठीक ठीक नहीं जा सकता था। इन पशुओं की प्रकृति को, सम्भव है, कि तुम नहीं जानते हो और न मैं ही जानता हूं। पर उनका यह स्वभाव है कि जब वे निश्चिन्त होकर धीरे धीरे टहलते हैं, अथवा किसी पहाड़ी के नीचे की ओर उतरते हैं तो मनुष्य के समान सीधे होकर चलते हैं, परन्तु जब सामने पहाड़ की चढ़ाई रहती है, अथवा समथर भूमि पर पश्चादावित होते हैं तो अपनी लम्बी लम्बी भुजाओं से अगले पैरों का काम लेते हैं और तब एक अचिन्तनीय शीघ्रता उनमें आ जाती है। जब उनके पास अपना बच्चा रहता है तो साधारण मनुष्य से दुगना शीघ्रतर वे भाग सकते हैं, क्योंकि उनके बच्चे अपने हाथ पैरों से उनके देह से चिपटे रहते हैं। परन्तु मेरा छोटू तो उसके स्पर्श से भी संकुचित होता था, इस कारण अपने एक हाथ से वह उसे पेट से लगाए हुए था, और केवल तीन ही हाथ पैरों से दौड़ रहा था, परन्तु तब भी वह मेरे आगे ही आता था। भगवान न करे कि कोई मनुष्य कभी इस भांति हृदय-विदारक अचिन्तनीय दुःख में पड़ कर दौड़े। इसी भांति वह काई नदी के तीर पर पहुंचा और वहां आशा मायाविनी के जो कुछ बचे बचाए अंश मेरे हृदय में रह गए थे, सब ठंढे हो गए क्योंकि मैं तैरना नहीं जानता था और बनमानुष बड़ी फुर्ती से बालक को कन्धे पर डाल कर, नदी पार निकल गया। इसी भयङ्कर समय में मेरे प्यारे बालक ने मुझे मैदान पर दौड़ते हुए देखा और मैंने भी देखा कि नदी की लहरों में से वह अपने दोनों हाथ उठा कर "चाचा! चाचा!" कह कर चिल्ला रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मुझे अपनी ओर दौड़ते हुए देख कर वह अपनी नैराश्य अवस्था में भी कुछ आशा पाकर आनन्दित हो रहा था।

हाय! यही दृश्य अन्तिम हुआ, क्योंकि और दो ही मिनट में वह राक्षस मेरे प्यारे बच्चे को लिए हुए, नदी के दूसरे पार के घने जङ्गलों में दृष्टि से लुप्त होगया। और तब मेरी चाल भी रुक गई क्योंकि जल में प्रवेश करना और आत्मघात करना दोनों एक ही बात थी और फिर परदेश में पत्नी एक अनाथिनी विधवा को अकेली छोड़ना पड़ता। इसलिये उस समय किङ्कर्तव्यविमूढ़ हो मैं गिर पड़ा और फूट फूट कर रोने और भगवान को मनाने लगा। इस दशा में मैं अधिक न रहा होऊंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सन्मुख मैंने निज देशवासी बारह मनुष्यों को चले आते देखा। वे सब सशस्त्र और धावे के लिये तैयार होकर निकले थे, और उनमें से चार मनुष्य जो अच्छी तरह तैर भी सकते थे, तुरन्त नदी में कूद पड़े और देखते देखते पार उतर गए, और फिर बनमानुस जिस ओर गया था उसी ओर बढ़ने लगे।

हमलोग बचे हुए नौ मनुष्य नदी के उद्गम की ओर बहुत दूर निकल गए, और शेखी नामकी एक बस्ती में पहुंच कर ताम्बुकिओं के बेड़ों पर नदी पार उतरे। वहीं एक माउसी से भेट हो गई जो एक कुत्ता ले आया और कहने लगा कि यह गन्ध से बनमानुस की खोज लगा देगा। नैराश्य-सागर में तो हमलोग डूबे ही थे, परन्तु बड़ी बेर तक खोजते रहे। जब सांझ हो आई तो कालीसिंह एक जङ्गल में से निकल आया। यह उन चार मनुष्यों में से था जो तैर कर नदी पार हो आए थे, और यह तीनों से कहीं पर जङ्गल में बिछुड़ गया था। उसपर भी एक अनोखी घटना हो गई थी। वह और उसके तीनों साथी इस बात पर सहमत हो गए थे कि एक दूसरे को पुकारने पर सुनाई दे इतनी ही दूरी पर वे एक दूसरे से अलग हों, परन्तु जब वह आगे बढ़ा तो जान पड़ा कि कोई बालक रो रहा है और जब उसी ओर कुछ और आगे वह बढ़ा तो कोई शब्द नहीं सुन पड़ा। जब वह यों खोजता फिरता था तो उसने देखा कि एक बनमानुस चुपके से एक झाड़ी से निकला आ रहा है। यद्यपि उसके भाव से लक्ष होता था कि वहां से वह हटना भी नहीं चाहता है, परन्तु पीछा करने पर वह धीरे धीरे भागचला, मानो उस स्थान से वह फुसला कर उसे हटा देना चाहता था। परन्तु जब कालीसिंह झाड़ी की ओर बढ़ा तो बनमानुस भी लौट आया। कालीसिंह के पास एक पिस्तौल और तलवार थी, परन्तु पिस्तौल और बारूद सब नदी में तैरते समय बेकाम हो गई थी, इसलिये तलवार ही पर इस समय कालीसिंह को निर्भर होना पड़ा। बनमानुस पहिले पिस्तौल से डरा, परन्तु जब उसने देखा कि उससे आग नहीं निकलती है तो वह धीरे धीरे पास आने लगा और कालीसिंह से मुठभेड़ करने पर सन्नद्ध हो बैठा। तब उसने अपना सिर हिलाया और घृणा से दांत निकाल कर मुंह बिराने लगा, और पिस्तौल को फेंकदेने के लिये इङ्गित करने लगा, मानो कहता था कि इसे निष्प्रयोजन क्यों रक्खा है। तब वह दो सोटे ले आया और उसके सामने उसने उन्हें रख दिया, मानो कह रहा था कि ले, जौनसा चाहे चुन ले और आ, मुझसे भिड़जा। उसके आचरण में कुछ ऐसा साहस और साथ ही कुछ ऐसी मार्मिकता सी देख पड़ती थी कि कालीसिंह ने एक सोटा उठालिया, मानो उससे लड़ने पर प्रस्तुत हो गया। परन्तु ज्योंही उसने तलवार को कोष से निकाला, कि उसकी चमक को देखकर वह भयानक जन्तु डर गया और सूअर की भांति दो तीन शब्द कर तुरन्त ही वहां से चम्पत हुआ, पर दूसरे ही क्षण लौट कर कालीसिंह की ओर ऐसा लक्ष्य बांधकर उसने सोंटा फेंका के वह यदि अपने को न संभालता तो मर ही गया होता। रात को वह पशु फिर नहीं देख पड़ा, परन्तु जब हमलोग वहां पर पहुंचे तो कालीसिंह इधर उधर उसे ढूंढ़ ही रहा था, और उसे विश्वास हो गया था कि मेरा पुत्र उसी स्थान में कहीं पर है।

रात भर हमलोग उस झाड़ी को ताकते रहे, और जिस समय अन्धेरा बहुत गहरा हो गया था तो एक बेर मेरे मन की तड़प पर तो विचार करो कि जब पासही में झाड़ी के भीतर मैंने बालक के रोने का शब्द सुना और अच्छी भांति जान गया कि वह प्यारे छोटू ही की बोली थी; वे शब्द उन्हीं प्यारे ओठों से निकल रहे थे जिन्हें मैंने एक एक दिन में सैकड़ों बेर चूमा था। तत्क्षण हमलोग सबके सब उसी ओर झपटे, परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि एक दूसरे पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरने के अतिरिक्त हाथ कुछ भी न लगा। मैंने अपने बेटे का नाम ले लेकर पुकारा, पर कहीं कुछ नहीं, सब फिर सन्नाटा हो गया। और फिर कुछ भी सुनाई न पड़ा। वह केवल तीन बेर बोला था और हम सब लोगों को स्पष्ट जान पड़ता था कि कोई कुछ ठूंसकर उसका मुंह बन्द कर रहा है। मुझे अब तक आश्चर्य होता है कि उस समय मेरी बुद्धि क्योंकर ठिकाने रही, क्योंकि मेरे जान आज तक कभी किसी पिता की ऐसी कठिन परीक्षा नहीं हुई है। दिन निकलने के पूर्व, झाड़ी के भीतर कुछ खड़खड़ाहट सी सुनपड़ी, और यद्यपि सभों ने उसे एकही समय में सुना, पर प्रत्येक ने यही विचारा कि उसीका कोई साथी हिला होगा। और जब तक अच्छी तरह सूर्योदय नहीं हो लिया, किसीने भी यह नहीं देखा कि ऊपर एक वृक्ष की घनी डालियों में एक मचान सी बनी हुई है, जो भूमितल से कोई आठ हाथ ऊंचे पर होगी। परन्तु उसपर के रहने वाले निकल भागे थे, और इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वे अब हमारी पहुंच से बहुत दूर निकल गए थे। यह चूक बड़ी भारी हुई, और मुझसे बिना फूट फूट कर रोए न रहा गया। मेरे सब साथी मेरी इस विपद से बहुतही दुखी हुए।

अब हमलोगों ने कुत्ते से काम लिया, और भगोड़ों के मार्ग की खोज उससे लगी, परन्तु क्या हुआ! ज्यों ज्यों धूपकी गर्मी बढ़ने लगी कुत्ता भी बास कम पाने लगा और आगे कुछ भी पता न चला। कई दिनों तक सारा देश हमलोगों ने छान डाला, परन्तु मेरे प्यारे छोटू का कुछ भी सन्देश न मिला; न जाने वह जीता है या मर गया। निदान थके मांदे और हताश होकर हमलोग घर लौट आए। मेरी स्त्री की दशा का वर्णन करना असम्भव है। उसका वर्णन नहीं हो सकता, केवल अनुभव से ही इसका ज्ञान हो सकता है। परन्तु मुझे अपनी कहानी जल्दी से कहने दो, क्योंकि अभी बहुत सी कहनी है।

इस दुखदाई घटना के तीन मास परे, एक दिन सन्ध्या के समय जब मैं खेत से लौटा तो मैंने अपनी स्त्री को न पाया। पड़ोसियों में से कोई भी उसका कुछ समाचार न दे सका। मेरा सन्देह तुरन्त कारू सर्दार की ओर गया। क्योंकि मैं जानता था कि वह हमारे ही पड़ोस में शिकार खेलरहा था। उसकी वह चितौनी भी मुझे स्मरण हुई। इसलिये अपनी स्त्री को बचाने के प्रयोजन से तीन साथियों को लेकर मैं रात दिन चलता चला कारु के गांव में पहुंचा। जो जो विपत्ति हमलोगों पर बीतीं उनके कहने का इस समय मुझे सावकाश नहीं है; इतना ही कहने से आप समझ जांयगे कि कारू ने इस कार्य का कर अस्वीकार किया, परन्तु उसके आचरण से मुझे विश्वास हो गया कि मेरा सन्देह सत्य है। कारू ने उसे कप्तान साहब का भय दिखाया और कहा कि यदि वह मेरी स्त्री न दे देगा तो उसे और उसके सब स्त्रियों, उसके सब लोगों और सारे गांव को भस्मीभूत करादूंगा। वह भय और चिन्ता से रोने लगा, और अपनी स्त्रियों का एक झुण्ड दिखा कर बोला कि इनमें से जिन दो स्त्रियों को चाहो तुम ले लो, और कई एक बड़ी मोटी मोटी स्त्रियों की मुझसे विशेष कर प्रशंसा करने लगा। यदि मैं उन्हें लेकर चुप हो जाता तो उस दिन मैं मन मानती स्त्रियों का पति बन जाता। परन्तु द्विभाषी की बातें अच्छी तरह समझ में नहीं आती थीं और ऐसा जान पड़ा कि कारू महाराज की आज्ञा है कि मेरी स्त्री को वह नहीं छोड़ेगा।

अब क्या करना चाहिए? हमारी छोटी सी बस्ती में इतने लोग कहां कि बाहुबल से कारू को धर दबावें। निदान मुझे एक बैल मोल लेना पड़ा जिसकी पीठ पर चढ़कर मैं कप्तान साहब की छावनी को चला। मार्ग में मुझे एक भी घर वा मनुष्य नहीं मिला। कई दिनों में कप्तान साहब की छावनी पर पहुंच कर मैंने अपना सब वृत्तान्त निवेदन किया। वे कारू का दुराचार सुन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े क्रुद्ध हुए और उस अन्यायी के दण्ड देने के लिये एक हवलदार के साथ कुछ सिपाही उन्होंने मेरे सङ्ग कर दिए। मुखिया साहब ने जब सर्कारी सिपाहियों का दर्शन किया तो उसके प्राण निकलने लगे। परन्तु क्या करे, सामना करने का उद्यम करना ही पड़ा और एक बार फिर वह मुझे अपनी अनेक स्त्रियां घूस देने लगा।

जब इस महाभारत का उद्योगपर्व हो रहा था जिससे हमारी बस्ती का सत्यानाश अवश्य ही होता, कि एक दिन उसी देश के रहने वाले एक नौकर ने आकर कहा कि आप मेरे प्रभु से वृथा लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। ठकुराइन उसके पास नहीं हैं। मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने उससे पूछा तू क्या बक रहा है? उसने उत्तर दिया साहब, आप चाहे मेरे को भले मार डालें, परन्तु मैंने अपनी आंखों से देखा है कि नदी पार कई बनमानुस आपकी घरवाली को पकड़ ले गए हैं। आपको सुनकर बड़ा भारी दुःख होगा, केवल इसी भय से आज तक मैंने यह कथा गुप्त रक्खी थी; और कहीं के क्या करता, क्योंकि बनमानुस बहुत दूर निकल गए थे। उसने कहा कि वे उसे बांध कर यत्न से अपनी हथेलियों पर बैठा कर ले गए हैं; उस समय वो तो वह मर गई होगी अथवा मूर्च्छित होगी, क्योंकि वह चिल्लाती नहीं थी और उसके लम्बे केश लटकते जाते थे।

उस दिन तक मैंने सब आपत्तियों को बड़े साहस से सह लिया था, परन्तु इस समाचार से मेरी बुद्धि ठिकाने न रही। मैं प्रलाप बकने लगा। और दैव को भी, मुझे ऐसी ऐसी कठिनाइयों में डालने के हेतु, गालियां देने लगा। मैं हाथ जोड़ भगवान से दीनता पूर्वक विनती करता हूं कि वे मेरे सब अपराध क्षमा करें, क्योंकि उस समय मैं नहीं जानता था कि क्या बक रहा हूँ। परन्तु यह भी सोचने की बात है कि यदि मेरी बुद्धि उस काल बेठिकाने न हो जाती तो इतनी भारी आपत्ति के बोझ से मैं पिस ही जाता। अब भी जब कभी उस दिन की बात मुझे स्मरण हो आती है तो मेरे हाथ पांव फूल आते हैं, सिर में चक्कर सा आजाता है और सारा जगत अन्धकारमय सूझने लगता है। इस भांति रोते पीटते अति दीन हीन दशा में एक वर्ष स्वप्न की भांति बीत गया। दूसरा वर्ष भी चल निकला, पर तब भी मेरा चित्त ठिकाने पर नहीं आया। अन्त में मैं घण्टों बैठा बैठा रोया करता, और धीरे धीरे मेरे दुःखों का पूरा पूरा अनुभव फिर मुझे होने लगता और मैं प्रायः घबड़ाकर चिल्ला उठता कि ओः! मेरे समान कभी किसीने आजतक दुःख नहीं भोगा होगा। अपने खलिहान के पास मैं बावला सा घूमा करता था, क्योंकि एक दिन जिस स्थान में मैंने बड़े सुख चैन से अपने दिन काटे थे, उसे छोड़ कर कहीं जाने को मेरा जी नहीं चाहता था। मेरे सब संङ्गियों ने मेरी खेती बारी का काम काज परस्पर बांट लिया था, और वे सदा यही आशा रखते थे कि कुछ दिनों में ईश्वर की इच्छा को मैं समझ जाऊंगा और जो कुछ उसने मेरे भाग्य में लिखा है उसीपर धीरज धर मैं सांसारिक माया में पुनः फंस जाऊंगा।

गत वर्ष के शेष भाग में एक आश्चर्यजनक समाचार हमारी बस्ती में फैल गया। काम्बू से दो स्त्रियां वहां आईं थीं। वे कहती थीं कि जब नरवल के जङ्गलों में वे फल बटोरने गईं तो उन्होंने वहां एक लम्बे बनमानुस के साथ एक मनुष्य के बालक को देखा और यह बालक बड़ा स्वरूपवान और गोरे रंग का था। उस बालक को वह बनमानुस बढ़िया से बढ़िया फल तोड़ कर दे रहा था और वह बालक भी चारो ओर खेलता और कूदता फिरता था और बनमानुस के कन्धों पर उछल उछल कर चढ़ जाता था।

यह समाचार इतना निराला और साधारण समाचारों से इतना अनूठा था कि बस्ती के सब लोग एकमत होगए कि स्त्रियां सच ही कह रही हैं, झूठ बोलने का उन्हें कोई कारण नहीं है, और इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमलोगों को इसकी खोज भी लेनी परम आवश्यक है। हमलोगों ने कारू से सहायता मांगी। जङ्गलों की ओर जवार में उसकी सैकड़ों प्रजा बास करती थी, और सब उसकी आज्ञा मानती थी, और देश की भाषा और जङ्गली मार्गों से भी वे भली भांति परिचित थीं। कारू ने तुरन्त दया कर हमारी बात मान ली और कई मनुष्य और एक चतुर मार्ग-दर्शक हमारे आधीन कर दिया। सब समेत पचास मनुष्य कारू के यहां से आ पहुंचे और नौ सिपाही सरकार की ओर से भी हमारी सहायता को मिले। बस्ती में, देशी, परदेशी जो अस्त्रधारण करने के योग्य थे, हमलोगों के साथ हो लिए। और कुल मिलाकर हमलोग लगभग सौ मनुष्य हथियारबन्द घर से निकले। हमलोगों में से बहुतेरों के पास तलवार, बन्दूक और पिस्तौल भी थीं, और टापूवाले जो हमारी सहायता के लिये आए थे, केवल एक एक लम्बा भाला रखते थे। पूरे सात दिन तक हमलोग चलते ही रहे। रात को यात्रा करते और दिन को वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम करते। निदान जिस देश की खोज में हमलोग निकले थे उसके पास आगए। यहां टापू के निवासिओं में से एक भ्रमणशील जाति का डेरा हमलोगों को मिला। हम सब को देख कर उन लोगों में बड़ी खलबली पड़ गई और ऐसा जान पड़ा कि वे हमसे घमासान युद्ध का उद्योग कर रहे हैं परन्तु हमारा मार्ग बतलाने वाला उन्हीं लोगों का बिरादरी था, उसने आगे बढ़ कर सब वृत्तान्त उनसे समझा कर कहा। तब तो वे हर्ष से उछलने, कूदने, इधर उधर दौड़ने और हू हू कर न जाने क्या कह कर चिल्लाने लगे। उनमें से एक मनुष्य, जो उनका मुखिया था, हमारे पास आया और मेरा हाथ पकड़ कर उसने मेरी हथेली में थूक दिया। मैं इसका अर्थ पहिले कुछ नहीं समझा, परन्तु कुछ विचार कर मैंने भी जब उसकी हथेली में थूक कर उसका सत्कार किया तो उसके आनन्द की सीमा न रही और अपना भाला मुझे दे कर वह मेरी सहायता करने को उद्यत हो गया।

इस जाति से बड़ा भयानक सम्वाद यह सुना पड़ा कि बनमानुसों की पलटन की पलटन न जाने कहां से वहां आ गई है और शीघ्रही देश भर में अपना शासन विस्तार कर लेगी। कारण इसका उन लोगों ने यों बतलाया कि टूटूपड़ाङ् (उनके ईश्वर) ने सूर्यलोक से भी दूर किसी देश से उनके लिये एक रानी भेजी है जो उन्हें बोलना, काम करना और युद्ध करना सिखा रही है। उन पर उस रानी का बड़ा भारी अधिकार है। और जो लोग बनमानुसों को नहीं सताते वह उनको सदा उन लोगों को दुःख देने से रोकती है। बनमानुस सब उसकी बोली समझते हैं। वे अब मड़ैयों में रहते हैं और मनुष्यों की भांति आग भी जला लेते हैं, और आश्चर्य यह कि युद्ध के समय रानी की आज्ञा पाकर पंक्तियां बांध कर चलते और आक्रमण करते हैं। जो मनुष्य हमलोगों से यह सब समाचार कह रहा था, उसने यह भी कहा कि उसी की जाति की एक कन्या को बनमानुस अपनी रानी को दासी बनाने को पकड़ ले गए थे और उस बालक को टहल करने पर उसे नियत किया था परन्तु वह भयभीत होकर इतनी रोती कि रानी ने दयाकर उसे फिर यहीं भिजवा दिया।

अब तो आशा और भय दोनों ने मेरे हृदय पर अधिकार जमाया—कभी एक का राज्य, कभी दूसरे का। आशा इस बात की कि यह मेरी ही स्त्री और पुत्र हैं और भय यह कि यदि वे मुझसे किसी भांति मिलने की चेष्टा करें तो यह राक्षस उन्हें फाड़ डालेंगे। लोकुओं ने (वह जाति जिनसे मैं बोल रहा था) मुझे ढाढ़स दिया कि भय का कोई भी कारण नहीं है, क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास है कि सब बनमानुस रानी के लिये अपना प्राण तक स्वाहा कर डालेंगे, परन्तु उसके सिरका एक बाल बांका न होने देंगे; परन्तु हमलोगों को उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि तुरन्त उन्हें घेरलें, क्योंकि यदि तनिक भी जान जांयगे कि हमलोग उन्हींके पीछे पड़े हैं, तो वे एक एक करके भाग जांयगे और फिर हम चाहे सारी पृथ्वी छान डालें, उनका पता न लगा सकेंगे।

निदान उसी रात को, लोकुओं की भी सहायता लेकर, एक बड़ी परिधि बना कर हमलोगों ने बनमानुसों के दल को चारो ओर से घेर लिया, और ज्यों ज्यों हमलोग आगे बढ़ने लगे, हमलोग सिमट कर एक दूसरे के पास आने लगे। दिन निकलते निकलते बनमानुसों का दल अच्छी तरह घिर गया। कमाण्ड का शब्द सुनते ही उन सभों ने अपने अपने अस्त्र शस्त्र उठा लिए, और निडर हो

लोकुओं का दल

कर रानी के वासस्थान को बीच में रखकर बड़े बड़े वीर नर तो बाहर बाहर खड़े हो गए और मादाएं भीतर की ओर खड़ी हो गईं। मादाओं के भी हाथ में लम्बे लम्बे सोंटे थे और नरों की भांति इनका मुख भी गम्भीर और भयानक देख पड़ता था। वे एक दूसरे से इतना सिमिट कर खड़े हुए थे कि उनके दल के भीतर की ओर कुछ ठीक ठीक नहीं लख पड़ता था; इससे अपने सहचर नौ तिलंगों के साथ मैं एक चट्टान की चोटी पर चढ़ गया, जहां से बनमानुसों के व्यूह की भीतरी अवस्था जानने की थोड़ी बहुत सम्भावना थी। आशा यह थी कि यदि मेरी चमेली ही इन लोगों की रानी हो तो वह यह तो जान जाय कि कौन आया है। परन्तु अब भी भीतर की ओर क्या हो रहा है नहीं जान पड़ा; परन्तु उसका नाम लेकर मैंने कई बार चिल्लाकर पुकारा, और उसके एक पांच मिनट पीछे उन डरावने योद्धाओं के दल के दल ने अपने अस्त्र शस्त्र समेट लिए और सब पीछे हट गए, जिससे सामने एक खुली सड़क सी बनगई कि जिससे मैं रानी की भेंट को जासकूं।

इस भयानक मार्ग से होकर मैं आगे बढ़ा और यद्यपि सिपाही चारों ओर बड़ी सावधानी से मेरी रक्षा कर रहे थे, पर मेरा कलेजा मारे भय के धड़ धड़ कांपता था। निदान वहां मैंने अपनी स्त्री को देखा, मेरी ही स्त्री, मेरी प्यारी चमेली, मुझसे मिलने को सामने खड़ी है और मेराही छोटू उसकी दाहिनी ओर और एक सुन्दर भोली भाली गुलाब के फूल सी खिली हुई दो वर्ष की कन्या भी उसकी बांई ओर खड़ी है। कन्या को देख पहिले मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु उसका मुखड़ा अपनी मा ही सा था। बिचारो तो सही, मेरे प्यारे मित्र! ऐसे मिलने को! क्या आजतक कभी कोई स्त्री पुरुष ऐसी अवस्था में मिले हैं? दोनों बच्चे अपने बालों के वस्त्रों में स्वस्थ और सुन्दर देख पड़े। परन्तु जब मैंने अपनी प्यारी का मुखड़ा ध्यान से देखा तो वह बहुत कुछ बदला हुआ जान पड़ा। यह केवल हृदय के भीतर छिपी हुई ज्वाला के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। जब मैंने उसे दोनों हाथों में पकड़ कर अपने हृदय से उसे लगाया तो वह कुछ अचेत सी हो गई, जिससे हमलोग थोड़ी देर तक बड़े उद्विग्न रहे। बच्चे दोनों के दोनों हम लोगों के पास से भाग गए, और अपनी मा के लिये रोते रोते उन्होंने अपने मित्र बनमानुसों की शरण ली। बनमानुस भी बड़े अचम्भे में भरे हुए जान पड़े, और उनमें से बहुतेरे डर कर इधर उधर छिपने लगे।

मेरी स्त्री को सुध आते ही मैंने उन जङ्गली पशुओं में से चल निकलने की बात चलाई। परन्तु उसने स्वीकार नहीं की और कहा कि मैं अपने रक्षकों से मित्रभाव से विदा होना चाहती हूं, क्योंकि उनके सन्मुख इस रीति से विदा होना उचित है कि यह कोई न समझे कि मुझे बल द्वारा मेरी अनिच्छा से तुम मुझे लिए जाते हो; क्योंकि यदि उन्हें इस बात का कुछ भी सन्देह हो तो वे सबके सब भिड़ जांयगे और तब उन्हें संभालना असम्भव हो जायगा। तब हमने सचमुच उन वन-चरों के बनाए हुए मचानों की शीतल छाया में धूप की तीव्रता के समय विश्राम किया। मेरी स्त्री अपने भंडार की ओर गई, और उसने प्रत्येक बनमानुस को फल फूल, नरम नरम शाक, पत्तियां और मूलों का भाग बांटा और उन सभों ने भी बड़े हर्ष से उन्हें लेकर भोजन किया। हमें तो यह एक तमाशा सा जान पड़ता था, मानो टिकट लेकर मैं सर्कस का खेल देखने आया था। और मेरा छोटू भी एक ओर बनमानुसों के बच्चों में चारा बांट रहा था, और कभी किसीका गला पकड़ कर धक्का देता था, किसीको उसकी असभ्यता के लिये झिड़कता था, और उन्हींकी हू हू की बोली में न जाने क्या क्या हुकुम चला रहा था। वे बच्चे भी स्वाभाविक सेवकों की भांति उसकी आज्ञा को चुपचाप पालन कर रहे थे, और जान पड़ता था कि इस भांति अपने आचरणों के सुधारे जाने से वे अपनों को भाग्यवान सा समझ रहे थे। तब हम लोगों के भी भोजन के हेतु मीठे मीठे सुस्वादु बन-फल और एक प्रकार के वृक्ष के बकलों में निर्मल जल परोसा गया। परन्तु मुझे भोजन की रुचि ही नहीं थी, अपने बाल बच्चों को इस भयावने संग से अलग करने ही के लिये मैं घबरा रहा था, क्योंकि जब तक मैं वहां रहा, मुझे यह विश्वास नहीं हुआ कि हमलोग निर्विघ्न हैं या मेरा परिवार सम्पूर्ण रूप से मेरे आधीन है।

यह सब करके मेरी स्त्री खड़ी हो गई और अपनी प्रजा को कुछ समझाने लगी। बोलते समय वह नाना भांति से सिर और हाथों को हिलाती थी और अनूठे अनूठे प्रकार से अपने देह को मोड़ती थी कि जिससे सब बनमानुस उसकी बातों को भली भांति समझ जांय। और सभों ने उसे समझ भी लिया, क्योंकि यह सुनते ही कि वह अपने सन्तानों के साथ उन्हें छोड़कर जाने वाली है, उनलोगों में एक बड़ा किचिर मिचिर शब्द होने लगा और इतना दुःख फैल गया कि मनुष्य-जाति उसका अनुभव नहीं कर सकती! उनमें से कई तेरे घिघियाते और घसीटते हुए उसके सन्मुख आने लगे और वह भी उन सभों के माथे पर अपना हाथ रखने लगी। बच्चों में से बहुत से बालकों पास आए और उनका हाथ पकड़ पकड़ अपना प्रेम दिखाने लगे। तब हमलोगों ने स्त्री और बच्चों के चारों ओर एक घनी परिधि सी बनाई और इससे बनमानुस, जो अब तक पीछा नहीं छोड़ते थे, अलग हटा दिए गए। उस रात्रि को हमारा आवास-स्थान लोकुओं के थाने में नियत हुआ, और हमारे चारों ओर तिहरा पहरा बैठा दिया गया, क्योंकि सावधानी की विशेष आवश्यकता थी। रात्रि के समय यात्रा करने का साहस हमलोगों को नहीं हुआ। परन्तु सभों ने मिलकर मेरी स्त्री और बच्चों के लिये डालियों और जङ्गली लताओं से एक प्रकार की छाया-युक्त डोली सी बना ली। तीन दीन तक लम्बे लम्बे और बलवान बनमानुस हमलोगों के पीछे पीछे आते रहे। कोई निडर होकर हमलोगों के बीच में चले आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनी रानी को देख जाते। रानी जी के मुख से ज्ञात हुआ कि वे इस बात की जांच करने आते थे कि कोई उनको दुःख तो नहीं देता, अथवा रानी जी और कुमार कुमारी स्वच्छन्द तो हैं!

जाती बेर जितने दिन लगे थे, अपनी बस्ती में उससे एक दिन पहिले ही हमलोग लौट आए, परन्तु मैं वहां एक रात भी नहीं ठहरा, और तुरन्त कृपालू कप्तान साहब की सहायता से एक जहाज़ में बैठ कर निकोबर के अन्तर्गत चौरा द्वीप में चला आया। यहां मैंने फिर खेती का ठीका लेलिया है और आप लोगों की दया से यहां न बनमानुसों से भय है और न कारू मुखिया ही पर सन्देह करना पड़ता है।

परन्तु अपनी स्त्री की कहानी तो मैंने कही ही नहीं। इसे मैं संक्षेप में कह डालता हूं और मुख्य मुख्य घटनाओं का सार मात्र ही कहता हूं, क्योंकि जब मूक पशुओं के बहुत से इङ्गित और चिन्हादिकों का ठीक ठीक अर्थ समझना बहुत कठिन है, तो उस बिचारी भय की मारी को सब बातों का कैसे यथार्थ ज्ञान हो सकता था। उसको वे क्यों चुरा ले गए थे इसे वह यों वर्णन करती है।

ये पशु, सदा पृथक पृथक दलों में बास करते और अपने नायकों की अधीनता सब प्रकार से स्वीकार करते हैं। हमारे खेतों को लूटने के समय वे अपने राजा के एक मात्र पुत्र को अपने साथ लिवा लाए थे। वह राजकुमार ही था जो हम लोगों के हाथ से मारागया था। परन्तु जब कुंवर जी की माता अर्थात् महारानी पुत्रशोक से बहुत व्याकुल हुईं, तो बूढ़े महाराज स्वयं राजकुमार का सम्वाद लेने को रात्रि में चुप चाप निकल आए। परन्तु जब उसे न पाया तो निराश हो मेरे पुत्र ही को उसके बदले उठा ले भागे, और उसे निर्विघ्न अपने काननमय महलों में पहुंचा कर महारानी को हाथों हाथ समर्पण किया। महारानी भी ऐसे सुन्दर गोरे बालक को पाकर कथञ्चित् पुत्रशोक भूल गईं और बड़े लाड़ प्यार से उसे तीन मास तक अपना अमूल्य स्तनपान कराती रहीं। मेरे बालक को महारानी जी का दूध बड़ा गुणकारक हुआ, क्योंकि कोई बालक उसके समान हृष्ट पुष्ट और निरोग नहीं है। तब वह कुछ कुछ चलने लगा और बनमानुसों और बनवासी दूसरे पशु और पक्षिओं के शब्दों का अविकल उच्चारण करने लगा; परन्तु उसके प्रतिपालकों के मन में यह बात आई कि ऐसा सुन्दर राजकुमार यदि मानुषी शिक्षा न पावे और बोलने की शक्ति से वञ्चित् रहे तो बड़े दुःख की बात होगी। इसी कारण मन्त्रिओं की सभा में यह युक्ति ठहरी कि बालक की अपनी मा उसकी शिक्षा के लिये नियत की जाय। निदान इस कार्य को उन लोगों ने कैसी चतुराई से सम्पन्न किया यह तो आप जानते ही हैं। उन्होंने चुपके से मेरे घर आकर मेरी स्त्री के हाथ पैर बांध डाले और उसके मुंह में लत्ता भर दिया और बड़े वेग से उसे उठा लेगए। मेरी स्त्री कहती है कि जिन लोगों ने उनको इस प्रकार के कार्य में चलते नहीं देखा है वे उनकी गति की शीघ्रता का अनुमान तक नहीं कर सकते हैं। उसके प्रति वे सब भांति दया और नम्रता का आचरण करने लगे और उन्होंने उसको बहुत से उत्तम उत्तम फल और जल दिए। परन्तु उसके धड़ से प्राण तो मानो निकल ही गए थे, खाए पीए कौन? हां, जब उसने अपने छोटू को उन लोगों के बीच भला चङ्गा और खेलता कूदता पाया, तो वह मारे आनन्द के फूली न समाई और उनके आशय को कुछ कुछ समझने लगी।

बालक तुरन्त अपनी माता को अर्पित हुआ। वह धीरे धीरे यह भी जान गई कि सब लोग उसीकी आज्ञा मानने को तैयार हैं। जब तक वह उन लोगों में रही, उसके घर लौटने की इच्छा को छोड़ कभी उन लोगों ने उसकी आज्ञा के प्रतिकूल कोई काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया। अपनी बेटी का नाम उसने बनदेवी रक्खा। हां, एक बात मैं कहना तो भूल ही गया हूँ। मेरी कन्या का जन्म, मेरी स्त्री को जब बनमानुस चुरा ले गए, उसके छ महीने पीछे हुआ था। मेरी स्त्री बनमानुसों की बहुत बड़ाई करती है, और उनकी सहृदयता, मार्मिकता, दया, प्रेम और बल वीर्य की बड़ी प्रशंसा करती है। उसके विचार में वे लोग एक भांति के गूंगे मनुष्य ही हैं। जितनी देर उन लोगों में मैं आप रहा था, मेरे भी मन में यह बात आई थी कि वे किसी प्रकार के मनुष्य ही होंगे। पुरुष तो उनके कठोर और भद्दे हैं ही, परन्तु बहुत सी स्त्रियों को जो देखा तो हमारे इस देश की नीच जङ्गली जातियों, जैसे भील धांगड़ों की स्त्रियों से, कोई कोई आंख नाक की अच्छी और अधिक रूपवती थीं, और उनकी हँसी, मुसकान, मीठी बोली, सभी मनुष्य की स्त्रियों ही से मिलती जुलती जान पड़ती थी। मेरी स्त्री ने उन सभों को एक एक पत्तियों का गुच्छा कमर में बांधना सिखाया था, नहीं तो और बातों में क्या स्त्री क्या पुरुष, सम्पूर्ण नङ्ग धड़ङ्ग ही रहते हैं। भोजन उनका फल मूल है और वे मांस को छूते तक नहीं।

इस कथा के प्रकाश करने में मुझे कोई बाधा नहीं है, क्योंकि सीता जी को भी राक्षसों के बीच बहुत दिनों तक रहना पड़ा था। परन्तु मैं यह नहीं चाहता के मेरे पुत्र कन्या को इस बात की सुध बनी रहे कि शिशुकाल में वे बनमानुसों में प्रतिपालित हुए हैं। हां, तुमने जो लिखा है कि 'सरस्वती' नाम की एक पत्रिका हमारे देश में छपती है और उसमें बनमानुसों का विषय काशी वालों ने छपवाया है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो "सरस्वती" में मेरे देशवासियों के चित्त विनोद के लिये मेरी कथा प्रकाशित कर सकते हो। यदि मेरी कथा सुनने की रुचि हो तो फिर आगे का वृत्तान्त किसी समय लिख भेजूंगा। जब तक मेरा दूसरा पत्र न पाओ, मुझे पत्र न लिखना, क्योंकि एक बार मुझे पास के एक बन्दर-स्थान में जहाज़ पर जाना है। वहां मेरी पुरानी खेती बारी का मूल्य-स्वरूप धन अब तक आ पहुंचा होगा, २४ दिन में मैं उसे लेने जाउंगा।

तुम्हारा पुराना मित्र
सङ्कटसिंह।

जापानी-साहित्य।

यदि आज दिन उन्नति-शील एशिया के सभ्यखण्डों की आलोचना करते हैं तो जापान ही को सबसे ऊंचे उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ पाते हैं; क्योंकि शिल्प, वाणिज्य विज्ञान, और युद्ध विद्याओं में इसकी बराबरी आज दिन कोई भी एशियाखण्ड-निवासी नहीं कर सकता। कुछ दिन पहिले जिस जापान के लोग असभ्य कह कर तुच्छ समझते थे, आज दिन वही सभ्यता के शिखर पर पहुंच कर भू-मण्डल की उन्नतिशील जातियों के लिये आदर्श बन रहा है। इतिहास के देखने से जाना जाता है कि अभी तक जापानियों के समान संसार की कोई भी जाति इतनी शीघ्र उन्नति की चोटी पर पहुंचने में समर्थ नहीं हो सकी है, यहाँ तक कि पृथ्वी की समस्त सभ्य जातियां जापान के इस असम्भावित अभ्युदय को देख कर विस्मयापन्न हो रही हैं। एक दिन वह था कि जापानी लोग बुद्धदेव की जन्मभूमि भारत-वर्ष को तीर्थ समझ कर यहां आते थे, और एक समय यह है कि भारतीय युवक विज्ञान सीखने के लिये जापान जाते हैं।

किन्तु इस समय जापान की उन्नति के इतिहास लिखने की हमारी इच्छा नहीं है, वरन् डाक्टर जर्ज ब्राण्ड्स् के एक प्रबन्ध का अवलम्बन करके जापानी साहित्य के विवरण को हम अपने हिन्दी साहित्य-रसिकों की भेंट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् ४०० ईसवी से बराबर जापान पर चीन अपनी सभ्यता का प्रभाव डालता चला आता था। उसका यह प्रभाव हुआ कि जापानी लोग अपनी उन्नति के आगे चीन को भी उंगली दिखाने लगे हैं। किन्तु स्मरण रहे कि एशिया खण्ड की प्राचीन सभ्यता ग्रीस और रोम* के निकट जैसी ऋणी है जापानी सभ्यता भी चीन के निकट वैसीही ऋणी है। और योरप का पैलिसटाइन के साथ जैसा सम्बन्ध है, जापान का भारतवर्ष के साथ भी वैसा ही है। क्योंकि जैसे अन्य धर्म्मों को हटाकर खृष्ट धर्म्म ने योरप-खण्ड में विस्तार को पाया, वैसेही बौद्ध धर्म्म भी भारतवर्ष से जाकर जापान के प्राचीन शिन्तो धर्म्म को हटाकर उसका स्थानापन्न हुआ।

धर्म्म का साहित्य से बड़ाही घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव हम अब जापानी साहित्य के साथ वहां के धार्म्मिक तत्व का वर्णन करते हैं।

जापानी भाषा के पहिले धर्म्म ग्रन्थ का नाम "कोजिकी" है, जिसकी रचना हमलोगों के पुराण के ढंग पर की गई है। उस ग्रन्थ के एक भाग में शिन्तो धर्म्म की अनेक कथाएं जैसे लिखी गई हैं, वैसेही दूसरे भाग में ६२८ ईसवी तक का स्वदेशीय इतिहास भी लिखा गया है। ६७० ईसवी में जापान के सब देशों में विद्यालय स्थापित होगए थे, उसके थोड़ेही दिन पीछे अनेक विश्वविद्यालय भी स्थापित किए गए, और उनमें विद्यार्थियों को गणित, विज्ञान, इतिहास, व्यवहार शास्त्र, कानून और चीनी साहित्य की शिक्षाएं दी जाने लगीं। इससे ज्ञात होता है कि शिक्षा के विषय में जापान योरप से भी बहुत आगे बढ़ा हुआ था। उसी समय जापानी लोग चित्रविद्या और शिल्प कला कौशलों में बहुत कुछ उन्नति कर चुके थे। उसी समय में (सन् ७०० ईसवी) जापानियों ने बुद्धदेव का एक मन्दिर बनवाया था और नारा नामक स्थान में बुद्धदेव की एक बड़ी भारी धातु की मूर्ति स्थापित की थी।

बुद्धदेव की मूर्त्ति

सातवीं शताब्दी से जापानी भाषा में काव्य रचना का आरम्भ हुआ, पर इन (जापानी) काव्यों से और योरपीय काव्यों से अनेक विषयों में बहुत विभिन्नता है, क्योंकि जापानी काव्य का फैलाव बहुत थोड़ा है, यहाँ तक कि इस (जापानी) साहित्य में "लियड," "डिवाइन," "कमेडि," इत्यादि के सदृश कोई महाकाव्य नहीं हैं। और दार्शनिक, राजनैतिक, तथा व्यंगरसात्मक काव्यों का भी इस (जापानी) साहित्य में पूरा पूरा अभाव है। चौदहवीं शताब्दी में नाटक की सृष्टि भी इस साहित्य में हुई, किन्तु इस (नाट्य विद्या) ने कुछ विशेष उन्नति नहीं पाई, यहाँ तक कि अभीतक कोई नाट्य ग्रन्थ इस साहित्य में नहीं बना।

जापानी काव्य (साहित्य) ने केवल गीति काव्य में ही भली भांति पूर्णता प्राप्त की है और वे

* किन्तु स्मरण रहे कि अपनी अवस्था को सभ्यतम बनाने में ग्रीक और रोम भारतवर्ष के चिर ऋणी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड कविताएं बहुत ही थोड़े फैलाव और बहुत ही थोड़े भावों में कहीं गई हैं। उक्त कविताओं में केवल जापानियों के हृदयगत भावों का प्रकाश और स्वभावों का विकाश ऐसी अच्छी रीति से किया गया है कि जो उनके प्रधान उद्देश्य को भली भांति से झलका रहा है। ये लोग अपनी कविता में प्रेम, मदिरा, प्रशंसा, आकांक्षा, और वेदना का प्रकाश उत्तम रीति से करते हैं। किन्तु इनकी कविता में सूर्य्यास्त और नक्षत्रालोक इत्यादि विषयों के भाव नहीं दिखलाई पड़ते।

जापानी साहित्य में विषय और भाव की बड़ी ही न्यूनता और छन्द की अतिशय दरिद्रता है। अभीतक इस भाषा में संस्कृत के समान अक्षरों की गुरू लघु मात्रा रखने का भी कोई नियम नहीं स्थापित हुआ है। उनके गद्य और पद्य के भेद जानने का केवल यही एक उपाय है कि पद्य के प्रत्येक चरण क्रम से पाँच वा सात मात्रा (syllable शब्दांश की एक मात्रा) के होते हैं। क्षुद्र काव्यों में "टङ्का" नामक क्षुद्र कविता का ही जापान में अधिकता से प्रचार है। एक टङ्का में केवल पांच ही चरण होते हैं, जिनके प्रथम चरण में पांच, द्वितीय में सात, तृतीय में पांच और चतुर्थ में सात मात्रा रहती हैं, जो सब मिलकर एकतीस मात्रा शब्दांश होती हैं।

सातवीं शताब्दी से लेकर आज तक जापानी कविता बहुत ही थोड़े विस्तार में बँधी हुई हैं। आजदिन भी वहां के सम्राट नवीन वर्षारम्भ में अपने सभासदों को "टङ्का" के बनाने के लिये बहुत से विषय (समस्या) देते हैं।

यहां पर यह भी कह देना उचित है कि जापान के सभी कवि लोग ऊंचे पद के अधिकारी हुआ करते हैं। और यह जो लोगों का विचार है कि प्रायः कवि लोग दरिद्री ही हुआ करते हैं, यह बात जापानी कवियों में नहीं है।

आज कल बहुत से लोगों का यह मत है कि स्त्रियां कविता नहीं कर सकतीं, उन्हें यह बात सुनकर आनन्दित होना चाहिए कि जापान में आधे से अधिक भाग उन स्त्रियों का है कि जो कविता बनाने* में पुरुषों से बहुत आगे बढ़ी हुई हैं।

जापान में कविता रचने की शिक्षा ऊँचे वंश वालों ही को दी जाती है। किन्तु कोई कवि अपने ग्रन्थ में उस कविता को प्रकाशित नहीं कर सकता जो वहां के सम्राट की दी हुई समस्या (विषय) पर बनाई गई हो, वरन् उन समस्या-पूर्तियों में से उत्तमोत्तम कविताओं को चुन कर सम्राट ही प्रकाशित करता है। नवीं शताब्दी में इसी प्रकार की एक पुस्तक संग्रह की गई थी, जिसमें चार हजार कविताओं का समावेश था।

जापानियों की मानसिक प्रकृति बहुत ही विचार-सङ्गत है। इससे वे लोग कविता में रूपक पसन्द नहीं करते, और न वे लोग जड़ पदार्थों में गुण तथा शरीरधारियों के मनोभाव की कल्पना ही करते हैं। उनके ऐसे स्वभाव से जान पड़ता है, कि वे प्रकृति की विचित्रिता इत्यादि का ज्ञान ही नहीं रखते। वे लोग व्यक्तिगत भावों के झलकाने में जैसे अयोग्य हैं, वैसे ही वाक्यपटुता के बड़े अनुरागी हैं।

'शिकाडो' नामी सम्राट की जब क्षमता जाती रही और जब 'सगुण' अर्थात् पार्थिव सम्राट ने शासनदण्ड को ग्रहण किया, तभी से जापानियों के चिन्ताराज्य में स्त्रियों के प्रभाव भी घटने लगे। उस समय प्रजा के लिये यह आज्ञा प्रचारित हुई कि किसी प्रजा को भी राजभक्तिहीन न होना चाहिए, क्योंकि राजभक्ति ही प्रजा के लिये श्रेष्ठ धर्म्म समझा जायगा। उसी समय से जापानियों में राजा पर एकान्त भक्ति का रखना तथा आँख मूंदे हुए राजाज्ञा का पालन करना ही सर्व-प्रधान कर्त्तव्य

* बङ्ग देश में स्त्री कवियों की संख्या कम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाने लगा। 'नाक मित्सू' नामक एक व्यक्ति जापानी इतिहास और साहित्य इत्यादि का सर्व-जन-प्रिय नायक था। एक समय वहां के सम्राट के पुत्र को एक अपराध में प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी, उस समय 'नाकामित्सू' ने सम्राट के पुत्र की मुक्ति के लिये अपने पुत्र का सिर अपने हाथ से काट कर राजभक्ति का पूरा परिचय दिया था। उस विवरण को पढ़ कर राजस्थान की प्रसिद्ध धात्री "पन्ना" की कथा हमलोगों को स्मरण हो आती है। उस समय में जापानी लोग प्रतिहिंसा करने को भी बड़ा पवित्र कर्म्म समझते थे। जैसे आजकल के योरपीय साहित्य-लेखक-गण उपन्यास में प्रेम का दिखाना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं, वैसेही उस समय के जापानी उपन्यास तथा काव्य के प्रेमीगण भी अपने साहित्य ग्रन्थों में प्रतिहिंसा का उत्कर्ष दिखलाना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। चीन के संश्रव से जापानी लोग जब धीरे धीरे चीनवालों का अनुकरण करने लगे, तभी से स्त्रियों के प्रभाव भी धीरे धीरे लुप्त होने लगे और साथ ही साथ धर्म की भी विशेष अवनति होने लगी। विधवाओं में दूसरे पति के ग्रहण करने की जो अनिच्छा प्रकाश करती थीं, वे ही सतीत्व की ध्वजा समझी जातीं थीं और वेश्या-वृत्ति उस समय निन्दनीय नहीं समझी जाती थी। बड़े खेद का विषय है, कि उस समय में जिन बालिकाओं के माता पिता दरिद्र होते थे, यदि वे बालिकाएं अपने माता पिता के पालन पोषण के लिये बारविलासिनी होतीं तो वे बड़ी प्रशंसा की पात्री समझी जाती थीं। इसी कारण से जापानी उपन्यासों की नायिकाओं में प्रायः वेश्याही बड़े गौरव की दृष्टि से देखी जाती थीं।

सन् १८६७ ई० में जापान राज्य में एक बड़ा भारी देशव्यापी उपद्रव हुआ था। उस समय वहां के 'सगुण' नामक सम्राट को निकाल बाहर करके उसके स्थानमें 'सिकाडो' नामक व्यक्ति राजसिंहासन पर बैठाया गया। उसी समय से वहां के राज्य-सम्बन्धी तथा और और विषयों में धीरे धीरे बड़ा परिवर्त्तन होने लगा। अंग्रेज़ी भाषा और योरपीय सभ्यता का प्रवेश भी उसी समय से जापान में हुआ। रेल बनने लगी, टेलीग्राफ़ बनाए गए, नई प्रणाली के अनुसार सेना को शिक्षा दी जाने लगी, और युद्ध के जहाज़ बनने लगे।

निदान धीरे धीरे सभी काम योरप वालों की भांति होने लगे। क़ानून, शिक्षा प्रणाली, राज्य-प्रबन्ध आदि योरपीय ढङ्ग पर होने लगे और गली गली स्कूल भी बनने लगे।

सन् १८७२ ई० में पहिले पहिल जापान में सम्वादपत्र निकला और धीरे धीरे इनका प्रचार इतना बढ़ा कि सन् १८९४ ई० में सम्वादपत्रों और सामयिक पत्रों की संख्या ८१४ तक पहुंची। इसके अनन्तर साहित्य के और और अङ्गों की पुष्टि करने के लिये धीरे धीरे अंग्रेज़ी ग्रन्थों का अनुवाद होने लगा, तथा दार्शनिक और वैज्ञानिक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। उपन्यास भी सबसे पहिले अनुवादित हुए और इन पुस्तकों ने सर्वसाधारण में बड़ा आदर पाया। नीति विषयक ग्रन्थों में 'टेलीमेकस' और रौबिन्सन क्रूसो' इत्यादि भी अनुवादित हुए।

आज कल के उन्नतिशील जापानी विद्वज्जन योरप और जापान के (पुराने) ग्रन्थों के भावों को मिश्रित करके अपने साहित्यभण्डार की पूर्त्ति कर रहे हैं। 'सू डोनान सुई' नामक व्यक्ति अपने एक राजनैतिक उपन्यास में योरप के लिटन, बेकन, स्काट, ह्यूगो, इत्यादि का नाम लिख कर कहता है कि मैंने राजनैतिक उपन्यास लिखने के ढङ्ग इन लोगों की प्रणाली से लिए।

सन् १८८७ ई० में सू डोनान सुई ने सर्वोत्तम उपन्यास लिख कर प्रकाशित किया। इस पुस्तक में 'टोकियो' नगर के आधुनिक आदर्श शिल्प की जैसी उन्नत्ति हुई है, उसका बड़ा ही मनोहर चित्र खैंचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस उपन्यास की नायिका एक परम सुन्दरी दूध बेंचने वाली है। यह बात लोगों के ध्यान में बहुत कम आवेगी कि दूध बेचने वालियों में भी क्या किसी उपन्यास की प्रधान नायिका बनाने योग्य पात्री होती हैं? परन्तु 'सू डोनान सुई' ने उस दूध वाली के आश्चर्यमय गुणों का बखान किया है और देखिए जापान में दूध खाद्य पदार्थों में नहीं ग्रहण किया जाता। मनुष्यदेह के पुष्टि-साधन में संसार में दूध के समान दूसरा कोई खाद्य पदार्थ नहीं है, पर जापान वाले दूध को छूते तक न थे। ऐसी अवस्था में एक सुशिक्षिता दूध वाली का अपने देशवालों को दूध के गुणों को समझा कर उसका प्रचार करना क्या थोड़े गौरव की बात है? क्या यह उसके आश्चर्यमय गुण का प्रताप नहीं है कि जिसके द्वारा उस सुन्दरी ने अपने देश से दूध पर घृणा करने वाले कुसंस्कार को दूर कर के देश में उसके प्रचार का द्वार दृढ़ता से सदैव के लिये खोल दिया!

——— पं० सिद्धेश्वर शर्मा

फोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(६)

चित्र छापना

नेगेटिव से जो चित्र उतारा जाता है, उसे अंग्रेज़ी में प्रिण्टिङ्ग कहते हैं, और छपे हुए काग़ज़ को प्रिण्ट कहते हैं। चित्र छापने का काम साधारणतः दो प्रकार के काग़ज़ पर किया जाता है। एक प्रकार का प्लेन पेपर (Plain paper) अर्थात् साधारण काग़ज़ है, जिसे फ़ोटोग्राफ़ रङ्गीन करने के काम में लाते हैं। दूसरे एलब्युमेनाइज़्ड पेपर (Albumenized)* को प्रायः सभी लोग काम में लाते हैं। इसका ऊपर का भाग चिकना और उज्वल होता है। इस काग़ज़ पर चित्र छापने से वह स्वच्छ और सुन्दर दिखाई देता है।

फोटो छापने के लिये आवश्यक द्रव्य

पोर्सिलेन डिश	
भैंस के सींग का अथवा चांदी का छोटासा चिमटा	
सिलवर नाइट्रेट	Silver nitrate
साफ़ जल	Distilled water
एलब्युमेनाइज़्ड पेपर	Albumenized paper
अमेरिकन पेग	American peg
लिटमस पेपर	Litmus paper
क्योलीन	Keolin
प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम	Printing frame
क्लोराइड ऑफ गोल्ड	Gold chloride
एसिटेट सोडा	Soda acitate
हाइपो सलफाइट सोडा	Hyposulphite sod

प्रिण्टिङ्ग बाथ (Printing bath)–चित्र छाप के पहिले "प्रिण्टिङ्ग बाथ" तैय्यार करना चाहिए कोई कोई इस प्रिण्टिङ्ग बाथ को सिलवर प्रिण्टि बाथ भी कहते है। यह केवल नाइट्रेट आफ़ सिल वर (यवक्षारित सिलवर) और डिस्टिलड् वाट वा शुद्ध जल को एक साथ मिला देने से ही प्रस्तु हो जाती है। इस अरक का विचित्र गुण है, यह जहां काग़ज़ और कपड़े पर लगने के अनन्त आलोकित स्थान में रक्खा गया कि वह स्थान सम्पू काला होजाता है। इससे इस अरक को अन्धे कोठरी में ही पूर्वोक्त एलब्युमेनाइज़्ड पेपर में ल कर उसे सुखा लेना चाहिए। और तब प्रिण्टि फ़्रेम में नेगेटिव के फिल्म के ऊपर उपर्युक्त का को रखके फ़्रेम के पीछे का भाग बन्द कर दो। अ अब इसके चान्दने में जाने से आपही उसके छाया अर्थात् स्वच्छ अंश के द्वारा जो आलोक काग़ज़ प पड़ेगा उससे स्वच्छ अंश तो काला हो जाय और जहां पर काला है और उसके भीतर आलो नहीं पहुंच सकता, वहां का सम्पूर्ण स्थान स

* किन्तु आज कल प्रायः सभी लोग इसके स्थान में पी० ओ० पी० काग़ज़ का ही व्यहार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। अर्थात् तुम्हारे नेगेटिव में जहां पर काला अंश होगा वहीं छपने में सफ़ेद आवेगा और जहां स्वच्छ अंश होगा वहीं काला रङ्ग छपेगा। इसी वार तुम्हारी आदर्शमुर्ति के समान आलोकित स्थान परअ लोक और छाया के ठिकाने छाया रहेगी।

प्रिण्टिंग बाथ

नाइट्रेट आफ सिलवर (काष्टिक-यह चांदी द्वारा प्रस्तुत की जाती है) ... ४५ ग्रेन
डिस्टिल्ड् वाटर (स्वच्छ जल) ... १ आउन्स

डिश में आध इञ्ची जल भरो और उसमें दानेदार सिलवर मिलाओ। इस रीति से अर्क तैयार होजाने पर पूर्वोक्त लिटमस पेपर द्वारा परीक्षा करनी चाहिए। लिटमस काग़ज़ का एक टुकड़ा लेकर उसमें डुबोकर देखना चाहिए कि उस काग़ज़ का क्या रंग हो जाता है। यदि वह लाल रंग का होजाय तब तो इस तैयार किए हुए अरक में २-३ बूंद लाइकर एमोनिया डालो और जो नीला रंग होजाय तबउसमें किसी दूसरे पदार्थ के छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस अरक को अधिक व्यवहार करने से वह मैला होजाता है, किन्तु सफ़ेद क्योलिन नामक पदार्थ के मिला देने से पुनः स्वच्छ हो जाता है। १० आउन्स अरक में ½ आउन्स क्योलिन छोड़कर बोतल में भरकर धूप में रक्खो और पुनः फिल्टर पेपर वा ब्लाटिङ्ग पेपर से छान लो। इस बाथ को बहुत दिनों तक व्यवहार करने से वह निस्तेज भी होजाती है, इसलिये समय समय पर सिलवर देते रहना चाहिए, कि जिसमें वह काम में लाने योग्य बनी रहे। और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसके संग और कोई धातु न मिल जाय, क्योंकि इसमें और किसी धातु के संयोग होने से पुनः यह किसी काम की नहीं रहती।

प्रत्येक आउन्स में कितना सिलवर है इसके जानने कि लिये अर्जण्टोमीटर से परीक्षा करते रहना चाहिए। सिलवर के कम होजाने से चित्र उत्तम नहीं छपता। इसलिये इस अर्क को काम में लाने के पीछे अवश्य अर्जण्टोमीटर द्वारा जांच कर के आवश्यक पूर्त्ति कर देनी उचित है, क्योंकि बिना जांचे इस कार्य्य के करने से अवश्य क्षति उठानी पड़ती है। अर्जण्टोमीटर ठीक गौ के दूध की परीक्षा करनेवाले एक्टोमीटर के सदृश होता है। एक प्रकार के इसमें चिन्ह खुदे हुए होते हैं। इस यंत्र को सिलवर प्रिंटिङ्ग बाथ में डुबाकर परीक्षा करने से ठीक मालूम होजाता है कि अब इसमें कितना भाग सिलवर का विद्यमान है। इस यंत्र का रखना प्रत्येक फोटोग्राफर को आवश्यक है, क्योंकि नियमित सिलवर के न रहने से कदापि चित्र सुन्दर और स्वच्छ नहीं छपेगा।

गोल्ड टोनिंग बाथ

क्लोराइड आफ गोल्ड—यह एक मूल्यवान पदार्थ है, क्योंकि यह विशुद्ध स्वर्ण द्वारा बनता है। साधारणतः यह १५ ग्रेन की एक छोटी सी शीशी में मिलता है। इस शीशा को तोड़कर दो आउन्स की शीशी में इसे डाल दो और दो आउन्स साफ जल मिला कर एक लेबिल पर गोल्ड टोनिङ्ग बाथ लिख कर चिपका दो, जिसमें इसके ढूंढ़ने में समय व्यर्थ न खोना पड़े।

हाइपोसलफ़ाइट आफ़ सोडा वा फिक्सिंग बाथ

हाइपो ... ... २ आउन्स
साफ जल ... ... १६ आउन्स

यह आवश्यकता पड़ने पर ताज़ा ही तैयार करना चाहिए।

सेन्सिटाइज़ करना वा काग़ज़ पर सिलवर चढ़ाना

अँधेरी कोठरी के अन्दर टेबिल के ऊपर एक साफ़ डिश रखकर उसे आध इञ्च सिलवर प्रिंटिङ्ग बाथ से भरो और अपने नेगेटिव के साइज़ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार एलब्युमेनाइज़्ड् पेपर को काट लो और इस काग़ज़ के एलब्युमेनाइज़्ड् लगे हुए भाग का मुख नीचे करके दोनों ओर के दो विपरीत कोनो को इस रीति से पकड़ो कि जिसमें बीच का मध्यभाग नीचे को झुकजाय और जब सिलवर उसमें लगने लगजाय उस समय बड़ी सावधानी के साथ दोनों कोनों को छोड़ दो। इस समय धीरे धीरे डिश को हिलाओ, किन्तु ध्यान रहे कि काग़ज़ की पीठ पर सिलवर न लगजाय। इस प्रकार आध मिनिट करने के पीछे चांदी के चिमटे से उस डूबे हुए काग़ज़ को डिश के एक कोने में खींच कर ले जाओ और पुनः धीरे से बाहर खींच लो। पूर्वोक्त प्रकार से पुनः सिलवर में उसे डुबा कर डिश को २॥ मिनिट तक हिलाते रहो। इसके पीछे उत्तम काग़ज़ का एक कोना पकड़ कर उसे निकाल कर नीचे एक टुकड़ा ब्लाटिङ्ग पेपर का देकर अमेरिकन पेग इत्यादि से टाँग दो। यही काग़ज़ सूख जाने पर प्रिण्ट करने के लिये उपयुक्त सेन्सिटाइज़्ड् पेपर हो जाता है। सदा काम में लाने योग्य काग़ज़ ताज़ा बना लेना चाहिए क्योंकि यह तैयार किया हुआ काग़ज़ अधिक दिन स्थायी नहीं रहता। प्रत्येक शिक्षार्थी को ध्यान रखना उचित है कि यह कार्य्य अँधेरे मकान में छोड़ कभी आलोकमय स्थान में नहीं हो सकता। सेन्सीटाइज़ पेपर बना बनाया बाज़ार में भी मिलता है और इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के काग़ज़ मिलते हैं।

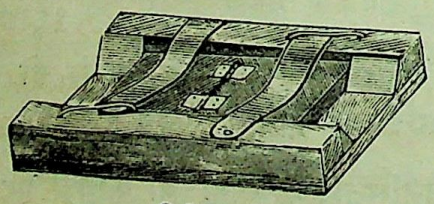

प्रिण्टिङ्ग फ्रेम

काग़ज़ के अच्छी रीति से सूख जाने पर उसको प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में अपने प्रस्तुत किए हुए नेगेटिव फिल्म् की ओर, अथवा जिधर वार्निश की है उसी के ऊपर जिधर सिलवर लगाई है, प्लेट पर उलट के रक्खो और उसके पीछे एक उसी नाप का ब्लाटिङ्ग पेपर का टुकड़ा प्रिण्टिङ्ग फ्रेम के पीछे के भाग में रख कर फ्रेम के सङ्ग लगे हुए स्प्रिङ्ग से उसे बन्द करो।

अब प्रिण्टिङ्ग फ्रेम को धूप में रखना होगा क्योंकि जब तक वह सम्पूर्ण न छपेगी तब तक उसे धूप ही में रखना होगा। सब प्रकार के नेगेटिव एक नियत समय में नहीं छप सकते। जो नेगेटिव अधिक डिम (काला) होगा उसके छपने में अधिक समय की आवश्यकता है, और जो नेगेटिव थिन (अपेक्षाकृत स्वच्छ) होगा वह काले नेगेटिव की अपेक्षा थोड़े ही समय में छपेगा। इससे जो नेगेटिव थिन हो उसे सम्पूर्ण धूप में रखना चाहिए वरन् छाया में ही छापना उत्तम है। कितना छप चुका और कितना बाकी है, इसे जानने के लिये प्रिण्टिङ्ग फ्रेम के केवल एक ओर के स्प्रिङ्ग को बड़ी सावधानी के साथ खोल कर डार्क रूम में ले जाकर देखते रहना चाहिए; किन्तु यह काम सावधानी के साथ हो, क्योंकि यदि वह काग़ज़ जरा भी हट बढ़ गया तो सब परिश्रम ही वृथा जायगा और उसका अधिक चान्दने के स्थान में रहना भी विशेष हानिकारक होगा।

साधारणतः छापने में १० मिनिट से लेकर आध घण्टा तक लगता है। पहिले उक्त काग़ज़ में सामान्य सामान्य रेखा पड़ती हैं, तथा पीछे क्रमशः सम्पूर्ण चित्र मुद्रित हो जाता है। छपने की परीक्षा करने के समय हट बढ़ जाने से वा उसे देर तक आलोकित स्थान में रहने से काग़ज़ सम्पूर्ण काला हो जाता है। मुद्रित होने का कार्य्य समाप्त होने पर, अर्थात् जब चित्र साधारण से अधिक काला हो जाय, तब प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में से चित्र निकाल कर, टोन, फ़िक्सिंग् प्रभृति नियमित रूप से अन्यान्य काम करने होंगे। छपा हुआ काग़ज़ किस क्रिया से रह सकता है, सब कामों के करने के पीछे किस प्रकार वह ठीक हो सकता है, यह सब कुछ दिन अभ्यास करने से स्वयं मालूम हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोन किस प्रकार होता है?

छपे हुए काग़ज़ को चारो कोनों से ठीक कर के काटो। इस काग़ज़ को एक मोटे शीशे के टुकड़े पर रख के काटते हैं, उसे कटिङ्ग टेबिल कहते हैं और साइज़ के अनुसार जिस कांच के टुकड़े को रख के काग़ज़ काटते हैं उसे कटिङ्ग शेप कहते हैं, तथा जिस तीक्ष्ण छूरी से वह काटा जाता है उसे प्रिण्ट-ट्रिमर कहते हैं। यह काटने का कार्य्य एलब्यु-मनाइज़्ड पेपर पर प्रिण्ट होने के पीछे और टोन होने के प्रथम किया जाता है और पी० ओ० पी० पेपर पर प्रिण्ट और टोन होने के पीछे होता है।

जितने चित्र छापे जांय उतने का टोन इत्यादि कार्य्य उसी दिन समाप्त कर देना चाहिए। प्रथम एक साफ़ डिश में जल भर कर जितने चित्र का टोन करना हो, उन्हें इस डिश में भिगो दो और ५ मिनिट तक उनको हिला कर और नीचे ऊपर करके उस पानी को फेंक दो। पहिले उक्त डिश में से तसवीरों को निकाल लो और पुनः उस डिश में जल भरकर इसके प्रत्येक आउन्स में १ ड्राम क्लोरिड आफ सोडियम (विशुद्ध लवण) मिलाओ और जब यह (लवण) इस जल में अच्छी तरह घुल जाय तो छपे हुए चित्रों को इसके जल से धोने से यदि वे लाल हो जांय तो और थोड़ी देर तक इसी जल से उन्हें धो लेना चाहिए। कभी कभी पी० ओ० पी० काग़ज़ के लिये फिटकिरी और नोन दोनों एक साथ ही व्यवहार करते हैं।

इस क्रिया के करने के पीछे एक दूसरी डिश में गोल्ड टोनिङ्ग बाथ देकर धोना चाहिए, क्योंकि इससे चित्र अपेक्षाकृत सुन्दर और चिरस्थायी होता है।

गोल्ड टोनिङ्ग बाथ	... १ ड्राम।
सोडा एसिटेट	... ३० ग्रेन।
शुद्ध जल	... ४ से लेकर ८ औन्स तक।

(इस परिमाण से एक सम्पूर्ण काग़ज़ टोन हो सकता है)

उपर्युक्त द्रव्यादि को एक में मिलाकर एक कए करके चित्र को धोना वा रञ्जित करना चाहिए। टोन करने में जब चित्र गहरा काला वा बैंगनी (Purple) रङ्ग का होजाय तो एक दूसरी रिकाबी में स्वच्छ जल भर के उसे इस रिकाबी में भिगो देना उचित है। उसी क्रम से एक एक तसवीर टोन करने से उत्तम होता है। इसमें थोड़े काल तक अभ्यास करने से इसके सम्पूर्ण नियमों में ज्ञातव्यता हो जाती है। बहुत देर तक टोनिङ्ग बाथ के व्यवहार करने से वह खराब हो जाती है, किन्तु इस प्रकार की जब अवस्था हो रही हो, उस समय थोड़ी सी खड़िया को मिला लेने से वह बहुत सुन्दर टोन हो जाता है।

चित्र का कागज़ पर छापना और उसका टोन होना सब तुम्हारे नेगेटिव के आधीन है। छपा हुआ चित्र अधिक समय तक टोनिङ्ग बाथ में रह जाने से वह धूसर वर्ण का होकर भ्रष्ट होजाता है। साधारण दो से छः मिनिट में एक चित्र टोन होता है। यह भी ध्यान रहे, कि यह (टोन) अधिक आलोकित स्थान में वा रुबीलाइट में नहीं हो सकता। द्वार के पास साधारण उजेले में टोन करना उत्तम है, क्योंकि रुबी लाइट में चित्र अच्छा दिखाई नहीं देता, और अधिक आलोकित स्थान में भी चित्र क्रमशः काला होजाता है। और सबसे उत्तम तो यह है कि किवाड़ा बन्द करके लम्प की रोशनी में काम करने से सुगमता भी है और चित्र भी उत्तम होता है। जब सब चित्र टोन होजांय तब दो तीन बार साफ़ पानी से अच्छी तरह उन्हें धो कर एक और दूसरी रिकाबी में फिक्सिङ्ग बाथ भरो और उसमें इन्हें डुबा कर क्रमशः उलट पुलट करते रहो। इसी प्रकार १०-१५ मिनिट करने के पीछे हाइपो फेंक दो, क्योंकि उसका प्रति बार नया बना लेना ही ठीक है। गरम जल* में हाइपो भिगोने से उत्तम होता है। उसके

* किन्तु पी० ओ० पी० पेपर के टोन में इसके परिवर्त्तन में शीतल जल का व्यवहार करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो बरफ़ के जल में टोन करना ही बहुत अच्छा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति आउन्स में २-३ बूंद लाइकर एमोनिया के दे देने से चित्र में जो कभी कभी पानी के बबूलों के समान होजाता है वह नहीं होगा। फिक्सिङ्ग होने के पीछे हाइपो फेंक कर पहिले चित्र को साफ़ पानी में धो लेना उचित है। एक बड़ी रिकाबी में जल भर कर चित्रों को भिगो दो और दो घण्टे तक आध घण्टे के अनन्तर चार बेर पानी बदल दो। इस क्रिया के समाप्त होने के पीछे पुनः २४ घण्टे तक चित्र को भिगो देना बहुत आवश्यक है। इसके अनन्तर २-३ बार साफ़ जल में धोकर सुखा लो। जब तक चित्र १२-१४ घण्टे जल में न भिगाया जायगा तब तक वह अच्छा नहीं होगा, वरन् थोड़े ही दिनों में फेड अथवा एक दम फीका पड़ जायगा। जब यही उत्तम रीति से धोया जाता है तब बहुत दिनों

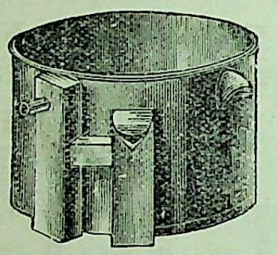

प्रिण्ट धोने का पात्र

तक फ़ेड नहीं होता। यहां पर प्रिण्ट धोने के एक यंत्र का चित्र है, जिसके रखने से प्रिण्ट बहुत अच्छी तरह से धोया जा सकता है।

जब चित्र सूख जाय तब उसे जल से भरी हुई डिश में भिगोकर एक शीशे के बड़े टुकड़े पर उलटकर रक्खो, तब अरारोट से वा मौंउटिङ्ग स्टार्च (Mounting starch) से उक्त चित्र को कार्ड पर चिपका दो। इसे अंग्रेज़ी में माउन्ट करना कहते हैं। माउन्ट होजाने के पीछे जब कि वह सूख जाय, तब रुलर बर्निशर (Ruler burnisher) की सहायता से वार्निश कर लेना उचित है, क्योंकि इससे चित्र में अच्छी पालिश वा चमक आजाती है, और चित्र बहुत सुन्दर दिखाई देने लगता है।

स्पिरिट लम्प जलाकर रुलर बरनिशर के रुलर को गरम करके पीछे कार्ड पर लगे हुए चित्र पर नीचे लिखी हुई औषधि को एक नरम कपड़े में लेकर लगा दो और थोड़ी देर के पीछे पुनः कपड़े से पोंछकर उस चित्र को रुलर बरनिशर के भीतर देकर दहिने हाथ से उसका हाथल घुमाने से तुम्हारी क्रिया समाप्त हो जायगी, किन्तु इसका विशेष ध्यान रहे कि रुलर घुमाते समय किसी स्थान से चित्र फट न जाय।

रेक्टीफ़ाइड स्पिरिट	... ...	१ आउन्स
क्याष्ट्राइल सोप	... ...	६ ग्रेन

इन दोनों औषधियों को मिला कर कांच की एक छोटी शीशी में बन्द कर रक्खो। इसीका नाम वारनिशिङ्ग सोल्यूशन है। यह बना बनाया भी मिलता है। उपर्युक्त क्रिया से वार्निश प्रस्तुत करके वार्निश कर देने से इस कार्य्य की समाप्ति हो जाती है। प्रथम शिक्षार्थियों को उचित है कि अपने हाथ से प्रिण्टिङ्ग, टोनिङ्ग, आदि क्रिया न करके, किसी दूसरे अच्छे फोटोग्राफर से करालेना अच्छा है क्योंकि इससे उनको सुविधा होगा।

वेलक्स काग़ज

यह काग़ज भी चित्र छापने के काम में आता है।

लम्प के उजेले में कुछ दूरी पर यह खोला जा सकता है और लम्प ही की रोशनी में डेवेलप वा परिस्फोटन कार्य्य भी किया जा सकता है। लम्प के और सूर्य्यालोक से प्रिण्ट वा मुद्रित भी हो जाता है। साधारण नेगेटिव से जैसे एलब्युमेनाइज़्ड् काग़ज़ पर चित्र छपता है वैसे ही इस काग़ज़ पर भी छपता है। अंधेरी कोठरी में प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में इस काग़ज़ को रखके लम्प से ४-५ इञ्च की दूरी पर सामने आलोकित वा एक्स

* पी० ओ० पी० कागज में इस वार्निश के लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पी० ओ० पी० के चित्र को केवल रोल कर देने ही से वह बहुत उत्तम होजाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोज़ करके एक वा दो मिनिट तक एक्सपोज़ करने ही से चित्र प्रस्तुत हो जाता है। घने फ़िल्म् वाले नेगेटिव में कुछ इससे अधिक देरी लगती है। दिन में इसके छापने को ५-७ सेकण्ड बहुत हैं। इसके छापने के लिये धूप की कोई अवश्यकता नहीं है। चित्र आलोकित करने के पीछे निम्न-लिखित परिस्फोटन अरक से डेवेलप कर लेना चाहिए।

नं० १	जल	१०	आउन्स
	मेटील... ...	७	ग्रेन
	सोडा सलफाइट	½	आउन्स
	हाइड्रोकिनोन ...	३०	ग्रेन
	सोडा कार्बनेट दानेदार	४००	ग्रेन
नं० २	ब्रोमाइड पोटासियम	१०	ड्राम
	जल	१०	ड्राम

नं० १ के अरक का २ ड्राम १ आं० जल और नं० २ के अरक की २-४ बूंदों को मिलाकर डेवेलप करने से बहुत थोड़ेही समय में चित्र दिखाई देने लगता है।

हाइपो-एसिड-फिक्सिंग बाथ

हाइपो	१६	आउन्स
जल	६४	आउन्स

पीछे से निम्नलिखित अरक मिलालो।

जल	१०	आउन्स
सोडा सलफाइट	१	,,
एसिटेट एसिड	६	,,
एलम चूर्ण	१	,,

चित्र को १०-१५ मिनिट तक इस बाथ में रखने के अनन्तर उसे एक घण्टे तक जल में धोओ और तब सुखा लो।

[क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] अप्रैल १९०१ ई० [संख्या ४

अमरावती

अहो ! यह अमरावती सुहाई ।
अखिल-भुवन-सुखमा-समूह लहि
पाई बहुरि बड़ाई ।
जहां बिहार करन कारन जन
कोटिन करत उपाई ।
पै पावत कोऊ या सुख कों
जन्म अनेक गँवाई ॥
यहँ सदा ऋतुराज बिराजत
सब दिन मदन सहाई ।
सीतल मन्द सुगन्ध पौन जहँ
हरै खेद समुदाई ॥
कंचन भूमि रत्नमय तरवर
नव पल्लव उमगाई ।
झुकै भूमि भरि भारन सों निज
संपति गर्ब मिटाई ॥

चहुँ मन्दार उदार कल्पतरु
चन्दन सुरभि बढ़ाई ।
पारिजात सन्तात बिताननि
सोहत अति छबि छाई ॥

फूले फले अघाय सबै तरु
नखसिख लों सरसाई ।
भरे लेत सुमननि भरि झोरिन
देववधू नियराई ॥

बिकसीं लता सुमन-मनमोहिनि
तरुन तरुन लपटाई ।
मधुकर-निकर झुण्ड झनकारनि
रस-बस रहे लुभाई ॥

नाचैं मोर मोद मद माते
कोकिल कल किलकाई ।
बिहरत हरत चित्त पच्छीगन
चह-चहात हरखाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचन हरिन किलोल करत बहु
शाखामृग अधिकाई ।
मधुर बैन बोलत सब मिलि जुलि
मन नहिं नेक सकाई ॥

रत्नजटित सोपान मनोहर
देखत बनत निकाई ।
सुधा सरोवर अतिछवि छाजत
निर्मल नीर बहाई ॥

कनक कञ्ज कल्हार कुशेशय
इन्दीवर मन भाई ।
करत केलि कारण्डब सारस
हंस मधुप सचुपाई ॥

तरल तरङ्ग रङ्ग बहु भांतिन
दरसावै निपुनाई ।
बिहरैं बिबुध बारबनितनि सँग
अङ्ग अङ्ग अरुझाई ॥

लताकुञ्ज महँ जुग जुग मिलिकै
देववधू हरखाई ।
करत किलोल लोल लोचनि सों
मन हरि लेत सवाई ॥

कहुं रम्भा उरवसी मेनका
माल्यवती मनभाई ।
मिलि तिलोत्तमादिक बरनारी
सब जयमाल बनाई ॥

पहिरावत, आवत जे छिति तें
सुकृती जन समुदाई ।
कहत, अहो ! या पुण्यलोक में
बिहरहु तुम हरखाई ।

———

राजा भोज

भोज का नाम किस हिन्दूसन्तान को अविदित है ? बाल-वृद्ध-युवा सभी भोज का कुछ न कुछ वृत्तान्त सुना होगा। भारत वर्ष भर में उसका नाम प्रख्यात है। अहा ! वह कैसा प्रतापी राजा, प्रसिद्ध कवि और विद्यानुरागी था ! उसके सम्बन्ध में कैसी कैसी विचित्र कहानियां पाई जाती हैं। परन्तु शोक का विषय है कि अबतक यह निश्चय नहीं हुआ है कि वह कौन सा राजा था जो अपने सर्वोत्तम कार्य्यों से अपनी इतनी प्रसिद्धि छोड़ गया, क्योंकि खोज करने से बहुत से राजे भोज नाम के पाए जाते हैं जिनके इतिहास पूर्णतः प्रगट नहीं हुए हैं, और किसी विश्वासदायक प्रमाण के न होने से कथा-वार्त्ता से पूरा पता नहीं लग सकता। कर्नल टाड कहते हैं "जब तक हिन्दू-साहित्य शेष रहेगा, भोज प्रमार और उसकी सभा के नवरत्नों का नाम नहीं मिट सकता"। परन्तु स्वयं वह भी मुख्य राजा भोज का पता नहीं लगा सके, क्योंकि उसी नाम के तीन राजाओं को जान कर वह कहते हैं—"यह कहना कठिन है कि इन तीन राजाओं में कौन सबसे बड़ा है, क्योंकि सबके सब साहित्य और कला कौशल के प्रसिद्ध अभिभावक जान पड़ते हैं"। अतः इस विषय का किंचित् विस्तृत वर्णन और छान बीन करना अनावश्यक और अनुचित न होगा।

भोज शब्द संस्कृत की "भुज" धातु से निकला है जिसका अर्थ "भोगना" है। ऋग्वेदसंहिता के तृतीय भाग में (३ अध्याय २० वर्ग के ७ वें श्लोक में) यह शब्द पहिले ही पहल जातिवाचक संज्ञा की भांति "यज्ञस्न्हीं सौदास क्षत्रियों" के अर्थ में बरता गया है, जिससे ज्ञात होता है कि उनमें से किसी व्यक्ति का नाम भोज अवश्य रहा होगा। तत्पश्चात् महाभारत के आदिपर्व के तीसवें अध्याय में भी यह शब्द जातिवाचक संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भांति "द्रव्य के बेटों" के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यह नाम पांडवों की माता कुन्ती के अन्नदाता पिता के लिये भी आया है, जो सूर का फुफेरा भाई था और कुन्तीभोज के नाम से पुकारा जाता था। सूर वासुदेव और पृथा का पिता था। पृथा पांडु से ब्याहे जाने पर कुन्ती कहलाई। कर्नल विलफोर्ड ने कदाचित् इसी भोज को जरासंध का असामी कहा है। उसने मगों को गङ्गा किनारे अपने राज्य में बुलाया और उनमें से एक से अपनी लड़की ब्याह दी, जिससे भोजकों के १८ घराने हुए और उसका राज्य "कर्क देश" कहा गया। कर्नल साहब ने एक और भोज का वर्णन किया है जो भोजपुर ग्राम का स्वामी और कृष्णचन्द्र का मित्र और सम्बन्धी था। जान पड़ता है कि यह राजा उसका वंशोद्भव था और उसने अपना नाम कुल के अनुसार भोज रख लिया था, क्योंकि महाभारत के आदि पर्व में जो वृत्तान्त दिया है उससे प्रगट होता है कि द्रौपदी से ब्याह करने के लिये भोज नाम का एक भोजपुरिहा राजा भी अश्वत्थामा की मंडली में पांडवों का प्रतिवादी होकर गया था। यथा—"अश्वत्थामा च भोजश्च सर्व्वशस्त्रभृतांवरौ"। उसकी राजधानी मृत्तिकावती कर्मनासा नदी के तट पर स्थित थी।

रघुवंश में एक भोज को अवध का सूर्यवंशी राजा कहा है। फिर उड़ीसा के इतिहास में एक भोज राजा मिलता है जिसने ईसा से प्रथम सन् १८० से ५३ तक १२७ वर्ष राज्य किया। वह वीर, दानी, न्यायी और दयालु राजा था और उसकी सभा ७५० उत्तमोत्तम कवियों से सुशोभित थी, जिनमें ७५२ श्लोकों के (जो चाणक या चाटक या महानाटक के नाम से पुकारे जाते हैं,) रचयिता कालीदास मुख्य थे। राजा भोज ने नावों, सलाहे की कलों, पहियेदार गड़ियों का आविष्कार किया, अथवा पहिलेपहल उसीके समय में सर्वसाधारण को इनका व्यवहार ज्ञात हुआ। उसके समय में सिन्धु देश से यवनों ने इस देश पर बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ाई की। परन्तु भोज ने उनको हराया और उनका नाश किया और उसके पश्चात् उनके बहुत से नगरों और अधिकारों को ले लिया। उसके पीछे विक्रमादित्य सिंहासन पर बैठा जो उसका भाई या बेटा था। एक बङ्गाली लेख "भानुमती" भोज को विक्रम का श्वसुर बताता है। परन्तु यह सब वृतान्त केवल रचे हुए और झूठ जान पड़ते हैं। इसी प्रकार तीन भोज बङ्गाल के राजा कहे गए हैं। परन्तु वह भी राज्यकाल के अतिविस्तृत होने के कारण विश्वासयोग्य नहीं समझे जा सकते। अतः उनको त्याग कर अब उस भोज का वर्णन किया जाता है जिसका वृत्तान्त कर्नल टाड ने किया है। एक जैनलिपि के अनुसार वह कहते हैं कि राजा भोज स० ६३१ में हुआ था। वह प्रमार वंश का था और मालवा में राज्य करता था। एवे वेट्रेंड, मीरअली अफ़सोस के कथनानुसार, कहता है कि भोज स० ५४२ में हुआ था और टेफनथेलर उड़ीसा के इतिहास में कहते हैं कि एक भोज स० ४२६ में हुआ था, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये तीनों भोज एक ही रहे होंगे। यह केवल ऐतिहासिक प्रमाण न होने के कारण विलग विलग समझे गए हैं। टामस के प्रिन्सेप में लिखा है कि मुञ्ज के पश्चात् राजा भोज पांचवीं शताब्दि के अन्त में सिंहासन पर बैठा और यह वही है जिसका वर्णन टाड ने प्रथम भोज कह कर किया है। कर्नल का द्वितीय भोज स० ७२१ में हुआ था। ऐतपूर में जो अङ्कित लेख मिला था। उसके अनुसार भोज गुहादित्य का पुत्र था। उसकी सातवीं पीढ़ी में कालभोज नाम का राजा हुआ "जो सूर्य्य के समान तपता था"। कालभोज की आठवीं पीढ़ी में शक्तिकुमार स० १०३४ में बड़ा प्रतापी हुआ। कर्नल टाड कहते है कि इस लेख का प्रथम भोज वही है जिसको उन्होंने द्वितीय भोज माना है। सम्भव है कि इसी भोज का वर्णन "वृद्ध भोज" कह कर किया गया हो जिसकी सभा में बाणभट्ट और मयूर नाम के प्रसिद्ध कवि हुए थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने उसके आज्ञानुसार "सूर्यशतक" नाम की अपूर्व पुस्तक रची और सूर्यदेव को प्रसन्न कर अपने कुष्ठरोग से मुक्ति पाई। ये सब मानतुंगेश्वरी के समकालोद्भव थे। अब यदि यह मान लिया जाय कि बाण और मयूरादि कवि उसकी सभा में थे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह विद्वानों का बड़ा भारी सहायक था और अवश्य अगणित कवियों और गुणवानों से घिरा रहता था। परन्तु इस बात का कि वृद्धभोज और कर्नल टाड के द्वितीय भोज दोनों एक ही हैं, अभी पूर्ण निश्चय नहीं हुआ, क्योंकि प्रोफ़ेसर विलसन को भी एक लेख आबू पर्वत पर मिला था जिसमें भोज और कालभोज के नाम पाए जाते हैं। परन्तु यहां ९ पीढ़ी का अन्तर न होकर वे पिता और पुत्र की भांति जान पड़ते हैं। परन्तु निम्नलिखित वंश-वृक्ष से स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ऐतपूर के लेखानुसार उनकी पीढ़ियां इस प्रकार हैं–१ गुहादित्य, २ भोज, ३ महेन्द्र, ४ नाग, ५ सैल्य, ६ अपराजित, ७ महेन्द्र, ८ कालभोज, ९ खेमान, १० भर्तृपद, ११ सिंग जी, १२ श्रीउल्लट, १३ नीरवाहन, १४ सालिवाहन, १५ शक्तिकुमार। पर आबू पर्वत के लेखानुसार वे इस प्रकार हैं–१ वप्पाक, २ गोहिल, ३ भोज, ४ कालभोज, ५ भर्तृभट्ट, ६ समहापिक, ७ खुम्मान, ८ अल्लट, ९ नरवाहन, १० शक्ति, ११ सुचिवर्ण, १२ नरवर्म, १३ कीर्तिवर्म, १४ वैरीसिंह, १५ विजयसिंह, १६ अरिसिंह, १७ विक्रमसिंह, १८ समत सिंह, १९ कुमारसिंह, २० मथनसिंह, २१ पद्मसिंह, २२ जैतसिंह, २३ तेजसिंह, २४ समरसिंह। यह २४ राजे जैनी थे और मेवाड़ के सूर्यवंशियों में से थे। अन्तिम राजा सन् १२८६ ई० में हुआ। अतएव सरस्वतीकण्ठाभरण आदि काव्य की पुस्तकें उसी पहले भोज से सम्बन्ध रखती हैं। कर्नल टाड का तृतीय भोज वही है जो धार का राजा था और जिसका वर्णन भोजप्रबन्ध में हुआ है। कर्नल स्टैसी ने एक ताम्रपत्र पाया था जिसमें कन्नौज के दो राजों का नाम मिला था और जिसका जोड़ मिस्टर कासेरट ने सारन में पाया। कर्नल स्टैसी के लेख में वैशाख मास सं० ६५ (देशी) और तिक्कारिका ग्राम का दान लिखा है, जो काशी के सन्मुख गंगा के बाएं किनारे पर स्थित था और दाता का नाम विनायकपाल था। उसके पुर्खों का नाम देवशक्ति से प्रारम्भ होता है और उसमें भोज नाम के दो राजे पाए जाते हैं, जिनमें से एक रामभद्र का और दूसरा महेन्द्र पाल का पुत्र था। उनके क्रम इस प्रकार हैं–(सारन के लेखानुसार) १ देवशक्ति, २ वत्सराज, ३ नागभट्ट, ४ रामभद्र, ५ भोज, ६ महेन्द्रपाल, ७ भोज, ८ विनायक पाल। ग्वालियर के वैष्णव मन्दिर में एक लेख में चक्रवर्ती राजा भोज का वर्णन किया है, जो सन् ८७६ ई० में राज करता था। पुनः थानेश्वर से पश्चिम १५ मील पर सरस्वती के किनारे एक ग्राम के मन्दिर की दीवारों पर एक अङ्कित लेख है जिसमें येहीवा के भोज का नाम मिलता है। बड़ी कठिनता से दस राजाओं का नाम पढ़ा जा सकता है। वे ये हैं–१ महेन्द्रपाल, २ जतुल, ३ नाम पढ़ा नहीं जाता, ४ वजरट, ५ यज्ञिका, ६ सोग्ग, ७ पूर्ण, ८ देवराज, ९ रामभद्र, १० भोज। जेनरल कनिंगहम के कथनानुसार दो लेख हैं और दोनों मिलाकर १० नाम मिलते हैं। एक में केवल दो नाम मिलते हैं, अर्थात् रामभद्र और भोज, और भोज के सन्मुख स० २७६ लिखा है। परन्तु वे कहते हैं कि यह सम्वत् कन्नौज के राजा श्रीहर्ष का है जो सन् ६०७ ई० में आरम्भ हुआ था।

अतएव भोज ने सन् ८८२ ई० में इस लेख को खुदवाया था। "अब हम जानते हैं कि इसी समय कोई राजा भोजदेव ग्वालियर का सबसे बड़ा राजा था, क्योंकि स्वयं उसीके लेख से जो शिला पर लिखा है, स० ९३३, सन् ८७६ ई०, हस्तगत होता है। राजतरंगिणी से भी हमको ज्ञात होता है कि किसी राजा भोज ने काश्मीर के शंकरवर्म से, जो सन् ८८३ से ९०१ ई० तक राज करता रहा, युद्ध किया था। अतः हमको पूर्ण संतोष है कि सब लेख एक ही राजा भोजदेव का उल्लेख करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जो कन्नौज का राजा (सन् ८७५ से ९०० ई० तक) रहा-(Journal Asiatic Society, Vol. XXXIII.) तस्मात् यह स्पष्ट और सत्य जान पड़ता है कि ग्वालियर, पेहिवा, सारन और बनारस वाले अङ्कित लेखों में उसी भोज से आशय है जिसका वर्णन राजतरंगिणी में मिलता है।

अब धार का राजा भोज शेष रहता है। भोज-प्रबन्ध, भोजचम्पू और भोजचरित्र के अनुसार वह सिंधुल का पुत्र और सिंधु का पौत्र था, जो मुंज के पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका देश मालवा, प्राचीन और विख्यात् विद्या का स्थान था और उसकी प्रजा अपनी सुन्दर चाल चलन और उच्च सभ्यता के लिये प्रशंसित थी। कालिदास ने उसके प्रताप का वर्णन अपनी अनेक पुस्तकों में किया है। भोजप्रबन्ध के रचयिता वल्लभ पण्डित के कथनानुसार मुंज सिंधुल का छोटा भाई था। सिंधुल ने भोज को राजकाज के अयोग्य समझकर राज्य अपने भाईही को दिया, परन्तु भोजचरित्र इसके विरुद्ध कहता है कि एक दिन सिंधु मृगया (शिकार) करने गया था और जब वह एक नदी के किनारे अकेला पहुंचा तो उसने एक नवीनोत्पन्न लड़के को थोड़ी सी मूंज घास पर पड़ा हुआ पाया और उसे लाकर अपनी रानी पद्मावती को पालने को दिया। दोनो लेखक इस बात में सहमत हैं कि भोज ने प्रसन्नता पूर्वक ५५ वर्ष ७ महीने ३ दिन तक राज्य किया। केवल बीच में किसी योगी के आ जाने से उसके शासन काल में कुछ अन्तर पड़ा, क्योंकि उसने एक शरीर से दूसरे शरीर में जीवात्मा भेजने को विद्या सिखाने के बहाने राजा की जीवात्मा को एक शुक के शरीर में प्रेरित कर दिया और स्वयं राजा के शरीर में पैठ कर वह राज्य करने लगा। यूरोपियन लोग इन बातों में विश्वास न करके कहते हैं कि मुंज के जन्म की कथा केवल उसके नाम का कारण बताने के लिये कल्पित करली गई है। तथा प्रोफ़ेसर लैसन की सम्मति है कि मुंज वास्तव में भोज का चाचा था। पर जब सिंधुला अपनी राजधानी को छोड़ दक्षिण में लड़ने गया था, तब मुंज ने अन्याय से राज्य पर अधिकार कर लिया। यह इस कथन से विदित होता है कि किसी समय एक ज्योतिषी ने भविष्यद्-वाणी की कि मुंज अपने भाई का राज्य ले लेगा। इस पर सिंधुला ने आज्ञा दी कि मुंज का सिर काट लिया जावे, परन्तु पीछे से अपनी बिना विचारी आज्ञा पर पश्चात्ताप कर उसने मुंज को सर्वस्व दे दिया और स्वयं अपना विलग राज्य स्थापित करने के लिये वह दक्षिण में चला गया। उसी प्रकार योगी की कथा से जान पड़ता है कि यह केवल मुख्य बात छिपाने के लिये बनाई गई थी। वह यह है कि दक्षिण से आक्रमण होने के कारण भोज को अपने राज्य से भाग जाना पड़ा और उसके स्थान पर एक चालूक्य राजा सोमेश्वर सन् १०४० से १०४९ ई० तक राज्य करता रहा। भोज स्वाभाविक मृत्यु से मरा और राज्य अपने पुत्र गजानन्द को छोड़ गया। भोज का वंश जो उसके जीवनचरित्र लिखनेवालों ने दिया है हरौती के मधुकरगढ़ वाले लेख से भी, जिसको कर्नल टाड ने पाया था, प्रमाणित होता है। वह इस प्रकार है—१ सिन्धु, २ सिन्धुल, ३ भोज, ४ उदयादित्य और ५ नरवर्म। परन्तु अन्तर केवल इतना ही पड़ता है कि इसमें भोज के पश्चात् राज-सिंहासनाधिकारी उदयादित्य होता है जो केवल एक सम्बन्धी था और जिसके वंश के लोग कई पीढ़ी तक धार के सिंहासन पर रहे। एक दूसरा अंकित लेख जो नागपुर के समीप बेयनी गङ्गा के पश्चिम किनारे वाले मन्दिर पर मिला, सन्तोषदायक रीति से न पढ़ा गया, परन्तु उसीका जोड़ प्रोफ़ेसर लैसन ने सतारे में ताम्रपत्र पर पाया और बड़ी सावधानी से उसका एक एक अक्षर पढ़ा। अतः उसके आशय की शुद्धता में कोई सन्देह नहीं है। यह लेख सरस्वती को नमस्कार करके प्रारम्भ होता है और प्रमार वंश की उत्पत्ति वर्णन करने के उपरान्त कहता है कि इस कुल में वैरीसिंह नाम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई राजा उत्पन्न हुआ जो पृथ्वी पर राज करके अपने प्रताप से सुरलोक में इन्द्र को भी लज्जित करता था। उसके लड़के सीयक के दो बेटे हुए, मुञ्ज और सिंहराज, जिनमें से मुञ्ज बड़ा होने के कारण सिंहासन पर बैठा। पुनः सिंहराज के बल बीरता का वर्णन करके भोज के सिंहासन पर बैठने का वृतान्त कहता है। निरसन्देह यही भोज भोजप्रबन्ध में वर्णित हुआ है। पर इस लेख में उसकी अप्रतिम बीरता और अनेक भारी भारी विजयों के अतिरिक्त और किसी बात का वर्णन नहीं किया है। न तो उसके नवरत्न और न अन्य विद्वानों का पता है जिनके वर्णन में भोजप्रबन्ध का तीन चौथाई भाग लिखा गया है। किसी न किसी प्रकार यह निश्चय है कि वाक्यप्रदीप, राजमृगाङ्क और राजमार्तण्ड आदि योगसूत्रों की व्याख्या या तो उसकी रचित हैं या उसकी सहायता से रची गई हैं। भोज के मरने पर देश में शत्रु लूट मार करने लगे और सब जगह अराजकता छा गई, यहां तक कि अन्त में उदयादित्य नाम के बन्धु (सम्बन्धी) ने राज्य अपने हाथ में ले लिया और देश में सुप्रबन्ध कर प्रजा को सुखी किया। उसका पुत्र लक्ष्मदेव बड़ा प्रतापी हुआ। उसके पश्चात् नरवर्मदेव, यशोवर्मदेव, जयवर्मदेव, और लक्ष्मीवर्मदेव राजा हुए। इसमें सन्देह नहीं कि लक्ष्मदेव १२ वीं शताब्दि के प्रारम्भ में राज्य करता था, क्योंकि सतारा वाले लेख में लक्ष्मदेव के सन्मुख संवत् ११६१ अर्थात् सन् ११०४ ई० लिखा है और उसके भ्राता नरवर्मदेव के पश्चात् यशोवर्मदेव ने मिती कार्तिक बदी अष्टमी संवत् ११९१ में अपने पिता का श्राद्ध किया। अब यदि यह संवत्सर का श्राद्ध १० वर्ष पीछे किया गया हो तो नरवर्मदेव स० ११८१ और ११९० के बीच किसी समय मरा होगा, और यदि यह मान लिया जावे कि उसने २५ वर्ष तथा उसके पिता ने १५ वर्ष राज्य किया था तो भोज के राज्य का अन्त स० ११४० से ११५०, या सन् १०८३ से १०९३ ई० के बीच में पड़ता है और उसका शासनकाल ११वीं शताब्दि से प्रारम्भ होता है। कुमारपालचरित से प्रगट होता है कि मुञ्ज स० १०७९ या सन् १०२० ई० में जीवित था जब कि दुर्लभ ने उससे तीर्थस्थान में भेट की। और भोजचरित और भोजप्रबन्ध से ज्ञात होता है कि भोज ने ५५ वर्ष ७ महीने ३ दिन राज्य किया था। अतः केवल छ वर्ष शेष रहते हैं जिनमें मुञ्ज अथवा उदयादित्य ने राज्य किया होगा। मुञ्ज को बहुतों ने वाक्पति का उपनाम समझा है और वैरीसिंह और सीयक को एकही बतलाया है परन्तु इसका निश्चय नहीं हुआ। तथापि भोज के राज्य-समय का निर्णय कई अङ्कित लेखों को मिला कर किया गया है। यथा सितारा और नागपुर की शिलाओं से लक्ष्मदेव और नरवर्म सं० ११६१ अर्थात् सन् ११०४ ई० में राज्य करते जान पड़ते हैं। उज्जयिनी के एक लेख से यशोवर्म का समय स० ११९१ या सन् ११३७ ई० और दूसरे से उसके पुत्र लक्ष्मीवर्म का समय स० १२०० या सन् ११४३ ई० और तीसरे से यशोवर्म के पौत्र अर्जुनवर्म का समय सं० १२७२ या सन् १२११ ई० ज्ञात होता है, और सिहोर के ताम्रपत्र से उसकी सत्यता प्रगट होती है। इससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि भोज के राज्य का अन्त सन् १०८३ ई० में हुआ। यदि भोजप्रबन्ध का शासनकाल सत्य है तो वह सन् १०२६ ई० में धार की गद्दी पर बैठा होगा। इस प्रकार वाक्पति अथवा मुञ्ज का राज्यसमय ५० वर्ष होता है। वेन्टली साहब के अनुसार भी भोज के राज्य का अन्त सन् १०८२ ई० में हुआ था जिससे स० १०८३ से केवल एकही वर्ष का अन्तर पड़ता है; परन्तु लैसन साहब से दस वर्ष का अन्तर पड़ता है, क्योंकि उन्होंने नरवर्म का मृत्युकाल सन् ११२० ई० में मान लिया है। परन्तु यह अंतर बहुत बड़ा नहीं है और साधारणतः हम कह सकते हैं कि भोज प्रमार ११वीं शताब्दि के मध्य में हुआ था और उसका शासनकाल लगभग १०२६ से १०८३ ई० तक था॥

पं० वागीश्वरीप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारजिलिङ्ग का इतिहास

जिस समय लौर्ड हेष्टिङ्ग्स यहां के गवर्नर जेनरल थे उस समय नेपालियोंने सिर उठाया था और वे अंगरेज़ों के अधिकृत देशों पर आक्रमण करने लगे थे। उसी समय में सिकिम का राज्य भी किसी प्रकार से दबा हुआ न था, पर नेपालियों ने उसके राज्य का कुछ भाग दबा लिया। यह देख सिकिम के राजा ने अंगरेज़ों से सहायता मांगी। इसपर सेनापति अक्टरलोनी साहेब को सिकिम जाने की आज्ञा मिली। इन्होंने जाते ही नेपालियों को युद्ध में परास्त किया। यह देख नेपाल के राजा ने अपने राज्य का एक बहुत बड़ा भाग दे अंगरेज़ों से सन्धि की और सिकिम राज्य का जो भाग ले लिया था उसे लौटा दिया। इसके कुछ वर्षों पीछे फिर सरहद के बारे में सिकिम और नेपाल से झगड़ा उठा। फिर पहिली सन्धि की लिखत के अनुसार अंगरेज़ पञ्च माने गए। सन् १८२८ ईसवी में कप्तान लयेड इस कामके लिये चुने गए। कप्तान लयेड मालदह के कमरसियल रेसीडेन्ट' मिस्टर जे. डबल्यू. ग्रान्ट को साथ ले पहाड़ी दुर्गम पथ पर चल रिकिंपं क बढ़े चले गए। दारजिलिङ्ग के सुन्दर दृश्य र स्थान सबसे पहिले इन्हीं लोगों ने देखे थे। सिकिम से लौटने पर इन लोगों ने गवर्नर जेनरल लौर्ड वैंटिङ्ग को दारजिलिङ्ग के विषय में लिखा कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते के पास ऐसा सुन्दर स्थान स्वास्थनिवास होने योग्य है। दारजिलिङ्ग की ऊंचाई ६५०० से ७५०० फीट तक की है। इससे इसकी जल वायु लगभग लन्दन से मिलती जुलती है। ८००० फीट ऊंची होने से ठीक लन्दन सी सर्दी गर्मी होती है। सिमला, कसूरी आदि स्थान हैं, परन्तु वे कलकत्ते से बहुत दूरी पर हैं और यह बहुत निकट है। कलकत्ते वालों के लिये यहां सुबीता है। यह बात लौर्ड वैंटिङ्ग को भाई। उन्होंने सरवेयर जेनरल मेजर हर्वर्ट को दारजिलिङ्ग की देख भाल करने के लिये भेजा।

उस समय दारजिलिङ्ग सिकिम राज्य के अधिकार में था। इसलिये अंगरेज़ों ने सिकिम के राजा से उसे यह कहके मांगा कि यदि यों न दें तो इसका मूल्य ठहरा लें। अथवा इसके बदले में कोई दूसरा स्थान ले लें। परन्तु अनेक सन्देहों में पड़ सिकिम के राजा ने इसे अस्वीकार किया।

समय के फेर से सन् १८३४ और ३५ ईसवी में फिर नेपालियों ने सिकिम राज्य की तराई नामक बस्ती पर चढ़ाई की। उस समय सिकिम राज के पास गोर्खाओं से भिड़ने योग्य सेना न थी। विवस फिर उसे अंगरेज़ों की सहायता मांगनी पड़ी और गवर्नमैंट ने आनन्द से देनी स्वीकार की। कर्नल लयेड ने एक बड़ी सेना ले सिकिम की यात्रा की और जाते ही नेपालियों को वहां से मार भगाया। इसके पलटे में महाराजा सिकिम ने बड़ी प्रसन्नता से सन् १८३५ के फ़रवरी में दारजिलिङ्ग अंगरेज़ों को दी।

सन् १८४० ईसवी में नेपाल के अंगरेज़ी रेसीडेन्ट डाक्टर कैम्बल साहेब दारजिलिङ्ग के सुपरइनटेन्डेण्ट नियुक्त हुए। १८४१ साल से अंगरेज़ सर्कार महाराज सिकिम को तीन हज़ार रुपया साल करस्वरूप देने लगी। १८४६ से इसका दूना अर्थात् ६ हज़ार का साल देने लगी। इसी समय से दारजिलिङ्ग में लोगों की बस्ती बढ़ने लगी। विलायती अंगरेज़ भूमि मोल ले घर बनाने लगे। बज़ार बसाया गया। रुग्न सिपाहियों के रहने के लिये बारिकें बनवाई गईं। दिनों दिन दारजिलिङ्ग की उन्नति देख नेपाली भोटिए और सिकिम वाले आ आ के बसने लगे। बहुतेरे पेनशनिए और बङ्गाली स्वास्थ सुधारने को वहां जाकर रहने लगे। पहिले वहां किसी तरह का बनिज व्योपार न था। पर धीरे धीरे कस्तूरी, सोना, नोन, खान का नोन, सोडा, पशमीना, तिब्बती घोड़े प्रभृति चीज़ों का व्यापार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने लगा। डाक्टर कैम्बल प्रतिवर्ष पहाड़ के नीचे ददरी का मेला करवाने लगे। इसमें आस पास से भांति भांति की वस्तु ले अनेक व्यापारी आने लगे। डाक्टर कैम्बल और उनके बन्धु आए हुए व्यापारियों को अच्छी चीज़ों के लिये पुरस्कार देते। इससे यह मेला अच्छा जमा और व्यापार भी बढ़ने लगा।

यों ही दारजिलिङ्ग एक अच्छी नगरी होगई। सन् १८३९ में वहां सौ मनुष्य की भी बस्ती न थी; परन्तु सन् १८४१ ईसवी में १० हज़ार लोगों की बस्ती हो गई। और सन् १८९१ की मनुष्यगणना में दो लाख की बस्ती जांची गई थी।

सिकिम के दीवान से दारजिलिङ्ग की यह उन्नति सही न गई। सिकिम की महारानी के यह सगे नातेदार थे, इससे उस राज्य में इनकी बहुत कुछ चलती थी। सिकिम के लामा और प्रधान प्रधान लोग भी इनकी देखा देखी कुढ़ने लगे। उस समय सिकिम, भूटान और नेपाल वाले आपुस में दास व्यवसाय किया करते थे। धीरे धीरे उनका यह व्यवसाय घटने लगा। क्योंकि ऊपर कहे तीनों राज्यों से ऐसे लोग जिन्हें उस देशवाले दास बनाना चाहते, दारजिलिङ्ग में भाग आया करते थे। परन्तु ऊपर कहे तीनों राजवाले दारजिलिङ्ग से लोगों को चुराने लगे। अंगरेज़ी राज्य के हत्यारे या दूसरे अपराधी सिकिम में भाग जाते तो वहां की सरकार उन्हें पकड़ के अंगरेज़ों को नहीं लौटाती। सिकिम और भूटान आदि राज्यों में जैसी दास बेचने की प्रथा थी वैसी ही प्रथा अंगरेज़ी अधिकृत स्थानों में चलाने के लिये वहां वाले बार बार डाक्टर कैम्बल से अनुरोध करते रहे, परन्तु घृणा से डाक्टर साहेब ने इसे अस्वीकार किया।

सन् १८४९ में डाक्टर हूकर और डाक्टर कैम्बल सिकिम के राजा की आज्ञा ले सिकिम में घूमने गए। औचक एक दिन सिकिम वालों ने इन दोनों डाक्टरों को कैद कर लिया। महाराज के प्रधान मन्त्री ने उन डाक्टरों से कहा कि सिकिम से जितने बिके हुए दास तथा दूसरे अपराधी यहां से भाग के अंगरेज़ी अधिकार में गए हैं, उन सब को यहां लौटा दो और आपके यहां के जो लो हमारे राज्य में आए हैं, उनकी आशा छोड़ दो तुम लोग छोड़ दिए जाओगे और नहीं तो सिकि में कैद रक्खे जाओगे। यह सुनते ही डाक कैम्बल ने अंगरेज़ सरकार को सब हाल लि भेजा। इस समाचार के पहुंचते ही यहां से लि गया कि जब कभी काम पड़ने पर अंगरेज़ों सिकिम वाले जो सहायता मांगा करते थे उन्हें जाती थी। आगे अब उसकी आशा न रक्खें डाक्टर कैम्बल तथा डाक्टर हूकर का जो बाल भी बांका हुआ तो सिकिम के राजा उस पूरा फल भोगेंगे। यह सुनते ही सिकिम वालों दोनों डाक्टरों को चट पट छोड़ दिया।

इस अपमान का पल्टा लेने की इच्छा से १८५० ईसवी के फरवरी महीने में हथियारबन्द सेना ले ये लोग रङ्गीत नदी उतर सिकिम के भी घुसे। इन्होंने तराई प्रदेश पर अपना अधिकार ज उत्तर में रम्मन नदी, पूर्व में रङ्गीत और ति नदी, और पश्चिम में नेपाल सरहद्द के बीच सम्पूर्ण प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिय और दारजिलिङ्ग के लिये जो वार्षिक छः हज रुपया दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया। नए अधिकृत स्थान भी दारजिलिङ्ग के सुपरि टेन्डेण्ट के अधिकार में कर दिए गए।

उधर महाराज सिकिम ने अपने दीवान अधिकार ले लेने पर कुछ दिनों तक उनसे अंगरेज़ों से मेलजोल बना रहा। परन्तु दीव से बहुत ही निकट की नातेदारी थी, इससे कुछ दिनों के अनन्तर राजा ने उसे दीवान ब लिया। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि फिर दा जिलिंग से मनुष्य चोरी जाने लगे। सहज उप से महाराज से मेलजोल बना न रहेगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुटका होते ही लाट साहेब की मन्त्रीसभा में यह सिद्धान्त निश्चित हुआ कि रम्मन नदी से उत्तर और रङ्गीत नदी से पश्चिम इस बीच में जितने स्थान हैं सब अपने अधिकार में कर लिए जांय, और जब तक अंगरेज़ के अपराधियों को सिकिम वाले न लौटा दें और इस बात की पक्की लिखा पढ़ी न कर दें कि आगे ऐसा न होगा, तब तक अपना अधिकार वहां बना रहे।

ईसवी १८६० की पहिली नवम्बर को दारजिलिंग के सुपरिनटेण्डेण्ट थोड़ी सेना ले रम्मन नदी के उतर रिश्चंप तक बढ़े चले गए। अन्त में सिकिम वालों से हार कर लौट आए। फिर लेफटेनण्ट करनल गाउलर बहुत सी सेना ले सिकिम पर बढ़े। अनरेबुल एन्सली इडन इनके साथ दूत बन के गए। सेना तिस्ता नदी उतरी ही थी कि सिकिम के महाराज ने कहला भेजा कि गवरनर-जनरल साहेब ने जैसी संधि करनी विचारी है करलें, मुझे स्वीकार है। सन् १८६१ ई० की २८ वीं मार्च को एक नया सन्धिपत्र लिखा गया। महाराज चुफो नामग्यि भागे हुए थे, इसलिये माननीय इडन साहेब के सामने आते लजाए। इसलिये उनके पुत्र युवराज सिक्यं नामग्यि ने इस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए। सन् १८६१ में युवराज सिकिम के राजा हुए। इन्होंने अंगरेज़ी सरकार से बड़ा मेल-जोल बढ़ाया। सरकार भी इनपर अनुग्रह प्रकाश कर सन् १८६२ से वार्षिक ६००० रुपया फिर देने लगी। सन् १८६८ ईसवी से ९००० कर दिया और १८७३ से पूरा बारह हज़ार का सालीना कर दिया और यह कह दिया गया कि प्रति दिन दारजिलिङ्ग की उन्नति हो रही है इसलिये रुपया नहीं बढ़ाया गया है, यह केवल अंगरेज़ सरकार की कृपामात्र है।

सन् १८६८ ईसवी में पदच्युत दीवान को फिर महाराज ने रखने का प्रस्ताव किया; परन्तु सन्धि-पत्र के अनुसार यह प्रस्ताव न माना गया।

सन् १८७३ ईसवी में महाराज सिक्यं नामग्यि ने अपने सौतेले भाई और बहिन आदि को साथ ले दारजिलिङ्ग में आ छोटे लाट श्रीमान जर्ज़ केम्बल से भेट की। चोटाल सिक्यं नामग्यि इस समय सिकिम के महाराज हैं।

सन् १८९५ ईसवी में भूतपूर्व बङ्गेश्वर सर चर्ल्स ईलियट महाशय ने वर्त्तमान महाराज को अंगरेज़ी और हिन्दी भाषा सिखाने के लिये श्रीयुत शरच्चन्द्र दास, सी० आइ० ई०, महाशय को नियुक्त किया था।

इस समय सारे सिकिम का एक तिहाई राज अंगरेज़ी अधिकार में है; और साधारणतः यह दारजिलिङ्ग प्रदेश कहा जाता है।

अंगरेज़ी अमलदारी हो जाने पर दारजिलिङ्ग प्रदेश के अधिकांश पहाड़, नदी और ग्राम प्रभृति स्थानों के नाम हो गए हैं। अंगरेज़ी अधिकार में जितने नेपाली, भूटानी और दूसरे पहाड़ी दारजिलिङ्ग में आते हैं, उन्हीं लोगों ने ये नाम बनालिए हैं—जैसे जला पहाड़—इसका लेपचा नाम था कंगोल हो। महाकाल पहाड़, अबजरवेटरी हिल (Observatory Hill), गिध पहाड़, चौरस्ता (Mall road), काक झीरा, धोबी झीरा, पगला भोटिया बस्ती, जोर पथरी, काला पथरी, बामन पथरी, जोर बङ्गला, पुलबजार, भाटीघरा, सिपाही डूरा, प्रभृति अनेक नाम हैं।

इस समय यह प्रदेश दिनों दिन उन्नत हो रहा है। ग्रीष्म काल में यहां वह चहल पहल रहती है कि जो अन्य स्थानों में कदाचित न देख पड़े। समय का प्रताप प्रबल है। पहिले जो नाममात्र को एक छोटा सा पहाड़ी ग्राम था, आज वही स्वास्थ निकेतन बन सहस्रावधि मनुष्यों का प्रतिवर्ष निवासस्थान बनता है।

बा० कार्तिक प्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मान्यवर रावबहादुर जस्टिस पण्डित

महादेव गोबिन्द रानाडे,

एम. ए., एल-एल. बी., सी. आई. ई., जे. पी.,

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी ने यथार्थ कहा है कि—

"धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था"

परन्तु प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि "महाजन" कौन यथार्थ में हैं। आज कल तो जिनके पास धन दौलत हो वेही "महाजन" कहलाते हैं, और साधारणतः वेही "बड़े आदमी" समझे जाते हैं जो धन-सम्पन्न हों, चाहे उनका आचरण और चरित्र कैसाही अधम और शोचनीय क्यों न हो। ऋषिश्रेष्ठ व्यास जी ने ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक में धर्म्म का अति सूक्ष्म गुण निरूपण करने के बदले केवल इतना ही कहा है कि जिस पथ पर श्रेष्ठ लोग चलें वही धर्मपथ है। इससे सरल और इससे सर्वमान्य धर्म का और कोई निरूपण नहीं हो सकता। यदि कोई वक्ता साधारण बुद्धि के श्रोतागणों के सन्मुख सत्य और न्याय पर गूढ़ दार्शनिक भावों को प्रगट करे तो कदाचित् कोई ही ऐसा श्रद्धालु भक्त होगा जो बिना एक अक्षर समझते हुए भी बैठा रह जाय और व्यास जी की व्याख्या सुनता रहे। परन्तु प्रति दिन देखने में आता है कि जहां श्रीरामचन्द्र और युधिष्ठिर की कथा सुनाई जाती है, बालक और स्त्रियां भी चित्त दे सुनती हैं। तात्पर्य्य यह है कि श्रेष्ठ पुरुषों के जीवनचरित्रों में कुछ ऐसी आकर्षणशक्ति है जो क्रमशः लोगों को "कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा" के सिद्धान्त को प्रमाणित कर देती है।

आज जिस महामान्य सज्जन का चित्र और चरित्र हम पाठकों के सन्मुख उपस्थित करते हैं, वह इस समय का एक ऐसाही "महाजन" था। प्रत्येक समय के महापुरुषों में एक प्रकार का वैलक्षण्य और उनके सद्गुणों में एक प्रकार की भिन्नता होती है जो वस्तुतः उस समय की आवश्यकताओं के अनुकूल है। महात्मा बुद्ध ने रणक्षेत्र में यश नहीं पाया, क्योंकि उस समय अहिंसा परमो धर्म्मः के सिद्धान्त की जनसमाज में आवशकता थी, परन्तु भगवान रामचन्द्र को अपने समय के दुष्ट और सत्य-द्वेषी राक्षसों को मारकर पृथ्वी का बोझ हलका करना था, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने उनको "रघुवीर" कह कर सम्मानित किया है। रानाडे महाशय के चरित्र और सिद्धान्तों में हम उन बातों को पाते हैं कि जो इस समय के अनुकूल हैं और जिनसे भारतवासियों को लाभ प्राप्त होने की आशा है। अंगरेज़ी शासन में हमलोगों को पूर्णरूप से सुख और शान्ति प्राप्त होने के कारण हमलोगों की रुचि विद्या अध्ययन और समाज-संशोधन की ओर फिर गई है। इन विचारों के फैलाने और उनको दृढ़ करने में रानाडे महाशय ने बड़ा भाग लिया था।

महादेव गोबिन्द रानाडे का जन्म २० जनवरी सन् १८४२ को हुआ था। इनके पिता का नाम गोबिन्द अमृत रानाडे था। दक्षिण में नाम रखने की प्रथा यह है कि पहले निज का, फिर पिता का नाम और तब अल्ल, जैसे महादेव गोबिन्द रानाडे, काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग, इत्यादि।

रानाडे महाशय की शिक्षा का प्रारम्भ उनकी मातृभाषा में हुआ था। संवत १८५६ में जब उनकी अवस्था १४ वर्ष की हुई, तो वह अंगरेज़ी पढ़ने के हेतु पूना भेजे गए। एन्ट्रेन्स परीक्षा पास होने के पूर्व ही उनको दस रुपए और फिर बीस रुपए मासिक छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) मिलने लगी। एन्ट्रेन्स परीक्षा स्थापित होने पर उन्होंने परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी (डीवीज़न) में पास हुए, फिर १८६२ में बी. ए. और १८६५ में एम. ए. और १८६६ में एल. एल. बी. परीक्षा पास की, और प्रत्येक परीक्षा में बम्बई प्रान्त के विद्यार्थियों में प्रथम रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये वह आजतक "ग्रैजुएटों के राजा" कहलाते थे। सन् १८६५ में बम्बई विश्वविद्यालय के फ़ेलो नीयत हुए और एक वर्ष पीछे शिक्षाविभाग में २००) रुपए मासिक वेतन पर महाराष्ट्री ट्रान्सलेटर नियत हुए, तथा सन् १८६८ में एलफ़िन्स्टन कालेज में अंगरेज़ी भाषा के प्रोफ़ेसर (शिक्षक) नियत किए गए। इनकी शिक्षा प्रदान करने की रीति ऐसी मनोहर और इनके भाव ऐसे गम्भीर होते थे की कभी कभी दूसरे अंगरेज़ शिक्षक भी इनके व्याख्यान सुनने के लिये आते, यहां लों कि शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर मिस्टर फील्ड भी एक दिवस अपने अन्यान्य अंगरेज़ मित्रों के साथ उपस्थित थे। सर अलेग्ज़ेन्डर ग्रैण्ट ने भारतवर्ष से विदा होते समय कहा था कि बम्बई कालेज को रानाडे ऐसे विलक्षण और विशालबुद्धि विद्यार्थी के लिये अभिमान करना चाहिए। कहते हैं कि सर अलेग्ज़ेन्डर को रानाडे के इतिहास के प्रश्नों के उत्तर ऐसे रुचे थे कि उन्होंने अपने विश्वविद्यालय आक्सफ़ोर्ड में, कि जहां उन्होंने शिक्षा पाई थी, इनके उत्तर भेज दिए और यह लिखा कि भारतीय विद्यार्थी की अद्भुत बुद्धि का यह एक आदर्श है। सन् १८७२ तक यह कालेज के प्रोफ़ेसर रहे। सन् ७३ में ८००) रु० मासिक पर पूना के सबजज हुए। फिर क्रमशः पूना, रत्नगिरि, कोल्हापूर बम्बई इत्यादि नगरों में जज की पदवी पर आरुढ़ रहे। जब यह बम्बई के प्रेसिन्डेन्सी मेजिस्ट्रेट थे तो एक अंग्रेज़ का मुकद्दमा इनके न्यायालय में आया। रानाडे महाशय ने उस अंग्रेज़ को पूर्ण विचार के पश्चात् दण्ड दिया और कारागार में ले जाने की आज्ञा दी। इस समय बहुत से अंगरेज़ी पत्रों ने आन्दोलन मचाया था, पर स्वाधीनचेता निर्द्वन्द और सावधान रानाडे पर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

सन् १८८५ में डेकेन कालेज में Law (कानून) के लेक्चरर हुए और १८८६ में Finance (अर्थ सम्बन्धी) कमेटी में इनके सुविचारों के कारण इनको सी. आई. ई. की उपाधि मिली। सन् १८७१ में जब भारतवर्षीय सरकार के आय व्यय पर विचार करने के लिये विलायत में एक कमेटी नियत करने की बात चीत थी, तो सरकार की यह इच्छा हुई कि रानाडे महाशय को विलायत भेजें; पर वह कमेटी ही नियत न हुई। लार्ड हेरिस और लार्ड रे के समय में वह बम्बई प्रान्त के लेजिस्लेटिव काउन्सिल के मेम्बर हुए। जब ये जज थे तो कई एक बड़े ही जटिल मुकद्दमें आए और उनपर उनका फ़ैसला (न्याय) ऐसा उत्तम और विचारयुक्त हुआ कि बम्बई हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर माईकेल वेस्ट्रोप ने यह कहा था कि राव बहादुर रानाडे इस योग्य हैं कि हाईकोर्ट में अंगरेज़ जजों के साथ बैठें। विख्यात सर टी० माधव राव ने रानाडे को इसी समय २०००) रु० मासिक वेतन पर बड़ौदा का चीफ़ जस्टिस और महाराज होलकर ने ३५००) रु० पर अपना दीवान बनाना चाहा, पर इन्होंने दोनों पदों को अस्वीकार कर अंग्रेज़ी ही सेवा करनी पसन्द की।

२३ नवम्बर सन् १८८३ को श्रीमान् जस्टिस काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग के मरने पर रानाडे हाईकोर्ट के जज नियत हुए और यह चुनाव सबको रुचिकर था। इन्होंने सात वर्ष तक हाईकोर्ट की जज्जी की। एक तो जज्जी का काम ही बड़े परिश्रम का है, और फिर इनका सरकारी काम से अवकाश पाकर ग्रन्थों के पढ़ने और लिखने और सभा समाजों में जाने और व्याख्यान देने में जो समय जाता था वह चाहे उनके मस्तिष्क-वृद्धि और देश के लिये कैसा ही उपकारी हुआ हो, पर उसने उनके स्वास्थ को बहुत ही हानि पहुंचाई। नेत्र इनके निर्बल हो गए थे। वे स्वयं पढ़ नहीं सकते थे, पर विद्यार्थियों से पुस्तक, समाचारपत्र पढ़वा कर सुना करते थे। उत्साह, साहस और परिश्रम में तनिक भी न्यूनता न हुई, स्वास्थ चाहे कैसा ही हो जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ६ जनवरी सन् १९०१ से छ मास की छुट्टी ली और यह विचार करते थे कि इस समय को पूना, महाबालेश्वर इत्यादि स्थानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रह कर व्यतीत करें और अपने शरीर की आरोग्यता के साथ भारतवर्ष का एक वृहत् इतिहास लिख कर देश की सेवा करें, कि १६ जनवरी को रात के दस बजे अचानचक शरीर छूट गया। उसी दिन जयपुर के सुयोग्य दीवान राय कान्तीचन्द्र की मृत्यु का हाल पढ़ कर इन्होंने यह कहा था कि मृत्यु हो तो ऐसी कि 'काम करते हुए शरीर छोड़े'। फिर नियमानुसार आप टहलने भी गए थे, आकर भोजन किया और सो गए। आधे घण्टे पीछे शूल की पीड़ाहुई और डाक्टरों के आने के पूर्व ही उस अनुपम और अतुल्य आनन्द में लीन हो गए कि जिसमें शरीरक पीड़ा का अनुभव तक नहीं होता।

दूसरे दिन सवेरा होते होते विद्युत् की नाईं इनकी मृत्यु का समाचार सारे नगर में फैल गया। समस्त नगर के सरकारी और देशीय स्कूल, हाईकोर्ट और लोअर कोर्ट्स और कतिपय बाजार बन्द हो गए। इनके शव के साथ हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस और दूसरे इनके सहवर्गी जज, आर्य्यन कालेज के सब विद्यार्थी श्रेणीबद्ध और सैकड़ों मनुष्य साथ थे। हाईकोर्ट में पहुंच कर चीफ़ जस्टिस महाशय ने अति शोकपूर्ण शब्दों में मृत रानाडे महाशय के गुणों की प्रशंसा की। धीरे धीरे अन्य नगरों में भी इनकी मृत्यु का समाचार विदित हुआ और शोक सभाएं लाहौर, कलकत्ते, हैदराबाद, लन्डन इत्यादि नगरों में हुईं। इनकी सुशीला और सती स्त्री से सहानुभूति प्रगट करने के हेतु १५ दिन के भीतर १५०० पत्र आए, जिनमें से एक हमारे वर्तमान् गवर्नर जेनरल लार्ड कर्ज़न और एक बम्बई के गर्वनर लार्ड नार्थकोट का भेजा हुआ था।

रानाडे की देशहितैषिता

यदि कोई कहे कि रानाडे के सद्गुणों को एक शब्द में प्रकाश करो तो हम कहेंगे कि वे देशहितैषी थे। पर देशहितैषी तो आज कल गली गली मारे मारे फिरते हैं। लेक्चरों की धुन बांधनेवाले, एक जाति अथवा एक पार्टी से दूसरे जाति अथवा पार्टी में भिन्नता और द्वेष फैलाने वाले, निजका कोई रोज़गार न रखकर चन्दों से पेट भरने वाले, अंग्रेज़ी पढ़कर पुर्खों के चलाए संस्कारों को घृणा की दृष्टि से देखनेवाले और वर्तमान समय के इतिहास और आवश्यकताओं से कोरे निर्विज्ञ होकर समाज संशोधन के नाम से चिढ़ने वाले लकीर के फकीर देशहितैषी तो असंख्य होगें; पर रानाडे महाशय की देशहितैषिता का मूलमन्त्र उनके एक व्याख्यान से प्रगट हो जायगा—"किसी किसी का मत है कि हमारा वर्तमान जीवन के पूर्व न कोई जीवन था और न इसके अनन्तर होगा, और किसी किसी के विचार से हमारा अनन्त जीवन इसीमें है कि हम मृत्यु के उपरान्त अपनी मनुष्यसन्तान में अपनी कीर्ति छोड़ जांय, और परलोक एक कल्पना मात्र है; पर हमें ये दोनों सिद्धान्त सन्तोष नहीं देते। जब हमको रोटी की चाह है तो ये हमारे सन्मुख पत्थर रखते हैं। हमें तो सन्तोष एक तीसरा ही सिद्धान्त देता है कि यदि हम उस अनन्त मनुष्यजीवन की सेवा करते हुए, कि जो प्रत्येक समय में उत्पन्न होते हैं मरें तो हमें इस संसार में और परलोक में भी सुख ही सुख है। अभी थोड़े दिन हुए कि मैं उत्तरीय भारत में भ्रमण कर रहा था कि दैवात् श्रीगङ्गातट पर पहुंचा; गङ्गा के अद्भुत प्रवाह को निहारता हुआ समाधि में निमग्न हो गया और चित्त मेरा ऐसा चलायमान हुआ कि मैं कह उठा 'यह भारतभूमि भी धन्य है'। पर शीघ्र ही यह प्रश्न उठा कि क्या यह गङ्गा अनन्त है? एक दिन ऐसा भी कदाचित् आवे कि जब गङ्गा न रहे। फिर मैं यों युक्ति करने लगा 'नहीं, पानी के वे परमाणु जो मेरे सन्मुख प्रवाह के हेतु हैं, आगे बढ़ जांय, अथवा नाश हो जांय, पर प्रवाह वैसा ही बना रहेगा जैसा कि कितनी ही शताब्दी से चला आता है। उससे क्या ही उत्तम शिक्षा हमारे लिये है। हममें प्रत्येक व्यक्ति जन-समाज का एक परमाणु है। हम सब अवश्य चले जांयगे, पर जनसमाज जिवीत रहेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्रवाह गङ्गा के प्रवाह की नाईं अनन्त है। और यह हमारा अर्थात् प्रत्येक समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि इस प्रवाह को अद्भुत और विभूतिमान करे"।

इसी मूलमन्त्र के आश्रय पर उनका पहिला उपदेश यह हुआ करता था कि भारतवर्ष में हिन्दू और मुसलमान में एकता होनी चाहिए। लखनऊ में व्याख्यान देते समय उन्होंने कहा था कि देश की सेवा करने में मेरा सिद्धान्त गुरु नानक का वह वचन है कि जिसमें उन्होंने कहा था कि 'न मैं हिन्दू हूं न मुसलमान हूं'। फिर रानाडे महाशय ने इसी व्याख्यान में दिखलाया कि मुसलमानों ने हिन्दुओं के और हिन्दुओं ने मुसलमानों के समागम से क्या क्या लाभ उठाए। यह व्याख्यान इतना उत्तम पर इतना लम्बा है कि किसी दूसरे समय हम सरस्वती के पाठकों को उसका आनन्द दिलावें-गे। इस व्याख्यान की प्रशंसा समस्त अंग्रेज़ी पत्रों और नवाब मेहदीअलीख़ां और सय्यदअली बिल-ग्रामी ने की थी।

यह बात किसी पठित मनुष्य से गुप्त नहीं है कि भारतवासियों की एक महती सभा प्रति वर्ष भारतवर्ष के भिन्न भिन्न नगरों में हुआ करती है। इसका नाम नेशनल कांग्रेस है। इसके द्वारा लोग सरकार से प्रार्थी होते हैं कि भारतवर्ष के शासन में भारतवासियों की भी सम्मति लेनी चाहिए और उनके हाथ में भी शासन का भार देना चाहिए। जहां तक प्रतीत होता है, रानाडे महाशय इस सभा के विरोधी नहीं थे; पर वे कहा करते थे कि इससे पहिले कि तुम राज्य करने में अपना हिस्सा लो, अपनेको इसके योग्य बनालो; तुममें आपस की फूट है, तुम्हारे समाज में बहुत सी कुरीतियां ऐसी हैं जो तुमको निर्बल और बुद्धिहीन बना रही हैं; उनका संशोधन करो, अपने प्राचीन इतिहासों को पढ़ो, तुम स्वयं देखोगे कि प्रत्येक विद्यार्थी ब्रह्मचारी था, न कि आज कल की नाईं दो एक पुत्रों का पिता। जाति बन्धन ऐसे कठोर न थे कि ब्राह्मण क्षत्री के हाथ का छुआ न खा सके। क्षत्री ब्राह्मण हो सकते थे। विश्वामित्र और वशिष्ठ में झगड़ा इस बात का प्रमाण देता है कि प्राचीन समय में भी अपने विद्याबल और सच्चरित्र से छोटी जाति के लोग ब्राह्मण पदवी को प्राप्त कर सकते थे। ऐसी बातों के प्रचार करने और उनको अपने जीवन का उद्देश्य बनाने के लिये उन्होंने कांग्रेस के साथ साथ सोशल कान्फरेंस को नेव दी। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि उनकी बहुतसी बातों से हम सहमत नहीं हैं। जिस वर्ष कांग्रेस पूना में हुई थी, विख्यात पण्डित बालगङ्गाधर तिलक ने यह प्रयत्न किया कि कांग्रेस के भवन में कान्फरेन्स न हो। मिस्टर तिलक कट्टर सनातन-धर्म्मावलम्बी हैं। उनकी विद्या और वक्तृता-शक्ति पर पूना के लोग लट्टू हैं। वे अपने प्रयत्न में सफलीभूत हुए, पर उन्हों मिस्टर तिलक ने गत दिसम्बर में हमारे एक मित्र को मध्यस्थ बनाकर यह लिख दिया था कि रानाडे जो कुछ समाज-संशोधन के विषय में कहें हमें वह स्वीकार होगा। पर हा दुर्दैव! रानाडे महाशय इस बार लाहौर न जा सके और न काल ने इतना समय ही उन्हें दिया कि इन दोनों विद्वानों में हमारे मित्र मध्यस्थ द्वारा मेल हो जाय। जब तिलक महाशय ने इनकी मृत्यु का हाल सुना तो एक बड़ी भारी सभा की और इनके भाई को सहानुभूति का पत्र लिखा और जब वह पत्र सभा में पढ़ने लगे, नेत्रों से आंसू बह चले, पत्र पढ़ना कठिन हो गया, सभा विसर्जन कर महालक्ष्मी के मन्दिर में जाकर मृत रानाडे की आत्मा की शान्ति के लिये उन्होंने प्रार्थना की। सच है कि रानाडे के विरोधी कई थे, पर शत्रु कोई न था।

सब विचारशील देशहितैषी इस बात पर सहमत हैं कि विद्या ही उन्नति का द्वार है और ज्यों ज्यों भारत में विद्या की उन्नति होगी लोगों की आखें खुलेंगीं, इसलिये जितनी ही विद्या ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में सुगमता होगी, उतनी ही भारत की उन्नति में शीघ्रता होगी। अतएव विश्वविद्यालयों के वर्तमान नियमों में संशोधन करानेवाला मनुष्य हमारे धन्यवाद का पात्र है। रानाडे बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट में नीयमानुसार ठीक समय पर बराबर जाते थे, परन्तु बहुतेरे मेम्बरों की तरह सम्मान बढ़ाने की चाह से नहीं वरञ्च देश की सेवा करने के लिये। उनका एक प्रस्ताव यह था कि जो विद्यार्थी बी. ए. की परीक्षा में किसी विषय में फेल हो जावे तो दूसरे वर्ष उसी विषय में ही केवल वह परीक्षा देवे, परन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ।

कांग्रेस के साथ ही साथ इनकी इच्छा थी कि (Industrial Conference) शिल्प-समिति भी हुआ करे और कई वर्ष लों यह हुई भी। कांग्रेस में सरकारी कर्म्मचारी कुछ कार्य्य नहीं कर सकते हैं, सोशल कान्फरेन्स के उद्देश्यों से सब सहमत नहीं हैं, अतएव एक ऐसी महासभा का होना बड़ा लाभदायक है कि जिसमें सरकारी कर्म्मचारी और भिन्न-धर्मावलम्बी एकत्र हो सकें।

पूना में महाराज शिवाजी की समाधि पर एक मेला लगता है। यह मेला इन्हींका चलाया हुआ है। वसन्तऋतु में व्याख्यान होते हैं। इसके भी अधिष्ठाता येही थे। पूना सार्वजनिक सभा, ज्ञानसमाज, डेकेन सभा, डेकेन क्लब, हीराबाग ट्रस्ट, नेटिव जेनरल पुस्तकालय, रे आर्ट प्रदर्शनी और म्यूज़ियम (अजायब घर) इत्यादि इन्हींके उत्साह का परिणाम था। महाराष्ट्र विलेज एजूकेसन सोसाईटी द्वारा ग्रामीण लोगों और विशेष कर नीच जाति के बालकों को शिक्षा प्रदान करने का प्रयत्न, आर्य्यन कालेज और उसकी यूनीयन सभा, हिन्दू विडोज़ होम (विधवा-आश्रम) इत्यादि पूना में इनके कीर्तिस्तम्भ हैं और वे जब लों सद्विचार और उन्नति की प्रेरणा भारतवासियों के चित्त में होगी, स्थायी रहेंगे।

रानाडे के बनाए ग्रन्थ और व्याख्यान

रानाडे के बनाए प्रायः जितने ग्रन्थ हैं वे सब किसी न किसी सभा में पढ़े गए थे। इनके बनाए तीन ग्रन्थों ने अपने समय में पठितसमाज में कुछ कोलाहल सा मचा दिया था। वे ये हैं—महाराष्ट्र इतिहास, इन्डियन इकौनोमिक्स और पेशवाओं की दिनचर्य्या की भूमिका। इनके अतिरिक्त सरकार के अनुरोध से इन्होंने Revenue Manual (मालगुज़ारी की नियमावली) लिखी थी जो सबको पसन्द आई और उसमें बताए हुए नियमानुसार सरकारी कार्य आरम्भ हुआ।

व्याख्यान देने के भी कई ढङ्ग हैं; कोई उमङ्ग में आकर हाथ पटक देते हैं, अपने विरोधियों को जो कुछ चाहते हैं कह बैठते हैं। रानाडे महाशय के व्याख्यानों में ये सब दोष न थे। शान्तिभाव से खड़े होकर वे अपने सिद्धान्तों को प्रगट करते थे। शब्द सब तुले हुए और माधुर्य्य से पूर्ण होते थे। इनके व्याख्यानों के विषय ऐसे होते थे—"मृत्यु क्या है", ईश्वरनिरुपण", "लोहे का व्यापार", "मनुष्य गणना से शिक्षा" इत्यादि। विषय ऐसे गूढ़, कि और विस्तृत होने पर भी उनके विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इनकी सम्मति पूर्ण अनुसन्धान के पश्चात् निश्चित की हुई प्रतीत होती है। इस बात को पायोनीयर पत्र ने भी स्वीकार किया है कि इनकी अंगरेज़ी अत्यन्त ही मधुर और शुद्ध होती थी।

मातृभाषा से प्रेम और उसकी सेवा

हम लिख चुके हैं कि इनकी शिक्षा का आरम्भ मातृभाषा में हुआ और इसी कारण मातृभाषा से प्रेम का अंकुर उसी समय से इनके चित्त में जम गया था। कहते हैं कि बी ए. और एम. ए. इत्यादि परीक्षा समाप्त होने पर और उनके परिणाम प्रकट होने के बीच का समय वे सदैव महाराष्ट्री ग्रन्थों के अवलोकन में व्यतीत करते थे। पूना में वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तु में और अनेकानेक अवसरों पर महाराष्ट्री ही भाषा में व्याख्यान दिया करते थे। कितने ही ग्रन्थ अपनी मातृभाषा में इन्होंने लिख डाले थे। ये तो उनका मातृभाषा से प्रेम हुआ, परन्तु मातृभाषा की एक सेवा उन्होंने ऐसी की कि जो सदैव उनकी कीर्ति का स्मारक रहेगी और जिससे अन्य प्रान्तों के देशहितैषियों को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। सन् १८७० से पूर्व बम्बई विश्वविद्यालय में बी. ए., एम. ए. के विद्यार्थी संस्कृत, फारसी, महाराष्ट्री, गुजराती और कनाड़ी भाषा में परीक्षा दे सकते थे और भारतवर्ष के कतिपय विख्यात सज्जन रानाडे की भांति महाराष्ट्री अथवा गुजराती लेकर बी. ए. पास हुए थे। परन्तु पीछे सन् १८७० में देशी भाषा युनिवर्सिटी परीक्षाओं से निकाल दी गई। यद्यपि सर रेमन्ड वेस्ट और डाक्टर विलसन ऐसे महानुभावों ने देशीभाषाओं का पक्ष लिया था, पर दो तीन सभासदों के अधिक वोट से भाषा के विरोधियों की जय हुई। सन् १८८८ में पुनः इस विषय पर विचार हुआ कि प्रत्येक बी. ए. के विद्यार्थी को निज भाषा का ज्ञान होना चाहिए और एक प्रबन्ध देशीय भाषा में लिखना परीक्षाओं में आवश्यक होना चाहिए। सिनेट ने यह प्रस्ताव फिर अस्वीकार किया और सन् १८९३ में पुनः यह युनिवर्सिटी के सन्मुख उपस्थित किया गया और पुनः इसकी पराजय हुई। पर रानाडे महाशय ने सन् १९०० में पुनः इसपर विवाद छेड़ा और विचारशील पुरुषों की सम्मति अपनी ओर करली। तब युनिवर्सिटी ने इस प्रस्ताव को एक सबकमेटी में विचारार्थ उपस्थित किया। विरोधी लोग यह कहते थे कि देशीभाषा में उपयोगी साहित्य का अभाव है और जो कुछ है भी वह पद्य में है, गद्य के ग्रन्थ बहुत कम हैं। रानाडे महाशय ने एक बड़े सारगर्भित व्याख्यान में यह कहा कि जिस दोष के कारण मरहट्टी और गुजराती युनिवर्सिटी में जारी नहीं की जाती वह दोष संस्कृत साहित्य में भी वर्तमान है, अर्थात् गद्य के ग्रन्थों की न्यूनता। इसके साथ ही इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि देशी भाषा का साहित्य भी ऐसा ही उपयोगी है कि जैसा संस्कृत का। उन्होंने ऐसी पुस्तकों की सूची दी कि जो एम. ए. तक पढ़ाई जासकें। विरोधियों का मुखमर्दन हुआ और रानाडे की जय हुई, पर काल ने उनको इसका सुख न भोगने दिया। अपने प्रयत्न में सफलीभूत होने से एक प्रकार की सन्तोषरूपी प्रसन्नता होती है। यद्यपि रानाडे ३० वर्ष लों इसीपर लड़ते रहे, पर उस अन्तिम सुख से वे वञ्चित रह गए। ता० २९ जनवरी को सिनेट में यह प्रस्ताव अन्तिम विचार के लिये पेश हुआ जिसमें रानाडे महाशय के उत्तराधिकारी (Successor) मिस्टर जस्टिस नारायण गोविन्द चन्द्रवरकर ने एक व्याख्यान में देशीभाषाओं की कालेजों के उच्च श्रेणी में पढ़ाने की आवश्यकता दिखाई। यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया। केवल तीन ही सभासदों ने विरोध किया। पाठकवृन्द! विशेषकर पश्चिमोत्तरदेश निवासी सज्जन! क्या आपके चित्त में यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती कि इस प्रान्त में भी एक रानाडे ऐसे सज्जन उत्पन्न हों और अंग्रेज़ी शिक्षा पानेवालों की रुचि हिन्दी भाषा और साहित्य की ओर आकर्षित करें। जब लों कालेजों में भाषा की शिक्षा देने का प्रबन्ध, जैसा बम्बई में हुआ है, न होगा, अंग्रेज़ी शिक्षित मण्डली में हिन्दी साहित्य के प्रेमी बिरले ही मिलेंगे। वर्तमान लेफ्टिनेण्ट गवर्नर की कृपा से हिन्दी पुस्तकों का अनुसन्धान काशी नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा हो रहा है और इसकी पूर्ण आशा है कि बहुत से परमोपयोगी, ग्रन्थ जो अब लों दबे पड़े थे, प्रकाशित किए जांयगे। अब एक ऐसे महानुभाव की आवश्यकता है जो युनिवर्सिटी में इस विषय पर विवाद छेड़ें कि क्यों देशी भाषा भी संस्कृत के नांई एम. ए. तक न पढ़ाई जाय, जब कि उचित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

स्वभाव और चरित्र

हम लिख चुके हैं कि रानाडे महाशय समाजसंशोधक थे। पर तनिक विचार कीजिए कि जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष प्रचलित व्यवहारों में परिवर्तन करे, वह ऐसा सर्वमान्य और सर्वप्रिय कैसे हो सकता है कि उनको मृत्यु का समाचार सुनकर बाज़ार तक बन्द हो जांय। तिलक ऐसे सनातन धर्म्मावलम्बी सर्वसाधारण के सन्मुख फूट फूट कर रोएं। इसका एकमात्र कारण उनका सद्स्वभाव और सच्चरित्र था। उन्होंने अपने जीवन में किसी-को कटु बचन नहीं कहा। वह कहा करते थे कि लोगों को यह कहने से क्या लाभ कि तुम बुरे हो, किसी गौं के नहीं, और तुम से किसी प्रकार के सत्कार्य्य की आशा नहीं; यदि मनुष्यों को इस संसार का यथार्थ आशय समझना है कि जिसमें वे रहते हैं, तो उनमें इस बात का ज्ञान उत्पन्न करो कि जिससे वे अपनी गुप्त मर्य्यादा का प्रमाण पा सकें। लोगों को आश्चर्य्य होता है कि रानाडे महाशय "प्रार्थनासमाज" के सभासद होने पर भी कभी कभी मन्दिरों में पुराणों की कथा सुनने अथवा उनके रूपकयुक्त गूढ़ मर्मों को समझने चले जाते और कभी आर्य्यसमाज में जाकर व्याख्यान दे आते। स्वामी दयानन्द के बम्बई जाने पर उन्होंने स्वामी जी का बड़ा सत्कार किया था और स्वामी जी ने भी उनको अन्तरङ्ग सभा का सभासद नियत किया था। उनका अन्तिम संस्कार (दाहक्रिया) सनातन धर्म्मानुसार किया गया। किसी प्रकार का परिवर्त्तन लोगों के चित्त को दुखाकर करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। समाज-संशोधकों के कर्तव्यों को उन्होंने एक व्याख्यान में यों दिखलाया था—"संशोधन करनेहारों को कोरी स्लेट पर लिखना आरम्भ नहीं करना है। बहुधा उनका कार्य्य यही है कि अर्द्धलिखित वाक्य को पूर्ण करें। वे जो कुछ उत्पन्न किया चाहते हों अपने अभिलषित स्थान (goal) पर तभी पहुंच सकते हैं, जब कि वह जो कुछ प्राचीन काल में सत्य ठहराया गया है, उसे सत्य मानलें और बहाव में कभी यहां और कभी वहां धीमा सा घुमाव दे दें, न कि उसमें बांध बांधें, अथवा उसको किसी नूतन श्रोत की ओर बरबस ले जांय।

उनको पुस्तकावलोकन की बड़ी चाह थी। उपनिषद् उनके प्रिय ग्रन्थ थे। वेदान्त के गूढ़ विषयों को वे अधिक मनन किया करते थे। यद्यपि उनके व्याख्यान लम्बे होते थे और वक्ता भी अच्छे थे, पर साधारणतः वह बहुत कम बोलते थे। दस पन्द्रह मनुष्यों में बैठकर हंसी ठिठोली करना अथवा व्यर्थ विषयों पर बात चीत करना उनको आता ही न था। चाल उनकी ऐसी सादी थी कि एक समय डाक्टर निशिकान्त चटरजी ने, जो कई वर्ष लों रूस की राजधानी सेन्टपीटर्स्‌वर्ग में प्रधान अध्यापक रह चुके हैं, उनको गृहपर कन्टोप और मिरजई पहिने देखकर कहा था कि यदि कोई अंगरेज़ इनको इस समय देखले तो नाटक का विदूषक समझेगा। अभिमान लेशमात्र भी उनको न था। २०० विद्यार्थी उनकी सहायता से विद्याध्ययन करते थे। उनका बहुत सा धन ऐसेही सुकार्य्य में व्यय होता था। यदि उनकी मृत्यु ऐसी अचानचक न होती तो वह कोई स्थाई प्रवन्ध बसीयतनामे द्वारा कर जाते जिससे देश का कुछ उपकार होता। पर भारतवर्ष में कई एक विख्यात देशहितैषियों के कुछ न लिख जाने से देश को बहुत हानि हुई है। मनमोहन घोष ने "My will, My will" कहते हुए प्राण त्यागे थे। यह बड़े राजभक्त थे। ईश्वर को भी यही स्वीकार था कि यह अन्त समय तक राजभक्त बने रहें। महारानी राजराजेश्वरी की मृत्यु के पूर्व इनका शरीर छूटा। अपनी प्रिय महारानी की मृत्यु का समाचार सुनना भी इनको प्रिय न था।

मन्द्राज में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के अनुरोध से इनका स्मारक बनाने की बात चीत हो रही है। मन्द्राजी सज्जन अवश्य अपने उद्देश्य को पूरा कर डालेंगे, पर खेद की बात है कि बम्बई वाले अभी लों कुछ ठीक नहीं कर रहे हैं। गत कानवोकेशन (Convocation) में लार्ड नार्थकोट ने रानाडे की बड़ी प्रशंसा की। इससे आशा है कि बम्बई वाले यदि यथार्थ में सो गए हों, या महारानी के स्मारक के प्रस्ताव में अत्यन्त लीन हों जो बहुत ही आवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उत्तम विचार है, तो इस ओर भी ध्यान देंगे और लार्ड नार्थकोट का उनकी प्रशंसा करना मानो इस बात को याद दिलाना है कि हे बम्बई-निवासी! अपने विश्वविद्यालय में कोई वृत्ति रानाडे के नाम पर खोलो। जिस रानाडे की यह अभिलाषा थी कि ताता की शिल्प-पाठशाला के लिये सारे भारतवर्ष में छुट्टी लेकर भीख मांगे उनके लिये बम्बई निवासियों को चन्दा देने में क्या आगा पीछा हो सकता है।

पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०

अजण्टा की गुफाओं की चित्रावली

अजण्टा कहां है यह भी बहुत से लोग नहीं जानते होंगे, और वहां की गुफाओं में चित्र कहां से आए इसके लिये भी बहुत से लोगों ने चिन्ता नहीं की होगी। ग्रेट इण्डियन पेनिन्सुलर रेलवे पर एक पचोरा नाम स्टेशन है। वहां से तीस मील की दूरी पर फर्दापुर नाम का एक गांव बसा है। अजण्टा की गुफाएं फर्दापुर से साढ़े तीन मील पर हैं। गुफाओं से अजण्टा नाम का गांव ४ मील है। ये गुफाएं एक छोटी सी पहाड़ी की घाटी में बनी हुई हैं और उनके भीतर जो चित्र लिखे हैं उन्हींका वर्णन आज आपकी भेट किया जाता है।

पूर्व काल में बौद्ध लोग अपने पवित्र जीवन को सांसारिक झगड़ों से अलग और एकान्त में व्यतीत करने के लिये निराले और निर्जन गुफा कन्दरें खोज खोज कर उन्हींमें वास किया करते थे। ये गुफाएं प्रायः जल और दूसरे आवश्यकीय सामग्रियों के समीप हुआ करती थीं और कभी कभी तो वे पर्वतों में बनी हुई मिल जाती थीं और कभी कभी मनुष्य भी उन्हें खोद कर वा तोड़ फोड़ कर बड़ी बड़ी और अपने निवास के उपयोगी बना लेते थे।

भारतवर्ष की बहुतेरी ऐसी गुफाओं के आस पास की प्राकृतिक शोभा बड़ी अपूर्व है। परन्तु स्वाभाविक शोभा और एकान्तपन में अजण्टा के साथ और किसीकी भी तुलना नहीं हो सकती। स्वाभाविक शोभा से बौद्ध लोगों के धर्म्मजीवन का बड़ा गहरा सम्बन्ध था। जो लोग ध्यानपरायण हो उन्नत जीवन लाभ के प्रयासी होते थे, उनके लिये तो जलप्रवाह की उच्च वा मृदु ध्वनि, मन्द मन्द पवन के स्पर्श से वृक्ष-पत्रों का सर सर शब्द, आकाश-मार्ग में मेघमालाओं का इधर उधर संचरण, वृक्ष-लतादिकों का रहस्यमय जन्म और उनकी वृद्धि, अरण्यचारी जीवसमूहों का विचित्र जीवन, ये सब शाक्यसिंह वर्णित महाधर्म्म के स्तोत्र पाठ के समान प्रतीत होते थे।

पत्थर काट कर जो मन्दिर वा गृह बनाए जाते हैं वेही सबसे अधिक काल स्थायी और रहने के उपयोगी होते हैं। परन्तु जान पड़ता है कि बौद्धलोग केवल स्थायित्व ही के लिये खोद कर गुफा नहीं बनाते थे; बुद्धदेव और उनके चेले देशाटन के समय स्वाभाविक गुफाओं में जाकर ठहरते थे, इसी विचार से बौद्धलोग गुफा बनाने में इतना आग्रह और उत्साह दिखाते थे। इस प्रकार के चैत्य, विहार वा संघाराम का वर्णन यहां पर निष्प्रयोजन है। भिक्षुकों के लिये वर्षा-ऋतु में देशाटन निषिद्ध था। वे लोग पहिले इन गुफाओं में बर्सात काटने के लिये ठहरते थे अथवा गरमियों के दिनों में ठण्ढी जगहों का सुख उठाने के लिये—यह निश्चय करना कठिन है। अजण्टा की गुफाएं पहिले मनुष्यों के लिये पूर्णतया उपयोगी थीं। उनकी छतों से जल नहीं चूता था। बर्सात में बाढ़ का जल गुफाओं के बहुत नीचे रहता है। अब भी जिस समय कि कठिन गरमियों के दिनों में फर्दापुर में १०६ डिग्री की गरमी होती है, उस समय इन गुफाओं के भीतर बड़ी सुखदायक ठण्ढक बनी रहती है। वर्षाऋतु में जब चारों ओर हरियाली छा जाती है और वृक्ष-लतादिक, पत्र पुष्पों से सुशोभित होते हैं, उस समय इस पर्वत की शोभा देखते ही बन आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुफाओं के पासही एक जलप्रपात है। वह एक सीढ़ी पर से दूसरी पर कूदता हुआ इसी भांति सात स्वाभाविक सीढ़ियों और उनके नीचेवाले जलाशयों को लांघता हुआ बह रहा है। इसलिये उसका नाम सातकुण्ड है। सबसे नीचे वाले कुण्ड में बारहों महीने जल रहता है। सम्भव है कि गुहावासी यतिओं ने इसी जलाशय के निकट रहने ही से यहां पर गुफाएं बनाई हों। अब वहां कोई नहीं रहता और वे जनशून्य हो खाली पड़ी हैं। केवल मकरसंक्रान्ति के दिन वहां एक धूमधाम का मेला लगता है और लोग कुण्ड के पवित्र जल में स्नान कर आते हैं।

गुफा से आपलोग यह न समझें कि वे छोटी छोटी कन्दराएं हैं। एक एक गुफा एक एक महल के समान है। ऐसी २९ गुफाएं अजण्टा में हैं। दृष्टान्त स्वरूप यहां पर कहदेते हैं कि चौथी गुफा के द्वार से भीतरी शेष भीत तक १०० हाथ की चौड़ाई है। दो एक गुफा दोखनी भी हैं। गुफाओं की भीतों, द्वार, खंभों और छत्तों में भांति भांति के चित्र, मूर्त्ति, फूल, पत्तियां, इत्यादि चित्रित और खुदे हुए हैं। बहुत सी गुफाओं की भीतों में खुदे हुए शिलालेख भी पाए जाते हैं। जान पड़ता है कि ईसवी दूसरी से सातवीं वा आठवीं शताब्दि के भीतर ये गुफाएं निर्म्मित हुई होंगीं। कहीं कहीं उजाला तक नहीं पहुंचता, इससे जान पड़ता है कि वहां के चित्र कृत्रिम प्रकाश की सहायता ही से चित्रित हुए थे। यहां लोग दिया जलाकर पूजा अर्च्चण करते होंगे। भारतवर्ष की गरमी प्रसिद्ध है, तिसपर ऐसे स्थान में जिन लोगों ने ये चित्र लिखे थे, उनके धीरज और निपुणता पर विचार कीजिए। इस लेख में हम खोदे हुए चित्रों का वर्णन नहीं कर सकते, लिखे हुए चित्रों ही की कथा संक्षेप में लिखते हैं। इस समय इन चित्रों की दशा बहुत बुरी हो रही है, कोई भी सम्पूर्ण नहीं है। कहीं चूना गिर गया है, कहीं रङ्ग फीका पड़ गया है, और कहीं कहीं जहां तक मनुष्य के हाथ पहुंचे हैं, किसी किसी दुष्ट ने लकड़ी आदि से चित्रों को छील कर बिगाड़ दिया है और चमगीदड़ों और मधुमक्खियों के वहां अपना रामराज्य स्थापित करने तथा छत्त फटकर बरसात के जल गिरने से भी अनेक चित्रों की श्री भ्रष्ट हो गई है। इन्हीं चित्रों में से बहुतों की ठीक ठीक नकल नाना प्रकार के रङ्गों में गवर्नमेंन्ट ने (Canvas पर) करवाई थी। उन्हींसे फिर कई चित्र रङ्गीन और बहुत से काले स्याही में पुस्तकाकार छपे हैं। हमने उन्हीं छपे हुए चित्रों में से कई एक का फोटो लेकर उनकी यह चौथी नकल यहां पर प्रकाशित की है। इसलिये पाठक समझ सकते हैं कि ये गुफा के आदि चित्रों के आभासमात्र हैं, ठीक ठीक उनका अनुकरण करना असम्भव है। बड़े बड़े युरोपीय चित्रकारों ने इनकी प्रशंसा की है और कहा है कि वे चित्रकार चित्रविद्या में विशेष कुशल थे।

बौद्धों की बात स्मरण करने पर केवल त्यागी लोगों की मृदु और शान्त कर्म्मविमुखता ही ध्यान दौड़ता है। परन्तु अजण्टा की गुहाचित्रावली से उनके अनेक गुणों का परिचय भी हमें मिलता है। यदि चित्रों की सुन्दरता को छोड़ दें तो उनसे हमें अनेक शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। इन चित्रों के देखने से बौद्धधर्म के विकाश की आलोचना हम कर सकते हैं। बहुत से चित्रों में बुद्ध मानव आराध्य देवता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। परन्तु ऐसे चित्र भी बहुत हैं जहां और दस मनुष्यों से मिलकर वे संसार में विचरण करते देख पड़ते हैं। उनका जन्म, बाललीला, विद्याशिक्षा, गृहत्याग, मार (बौद्धपुराण में वर्णित शयतान) द्वारा परीक्षा, नानास्थानों में नानाप्रकार से धर्म्मप्रचार, निर्वाण लाभ, इत्यादि उनके जीवन की अनेक घटनाएं और उनके कार्य्य इन चित्रों से अंकित हैं। ये चित्र कहीं तो बुद्ध के प्रचलित जीवनचरित के वर्णित वृत्तान्तों का समर्थन करते हैं, कहीं उन वृत्तान्तों के दुर्बोध अंश को सुगम बनाते हैं और कहीं जीवनचरित में जो घटना नहीं वर्णित हैं उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान हमको दिलाते हैं। बौद्धमत के अनुसार जीवात्मा जन्म जन्मान्तर में नाना भांति के जीव-देहों को धारण करता है। बुद्धदेव ने भी ऐसा ही किया था। चित्रों में उनके विवरण भी मिलते हैं।

केवल यही नहीं। पर राजा लोगों का जन्म, सिंहासनारोहण और उनकी मृत्यु की तिथि, युद्धादिकों का वृत्तान्त, भिन्न भिन्न राजवंशों का उन्नत होना और फिर गिरना—ये सब इतिहास के अस्थिपञ्जर भी उनमें विद्यमान हैं। इतिहास को सजीव करने के लिये इन्हें छोड़ और बातों का भी प्रयोजन उनसे निकलता है। और वे बातें ऐसी होनी चाहिएं कि उनको सहायता से भूतकाल को कल्पना के द्वारा मानसिक नेत्रों के सामने उपस्थित कर सकें। पूर्वकाल में स्त्री पुरुष क्या खाते थे, कैसे वस्त्र आभूषण पहिरते थे, किस प्रकार से प्रेमालाप, झगड़ा, रसोई, इत्यादि करते थे, और लेन देन, आखेट, नाच और गाना बजाना [चित्र २] उनका कैसे होता था, वे क्या क्या वस्तुएं बना सकते थे, शिल्प में उनकी उन्नति कहां तक पहुंची थी, उनका सामाजिक और धर्म्मसम्बन्धी विश्वास कैसा था, युद्धविग्रह और वाणिज्य किस प्रकार से होते थे, अस्त्र शस्त्र और गृहों की सजावट कैसी थी, विदेश से उनका सम्बन्ध कहां तक था, इत्यादि विषय यदि जान सकें तो हम लोगों को अपने पुराने दिनों का ज्ञान स्पष्ट हो सकता है। अजण्टा की गुहा-चित्रावली की सहायता से ऐसे अनेक विषयों का ज्ञान हमको प्राप्त होता है। यक्ष रक्ष गन्धर्वादिकों के विषय में उस समय लोगों के विचार कैसे थे यह भी हमें इनसे जान पड़ता है। यहां पर एक गन्धर्वों के जोड़े का चित्र दिया जाता है। [चित्र ४] गन्धर्वों का मुख मनुष्यों की भांति और शरीर पक्षियों का सा था। किन्नर लोगों की आकृति मनुष्यों के समान परन्तु मुख घोड़ों का सा था। राक्षस लोग शून्यमार्ग में विचरण कर सकते थे। उनके मुख के दोनों ओर से सूअर की भांति दो दांत निकले रहते थे [चित्र १—राक्षसी]। देखिए एक पुजारी कैसी एकाग्रता से हाथ जोड़ कर आराधना कर रहा है [चित्र ३] और उसका चित्र कैसा सजीव खींचा गया है। फ़र्गुसन साहब ने कहा है कि "अजण्टा के चित्र सराहने योग्य हैं; उनको देख हमें ज्ञान हुआ कि भारतवासी यद्यपि आज कल के युरोपीय चित्रकरों से बढ़कर चित्र खींचना नहीं जानते हैं, तो भी एक समय ऐसा था जब वे इस विद्या में बड़े पारदर्शी थे, और अपने समय के युरोपीय कारीगरों से कहीं बढ़ चढ़ कर थे।"

युरोपीय दृष्टि में इन चित्रों में त्रुटियां भी दिखाई गई हैं। हमारे देश में बड़ी बड़ी आंखों का आदर चिरकाल से है, परन्तु आयत-लोचनाओं के नेत्र वास्तव में ऐसे बड़े नहीं होते थे कि वे कान तक लम्बे हों। यह दोष इन चित्रों में अवश्य है। इसी प्रकार यद्यपि पीनपयोधर और गुरु नितम्ब की प्रशंसा सब कवियों ने की है, तो भी इन चित्रों में प्रायः वे असम्भव रूप से चित्रित हुए हैं। परन्तु स्त्री पुरुषों के देह चित्रण में तथा अन्य विषयों में पुराने चित्रकरों ने अद्भुत निपुणता दिखाई है। अंगुलियों का भाव इतने प्रकार से दिखाया है कि वह वर्णनातीत है। विनती, क्रोध, आदर आदि भिन्न भिन्न विकारों के लिये भिन्न भिन्न भाव हैं। स्त्रियां बहुधा वस्त्रहीन चित्रित हुई हैं, अथवा उन्हें इस प्रकार के वस्त्र पहिराए हैं कि जिससे उनके देह की गठन भली भांति समझ में आ सके। दासियों के वस्त्र चित्रित हैं, परन्तु रानी और बड़ी बड़ी कुलवतियां इतने सूक्ष्म वस्त्र पहिरे हुए हैं कि उनके शरीर पर वस्त्र दिखाई तक नहीं देते। परन्तु इससे कोई यह न विचारे कि चित्र अश्लील हैं। हिन्दू और बौद्धमात्र कमर में धोती लपेटे हुए हैं। स्त्रियां भी प्रायः ऐसे ही वेष में दिखाई देती हैं। परन्तु कोई कोई साड़ी भी पहिरे हैं। स्त्री पुरुष सब काछ लगा कर वस्त्र पहिरे हैं। राजा प्रजा सबका यही वेष है। जो जङ्गली लोग चित्रित हैं वे प्रायः भील गोंडों से मिलते जुलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागों की आकृति मनुष्य के समान है। परन्तु भेद इतना ही है कि गर्दन से ५ वा ७ सर्प निकलकर सिर पर फणविस्तार किए हुए हैं। किन्तु नागिनियां एकही फण रखती थीं। जलवासिनी नागिनियों को सर्प के समान पूंछ होती थी [चित्र ६]। किसी किसी के मुख का भाव बड़ा सुन्दर है। कोई हाथ जोड़ कर उपासना कर रहा है। कोई स्त्री प्रेमास्पद के चरणों के समीप बैठ कर मानो विषम विषादमय हृदय की व्यथा सुन्दर अंगुलियाँ हिलाकर और कुछ आंखें ऊपर की ओर उठाकर कह रही है [चित्र ५]।

बौद्धलोगों का मत था कि जीव भिन्न भिन्न जन्म में भिन्न भिन्न प्राणियों का शरीर धारण करता है, इसलिये सब प्रकार के प्राणियों के चित्र भी बहुत सुन्दर बने हैं। अजण्टा के हाथी बड़े सुन्दर हैं। ऐसा सुनने में आता है कि बुद्ध की माता मायादेवी जब गर्भवती हुईं, तो उन्होंने स्वप्न में देखा था कि एक श्वेतकाय हाथी उनका पेट फाड़कर उसमें घुस रहा है। सम्भव है कि इसीलिये हाथी का इतना आदर बौद्धों में था। फिर भैंसों के चित्र

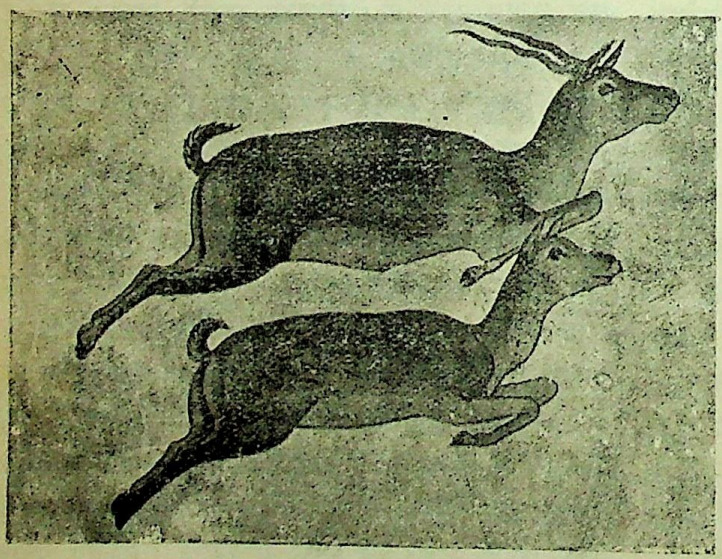

अनेक हैं। घोड़े भी बहुत हैं। उनकी गरदन और पूंछ के बाल बड़ी सुघरता से कटे हुए हैं। घोड़ों के साज नाना भांति के हैं, पर रकाब कहीं नहीं दिखाई देती। पैरों में कड़े घुङ्गरू आदि गहने देख पड़ते हैं। हरिण के चित्र भी बहुत अच्छे हैं। उस समय लोग मृगया करना बहुत चाहते थे, यहां तक कि क्या राजा क्या प्रजा, सभी हरिणों को गाड़ी पर चढ़ा उन्हें किसी मैदान में ले जाकर छोड़ देते थे और उनके पीछे पीछे शिकारी कुत्ते दौड़ाया करते थे। इसे छोड़ लोगों को हाथियों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई, तथा मेढ़ों की लड़ाई भी बहुत प्रिय थी। बन्दर के चित्र बड़े विचित्र हैं। उसके आचरण में जो चञ्चलता, जो कौतुक और जो हास्यरंग भरे हुए हैं, अजण्टा के शिल्पियों ने उनका अच्छा चित्र खींचा है। बनैलों में सिंह ही प्रधान है। बाघ प्रायः है ही नहीं। जान पड़ता है कि उस समय पश्चिम भारत में सिंह बहुत थे। अब थोड़े बहुत सिंह केवल गुजरात में दिखाई देते हैं। ऊंट का केवल एक ही चित्र है। हंस, मोर, चील, गृद्ध, कौआ, कबूतर, तोता, उल्लू आदि के चित्र भी अनेक हैं। संपेरे सांप खेला रहे हैं, मोर कहीं सांप पकड़ रहे हैं। सांड़ों के कान लम्बाई में सम्पूर्ण चिरे हुए देख पड़ते हैं। अस्त्र शस्त्रों में ढाल, तलवार, बर्छा, परशु, वज्र, तुणीर, चक्र, गदा, धनुष, भाला आदि हैं। नेपाली खुखरी की भांति बहुत सी तलवारों के टेढ़े भाग पर धार चढ़ी हुई है। लम्बी तलवारें भी हैं। झंडा युद्ध के धूम धाम का एक प्रधान अंग था। छाता बांस का बनता था। तीन प्रकार के पंखे होते थे, वे तो आजकल देख पड़ते हैं। वाद्ययन्त्रों में तूरी, सारंगी नहीं देख पड़तीं। शंख, वंशी, वीणा, इकतारा, ढोल, मृदङ्ग, खँजरी आदि देख पड़ते हैं।

वस्त्र का कुछ वर्णन पहिले कर चुके हैं। बुद्ध देव के सब चित्रों में उनके बांए कन्धे पर चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख पड़ती है। उपासक सब धोती पहिरे हैं। एक चित्र में राजा दूसरे पुलिकेशी की सभा में पारस के राजा दूसरे खुसरो का दूत आया है। वहां यह पुलिकेशी सातवीं शताब्दि में महाराष्ट्र देश पर राज्य करता था। पुलिकेशी सभा में बैठे हैं। सभी छोटी धोती पहिरे हैं, जो घुटनों के नीचे तक नहीं पहुंची है, और सारा शरीर खुला हुआ है। सिंहासन का पृष्ठभाग मणि-माणिक्य से शोभित है। महल के भीतर भी राजा उस छोटी धोती को छोड़ और कुछ नहीं पहिरते थे। परन्तु नौकरों की देह पर फतुई रहती थी। स्त्रियां चोली पहिरती थीं। कहीं कहीं चोली तक नहीं रहती थी. केवल एक फीते से दोनों स्तन खींचकर बांधे रहती थीं। राजा के मस्तक पर रत्न-निर्म्मित मुकुट रहता था। श्रमण अर्थात् भिखारी और सेना सब सिरखुले रहते थे। परदेशी लोगों के सिर पर टोप और टोपियाँ भी चित्रित हैं। आभूषण स्त्री पुरुष दोनों बहुतायत से पहिरते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्राचीन चित्र-विद्या ने बहुत उन्नति पाई थी, परन्तु अब लेख विस्तार के भय से केवल और दो चित्र देकर हम लेख को समाप्त करते हैं। एक में बुद्धदेव ध्यानावस्थित बैठे हैं, और मार अपनी सेना लेकर उन्हें डरा रहा है। कोई भ्रम दिला रहा है, कोई लोभ दिखा रहा है और कोई उनकी भोग लालसा बढ़ाने की चेष्टा में तत्पर हैं। दानव और राक्षसों की मूर्त्तियां भी नाना भांति की हैं। किसीका मुख वराह के समान है। किसीके मुख से सर्प निकल रहा है। परन्तु सब चेष्टा वृथा हुई हैं। बुद्धदेव न माया में फँसते हैं, और न प्रलोभन में पड़ते हैं। वे अटल निश्चल प्रशान्त रूप से बैठे हुए हैं। यह देख कर मार स्वयं पराजित होकर चित्र की बांई ओर से भागा जाता है। इस चित्र में पाठक देखेंगे कि बहुत स्थानों में भीत पर के रंग उचट गए हैं और इसीसे चित्र स्पष्ट नहीं देख पड़ता। [चित्र ७]

दूसरे चित्र [चित्र ८] में एक राजा के राज्याभिषेक के समय उसके महल के बहिर्भाग का दृश्य चित्रित है। इसमें दो स्त्रियां थाल में बालकों के कटे हुए सिर लिए किसी सन्यासी को दिखा रही हैं और सन्यासी मस्तकों की ओर देख कर अभिषेक की कोई क्रिया कर रहा है। इस चित्र का भेद नहीं जान पड़ता। सम्भव है कि अभिषेक के समय पूर्वकाल में राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान होता होगा और पशुबलि के स्थान में नरबलि दी जाती हो।

ला० पार्वतीनंदन

वीसलदेव रासा

सन् १९०० ई० में हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का अनुसन्धान करते करते मुझे जयपुर में वीसलदेव रासा नामक एक अति प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ। यह साढ़े आठ इञ्च लम्बे और आठ इञ्च चौड़े देशी काग़ज़ के पन्नों पर कुछ मारवाड़ी से मिलते हुए नागरी अक्षरों में लिखा हुआ है। सब मिलकर बत्तीस पृष्ठ हैं और श्लोक-संख्या लगभग ६२४ के है। देखने में यह जीर्ण और लिखावट इसकी प्रायः अशुद्ध है। इस समय यह ग्रन्थ विद्याप्रचारिणी जैन-सभा, जयपुर, के अधिकार में है। मैंने इस ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ का फोटो और समस्त ग्रन्थ की नकल लेली है। आशा है कि यह टिप्पणी सहित "नागरीप्रचारिणी-ग्रन्थमाला" में प्रकाशित हो। इस लेख द्वारा इस ग्रन्थ के विषय में जो मेरे सिद्धान्त हैं, उन्हें मैं कृतविद्य लोगों के सन्मुख उपस्थित करके आशा करता हूं कि वे लोग इसपर पूर्ण विचार करेंगे। परन्तु इस ग्रन्थ सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार करने के पूर्व यह उचित होगा कि इसका सारांश दे दिया जाय। इसलिये पहिले उसे लिखकर तब मैं अपना मत दूंगा।

वीसलदेव रासे की कथा का सारांश

कवि नरपति नाल्ह पहिले सरस्वती की और फिर गणेश की बन्दना करके वीसलदेव रासे को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ करता है। धार नामक एक नगर है और वहां का राजा भोज परवार है, जिसके अस्सी सहस्र हाथी और पांच अक्षौहिणी सेना है। भोज की राजमती नाम की बेटी अत्यन्त रूपवती थी, जिसने बालपन ही में शिव की तपस्या की थी। उसके स्यानी होने पर एक दिन रानी ने राजा से उसके बिवाह की चर्चा की, जिसे सुन राजा ने पांडे और ज्योतिषी को पत्रा (पञ्चाङ्ग) लेकर बुलवाया। निदान शुभ मुहूर्त दिखलाकर राजमती के उपयुक्त बर ढूंढ़ने के लिये राजा ने चारों खंडों में पुरोहितों को भेजा। पांडे ने जैसलमेर, अयोध्या और दिल्ली (ढिल्ली) देखी, तथा मथुरा के मण्डनराय को भी देखा, पर कोई उसके मन न आया। तब वीसलराय को देखा और उसको राजमती का वर स्थिर किया; जिस पर राजा (भोज) ने सुपारी, लगन लेकर पांडे को अजमेर भेजा कि चौरी पर बैठा कर वीसलदेव का पैर परवाल आवे। इस आज्ञा को पाकर पांडे और प्रधान अजमेर गए और राजा की जुहार करके और माणिक्य मोती से चौक पूरा कर उन्होंने उसका पैर पखाला और राजमती का सम्बन्ध उसके साथ करलिया। यह समाचार अजमेर नगर में फैल गया और घर घर मङ्गलाचार होने लगे, क्योंकि पवार जाति की कन्या के आने से चहुवानों की वंश-मर्य्यादा अत्यन्त बढ़गई। फिर वीसलदेव ने सोना आदि धन तथा पान देकर पांडे का सत्कार किया और उसने लौट कर राजा भोज को सब शुभ समाचार कह सुनाए। इसके अनन्तर वीसलदेव ने खण्ड खण्ड के सब मिला कर चौरासी राजाओं को नेवता भेजा। नेवते में रोली चन्दन और पके हुए पान भेजे गए। सब निमंत्रित राजाओं के एकत्रित होने पर गणेश का पूजन करके वीसलदेव व्याहने चला। उस समय आकाश में देवतागण कौतुक देखने आए और अप्सरागण राई नोन उतारने लगीं। वीसलदेव के साथ आठ सहस्र नेजाधनी (बर्छीबरदार), पचास सहस्र मनुष्य पालकी पर, डेढ़ सौ हाथी और अस्सी सहस्र रथ, जिनपर ध्वजा फहराती थीं, चले। प्रयाण के समय पांच सखियां कलशों पर मोती के अक्षत, कुमकुम, चन्दन और पके पान अमली समली (?) रखकर वीसलदेव की आरती उतार मङ्गलाचार करने लगीं, ब्राह्मण वेद पुराण पढ़ने लगे और स्त्रियां मङ्गलगीत गाने लगीं। उस समय राजा ने पैर में कङ्कण और सिर पर मौर बांधा। पुरपाटन से चलकर वीसलपूर में ठहरते हुए राजा ने धार के निकट पहुंच कर डेरा डाला, जिसपर मलागिरि देश में बड़ा उत्सव हुआ। आठ सहस्र ब्राह्मण उस उत्सव में वेदोच्चारण करते थे। दोनों ओर से लड्डू, सेव, रायभोग (मोहन भोग (?), मंडोवर (?), मूंग आदि से ब्राह्मण तृप्त किए जाते थे। फिर माघ पण्डित की आज्ञा से बारात आगे चली। खुरासानी घोड़े पर चढ़ कर वीरमदेव (वीलनदेव) राजा भोज से मिला। इसके अनन्तर माघ पण्डित ने कहा हथलेवा आवे। राजकुमारी के वरमाल डालने पर माश्रम (?) जोशी, देश्रम (?) व्यास, माथइ (?) बंदिजन और कवि कालिदास वेदोच्चार करने लगे। कन्या दान होने पर अत्यन्त मङ्गल मनाया गया, क्योंकि पँवार की बेटी पा चहुवान कृतकृत्य हुए। पहिली फेरी में राजा भोज ने सोने की चौरी और मोती की माला दी, दूसरी फेरी में बहुत सा धन दिया, तीसरी फेरी में सैंभर नगर, टोंक और मांडलगढ़ दिया, चौथी फेरी में वीसलदेव ने चित्तौर मांगा। भोज ने कहा "संभरीराय, मुझपर कृपा करो। उज्जैन मांगो, चन्देरी मांगो, अयोध्या मांगो, जो मांगो सो दूं, पर चित्तौर तो स्वर्ग के देवताओं को भी दुर्लभ है"। इसपर राजमती ने पिता से कहा कि आप तो लङ्का के भी स्वामी हैं, चित्तौर पर इतना स्नेह क्यों करते हैं ? भोज ने कहा, बेटी उसके लिये मैं बोल दे चुका हूं, उसका आग्रह न कर। निदान सेना, घोड़े, सवत्सा गाय आदि बहुत कुछ देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह होगया और वीसलदेव अपनी सास से विदा हो राजमती को अपने साथ हाथी पर बैठाए अजमेर की ओर चला। मार्ग में उसने आना सागर पर स्त्रियों को पानी भरते देखा। राजप्रासाद में पहुंचने पर व्यास ने राजा को आसीस दी की तू धन्य है जो भोज की चौरी चढ़ राजमती को व्याह लाया। नरपति हाथ जोड़ कर कहता है कि तैंतीस कोटि देवताओं की कृपा से राजमती वीसलदेव के स्वयम्वर की कथा वर्णन करता हूं।

(प्रथम खण्ड समाप्त हुआ)

सँभरीराय वीसलदेव को गर्व हुआ कि मेरे बराबर कोई नहीं है, जिसपर उसकी जैसलमेरवाली रानी ने कहा कि स्वामि गर्व न करो। लङ्का के राजा रावण का प्रताप देखो। उसने भी गर्व किया था, पर फल यह हुआ कि बानरों ने लङ्का का ध्वंस कर डाला। गर्व न करो। तुम्हारे ऐसे बहुतेरे राजा हैं। एक उड़ीसा ही का राजा है कि जिसके राज्य में हीरे की खान है। यह सुनकर राजा को क्रोध हो आया। उसने पूछा कि तेरा जन्म तो हुआ है जैसलमेर में और विवाहित हो बारह वर्ष की अवस्था में तू अजमेर आई। तैने उड़ीसा के जगन्नाथ जी का वृत्तान्त कैसे जाना। अपने जन्म का वृत्तान्त कह। उसने कहा कि सुनो, मैं अपने जन्म का वृत्तान्त कहती हूं। मैं पूर्व जन्म में हरिणी रूप में वनखंड में रहती थी और निर्जला एकादशी (ज्येष्ठशुक्ला एकादशी) का व्रत किया करती थी। एक दिन एक अहेरी ने मेरे हृदय में बाण मारा जिससे मैं मरगई। इसके पीछे मेरा जन्म जगन्नाथ जी में हुआ। वहां मृत्यु के समय मेरा ध्यान जगन्नाथ जी के चरणों में लगा रहा, जिसपर भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि वर मांग। मैंने कहा कि पूर्व के देश से मेरा जन्म निवारण कीजिए। इसपर राजा वीसलदेव ने पूछा कि तैंने पूर्व देश को क्यों छोड़ा, वहां तो पाप का प्रवेश भी नहीं है—वहां गङ्गाजी है, गया तीर्थ है, बाराणस (बनारस) है, जिसके दर्शन से पाप कटते हैं। रानी ने उत्तर दिया कि पूर्व के पुरबिया लोग पान फूल की भांति भोग करते हैं और धन के लोलुप तथा कुवाची होते हैं। गढ़ ग्वालियर के लोग अत्यन्त चतुर होते हैं और दक्षिण देश के लोग भोगी होते हैं। अब मेरा जन्म जैसलमेर में हुआ। मैंने आपसा सुन्दर रुपवाला पति पाया, जिसकी साठ रानियां हैं। यह सब सुनकर राजा ने उड़ीसा जाने और वहां के राजा पर चढ़ाई करने का विचार किया। रानी ने बहुत कुछ समझाया पर राजा ने एक न माना; वरन् पुरोहित को बुलाकर प्रस्थान का मुहूर्त पूछा। रानी ने पुरोहित से कह दिया कि एक महीने तक कोई मुहूर्त न देना। उसने भी वैसाही कह दिया कि एक महीने तक दिन अच्छा नहीं है. और सोमवार तेरस के दिन चन्द्रमा अच्छा होगा, उसी दिन जाना। फिर रानी ने बहुत पीछा किया कि मुझे भी साथ लेते चलो। राजमती ने बहुत समझाया, भावज (वीसलदेव के भाई की स्त्री) ने भी बहुत रोका; पर वीसलदेव ने किसीकी भी न सुनी, और मन्त्रियों की सम्मति से राज्य अपने भतीजे कोक (?) को सौंपा और आप धूमधाम से सेना ले दक्षिण की ओर चल पड़ा। साथ में वीरभान, उदयसिंह, अचला चहुवान, भैरव भाट, बत्सराज देवजी, अक्षयराज, अभयचन्द्र, सकतसिंह, नगराज, रायमल्ल, पलाण्यो देव, जगदेव परमार, आदि चौरासी सरदार चले। चलते समय राजा को बड़े अशकुन हुए, पर रानियों को अनेक शुभ सकुन हुए। वीसलदेव, बनास नदी पार होकर उड़ीसा पहुंचा। वहां के राजा देव ने जब यह सुना तो आगे बढ़कर वह उससे मिला और उसका बड़ा सत्कार कर उसे अपना वीर (स्वामी) माना तथा अन्य सरदारों से मिल अपना भाग्य सराहा।

(दूसरा खण्ड समाप्त हुआ)

राजा के वियोग में रानी विलाप करती है और सखिएं समझाती हैं। रानी के बारहों महीनों का दुःख पूर्णतया वर्णन किया गया है। रानी को वियोग में दस बर्ष बीत गए, ग्यारहवें वर्ष उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र देकर पांडे को राजा के पास भेजा। पांडे को मार्ग में सात महीने लगे। निदान उड़ीसा में पहुंच कर उसने राजा को पत्र दिया और रानियों का वियोग वर्णन किया। यह सुनकर वीसलदेव ने देवराज से विदा मांगी और देवराज ने बहुत कुछ राजा के अर्पण किया। चलते समय वीसलदेव देवराज की रानी से मिलने आया। सभों ने मिलकर उसे बहुत समझाया। अन्त में रानी ने कहा कि कुछ दिन और ठहरो। देवराज की दो बहिने हैं, एक गोरी और दूसरी सांवली; उनका तुम्हारे साथ विवाह कर देंगे। वीसलदेव ने कहा कि मेरे साठ रानियां हैं, मैं विवाह नहीं कर सकता। निदान विदा हो वीसलदेव वहां से चला और मार्ग से एक आदमी को चिट्ठी देकर अजमेर भेज दिया कि जिसमें उसके आने का समाचार पहिले ही से राजप्रासाद में विदित हो जाय। समाचार के पहुंचते ही चारो ओर मङ्गलाचार होने लगे। राजा के भतीजे और अन्य सरदारों ने आगे बढ़कर उसकी अगवानी की। घर आकर राजा माता से मिले, रानियों से मिले, पर राजमती ने मान किया और राजा ने मनाया। निदान बारह वर्ष के पीछे दम्पति मिलकर आनन्दमग्न हुए।

(तीसरा खण्ड समाप्त हुआ)

राजा ने दरबार करके अपने भतीजे को यौवराज्य की पाग बंधाई, फिर पुरोहित को राजा भोज के बुलाने के लिये धार भेजा। वीसलदेव के लौट आने का समाचार पाते ही वे सानन्द चित्तौर होते धूमधाम के साथ अजमेर पहुंचे, जिस पर बड़ा आनन्द मनाया गया। राजा भोज वहां कुछ दिन तक ठहरे और लौटते समय राजमती को अपने साथ लिवाते लाए। तीन महीने पीछे वीसलदेव भी धार गए और राजमती को अजमेर ले आए, तथा वहां आकर आनन्द के साथ रहने लगे। कवि नरपति नाल्ह यह आशीर्वाद देकर कि जब तक सूर्य ऊगै, गङ्गा में जल रहे, पृथ्वी पर जगन्नाथ जी रहें, तब तक अजमेर का राज्य अविचल रहे, ग्रन्थ समाप्त करता है *।

यह इस प्राचीन विचित्र ग्रन्थ का सारांश है। ग्रन्थकर्ता का नाम नरपति नाल्ह है। अपने ग्रन्थ के बनाने का समय वह इस प्रकार लिखता है—

समत बारह सै विहोतरां मझार
जेठ वदी नौमी, बुधवार।

गणना करने पर शक संवत् की जेठ वदी नवमी बुधवार को पड़ती है। इससे यह ग्रन्थ ईसवी सन् १२९८ का बना मानना चाहिए। समस्त ग्रन्थ में कवि वर्तमान काल का प्रयोग करता है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि नरपति-नाल्ह वीसलदेव के राजत्व-काल में वर्तमान था, क्योंकि ग्रन्थ की समाप्ति में भी वह लिखता है—

जब लग महीयल उगई सूर।
जब लगि गङ्ग बहई जल पूर॥
जब लग पृथ्वी में जगन्नाथ।
जांणी राजा सिर दीधौ हाथ॥
रास पहूंतो राव कौ
बाजे पड़ह पषावज भेर।
कर जोड़े नरपति कहई
अबचल राज कीज्यौ अजमेर॥ ४०।४१

अब "अबचल राज कीज्यौ अजमेर" का अर्थ यह लगाया जाता है कि "अजमेर का राज्य तुम अविचल (निरन्तर) करो"। यह अर्थ मान लेने पर वीसलदेव को नरपति का समकालीन मानना पड़ेगा। पर ऐसा मानने से वीसलदेव का समय पृथ्वीराज† के १० वर्ष पीछे पड़ेगा और ऐसा होना

* यह सारांश ग्रन्थ पढ़ पढ़कर लिखा गया है। कथा के रोचक बनाने का उद्योग नहीं किया गया। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है। ७०० वर्ष की डिंगल होने के कारण विशेष कठिनता अनुभव करनी पड़ी थी। इसी कारण से यहां की भाषा कुछ अस्त्रंखलाबद्ध सी बोध होती है।

† शहाबुद्दीन महम्मद गोरी के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध सम्वत् १२४८ में हुआ था॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि चन्दकेरासौ तथा अन्य सहस्र ग्रन्थों के अनुसार वीसलदेव पृथ्वीराज से पांच पीढ़ी पहिले सिद्ध होता है। सारङ्गदेव, आनाह, जयपाल, अर्णराज और सोमेश्वरराज, ये पांच नाम वीसलदेव और पृथ्वीराज के बीच में मिलते हैं। आनाह के विषय में तो किसी प्रकार का सन्देह करना सर्वथा वृथा है, क्योंकि अजमेर में उसका बनवाया हुआ "आनासागर" अब तक उसकी स्थिति का साक्षीस्वरूप विद्यमान है। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि यह वह आनासागर नहीं है जहां 'वीसलदेव रासे' के अनुसार वीसलदेव धार से लौटती बेर एक दिन ठहरा था। वह एक प्राकृतिक झील है जो अना अथवा अनापूर्णा देवी के नाम पर बनाई गई और जिसके तीर पर ऐसा कहा जाता है कि वान ऋषि ने प्राचीन समय में बहुत दिनों तक वास किया था।

दिल्ली में फ़िरोजशाह की लाट के नाम से एक बड़ा पत्थर का स्तम्भ फ़िरोजशाह के भग्न किले में अबलों बर्तमान है। इसपर एक लेख खुदा हुआ है जो चार भागों में विभक्त है। पहिले भाग में केवल तीन पंक्तियां हैं और उनमें वीसलदेव का नाम आता है। दूसरे भाग में अशोक की एक आज्ञा प्राली अक्षरों में खुदी हुई है। तीसरे और चौथे भाग में विग्रहराज का उल्लेख है। वीसलदेव के विषय में पहिले भाग में जो लिखा है उसका अनुवाद यह है—"ओं—संवत् १२२० वैशाष शुक्ल १५ को शाकम्भरी भूपति अविल्लदेव के पुत्र वीसलदेव का (लेख)"। उसके आगे वीसलदेव के नाम के साथ विग्रहराज का वर्णन है और यह लिखा है कि उसने विंध्या और हिमालय पर्वतों के मध्य की भूमि को जीत कर और म्लेछों को कई बेर इस देश से निर्मूल करके इसे पुनः आर्यावर्त बनाया। इस लेख से विद्वानों ने यह स्थिर किया है कि विग्रहराज वीसलदेव का दूसरा नाम था और उसने १२ वीं शताब्दि के अन्त में राज्य किया। विग्रहराज के विषय में दो और शिलालेखों का पता लगा है। पहिले पर तो सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ एक नाटक खुदा है, जिसमें बसन्तपाल की कन्या के साथ राजा विग्रहराज की प्रेम केलि और मुसलमानों के विरुद्ध राजा के युद्धों का वर्णन है। दूसरे पर भी एक नाटक है जिसके रचयिता स्वयं महाराज विग्रहराज हैं। इस दूसरे शिलालेख पर संवत् १२१० (११५३ ईसवी) खुदा है। इनसे अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि महाराज विग्रहराज का राजत्वकाल बारहवीं शताब्दि के मध्य में हुआ।

सोमेश्वरराज के समय का एक शिलालेख मेवाड़ में मिला है जिसमें लिखा है कि विग्रहराज अरण्यराज का पुत्र था और "तस्य ज्येष्ठभ्रातृ पुत्रः पृथ्वीराजः" था। ज्येष्ठभ्रातृ का नाम आगे चलकर सोमेश्वर दिया है। वीसलदेव का नाम भी इस लेख में दिया है। पर वह विग्रहराज से तीन पीढ़ी पहिले है। अतएव यह सिद्ध होता है कि विग्रहराज और वीसलदेव एकही पुरुष नहीं थे।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज रासौ में यह लिखा है कि जिस समय वीसलदेव गुजरात के राजा से लड़ने गया तो राजा भोज का लड़का उदयादित्य उसके साथ था। वीसलदेव रासौ के अनुसार वीसलदेव ने भोज परमार की कन्या से विवाह किया था और इस भोज का समय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार सन् १०२६-१०८३ के बीच में होता है। पृथ्वीराज रासौ से यह पता लगता है कि वीसलदेव की एक प्रमार वंशीय रानी थी, क्योंकि आदि पर्व में यह दोहा मिलता है—

ऊंच धाम विसराम किया। रङ्ग साल चतुरङ्ग।
प्रौढा महल प्रवार सों। कहिए सु कथा प्रसङ्ग॥

चन्द वीसलदेव का समय संवत् ८२१ देता है और यह सनन्द विक्रम संवत्* के अनुसार ९१२

* इस सम्बन्ध में चन्द वरदाई पर मेरा लेख पढ़िये गा जिससे सनन्द संवत् का वृत्तान्त स्पष्ट प्रगट होगा जायगा। यह लेख अभी प्रकाशित नहीं हुआ। आशा है कि आगामी संख्या में प्रकाशित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। यह लिखा है कि वीसलदेव ने चौसठ वर्ष राज्य किया था। अतएव इस गणना के अनुसार वीसलदेव की मृत्यु का (९७६ संवत् ९१९ ईसवी) होगा, जबकि न राजा भोज और न उसके पुत्र उदयादित्य ही का जन्म हुआ था। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि लेख के भ्रम से यह संवत् ८२१ बदल गया है, क्योंकि एक दूसरे स्थान पर चन्द बालुकाराव पर वीसलदेव की चढ़ाई और गुजरात विजय का समय ९८६ बताता है। इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि वीसलदेव का समय ८२१ न होकर ९२१ होगा। यह समय (९२१ + ९१ + ६४ = १०७६ या १०२० ईसवी) भोज और उसके पुत्र उदयादित्य से भी ठीक ठीक मिल जाता है और इन तीनों का समकालीन होना सम्भवतः सिद्ध हो जाता है। पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या का कथन है कि राजपुताने की ख्यातियों में ९२१ के स्थान ९३१ मिलता है। यदि यह ठीक है तो वीसलदेव का समय १०३० मानना चाहिए।

इतिहास में वीसलदेव का नाम इसलिये प्रसिद्ध है कि उसने कई बेर मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई ठानी और एक बेर उन्हें पुनः भारतवर्ष से निकालने में सफल-मनोरथ हुआ। इससे उसी युद्ध का आशय है जो राजपुताने के राजाओं ने मुहम्मद गज़नवी (९९७-१०३० ई०) के विरुद्ध ठाना था और जिसमें वे कृतकार्य हुए थे। जो बातें उपर कही गई हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि वीसलदेव ईसवी बारहवीं शताब्दि में नहीं हुआ, वरन् ग्यारहवीं शताब्दि के प्रथम अर्द्ध भाग में। फ़िरोजशाह की लाट पर जो लेख है उसके विषय में मेरा यह सिद्धान्त है कि वह केवल वीसलदेव ही से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं रखता, वरन् उसके नाम का उल्लेख उसमें इसीलिये किया गया है कि वह विग्रहराज के प्रसिद्ध और प्रतापी पुरखाओं में से था। चौहानों के इतिहास में वीसलदेव का नाम निज देश के हितार्थ अनेक साहसपूर्ण कार्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है और विग्रहराज ने, जो दिल्ली न जीत सका, यह समझा हो, कि यदि अपने नाम के साथ वीसलदेव के नाम का उल्लेख हो, तो जो कालिमा मेरे यश में लग गई है वह दूर हो जाय। इसी कारण से उन दोनों का नाम उस शिलालेख पर है। इससे वीसलदेव और विग्रहराज को एक ही पुरुष मानना कदापि उचित नहीं जान पड़ता। आशा है कि इन ऐतिहासिक बातों पर विद्वद्गण विचारे करेंगे।

हिन्दी काव्य (आलोचना)

इस शीर्षक से सरस्वती के प्रथम भाग की बारहवीं संख्या में हमने एक लेख प्रकाशित किया था। उसी पत्रिका के द्वितीय भाग की प्रथम संख्या में पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने उसकी "समीक्षा" लिखी है। उसमें वह लिखते हैं कि "जब बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने साहित्य रत्नाकर में काव्य के यथार्थ लक्षण को पूर्णरीति से निर्धारित कर ही दिया है, तो फिर मिश्र जी का यह कहना कि 'काव्य का कोई लक्षण तक अद्यापि पूर्ण रूप से संस्थापित नहीं है, अनुचित है"। परन्तु हमने तो रत्नाकर जी कृत लक्षण को अशुद्ध समझ उसका खण्डन ही किया था, तब हम उसे "पूर्ण रीति से संस्थापित" कैसे मान लेते? ऐसी दशा में हमारा कथन गोस्वामी जी को अनुचित कैसे जान पड़ा? बात यह है कि यदि रत्नाकर जी का लक्षण अपने अभिप्राय को पूर्ण रूप से प्रगट कर सकता तो वह "कविरनुहरतिच्छाया" इत्यादि के अनुसार कुल-पति मिश्र के इस लक्षण की "चोरी" कहाने के योग्य होता कि—

"जगतें अद्भुत सुख सदन शब्दऽरु अर्थ कवित्त
यह लक्षण मैंने कियो समुझि ग्रन्थ बहु चित्त"

परन्तु उनसे तो यह भी न बना।

गोस्वामी जी के इस कथन का कि हम रत्नाकर जी के लक्षण को नहीं समझ सके और न अपने अभिप्राय पूर्ण रूप से प्रदर्शित कर सके, हम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर नहीं देना चाहते; इसका उत्तर हमारा लेख ही दे देवैगा। हमने यह कहीं नहीं कहा कि रत्नाकर जी ने पण्डितराज के लक्षण को स्वीकार किया है। उनका उस लक्षण को प्राचीन लक्षणों में "सर्व श्रेष्ठ" मानना मात्र हमने लिखा है। गोस्वामी जी कहते हैं कि" रत्नाकर जी ने पण्डितराज के लक्षण में कुछ परिवर्त्तन भी नहीं किया है"; परन्तु उनका यह कथन उचित नहीं, क्योंकि पण्डितराज ने यह कहा है कि रमणीयता प्रगट करनेवाला शब्द काव्य है और रत्नाकर जी ने यह कहने का प्रयत्न किया है कि रमणीय जुमले (Sentence) या रमणीय अर्थ, या रमणीय जुमले और अर्थ काव्य हैं। तब यह लक्षण कुछ ही परिवर्तित नहीं तो और क्या है? क्योंकि पण्डितराज ने अर्थ की रमणीयता प्रधान मानी है और रत्नाकर जी ने उसमें शब्द और शब्दार्थ दोनों ही की रमणीयता मिलानी चाही है। रत्नाकर जी कृत लक्षण की शुद्धता या अशुद्धता का निबटेरा "वाक्य" शब्द के शुद्धार्थ पर निर्भर है। इसमें तीन प्रश्न हैं-(१) रत्नाकर जी ने उसका अर्थ क्या माना है? (२) पं० किशोरीलाल जी ने क्या बतलाया? (३) हमने क्या लिखा? तदनन्तर यह निर्णय करना है कि इन तीनों में कौनसा अर्थ माननीय है? यहां पर हम यह भी प्रार्थना किए देते हैं कि हम गोस्वामी जी की समीक्षा में से इस ठौर उद्धृत कहां तक करें? अतः पाठक महाशय कृपया इस समय सरस्वती के द्वितीय भाग के पृष्ठ ४ और ५ भी सम्मुख रखलें।

(१) रत्नाकर जी ने अपने काव्यनिरूपण में

"अद्भुत वाक्यहि सो जहां उपजत अद्भुत अर्थ।
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ" ॥

इस लक्षण को खण्डन करते समय लिखा है कि "अद्भुत वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं, एक यह कि उसके अर्थ में अद्भुतता हो और दूसरा यह कि उसके शब्दों में अद्भुतता हो"। इस कथन से यह पूर्णतया परिलक्षित होता है कि वह "वाक्य की अद्भुतता" से या तो उसके शब्दों की अद्भुतता का अर्थ मानते हैं या उसके अर्थ को। परन्तु इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त तृतीय अर्थ का होना वे असम्भव समझते हैं; अर्थात् 'शब्दार्थ (शब्द और अर्थ दोनोंही) की अद्भुतता' इस अर्थ का होना वे नहीं मानते। यदि कहिए कि यह तृतीय अर्थ इस दोहे में अनुपयुक्त था, इस कारण नहीं लिखा गया, तो भी आपका कथन योग्य नहीं, क्योंकि अर्थ की अद्भुतता वाला अभिप्राय, जिसका होना रत्नाकर जी ने सम्भव माना है, इस दोहे में इस तृतीय अभिप्राय से भी अधिक अनुपयुक्त है। तो जब "अद्भुत वाक्य" के रत्नाकर जी ने दोहीं अर्थ माने और यह समझा कि तृतीय हो ही नहीं सकता, तो "रमणीय वाक्य" के तीन अर्थ वह कैसे मान सकते थे? अतः "रमणीय वाक्य" के अर्थ में भी उनके मतानुसार शब्दार्थ की रमणीयता नहीं ली जा सकती; परन्तु वाक्य का यह अर्थ करने में उनके लक्षण में शब्दार्थ रमणीयता की अव्याप्ति हो जायगी। किशोरीलालजी "रमणीय वाक्य" के तीन अर्थ मानते हैं। जब रत्नाकर जी और उनके मतोंही में विभिन्नता वर्तमान है, तब गोस्वामी जी का यह कहना कि "हमें आशा है कि रत्नाकर जी का भी यही (अर्थात् गोस्वामी जी ही का) अभिप्राय होगा", कैसे प्रमाणित हो सकता है?

(२) गोस्वामी जी ने "वाक्य" का जो लक्षण कहा है उसमें एक प्रकार का अन्योऽन्याश्रय दूषण वर्तमान है। उनके मतानुसार "संज्ञा और क्रिया... जब वाक्य में व्यवहृत होने की योग्यता प्राप्त करते हैं तब ये पद (शब्द) कहलाते हैं" और पदों (शब्दों) के ऐसे समूह को वाक्य कहते हैं जोकि अर्थ बोध कराने में सम्पूर्ण हों"। इनमें "पद (शब्द)" और "वाक्य" के लक्षण एक दूसरे के आधार पर स्थिर किए गए हैं जो तर्कशास्त्र (Logic) के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। यह लक्षण तो ऐसा ही हुआ जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कि "यह घोड़ा उसका है जिसका मैं नौकर हूँ" और "मैं उसका नौकर हूँ जिसका यह घोड़ा है"। आप कहते हैं कि "वाक्य की रमणीयता से शब्दों के सार्थक समूह की रमणीयता ग्राह्य है" इस जुमले (sentence) में सार्थक होना शब्दों का एक गुण है। अतः इसका आशय यह निकला कि वाक्य रमणीयता एक गुण-विशेष वाले शब्दों के समूह की रमणीयता है। तब केवल अर्थ-रमणीयता तथा शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता आपकी वाक्य रमणीयता के बहिर्गत हुई जाती है, इससे आपके लक्षणानुसार केवल चित्र काव्य काव्य ठहरता है। यदि कहिए कि शब्दों के सार्थक मात्र होने के कारण हम उनसे शब्दार्थ रमणीयता का अभिप्राय ले लेंगे तो चित्र काव्य भी आपके लक्षण से निकल जायगा; क्योंकि उसमें अर्थ रमणीयता होती नहीं, नहीं तो वह भी पण्डितराज के लक्षण में आजाता, तब आप कैसे कह सकते हैं कि "यह (वाक्य की) रमणीयता तीन प्रकार से आ सकती है, अर्थात् अर्थ चमत्कृति, शब्द चमत्कृति और शब्दार्थ चमत्कृति से। अतएव इन तीनों कारणों में से एक के भी उपस्थित रहने से वाक्य की रमणीयता हो जायगी"? आप तो अर्थ चमत्कृति अपनी वाक्य रमणीयता के लक्षण में लाही नहीं सके! अब यदि आपका अभिप्राय, जिसे आप प्रगट नहीं कर सके, मान भी लिया जाय, तो आपही के मतानुसार वाक्य में शब्द और अर्थ दोनोंही होते हैं। तब दोनों के रमणीय हुए बिना वाक्य कैसे रमणीय कहा जा सकता है? यदि किसी व्यक्ति में दस गुण और उतने ही अवगुण हों तो उसे गुणवान कहने की अपेक्षा लोग प्रायः अवगुणी अधिक कहेंगे। जैसे केवल शब्द या केवल अर्थ वाक्य नहीं कहे जा सकते, वैसेही इनमें से केवल एकही की रमणीयता भी वाक्य की रमणीयता नहीं हो सकती। तात्पर्य्य यह कि इस हिसाब से वाक्य तभी रमणीय होगा जब उसके शब्द और अर्थ दोनोंही रमणीय हों।

(३) हमने वाक्य शब्द को ऐसा साधारण समझा था कि उसके लक्षण देने का ध्यान तक हम को न आया। जो ब्रैकेट में वाक्य शब्द के आगे हमने "बोली, भाषा, या पद" लिख दिया था और जिससे भ्रमवशात् गोस्वामी जी ने यह समझा कि वेही हमारे मतानुसार वाक्य के अर्थ हैं, वे शब्द वस्तुतः केवल स्थूल रूप से समझाने के निमित्त लिखे गए थे। एक बार उन्हें पुनः देखिए। "यदि रत्नाकर जी का प्रमाण मानिए तो ऐसे निर्माणों को जिनमें भाव कैसाही उत्तम क्यों न हो, परन्तु वाक्य (अर्थात् बोली, भाषा, या पदों की) रमणीयता न हो, काव्य न कह सकिएगा। हमारे इस कथन से हमारा यह अभिप्राय न है (और न निकलता है) कि वाक्य शब्द के अर्थ "बोली, भाषा, या पद हैं" वरन् इसका आशय यह है कि बोली भाषा आदि की ही रमणीयता को हम वाक्य रमणीयता मानते हैं, न कि अर्थ रमणीयता को। यदि हम वाक्य शब्द का अर्थ बोली, भाषा या पद ही समझे होते (जैसा कि गोस्वामी जी को भ्रम हो गया है) तो उसी लेख के पृष्ठ ४१९, कालम २ पंक्ति १९—२० में, हम यह कैसे लिखते कि बहुत से समस्यापूर्ति-कारों को "शुद्ध वाक्य रचना का भी परिज्ञान नहीं होता"? क्या इससे यह अभिप्राय निकाला जायगा कि उन्हें शुद्ध "शब्द" रचना का परिज्ञान नहीं होता! और क्या कवि का काम वैयाकरण है कि वह व्याकरण की रीति से शुद्ध शब्द कहे! इससे स्पष्ट विदित है कि हम वाक्य शब्द के अर्थ जुमले (Sentence) के सदा से मानते आए हैं और यदि गोस्वामी जी हमारे लेख को ध्यान पूर्वक पढ़े होते तो उन्हें यह भ्रम कदापि न होता कि "भ्रमवश मिश्र जी (हम) ने वाक्य का अर्थ शब्द समझ लिया है"। जैसे गोस्वामी जी इस भ्रम में पड़ गए वैसेही वह चाहें तो यह भी समझ बैठें कि इसी स्थल पर "मिश्र जी" के आगे ब्रैकेट में हमारे "हम" शब्द लिख देने के कारण हम "मिश्र जी" का अर्थही "हम" समझते हैं। वाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जैसे इस स्थल पर हमने "मिश्र जी" शब्दों के आगे समझाने मात्र को "हम" शब्द लिखदिया है, वैसेही उस ठौर "वाक्य" शब्द के आगे "बोली भाषा, या पद" यह लिखदिया था। पर जैसे "मिश्र जी" का अर्थही "हम" नहीं हो सकता उसी प्रकार "वाक्य" का अर्थ "बोली, भाषा, या पद" नहीं हो सकता। इसी भांति भारतेन्दु जी ने हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, पृष्ठ १२७, कालम २, पंक्ति २७ में लिखा है—"बहुत लोगों की राय अर्थात् बुद्धि" पर क्या कोई कह सकता है कि वह महाशय "राय" शब्द का अर्थ "बुद्धि ही" मानते थे? वास्तव में ऐसे शब्द केवल समझाने मात्र को लिख दिए जाते हैं, सभी जुमले सार्थक अवश्य होते हैं, परन्तु केवल "वाक्य" शब्द से उनके अर्थ का बोध नहीं होता और इस अभिप्राय के लिये "शब्दार्थ" शब्द का प्रयोग भाषा में किया जाता है। भाषा संस्कृत की पुत्री अवश्य है, परन्तु यह अपनी जननी से कुछ माँगने तभी जाती है जब इसके पास वह पदार्थ विद्यमान नहीं होता। अतः "वाक्य" के अर्थ संस्कृत में खोजने हम तभी जांयगे जब भाषा में वे न पाए जांय। परन्तु जब भाषा आचार्य्यों ने उसपर विचार किया ही है तब क्या आवश्यकता है कि भाषा का सीधा साधा अर्थ छोड़ हम संस्कृत में भटकते फिरें? रत्नाकर जी ने काव्यनिरूपण ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखा है, अतः उनके शब्दों का अर्थ वही लिया जायगा जो उसी भाषा के आचार्य्यों ने स्थिर किया है। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि संस्कृत और हिन्दी में एक ही शब्द के अर्थ पृथक पृथक हुआ करते हैं, पर किसी किसी शब्द के विषय में यह बात कही भी जा सकती है। माना कि कलकत्ता हाईकोर्ट हमारी हाईकोर्ट से बड़ी है, पर इस प्रान्त में इलाहाबाद ही की हाईकोर्ट के फ़ैसले विशेष माने जाँयगे और कलकत्ते की नज़ीरें यहां तभी मानी जाँयगी जब वे हमारी प्रान्तिक हाइकोर्ट को किसी नज़ीर के विरुद्ध न हों। यही दशा संस्कृत और देवनागरी की है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और काशी नागरी-प्रचारिणीसभा की "लेख और लिपि प्रणाली" पुस्तक के अनुसार जब भाषा का कोई सुयोग्य शब्द मिले तब तक संस्कृत शब्द व्यवहृत न होना चाहिए।

"वाक्य" शब्द का अर्थ दास जी यों लिखते हैं—"पद समूह रचनानि को वाक्य बिचारहु चित्त" (काव्यनिर्णय)। इस लक्षण में उन्होंने अर्थ का नाम तक न लिया जिससे ज्ञात होता है कि "वाक्य" शब्द में "अर्थ" बोध कराने का सामर्थ्य वह महाकवि नहीं मानते थे। इससे कोई यह न समझे कि कोई वाक्य अर्थरहित होता है, वरन् तात्पर्य यह है कि "वाक्य" शब्द "अर्थ" का बोधक नहीं। उसी ग्रन्थ में दास जी फिर लिखते हैं—"दोष शब्दहू अर्थ हू वाक्य रसहु में होय"। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दासजी शब्द, अर्थ और वाक्य इन तीनों को एक दूसरे से पृथक मानते हैं और उन्होंने दोषों के अध्याय में शब्ददोष, वाक्यदोष, और अर्थदोष इन तीनों को पृथक पृथक वर्णन किया है। यदि वे "वाक्य" शब्द को अर्थ और शब्दसमूह दोनों का बोधक मानते तो वाक्य और अर्थ के दोषों को उन्हें पृथक करके दिखाने की आवश्यकता न पड़ती। यदि कहिए कि 'इससे तो कहा जा सकता है कि वाक्य शब्द न अर्थ का बोधक है और न शब्द का, क्योंकि दासजी ने शब्द, अर्थ और वाक्य तीनों को एक दूसरे से पृथक माना है तो इसका उत्तर हम यह देंगे कि वस्तुतः "वाक्य" शब्द न "अर्थ" का बोधक है और न "शब्द" का, वरन् वह "शब्दसमूह" का बोधक है, क्योंकि एक शब्द वाक्य नहीं हो सकता, यह "शब्द समूह" सार्थक अवश्य होना चाहिए। पर "वाक्य" शब्द मात्र अर्थ का बोध नहीं कराता। दास जी के "दोष शब्दहू अर्थहू वाक्य रसहु में होय" इस वाक्य से उपर्युक्त आशय पूर्णतः पाया जाता है। फिर उन्हीं महाकवि जी ने कहा है कि "भूषण* छत्रासी अर्थ के

* अलंकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठ वाक्य के जोर" और "शब्दालंकृत पाँच गुनि चित्र काव्य इक पाठ"—ये दोनों कहावतें मिलाने से हमारा उपर का कथन सन्देह के राज्य ही के बाहर हो जाता है। पर यदि यह सब जान कर भी कोई सन्देह करे तो सिवाय दुराग्रह के उसे और क्या कह सकते हैं? इसीकी पुष्टि देवजी के इस दोहे से होती है कि—

"सरस वाक्य पद अरथ तजि चित्र काव्य समुहात।
दधि घृत मधु पायस तजत बायस चाम चबात"॥
(शब्द रसायन*)

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि "वाक्य शब्द का अर्थ "अन्वित्तर्थक शब्द समूह और उनके अर्थ" नहीं वरन् केवल "अन्वितार्थक शब्द समूह" है। यदि कोई कहे कि "यह वाक्य दूषित है" तो इसका अर्थ यह होगा कि "इस वाक्य की शब्दावली का क्रम दूषित है"। ऐसी दशा में हमारी "वाक्य" शब्द की विवेचना, जिससे देव, दास आदि महाकवि सहमत हैं, अशुद्ध कैसे ठहर सकती है जबकि कोई बात उसके विरुद्ध नहीं पाई जाती?

अब "वाक्य" शब्द का अर्थ निर्धारित हो चुका और यह भी सिद्ध होगया कि हिन्दी में रत्नाकर जी और किशोरीलाल जी महाशयों के अर्थ माननीय नहीं हैं। अब यह निर्णय शेष है कि कौन लक्षण शुद्ध है। रत्नाकर जी के लक्षण ("होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय") में जो दूषण हैं उन्हें हम ऊपर लिख ही आए हैं और "वाक्य" का जो अर्थ उन्होंने आप ही माना है (जिसका विवेचन भी ऊपर हो चुका है) उससे भी उनका लक्षण ठीक नहीं। गोस्वामी जी जो "वाक्य" शब्द का अर्थ मानते हैं वह अशुद्ध तो नहीं है पर भाषा में उसका व्यहार नहीं हो सकता। पर यदि हम उसे मान भी लें तो वाक्य रमणीयता से शब्द समूह और अर्थ दोनों को रमणीयता का अभिप्राय निकलेगा और इस हेतु चित्रकाव्य और केवल अर्थ रमणीयता वाली कविता इस लक्षण में नहीं आसकती। हम "वाक्य" शब्द का अर्थ "अन्वितार्थक शब्द (पद) समुदाय" मानते हैं जिसे जुमला या Sentence कहते हैं। पर इस शब्द ("वाक्य") को अर्थ का बोध कराने में हम असमर्थ मानते हैं और ऐसा मानने के कारण हम ऊपर सविस्तार दे आए हैं। इन कारणों से "वाक्य रमणीयता का अर्थ शब्दसमूह की रमणीयता मात्र का अर्थ लिया जायगा जिससे अर्थ रमणीयता और शब्दार्थ रमणीयता की इस लक्षण में अव्याप्ति सिद्ध है।

हमारे लक्षण ("वाक्य, अर्थ, वा एकहू रमणीय सु होय। शिरमौरऽरु शशिभाल मत कहावै सोय") में शब्द रमणीयता, अर्थ रमणीयता और शब्दार्थ रमणीयता किसीकी भी अव्याप्ति नहीं होती और "वाक्य" शब्द के कारण जुमला (Sentence) के अधूरे रहने का भी दोष न लग सकता और इस लक्षण से यह भी व्यक्त हो जाता है कि शब्दार्थ की रमणीयता से काव्य उत्तम पर उनमें से केवल एक ही की रमणीयता से मध्यम होगा। इनमें भी यह कहना अयोग्य न कि अर्थ रमणीयता वाला काव्य मध्यम और शब्द रमणीयता वाला अधम है।

तुकान्त और विश्राम-चिन्ह-रहित पदों पर हमने लिखा उसपर भी गोस्वामी जी ने अपना मत प्रकाश किया है; पर इन दो विषयों को जिन्हें हमने बिलकुल पृथक पृथक रक्खा था उक्त महाशय ने एक ही में करके बड़ा गोलमाल करदिया है अतः हम फिर उनपर अलग ही अलग अपना विचार प्रकाशित करते हैं—

(क) तुकान्त—गोस्वामी जी की समझ चाहे यह सुगमता का बाधक हो या नहीं, पर हमें तो वह स्वच्छन्द काव्य निर्माण का एक बहुत बड़ा बाधक जान पड़ता है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनके तुकान्तवाले बहुत शब्द नहीं होते; वहाँ

* यह दोहा हमारे इसी मुख्य लेख में कुछ गड़बड़ छप गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं एक ही दो बँधे हुए शब्द बिना प्रयोजन भी केवल अनुप्रास के हेतु लाने पड़ते हैं, यथा विप्र-क्षिप्र। "शीघ्र" के तुकान्त ही नहीं मिलते। इसी प्रकार "आवत श्याम उछारत नीबू" इत्यादि इत्यादि समस्याओं की पूर्ति करना असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है। यदि ऐसा न होता तो स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र जी ने इस समस्या के विषय में कि "सूरज देखि सके नहिं घुग्घू" ऐसा क्यों कहा होता कि इस पर अच्छी कविता होही नहीं सकती? क्या उनका भी शब्दसागर पर पूर्ण अधिकार न था? और क्या उनको भी कोई "कवि नहीं वरन् ठूँठ" कह सकता है? उत्तरचातकाष्टक के द्वितीय श्लोक के अनुवाद में (सरस्वती, भाग एक, संख्या १२, पृष्ठ ३९५, देखिए) स्वयं पं० किशोरीलाल जी को भी तुकान्त के वशीभूत हो, तृतीय पद में "चातकपावन" लिखना पड़ा, यद्यपि "पावन" शब्द उस ठौर पर उपयुक्त नहीं और न उसके आशय का कोई शब्द मूलही में है; वरन् मूल में तो "आदरात्" शब्द पाया जाता है। अब उन असंख्य शब्दों में से, जो कि इस समय कवि के सम्मुख हाथ बांधे खड़े, स्वीकारार्थ प्रार्थना कर रहे थे, कवि ने न जाने क्यों मूलार्थ समर्थक कोई शब्द न चुना! यदि तुकान्त का बन्धन न होता तो कदाचित् "सादर" शब्द द्वारा मूल का अर्थ भी आजाता, और अविश्रामान्त पद भी बन जाता। फिर उन असंख्य शब्दों में से "नार" ऐसा ग्रामीण शब्द कवि ने क्यों चुना? सम्भवतः असंख्य शब्दों के समारोह में कवि ऐसा चलितधैर्य्य हो जाता है कि चुनाव की घबराहट में स्वामिभक्त सेवकों को छोड़ विद्रोहियों को चुन लेता है। चौथे श्लोक के अनुवाद में तृतीय उत्तरचरणार्द्ध देखिए, "उर अन्तर जो तुवध्यान लह्यो"!! "ध्यान लह्यो" क्या वस्तु है? क्या यह तुकान्त-देवी ही का प्रसाद नहीं है? मूल का आशय यह है कि उसने ध्यान किया, परन्तु तुकान्तार्थ "लह्यो" शब्द के आने से इस अनुवाद की पंक्ति का आशय यह हो गया कि उसने वह ध्यान अपने से अतिरिक्त किसी वाह्य पदार्थ से पाया!

यदि "लह्यो" के स्थान पर तुकान्त को अलग रख "कियो" या "धरयो" शब्द कवि महाशय रख सकते तो यह त्रुटि कदापि न होती। अब रत्नाकर जी को देखिए—वसन्त (सरस्वती, भाग १, पृष्ठ १२२) में वह महाशय लिखते हैं।

"वन सोभा बरबसहि लोचननि लेत लुभाये"।
"जित जित जात जात रहि तितही तित बिरुझाये"

यहां "बिरुझाये" के स्थान पर उपयुक्त रुप 'बिरुझाय" होता, पर तुकान्त ने न माना और कवि जी को बरबस अनुपयुक्त रुप लिखना ही पड़ा। काशी कविसमाज की समस्यापूर्तियों के द्वितीय भाग, पृष्ठ १५०, में "बाँसुरी बजावै है" की पूर्ति में रत्नाकर जी ने द्वितीय पद में जो "भुजङ्ग दरसावै है" लिखा है इसके विषय में क्या कोई कह सकता है कि तुकान्त का बंधन न होने पर भी वह शब्द जैसे के तैसे लिखे गए होते? कविता रचने में सबको वही कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं, यों चाहे कोई कहे—

"कोउ तुकान्त बिन पद्य लिखन में है अरुझानो"।

और चाहे इससे भी अधिक बढ़ जाय। यहां पर यही दो चार प्रमाण अलम् होंगे। परन्तु यदि आवश्यकता हुई तो समयान्तर में हम स्वयं पं० किशोरीलाल जी की कविता में या जिस कवि की रचना में वे कहें उसमें अनेक ऐसे प्रमाण दिखा देंगे जहाँ कवि को तुकान्त के कारण अर्थ का चमत्कार तक नाश करना तथा अव्यवहृत और कारणविरुद्ध शब्द प्रयोग करना पड़ा है। राजा और उसके सेवकों वाला उदाहरण तो गोस्वामी जी ने अच्छा ढूंढ़ा, पर यह उदाहरण कवि और शब्दों के विषय में एक तो घटता ही नहीं, और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उत्तर में यही कहा जायगा कि जैसे एक ही आकृति और रुप वाले अनेक सेवक राजाओं के पास प्रायः बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ करते, वरन् कुछ सेवक ऐसे होते हैं जिनके रूप और आकृति अन्य सेवकों से मिलते ही नहीं; वैसे ही एक ही तुकान्द वाले अनेक शब्द कवियों के पास बहुत नहीं होते, वरन् कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका तुकान्त वाले अन्य शब्दों से मिलना असम्भव सा हो जाता है। अतः तुकान्त का नियम छोड़ देने से काव्य निर्माण में सुबीता अवश्य हो जायगा और हानि कुछ भी नहीं। जब तक कोई परिपाटी स्थिर नहीं होजाती तब तक उसपर आन्दोलन करने में लोग प्रायः विरोध ही किया करते हैं; नहीं तो तुकान्त रहित छन्दों के विरुद्ध कोई युक्ति-सङ्गत प्रमाण है ही नहीं। अन्यथा संस्कृत वा अंग्रेज़ी में इसका व्यवहार क्यों किया जाता ? शेक्सपियर और मिलटन बालकाल में तुकदार कविता ही अधिक करते थे, पर प्रवीण काल में तुकान्त-रहित छन्द ही उन्हें विशेष प्रिय होगए थे। हमारी समझ में तो तुकान्तरहित पद्य जो स्वच्छन्दता से यमक आदि के विशेष फेर में पड़े विना निर्माण किए जायं, उनमें काव्यरचना-शक्ति-सम्पन्न लोगों को प्रायः वैसीही सुगमता प्रतीत होगी जैसी गद्य लिखने में है।

(ख) विश्राम-चिन्ह-रहित पद—विदित हो कि इस सम्बन्ध में "पद" शब्द का अर्थ छन्द का एक चरण (पंक्ति) है। यद्यपि ऐसा नियम कहीं लिखा तो नहीं है "कि एकही पद में कवि अपना भाव तोड़ मरोड़ कर ठूंस दे" पर देखा गया है कि प्रायः सभी प्राचीन और नवीन कविजन इस बेलिखे नियम का पालन अवश्य करते हैं। "जात खड़ी बोली पै कोऊ भयो दिवानो" इत्यादि में जो गोस्वामी जी ने इसी सम्बन्ध में उद्धृत किया है, क्या एक भी पद ऐसा है जिसके अन्त में कोई विश्राम-चिन्ह न हो ? कुछ इसीपर नहीं; हिन्दी काव्य के एक सहस्र छन्दों में भी कदाचित् ही दो एक पद मात्र ऐसे निकल आवें ! मित्रवर पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी कृत "नागरी ! तेरी यह दशा ! !" शीर्षक पद्य के सप्तम छन्द का तृतीय चरण ऐसा है; हम ऐसे पदों को अति श्लाघनीय मानते हैं—

पद्मावती जिन रची ललिता, ललामा,
विख्यात जे अपर क़ादिर आदि नामा,
इस्लाम जाति, तउ कै तिन मातु ! तोरी
आराधना, सुयशराशि घनी बटोरी"।

हर्ष का विषय है कि गोस्वामी किशोरीलाल जी ऐसे विद्वान् महाशय ने "साहित्य" शीर्षक प्रबन्ध लिखने की प्रतिज्ञा की है। आशा है कि गोस्वामी जी इस प्रतिज्ञा को शीघ्रही पूर्ण कर हिन्दी भाषा का उपकार करेंगे। परन्तु उन्होंने उस लेख में हमारी आलोचना के "सम्बन्धातिशयोक्ति" आदि अनेक विषयों पर लिखना और हमारे समक्ष "प्रबन्ध का भी सम्यक उत्तर" देना स्थिर किया है। इसमें हमारी समझ में नहीं आता कि "उत्तर" वह किस बात का देंगे। क्या हमने अपनी आलोचना में उनसे कोई प्रश्न किया है ? अथवा उनके किसी कथन आदि का खण्डन किया है ? अस्तु, कुछ हो, हम अपने उस प्रबन्ध के विषय में दो एक बातें प्रथम ही से लिख देना उचित जानते हैं जिसमें भ्रम की बातें यथासम्भव न आने पावें।

१—अनुप्रास हमने तीनही प्रकार के लिखे हैं यद्यपि वास्तव में ये बारह प्रकार के होते हैं; यथा (१) समसरि, (२) विषमसरि, (३) कष्टसरि, (४) असंयोगमिलित, (५) स्वरमिलित, (६) दुर्मिल, (७) अमिल सुमिल (८) आदि मत्त अमिल (९) अन्त अमिल, (१०) वीप्सा, (११) यामकी, (१२) लाटिया। यदि पूछिए कि हमने इनमें से तीनही का वर्णन क्यों किया, तो इसका कारण यह है कि हम मुख्य तुकान्त (अनुप्रास) प्रथम तीनही को मानते हैं और इसी कारण कष्टसरि के उदाहरण में हमने स्वर मिलित अनुप्रास लिख दिया। देव जी ने भी अलङ्कारों को दबा कर केवल स्वभाव और उपमा दो ही मुख्य माने हैं—हमारे समसरि के उदाहरण में द्वितीय कवित्त के अन्तिम चरण में "ह्वै गई" के स्थान पर "दै गई" शुद्धपाठ है, जैसा कि हमारे लव-कुश-चरित्र में प्रथमही से प्रकाशित हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) "पदमैत्री" और "यमक" ये दोनों शब्द हमने अति विस्तृत आशय में प्रयोग किए हैं, न कि उन संकीर्ण भावों में जो काव्यप्रणाली में इन्हें दिए गए हैं। हम इनसे Alliteration का आशय लेते और इन्हें एकही अर्थबोधक मानते हैं।

(३) "सम्बन्धातिशयोक्ति" शब्द भी हमने Hyperbole (मुबालिग़ा अर्थात् किसी वस्तु को बहुत बढ़ा कर कहना) के विस्तृत आशय में प्रयोग किया है।

(४) समस्या-पूर्ति के विषय में हमें इतना और कहना है कि कानपुर के रसिक-समाज की पूर्तियां जो रसिक-वाटिका में प्रकाशित होती हैं, ऐसेही अन्य समाजों और मंडलों की पूर्तियों की अपेक्षा प्रायः श्रेष्ठ हुआ करती हैं, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से भी सभी पुर्तियां अच्छी नहीं कही जा सकतीं। अवकाश होने पर इस विषय में आवश्यकानुसार हम एक स्वच्छन्द प्रबन्ध लिखने का प्रयत्न करेंगे। पर यह समस्यापूर्ति की प्रथाही हानिकारक है। कवि-समाज, सभा, मण्डल इत्यादि को उचित है कि समस्या-पूर्ति के नियम को किनारगी परित्याग कर यह स्थिर करलें कि उनके सदस्य लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार जिस समय पर जिस छन्द में जिस प्रकार चाहें कविता उनके प्रकाशार्थ मन्त्री के निकट भेज दिया करें और येही कविताएं यथास्थान उन समाजों की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करें। ऐसा करने से कवि को मनोवाञ्छित कविता करने की पूर्ण स्वच्छन्दता भी रहैगी और कविसमाजों को निज कर्तव्य पालन करने में कोई बाधा भी न उपस्थित हो जायगी। फिर कुछ ही काल में देखिए कि ये सब समाजें कैसी उन्नति करती हैं! कविता तो स्वच्छन्दता बिना उत्तम बन ही नहीं सकती। आपने कह दिया कि "केहि कारन सुन्दरि रूप धरयो," या "केहि कारन कौन निकाली है जाली?" अथवा "कीकर पतान" इत्यादि पर इनपर क्या उत्तम कविता हो सकती है! माना कि अच्छी समस्याएं भी दी जा सकती हैं और कभी कभी दी भी जाती हैं, पर एक तो जिस समाज से कहिए उसी में दी हुई अधमाधम समस्याएं हम बतादें और दूसरे जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, उत्तमोत्तम समस्या की पूर्ति करने में भी वही पराधीनता है जो अधम से अधम की पूर्ति में।

इस प्रणाली में जो लोग पड़ जाते हैं उनकी एक बात पर हमें आश्चर्य सा होता है कि वे यदि अपने इच्छानुसार कोई स्वच्छन्द कवित्त भी निर्माण करने बैठते हैं, तो प्रायः देखा गया है कि वे एक न एक समस्या पहिले अवश्य सोच लेते हैं और फिर उसीकी पूर्ति में प्रवृत्त होजाते हैं! इसका कारण यही है कि चिर अभ्यास से स्वच्छन्द काव्य की बात ही वे भूल जाते हैं और बिना कोई समस्या स्थिर कर लिए वे महाशय एक कवित्त तक कठिनाई से निर्माण कर सकते हैं! बलिहारी इस दासत्व की!!

फिर स्फुट कवित्त तभी अच्छे लगते हैं जब उन में कोई विशेष गुण हो। कथा प्रसंग में तो चाहे कोई कवित्त नितान्त साधारण ही हो, पर प्रसंग से वह भी अच्छा ही जान पड़ता है और यदि उसमें थोड़ीसी भी अच्छाई आ गई तो वह विशेष सुहावना जान पड़ने लगता है। परन्तु स्फुट कविता में यह बात होती है कि जिस विषय का वर्णन उसमें किया जाय उसका वर्णन भी पूर्ण हो जाय, और कोई न कोई चमत्कार भी उतने ही चार पदों में अवश्य आजाय, नहीं तो कवित्त फीका कहलावैगा। कोई स्फुट कवित्त लीजिए, उसमें कोई छोटी सी कहानी अवश्य पाइएगा। पर एकही कवित्त में एक छोटी से छोटी पूर्ण कहानी कह देना और उसपर भी उसमें कोई न कोई काव्य चमत्कार भी लाना हंसी ठट्ठा नहीं है। ऐसी दशा में साधारण कवि लोग स्फुट कविता योंहीं अच्छी न कर सकैंगे, पर जब उसमें एक तुक विशेष का होना भी आवश्यक कर दिया जाय (जैसा कि समस्यापूर्ति में होता है), तब तो कठिनाई का पारही क्या है? सो इस प्रणाली की कविता से लाभ क्या! फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि कोई कवि जन्मभर प्रत्येक समाज की पूर्तियां ही किया करै और कुछ कुछ अच्छी पूर्तियां करने में समर्थ भी हो तो भी अन्त में उसकी कविता क्या कहलावेगी ? और यदि भद्दी पूर्तियां बनीं तब तो कहना ही क्या है ! इसके विरुद्ध यदि वह दो चार छोटे मोटे काव्य ग्रन्थ बना ले तो यह कहा जा सकता है कि उसने कुछ अवश्य किया। यदि गोस्वामी तुलसीदासजी अथवा चरणचन्द्रिका* निर्माण करने वाले पण्डित रामचन्द्र जी आजन्म समस्या पूर्तिही करते रहते तो आजदिन उनका कौन नाम जानता ? वैसेही आजकल पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी और पण्डित श्रीधर पाठक का यह यश कदापि न होता यदि वे स्वच्छन्द काव्य छोड़कर समस्या-पूर्ति करने पर कटिबद्ध हो जाते।

समस्या-पूर्ति की चलन यों चली कि यहां के कविजनों को प्रायः किसी न किसी राजा या धनी का आश्रयी होना पड़ता था और कुछ कवि लोग ऐसे भी होते थे जो अनेक धनवान व्यक्तियों के यहां जाया करते थे, और ये दोनों चालें कई अंशों में अब तक वर्तमान हैं (इस विषय में इसी लेख के शीर्षक वाले हमारे मुख्य प्रबन्ध को देखिए)। ऐसी दशा में यदि किसी व्यक्ति के यहां कोई कवि महाशय आ गए तो उनकी कवित्व शक्ति की परीक्षा का सुगम मार्ग कोई समस्याही दे देना ठहराया गया। यह इतनेही अभीष्ट के लिये समस्या-पूर्ति उपयुक्त की भी जा सकती है; पर उसकी समाजें स्थापित कर देना, तथा उसकी मासिक पत्रिकादि प्रकाशित करने लगना, तो कदापि उचित नहीं। अतः यह भ्रम जितनी शीघ्रता से संशोधित कर ली जाय उतना ही अच्छा है। हम सर्व समस्या-पूर्ति समाजों से छोड़ और पक्षपात रहित हो कर उपर्युक्त बात पर विचार करने का अनुरोध करते हैं॥

* यह छोटा सा ग्रन्थ भी देखनेही योग्य है।

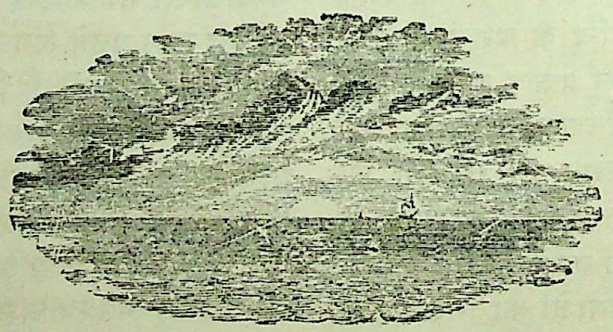

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] मई १९०१ ई० [संख्या ५

विविध वार्त्ता

ईश्वर की सृष्टि का नियम है कि जब वृक्ष रोपित हो फलने फूलने लगता है और उसकी शाखाएं और टहनियां चारों ओर फैलने लगती हैं, तो समय पाकर वह इतना प्रौढ़ हो जाता है कि तब यदि यह उद्योग किया जाय कि डालें और टहनियां अमुक रुप धारण करें और वह पेड़ सीधा हो अथवा टेढ़ाही रहे, तो यदि निष्फल नहीं तो दुसाध्य यह अवश्य हो जायगा। ठीक ऐसी ही अवस्था हिन्दी भाषा की है। उसके पद्य ने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में जो उन्नति प्राप्त कर ली वह अब उसे मिलनी कठिन है। गद्य तो अभी एक सौ वर्ष का हुआ है, पर अब इसके फलने फूलने के दिन आए हैं। पूर्व की अपेक्षा अब कुछ विशेष ग्रन्थों के बनने और पढ़ने पढ़ाने की चर्चा सुनने में आती है। पर अवस्था यह हो रही है कि जिसके जो मन में आता है अड़ांग सड़ांग लिख मारता है। यद्यपि व्याकरण के एक नियम का भी पालन न किया गया हो, यद्यपि लिखावट अश्रृङ्खल हो और शब्दों की गढ़न मन मानी रीति से की गई हो, पर कोई पूछने वाला नहीं कि क्या हो रहा है। इस समय उपन्यासों की भरमार है, पर इनकी भी वह शोचनीय अवस्था है कि ग्रन्थ-कर्ता महाशय स्वयं अपने घर की स्त्रियों को उन्हें पढ़ने के लिये देने से सकुचाएंगे। इनमें ऐसे असभ्य और अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता है कि कोई सभ्य पुरुष ऐसी पुस्तकों के छूने में भी अपने को महापातकी समझेगा। पर आज कल इन्हीं पुस्तकों की बिक्री है, इन्हींकी पूछ है और इन्हींके बदौलत न जाने कितने ही छोकड़े ग्रन्थकार बन बैठे हैं और प्रसिद्ध पुराने लेखकों की अप्रतिष्ठा करने में अपने भरसक कोई बात उठा नहीं रखते। ऐसी शोचनीय अवस्था में इससे बढ़कर अच्छा और कोई उपाय नहीं हो सकता कि एक 'समालोचक समिति' स्थापित की जाय और उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा समस्त ग्रन्थों की सच्ची समालोचना हो। हम इस प्रस्ताव से पूर्ण सहमत हैं, पर जिस प्रकार से इसका प्रबन्ध हो रहा है उसका हम हृदय से विरोध करते हैं। इस समय सब लोग इस बात को स्वीकार करेंगे कि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा, जिसमें हिन्दी के प्रायः सब लेखक सम्मिलित हैं, एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा हिन्दी विषयक सब काम होने चाहिएं। हमारी सम्मति है कि काशी की सभा अपनी ओर से एक कमेटी चुने हुए हिन्दी लेखकों और तत्वज्ञों की नियत करदे। हमारी सम्मति में इस कमेटी के निम्नलिखित सभ्य चुने जाने चाहिएं—(१) पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, (२) पण्डित श्रीधर पाठक, (३) पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, (४) पण्डित माधवराव सप्रे, (५) पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री। इन्हीं लोगों को पुस्तकों की समालोचना का भार सौंपा जाय। एक महाशय, जिनका रहना काशी में हो, इस कमेटी के मन्त्री चुने जांय। इनका कर्तव्य केवल यह हो कि जितनी पुस्तकें सभा में आवें उनकी एक सूची बना कर प्रति सप्ताह, प्रति पक्ष अथवा प्रतिमास, जैसा निश्चय हो, कमेटी के सभासदों के पास भेजदें। उनमें से जो महाशय जिस पुस्तक की समालोचना करना चाहें उसे मगवा लें। समालोचना जो हो उसमें कम से कम दो सभ्य सहमत अवश्य हों। समालोचना हो जाने पर पुस्तकें सभा को लौटा दी जांय, तथा कमेटी के सभासदों के पास जो पुस्तकें समालोचनार्थ आवें, काम हो जाने पर वे भी सभा के पुस्तकालय को अर्पित हों। इस प्रकार से जो समालोचना हो वह किसी पत्र में छाप दी जाय। 'सरस्वती' में प्रति मास इस कार्य के लिये ४ पृष्ठ अलग रक्खे जा सकते हैं। यदि उपयुक्त ग्राहक हो सकें तो एक स्वतन्त्र समालोचक पत्रही निकाला जाय। हमारे विचार में यदि इस प्रकार से कार्य किया जायगा तो उसमें सफलता प्राप्त हो सकेगी। अन्यथा वृथा को लिखा पढ़ी और नामों की भरती से काम न चलेगा।

इस सम्बन्ध में दो बातों का विचार करलेना आवश्यक है। प्रथम तो यह कि डांक व्यय कौन देगा और दूसरे मन्त्री कौन नियत किया जाय। हमारी सम्मति में डांक व्यय का भार सभा को उठाना चाहिए और मन्त्री बाबू कार्तिकप्रसाद नियत किए जांय। आशा है कि इन प्रस्तावों पर विचार कर सहयोगीगण अपनी अपनी सम्मति प्रगट करेंगे। उसके पीछे हम इस प्रस्ताव को सभा में उपस्थित करेंगे। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रही कि समालोचक समिति स्थापित की जाय अथवा नहीं, क्योंकि अब बिना इसके स्थापित किए काम नहीं चलेगा। अब केवल उचित उपाय का विचार करना ही आवश्यक है।

* * *

भाषा और पुरातत्व के रसज्ञों को यह बात विदित है कि लाहोरनिवासी पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर सन् १८६८ में भारत गवर्नमेण्ट ने यह निश्चय किया कि जहां तक सम्भव हो सके हस्त लिखित संस्कृत ग्रन्थों का पता लगाया जाय और उनकी उपयुक्त सूची बनाकर छाप दी जाय। यह कार्य अब तक चल रहा है और सहस्रों ग्रन्थों का पता लग चुका है। सबसे बड़ा सूचीपत्र कैटालोगस कैटालोगोरम नाम से योरप में छपा है। संस्कृत भाषा का इससे कितना उपकार हुआ है यह जिन लोगों ने इन सूचियों को देखा है मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। हमारी हिन्दी भाषा की ओर तो युरोपीय विद्वानों का ध्यान न होने से गवर्नमेण्ट भी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखती है, और यह समझ कर कि इसके भण्डार में तो कुछ है ही नहीं, आज तक कभी इसकी खोज का विचार को ध्यान भी न आया। हमलोग काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अत्यन्त अनुगृहीत हैं कि उसने इस बात का उद्योग किया और इसपर गवर्नमेण्ट का ध्यान दिलाया। पहिले बङ्गाल की एशियाटिक सुसाइटी ने हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के अनुसन्धान की प्रतिज्ञा की और लगभग ६०० पुस्तकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता भी लगाया, पर फिर न जाने किस कारण से यह काम बन्द कर दिया गया। सभा के पुनः उद्योग करने पर पश्चिमोत्तर प्रदेश की गवर्न्मेण्ट ने उसे ४००) रु० वार्षिक देना स्वीकार किया, कि जिसमें सभा इस काम को स्वयं कर सके। साथ ही गवर्न्मेण्ट ने यह भी प्रतिज्ञा की कि जो रिपोर्ट प्रतिवर्ष सभा देगी उसे वह अपने व्यय से छाप कर प्रकाशित करेगी। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट अभी जा चुकी है और वह अभी गवर्न्मेण्ट के विचाराधीन है, अतएव उसके विषय में आज हम कुछ विशेष नहीं कहा चाहते। सब मिलाकर २५७ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का पता सभा ने इस वर्ष लगाया है। आगे चलकर हम इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में विस्तार रूप से लिखेंगे। पर आज हमारा कहना इतना ही है कि सभा के इस उद्योग से हिन्दी भाषा को बड़ा लाभ होगा। कितने ही अमूल्य रत्नों का जो अब तक न जाने कहां छिपे पड़े थे, पता लग जायगा और सबसे बढ़ कर बात तो यह होगी कि युरोपीय विद्वानों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हो जायगा। हिन्दीभाषा के इतिहास जाननेवालों से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दी पद्य के असंख्य ग्रन्थ अब भी राजपुताना, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड आदि प्रान्तों में अप्रकाशित विद्यमान हैं। क्या हिन्दीभाषा के रसिकों का यह कर्तव्य न होना चाहिए कि इन ग्रन्थों का पता सभा को लग जाय और उनके प्रकाश होने का उद्योग हो।

* * *

इन प्राचीन पुस्तकों की बात लिखते लिखते हमें दो एक राजस्थानों की बात स्मरण हो आई। जयपुर के पूर्व महाराज रामसिंह जी बड़े विद्यारसिक और गुणग्राही थे। इन्होंने अपने समय में असंख्य भाषा और संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह किया। ऐसा सुनने में आता है कि इनमें जो बहुमूल्य और अप्राप्त थे, तथा च जो महाराज को अत्यन्त प्रिय थे वे सब उनकी मृत्यु के कुछ पूर्व महलों में पत्थर की अलमारियां बनवाकर दिवालों में चुनवा दिए गए। हम इस गप्प को सत्य नहीं मान सकते, पर यदि यह वास्तव में सत्य है तो इससे बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता। अस्तु, जो कुछ हो, पर आज दिन जयपुर में दो पुस्तकालय वर्तमान हैं। एक तो पबलिक लाइब्रेरी, जिसमें अंग्रेज़ी पुस्तकों का विशेष संग्रह है। इस पुस्तकालय में प्रत्येक पुरुष जा सकता है। दूसरा पुस्तकालय राजप्रासाद में है, जिसमें प्रायः हस्तलिखित पुस्तकें रक्खी हैं। इस पुस्तकालय के भी दो भाग हैं। एक में साधारण पुस्तकें रक्खी हैं, जिनके दर्शन कुछ विशेष उद्योग करने पर हो सकते हैं। दूसरे भाग में अमूल्य रत्न वस्त्रों में बँधे पड़े हैं। उन सबपर महाराज की मोहर है। इस अवस्था में न वे कभी खुलते हैं और न यही पता लगता है कि वे सड गल गए या ज्यों कि त्यों बने हुए हैं। इस भाग की पुस्तकों का देखना असम्भव है। स्वयं महाराजा साहब ने भी कदाचित् ही कभी किसी बस्ते को देखा हो। पुस्तकों के रक्षापूर्वक रखने का कोई पढ़ा लिखा कभी भी विरोधी न होगा, पर उनके दर्शन दुर्लभ करके विद्या की उन्नति में बाधा डालना किस नीति के अनुकूल है यह समझ में नहीं आता। सुनने में आता है कि महाराज के यहां एक सचित्र महाभारत है जिसके बनवाने में बहुत कुछ व्यय किया गया था। अंग्रेज़ों को इसकी सुध लगने पर वे उसे देखने आए। कई अधिकारियों ने उसे ले जाना भी चाहा, पर किसी न किसी प्रकार से वह ग्रन्थ अब तक बचा पड़ा है। लोग ऐसा कहते हैं कि जब से यह घटना हुई है तभी से पुस्तकों को छिपा रखने की नीति का अवलंबन किया गया है। महाराज साहब से हमारी सविनय प्रार्थना है कि जिस प्रकार से अकाल के सम्बन्ध में उन्होंने सुनीति का आश्रय लिया है, उसी प्रकार इन अमूल्य पुस्तक रत्नों की सूची बनवा कर प्रकाशित कर दें, जैसा कि बीकानेर में किया गया है। महाराज साहब को यह विदित होगा कि बीकानेर से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक भी नहीं गई । अतएव सूची के छप जाने पर पुस्तकों के जाने का भय न रहेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि जयपुर दर्बार हमारी प्रार्थना पर विचार कर विद्योन्नति की ओर से जो वह उदासीनता दिखा रहा है, इस कलङ्क को दूर करेगा। महाराज मानसिंह से वीर, धीर, पराक्रमी, विद्वान, गुणग्राही और विद्यारसिक की गद्दी पर विराज कर हमको दृढ़ विश्वास है कि महाराज सवाई माधोसिंह जी भी अपने प्रसिद्ध पूर्वज के गुणों का परिचय दे अमोघ यश के भागी होंगे। हम भारतवर्ष के अन्य प्रसिद्ध पुस्तकालयों के विषय में समय समय पर लिखते रहेंगे।

* *
*

श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के स्मरणार्थ जो वृहत भवन कलकत्ते में बनेगा उसका वृत्तान्त हिन्दीपठित समाज को विदित है। श्रीमान लार्ड कुर्ज़न महोदय का प्रस्ताव है कि इसमें अन्य प्राचीन वस्तुओं के व्यतिरिक्त भारतवर्ष के बड़े बड़े लोगों की मूर्तियां और चित्र भी रहेंगे। अब इस प्रस्ताव के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ कहना वृथा है, क्योंकि अब तो यह पूर्णतया निश्चय ही हो चुका कि महाराणी के स्मरण में कोई प्रजाहितकारी कार्य न करके यह प्रस्तरगृह ही बनाया जाय। श्रीमान लार्ड कुर्ज़न ने जो वक्तृता कलकत्ते में इस विक्टोरिया हाल के सम्बन्ध में दी थी, और जिसमें इस बात का पूरा पूरा वर्णन किया था कि इस विक्टोरिया भवन में क्या क्या रहेगा, उसमें श्रीमान ने भारतवर्ष के अनेक बड़े लोगों के नाम लिए थे जिनके चित्रों के वहां लगाने की उन्होंने अनुमति प्रगट की थी; पर उन सबमें से एक नाम भी भारतवर्ष की भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रन्थकारों का न था। वीर, पराक्रमी, बुद्धिमान लोगों के अतिरिक्त उन लोगों को कीर्ति के चिन्ह भी उस भवन में विराजने चाहिएं जिन्होंने अपनी लेखनी से अपने देश का असीम उपकार किया है। इस बात को इस देशवासी क्या युरोप वासी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि गुसाईं तुलसीदास जी के रामचरितमानस ने देश का वह असीम उपकार किया है कि जो दूसरे किसी उपाय से होना असम्भव है, डाक्टर ग्रियर्सन का कथन है कि यदि कृस्तानों के लिए बाइबिल माननीय पुस्तक है तो भारतवर्ष के लिए तुलसीदास जी की रामायण भी उसी प्रकार माननीय है। बालक, वृद्ध, युवा, बड़े, छोटे, अमीर गरीब, सबके यहां इसके दर्शन होते हैं। इसी प्रकार भारतवर्ष की देशभाषाओं में अनेक लेखक होगए हैं जिनके चित्रों का समावेश विक्टोरिया हाल में होना अत्यन्त आवश्यक और उचित है। हिन्दी के लेखकों में से तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल, केशवदास, लल्लूलाल, हरिश्चन्द्र, शिवप्रसाद, लक्ष्मणसिंह प्रतापनारायण मिश्र आदि लेखकों में से जिनके चित्र मिलसकें, वे सब विक्टोरिया हाल में लगाए जाने चाहिएं। जिन महानुभावों के नाम ऊपर दिए गए हैं उनमें अधिकांश के चित्र प्राप्त हैं। हमको विश्वास है कि हमारे सहयोगीगण इस प्रस्ताव पर विचार कर इस विषय का आन्दोलन अपने पत्रों में मचावेंगे।

* *
*

हिन्दी भाषा में गोसांई तुलसीदास की रामायण से बढ़कर दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ नहीं है। जितनी बिक्री और प्रतिष्ठा इस अमूल्य रत्न की इस देश में हुई है उतनी संस्कृत रामायण को भी न हुई। परन्तु खेद का विषय है कि ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की यह दुर्दशा हो जाय कि किसी संस्करण में शुद्ध पाठ न मिले। बांकीपुर के खड्गविलास प्रेस से जो रामायण कई वर्ष हुए छापी गई थी और जिसकी बड़ी धूम मचाई गई थी, उसे देखने से प्राचीन प्रतियों से मिलाने पर उसपर से भी श्रद्धा जाती रही। अतएव ऐसे ग्रन्थ को शुद्धता पूर्वक छापने का जो बीड़ा उठावे उसका हिन्दी पठित समाज को बड़ा अनुगृहीत होना चाहिए। इस उद्योग काशी की नागरीप्रचारिणी सभा का और इस संस्करण के प्रकाशक इण्डियन प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हैं। पाठ का संशोधन अनेक प्राचीन प्रतियों से हो रहा है। इन सब में सबसे प्राचीन प्रति संवत् १६६१ की लिखी हुई है, परन्तु यह केवल बालकाण्ड मात्र है, दूसरी प्रति राजापुर की अयोध्याकाण्ड है, जिसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसे स्वयं अपने हाथों से लिखा था। तीसरी प्रति १७०४ संवत् की लिखी हुई है और चौथी १७२१ की है। इन हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त बन्दन पाठक जी की छपवाई हुई तथा उनकी संशोधित, और महाराज काशीराज की छपवाई हुई पुस्तकों से भी सहायता ली जाती है। इन सब प्रतियों से पाठ मिलाने पर गोसाईं जी के ग्रन्थ की विचित्र अवस्था देखने में आती है। जहां जहां यह पुस्तक छपी है कुछ न कुछ पाठपरिवर्तन सम्पादक ने अपने मन से कर दिया है। ऐसे अमूल्य और प्रसिद्ध ग्रन्थ का एक शुद्ध संस्करण हो जाना अत्यन्त आवश्यक था। हम काशी नागरीप्रचारिणी सभा के उद्योग को हृदय से सराहते हैं कि उसने इस काम को अपने हाथ में लिया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि वह इसे योग्यता से सम्पादित करेगी। हिन्दी के पाठकों को यह जान कर विशेष आनन्द होगा की यह संस्करण सचित्र होगा। ऊपर हम हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के विषय में लिख आए हैं। हमारे पाठक इस बात को देखेंगे कि यदि यह खोज न होती तो रामायण की इतनी प्राचीन प्रतियों के मिलने में कितनी कठिनता होती। परन्तु पता लगजाने से अब इनका मिल जाना कोई कठिन नहीं है। सभा से हमारी प्रार्थना है कि वह पृथ्वीराज रासो, सूरसागर और भक्तनामावली के छापने का भी उद्योग करे। हम इन ग्रन्थों के विषय में विशेष रूप फिर कभी लिखेंगे।

विधि-विड़म्बना

१

चारु चरित तेरे चतुरानन ! भक्तियुक्त सब गाते हैं;
इस सुविशाल विश्वकी रचना तुझसेही बतलाते हैं।
कहते हैं तुझमें चतुराई है इतनी सविशेष
जिसको देख चकित होते हैं शेष, महेश, रमेश ॥

२

चतुर्वेद की शपथ तुझे है मुझे बात यह बतलाना
तूने भी, कह, क्या अपनेको महा चतुर मन में माना ?
माना सत्य; क्योंकि तूने कुछ कहा नहीं प्रतिकूल ;
कमलासन ! सचमुच यह तेरी हैगी भारी भूल ॥

३

भली बुरी बातें सुत की सब पिता सदा सुन लेता है;
अनुचित सुन लेवै तौ भी वह उसे क्षमा कर देता है।
तेरा तौ त्रिभुवन में विश्रुत परम पितामह नाम;
फिर तुझसे कहने सुनने में भय का है क्या काम ?

४

दोषराशि से दूषित तेरी करतूतें हम पाते हैं ;
अतः यहां पर कोई कोई उनमें से दरसाते हैं।
अतिनीरस, अतिकर्कश, अति कटु वेद-वाक्य-विस्तार
क्षण भर तू समेट कर सुन निज अविचारों का सार ॥

५

विक्रम भोजादिक महीप वर, महीमयङ्क महाज्ञानी,
सरस्वती के सच्चे सेवक, देवद्रुम समान दानी।
तूने इनसे भूतल भूषित किया अल्प ही काल ;
भूल और क्या हो सकती है इससे अधिक विशाल ?

६

काव्य-कला-कौशल-सम्बन्धीरुचिर-सृष्टिकेनिर्माता;
मधु-मिश्री से भी अति मीठी वचन-मालिकाकेदाता।
कालिदास-भवभूति आदि को अन्य लोक पहुँचाय,
कविता-वधू विधे ! तूने हीं विधवा करदी हाय !!

७

कपिलकणादपतञ्जलिगौतमव्यासआदिवर विज्ञानी,
जिनकी कीर्ति-ध्वजा अभीतकसततफिरैहैफहरानी।
उनको भी तूने-क्षणभंगुर किया, विवेक विहाय,
दिखलावैं हम तेरी किन किन भूलों का समुदाय ?

८

रम्यरूप, रसराशि, विमलवपु, लीला-ललित मनोहारी,
सब रत्नों में श्रेष्ठ शशिप्रभ अति कमनीय नवल नारी,
रच, फिर उसको जराजीर्ण तू करता है निःशेष !
भला और तुझ जरठ जीव से क्या होगा सुविशेष ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

उपल पात, जल पात, भयङ्कर वज्रपात भी सहते हैं;
देहपात तक भी सहने में कोई कुछ नहिं कहते हैं।
किन्तु असह्य उरोजपात का करते ही सुविचार
तेरी विषम-बुद्धि पर बुध-वर हँसते हैं शत वार ॥

१०

कटु इन्द्रायण में सुन्दर फल! मधुर ईख में एक नहीं!!
बुद्धिमान्य की सीमा तूने दिखलाई है कहीं कहीं।
निपट सुगन्धहीन यदि तूने पैदा किया पलाश,
तो क्या कञ्चन में भी तुझको करना न था सुवास?

११

विश्व बनानेवाला तुझको सब कोई बतलाते हैं;
विहग बनाने में भी तेरी भूल किन्तु हम पाते हैं।
यदि तेरे कर में कुछ होता कला-कुशलता-लेश,
काक और पिक एक रङ्ग के क्यों होते लोकेश?

१२

वायस विहरें हैं गलियों में; हँस न पाए जाते हैं;
कण्टकारि सब कहीं; कमलकुल कहीं कहीं दिखलाते हैं।
मृगमद पाने का क्या कोई था ही नहीं सुपात्र,
जो तुने उससे पशुओं का किया सुगन्धित गात्र?

१३

नित्य असत्य बोलने में जो तनिक नहीं सकुचाते हैं,
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर बड़े बड़े उग आते हैं?
घोर घमण्डी पुरुषों की क्यों टेढ़ी हुई न लङ्क?
चिन्ह देख जिसमें सब उनको पहचानते निशङ्क ॥

१४

दुराचारियों को तू प्रायः धर्म्माचार्य बनाता है;
कुत्सित-कर्म्म-कुशल कुटिलों को अक्षरज्ञ उपजाता है।
मूर्ख धनी; विद्वज्जन निर्धन; उलटा सभी प्रकार।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा! बार बार धिक्कार ॥

१५

घोड़े जहां अनेक, गधों का वहां काम क्या था? सच कह;
विदित होगई तेरी सारी चतुराई; तू चुपही रह।
शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार,
लिखवाता है उनके कर से नए नए अख़बार ॥

१६

विधे! मनोज्ञ-मातृभाषा के द्रोही पुरुष बनाना छोड़
रामनाम सुमिरन कर बुड्ढे और काम से अवमुख मोड़
एकानन हम, चतुरानन तू; अतः कहें क्या और विशेष
बुद्धिमान जन को इतना ही बतलाना बस है भुवनेश

शीशे के कारख़ाने
और
मिस्टर वागेल्

पण्डित नीलकण्ठ वागेल् महाशय जाति के महाराष्ट्र ब्राह्मण एक उच्चकुल के मेम्बर और बम्बई यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं। घर सम्पन्न और बड़े बुद्धिमान चतुर हैं। यदि चाहते वकालत या डाक्टरी की शिक्षा लाभ करके अप आत्मोन्नति करते। पर नहीं, धन, योग्यता सौशील्य के साथ सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने आप साहस और पुरुषार्थ भी दिया है। आप विलाय गए—बारिस्टरी की शिक्षा पास करने नहीं, बल्कि काँच के बर्तन बनाने का काम सीखने, जिस में आप विज्ञ हो कर अब बम्बई लौट कर आए हैं, जहां अपना कारख़ाना खोलेंगे। इस होनहार युवक महाराष्ट्र ब्राह्मण को कैसी कैसी कठिनाइयां और आपत्तियां काँच के काम सीखने में पड़ी हैं, सब सुनने ही योग्य हैं। इनको अनेक कारख़ानों मारे मारे फिरना पड़ा। कारख़ानेवाले अंग्रेज़ों कहा हम आपको काम नहीं सिखलावेंगे।

आप इस का पूरा पूरा वृत्तान्त मिस्टर वा के लेक्चर से, जो उन्होंने गत १७ दिसम्बर, १९ को लण्डन नैशनल ऐसोसिएशन के अधिवेशन सभापति लार्ड रे महोदय, पूर्व गवर्नर बम्बई सन्मुख दिया, भली भांति जानेंगे कि इन्हें कैसी कठिनाइयां और क्लेश सहने पड़े। कांच काम सीखना सुगम नहीं है। इसमें कितना शारीरि कष्ट सहना पड़ता है। कारख़ाने में इतनी कड़ी और गरमी रहती है कि मुंह जल जाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। शरीर में दाने दाने पड़ जाते हैं। कुलियों में कुली बनकर रहना पड़ता है। सब प्रकार के कष्ट मिस्टर वागेल् ने, अपने देश के वासियों के लिये लाभदायक व्यापार स्थापित करने में, सहे और झेले। सर जार्ज वर्डउड ने, जो उस सभा में उपस्थित थे, लेकचर सुनकर कहा कि भारतवर्ष के युवा पुरुष काँच के काम में लाभ प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि शीशे और कांच के बरतनों की भारतवर्ष में बड़ी खपत है। फिर सर जान जार्डन ने कहा, कि भारतवर्ष में कांच की चूड़ियों का बड़ा व्यापार और उसकी खपत है, इस कारण इस कार्य में विशेषोन्नति भारतवर्ष में हो सकती है। इसके उपरान्त लार्ड रे ने कहा कि भाग्यवश कैसा उत्तम संयोग हुआ है कि पहिले पहल जो हिन्दोस्तानी काँच के बरतन बनाने का काम सीखने विलायत आए वे ग्रेजुएट हैं, जो अपने देश में जाकर अपने सहयोगीदेशवासियों से कह सकेंगे कि द्रव्योपार्ज्जन और जीविका लाभ करने के लिये सरकारी नौकरी के अतिरिक्त भी अनेक व्यापार-सम्बन्धी बड़े बड़े काम खोले जा सकते हैं। इस समय भारतवर्ष में इसकी आवश्यकता है कि विचारपूर्वक अनुसन्धान वा जांच की जावे कि किस प्रकार की कारीगरी के माल की खपत अधिक है। इसके उपरान्त वह कारीगरी हिन्दोस्तानी सीखें और उसके कारख़ाने जारी करें। इस बात का अनुसन्धान करना और इसमें विज्ञता लाभ करनी कि कौन कौन से कारख़ाने किस प्रकार के किस किस स्थान पर खुल सकते हैं, गवर्नमेण्ट का काम होना चाहिए। फिर मिस्टर वागेल् की आपत्तियों और कठिनाइयों को वर्णन करके लार्ड महोदय ने कहा कि हमारा कर्त्तव्य और धर्म है कि हम अंगरेज़ कारख़ानेवालों को मनोगत करें कि वे अपने क्षुद्र भावों को चित्त से हटा दें। हिन्दोस्तानी महारानी राजराजेश्वरी की एकमात्र प्रजा हैं, अन्य राज्य की प्रजा नहीं हैं। परस्पर उनसे समान वर्ताव होना चाहिए"। लार्ड महोदय एक विख्यात पुरुष, भारतवर्ष के शुभचिन्तक और इस देश की उन्नति चाहनेवाले हैं। उनके सदुपदेशों पर ध्यान देना उचित है और मिस्टर वागेल् के आदर्श का अनुकरण भारतवर्ष के युवा पुरुषों का परम धर्म्म होना चाहिए। ईश्वर परमात्मा इस महाराष्ट्र नवयुवक को इस कठिन शारीरक और मानसिक कष्टों के उपरान्त प्राप्त किए हुए कार्य में सफलता प्रदान करे और हमारे देशवासियों को पुरुषार्थ दे कि वे व्यापारसम्बन्धी देशोन्नति में कटिबद्ध हों।

आप बीती हुई यह उनको जुबानी सुनिए।
मिस्टर वागेल् की जरा रामकहानी सुनिए॥

'इंग्लैण्ड आने से मेरा अभिप्राय यह था कि अंगरेज़ी दस्तकारियां तथा शीशे का काम सीखूं, क्योंकि मैंने भारतवर्ष में तथा इंग्लैण्ड में भी जब से मैं यहां आया हुआ हूं, इस विषय की बहुत कुछ छानबीन करके यह जान लिया था कि और सब अन्य प्रकार की दस्तकारियों में शीशे की दस्तकारी को अपने देश में प्रचलित करना अधिक लाभदायक होगा, क्योंकि इस प्रकार की दस्तकारी के सम्बन्ध में बहुत सी सामग्री और अन्य बातें अपने देश में अत्यन्त उपयुक्त अवस्था में वर्त्तमान् हैं। इस अभिप्राय से मैंने प्रथमतः यह उद्योग किया कि किसी शीशे के कारख़ाने में मैं कारीगरी सीखने को ऐप्रण्टिस वृत्ति में भरती किया जाऊं और अपने इस उद्योग में सफलता प्राप्त करने के निमित्त मैंने अपनेको भारतवर्ष के अत्यन्त हितैषी, परिश्रमी, शुभचिन्तकों, सर जार्ज वर्डउड और स्वर्गवासी आनरेबुल मिस्टर नौरोज़जी विडपा प्रभृति ऐसे सज्जनों, सच्चे देशहितैषी सहायकों के आश्रित कर दिया। स्वर्गवासी मिस्टर नौरोज़जी विडपा उस समय अपने एजण्ट मिस्टर हारोटर ग्लासगोनिवासी द्वारा अनेक शीशे के कारख़ानेवालों से लिखा पढ़ी कर रहे थे। इसके उपरान्त एक होटल में एक सभा (कमेटी) एकत्रित की गई, जिसमें मिस्टर हारोटर ने कहा कि मैंने ३२ ऐसे कारख़ानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस विषय में बातचीत को, किन्तु सिवाय यार्क-शायर के एक कारख़ाने के और समस्त कारख़ानों ने अपना मन्तव्य यह प्रकाश किया कि किसी अन्य देशी को अपने कारख़ाने में भर्त्ती करने से इन पर बहुत से विषयों में आपत्ति बढ़ जायगी। यार्क शायर के कारख़ाने ने जो कृपा की वह इस नियम के साथ कि २०० पाउण्ड (अर्थात् ३००० रु०) मैं वार्षिक फ़ीस देता रहूं और कारख़ाने के कई विभागों में से केवल एक विभाग (डिपार्टमेण्ट) का काम सीखूं, तब तो मैं कारख़ाने में भरती हो सकता हूं। इस कारख़ाने के नियम में विशेषतः वार्षिक फ़ीस का रुपया पूरा करना मेरी सामर्थ्य से बाहर था। किन्तु मुझसे इस विषय में उत्तर मांगा गया कि मैं निराश होकर भारतवर्ष को लौट जाना वा इस नियम को पूरा करके काम सीखना चाहता हूं। इन दोनों में से मुझे क्या स्वीकृत है? जिस समय हमलोग भारतवर्ष से विलायत की ओर यात्रा करते हैं तो हम इस बात की प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि धैर्य, परिश्रम, पुरुषार्थ और शुद्धचित्त से वहां काम करेंगे, किन्तु अपनी बीती अवस्था से मुझे विदित हुआ कि ये बातें यहां आनेवालों की पूरी सहायता नहीं करतीं, वरञ्च यहां आकर अत्यन्त प्रचण्ड कठिनाइयों से भी उसे सामना करना पड़ता है, और वे ऐसी हैं कि जो किसी प्रकार किसीके टाले नहीं टल सकती। अस्तु, मुझको उत्तर में हां वा नहीं कहना अत्यावश्यक था। उस समय मैं बड़ी कष्टदायक दुविधा में लवलीन और विचित्र अवस्था में था, क्योंकि यदि हां कहता हूं तो अपने में इतने वार्षिक द्रव्य प्रदान की सामर्थ्य नहीं पाता, और यदि नहीं कहता हूं तो मानो अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त किए बिना घर लौट जाने से मरजाना और अपने देश में मुंह न दिखाना ही उत्तम था। अतएव इस घबड़ाहट में मैंने फिर सर जार्ज महोदय से प्रार्थना की, क्योंकि मैं देख रहा था कि मेरी घबराई हुई अवस्था को देख कर आप भी स्वयं कुछ घबराए हुए थे। अन्त में आपने इस विषय में सहायक होकर मिस्टर हारोटर से यह इच्छा प्रगट की कि अन्तिम दो टूक उत्तर देने के लिये मुझे थोड़ा समय और सावकाश दें। मिस्टर हारोटर ने इस बात को स्वीकार कर लिया और सभा विसर्जित हुई और अब किसीको किञ्चित् भी शङ्का नहीं रही कि मेरे लिये दो बातें रह गई—अर्थात् वार्षिक फ़ीस देना स्वीकार कर लूं या वापस लौट जाऊं। अब मेरी उस दुरवस्था और नैराश्य को भली भांति समझ आप अनुमान कर सकते हैं विशेषतः ऐसी अवस्था में कि मैं उस देश में एक परदेशी था।"

इसके उपरान्त सर जार्ज वर्डउड ने मिस्टर वागेल् को अपने एक मित्र से मिलाया और आपके मित्र ने वागेल् को एक बड़े कारख़ाने में भेजा।

पहिली बार कारख़ाने में जाना

"अस्तु मैं इस कारख़ाने के स्वामी के पास गया और मैंने इस बात पर विवाद किया कि उस कारख़ाने में मेरा भरती होना सम्भव है। किन्तु उनके साथ वार्त्तालाप करने पर मुझे विदित होगया कि कारीगरों के चित्त में द्वेष और डाह भरी हुई है और उनके चित्त में इस बात का भय समाया हुआ है कि कदाचित् कारख़ाने में मेरा भरती होने से उनके व्यापार को किसी न किसी प्रकार विशेष हानि पहुंचे। इस विषय में मैंने कारख़ाने के स्वामी को भली प्रकार विश्वास दिलाया कि वर्त्तमान् अवस्था और दशा के अनुसार उनका यह विचार व्यर्थ है। इस बात के प्रमाणित करने के लिये मैंने ब्ल्यूबुक की वे समस्त पुस्तकें मंगाईं जिनमें हमारे देश के व्यापार के नक़शे वर्त्तमान थे और मैंने उनको दिखलाया कि शीशे के व्यापार में इस समय आस्ट्रेलिया का नम्बर सबसे बढ़ा चढ़ा है, और विशेषतः जिस प्रकार के शीशे का काम मैं सीखना चाहता हूं, वैसा समस्त माल पूर्णतः आस्ट्रिया, बेलजियम, जर्मनी से भारतवर्ष में आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इंगलिस्तान से थोड़ीसी वस्तु उस प्रकार की भारतवर्ष में जाती हैं, और वह भी उत्तम श्रेणी की ऐसी वस्तु हैं जो अन्य देशों में तैयार हो सकती हैं। जैसे सायन्सविद्या सम्बन्धी यन्त्र इत्यादि, जिनके विषय में आज कल यह आशा की जाती है कि वे भारतवर्ष में तैयार होने लगेंगे। अतएव मेरा इन बातों की ओर ध्यान दिलाना इतना काम कर गया कि कारख़ाने के स्वामी ने अपने यहां मुझको भरती करने का संकल्प कर लिया और शेष बातें भी बिना किसी रुकावट के सब तै हो गईं। जैसा कि हम भारतवासी हिन्दोस्तानियों में चन्द्रवार किसी नए काम करने में शुभ समझा जाता है, इसी प्रकार मैं भी काम सीखने की इच्छा से सोमवार को कारख़ाने में गया और भट्ठी के पास अनुमान आध घण्टे तक रहा होऊंगा कि मुझे विदित हुआ कि ३० कारीगरों ने काम बन्द कर दिया और कारख़ाने के स्वामी को डराने धमकाने लगे कि सब कारीगर काम बन्द कर देंगे। कारख़ाने के स्वामी बिचारे बड़ी कठिनाई में पड़े और मेरा भी मन तब यह नहीं था कि मेरे कारण उनको हानि पहुंचे। मैं ऐसी दशा देख कर अत्यन्त उदास हुआ और झट कारीगरों के चौधरी (फोरमैन) के पास आया और मैंने उनसे कहा कि मुझको यह दशा देख कर बड़ा खेद और दुःख है कि मेरे कारण यह आपत्ति कारख़ाने में उत्पन्न हुई। मेरी कभी यह इच्छा नहीं है कि मैं आपको वा आपके व्यापार को किसी प्रकार भी हानि पहुंचने दूं। इस कारण आपको उचित है कि मेरी अवस्था पर दया करके मुझको इस कारख़ाने में मित्रवत् समझें। मेरी बातों पर कारीगरों के चौधरी ने यह उत्तर दिया—हे प्रियवर, तुम इतने उदास और भयभीत मत हो; हम तुम्हारे कारण काम बन्द नहीं किए देते हैं। हम ऐसी ही घृणा से दूसरों के साथ बर्त्तते हैं। फोरमैन ने इसके उपरान्त मुझको समझाया कि यदि मेरी जगह कोई अंग्रेज़ भद्र पुरुष होता तब भी वह यही बर्ताव करता। महाशयो, यह दूसरी बात थी कि मेरी सम्पूर्ण आशाओं पर ओस पड़ गई और कारख़ाने के स्वामी के इस उत्तर से कि वह अपने कारीगरों का स्वयं सेवक हो रहा है, मैं विपत्तियों में डूब गया। इसके उपरान्त जहां तक मैंने सुना और अपनी आँखों से देखा, मुझे किञ्चित् मात्र भी इस बात की आशा न रही कि मैं किसी कारख़ाने में भरती हो सकूंगा और फिर मुझपर नैराश्य की घन घोर घटा छागई"।

मिस्टर वागेल ने इसके उपरान्त पोस्ट आफ़िस डाइरेक्टरी से समस्त शीशे के कारख़ाने और उनके स्वामियों के नाम और पते कापी करके ३-४ कारख़ानेवालों से प्रतिदिन मिलना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः उनसे मिलने पर आपको यह अनुमान हुआ कि इन सब कारख़ानेवालों में केवल दो से कार्यसिद्धि वा सफलता की आशा दृष्टिगोचर होती है और अब उनको यह भी विदित हो गया कि यदि किसी कारख़ाने में उनका भरती होना सम्भव हो सकता है तो केवल कारीगरों के द्वारा। और इसी अभिप्राय से मिस्टर वागेल ने कारीगरों से मेल जोल बढ़ाना प्रारम्भ किया।

अंग्रेज़ी दस्तकारों वा कारीगरों की अवस्था

"कई कारख़ानेवालों ने तो मेरी प्रार्थना पर ध्यान देना ही अनुचित समझा। कारख़ानेवालों में से कई एक ने कहा कि यह कार्य भयानक है। किसीने उत्तर दिया कि इस समय तक कोई हिन्दुस्तानी भरती नहीं हुआ है। कितनों ने मेरे विचार से बड़ा विरोध किया और कितनों ने तो मुझे वह वह उत्तर प्रदान किए कि उन्हें केवल मेरा मन ही भली प्रकार जानता है। केवल दो कारख़ानों में मेरे साथ अच्छा वर्ताव हुआ। एक कारीगर से मैं पौन घण्टे तक बात चीत करता रहा। तदनन्तर मैंने अपना अभिप्राय प्रकाशित किया कि मैं भी तुम्हारे साथ कारख़ाने में जाकर काम करना चाहता हूं। कारीगर ने यों उत्तर दिया 'तुम मेरे साथ चलना चाहते हो? क्यों है न यही बात? और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें मेरे साथ कहां न चलना भावेगा ? क्या तुम मेरे साथ स्वर्ग में चलना पसन्द न करोगे ?' और यही प्रश्न वह बारबार मुझसे करता रहा। निदान मैंने उत्तर दिया निःसन्देह मैं तुम्हारे साथ चलने को प्रस्तुत हूं यदि तुम सिवाय वहां के दूसरी जगह न ले चलो। इसके उपरान्त मैंने इससे अब फिर न मिलने का चित्त में सङ्कल्प किया और इसी प्रकार एक दूसरे कारीगर से अपना मन्तव्य प्रगट किया। किन्तु इन महानुभाव को मेरी बातें सुनके ऐसा क्रोध आया और ये ऐसा बिगड़े कि मानो पाते तो कच्चा ही खा जाते। उन्होंने कहा 'ओः, यह काले विदेशी तो आज कल ऐसे बहुत से हमारे देश में पाए जाते हैं'। आप यदि इतनाही कहते तो भी बहुत था, किन्तु आपने तो इसके उपरान्त जो कुछ आपके मुँह में आया बकना आरम्भ किया। ऐसी अवस्था में मैं क्या उत्तर दे सकता था और चुप साधने के अतिरिक्त और क्या उपाय था। अपनी ऐसी अधोगत अवस्था को देख कर एक एक दिन पहाड़ होता जाता था और जो किञ्चित्मात्र आशा की झलक भी दिखाई पड़ती थी वह भी एकदम से नैराश्य के अन्धकार में लुप्त होती देखी। अब मुझको विश्वास हो गया था कि इस विषय में किसी प्रकार सफलता नहीं हो सकती। मेरा साहस, मेरा धैर्य्य, मेरी योग्यता, सब मुझसे विदा होने लगे। और अब मेरी सम्पूर्ण आशा नैराश्य से ऐसी लिप्त हो रही थी कि मैं इस विचार में पड़ गया कि मुझे ईश्वर ने व्यर्थ ही उत्पन्न किया। कदाचित् यह पहिली ही बार ऐसा हुआ था कि मेरे चित्त में ऐसे विचार ने दृढ़ता से जमना आरम्भ किया। इसी प्रकार कोई बारह कारख़ानेवालों से मिला और परिणाम में वही नैराश्य के अतिरिक्त कुछ न पाया। किन्तु इन सब बातों और आपत्तियों के होते भी इन कारख़ानेवालों और कारीगरों से मिलने पर कुछ न कुछ लाभ अवश्य प्राप्त हुआ। यद्यपि हर जगह से हताश हो हो कर लौटता था, तथापि कुछ ऐसी अपूर्व शिक्षा प्राप्त होती थी जो मुझे विशेष लाभ पहुंचा सकी। वह शिक्षा यह थी कि मुझे विदित होगया कि यह कारीगर किन बातों को पसन्द करते हैं, और कौन कौन सी बातें इनको रुचिकर और अरोचक हैं, और किस प्रकार इन लोगों तक पहुंच हो सकती है, और किस चाल से इनको अपना मित्र बनाना चाहिए और किस प्रकार इनसे सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए। एक विचित्र और बड़ी भारी बात मुझे इधर उधर दौड़ धूप में देख पड़ी कि यहां के कारीगरों और भद्रपुरुषों अर्थात् जेण्टिलमेन में बड़ा विरोध और खटपट वर्त्तमान है"। मिस्टर वागेल ने जेण्टिलमेन की पोशाक वस्त्र इत्यादि का पहिरना त्यागके फ़ैशन के वस्त्र धारण किए कि अब उन्हें देख कर अंगरेज़ कारीगर का धोखा होता था।

ब्लैकफ़ेयर का "शीशे का कारख़ाना"

"निदान ईश्वर की कृपा से समय सानुकूल हुआ। एक दिन फिरते फिरते ३ बजे के लगभग मैं ओर जा रहा था कि समर स्ट्रीट में एक छोटा सा शीशे का कारख़ाना मैंने देखा। साइनबोर्ड पर आंख उठा कर देखा तो यह नाम लिखा था 'ब्लैक फ़ेयर का शीशे का कारखाना' मैं झट पट कारख़ाने के अन्दर पहुंचा तो देखा कि बहुत से कारीगर अपने अपने काम में तत्पर हैं, किन्तु किसी ने मेरी ओर न ताका। मैंने पूछा कि मैनेजर साहब कहां हैं ? तो विदित हुआ कि वे कहीं गए हैं, यदि कुछ काम हो तो उनके स्थान पर मैनेजर साहेब की लड़की उपस्थित है। जब मुझसे प्रश्न हुआ कि आप किस अभिप्राय से पधारे हैं मैं बड़े चक्कर में पड़ा और चकित सा था कि इस लड़की से क्योंकर अपना मन्तव्य प्रकाशित करूं। और ऐसी दुविधा की दशा में व्यथित होकर मैंने कहा कि मुझको एक दरजन बोतलें एक विशेष चाल की बनवानी अभीष्ट हैं। इसका प्रत्युत्तर यह मिला कि 'कल किसी समय आप पधारें मैनेजर साहब से भेंट हो सकती है'। किन्तु मैं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां से लौट नहीं आया, वरञ्च अवसर पाकर इधर उधर थोड़ी देर तक टहलता रहा, जिसमें कारीगर लोग भली भांति मेरे स्वरूप से परिचित हो जावें। दूसरे दिन मैं फिर इस कारख़ाने में आया और मैनेजर साहब से भेंट भई। फिर एक दरजन बोतलों के लिये आज्ञा दी और दाम अगाऊ देने के लिये मैंने बड़ा हठ किया। यद्यपि मैंने दाम नहीं दिए पर मेरे अगाऊ दाम देने के हठ से मैनेजर साहब ने बड़े कृपापूर्वक मुझसेबर्त्ताव किया और इस कारण मुझे फिर अवसर मिला और मैंने इनसे कारख़ाने की देख भाल और सैर करने की आज्ञा चाही। मैनेजर ने मेरे इस निवेदन को स्वीकार किया और ३ घण्टे के लगभग मैं कारख़ाने की देखभाल और सैर करता रहा। इस सैर में कुछ देर तक मैं कारीगरों के काम को देखा किया और कुछ देर तक इनको यह जताता रहा कि मैं हिन्दुस्थानी हूं। इतने ही में मुझसे यह प्रश्न होने आरम्भ हो गए कि क्या तुम्हारे ऐसेही भारतवर्ष में सब मनुष्य हैं? वह क्या क्या करते हैं? वह क्या खाते हैं? वह भी हमारे ऐसे घरों में रहा करते हैं? तुम्हारे यहां कोई रेल है? तुम जानते हो रेल क्या वस्तु है? जहां तक मुझसे सम्भव था मैं इन प्रश्नों का पूरा पूरा उत्तर देता रहा और इसके अतिरिक्त मैंने इनकी जिज्ञासा बढ़ाने को शेर, सांप, हाथी आदि की चर्चा छेड़ दी। अतएव इस दिन अत्यन्त प्रसन्नता और आनन्दपूर्वक इन लोगों से विदा होकर दूसरे दिन फिर जाने की आशा में मैं लौट आया।"

मिस्टर वागेल दूसरे दिन इस कारख़ाने में ऐसे समय पर पहुंचे कि दिन भर के काम करनेवाले कारीगर अपने घरों को जा रहे थे और रात के काम करनेवाले कारीगर अब अपना काम आरम्भ कर रहे थे। शीशे के कारख़ानों में रात दिन लगातार काम होता रहता है, जिसमें लकड़ी और कोयला, जो भट्ठियों में जला करता हैं, वृथा नष्ट न हो।

"इस बेर मैनेजर ने मेरा बड़े आदरपूर्वक स्वागत किया और मैं भी प्रत्येक कारीगर से भली भांति गप शप करता रहा। मुझको यहां अपना समय व्यतीत करने में यह लाभ दिखाई दिया कि कारीगर लोग मुझसे बात चीत करने के बड़े जिज्ञासू थे और ऐसी कृपा और मेल जोल देखके मुझको अपना वास्तविक मन्तव्य प्रगट करने का साहस सा होने लगा। निदान मैंने कारख़ाने के स्वामी मिस्टर सी से पूछा कि यदि एक यथोचित् द्रव्य फ़ीस में आपकी भेंट करूं तो क्या आप मुझको ऐप्रेण्टिस समझ कर काम सिखाने के लिये इस कारख़ाने में भरती करेंगे? मैंने मिस्टर सी को यह भी समझा दिया कि उनके व्यापार में कदापि किसी प्रकार का अवरोधक मैं न होऊँगा। और उनके स्वत्व की रक्षा के लिये अपने को कानून के नियमानुसार प्रतिबद्ध करने को मैं सब प्रकार से प्रस्तुत हूं। मिस्टर सी ने बड़े हठ के साथ यह उत्तर दिया कि 'नहीं, नहीं, साहब, मैं यह नहीं कर सकता हूं"। मैंने भी अपनी बात पर बहुत ही हट किया, किन्तु मिस्टर सी वारम्वार यही कहते रहे कि "कदापि नहीं। ऐसा होना असम्भव है"। तब मैं चुप हो रहा। आपकी महती कन्या इस कारख़ाने के दफ़्तर का सम्पूर्ण कार्य आपही करती हैं। मैंने उनसे सब हाल कह सुनाया। और मेरे जी में यह कल्पना हो रही थी कि यहां आने का सिलसिला भी टूटा चाहता है। किन्तु मिस सी ने बातों बातों में अपनी सम्मति यों प्रकाशित की कि थोड़े दिनों के अनन्तर कारख़ाने के स्वामी से प्रार्थना करना"।

मिस साहबा के इस अनुरोध से मिस्टर वागेल को इस विषय में फिर साहस हुआ और आप प्रति दूसरे दिन इस कारख़ाने में बराबर आते रहे और क्रमशः यहां के प्रत्येक मनुष्य से आपकी गहरी मित्रता हो गई।

"एक दिन सन्ध्या को मैंने मिस्टर सी से कहा कि मेरे साथ कृपा करके थियेटर चलिए। आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी बात मान ली। आपको थियेटर ले जाना मेरे लिये अत्यन्त भाग्योदय और सफलता का कारण हुआ। आप अपनी जीवित अवस्था में कदाचित् दो चार ही बेर थियेटर गए थे। मैंने आपसे यह बात पक्की कर ली कि सन्ध्या के सात बजे थियेटर में मिलूंगा। हमलोग ठीक समय पर थियेटर में मिले। मेरा विचार हुआ कि मैं बड़े दर्जे का टिकट लूं, किन्तु मिस्टर सी ने कहा कि अधिक रुपया व्यय करना वृथा है। अस्तु हमलोगों ने एक छोटे दर्जे के टिकट ले लिए। अभिनय समाप्त होने पर हम दोनों एक एक बोतल लेमोनेड पी कारख़ाने की ओर चल पड़े। दिन भर तो कुहिरा और ठण्ढक अधिक रही, किन्तु जब हम थियेटर से बाहर आए तो देखा कि आकाश विमल और चाँदनी भली भांति छिटकी हुई है। इस कारण गाड़ी पर सवार न होकर हमने पैदल घर चलना उचित समझा। साढ़े ग्यारह बजे हम ब्लैकफ़ेयर नामक पुल पर पहुंचे। उस समय का कुछ विचित्र ही दृश्य था। नदी का जल स्वच्छ और विमल चाँदनी से चमकता हुआ अपने प्रवाह में मग्न था। चन्द्रमा ने अपने तेजोमय प्रकाश से सम्पूर्ण बड़े बड़े ऊँचे ऊँचे मकानों को रुपहला वस्त्र धारण कराके विचित्र ही रीति से सुशोभित किया था। इस सुहावने दृश्य को देखकर चित्त कैसा प्रफुल्लित था कि मैंने उसी क्षण यह विचार किया कि अब एक बेर और अपना मन्तव्य अन्तिम उद्योग के साथ प्रकाशित करके अपनी प्रारब्ध का फल देखूं। अतएव मुझसे रहा नहीं गया और मैंने मिस्टर सी से अपनी लालसा इस बेर दूसरे रूप से वर्णन करनी आरम्भ की। मैंने उनसे कहा कि मेरे एक मित्र शीशे का काम सीखने के अभिप्राय से इस देश में आ रहे हैं और वह मेरे बड़े गाढ़े मित्र हैं; अतः मेरी प्रार्थना है कि आपको उचित है कि आप कृपा करके अपने कारख़ाने में उनको काम सिखाइए। मिस्टर सी ने कहा कि 'तुम जानते हो कि यह अत्यन्त कठिन काम है और इसमें बड़ा भय है, मैं उनको अपने कारख़ाने में भरती नहीं कर सकता'। तब फिर मैंने कहा कि वह आदमी बहुत अच्छा है और मुझे निश्चय है कि आप उससे बहुत ही प्रसन्न रहेंगे। (मिस्टर सी) मैं तुमसे निश्चय करके कहता हूं कि मैं उनके लिये कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि मैं उनको नहीं जानता; मुझसे तुम्हारे भरती करने में कोई विरोध नहीं है, किन्तु उनको मैं कदापि भरती नहीं कर सकता। (मैं) क्या आप मुझको काम सिखावेंगे? (मिस्टर सी) इसमें मुझको कोई आपत्ति नहीं है! (मैं) क्या मैं यह समझूं कि आप मुझको काम सिखाने की प्रतिज्ञा करते हैं?। (मिस्टर सी) हां, हां, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। उस समय मुझको जो आनन्दमय प्रसन्नता प्राप्त हुई उसको मैं किसी प्रकार भी प्रकट नहीं कर सकता। मैं फूला नहीं समाता था और अब मिस्टर सी की इस बात से मेरे शरीर में मानो फिर से प्राण आ गए"। अतएव सब बहुत ही शीघ्र स्थिर होकर मिस्टर बागेल ने शिष्य की भांति काम सीखना प्रारम्भ किया। यह अवश्य हुआ कि नई नई कठिनाइयाँ सामने आईं और कई प्रकार की रुकावटें उपस्थित हुईं। किन्तु मिस्टर सी ने इस अवसर पर बड़ा प्रशंसनीय काम किया और बड़े धैर्य और दृढ़ता से अपने बचन का पालन करके सम्पूर्ण कठिनाइयों का सामना किया।

ट्रेड युनियन का विरोध

"तीन वा चार दिन मैंने इस कारख़ाने में काम किया होगा कि मिस्टर सी के पास ट्रेड यूनियन वालों का एक निम्नलिखित पत्र आया—'हमको विदित हुआ है कि तुम्हारे कारख़ाने में एक अन्य देशीय काला आदमी काम सीखता है। अस्तु इस विषय में तुम सभा के सन्मुख क्या उत्तर उपस्थित करते हो'। मिस्टर सी ने मुझको यह पत्र दिखा कर यों पत्रोत्तर दिया कि 'निःसन्देह एक अन्य देशीय हमारे कारख़ाने में काम सीखता है, किन्तु पूर्व इसके कि वह इस कारख़ाने में भरती किया गया, उसने मुझको इस विषय में पूर्ण निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करा दिया है कि ट्रेडयूनियन जिन सत्वों का रक्षक है उनको इससे कोई हानि न पहुंचेगी'।

"दस दिन के अनन्तर इस सभा ने फिर यों पत्र लिख कर भेजा कि तुम इस अन्य देशी को अपने कारख़ाने से निकाल दो, नहीं तो यह सभा तुम्हारे कारीगरों को काम बन्द कर देने की आज्ञा और परामर्श देगी'। यह दशा देख कर मुझको निश्चय हो गया कि फिर जमा जमाया रङ्ग बिगड़ा चाहता है। मैं अत्यन्त निराश होकर मिस्टर सी के पास गया और मैंने अत्यन्त शोक के साथ उनसे कहा कि आपने तो निःसन्देह मुझे कृतार्थ किया था, किन्तु मेरा दुर्भाग्य है। अब आप मेरे पीछे अपने कारबार अथवा व्यापार को हानि न पहुंचावें', और मैंने दृढ़ संङ्कल्प कर लिया है कि अब मैं अपने देश को लौट जाऊंगा। मिस्टर सी ने कहा 'ओल्ड चैप! तुम क्यों इतना व्याकुल होते हो? मुझको उचित है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन करूं और मैं दृढ़ता से अपनी बात पर स्थिर रहूंगा'। आपने इसके अनन्तर ट्रेड यूनियन को लिखा 'मैंने इस पुरुष को अपने कारख़ाने में भरती करने पर व्यापार सम्बन्धी संपूर्ण स्वत्वों की पूर्णतया रक्षा करली है और मैंने इसको काम सिखाने का वाक्य प्रदान किया है। कोई कारण नहीं जाना जाता कि आपलोग इस विषय में क्यों विघ्न डालने की चेष्टा करते हैं। यदि आपका विरोध अब भी शेष रह गया हो तो आपको अधिकार है, जो मन में आवे कीजिए, किन्तु मैं कदापि अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग न करूंगा'। इस उत्तर को पाकर ट्रेड यूनियन ने फिर चूं तक न की। ईश्वर ईश्वर करके अब मैंने इस कारख़ाने में अपना पैर जमाया, किन्तु अभी बहुत से कष्ट और दुःख झेलने शेष रह गए थे। प्रथम प्रथम तो मिस्टर सी ने एक नली, एक कैंची और एक चिमटा दे कर काम सिखाना आरम्भ किया। इस बात को तो कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मेरे लिये यह सर्वथा नया काम था और मानो नई विपत्ति का सामना था। क्योंकि थोड़े दिन पूर्व मेरी यह दशा थी कि कठिनता से एक बण्डल बांध सकता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कार्य ऐसा कठिन और दुखदाई था कि मैं ही उसे भली भांति जान सकता हूं। दिन रात भट्टा आंच से दहकता ही रहता और इससे एक गज़ के अन्तर पर मुझको काम करना पड़ता था। मैं शब्दों के द्वारा कदापि नहीं बता सकता कि कैसी प्रचण्ड और दाहक आंच की लपट आती थी। उसका ज्ञान देखने और भोगने ही पर निर्भर है। कितनी बेर ऐसा संयोग हुआ कि काम करते करते मैं मूर्छित हो हो गया। प्रायः अधिक से अधिक तीन वा चार घण्टे प्रतिदिन काम करता था, क्योंकि मुझसे अधिक समय तक काम करना असम्भव था और घर पर पहुंचकर मैं मुर्दे के समान पड़ रहता था। प्रायः इतने श्रम से रोगग्रस्त भी हो हो गया और कभी कभी महादुखित होके यह विचारता था कि वृथा अपनी जान गँवाने के पीछे पड़ा हूं। किन्तु इन शारीरक और मानसिक कष्टों के अतिरिक्त और नई विपत्ति का सामना हुआ। इस विपत्ति को किसी अंग्रेज़ के सामने वर्णन करना मानो अपने को अति मूढ़ और महा पागल प्रमाणित करना है, किन्तु यदि हम हिन्दुस्तानियों के जी से पूछिए तो वह निःसन्देह एक भारी विपत्ति है। जैसे पहिले दिन जब मिस्टर सी ने मुझको काम बताना आरम्भ किया तो आपने मुझको दिखाया कि क्योंकर बरतन बनाए जाते हैं। आपने नलो के एक सिरे से गले हुए शीशे को हिला कर दूसरे सिरे को डेढ़ इंच तक मुँह में लेकर फूंकना प्रारम्भ किया और इसके अनन्तर मुझसे कहा कि देखो, इसी प्रकार फूंको, अपने मुंह से नली निकाल कर मुझसे कहा लो फूंको, किन्तु एकाएकी इस आज्ञा का पालन करना उस समय तो मानो मुझसे असम्भव था। हिन्दुओं के विचारानुसार उच्च कुल अर्थात् महाराष्ट्र ब्राह्मण के लिये किसी जूठी वस्तु को मुँह में लेना कैसी घोर विपत्ति का काम था। अस्तु, मैं पत्थर सरीखा बुत हो गया और मिस्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी को ओर एकटक निहारता रहा और मेरा चित्त इस कार्य के लिये नहीं बढ़ा, तथा मैं हिचकिचाहट और दुब्धा में था कि वहां शीशा ठंढा हो गया। मिस्टर सी बड़े बिगड़े कि शीशा ठंढा हो गया और मैं मुंह ताकता ही रह गया। आपने क्रोधित होकर यह कहा 'महाशय, स्मरण रखिए कि मुंह से फूंकना चाहिए न कि आंखों से'। वह विचारे क्या जानें कि मैं किस छक्के पञ्जे में पड़ा था और कैसा क्लेश मेरे चित्त को उस समय था। मुझे अपना वह समय स्मरण था कि जब बाल्यावस्था में मैं अपने भाई बहिन की बजाई हुई बांसुरी को भी स्वयं नहीं बजा सकता था। कहां तो हमारा बालपन से यह अभ्यास पड़ा हुआ है कि यदि कोई प्रिय से प्रिय निकट सम्बन्धी भी एक गिलास में पानी पी ले तो झट हम उसमें पानी नहीं पी सकते, और कहां एक अंग्रेज़ की जूठी नली मुंह में लेनी! निदान कुछ दिनों तक तो पहिले पहल बड़ी कठिनाई उपस्थित रही, किन्तु अन्त में किसी न किसी प्रकार यह भी टल गई।"

यदि मिस्टर वागेल की जगह कोई उच्च श्रेणी का अंग्रेज़ होता तो वह इन बातों को अत्यन्त तुच्छ समझता और तनिक भी आगा पीछा और घृणा न करता और न उसको अपनी धर्महानि का कुछ दुःख होता। भाग्यवश मिस्टर वागेल ने नली मुंह में लेकर अपने साथी कारीगरों के सामने बिना आगा पिछा किए काम करना आरम्भ कर दिया।

मिस्टर वागेल के चाचा परलोक सिधारे

"इस बीच में एक और महा घोर विपत्ति मुझपर अकस्मात् आ पड़ी। बम्बई में मेरे चाचा का देहान्त हो गया। आप ही अब मेरे पिता के स्थान पर थे और आप ही ने पालन पोषण करके मुझे इस योग्य किया था। आपही की कृपा से मैं इतनी शिक्षा प्राप्त कर सका और मेरी यह आन्तरिक इच्छा थी कि मैं इस विशेष कृपा का धन्यवाद दूं और अपनी कृतज्ञता इस प्रकार उनकी सेवा में अर्पण करूं कि आपने जो कुछ द्रव्य मेरे पठन पाठन और शिक्षा सम्बन्ध में व्यय किया और जो जो क्लेश मेरे कारण सहे, वह सब कदापि वृथा नहीं गया। कारखाने को आते हुए मार्ग में मिस्टर सी से भेंट हुई। मैंने उनसे यह महा शोकदायक समाचार कहा। मुझको आशा थी कि इस शोकसम्वाद के सुनकर अवश्यमेव मिस्टर सी मेरे साथ अपनी सहानुभूति प्रकाश करेंगे। किन्तु यह समाचार सुनके मिस्टर सी का प्रथम प्रश्न मुझसे यह था कि 'तुमको कुछ द्रव्य दे गए हैं?' मेरे विचार में कदापि यह बात न थी कि जो कोई इस समाचार को सुनेगा वह क्या इस ओर तनिक भी ध्यान देगा। और इससे विशेष यह कि आपने झट आज्ञा दी कि 'बोतलें झट पट तैयार करो, आज सन्ध्या को भेजी जायँगी'। इस आज्ञा को पाकर मैंने काम तो आरम्भ किया, परन्तु वास्तव में मैं समय काट रहा था और मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल और व्यथित था। इसके अनन्तर मिस्टर सी की माननीय कन्या वहां पधारीं और आपने आतेही कहा कि मुझे अत्यन्त दुःख है कि अपने चाचा की मृत्यु से आपको बड़ा शोक हुआ। मैंने पूछा आपको कैसे विदित हुआ कि मुझे अत्यन्त शोक हुआ है? मिस सी ने कहा मेरे पिता ने मुझसे कहा कि आपके बदले आज तीसरे पहर मैं बैङ्क चली जाऊं क्योंकि आप बड़े उदास थे। अस्तु उनका विचार यह था कि आपको आपने साथ कलीप टाउन ले जायँगे क्योंकि वहां कुछ पुराना शीशा देखना है। इसके अनन्तर मुझको विदित हुआ कि मिस्टर सी को मेरे साथ विशेष सहानुभूति है। एक दिन मैं अपने चाचा की मृत्यु की चर्चा कर रहा था और उनको बता रहा था कि अब क्या क्या कष्ट सहन करने पड़ेंगे, कि मिस्टर सी ने कहा 'तुम घबराओ मत, जब तक मैं जीता हूं इस व्यापार में तुमको कोई कठिनाई न पड़ेगी।' अस्तु धीरे धीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारीगरों और मिस्टर सी के साथ मेरे संबन्ध प्रतिदिन दृढ़ होते गए, और अन्त को मिस्टर सी ने तीन सप्ताह की छुट्टी ली और वे कारख़ाना मुझे सौंप गए। छुट्टी से लौट कर आपको मेरी कार्रवाई देखकर बड़ा सन्तोष हुआ और आपने अपने इस भाव को यों प्रकाशित किया कि मुंह-ज़ुबानी प्रशंसा इत्यादि करके वार्षिक फ़ीस में कुछ कमी कर दी। अब यह अवस्था है कि यदि थोड़ा सा काम भी नई चाल का कारख़ाने में तैयार होता है तो सदैव मुझको अपने साथ ले जाकर दिखाते हैं। और यदि मैं आज उनसे कहूं कि इस काम के चलाने में मेरी सहायता करें तो मुझको पूरा भरोसा है कि जो कुछ उनके बस में होगा उससे वे नहीं हटेंगे। कारीगरों को अपना मित्र बनाने का केवल यही उपाय है कि जो काम वे कर रहे हैं वही आप भी करें; जो उनका वर्त्ताव है वह अपना वर्त्ताव रक्खें; जिस चाल की बात चीत उन्हें भाती है वैसीही बात चीत करें; जो वस्तु वह पहिरते हैं वैसी चाल की वस्तु स्वयं धारण करें।" अस्तु मिस्टर वागेल इस समाज (सोसाइटी) में भलीभांति मिल गए और इसी कारण वह आज कारख़ाने में सर्वप्रिय हो रहे हैं।

"अब तो यह नियम हो गया है कि जहां मैं कारख़ाने में आया कि चारो ओर से 'आइए महाशय आइए' की ध्वनि गूंज उठती है। और प्रत्येक कारीगर अपने भरसक इस बात के उद्योग में रहता है कि मुझको किसी प्रकार का कष्ट न हो। जहां मैं काम पर आया, एक झट कुरसी ले आता है, दूसरा नली उठा देता है और मैं अपना काम आरम्भ करता हूं। यदि किसी समय काम में कोई भूल अथवा चूक हो जाती है और किसीकी दृष्टि पड़ जाती है, तो वह झट कूद कर आता है औरमुझको बता देता है कि किस चाल से उसे करना चाहिए। इन लोगों की कृपा से न मेरा समय नष्ट होता है, न मुझको कुछ दुःख सहना पड़ता है। मैं शुद्धान्तः-करण से इस बात को स्वीकार करता हूं कि इस समय न तो इन लोगों ने इस काम के सम्बन्ध में कोई भेद मुझसे छिपा रक्खा है और न ऐसी इच्छा इन लोगों की है। प्रायः पालिटिक्स, फ़िलासोफ़ी, कविता पर विवाद और बातचीत हुआ करती है, किन्तु यह बात यहां दूसरे प्रकार से हुआ करती हैं। और मुझको विदित हुआ कि कई बेर ये लोग अड़ङ्ग बड़ङ्ग बका करते हैं, परन्तु सम्पूर्ण विषयों पर भली भांति विवाद कर सकते हैं।

"यह बात अवश्य है कि इनसे ऐसी आशा नहीं हो सकती कि पार्लियामेण्ट के महामन्त्री के सदृश प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में उसके प्रिंसिपिल पर विवाद कर सकें, तौभी मैं कह सकता हूं कि प्रायः ऐसा होता है कि ऐसी गम्भीरता और पवित्रता-मय विचार, उदारप्रकृति और नीतिपरायणता उन लोगों की बातों में झलक जाती है कि जो पार्लियामेण्ट के बड़े बड़े मेम्बरों में भी नहीं देख पड़ती।"

यह मिस्टर वागेल की सिर बिती रामकहानी है। हमारे देशवासी इसे ध्यान से पढ़ें और देखें कि उनकी क्या अवस्था है। हा! क्या वह दिन आवेगा कि जब हमारे देशवासियों की आंखें खुलेंगी और वे अपना हित अनहित पहिचान सकेंगे।

मुंशी संकटा प्रसाद—

राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया

इतिहास के प्रेमियों से यह बात छिपी नहीं है कि इङ्गलैण्ड की अवस्था का परिवर्तन नार्मन लोगों के उस देश में आकर बसने पर हुआ। बादशाह विलियम ने इस देश को जीत कर यहां अपना राज्य जमाया। महाराणी विक्टोरिया उसी विलियम के वंश में हुईं। ईश्वर की कुछ विचित्र लीला है कि संसार में कहीं तो वंशों का पूर्ण नाश हो जाता है और कहीं एक ही वंश सहस्रों वर्ष तक राज्य करता चला जाता है। इङ्गलैण्ड के राज्यसिंहासन पर अज तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन स्त्रियों ने राज्य किया। पहिली महाराणी एलिज़बेथ, दूसरी महाराणी ऐन और तीसरी हमारी राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया। जिस समय महाराणी विक्टोरिया राज्यसिंहासनासीन हुईं उस समय साधारण प्रजा का प्रेम राजा की ओर से कम हो चला था।

महाराणी ने उस प्रेम की पुनः वृद्धि की और उससे अपने राज्य की स्थिरता की नेव डाली। यही नहीं, वरन् महाराणी ने अपने सरल स्वभाव, निष्कपट प्रेम और प्रजा के हितकर विचारों से वह कर दिखाया जिसे विचार और देख अब तक लोग अचम्भित होते हैं। एक समय किसी राज्य-विदूषक ने कहा था कि पुरुषों से तो स्त्रियों का ही राज्य विशेष हितकर है, क्योंकि पुरुषों के समय में स्त्रियों की अधिक प्राधान्यता हो जाती है, पर स्त्रियों के राज्यकाल में पुरुषों ही की प्राधान्यता रहती है और यही होना भी उचित है। महाराणी ने इस कथन को पूरा कर दिखाया और पूरा भी ऐसी रीति से किया कि जिसका कदाचित् विदूषक महाशय ने स्वप्न भी न देखा होगा। निज राज्य के बुद्धिमान लोगों की सम्मति से चलना उनका प्रधान नियम था। पर इस नियम के वशीभूत होकर काम करना बुद्धिमानी से किसी प्रकार न्यून नहीं है। स्त्री की देह पाने पर भी महाराणी ने अपना राज्यकाज उस उत्तमता, उस बुद्धिमत्ता और नीति-कुशलता से चलाया कि जिसकी प्रशंसा आज दिन योरप के बड़े बड़े मुकुटधारीगण मुक्तकण्ठ से कर रहे हैं। कभी आश्चर्य दिखाकर, कभी प्रश्न के आवरण में निज सम्मति देकर और कभी केवल मौन धारण करके महाराणी अपने मंत्रियों को शिक्षा देती और उनसे उचित रीति से कार्य लेती थीं। यदि हम महाराणी के राजत्वकाल की घटनाओं पर ध्यान करते हैं तो आश्चर्य्य से मुग्ध रह जाते हैं। विद्या में, विज्ञान में, कला में, कौशल में, राज्यवृद्धि में, शिक्षा प्रचार में, दीन दुखियों की सुध में—निदान प्रत्येक बात में हम इस राज्य की समता नहीं पाते। यह किसी बड़े प्रबल पुण्य का फल था कि महाराणी के समय में इतना कुछ हो गया। परन्तु अब वह शरीर वर्तमान नहीं है जिसकी हम इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, जिसके यश को मुक्तकण्ठ से गा रहे हैं और जिसके गुनगान और चरित्र वर्णन में अपनेको धन्य मानते हैं। ईश्वर करे सुनीति का प्रचार रह कर राज्य की स्थिरता बनी रहे और महाराणी के अनुपम आदर्श पर चल कर अगले राजागण अमोघ यश के भागी हों।

जन्म और वंशपरम्परा

इङ्गलैण्ड के राज्यसिंहासन पर सन् १७६० ई० में तीसरा जार्ज बिराजा। इसको चार सन्तति हुईं (१) चौथा जार्ज, (२) चौथा विलियम, (३) ड्यूक आफ़ केण्ट और (४) अरनेष्ट आगस्टस, किङ्ग आफ़ ह्यानोवर। चौथे जार्ज ने सन् १८२० ई० तक राज्य किया। अन्तिम दिनों में तो वह पागल सा हो गया था, इसलिये इसकी जीवित अवस्था ही में उसका ज्येष्ठ पुत्र सब राजकाज करता था। पिता के परलोकवास होने पर वह गद्दी पर बैठा और १० वर्ष राज्य करता रहा। इसको सन् १७९६ में एक कन्या हुई, पर वह १८१७ में मर गई। अतएव जार्ज की मृत्यु पर उसका दूसरा भाई चौथा विलियम गद्दी पर बैठा। विलियम के कोई सन्तति नहीं हुई। तीसरा भाई केण्ट था। इनका विवाह कोबर्ग की राजकुमारी विक्टोरिया मेरियालु इसा से हुआ था। ये लोग अपनी हीन आर्थिक अवस्था के कारण फ़्रान्कोनिया में रहते थे। पर जब राजकुमारी लुइसा गर्भवती हुई तो केण्ट उन्हें इङ्गलैण्ड में ले आया कि जिसमें जो सन्तति उत्पन्न हो वह इङ्गलैण्डही हो। निदान ता० २४ मई, सन् १८१९ ई०, को केन्सिंगटन राजभवन में एक पुत्री का जन्म हुआ। इस समय तक तीसरा जार्ज जीता था और उसके चार पुत्र वर्तमान थे; किसीको इस बात का ध्यान भी न हुआ कि इस कन्या के जन्म से कोई विचित्र घटना हुई, अथवा आगे चल कर वह इङ्गलैण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यसिंहासन पर विराजेगी। नामकरण के समय बड़ा झगड़ा पड़ा। पिता की इच्छा थी कि पुत्री का नाम एलीज़वेथ हो। रूस के ज़ार चाहते थे कि अलेकज़ेंड्रिना नाम पड़े। प्रिन्स रीजेन्ट, जो सन् १८२० में चौथे जार्ज के नाम से गद्दी पर बैठे, यह चाहते थे कि इसका नाम जार्जिना हो। निदान अन्त में २४ जून को सब लोगों की सम्मति से अलेकज़ेंड्रिना विक्टोरिया नाम रक्खा गया। विक्टोरिया के पिता की शारीरक अवस्था अच्छी नहीं थी। पुत्री के जन्म के एक वर्ष पीछे वे बीमार पड़े और चौथे जार्ज के गद्दी पर बैठने के ५ दिन पहिले परलोक-गामी हो गए।

बाल अवस्था

महाराणी विक्टोरिया की माता का विवाह यद्यपि ड्यूक आफ़ केण्ट के साथ हुआ और यद्यपि उन्हें इङ्गलैण्ड में रहना पड़ा, पर वास्तव में उनका हृदय जर्मन था और उनकी इच्छा सदा जर्मनी में रहने की थी। इस पुत्री के हो जाने पर और उसकी भविष्यत उन्नति पर विचार करके भी उन्हें इङ्गलैण्ड में रहना नहीं भाता था। पर वे बुद्धिमान और दूरदर्शी स्त्रीरत्न थीं, अतएव अपनी इच्छा के प्रतिकूल उन्होंने इङ्गलैण्ड में ही रहना निश्चय किया। ड्यूक आफ़ केण्ट के भ्राता प्रिंस लिओपोल्ड थे, जो सदा इनकी सहायता करते और समय समय पर अपनी उचित सम्मति से बहुत से बिगड़े हुए कामों को भी सम्हाल लेते थे। इनका विवाह पहिले चौथे जार्ज की कन्या से हुआ था, परन्तु जब वह सन् १८१७ ई० में मर गई तो इनकी सब भविष्यत आशाओं का मूल नष्ट हो गया। इस पर वे संसार से उदासीन हो विरक्तभाव धारण कर किंकर्तव्यविमूढ़ की भांति निरुद्देश्य देशाटन में अपना कालक्षेप करने लगे। जिस समय महाराणी विक्टोरिया का जन्म हुआ, उन दिनों ये स्काटलैण्ड में थे पर इङ्गलैण्ड न आए। पर ड्यूक आफ़ केण्ट की मृत्यु का समाचार सुना तो शीघ्र ही वहां चले आए और अपनी भांजी की रक्षा शिक्षा में दत्तचित्त हो अपना समय बिताने लगे। ये लोग कई मास पर्यन्त भिन्न भिन्न स्थानों की यात्रा किया करते। जब १८२० और १८२१ में ड्यूक आफ़ क्लारेन्स के दोनों पुत्र मर गए और यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि प्रिंसेस विक्टोरिया ही आगे चल कर राज-सिंहासन पर विराजेंगी, तो उनकी माता को यह भय और आशङ्का होने लगी कि जार्ज इस बात का कहीं आग्रह न करे कि राजकुमारी की शिक्षा उसके आधीन और उस प्रकार से जैसा कि वह चाहे होनी चाहिए। डचेस को सदा से जार्ज के चालचलन पर पूर्ण घृणा थी और वह कदापि नहीं चाहती थी कि उसकी कन्या उससे अलग करके ऐसे हाथों में सौंपी जाय कि जिनसे भलाई होने की कोई आशा न थी। यही कारण था जो वह प्रायः भ्रमण किया करतीं। विक्टोरिया के मामा का यह विचार था कि जहां तक और जितने दिनों तक सम्भव हो, उन्हें यह बात न बताई जाय कि वह एक समय राजसिंहासन पर विराज सकती हैं, क्योंकि इससे उनमें अभिमान उत्पन्न हो सकता है और तब उनकी उपयुक्त शिक्षा असम्भव हो जायगी। अतएव १२ वर्ष की अवस्था तक यह बात छिपा रक्खी गई। महाराणी होने के पूर्व तक राजकुमारी सदा अपनी मां के साथ रहतीं और जब तक उनकी माता अथवा मिस लेहजन (जिन्हें इनकी शिक्षा का भार सौंपा गया था) उपस्थित न होतीं, वे किसी मित्र, नौकर अथवा अन्य किसी पुरुष से कुछ बात न कर पाती थीं। जहां जहां वह जातीं मिस लेहजन साथ रहतीं, ये पुत्री से भी बढ़ कर राजकुमारी को मानतीं और अहर्निशि उन्हींके हित की चिन्तना करतीं, यहां तक कि राजकुमारी की ६ महीने की अवस्था से लेकर जब तक वह महाराणी न हुईं, मिस लेहजन ने उनका साथ न छोड़ा और कभी एक दिन तक की भी छुट्टी न मनाई। पहिले पहल राजकुमारी को जर्मन भाषा सिखाई गई, पर जब वे ९ वर्ष की हुईं तो लैटिन, अंग्रेज़ी, इतिहास, चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा गानविद्या आदि की शिक्षा दी जाने लगी, जिन सभों में उन्होंने मन लगाया और अत्यन्त तीव्र-बुद्धि होने के कारण थोड़ेही दिनों में सबका मनन कर लिया।

जब चौथा विलियम गद्दी पर बैठा तो उसने राजकुमारी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। अब यह उचित समझा गया कि राजकुमारी को यह बता दिया जाय कि भविष्यत में उन्हें क्या क्या करना होगा। एक दिन मिस लेहजन ने राजकुमारी जिस इतिहास की पुस्तक को पढ़ती थीं उसमें एक वंशवृक्ष लिख कर रख दिया। जब राजकुमारी ने पुस्तक खोली तो उस काग़ज़ को देखकर कहा "मैंने इसे पहिले नहीं देखा था।" मिस लेहजन ने कहा "यह उचित नहीं समझा गया था कि तुम इसे देखो"। महाराणी ने इसपर कहा "राजसिंहासन मेरे लिये इतना निकट है। बहुत से बालक यह जान कर शेखी करेंगे, पर वे इसकी कठिनता का अनुमान नहीं कर सकते। हां, चमक दमक बहुत है, पर कठिनता कितनी अधिक है। अब मैं समझी कि आपने मुझे लैटिन पढ़ने के लिये इतना जोर क्यों दिया था और मैंने उसे भली भांति सीख भी लिया है। मैं सदा भली रहूंगी।" मिस लेहजन ने कहा "पर तुम्हारी चाची अडेलेड अभी युवती हैं, उन्हें यदि सन्तति हुई तो पहिले वह गद्दी पर बैठेंगी।" राजकुमारी ने उत्तर दिया "हां, यदि यह हुआ तो मुझे दुःख न होगा, क्योंकि वह मुझे सबसे अधिक चाहती हैं"।

निदान इस प्रकार से लाड़ प्यार के दिन शिक्षा में बीत चले। एक दिन की बात है कि राजकुमारी, जब कि उनकी अवस्था बहुत ही छोटी थी, देखा देखी अपनी छोटी गाड़ी पर घास लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने लगीं। सङ्ग में मिस लेहजन भी थीं। इस खेल में महाराणी बहुत थक गईं, यहां तक कि अन्त में एक गाड़ी को पूरा पूरा लाद भी न सकीं। इसलिये उन्होंने मिस लेहजन से आज्ञा माँगी कि उसे वहीं छोड़ दें। इसपर वह बहुत बिगड़ीं और बोलीं कि यह तुम्हें पहिले ही सोच लेना था कि तुम कितना परिश्रम कर सकोगी। इस काम को तुम अधूरा नहीं छोड़ सकतीं। हा कर राजकुमारी को वह गाड़ी भरनी पड़ी। सारा यह कि इस प्रकार की शिक्षा बचपन ही इङ्गलैण्ड की भावी महाराणी को दी जाने लगी।

चौथे विलियम की यह बहुत इच्छा थी राजकुमारी उनके साथ प्रतिवर्ष कुछ मास रहा करें। पर डचेज़ आफ़ केण्ट को यह बात किसी अवस्था में स्वीकार न थी। यह बात यहां तक बढ़ी कि इसे लेकर कई बेर खुलाखुली दो चार बातें हो गईं। संसार में लोगों को गप्प करने के लिये ऐसे ही अवसर मिल जाते हैं। भांति भांति की गप्पें चारों ओर फैलने लगीं। पर महाराणी की माता बड़ी बुद्धिमती थीं। उन्होंने सोचा कि इङ्गलैण्ड के रईसों और ज़मींदारों को स्वयं देख लेना चाहिए कि उनकी भावी महाराणी कैसी हैं। इस उद्देश्य से राजकुमारी विक्टोरिया के साथ उन्होंने इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध प्रसिद्ध रईसों और ज़िमींदारों के यहां घूमना प्रारम्भ किया। सब जगह यथोचित सत्कार हुआ और लोगों ने देख लिया कि बजारू गप्पें सर्वथा मिथ्या हैं, तथा राजकुमारी विक्टोरिया उन सब गुणों से पूर्णतया सम्पन्न हैं जो कि इङ्गलैण्ड की भावी महाराणी में होने चाहिए। राजकुमारी ने भी अपनी भावी प्रजा को देख कर यह पारिदर्शिता प्राप्त कर ली कि जो आगे चलकर उनकी बड़ी सहायक हुई।

राज्याभिषेक

जून सन् १८३७ में महाराणी के चाचा परलोकवासी हुए। अन्त समय राजकुमारी विक्टोरिया मिलने न आ सकीं। अस्तु मृत्यु के आठ घण्टा पीछे डाक्टर हावली, आर्चबिशप केण्टरबरी और मारक्विस कानिंगहम केनसिंगटन राजभवन की ओर चले। प्रातःकाल होते होते वे वहां पहुंच गए। बहुत कुछ खटखटाने पर द्वार खुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक कोठरी में ये तीनों महाशय बैठा दिए गए। थोड़ी देर के पीछे एक मज़दूरनी आई और उसने कहा कि राजकुमारी अभी सो रही हैं और उठाई नहीं जा सकतीं। डाक्टर हावली को इस पर दुःख हुआ और कुछ क्रुद्ध होकर उन्होंने कहा कि मैं राजकाज से यहां आया हूं। इसके आगे नींद कोई चीज़ नहीं है। निदान वे जगाई गईं और अपनी माता के साथ झटपट उस कोठरी में चली आईं। कुछ मिनट पीछे वैरोनेस लेहजन भी वहां पहुंच गईं। जिस समय आर्चबिशप ने महाराज की मृत्यु का समाचार कहकर राजकुमारी से सिंहासन पर विराजने की प्रार्थना की, उस समय महाराणी के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली और एक शब्द भी मुंह से न निकल सका। इस समय का चित्र बहुधा देखने में आता है, जिससे मानो वह घटना आँखों के सामने उपस्थित हो आती है। चित्त के ठीक होते ही महाराणी ने एक शोक प्रकाशक पत्र मृत महाराज की पत्नी अपनी चाची को लिखा। किसी नीच प्रकृति के पार्श्ववर्ती ने कहा कि पते पर "भूतपूर्व महाराणी" लिखना चाहिए। इसपर महाराणी ने उत्तर दिया कि मुझे यह उचित नहीं है कि मैं ही सबके पहिले महाराणी को उनके दुःख का स्मरण दिलाऊं। इसी बुद्धिमानी से महाराणी ने समस्त जीवन सफलता से राज्य किया। उसी दिन ग्यारह बजे मन्त्रियों की सभा का अधिवेशन हुआ और सभों ने सशपथ श्रीमती को अपनी महाराणी स्वीकार किया। उसी मास की २१ तारीख़ को साधारण प्रजा में महाराणी के राजसिंहासन पर विराजने के आनन्द में बड़ा उत्सव मनाया गया। सेण्ट जेम्स से लेकर केनसिंगटन राजभवन तक आदमियों की भीड़ इतनी अधिक थी कि कठिनता से पैर रखने को स्थान मिलता था। इस भीड़ के बीच में से खुली गाड़ी में बैठ कर जिस समय महाराणी को, जिनकी अवस्था इस समय केवल १९ वर्ष की थी, जाना पड़ा और चारो ओर से प्रजा मारे आनन्द के वह ध्वनि मचाने लगी कि आकाश पाताल एक हो गया, उस समय महाराणी अपने को न सम्हाल सकीं, नेत्रों में जल भर आया और वे कांपने लगीं। हा, राज्य पाकर भी महाराणी को अपने कर्तव्य को अपार और कठिन जानकर सोच हुआ। परन्तु जिस काम को उन्होंने अपने हाथ में लिया उसे यावत्जीवन बड़ी बुद्धिमानी और दूरदर्शिता से किया। राज्याभिषेक का उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ २८ जून सन् १८३८ ई० को मनाया गया। इसमें ७००००० रुपया व्यय हुआ। जिन लोगों ने इस उत्सव को देखा था वे उसकी चमक दमक और सुन्दरता से आश्चर्यित हो थकित नेत्रों से अपने मानसिक भावों को तृप्त करते थे। ऐसे अवसर पर यह नियम है कि देश भर के जितने रईस हैं सब आकर महाराणी का मुकुट छू उनका हाथ चूमें। इसी नियम का वहां भी बर्ताव हुआ। जितने रईस एकत्रित हुए थे उन सभों में वृद्धतम लार्ड रोल थे। दो अन्य रईसों के सहारे से वे सम्हल के सिंहासन के निकट तक गए, पर वहां पहुंच कर उनका पैर कुछ चूक गया और वे लड़खड़ाते हुए सब सीढ़ियों के नीचे "रोल" करते हुए आपड़े और अपने नाम को उन्होंने सार्थक कर दिखाया। महाराणी के हृदय में इस घटना को देखकर बड़ी दया हो आई। जब दूसरी बेर लार्ड रोल पुनः वहां तक पहुंचने लगे तो महाराणी ने आगे बढ़ कर उनसे भेंट की और उनका उचित सत्कार कर अपने उदार करुणार्द्र हृदय का पूर्ण परिचय दिया। इस बात को देख और सुन इङ्गलैण्ड की प्रजामात्र के आनन्द की सीमा न रही। वास्तव में बड़े बड़े लोगों के छोटे से छोटे काम भी बड़े से बड़ा फल उत्पन्न करते हैं। निदान बड़े आनन्द मङ्गल से यह उत्सव मनाया गया।

विवाह

राज्याभिषेक का उत्सव होने के पूर्व से ही महाराणी के विवाह की चर्चा देश भर में फैल रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। कोई सोचता था कि रोमन कैथलिक से विवाह होगा। कोई कुछ और ही सोचता, यहां तक कि वास्तविक वृत्तान्त के न मिलने से देशभर में भांति भांति की गप्पें उड़ने लगीं। कोई कोई गुप्त रीति से विवाह हो जाने ही का स्वप्न देखने लगे। इस गड़बड़ के साथ ही साथ कुछ मतवाले अंग्रेज़ी रईस भी इस दुराशा से उन्मत्त हो गए थे कि वेही महाराणी के पाणिग्रहण में सफीलभूत होंगे और यह उन्मत्तता किसी किसीके पक्ष में यहां तक बढ़ी कि वे या तो नौकरी देकर देश से बाहर निकाल दिए गए, अथवा पूलिस तैनात की गई कि महाराणी की रक्षा रक्खे। पर महाराणी की माता और उनके चचा ने कन्या की बाल्यावस्थाही में उसके लिये उपयुक्त वर चुन रक्खा था। यह सेक्सोकोबर्ग के प्रिन्स अलबर्ट थे। इन्हें भी बाल्यावस्था ही से इस भावी सम्बन्ध की सूचना दे दी गई थी। सन् १८३६ ई० में ये अपने पिता तथा भाई के साथ इङ्गलैण्ड आए। उनकी सुन्दरता, शान्त स्वभाव और हँसमुख चेहरे को देख कर महाराणी का मन मोहित हो गया और उन्होंने ७ जून को अपने मामा को एक पत्र में यह लिखा "मेरे प्रिय मामा! अब मुझे आपसे केवल यही प्रार्थना करनी है कि आप अब उसके स्वास्थ की पूरी सुधि रक्खेंगे और उसे अपनी आखों के साम्हने रक्खेंगे जो मेरे हृदय को इतना प्यारा है। मुझे विश्वास है कि इस विषय के सम्बन्ध में, जो मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है, सब अच्छा होगा"। यह सम्वाद मंत्रीवर्ग को दिया गया और धीरे धीरे सब प्रकार की गप्पें शान्त हो गईं और देश में विवाह की चर्चा होने लगी।

इन्हीं दिनों में दो एक ऐसी घटनाएं राजप्रासाद में हुईं जिनसे लोगों में बहुत कुछ हल चल मचगई। ऐसे अवसर पर प्रधान मंत्री लार्ड मेलबोर्न ने यह उचित समझा कि विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए। इसलिये अक्तूबर सन् १८३९ में प्रिन्स अलबर्ट पुनः इङ्गलैण्ड आए। इस समय उनके चेहरे से बालकपन के चिन्ह सब लुप्त हो गए थे और उनके स्थान पर यौवन की सुन्दरता और मनोहरता की छवि छा रही थी। यद्यपि अंग्रेज़ी साधारण प्रणाली यही है कि पहिले पुरुष स्त्री से विवाह का प्रस्ताव करता है, परन्तु बड़े राजघरानों में और विशेष कर ऐसे अवसरों पर जब कि स्त्री स्वयं राज्य की महाराणी हो, यह नियम पलट दिया जाता है। अतएव कई दिनों तक महाराणी ने मारे लज्जा और संकोच के इस बात को टाला। अन्त एक दिन दुपहर के समय अपने प्यारे प्रिन्स अलबर्ट को अपने कमरे में बुलवाया। भिन्न भिन्न विषयों पर बात चीत होती रही। अन्त महाराणी ने नीची आंखें करके मीठे स्वर से पूछा "क्या यह सम्भव है कि मेरे लिये तुम अपना देश छोड़ सको?" प्रिन्स ने उठ महाराणी को अपने गले लगाया और सदा सर्वदा के लिये अपना देश छोड़ महाराणी के साथ रहने की प्रतिज्ञा की। निदान इस प्रकार सब बातों के निश्चय हो जाने पर पार्ल्यामेण्ट में विवाह की चर्चा उठाई गई और महाराणी ने विवाह के प्रस्ताव को वहां स्वयं उपस्थित किया। समस्त देश ने सानन्द इसे स्वीकार किया और राजनीति सम्बन्धी सन्धिपत्रादि के लिख जाने और सब प्रारम्भिक बातों के निश्चय हो जाने पर १० फरवरी, सन् १८४० को बड़े समारोह के साथ विवाह हो गया और दम्पति लौकिक रीति से स्नेहपाश में बँध कर सुख प्रकार के गार्हस्थ्य सुखों का आनन्द लेने लगे। प्रजा को भी शान्ति हुई कि अब महाराणी का पति उनकी रक्षा करेगा और उनके हित में सदा तत्पर रहेगा।

महाराणी पर आक्रमण

महाराणी के गर्भवती होने पर यह सोचा गया कि प्रसवकाल में ही महाराणी का परलोकवास हो जाय तो फिर संतति के नियत वय तक के लिये किसे राज्य का प्रबन्ध सौंपना चाहिए। इस बात पर विचार हो ही रहा था कि १० जून सन् १८४० को, जब कि महाराणी और उनके पति गाड़ी पर हवा खा रहे थे, एडवर्ड आक्सफ़ोर्ड नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लड़के ने महाराणी पर गोली चलाई। भाग्य से वह गोली किसीको न लगी और आक्सफ़ोर्ड उसी स्थान पर पकड़ा गया। पर न्यायालय में वह पागल सिद्ध किया गया और छोड़ दिया गया। इसपर कई दिनों तक जब कभी महाराणी बाहर निकलतीं तो सैकड़ों स्त्री और पुरुष गाड़ी घोड़ों पर महाराणी के साथ जाते और स्थान स्थान पर जय ध्वनि से प्रजा अपने हार्दिक आनन्द को प्रगट करती। इस घटना के होते ही प्रिन्स अलबर्ट रिजेण्ट नियत किए गए, जिससे उनके मन के जो दुखदाई भाव थे वे दूर हो गए। सन् १८४२ में फ़्रांसिस और वीन नाम के दो पुरुषों ने पुनः महाराणी के जीवन पर आघात करना चाहा। सन् १८५० में एक पुरुष ने पुनः आक्रमण किया। यह सात वर्ष के लिये देश से निकाल दिया गया। सन् १८६९ में ओकोनोट को भी इस अपराध में १८ मास का कारागारवास मिला। महाराणी ने इसपर कृपा कर उसे अपने व्यय से आस्ट्रेलिया भेज दिया। सन् १८८२ ई० में महाराणी पर अन्तिम आक्रमण किया गया। पर धन्य है उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर को कि जिसकी रक्षा वह किया चाहता है उसे सब भांति से बचा सकता है।

सन्तति

सब मिलाकर महाराणी की ९ सन्तान हुए। प्रथम एक कन्या उत्पन्न हुई, जिनका विवाह जर्मनी के राजराजेश्वर से हुआ और जो आधुनिक राजराजेश्वर की माता हैं। दूसरी सन्तति प्रिंस आफ़ वेल्स हुए, जो इस समय राजराजेश्वर सातवें एडवर्ड के नाम से राजसिंहासन पर विराजते हैं। इनका जन्म ९ नवम्बर सन् १८४१ को हुआ। तीसरी सन्तति एक कन्या २५ अप्रैल सन् १८४३ को उत्पन्न हुई। इनका नाम प्रिन्सेस आलिस हुआ और विवाह ग्रांड डयूक आफ़ हेस से हुआ। महाराणी की जीवित अवस्था ही में इस कन्या का परलोकवास हो गया था। चौथी सन्तति एक पुत्र डयूक आफ़ एडिनबरा ६ अगस्त सन् १८४४ को उत्पन्न हुए। ये भी परलोकगामी हो चुके हैं। पांचवीं और छठवीं सन्तति दोनों कन्याएं हुईं। पहिली का नाम प्रिन्सेस हेलेना और जन्म २५ मई सन् १८४६ को, और दूसरी का नाम प्रिन्सेस लूइसा और जन्म १८ मार्च सन् १८४८ को हुआ। महाराणी की जितनी सन्तति हुईं सबका विवाह सम्बन्ध कहीं न कहीं के राजघरानों से ही हुआ। पर प्रिन्सेस लुइसा का विवाह डयूक आफ़ आरगाइल से, जो इङ्गलैण्ड के बड़े रईसों में हैं, हुआ। इस सम्बन्ध का कारण केवल यही है कि महाराणी तथा उनके पति की इच्छा सदा यही रही कि पुत्र तथा कन्या का विवाह ऐसे स्थान पर और ऐसे स्त्री तथा पुरुष के साथ हो जिनमें परस्पर प्रीति हो और जिसमें दोनों सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकें। योरप में यद्यपि सामाजिक नियम यह है कि स्त्री पुरुष, पति पत्नी को अपनी इच्छा के अनुकूल चुन लेते हैं और उनके माता पिता इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं करते, पर राजघरानों में प्रायः इस सामाजिक नियम का पालन राजनैतिक कारणों से नहीं हो सकता। इस अवस्था के रहने पर भी महाराणी का उद्योग सदा यही रहता था कि पुत्र और पुत्री सम्बन्ध करके सुखी रहें। वास्तव में माता पिता का यह धर्म होना चाहिए कि अपनी सन्तति के सुख पर ध्यान रक्खें। हमारे भारतवर्ष में तो आजकल प्रायः विवाह ऐसी छोटी अवस्था में कर दिया जाता है कि विचारे लड़कों लड़कियों को यह ज्ञान ही नहीं रहता कि उस कौतूहलपूर्ण घटना से वे किस प्रकार अनजाने अपने समस्त जीवन के दुःख सुख का निपटेरा कर रहे हैं। उन्हें तो वह एक खेल सा जान पड़ता है। पर हा! इस खेल ही से देश का देश अधोगति को चला जा रहा है। इस बाल अथवा आग्रहपूर्ण विवाह का परिणाम यह होता है कि या तो लड़के लड़की कुचरित्र निकलते हैं, अथवा ईर्षा द्वेष आदि से घर का नाश होता है और सन्तति इतनी बलहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न होती है कि यदि इसी रीति का प्रचार देश में रहा तो काल पाकर भारतवासियों की वंश ही न रह जायगी। पूर्व काल में इसी भारतवर्ष में पिता के रहते पुत्र का मरना असम्भव था, अथवा किसी महाघोर पाप का प्रतिफल समझा जाता था। पर आज इसी भारतवर्ष में सैकड़ों क्या सहस्रों लड़के लड़कियां या तो गर्भ ही में मर जाते हैं, या उत्पन्न हो बालक माता पिता पर मोह का जाल फैला इस लोक को छोड़ परलोक को चल बसते हैं। न जाने भारत के भाग में क्या बदा है। अस्तु, सातवीं और आठवीं सन्तति महाराणी को दो पुत्र हुए। इनका जन्म १ मई सन् १८५० और ७ अप्रैल सन् १८५३ को हुआ। प्रिन्स लिओपोल्ड महाराणी की जीवित अवस्था ही में सुरधाम सिधारे थे। नौवीं तथा अन्तिम सन्तति प्रिन्सेस बिएट्रिस १४ अप्रैल सन् १८५७ को हुई। निदान सब मिलाकर महाराणी की ५ कन्याएं और ४ पुत्र हुए, जिनमें इस समय ४ कन्याएं और २ पुत्र वर्त्तमान हैं।

राज्य की कुछ मुख्य घटनाएं

इधर गार्हस्थ्य सुख समृद्धि के साथ राज्य में भी अनेक विचित्र घटनाएं हुईं। पहिले अनाज पर भी चुङ्गी लगती थी जिससे गरीब लोगों को महँगा अन्न मोल लेकर खाना कठिन होता था। महाराणी के राजत्वकाल में यह चुङ्गी उठा दी गई। रेल और तार की, जिनसे अन्तर और समय का मानो एक प्रकार से मूलही नष्ट हो गया, महाराणी के राजत्वकाल में पूर्ण उन्नति हुई। सन् १८४८ में आयरलैण्ड में महाघोर अकाल पड़ा। लाखों मनुष्य भूखों मर गए। उस समय के मंत्रीगणों ने बड़ी असावधानी से काम किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आयरलैण्ड में अनेक उपद्रव हुए और लोग शस्त्र ले मरने मारने पर तैयार हो बैठे। बड़ी कठिनता से यह उपद्रव शान्त किया गया। महाराणी के पति कला कौशल तथा विद्यासम्बन्धी विषयों से विशेष अनुराग रखते थे और ऐसे उद्योगों में अग्रसर रहकर देश का उपकार करते थे। सन् १८५१ ई० में इन्होंने एक बड़ी भारी प्रदर्शिनी लण्डन में की। पहिले इस उद्योग का बड़ा विरोध किया गया, पर प्रदर्शिनी हो जाने पर इङ्गलैण्ड के व्यापार की बहुत वृद्धि हुई और लोगों की आंखें खुलीं कि ऐसे उद्योगों से देश को कितना लाभ पहुंच सकता है। महाराणी के राजत्वकाल में छोटी लड़ाइयों के अतिरिक्त बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुईं, जिनमें अंग्रेज़ों को या तो स्वयं लड़ना पड़ा, अथवा योरप के किसी न किसी राज्य का साथ देना पड़ा। इन लड़ाइयों में क्रीमियन युद्ध, भारतवर्षीय विद्रोह, आस्ट्रो-प्रूशियन युद्ध, फ्रांको-जर्मन युद्ध और अफ़्रिका का युद्ध प्रसिद्ध हैं। इन घटनाओं में यद्यपि अंग्रेज़ अन्त में विजयी हुए, पर इन्हें प्रत्येक में बड़ा कष्ट उठाना और करोड़ों रुपए व्यय करने पड़े। इन युद्धों का वृत्तान्त देने से व्यर्थ लेख बढ़ जायगा, पर वास्तव में ये विषय तो ऐसे हैं कि स्वतंत्र लेख में इनका वर्णन किया जाय।

इन्हीं दुर्घटनाओं के बीच में सन् १८६१ में महाराणी की माता का परलोकबास हुआ और उसके आठ महीने पीछे उनके पति प्रिन्स एलबर्ट भी इस असार संसार को छोड़ सुरधाम पधारे। इस दैवी दुर्घटना से महाराणी को जो दुःख हुआ वह अकथनीय है। शेष जीवन भर फिर महाराणी को वह सुख और शान्ति न प्राप्त हुई। महाराणी और महाराणियों के साथ अत्यन्त घनिष्ट मित्रभाव का बर्ताव केवल पति या पत्नी कर सकती हैं, दूसरे लोग केवल प्रतिष्ठा और सन्मानपूर्वक वर्ताव कर सकते हैं। इन बातों के रहते भी महाराणी के राजकाज में उनके पति परम सहायक रहे थे और देश के हित तथा उसकी उन्नति की उन्हें अहर्निशि चिन्तन बना रहता था। अनेक इतिहास लेखकों का अनुमान है कि यदि महाराणी के पति जीवित रहते तो जो अनेक दुर्घटनाएं देश में हुईं वे कदापि न होतीं। जो कुछ हो, प्रि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबर्ट सा सुशील, विद्वान्, रसज्ञ, नीतिनिपुण और दयावान सहायक फिर महाराणी को जन्म-भर कोई दूसरा न मिला। इसके लिये उन्होंने अपने शेष जीवनकाल को शोक अवस्था ही में बिताया। प्रिन्स अलबर्ट की मृत्यु के पीछे महाराणी ने एक प्रकार से एकान्तवास ही की रुचि प्रगट की और साधारण उत्सवों में प्रजा में आने जाने से अपनेको बहुतकाल तक बचाए रक्खा।

जुबिली

दुःख और शोक का निवारण करनेवाला केवल एक समय ही है। इसीका मृदु प्रभाव ऐसा पड़ता है कि जिससे ऐसे दुःख भी भूल जाते हैं जिनसे एक समय तो मनुष्य के जीव पर आ बीतने की आशंका रहती है। इसी प्राकृतिक नियम के वशीभूत होकर महाराणी ने समय पाकर और राजकाज में दत्तचित्त रहकर अपने दुःख को कुछ कुछ भुलाया। २० जून सन् १८८७ में महाराणी को राजसिंहासन पर बैठे ५० बर्ष पूरे हो गए। प्रजा ने जुबिली का महोत्सव मनाना चाहा। प्रिन्स अलबर्ट की मृत्यु और जुबिली के उत्सव में २७ वर्ष का अन्तर पड़ा। इस २७ वर्ष में अनेक घटनाएं हुईं जिन सबका वृत्तान्त इतिहासकारों ने लिखा है। यहां पर उनके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही कह देना उचित होगा कि कितने ही बिवाद लड़ाइयों और दुर्घटनाओं को महाराणी ने स्वयं अपने प्रभाव और प्रताप से रोका। ज्यों ज्यों समय बीतता चला, महाराणी का एकान्तभाव दूर होता चला। इस प्रकार सन् १८८७ में जुबिली का उत्सव बड़ी धूमधाम से मचाया गया। हमलोगों में से अनेकों ने इसके वृत्तान्त पढ़े हैं। भारतवर्ष के अनेक राजे महाराजे भी इस उत्सव में इङ्गलैण्ड पधारे थे। इस उत्सव के १० वर्ष पीछे पुनः हीरक जुबिली का उत्सव मनाया गया और यह विचार था कि प्रति दस वर्ष यह उत्सव मनाया जाया करे। पर ईश्वर की इच्छा के आगे मनुष्य की इच्छा नहीं फलीभूत हो सकती।

अन्त

महाराणी के अन्तिम वर्ष अनेक दुःखपूरित घटनाओं से पूरित रहे। सीमा युद्ध, सुदान युद्ध और दक्षिण अफ्रिका के युद्ध से जो दुःख महाराणी के हृदय को हुआ वह सब लोगों पर विदित है। अन्त समय तक महाराणी की यह आन्तरिक इच्छा थी कि किसी प्रकार बुअरयुद्ध समाप्त होकर शान्ति फैले। इन राजनैतिक घटनाओं के साथ महाराणी को अपने पुत्र और पौत्रों के असामयिक परलोकवास से जो दुःख और शोक सहन करने पड़ा, उनके लिखने की आवश्यकता नहीं है। पर इन सब बातों के रहने पर भी महाराणी ने अपने कर्तव्य पालन में किसी प्रकार की ढील नहीं की, यहां तक कि मृत्यु के दिन तक उनके पास कई बण्डल कागज़ हस्ताक्षर करने के लिये पड़े थे। इस आदर्शपूर्ण और श्लाघनीय तथा च राजाओं के लिये अनुकरणीय चरित्र की महाराणी को पाकर इङ्गलैण्ड ने जो उन्नति की उसको यावत् चन्द्रदिवाकर इतिहास साक्षी देता रहेगा। महाराणी के स्वभाव की सरलता और उत्तमता का वर्णन जहां तक किया जाय थोड़ा है।

यह बात सब लोगों को बिदित है कि महाराणी प्रायः अपने प्रासाद के चारों ओर रहनेवाले दीन दुखियों की सेवा सुश्रुषा स्वयं किया करती थीं। प्रातःकाल वे प्रायः निकलतीं और झोपड़ों में घूम कर दीन दुखियों की सुध ले आवश्यक वस्तुओं से उनकी सहायता करतीं और यह कहीं प्रगट न करतीं कि वे इङ्गलैण्ड की महाराणी हैं। कई अवसरों पर महाराणी को स्वयं उस समय तक रहना पड़ा जब तक उस मृतप्रायः स्त्री या पुरुष की आत्मा इस अनित्य शरीर को छोड़ सुरधाम को न सिधार जाय। सारांश यह कि महाराणी अपनी प्रजा से सदा अति स्नेह रखतीं और उनके दुःख सुख में अपनी वास्तविक सहानुभूति प्रगट करतीं। महाराणी सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जन, सरल और मृदु स्वभाव राजगणों में से बिरले हो किसीके भाग्य में होगा। भारतप्रजा पर भी महाराणी का कितना स्नेह था यह यहां के लोग भली भांति जानते हैं। भारतवर्ष क्या संसार के इतिहास में महाराणी का चरित्र अपना प्रभाव डालता रहेगा। ईश्वर की सृष्टि में अनेक राजे महाराजे हुए, होते हैं और होंगे; पर वास्तव में सुराज्य उन्हींका कहा जा सकता है कि जिनसे प्रजा प्रसन्न रहकर उन्नति के शिखर पर नित्य चढ़ती जाय। भारत की प्रजा परम भक्त है। उसका सन्तोष दूर से अपने राजा का नाम सुन कर और उसकी प्रतिमूर्ति देखकर नहीं होता। उसकी इच्छा अपने राजा को स्वयं अपने नेत्रों से देखने और अपने हाथों से पूजन की रहती है। महाराणी ने कई बेर भारतवर्ष आने का बिचार किया, पर कई कारणों से यह इच्छा उनकी पूरी न होसकी। अस्तु अब अन्त में हमारी सच्चिदानन्द परब्रह्म परमेश्वर से यह प्रार्थना है कि महाराणी की आत्मा को शान्ति दे और उनके वंशजों को सुबुद्धि कि उनके कमाए यश की दिनों दिन वृद्धि हो।

श्यामसुन्दरदास बी० ए०

प्रेम का फुआरा

हुसेनी बी का वयक्रम प्रायः बीस वर्ष का हो गया परन्तु बिचारी का व्याह अब तक नहीं हुआ था। उसकी सब सखी सहेलियां उस समय अपने अपने पतियों के साथ आनन्द से गार्हस्थ्य धर्म्म निवाह रही थीं, परन्तु बिचारी हुसेनी के भाग्य में यह सुख विधाता लिखना ही भूल गए थे। वह कभी कभी रात्रि के समय पड़ी पड़ी सोचा करती कि इसका क्या कारण है कि कोई पुरुष मुझसे निकाह तक करने को अग्रसर नहीं होता। क्या मैं किसी बात में गांव की और बेटियों से कम हूं? दर्म में दो एक वार ऐसी चिन्ता उसके मनाकाश में स्फुरित हो जाती थी। पर बिचारी क्या करे, विधाता ने उसके विषय में एक और बड़ा भारी भ्रम कर डाला था। वीर पुरुषों के रचने की सारी सामग्रियां उठाकर भूल से उन्हें स्त्री के सांचे में ढाल दिया था। शरीर उसका दीर्घाकार गठीला, सब अङ्ग प्रत्यङ्ग वीर जनों के समान और बज्र सरीखे कठिन थे। देखने से जान पड़ता था कि कोई महाबली, स्त्री के वस्त्र पहिर के सामने खड़ा है। तिसपर सीतला देवी ने उसके मुखमण्डल में अपनी अपूर्व छटा अङ्कित कर दी थी, और उसके चञ्चल नेत्र ऐसे थे कि एक सब दूसरे की ओर परस्पर निहारा करते थे। विवाहाकांक्षी कोई पुरुष चाहे इस रूपराशि से सन्तुष्ट न हो, परन्तु हुसेनी प्रायः कहा करती "मैं किसी पुरुष से भी नहीं डरती"। कारण इसका यह है कि सचमुच दो चार गांवों के बीच में कोई भी ऐसा युवक नहीं था जो दौड़ने, कूदने, बड़े बड़े लट्ठ चीरने, वृक्षों पर चढ़ने, और भारी से भारी बोझ के उठा ले जाने में उसका साथ दे सकता हो।

यद्यपि उसका वाह्य शरीर सूखा साखा कंकाल मात्र जान पड़ता था, तौभी भीतर से वह पूर्णतया नीरस न थी। स्वर उसका मधु के समान मधुर चाहे न रहा हो, परन्तु उसमें अपने ढङ्ग की एक निराली मृदुता अवश्य थी। देखने से वह बड़ी भोली भाली जान पड़ती थी और अन्तःकरण स्त्रीन जनोचित कोमलता से रहित न था। हां, वारम्बार चेष्टा करने पर भी उसका पिता जब उसके उपयोग कोई वर नहीं ठहरा सका, तो उसका मन पुरुष जाति की स्वार्थपरता और अहृदयता पर विचार कर उनसे पूरा पूरा विरक्त हो गया था, यहां तक कि यदि कभी कोई पुरुष उससे विनय के साथ वार्तालाप करने की चेष्टा करता भी तो वह आग बबूला हो जाती। छल उसे छू तक नहीं गया था, अन्तःकरण की वह बड़ी सीधी और सच्ची थी, और साधारणतः सब लोग उसे चाहते थे। उसके हृदय में सन्तोष का भण्डार था, परन्तु जब एक एक कर सब किसानों की कन्याएं ससुराल चली गईं तो कभी कभी उसका भी मन अधीर होने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी समय उसका पिता समीप के किसी हाट दो गाड़ी ऊंख बेचने गया था। वहां उसकी किसी आत्मीया ने उसको दशा सुन कर उसके पिता से कहा कि तुम्हारे किए कुछ न होगा। आज तुम्हारी स्त्री जीवित रहती तो हुसेनी की गोद में दो एक लाल खेलते रहते। उसे कल ही तुम मेरे यहां भेज देना। मैं देखूंगी यदि यहां उसकी सगाई हो जाय। फिर क्या था, मुख्य बात छिपा कर उसके पिता ने लड़की से कहा कि हुसेनी बेटी, तुम्हारी मौसी ने तुम्हें बुलाया है; सो तुम आज ही वहां जाओ।

उसकी इस नवीन मौसी का घर प्रायः ८।१० कोस पर था। परन्तु उस देश के बीहड़ पथों में एक अकेली बालिका के लिये ऐसी यात्रा कुछ सहज न थी। हुसेनी को तो यह अपने जीवन भर एक अद्भुत घटना सी जान पड़ने लगी। और जब वह अपने पिता के काने टट्टू पर सवार हो कोस भर की दूरी पर एक गांव में पहुंची तो अपने घर लौट जाने की इच्छा उसके मन में प्रबल होने लगी। परन्तु उसकी दो सहेलियां इसी गांव में ब्याही थीं। जब उनसे उसकी भेंट हुई तो वे उसे देख बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं कि सखी, तेरे दिन अच्छे आए जान पड़ते हैं। देखिओ। अब तू बड़े सुख भोगेगी। अस्तु, भाग्य में उसके चाहे सुख लिखा हो चाहे दुःख, उसका मन उदास ही होता जाता था और कोई चुपके से उसके मन में मानो कह रहा था कि दिन बुरे आने वाले हैं। पर विचारी क्या करे, उसकी सखियां और दूसरी ग्रामवासिनी स्त्रियां, जो समझती थीं कि भोली हुसेनी नए नए दृश्य देखकर भौचक सी हो गई है, और शिशुकाल से जिस गांव में इतने दिन काटे थे, उसीकी ममता उसके मन को डांवाडोल कर रही है, उसे ढाढ़स देने लगीं; और किसी किसी बड़ी बूढ़ी ने कहा कि सद्दू मियां कुछ बेसमझ थोड़े हैं जो उन्होंने बिना विचारे अपनी बेटी को घर से इतनी दूर भेजा है। इसमें अवश्य कुछ भेद है; और हुसेनी बी, तू देखिओ, तेरे दिन अब अच्छे आए। निदान सब लोगों के इस भांति कहने सुनने से उसने घर लौटने का विचार छोड़ दिया और अपने उच्चैश्रवातनय पर फिर आरोहण कर वह अपने गन्तव्य पथ पर चली।

विचारी सीधी सादी तो थी ही। अपने नित्य नैमित्तिक से अधिक उसको आज तक कभी कुछ करने का प्रयोजन नहीं पड़ा था। परन्तु अपने घर से निकलने के पूर्व से आरम्भ कर सखिओं के गांव तक उसे सब लोगों ने नाना प्रकार के इतने उपदेश दिए थे, और विचारी के दुर्बल मस्तिष्क में इतनी वक्तृताओं की धारा भर दी थी, कि उसकी समझ में कुछ ठीक ठीक नहीं आता था कि आज यह है क्या! निदान ऐसे ही सोचते सोचते उसे किसी बात की भी पूरी पूरी सुध बुध न रही और कुछ घबराई सी आंखें फाड़ कर वह इधर उधर देखने लगी। परन्तु एक स्थान पर जब मार्ग की दो शाखाएं हो गईं, उसने टट्टू की रास खींची और ठिठक कर वह अपने चारो ओर देखने और उचित मार्ग को स्मरण करने लगी। मनुष्य क्या, कोई पखेरू तक वहां नहीं देख पड़ता था कि वह उससे राह पूछ ले, कि उसके पिता ने उसे बांई ओर मुड़ने को कहा था कि दाहनी। निदान अनुचित मार्ग ही पर उसने घोड़ा चला दिया और अपने आप कहने लगी कि यही उचित मार्ग है। इसलिये वह घोड़े को जल्दी जल्दी चलाने लगी। परन्तु थोड़ी दूर आगे बढ़ कर शङ्काओं पर शङ्काएं उसे सताने लगीं। कभी रुक जाती, कभी टट्टू के शरीर पर कस कर चाबुक जमा देती, और कभी निरास होकर फिर ठहर जाती। परन्तु यह अब उसे स्पष्ट जान पड़ा कि उसके मित्रवर्गों ने जिस मार्ग पर उसे चलने कहा था, वह उसे छोड़ कहीं और ही जा रही है।

अस्तु मनुष्य कैसा ही साधारण क्यों न हो, मार्ग भूल जाना उसे अच्छा नहीं लगता। परन्तु जब किसी लेख की नायिका पर ऐसी विपत्ति आ पड़ती है तो उसे साधारण दृष्टि से नहीं देखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। क्योंकि नियम यह है कि इस भूल के कारण ऐसे अवसर पर निश्चय प्रकृति भी रौद्ररूप धारण कर लेती है। पहिले से आकाश चाहे कितना ही निर्मल क्यों न रहा हो, ज्योंही नायिका का मन बिकल हुआ, कि प्रकृति भी तुरन्त उससे वैर कर बैठती है। मेघ सिर पर दौड़ते फिरते हैं, दामिनी दमकने लगती है और प्रभञ्जन भी मनमानी आंधी बहाने लगता है। पुनः बादल फट मूसल धार बरसाने लगते हैं। बार बार की ऐसी दुर्घटनाओं से हमें तो यों ज्ञान होता है कि सुन्दरी युवतियों को इस भांति घर से अकेली निकलना ही उचित नहीं है। प्रति पदक्षेप में भूल भुलैयां में उनके पड़ जाने का डर बना रहता है और एक बार तनिक भी भूल हुई कि लौकिक समाज भी उस भटकी स्त्री को सहायता देने से मुख मोड़ लेता है।

हमारे इस लेख की नायिका श्रीमती हुसेनी की भी दशा इस अखण्डनीय नियम से निराली क्यों होने लगी थी। परन्तु पूर्णतया भीग जाने के पहिले ही और और नायिकाओं के समान उसे भी एक टूटी गढ़ी में आश्रय मिला, जिसे देखतेही उसने उसकी ओर घोड़े का मुंह मोड़ा। दूर से देखा कि एक पुराने खँड़हर की चोटी पर से धुंआ उठ रहा है। डरती डरती वह उसकी ओर बढ़ी। परन्तु खँड़हर के भीतर घुसने के पहिले एक टूटी खिड़की के भीतर झांक कर उसने इस बात का पूरा पूरा निश्चय कर लिया कि यहां का एकान्तवासी जीव पुरुष है अथवा स्त्री। पाठकों को स्मरण होगा कि पुरुष नामधारी जीवोंसे हुसेनी को स्वाभाविक घृणा थी। परन्तु वहां केवल एक बुढ़िया रहती थी। उसे देख हुसेनी के जी में जी आया और वह निधड़क भीतर घुस गई। बुढ़िया का सारा शरीर जराजर्ज्जरित हो गया था, परन्तु उसकी वाक्-शक्ति में अब तक पूर्ण तेज विद्यमान था। उसकी वक्तृता में न कौमा का पता लगता था, न सेमी-कोलन या फुलस्टाप का। जब हुसेनी के आगमन का पूरा समाचार उसे मिल गया तो उसने ओष्ठ रूप दो कपाट खोल दिए और अनर्गल बोलने लगी।

वृद्धा ने हुसेनी को समझा दिया कि अमुक स्थान में तू राह भूल गई थी। फिर उसने अपनी जीवनी की स्थूल सूक्ष्म सब घटनाओं को उसे सुनाया। कदाचित् पाठक को उसके सुनने की अभिलाषा हो, परन्तु उस कथा की आवृत्ति करना यहां हमें निष्प्रयोजन जान पड़ता है। बस, इतना ही सुन कर आप धीरज धरिए। उसने हुसेनी का बड़ा सत्कार किया और सब प्रकार के सुख की सामग्री भी उसके पास उस समय उपस्थित थी। वहां पर सूखी लकड़ियों का ढेर लगा था, चट हुसेनी के वस्त्र सुखाने और शीत निवारण करने के लिये उसने आग सुलगा दी। फिर दो टिक्कड़ रोटी के सेक कर उसके सामने धरे, जिसे हारी थकी हुसेनी तुरन्त खा कर गई और भर पेट जल पान कर पथ के सब क्लेशों को भूल गई।

पानी अब तक बरस रहा था, इस कारण वह आश्रय में आकर हुसेनी बड़ी प्रसन्न हुई और बुढ़िया को धन्यवाद देने लगी और उस दिन वहां और जाना असम्भव जान बुढ़िया को उसके गृह कार्य में सहायता देने लगी। बुढ़िया भी उसकी उदारता का परिचय पाकर बड़ी सुखी हुई। वे बड़ी रात तक बैठी बैठी उसे अपनी मनमानी कहानियां सुनाती रहीं। उस समय यदि कोई उन दोनों को देखते तो आपको यह ज्ञात होता कि ये लोग बहुत काल के पुराने मित्र नहीं हैं।

"अहा!"—बुढ़िया बोली, क्योंकि वह तब से अब तक अनर्गल बोलही रही थी—"अहा! तू बड़ी अच्छी लड़की है। मैं तुझे अपने अन्तःकरण से चाहती हूं। तू मेरे मन में बस गई है। और कोई मेरे मन में गड़ जाता है तो, हुंः—उसके लिये मैं कुछ न कुछ करही डालती हूं"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुसेनी ने कहा "तुमने मुझपर बड़ी कृपा की है और मैं इसे कभी न भूलूंगी। अगली ईद में तुम्हें हमारे घर आना होगा। क्यों आओगी न?"

बुढ़िया ने कहा "तू मुझे अपने घर ले जाकर अवश्य सुखी होगी। हां, हां, उसके लिये अभी बहुत दिन हैं। पर अब एक बात तो मुझे बता, तेरे मन में कोई अरमान है? बेधड़क मुझसे कह दे, अल्लाः ने चाहा तो मैं उसका उपाय निश्चय करूंगी। बता, तेरे दिल में किस बात की चाह है?"

हुसेनी ने उत्तर दिया "मुझे टिकियापुर की राह बता दो, कि मैं फिर न भूलजाऊं"। परन्तु इसे सुन कर वृद्धा खिलखिला कर हंस पड़ी, यहां तक कि उसे हँसते हँसते खांसी आगई और नेत्रों से धारा बह चली। जब कुछ शान्त हुई तो बोली "बेटी, मेरी हँसी से बुरा न मानना। पर तू है बड़ी अल्हड़। मैं राह बाट की बात तुझसे नहीं पूछती। मैं कुछ और ही बात पूछ रही हूं। अरी, तूने अपने अगले दिनों की बात भी कुछ सोची है? तेरी उमर में तो सब किसीको बड़े बड़े अरमान हुआ करते हैं। हां,—मुसकराई! यः! अब मेरी बात को समझ गई! अब बता वह क्या है"।

अब तो दोनों ओर से बहुत खींचाखींची होने लगी, जिसका फल थोड़ी देर पीछे यह हुआ कि हुसेनी ने अपने जन्म, निवासस्थान, और अपने विवाह के लिये चेष्टा में पिता की निष्फलता आदि सब वृत्तान्त वृद्धा के कूट प्रश्नों के आगे पेट से धीरे धीरे निकाल दिए। चतुरा वृद्धा ने शनैः शनैः उससे यह भी स्वीकार करा लिया कि यद्यपि पुरुषजाति की अहृदयता से वह बहुत घृणा करती है, तौभी यदि कोई सच्चा पुरुष उसे मिल जाय तो वह निश्चय उसके हाथ आत्मसमर्पण कर दे।

"पर, किसीका नाम भी तो बता। तेरा जी कभी किसी की ओर झुकता है? जो कोई ऐसा है तो मुझसे बेधड़क कह डाल, कोई डर की बात नहीं है, मैं और किसीसे तेरा भेद न खोलूंगी। बस, उस कमबखत का नाम मुझसे कह दे, देख, सब काम ठीक हो जायगा।"

हुसेनी ने उत्तर दिया कि किसी विशेषपात्र में मेरी रुचि नहीं है। "जो चाहे मेरे पास आवे। अपना दिल खोल कर मुझसे कहदे, मैं और कुछ नहीं चाहती। कोई आवे, चाहे एक हो चाहे एक साथ दस हों"।

बुढ़िया बोली कि "बहुत से हों तो तू घबरा जायगी। तेरी उमर में, मुझे याद है, मैंने—पर अब उन बातों से क्या फायदा है! आ, चल देखें बादल का रङ्ग ढङ्ग कैसा है। अरे! फिर पानी बरसने चाहता है"।

बुढ़िया ने एक हाथ में एक कूबड़ी उठा ली और दूसरे हाथ से अपनी देह का भार हुसेनी की बांह पर डाल वह उस प्राचीन खंडहर के चारों ओर टहलने लगी, और प्रत्येक स्थान को अपनी सङ्गिनी को ऐसी अच्छी भांति समझा कर बताने लगी कि कोई और मनुष्य यदि इस स्थान के भूगोल में परीक्षा देने चाहता और बुढ़िया उसकी माष्टर होती तो वह बड़ी उत्तमता से पास हो जाता; परन्तु हमारी हुसेनी बी की समझ में बुढ़िया के व्याख्यान का एक अक्षर भी न आया। वह इसका भेद नहीं समझ सकी कि इतने बड़े बड़े कमरों, लम्बे लम्बे दालानों और ऐसे भारी महल में किस प्रकार के मनुष्य रहते होंगे। भीतों की गहरी मोटाई को देख देख उसके अन्तःकरण में आश्चर्य, भय, और भक्ति का संचार होने लगा। इस कारण, जब जल बरसने के हेतु वे दोनों फिर बुढ़िया की कोठरी में घुस पड़े तो हुसेनी के मन की अवस्था कुछ निराली हो गई और वह बड़ी एकाग्रता से उस जीर्ण महल के पूर्वकालीन अधिवासिओं के विषयों में, जिनका वर्णन बुढ़िया के मुख से उसने सुना था, विचार करने लगी। नवाब फ़ैज़ अलीख़ां के बागियों में मिल जाने के कारण, विद्रोह के समय, किस भांति इस महल में आग लगाई गई थी, और नवाब साहब किस भांति सपरिवार भागकर दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल गए थे, फिर एक दिन अकस्मात् साहिबज़ादः नवाब बरकत अली ख़ां, जिनका उसने शिशुकाल में लालन पालन किया था, किस भांति उसके सामने आ खड़े हुए, इत्यादि सब कथाएं हुसेनी ने बुढ़िया से सुनी। साहिबज़ादः साहिब की प्रशंसा बुढ़िया एक मुख से नहीं कर सकती थी। उन्होंने फिर खंड़हर की भूमि और आस पास की कुछ ज़िमीदारी मोल लेली है और निश्चय कुछ दिनों में यहां वे फिर नए सिर से निवासस्थल निर्म्माण कर आ रहेंगे। हैदराबाद में वे एक उच्च-पद पर सुशोभित हैं, और ऐसे स्वरूपवान हैं कि उन्हें साक्षात् पर कटा हुआ परीज़ादः कहें तो थोड़ा है। शौकीन भी उनसे बढ़कर कोई दूसरा न होगा, और बुढ़िया को तो बरकत अली खां के पितामह तक से परिचय था, शौकीन इनके घर भर में सब ही थे। इन सब कथाओं को हुसेनी पहिले तो बड़े आश्चर्य से सुनती रही, फिर बड़ी एकाग्र हो गई, और अन्त में कथा के आरम्भ से शेष तक सब समाचार गड़बड़ होकर, आकाश में भासमान चञ्चल मेघखण्डों के समान, उसके ज्ञानशून्य अंधेरे मस्तिष्क में कभी धीरे धीरे और कभी बड़े वेग से घुड़दौड़ करने लगे।

बुढ़िया जैसी कथा सुना रही थी, बिचारी भोली भाली किसान बाला को वह सब अनूठी जान पड़ती थी, और सब बातें भली भांति उसकी समझ में नहीं आती थीं। एक तो पूर्वरात्रि को उत्कण्ठा से उसके नेत्रों ने पलक नहीं मूंदे थे, तिसपर पथ के दारुण क्लेश, बुढ़िया की अनर्गल बकबक और नीरस सूखे भोजन ने भी, सम्भव है, कि उस समय उसकी बुद्धिवृत्ति के, उसीके समान, उचित मार्ग से भटका दिया होगा। और यद्यपि आज कल की कई नई नई छपी हुई रामायणों के समान बुढ़ियां ने सातों कांडों की कथा सुनाकर एक अष्टम कांड का लग्गा लगा दिया, वह बिचारी हारी मांदी बारबार तन्द्रा से पीड़ित होने लगी, और केवल पर कटे हुए साहिबज़ादः, बड़े बड़े महल, और ऐश्वर्य्य की सामग्रियां उसके सम्मुख उड़ती हुई बादलों के समान एक दूसरे के पीछे आविर्भूत और अन्तर्हित होने लगीं। बीच बीच में वह "हां," "हां," "फिर क्या हुआ," इत्यादि वाक्यों से बुढ़िया का सम्भाषन करती और कभी कभी अपने शरीर को हिलाकर निद्रा के आवेग को दूर हटाने की चेष्टा करती। निदान जब बुढ़िया ने प्रेम के फुआरे की कथा छेड़ दी तो थोड़ी देर के लिये वह सचेत होकर फिर सुनने लगी।

बुढ़िया ने कहा कल सवेरे तुझे भी इस फुआरे से तीन घूंट पानी पिला दूंगी। कोई डर की बात नहीं है और अल्लाः ने चाहा तो दोही तीन दिन में तेरी मनोकामना पूरी हो जायगी। कल सवेरे इस पानी का पीना मत भूलिओ, और जो वह तुरन्त कुछ काम न कर जाय तो कुछ चिन्ता की बात नहीं है, क्योंकि मुझे याद है कि एक बार दो छोकड़ियों ने—और तब बुढ़िया ने एक और बड़ी भारी ओर छोर रहित कहानी छेड़ दी, जिसका फल यह हुआ कि हुसेनी बड़ी रात गए, आश्चर्य्य मय घटनाओं से अपने मस्तिष्क को भर कर, एक चारपाई पर पड़ कर सोई।

[२]

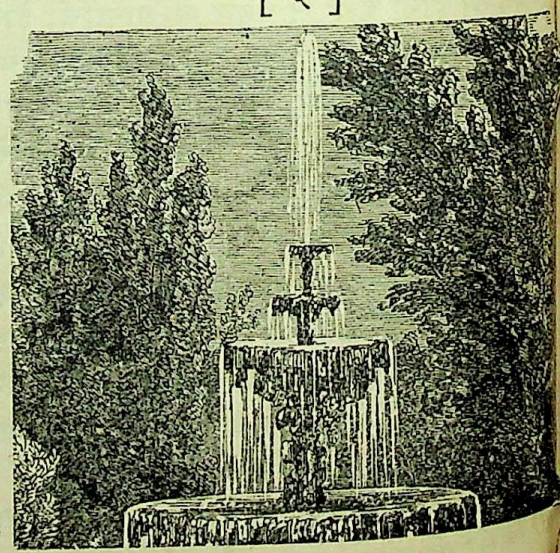

प्रेम का फुआरा

हुसेनी आप ही आप कहने लगी "अहा, आज का सवेरा कैसा भला मालूम पड़ता है और कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंढी ठंढी हवा चल रही है। और इस फुआरे से कैसा साफ़ पानी निकल रहा है! पर बुढ़िया कल जो कह रही थी, उसपर मुझे विश्वास नहीं होता, पर हां, पानी के पीने में कुछ डर की बात नहीं है। अरे, ये तो बड़ा ही ठंढा और वैसा ही मीठा है। मेरे शरीर में तो इसके पीते ही मानो एक नया बल सा आगया।

अकस्मात् उस ठौर पर एक ओर से कई अश्वारोही घोड़े लपकाते हुए आ निकले। हुसेनी ओट में छिपने की चेष्टा अवश्य करने लगी, पर वे लोग इतनी शीघ्रता से आ पहुंचे कि उससे कुछ न बन पड़ा, और जब तक वह इसी विचार ही में थी कि किसी ओर चली जाऊं, कि एक रूपवान युवक, सुन्दर वस्त्र आभूषण पहिरे, कामदेव सा मनोहर वेष बनाए, घोड़े की पीठ पर से कूद पड़ा, और हुसेनी की ओर क्षणभर टकटकी बांध, उसे देख कर उसके सम्मुख आया और बड़ी नम्रता से नमस्कार कर कहने लगा कि "आप घबड़ाइए मत।"

हुसेनी ने झिड़क कर कहा, "रक्खो, मानो इन्हें देख कर मैं डर गई! हौआ हैं जो मुझे खा जायंगे! मैं तो इस लिये ठहर गई थी कि तुमलोगों में से कोई घोड़ा फँदाता हुआ मुझपर चढ़ा न आवे"।

युवा ने उत्तर दिया, "सुन्दरि! क्या यह भी सम्भव है कि कोई जीव तुम्हारा एक बाल तक बांका करने का उद्यम कर सके?"

हु—"अजी, इसकी न कहो। क्या कुछ ठिकाना है! मैंने तो समझा था कि तुम्हारे घोड़े मुझी पर आ टूटेंगे! पर हां, सच्ची बात तो यों है कि आज तक मैंने कभी किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा; फिर कोई मुझको क्यों सतावेगा?"

यु—"कभी नहीं, कभी नहीं। तुम्हारी सरलता और भलमनसाहत तुम्हारे चन्द्रमुख पर आप झलक रही है। दया कर मुझे यह बतादो कि यहां पर अकेली खड़ी खड़ी तुम क्या रहीं थीं।"

हु—"मैं कहीं पर क्या करूं या न करूं, मेरी समझ में यह नहीं आती कि किसी दूसरे को उससे क्या? पर हां, टिकियापुर की सड़क मुझे बता दो, या अपने नौकरों में से किसीसे कह दो कि सड़क तक मुझे पहुंचादे, तो मैं तुम्हारा गुण मानूंगी। पर, खबरदार, एक बात तुम्हें जताए देती हूं। अपना मुंह संभालकर बोलो। चिकनी चुपड़ी बहुत सी वाहियात हमारे सामने मत बको।"

यु—"आश्चर्य! आश्चर्य! आपको खुसामद नहीं भाती!"—और वह युवा पुरुष एकाक्षी सुन्दरी के रूप और गुणों पर इतना मोहित हो गया कि उसने सब आगा पीछा छोड़ तुरन्त अपना शरीर, अपनी सारी धन सम्पदा हुसेनी के लड़ड़े चरणों पर समर्पण कर दी। युवा का नाम नवाब बरकत अली खां था।

हुसेनी बोली—"मर निगोड़े! क्या पागल हो गया है!" परन्तु जब देखा कि यह पुरुष रूपी बाघ उसे काट नहीं खाता, तो दयावश हो लम्बी सांस लेकर बोली कि "कैसे दुःख की बात है! और यह ऐसा सुन्दर भी है!"

नवाब साहब बोले—"हा! तुम मेरी दशा देख कर दुखी होती हो! मुझपर दया करोगी! अच्छा, अच्छा, इस समय मैं और अधिक क्या आशा करूं? मैंने अपनेको भूलकर कुछ जल्दी कर दी है, इससे तुम घबरा गई हो। परन्तु अब मैं सावधान हो गया"। यों कह कर वह दो तीन बार अपने माथे को हाथ से बजाने लगा।

हुसेनी मन में कहने लगी, "अरे, यह अपना माथा क्यों पीट रहा है? पर, यह है बड़ा सुन्दर, और इसीसे इसपर मुझे अधिक दुःख होता है"।

नवाब साहब ने उसके मुखकी ओर देख कर बड़े विनय से धीरे धीरे कहा,—"समय पाकर और मेरी सेवा देखकर मुझपर कभी तो तुम कृपा करोगी! मैं तब तक अपने मन को रोके रहूंगा"।

हुसेनी यह सोच कि चलो थोड़ी देर इसीके मन की सी बातें करें, बोली "तुम्हारा मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना ही है। उसका जो चाहे सो करो; पर हां, तुम्हारी दशा देख कर मुझे दुःख अवश्य होता है। पर तुमको चाहिए कि अपनी चाल सुधारो।"

नवाब साहब को इस उत्तर से बड़ी भारी आशा हो गई, और वे अपने मनको नहीं रोक सके, क्योंकि उनके ओठ सुन्दरी के मुख की ओर दौड़ चले और अपनी चाल का सुधारना वे सम्पूर्ण भूल गए।

परन्तु अपनी मनोरमा के बाहुबल का परिचय उनको नहीं था। उसी समय उन्हें एक ऐसा धक्का लगा कि बिचारे भूमि पर लोट पोट हो गए। इस दुर्घटना से उस मुग्ध युवा को क्रोध कुछ भी न हुआ, पर बड़ी आकुल दृष्टि से वे बीबी जी की ओर देखते रहे। एक क्षण भर के पीछे कुछ मनमें विचार कर वे उठ कर अपने संगियों की ओर गए और उन्होंने उन लोगों को कुछ आज्ञा दी जिसका प्रतिपालन सब ने बड़ी शीघ्रता से किया। हुसेनी अपना वस्त्र संभाल दौड़ कर भागने ही पर थी कि नवाब के अनुचरों ने आकर उसे घेर लिया। उनमें से एक कुरूप भद्दा सा पुरुष एक ऊंचे घोड़े पर बैठा था, नवाब साहब ने बहुत विनय कर हुसेनी को उसके पीछे घोड़े की पीठ पर बैठा दिया। बिचारी ने जब देखा कि वह अकेली इतने पुरुषों के बीच में आ पड़ी है, और उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है, तो विवस हो नवाब की प्रार्थना उसने स्वीकार की, परन्तु ज्योंही वह उस भद्दे पुरुष के पीछे घोड़े पर सवार हो गई, उसने उसके कान में कहा कि तुम्हारा मालिक पागल हो गया है, कोई ऐसा उपाय करो कि यहां से हम बच निकलें। मुझे टिकियापुर में मौसी के घर तक पहुंचा दो तो मेरे पास बहुत तो कुछ है नहीं, तुम्हें मैं दो आने पैसे मिठाई खाने के लिये दूंगी। क्यों, क्या कहते हो?

"मैं क्या कहता हूं?" उस मनुष्य ने अपने भयानक मुख को फाड़ बिकट रूप से मुसकरा कर, हुसेनी की ओर देखा और कहा "मैं कहता हूं कि तुम्हारी आज्ञा हो तो तुम्हें लेकर मैं पृथ्वी के एक छोर से दूसरी छोर तक जहां कहो जा सकता हूं। कुछ पैसे कौड़ी का मुझे प्रयोजन नहीं है। क्योंकि मेरी बात सच मानो, तुमसे अधिक रूपवती स्त्री आजतक मैंने कहीं नहीं देखी है"— और फिर वह अपना विकराल मुख फाड़कर इस रीति से मुसकराने लगा कि यदि काठी में उसका वस्त्र न अटक जाता तो हुसेनी नीचे कूद पड़ती।

वह सोचने लगी कि "आज अल्लाही खैर करे मैं कैसे लोगों में आ फँसी हूं?" और वह कुछ भयभीत होकर चारो ओर देखने लगी। परन्तु भय का कोई विशेष चिन्ह उसने नहीं देख पाया। हां, वहां पर जितने लोग थे, सब सुध बुध खोकर उसीके मुख की ओर देख देख कर मग्न हो रहे थे। कभी किसी पुरुष ने उसका आदर नहीं किया था और उसे देखते ही सब दृष्टि हटा लेते थे; परन्तु आज के सब मनुष्यों के इस नए भाव को देखकर वह चकित हो गई और सोचने लगी कि ये लोग जो प्रायः सब सुन्दर हैं, कदापि दुष्ट स्वभाव के नहीं हो सकते और इनसे मुझे कोई हानि की आशंका नहीं है। जब उसने अपने मन में यों ठान ली, तो पथ में कुछ देर तक उसे कुछ क्लेश का अनुभव नहीं हुआ। नवाब साहब सब समय उसके पास थे, और नाना भांति की कथाएं कहते जाते थे, और वह बीच बीच में पूछती थी कि टिकियापुर और कितनी दूर है।

इस भांति चलते चलते वे लोग एक बहुत बड़े गृह के सामने आ पहुंचे, और सबके सब उस आंगन में अपने घोड़ों पर बैठे हुए घुस गए। तब नवाब साहब ने हुसेनी से कहा कि उनकी यात्रा शेष हो गई और बड़े आदर तथा स्नेह से उसको घोड़े पर से उतरवाया।

वहां पर बहुत से लोग हाथ बांधे आज्ञा पाने की अपेक्षा कर रहे थे। एक बुढ़िया नवाब साहब के सामने आकर खड़ी हुई। उसे देखकर नवाब साहब ने आज्ञा दी कि "रङ्गीली बी, मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना मानो। इस सुन्दरी को किसी भांति की क्लेश न होने पावे यह तुम आप देखते रहना, और जिस वस्तु की इन्हें आवश्यकता हो वह तुरन्त मंगवा देना"।

रङ्गीली बी ने बड़े विनय से कहा "आओ, बीबी, इधर आओ," और फिर वह कई बड़े बड़े और अच्छी तरह सजे हुए कोठों में से होकर उसे एक स्थान में लेगई। परन्तु वहां की सजावट और धूमधाम को देखकर हुसेनी बी की बुद्धि फिर चकराने लगी, और खंड़हर की बुढ़िया ने जो महलों और अट्टालिकाओं की कथा सुनाई थी, उसका स्मरण उसे हो आया। जिस कमरे में वह आई थी, उसमें चारों ओर गलीचे बिछे थे, मखमल और रेशम के पर्दे लटक रहे थे, और नाना भांति की बहुमूल्य वस्तुओं से वह ऐसा सजाया हुआ था, कि एक एक वस्तु को देख देख कर वह चकित हो रही थी। संगिनी ने उसे वहां पर विश्राम करने को कहा, तो हुसेनी बोल उठी—

"अम्मा, खुदा तेरा भ ा करे! मैं कहां आई? मेरे लिये यह भवन नहीं है। मैं तो एक गरीब किसान की बेटी हूं। मूझे भूख बहुत लग रही है, इसलिये तुमसे रूखा सूखा जो कुछ होसके मुझे ला दो कि खाकर मैं तुरन्त टिकियापुर की राह लूं"।

रङ्गीली ने उत्तर दिया कि टिकियापुर वहां से बहुत दूर है, और उससे हुसेनी को ज्ञात हुआ कि वह उस नवाब साहब के नए महलों में विराजमान थी।

हुसेनी हताश होकर मखमल से मढ़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गई और बोल उठी कि "तुम्हारे नवाब ने मुझे बड़ा धोखा दिया है। मैं समझती थी कि वह मुझे टिकियापुर में मेरी मौसी के घर पहुंचा देंगे; वह पागल होगए हैं, है न?"

रङ्गीली ने उत्तर दिया "मुझे भी ऐसाही जान पड़ता है। युवा मनुष्य कैसी कैसी धोखाधड़ी करते हैं मैं भली भांति जानती हूं, और इसका भी कुछ ठिकाना नहीं कि वे कब किस ओर झुक पड़ें। युवाओं की रुचि भी समय समय पर बड़ी विचित्र होती है। आज की बात तो मेरी समझही में नहीं आती।

हु—"मैं यहां नहीं रहूंगी, यह मैंने स्थिर कर लिया है"।

रङ्गीली ने कहा कि "हां, यह बहुत उचित बात है", और तब दोनों स्त्रियां हुसेनी के भाग जाने के उपाय सोचने लगीं। अन्त में यह निश्चय हुआ कि इस काम में बुढ़िया के पुत्र करीमबख़्श की सहायता ली जाय। बुढ़िया उसे लोगों की दृष्टि से बचा कर अपनी कोठरी में ले गई और थोड़ी ही देर में करीमबख़्श, जो नवाब के यहां नौकर था, वहां आया और जब उसने सारी कहानी सुनी तो कहने लगा कि "आपपर बड़ा अन्याय हुआ है। आप निश्चय जानिए कि मैं आपको टिकियापुर ले चलूंगा। और अम्मा, तू अस्तबल को चली जा और भोंदू से कह दे कि लाल घोड़ी और वह टटुआ चुपचाप कसकर बाहर ले जाय। और जिस समय नव्वाब साहब खाने खांयगे, किसीको पता तक न चलेगा, बीबी को लेकर मैं लम्बा हो जाऊंगा। बस, अब साहस का काम है"। परन्तु ज्यों ही उसकी मा बाहर चली गई, उसका भाव सम्पूर्ण बदल गया, और वह बड़ी नम्रता से अपने हृदय पर हाथ रख कर, हुसेनी की ओर झुक कर बोला "प्यारी, तेरे लिये मैं जो न करूं सो थोड़ा है। टिकियापुर तक ही मैं तेरा साथ नहीं दूंगा। सारे जीवन के मार्ग में मैं तेरा गुलाम बना रहूंगा"।

हु—"क्या मैं उमर भर घोड़े पर सवार होकर बैठी रहुंगी? नहीं, नहीं, मुझे टिकियापुर ही तक पहुंचा दो, मैं अधिक और कुछ नहीं चाहती। पर तुम तनिक हट कर खड़े हो जाओ और भले आदमियों की तरह बात चीत करो। क्योंकि—"

वह आगे और कुछ नहीं बोलने पाई कि एकाएक किवाड़ खुल गए और एक महापुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आविर्भाव हुआ, जिनका पेट महा मोटा और सिर महा छोटा सा था। यह पुरुष जो साक्षात् भैंसासुर के अवतार थे, हुसेनी को देखते ही जहां खड़ा थे वहीं जम गए। और हमको ठीक स्मरण नहीं है कि अपनी एकाग्रता से उसे यह भी जान पड़ा हो कि करीमबख़्श वहां उपस्थित था कि नहीं। परन्तु उसे देखते ही वह युवा हट गया और भयभीत होकर कोठरी के बाहर निकल गया। हुसेनी ने समझा कि यह नवाब के बाप बूढ़े नवाब होंगे, इसलिये बड़े आदर से उठ कर उसने सलाम किया और विचारा कि कोई आश्चर्य नहीं कि "मेरे समान जीव को यहां देख कर ये चकित हो गए हों। मुझे निश्चय होता है कि मेरे टिकियापुर पहुंचने का प्रबन्ध ये करा देंगे, क्योंकि मेरा यहां पर ठहरना इनको अच्छा न लगेगा"।

"ओः! सुन्दरी, हूरी, परी, साक्षात् आकाश से उतरी हुई अप्सरा!"—वह महाविशाल देहधारी बोलने लगा। बोलते समय इतना झुक झुक कर सलाम कर रहा था कि देख कर भय होता था कि एक ओर उलार पाकर शरीर के बोझ से कहीं गिर न पड़े। वह बोला—

"बीबी, कोई घबराने की बात नहीं है। अहा! बड़ी भूल हुई।—उः! नवाब साहब की इच्छा है—ओः! ओः!—आप बैठ जाइए।—घबराइए मत!—उः!—उः!—मैं क्या कहूं?—मैं क्या करूं?—अपने जीवन भर में मेरी ऐसी दशा कभी नहीं हुई थी।—ओः! आप मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगी"।

हु—"हां, मेरा भी जी ऐसाही चाहता है। पर कुछ बात नहीं। मैं तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दूंगी, यदि तुम मुझे अपने बेटे के चंगुल से बचा दो"।

लम्बोदर ने पूछा—"मेरा बेटा? ऐं! आपने कैसे जाना कि मेरे एक बेटा है? और वह! वह पिल्ला! उसने इतना बड़ा साहस किया है? वह ऐसा पापी हो गया है मैं नहीं जानता था"।

हु—"तुम नहीं जानते थे? तो फिर तुमको उचित है कि उसपर तीव्र दृष्टि रक्खो। और देखो आज सवेरे उसने मेरे साथ जो खिलवाड़ किया है वैसा वह फिर न करने पावे। पहिले तो उसने मुझे दुनिया भर की बकवाद सुनाई। फिर बड़ा भारी धोखा दिया और मुझे घोड़े पर लाद कोसों दौड़ा लाया जिससे मेरा सारा शरीर दुखने लगा है"।

हुसेनी की कथा सुन उसके सम्मुख उस विशाल गोलाकार मुखमण्डल में से दो गोल गोल आंखें फटकर बाहर निकली आती थीं और उस मांस-पिण्ड में लपेटा हुआ मन तो मानो अंधेरे में लुप्त हो गया था। क्योंकि गाल दोनो और भी फूल आए थे और इस अनुपम शरीर का अधिकारी ऐसे वेग से सांस ले रहा था मानो लोहार धौंकर से आग सुलगा रहा हो।

हुसेनी फिर बोलने लगी कि "जो होनी थी सो तो हो ही गई, अब उस बात पर रोष करने से कुछ लाभ नहीं है। परन्तु यदि आप मुझे टिकियापुर तक ले चलें तो"—

"क्या मैं?" वह स्थूलरूप बोल उठा—"क्या मैं अपनेको ऐसा बड़भागी समझ सकता हूं कि आपके काम आऊं?"

हु—"क्यों नहीं? हानि क्या है? मैं आपका बड़ा गुण मानूंगी"।

स्थूलरूप ने हांफकर कहा—"ओः! मैं आज आनन्द के मारे फूला नहीं समाता हूं"—और झट कुर्सी को पकड़ उसके सहारे से भूमि पर हुसेनी के चरणों में दण्डवत करने लगा। परन्तु वह ऐसी शीघ्रता से कुर्सी को खींचकर अलग खड़ी होगई कि वह विचारा चारो हाथ पैर फैला कर पेट के बल लोट पोट हो गया। परन्तु कुछ दम लेकर फिर उठ बैठने की चेष्टा कर रहा था कि इतने में रङ्गीली बी वहां आ पहुँची और बिगड़ कर बोल उठी कि "हैं, हैं, मीर साहब को क्या हुआ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुसेनी ने कहा "मैं समझती हूं कि बूढ़े बाबा अकस्मात् बीमार हो गए हैं"।

परन्तु रोगी मनही मन गुनगुनाने लगा "बलिहारी! बलिहारी तेरी बुद्धि को! तू साक्षात् स्वर्ग की अप्सरा ही है!"

रङ्गीली जानती थी कि अकेली उसे पकड़ कर वह नहीं उठा सकती थी। इसलिये वह ऐसी चिल्लाई कि वहां पर बहुत से लोग आ पहुंचे। क्योंकि मीरसाहब नवाब साहब के सब नौकरों के सर्दार थे, और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। नवाब साहब ने उन्हें हुसेनी को अपने पास लिवालाने के लिये भेजा था, परन्तु अब तक वह अपना समाचार नहीं कह पाए थे। जब लोगों ने चारों ओर से पकड़ कर उन्हें फिर खड़ा किया, और कुछ स्वांस लेकर ठंढे हुए, तो हुसेनी के पास ही एक तखत पर बैठ गए, और किसी भांति उसका एक हाथ पाकर उन्होंने उसे पकड़ लिया और बड़े आन्तरिक दुःख से उसमें एक चिकोटी काटली। फिर बोले "आः! अब मैं बहुत अच्छा हूं। ओः। न जाने मुझे क्या हो गया था! चलो कोई बात नहीं! अब सब लोग बाहर चले जाओ। मुझे बीबी साहिबा से एक विशेष समाचार कहना है"। सब नौकर तुरन्त चले गए, पर रङ्गीली वहीं खड़ी रही और हुसेनी के कान में कही कि दोनों घोड़े पलभर में तैयार हो जांयगे, और प्रकाश में कहा कि "आओ, चलो, हमलोग खाना खा आवें"।

परन्तु इस प्रस्ताव को सुनते ही मीर साहब निराश सागर में मग्न हो गए, और रङ्गीली की असभ्यता को देख उन्हें बड़ा खेद हुआ। परन्तु जब दोनों स्त्रियां सचमुच जाने लगीं तो उन्होंने झटपट नवाब साहब का संदेसा कह सुनाया, जिसे सुनकर हुसेनी ने झिड़क कर कहा—"चल हट, तेरे नवाब की नवाबी में आग लगे। मैं अब उसके पंजे में नहीं फँसने की और तुझसे भी अब कोई उपकार नहीं चाहती। योंही बैठा बैठा मक्खियां किया कर"।

मीर साहब ने बड़े खेद से कहा, अरी! बड़ी निर्दयी है। मेरा कलेजा जला दिया!"

परन्तु कलेजा चाहे जल कर भस्म हो गया हो, उसपर हुसेनी ने कुछ विचार न किया, और ज्यों ही कि झट पट किवाड़ खोल कर बाहर जाने लगी कि वहां पर नवाब साहब स्वयं आ पहुंचे, और उन्होंने रङ्गीली बीबी पर धमकी की झड़ी लगा दी कि ऐसी माननीया सुन्दरी को इस मैली कोठरी में क्यों ठहराया है। महल भर में सबसे उत्तम कमरा इनके लिये खाली करा देना उचित है। तब उन्होंने हुसेनी से क्षमा मांगी, और बड़े विनय से कोर्निश कर, उसका हाथ पकड़ उसे कोठरी से बाहर ले गए। परन्तु हुसेनी को तो अब भाग जाने की चिन्ता लग रही थी, इस कारण अपना उपाय प्रकाशित न हो जाय इसलिये विवश हो नवाब साहब के साथ साथ चली गई। वे उसे एक सुसज्जित बैठक में लिवा ले गए, जहां और भी कुछ पुरुष बढ़िया बढ़िया वस्त्र पहिरे बैठे हुए थे। इन दोनों के वहां पहुंचते ही सबके सब उठ खड़े हुए और मानो कोई राज्यकन्या का सम्मान करता हो, इस भांति झुक झुक कर उसे अभिवादन करने लगे। हुसेनी को छोड़ कोई और स्त्री वहां पर नहीं थी, परन्तु वे सबके सब सप्तर्षियों के समान उसके मुखचन्द्र की रूपसुधा पान करने लगे। वह जो कुछ कहती थी उसीपर वाह वाह की ध्वनि होने लगती। सब लोग उसके शील स्वभाव और विशेष कर उसके निर्दोष रूप की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से करने लगे। एक युवा उसके ग्रामीण वस्त्रों ही को सराहने लगा, और बोला कि आपका स्वभाव इतना सादा है कि अभिमान आपको छू तक नहीं गया, और केवल कुरूपा स्त्री ही अपने अङ्ग की शोभा बढ़ाने के लिये वस्त्र आभूषण पर अधिक ध्यान दिया करती हैं। स्वभाव सुन्दरी की सादेपन ही में अधिक शोभा होती है। एक दूसरे पुरुष ने उस के उदार स्वभाव पर मुग्ध होकर व्याख्यान दिया। निदान चारों ओर से उसकी इतनी बड़ाइयां होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगीं कि सुनते सुनते वह इस विचार में पड़ गई कि "क्या ये सब झूट मूट बक रहे हैं ? कौन जाने, मैं वास्तविक ही ऐसी रूपवती होउंगी ! इन लोगों के झूठ बोलने का कोई प्रयोजन मुझे नहीं देख पड़ता, क्योंकि ये सब अच्छे वंश के जान पड़ते हैं"।

इतने में नवाब साहब उसे एक खिड़की के पास लेजाकर वहां से नीचे की फुलवाड़ी की शोभा दिखाने लगे। फुलवाड़ी पत्र पुष्पों से सुशोभित थी और नाना भांति के पुष्पों की भीनी भीनी सुगन्ध वहां तक आ रही थी, जिसकी बास पाते ही हुसेनी का मन भी उमङ्ग से भरगया। इतने में बातों ही बात में सुअवसर पाकर नवाब साहब ने हुसेनी से अपने विवाह की कथा छेड़ दी। परन्तु हुसेनी ने एक लम्बी सांस भर कर कहा कि "मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं, और जो होऊं भी तो बिना पिता की आज्ञा के इस विषय में मैं आप कुछ नहीं कह सकती"।

नवाब साहब तो मारे हर्ष के गदगद हो गए और कहने लगे कि "मैं स्वयं उनकी आज्ञा ले आऊंगा। अभी सवार होकर जाता हूं और भोजन के समय तक उन्हें यहां ले आउंगा। महल में एक मुल्ला भी इस समय उपस्थित हैं, फिर आज ही रात को निकाह पढ़ जायगी"।

हुसेनी बोली कि "मैं मानो एक मिट्टी का खिलौना ठहरी, लोग समझते हैं कि मांगते देर नहीं कि उनके हाथ लग जाउंगी"।

नवाब ने कहा कि "इस खिलौने को मैं बड़े यत्न से अपने हृदय से लगा कर रक्खुंगा" —और तब अपनी इस प्रतिज्ञा को कार्य द्वारा सिद्ध कर दिखाने ही को थे कि हुसेनी ने एक झटके से उनका हाथ हटा दिया और एक ऐसी ठोकर मारी कि कभी किसी पुरुष ने स्त्री से ऐसी ठोकर न खाई होगी।

यह देख वहां पर उपस्थित लोगों में से एक भद्र पुरुष ने कहा "यहां पर बड़ा अन्याय होने लगा है। अजी नवाब साहब, आप क्या आपेको भूल गए हैं ? एक सुन्दरी स्त्री का ऐसी अपमान हो और कोई भला आदमी खड़ा खड़ा देखता रहे यह असम्भव है। बस, आप इनको मत छेड़िए, नहीं तो इनकी रक्षा के लिये मुझे आप से भी बैर करना पड़ेगा। बीबी साहिबा, आप डरिए मत, आपके लिये मैं अपनी जान देने पर तैयार हूं"।

नवाब साहब सुनते ही आग बबूला हो गए और बोल उठे "बस, सूबेदार साहब, बस, आप मुंह सँभाल कर बोलिए, नहीं तो अच्छा न होगा"।

अब तो वाक्युद्ध से हाथाबांही की नौबत आगई और लड़ने के लिये अपनी अपनी कमर बांध दोनों मनुष्य बाहर मैदान में निकल गए और उनके पीछे पीछे और लोग भी चले गए। केवल एक लम्बा दुबला पतला सा मनुष्य जो एक काला कोट पहिरे हुए था, नहीं गया, और कमरा सूना पाकर वह सीधा हुसेनी के सम्मुख चला आया और एक बार खांस कर बड़ी अधीनता से उसके मुख की ओर निहारता रहा।

हुसेनी ने पूछा—"अब, तुम्हें क्या होगया है ? जान पड़ता है जैसे तुम्हारा पेट दुख रहा हो"।

पुरुष—"तुम्हारी प्यारी चितवन ने सब दुख दर्द दूर कर दिया है। अरी प्यारी, मैंने बहुत कष्ट उठाए हैं। नव्वाब साहब मेरे मुरब्बी हैं; मैं उनका अकृतज्ञ नहीं होना चाहता; परन्तु—परन्तु—मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारे समान बुद्धिमती स्त्री साक्षात्—साक्षात्—ओः—मैं क्या हूं ! मैं बावला हूं और बोलने में मैं कभी नहीं चूकता, परन्तु इस समय मेरी सब बुद्धि भ्रष्ट होगई है। अपने मन की बात को मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता। मेरा यह आशय है कि न नवाब साहब और न यह झक्खड़ सूबेदार, दोनों में से कोई भी तुम्हारे योग्य—अँहः— ! अर्थात्, मैं विचारता हूं कि स्वच्छन्द और शान्तिमय जीवन और एक निष्कपट सेवक, सम्भव है कि ये आपको यथार्थ सुख दे सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हु—"हां, हां, ठीक है। मैं भी शान्तिमय जीवन चाहती हूं, पर वह मिले कहां ?"

वारिष्टर—"यहां देखिए ! इस दास पर कृपा दृष्टि रखिए, आप जो चाहती हैं सब आ पहुंचेंगे। इस हृदय ने पहिले कभी सौन्दर्य के हाथ आत्म-समर्पण नहीं किया था। अब तक मैं धन ही की खोज में अपने दिन बिताता था, परन्तु एक बार यह अमूल्य धन मेरे हाथ लग जाय तो सब कानून पलटा खा जायगा। तुम्हारी दृष्टि में कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति है कि—"

हु—"अहा ! अब मैं समझी ! या अल्लाः ! सवेरे मैंने जो जल पिया था, यह सब उसीका उपद्रव है। हट जा मेरी सामने से। एक ऐसा घूंसा जमाउंगी कि सब कानून भूल जायगा ! चल ! हट !!"—यह कह वह वहां से उछलती हुई रङ्गीली बी की कोठरी में दौड़ गई और उससे बड़े विनय से कहने लगी कि "मैंने सुना है कि यहां एक धर्मात्मा मुल्ला साहब उपस्थित हैं। मुझे उनके पास ले चल, धर्म्म की सहायता लेने से फिर कोई मुझे नहीं सताएगा। और मुल्ला जी झाड़ फूंक देंगे तो सब पानी का फसाद भी दूर हो जायगा"।

रङ्गीली—बेटी तू क्या बक रही है ? पानी का कैसा फसाद ? इतनी घबराई क्यों है ? चल तुझे मुल्ला ही के पास ले चलूं। पर तेरा हृदय बड़ा बलवान् है। सबकी बहू बेटी ऐसी होतीं तो क्या कहना था। भगवान तेरा भला करे, चल आ"।

उस समय मुल्ला जी अपनी जगह पर नहीं थे, इसलिये थोड़ी देर उसे वहां ठहरना पड़ा। सामने एक शीशा टङ्गा था। वह उसमें अपना स्वरूप देखने लगी कि कुछ विशेष परिवर्त्तन ऐसा क्या हो गया है कि जिसके देखते ही सब पुरुष उन्मत्त हो जाते हैं। पूरे पांच मिनट तक उसने अपने रूप की परीक्षा ली, पर उसे कुछ भी अन्तर न देख पड़ा; अपना मुख वह जैसा पहिले देखती थी अब भी उसने ठीक वैसाही देखा।

इतने में धीरे धीरे द्वार खुले और लम्बी श्वेत दाढ़ी से शोभित एक धार्मिक महात्मा की मूर्त्ति उसके सन्मुख आ खड़ी हुई और बड़ी एकाग्रता से टकटकी बान्धे चुपचाप उसकी ओर देखने लगी।

"अरे ! शाह असग़र अली साहब ! आप यहां कहां से आए ? आपको देख कर मेरे धड़ में प्राण लौट आए ! क्या आपने मुझे नहीं पहिचाना ?"

धार्मिक मौलाना साहब ने कुछ घबरा कर कहा—"भगवान् ! कोई भूल हो गई है। जो एक बार भी अपने सौभाग्य से मैंने आपके दर्शन पाए होते तो सम्भव नहीं कि मैं आपको भूल जाता"।

हु—"नहीं ! मैं तो नहीं भूली हूं। हां जब से आपने जालिमगंज छोड़ दिया, मैं तब से बड़ी अवश्य हो गई हूं।

आपने कितनी बार मुझे अपनी गोदमें बैठा कर खिलाया था। परन्तु अब आप मुझे नहीं उठा सकेंगे। आइए बैठ जाइए। और आज मुझपर जो कुछ बीती है मैं सब आपको सुनाती हूं। मैंने और तो कुछ नहीं किया है, केवल तीन घूंट जल अवश्य पिया है। पर जल पीने से क्या हानि हो सकती है, मेरी समझ में नहीं आता। आप कृपाकर मुझे बताइए कि मैं क्या करूं। आप तो मुझे बहुत लाड़ प्यार किया करते थे, और मेरी पीठ पर मुक्कियां मार कर हंसते और कहा करते थे कि मैं बिटिया कैसे होगई, क्योंकि मुझमें छोकड़ों के सब गुण वर्त्तमान थे"।

शाह साहब बिस्मित होकर पूछने लगे "क्या यह भी सम्भव है ?"

"वाह शाह साहब, आप सब भूल गए ? यह लीजिए, मेरी ओर फिर भली भांति देख लीजिए। देखिए, मैं आपकी वही पुरानी खेल की सँगिनी हूसेनी हूं।"

उस भलेमानुस ने बड़े आश्चर्य से अपनी आंखें फाड़ कर और हाथ उठा कर कहा "हैं !! क्या यह ठीक है ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुसेनी ने पहिले अपनी सब कथा समझाकर कही और फिर कहा, "शाह साहब, मैं अब आप ही के शरण आई, और मुझे आशा है कि यहां से आप मुझको कहीं और ले चलेंगे। आप मुझे जहां लिवा ले जाइएगा, मैं आपके साथ बेखटके चली चलूंगी, परन्तु यहां के भयानक लोगों के बीच क्षण भर भी रहना मैं नहीं चाहती"।

शाह साहब ने उत्तर दिया कि "जहां कहोगी मैं आपके साथ साथ चला चलूंगा, और आपका रक्षक बनूंगा। परन्तु रङ्गीली बी के साथ इस समय आप थोड़ी देर के लिये दूसरी जगह चली जांय तो अच्छा हो, क्योंकि यहां भी कोई आकर आपको छेड़ सकता है। मैं तब तक यहां से चलने का प्रबन्ध कर आऊं"।

निदान हुसेनी किसी एकान्त ठौर में जा बैठी, और बड़ी उत्कण्ठा से शाह साहब की बाट देखती रही, क्योंकि हुसेनी के यहां रहने के कारण उस गृह में जो जो आश्चर्य घटनाएं उस समय हो रही थीं, रङ्गीली बीच बीच में आकर उसे वे सब समाचार कह जाती थी।

ऐसा जान पड़ा कि नवाब साहब ने सूबेदार को छुरी से घायल कर दिया, और जिस समय कि वे इस उचित कार्य में तत्पर थे, एक चपरासी, जो कि इस मनमोहिनी स्त्री के रूपराशि का दर्शनाभिलाषी था, बैठक के कमरे में धीरे धीरे झांकने लगा और प्रेमपीड़ित बारिस्टर साहब की सब कीर्त्ति को भली भांति देख कर उसने चट जाकर अपने स्वामी से उनकी सब कथा कह सुनाई। नवाब साहब एक शत्रु पर अभी विजय पा चुके थे, परन्तु दूसरे का आविर्भाव सुन तुरन्त दौड़ते हुए बैठक में चले आए और देखा कि न्यायालय के वागदेव हुसेनी के अकस्मात् अन्तर्धान से विस्मित् होकर अब तक पूर्ववत् हाथ जोड़े ध्यानस्थ बैठे हैं। बस, बिना कुछ आगा पीछा विचारे अग्नि के साक्षात् अवतार नवाब साहब ने उनकी पीठ पर एक लात जमाई और कई एक मधुर नामों से पुकार कर उनका आदर सम्भाषण किया। यह बात इतनी शीघ्र हो गई कि बारिस्टर महाशय को पीनलकोड के दण्ड विधि के स्मरण करने का समय न मिला और वे भूमि पर लेट गए। परन्तु तुरन्त वे अपने शरीर को झाड़ कर उठ खड़े हुए और न्यायालय की सहायता लेने की अपेक्षा न कर नवाब साहब के मुख पर एक ऐसा घूंसा उन्होंने जमाया कि उनकी नासिका से रक्तपात होने लगा। यद्यपि नवाब साहब के पतन से उनको कुछ थोड़ा सा सन्तोष हुआ, परन्तु फिर हुसेनी के मनभावन प्रेमालाप का स्मरण होते ही कलेजा दहल उठा और वे उस भांति कुछ बड़बड़ाने लगे जैसे कहानी की लोमड़ी ने एक बार कहा था कि अंगूर खट्टे होने के कारण वे उसके हाथ नहीं लगे थे। पास किसी पुरुष ने उनकी बड़ बड़ सुन ली और उस पर एक ऐसे ठहाके की हंसी उड़ाई कि उसके साथ तुरन्त गजकच्छप का युद्ध आरम्भ हो गया और बारस्टर साहब हाइकोर्ट में जिस हाथ को अधिक हिलाया करते थे, उसमें एक बड़ी भारी चोट आगई।

इधर नीचे के खन में भी बड़ी बक झक हो गई थी। मीर साहब ने रङ्गीली के पुत्र करीमबख़्श की कथा सुनली और वे उसे कुत्ते का पिल्ला कह कर गाली देने लगे। और करीमबख़्श ने अपने पिल्लापन स्वीकार करने के बदले मीर साहब को बुड्ढे बन्दर की उपाधि दी। और महल की सब स्त्रियां पुरुषों को मनमानी गालियां देने लगीं और कहने लगीं कि यह आज हो क्या गया है कि एक कानी गंवार लुगाई के पीछे छोटे बड़े सब बावले बन गए हैं। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जिस कानी लुगाई को पुरुष लोग स्वर्ग की अप्सरा समझ रहे थे, उसमें स्त्रियों ने सौन्दर्य्य का एक तिल भी नहीं देख पाया। यह निश्चय उन स्त्रियों में स्वाभाविक ईर्षा का प्रतिपादक है।

निदान एक गुप्तद्वार से होकर शाह साहब और हुसेनी महल से भाग चले, और दो टट्टू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बैठकर धीरे धीरे चुपचाप जाने लगे। वे कोई कोस भर निकल गए होंगे, तब हुसेनी ने उस दिन की घटनाओं को और सब लोगों के आपस में लड़ाई दंगे को सोच कर बड़ा खेद प्रकाश किया।

शाह साहब ने उत्तर दिया कि "इसमें आपका कुछ दोष नहीं। जब स्त्रियां अत्यन्त रूपवती होती हैं तो ऐसा ही हो जाता है। और तब मनुष्य यह नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं"।

हु—"ले! शाह साहब! आज की घटना से और उस बात से क्या सम्बन्ध है? यह निश्चय है कि मैं सुन्दरी नहीं हूं। नहीं तो हमारे गांव के आस पास में कोई न कोई इतने दिन इस बात को अवश्य जान जाता। आप ही तो मुझसे कहा करते थे कि मुझे स्त्री के बदले पुरुष होना उचित था। कुछ दिनों से मेरे भी मन में यही बात जम गई थी। और जब कोई मुझे व्याहने नहीं चाहता था तो मैं सोचा करती कि मैं पुरुषों के वस्त्र पहिरा करूं तो अच्छा, और उसी ओर अपने भाग्य की परीक्षा कर लूं कि कोई स्त्री भी पुरुष जान मुझे चाहती है वा नहीं"।

शा—"आज कल जालिमगंज में निरे गधे ही रहते होंगे कि ऐसी परी के समान रूपवती का आदर नहीं होता"।

तब फिर वे लोग चुपचाप चलने लगे। जब कुछ दूर निकल गए तो हुसेनी बोल उठी—"हैं, यह तो वही राह है जिधर होकर मैं सबेरे आई थी। हां! सचमुच उस बुढ़िया के टूटे खँड़हर की चोटी पेड़ों के झुण्ड में से मुझे देख पड़ती है। मुझे जान पड़ता है कि आज रात को भी टिकियापुर नहीं जा सकूंगी।—पर, खुदा ख़ैर करे! शाह साहब! आपको क्या होगया है? आपका शरीर तो अच्छा है?"

शाह—"नहीं! बहुत अच्छा नहीं है। मेरे हृदय कुछ घबराहट सी जान पड़ती है और मेरे सिर कुछ चक्कर सा आ रहा है"।

हु—"मुझसे कुछ सेवा हो सके तो आज्ञा दीजिए"।

शा—"सुन्दरी! जो आप मुझे अपनी मीठी बोली थोड़ी देर और सुनाती रहें तो सम्भव है कि मेरा चित्त ठिकाने आजावे"।

हु०—"बहुत अच्छा। यदि बोलने ही से आप नीरोग हो जांय तो क्या हानि है। पर कौनसे विषय पर बोलूं"।

शा—"विषय कोई हो। आप केवल कृपा करके बोलती रहें"।

हु—"कृपा करके बोलती रहूं! क्या आप सरीखे वृद्ध से मैं दूसरी रीति से भी बोल सकती हूं?"

शा—"नहीं, नहीं, मैं बहुत बुड्ढा नहीं हूं। ऐसा न कहिए।"

हु—"अच्छा, तो मैं नहीं कहूंगी; क्योंकि यदि सम्भव हो तो मैं आपको निश्चय आनन्दित करूं। और सच तो यों है कि आप कुछ बहुत बुड्ढे भी नहीं है। लड़कपन में भी मैं आपको ठीक ऐसा ही देखती थी। मेरे अब्बा कहा करते थे कि—"

शा—"जाने दो, प्यारी! अब उस बात को छोड़ दो"।

हु—"अच्छा, बाबा, तब मैं उस विषय में आपसे कुछ नहीं कहूंगी, यद्यपि मेरी समझ में यह नहीं आती कि जब आप स्वस्थ और बलवान हैं तो वयस क्या कर सकता है"।

शाह साहब ने आनन्दित हो कर पूछा—"क्या आप सच मुच ऐसा ही विचारती हैं?"

हु—"हां, हां, क्यों नहीं? कोई मनुष्य एक बार आपके मुख की ओर देख कर यह कह सकता है" और यह विचार कर कि वृद्ध को स्वरूपवान कहने से वह आनन्दित हो रहा था, हुसेनी बुढ़िया के घर पहुंचने के समय तक बारम्बर उसकी प्रशंसा करती रही।

बुढ़िया गृह में नहीं थी, परन्तु शाह साहब ने कहा कि वे बुढ़िया को पहिचानते हैं, और यदि वहां विश्राम न करें और योंही चले जांय तो वह बड़ी दुखी होगी। इस कारण वह वहां नहीं है तो क्या, एक दिन ठहर जाना ही अच्छा है। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुसेनी से कहा कि बुढ़िया की अनुपस्थिति में आप यहां पर मेरे ही पाहुन हो जाइए, और मैं भरसक आपकी सेवा करूंगा। जब हुसेनी रोटी बनाने को जाने लगी तो शाह साहब ने बड़े विनय से कहा कि आप वृथा परिश्रम न करें। देखिए, मैं ही बात की बात में खाना पका लाता हूं। और यद्यपि हुसेनी यह बात नहीं स्वीकार करती थी, पर वृद्ध ने उसे रोक कर देखते देखते भोजन बना कर ला रक्खा।

वे दोनों एक ही साथ भोजन करने बैठे, और शाह साहब उस समय हुसेनी का इतना यत्न करने लगे कि वह उकता गई। भोजन के अनन्तर हुसेनी बो ने शाह साहब को उनके पुराने अभ्यास का याद दिला कर कहा कि आपको पहिले भोजन के उपरान्त तनिक सोने का अभ्यास था। आप मेरे लिये अधिक क्लेश न उठावें, थोड़ी देर आराम कर लीजिए। परन्तु जब शाह साहब ने नहीं माना, और हुसेनी के पास बैठ कर उसकी बचनसुधा ही पान करने की अभिलाषा प्रकट करने लगे तो हुसेनी ने समझा दिया कि टिकियापुर जाते समय भी वह शाह साहब को अपने संग ले जायगी और इस यात्रा के पहिले विश्राम करना आवश्यक है। परन्तु यात्रा की बात सुन कर शाह साहब अपना सिर हिलाकर कुछ गुनगुनाते रहे और घोड़े थक गए हैं ऐसा ही कुछ कहने लगे, परन्तु उनके बचन ठीक ठीक हुसेनी की समझ में न आए। जान पड़ता था कि हुसेनी को लेकर अन्तिम काल तक यहीं निवास करने की इच्छा उनके मन में बलवती हो रही थी। परन्तु थोड़ी देर में वे पड़ कर सो गए।

हुसेनी ने विचारा कि मैं भी चल कर पड़ रहूं क्योंकि मैं भी बहुत थक गई हूं। और यों कह कर पूर्व रात्रि में बुढ़िया ने उसे जिस खटोले में सुलाया था, उसी पर जा कर लेट रही। थोड़ी देर पड़ी पड़ी सोचने लगी कि किस उपाय से मैं टिकियापुर पहुंचूंगी। परन्तु तुरन्त उसकी सब सुधबुध जाती रही और वह भी अचेत हो गई। दुसरा प्रश्न जो उसने आप ही आप कर पाया वह यह था—"अरे मैं कितनी देर सोती रही हूं!"

यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर भारी थकावट के उपरान्त हमलोग कोई भी ठीक ठीक नहीं दे सकते हैं। हुसेनी अपनी आंख मलने लगी और उसी प्रश्न को उसने फिर चिल्लाकर कहा परन्तु शाह साहिब के परिचित स्वर से उसको उत्तर पाकर वह बड़ी लज्जित हुई, क्योंकि शाह साहब उसकी चारपाई के पास बैठे हुए उसकी निद्रित रूपराशि की शोभा देख रहे थे। वे बोले "प्यारी! तुम्हें अच्छी नींद आई। अब सबेरा हो गया है। मैं रात भर पास बैठा हुआ तुम्हारी रखवाली करता रहा और आशा रखता हूं कि आज तुम मुझे अपना चिरसेवक समझोगी"।

"शाह साहब! भला यह कैसा चरित्र है? तुम बूढ़े हुए तो क्या हुआ, पर ऐसा तुम्हें नहीं चाहिए था"—यों कह कर हुसेनी ने झटपट सब वस्त्रादि अपने अधखुले शरीर पर समेट लिए।

शाह साहब ने उत्तर दिया "नहीं, नहीं, बूढ़ा नहीं हूं। मेरा मन कह रहा है कि मैं अब तक हट्टा कट्टा बना हूं। मेरे साथ तुम बड़े सुख दिन काटोगी और तुम्हारे बिना मैं पल भर नहीं जी सकता। तुम्हारे विषय में चिन्ता करते करते मैंने रात भर पलक नहीं मारा है; मैंने अपना मनसूबा पक्का कर लिया है। और तुम्हारा अस्वीकार करना भी वृथा है, क्योंकि मैं तुमको जङ्गल के बीच में ले आया हूं। मेरे साथ तुम निकाह पढ़ लो। मैं सच कहता हूं कि तुम्हें इसके लिये कभी पछताना नहीं पड़ेगा। तुम ऐसी सुन्दरी हो कि अपने शेष दिन तक तुम्हारी पूजा करने में कभी नहीं चूकूंगा"।

हुसेनी चीख कर बोल उठी—"अरे कमबख्त डोकरे! कोठरी से अभी बाहर निकल जा। मेरी देह पर कपड़ा नहीं है तो क्या हुआ। जो तू बाहर जायगा तो उठकर तेरी हड्डी पसली एक कर दूं—बस खबरदार। एः! क्या?—तू मुझे पकड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दवा रक्खेगा ?–मेरे वस्त्र छोड़ दे ।–छोड़ दे ।–अरे मैं कहती हूं–एक बार छोड़ दे ।–एक बार मेरे हाथ छुट जांय तो तेरी आंखे निकाल लूंगी !—अरे–अरे डोकरे–भूत ! पाजी !–शैतान के नाती !-क्या ! तू मुझे नहीं छोड़ेगा ?–दौड़ो ! दौड़ो ! बचाओ ! अरे मार डाला ! मार डाला ! "—और वह इतने जोर से चिल्लाई कि अकस्मात् उसके ऊपर से सब बोझा हट गया ।

"ओः ! वह चला गया !"—यों कह कर वह लम्बी लम्बी सांस लेने लगी और कोठरी के चारों ओर देख कर बोली कि "अच्छा हुआ । नहीं तो मैं ही उसे—अरे खुदा खैर करे ! मैं कपड़े, उतार ही कर सोई थी । तनिक भी सुध मुझे नहीं है कि—"

इस समय उसे अपनी दयालु गृहस्वामिनी बुढ़िया को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ । उसका चिल्लाना सुनकर बुढ़िया दौड़ती हुई वहां आई और पूछने लगी कि क्या हुआ है ? तब हुसेनी बीबी ने अपनी सब अद्भुत कथा कह सुनाई । जब बुढ़िया अन्त तक सब सुन चुकी तो दन्तरहित मुख को फाड़ कर बहुत हँसी और उसने कहा–"चलो कुछ चिन्ता नहीं ! बूढ़े के पंजों से तू अब निर्विघ्न है । चल, उठ, आठ बज चले । मैंने रोटी बना रक्खी है । तू ऐसी गहरी नींद में सो रही थी कि मैंने तुझे नहीं जगाया । और अश्चर्य ही क्या है । कल रात को दो बजे तक तू जागती रही, फिर राह की हारी मादी यह सब अद्भुत स्वप्न देखा तो कोई आश्चर्य नहीं । अब चल, आ" ।

पलुए जङ्गली जानवर

मिस्टर एलबर्ट जेमराक (Mr. Albert Jamrach) एक प्रसिद्ध प्रकृतितत्वज्ञ (Naturalist) और जङ्गली जानवरों के सौदागर हैं । थोड़े दिन हुए एक अंगरेज़ी संवादपत्र के संवाददाता ने इनसे 'पलुए जङ्गली जानवरों' के विषय में वार्तालाप किया था और उसको संवाद-पत्र में प्रकाशित करवाया था, जिसका आशय नीचे प्रकाशित किया जाता है । आशा है कि पाठकों को रुचिकर हो ।

एलबर्ट जेमराक महाशय का कथन है कि "मैंने हर प्रकार के पलुए जङ्गली जानवरों को बेचा है । अभी थोड़े दिन हुए मैंने एक तेंदुए को बेचा था जिसका मोल लेनेवाला आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय का एक विद्यार्थी था । वह विद्यार्थी किसी बोरडिङ्ग हाउस के कमरे में रहता था । उसे तेंदुए को अपने कमरे के भीतर बड़े गुप्तभाव से लेजाना पड़ा, क्योंकि यदि वहां के अध्यक्ष इस बात को जान जाते तो तुरन्त उस तेंदुए को हाते के बाहर निकलवा देते । तेंदुए का बच्चा बड़ा सुहा-वना पलुवा जानवर होता है । कभी कभी बाघ भी ऐसे पलुए हो जाते हैं कि मनुष्यों के संग घर में बास करने लगते हैं ।

किसी सैनिक कप्तान ने मेरे बाघों के संग्रह में से एक बाघ को (मुझसे) खरीदा था । उसने बाघ के गले में पट्टा और संकल पहिना दी और संकल पकड़ कर वह उसे अपने साथ साथ फिराने लगा । उन्हीं कप्तान महाशय ने एक बेर एक तेंदुए को पाला जो थोड़े दिनों के पश्चात् अपने मालिक के पीछे कुत्ते की भांति फिरने लगा ।

बाघ को पालने में बड़ा खर्च लगता है जिसे बहुत थोड़े मनुष्य उठा सकते हैं ।

यदि मालयदेशीय रीछ (Malaya bears) अच्छी तरह पाले जावें तो उनसे किसी प्रकार का भय नहीं पहुंचता । थोड़े दिन हुए मैंने एक मालय देशीय पलुवा रीछ एक धनवान महाशय के हाथ बेचा था । यद्यपि वह रीछ प्रायः पूरा जवान हो गया था, तथापि वह उसे घर में इधर उधर फिरने देता था ।

मेरे पास कई रीछ हैं जो पलुए जानवर की भांति काम में लाए जा सकते हैं ।

एक बेर किसी धनवान व्यक्ति ने मुझसे एक पलुवा सिंह क्रय किया । उन महाशय का यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार था कि वह सिंह को वनस्पतिभक्षक बनावें-गे, जिससे उसका दुष्ट स्वभाव दबा रहे। मैंने उन-को उसी समय सूचित किया कि आपकी परीक्षा निष्फल होगी और वैसाही हुआ। वह सिंह छ सप्ताह के पश्चात् मर गया क्योंकि उसे उसके स्वभावानुकूल भोजन न मिला।

सिंह मांसभक्षक जन्तु है। उसे कोई उसकी प्रकृति विरुद्ध जबरदस्ती बनस्पति भक्षण नहीं करा सकता। यह सिद्धान्त कि ऐसा होना सम्भव है केवल पत्रों की शोभा है, व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। यदि कोई किसी प्रकार से सिंह को उसकी पुश्त-दर-पुश्त बनस्पति भक्षण करा सके तो सम्भव है कि अन्त में वह बिल्ली जैसा शीघ्र वश में होनेवाला जन्तु बन सके। परन्तु बाधा यह है कि बिना मांस के सिंह यथोचित समय तक जी ही नहीं सकता।

सिंह के बच्चे बड़े सुहावने और प्रिय पलुवे जन्तु हो जाते हैं, परन्तु एक वर्ष की वय के पश्चात् वे भयानक हो जाते हैं। वे ऐसे ताकतवर होजाते हैं कि केवल खेल ही खेल में ऐसा धक्का लगाते हैं कि जिसे मनुष्य बहुत दिनों तक भी न भूले। इस-के अतिरिक्त उनके मांस और रुधिर के सूंघ लेने का भी भय है। यदि किसीका विचार सिंह-शावक को पालने का हो तो उसे इस बात की पूरी पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि वह कहीं कच्चे मांस के समीप न चला जावे। यदि सम्भव हो तो सिंह को उबला हुआ मांस खिलाना उत्तम होगा। यह बात निर्विवाद है कि सिंह कच्चे मांस को अधिक प्रसन्नता से खाता है, परन्तु इस प्रकार के भोजन से उसमें उसकी जङ्गली आदत का पुनः संचार हो जाता है।

जङ्गली जानवरों के पालने में बड़ा आनन्द होता है, परन्तु इस काम में खर्च बड़ा लगता है केवल रुपए वाले पुरुष ही यह आनन्द ले सकते हैं।

वनमानुस और शिम्पेनजी (एक प्रकार के बिना पूंछ के बन्दर) भी प्रायः पलुवे जानवर की भांति बिकते हैं। इनमें शिम्पेनजी अधिक हृदयग्राही होता है। मेरा एक ऐसे शिम्पेनजी से परिचय है जिसे गिनना, चमचे से खाना पीना और चुरुट पीना सिखलाया गया है।

वास्तव में प्रत्येक जङ्गली जानवर पलुवा हो सकता है यदि वह बचपन में पकड़ा जावे और पालनेवाला स्वयं इस ओर दत्तचित्त रहे। परन्तु ऐसा समय भी अवश्य आता है कि तब उस जान-वर को घर में इधर उधर डोलने देना उचित न समझा जावे, क्योंकि उमर के अधिक होने पर उसमें जङ्गली आदतों का आपसे आप संचार होने लगता है।

कुमार प्रेमदत्त जोधसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] जून १९०१ ई० [संख्या ६

विविधवार्ता

गत मास की सरस्वती में हम अपने पाठकों को महाराणी विक्टोरिया के अनेक चित्रों का दर्शन करा चुके हैं और उनके विशद चरित्र का भी वर्णन सुना चुके हैं। आज हम श्रीमान महाराज राजेश्वर सप्तम एडवर्ड और उनकी धर्मपत्नि महाराणी अलेकजेण्ड्रा के चित्रों का दर्शन कराते हैं। महाराज का राजत्वकाल अभी आरम्भ हुआ है, अतएव हम उनके विषय में अभी कुछ नहीं कह सकते। इतने दिनों तक महाराज ने राजकाज का काम बहुत थोड़ा किया। केवल भिन्न भिन्न अवसरों पर महाराणी के प्रतिनिधि स्वरूप होकर इन्होंने भिन्न भिन्न स्थानों पर वक्तृता दी थी। निज जीवन का विशेषांश उन्होंने ग्राहस्थ्य धर्म के निर्वाह में ही बिताया, परन्तु इसमें भी ये सदा सबके प्रिय स्नेहभाजन बने रहे। श्रीमती महाराणी के चरित्र से और राजकीय घटनाओं से कभी कोई विशेष सम्बन्ध न रहा। इनका समस्त काल पति की सेवा सुश्रुषा और बालकों के पालन पोषण तथा पठन पाठन में ही बीता। अपने सेवकों पर भी इनकी प्रीति सदा बनी रही। एक समय महाराज सप्तम एडवर्ड बहुत बीमार पड़गए। बीमारी यहां तक बढ़ी कि प्रजा उनके जीवन से निराश हो बैठी। इन दिनों महाराणी ने सब काम छोड़ दिए थे, केवल एक पतिसेवा का व्रत कर रक्खा था; समस्त काल महाराज की शय्या ही के निकट बितातीं और उनके दुःख को घटते देख अपनेको परम धन्य और उनके शारीरक क्लेश से अपनेको परम दुखित मानतीं। महाराज की इस रुग्नावस्था के दिनों में उनका एक सेवक भी रुग्न-शय्या पर पड़ा हुआ था। महाराज की सेवा सुश्रुषा से जब कभी महाराणी को अवकाश मिलता, वे तुरन्त उस सेवक की सुध लेतीं। बड़े लोगों में ऐसा शील स्वभाव विरलाही कहीं देखने में आता है। यदि ऐसा सार्वजनिक स्नेह हमारे नवीन महाराज और महाराणी भारत की दीन दुखिया प्रजा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी दिखाएँगे तो एक न एक दिन हमलोगों के भी भाग्य खुल जांयगे।

*
* *

अलोकचित्रणविद्या से प्रेम रखने वालों को आज हम एक विचित्र वृत्तान्त सुनाते है जो अत्यन्त कौतूहलवर्धक है। जिन महानुभावों ने इस पत्रिका में "फोटोग्राफी" शीर्षक लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा, उन्हें इस बात के बताने की आवश्यकता नहीं है कि क्यामरा किस वस्तु को कहते हैं। संसार में सबसे बड़ा क्यामरा अमेरिका की "शिकागो ऐण्ड आलटन रेलरोड कम्पनी" ने बनवाया है। बनानेवाले जार्ज लारेंस महाशय हैं। इसके बनाने में तीन मास का समय लगा था और अब यह तौल में १७ मन के लगभग है। इसमें ८ फीट लम्बी और ४½ फीट चौड़ी तसवीर उतर सकती है। यह इतना बड़ा और भारी है कि इसको ठीक करने में १६, १७ मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती है। जब कभी उसे अन्दर से साफ करने की आवश्यकता होती है तो उसमें आदमी सुगमता से चला जाता है और उसे झाड़ पोंछ कर बाहर चला आता है। इसमें जो प्लेट लगाया जाता है उसका बोझ ५० सेर का होता है। जिन लोगों ने फोटोग्राफी का काम किया है, वे अनुमान कर सकते हैं कि ५० सेर के प्लेट को ठीक करके क्यामरा में लगाना और उसे पुनः रासायनिक द्रव्यों से धो धा कर ठीक करना और तब उसपर से चित्र छापना कितना कठिन कार्य है। प्लेट को ऐसी उत्तम रीति से ढक कर क्यामरा में लगा देते हैं कि एक बटन के दबा देने से उसके आगे का परदा हट जाता है और फिर बटन के दबाने से वह गिर पड़ता है। एक्सपोज़ करने में प्रायः ३० सेकेण्ड का समय लगता है। गत पेरिस प्रदर्शनी के लिये यह क्यामरा बनवाया गया था और अब इससे बराबर काम लिया जाता है। उसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये एक विशेष गाड़ी बनी हुई है।

*
* *

गत मास में हम तुलसीकृत रामचरितमानस के संस्करण के विषय में लिख चुके हैं। उसी लेख में हमने पृथ्वीराज रासौ के विषय में लिखने की प्रतिज्ञा की थी। इस अमूल्य रत्न पर भांति भांति के व्यर्थ आक्षेप लगाए जाते हैं। इनमें प्रधान उदयपुर के कविराजा श्यामलदास जी हो चुके हैं। अब तक इनके शिष्य वर्त्तमान हैं जो श्यामलदास जी के रोने को पीटते चले आते हैं। परन्तु दुःख की बात यह है कि किसीने भी ग्रन्थ प्रकाशित करवा के उसके गुण दोष के विवेचन पर ध्यान न दिया। श्यामलदास जी के विरोध के कई कारण हुए जिनमें प्रधान उदयपुर दर्बार की इच्छा और कविराज जी की स्वयं द्वेषाग्नि हैं। हमारी समझ में यह नहीं आता कि बिना ग्रन्थ को पूर्णतया प्रकाशित किए उसपर विवाद करना कहां तक युक्तिसंगत है। पृथाबाई का विवाह रावल समरसिंह के साथ हुआ अथवा नहीं, रावल समरसिंह पृथ्वीराज की लड़ाई में मारे गए या नहीं, इन ऐतिहासिक घटनाओं से और परस्पर के ईर्षा द्वेष से क्या सम्बन्ध है यह समझ में नहीं आता। यदि यह मान भी लिया जाय कि इस ग्रन्थ में कुछ अशुद्धियां हैं भी, तो इससे क्या यह आवश्यक है कि वह ग्रन्थ छापा ही न जाय। उदयपुर के पण्डित राम नारायण डूंगर ने एक पुस्तक "पृथ्वीराज चरित्र" नाम की छापी है जिसको वे कहते हैं कि मैंने पृथ्वीराज रासौ के आधार पर लिखा है। जिन्होंने पृथ्वीराज रासौ को देखा है वे कह सकते हैं कि कहां तक कपोलकल्पित कथाएं इस "चरित्र" में भरदी गई हैं। अन्य महाशय तो यही मान लें कि रासौ रद्दी है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के लोगों की इतिहास की ओर कुछ ऐसी अरुचि और कुछ आत्मश्लाघा में इतने पड़े हुए हैं कि वास्तविक घटनाओं को छोड़कर जिसमें अपनी बड़ाई हो, अपना बड़प्पन सिद्ध रहे, उसीके करने में तत्पर रहकर इतिहास के गले पर छुरी फेरने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। स्वयं उदयपुर दर्बार भी इस दोष से बच नहीं सकता है, परन्तु इस विषय पर हम फिर कभी लिखेंगे।

कभी यह भारतवर्ष विद्या के लिये इतना प्रसिद्ध था कि संसार के समस्त देशों का मुकुट माना जाता था, पर आज इस देश में विद्या तथा विद्यासम्बन्धी विषयों से हमारे देशवासियों की वह अरुचि हो रही है कि उसे देखकर ईश्वरही का नाम लेना पड़ता है। पृथ्वीराज रासौ सा प्रसिद्ध ग्रन्थ हो और पढ़े लिखे लोग यहां तक न जानें कि वह किस प्रकार की भाषा में लिखा है, उसमें किन विषयों का वर्णन है, वह कितना बड़ा है और कब बना! अस्तु, आज हम हिन्दी पाठकों के सूचनार्थ उसके अध्यायों की सूची नीचे देते हैं।

(१) आदि पर्व, (२) दसम समयो, (३) दिल्ली किल्ली कथा, (४) आजानवाह समयो, (५) कन्हपट्टी समयो, (६) आषेटक वीर वरदान समयो, (७) नाहर राय समयो, (८) मेवाती मुगल समयो, (९) हुसेन कथा, (१०) आषेट चूक समयो, (११) चित्ररेखा समयो, (१२) भोला राय भीम समयो, (१३) सलष जुद्ध समयो, (१४) इंछिनी व्याह समयो, (१५) मुगल जुद्ध समयो, (१६) दाहिमी व्याह समयो, (१७) भीमि सुवन समयो, (१८) दिल्लीदान समयो, (१९) माधो भाट कथा, (२०) पदमावती व्याह समयो, (२१) पृथा व्याह समयो, (२२) होली कथा, (२३) दीपमाल कथा, (२४) धन कथा, (२५) ससिव्रता कथा, (२६) देवगिरि जुद्ध समयो, (२७) रेवातट समयो, (२८) अनंगपाल समयो, (२९) घघ्घर की लड़ाई समयो, (३०) करणाटी पात समयो, (३१) पीपा जुद्ध समयो, (३२) इन्द्रावती वारहेज समयो, (३३) इन्द्रावती व्याह समयो, (३४) जैतराव जुद्ध समयो, (३५) भूरा जुद्ध समयो, (३६) हंसावती व्याह समयो, (३७) पाहड़राय समयो, (३८) वरूण कथा, (३९) सोमेश्वर वध समयो, (४०) पज्जुन छोगा समयो, (४१) पज्जुन चालुक्य समयो, (४२) चन्द द्वारका गमन समयो, (४३) कैमास जुद्ध समयो, (४४) भोमवध समयो, (४५) विनयमङ्गल, (४६) सूक वर्नन, (४७) वालुकराय समयो, (४८) पंग जग्य विध्वंस समयो, (४९) संजोगिता पूर्व कथा, (५०) संजोगिता नेम समयो, (५१) हांसी प्रथम जुद्ध, (५२) हांसी द्वितीय जुद्ध, (५३) पज्जून महोवा जुद्ध, (५४) पज्जून पातसाह जुद्ध, (५५) सामंत पंग जुद्ध, (५६) समरपुङ्ग जुद्ध, (५७) कैमास वध, (५८) दुर्गकेदार समयो, (५९) दिल्ली वर्णन, (६०) जनगम कथा, (६१) कनवज्ज जुद्ध समयो, (६२) षटरितु वर्णन, (६३) सुक चरित्र, (६४) आषेट चूक साप समयो, (६५) धीर पुण्डीर समयो (६६) विवाह समयो (६७) बड़ी लड़ाई समयो, (६८) वानवध समयो, (६९) रयनसी समयो।

ये तो उसके ६९ अध्यायों की सूची है। श्लोक संख्या इस समस्त ग्रन्थ की लगभग ३२००० के है। यदि यह ग्रन्थ रायल अठपेजी आकार में छापा जाय तो अनुमान से २४०० पृष्ठ अर्थात् ३०० फार्म में पूर्ण हो जायगा। इसकी छपाई अच्छे कागज पर ५००० के लगभग पड़ेगी। इतने बड़े ग्रन्थ के पूर्णरूप से सम्पादन होने और छपने में कम से कम दो वर्ष का समय लगेगा। यदि इस पुस्तक को सम्पादन करने के लिये एक सम्पादक, एक कवि (राजपुताने का) और दो सहायक दो वर्ष के लिये नौकर रक्खे जांय तो उसमें ४८०० रुपया व्यय होगा। बिना ऐसा प्रबन्ध किए इस ग्रन्थ के सम्यकरूप से छपने का प्रबन्ध न हो सकेगा। हमारे अनुमान से इस कार्य में लगभग १०००० के व्यय होगा। यह कोई इतना धन नहीं है जो एकत्रित न होसकै। कोटा और बूंदी का राज्य अवलों चौहानों के वंश में चला आता है। उन्हें चौहानों के कीर्तिस्वरूप इस पृथ्वीराज रासौ के छपवाने में सयत्न होना चाहिए। यदि दोनो महाराज पांच पांच सहस्र रुपया देदें तो इस काम का हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है, और यह धन इतना नहीं है कि जिसे वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगमता से न निकाल सकते हों। हमें पूर्ण विश्वास है कि उक्त दोनों महाराजे हमारे इस लेख पर ध्यान देंगे॥

*
* *

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और हिन्दी के कई एक पत्रों के जन्मदाता पण्डित दुर्गाप्रसाद जी हमें लिखते हैं कि आजकल हिन्दी के लेखक प्रायः शब्दों के ऊपयुक्त प्रयोग पर ध्यान नहीं देते। यह दोष यहां तक आता जाता है कि भाषा दिनों दिन बिगड़ती जाती है। उन्होंने उदाहरण स्वरूप एक "महा" शब्द लिखा है। वे कहते हैं कि बहुत से लेखकों को यही नहीं ज्ञात होगा कि इस शब्द का प्रयोग कहां कहां नहीं होना चाहिए। इसके ज्ञान के लिये निम्नलिखित श्लोक को स्मरण रखनेही से काम चल जायगा।

शङ्खे तैले तथा मांसे ज्योतिषिके भिषिके द्विजे।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते॥

अर्थात् शङ्ख, तैल, मांस, ज्योतिषी, वैद्य, ब्राह्मण, यात्रा, पथ और निद्रा इन शब्दों के साथ "महान" शब्द का प्रयोग न होना चाहिए। यदि इस बात पर ध्यान न दिया जायगा तो अर्थ में बड़ा भेद पड़ जायगा। इन शब्दों के साथ महत् शब्द के लगाने से क्या अर्थ हो जाता है यह नीचे लिखा जाता है।

महाशङ्ख = हड्डी। महायात्रा = यमलोक की यात्रा।
महातैल = चरबी। महापथ = यमपुरी का मार्ग।
महामांस = गोमांस। महानिद्रा = मृत्यु, वह निद्रा जिससे फिर मनुष्य जागे नहीं।
महाज्योतिषी = चन्द्रगुप्त। महावैद्य = यम।
महाब्राह्मण = महापात्र।

पण्डित जी का लिखना बहुत ठीक है। हमें आशा है कि हिन्दी के लेखकगण इससे लाभ उठावेंगे।

*
* *

हिन्दीभाषा इस समय भारतवर्ष की प्रधान प्रधान देशभाषाओं में ज्येष्ठतम होने पर भी उस आसन पर नहीं विराज रही है जो उसे वास्तव में मिलना चाहिए था। प्राचीनता में, सरसता में, काव्यग्रन्थों में, अधिकार में इसकी समता दूसरी भाषा नहीं कर सकती; पर कारण क्या है कि अब तक उसने उन्नति न की और बङ्गाली, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि भाषाएं जो इसके सामने उत्पन्न हुई, परम उन्नति के पद पर पहुंच गईं। अनुसन्धान और विचार करने पर यही देखने में आता है कि इसका आधुनिक रूप अभी सौ ही वर्ष का पुराना है। इससे अभी तक यदि इसने उन्नति न की तो कोई आशंका की बात नहीं है, समय पा कर सब ठीक हो जायगा। यह सत्य है। पर बङ्गाली भाषा तो अब ५० ही वर्ष की हुई है। उसने इतनी उन्नति क्या कर ली? हमारी समझ में इस अवरोध के दो कारण हैं। मुख्य कारण तो देशवासियों का विराग और पढ़े लिखे लोगों की उपेक्षादृष्टि है। जो लोग संस्कृत पढ़े हैं वे समझते हैं कि भाषा का पढ़ना लिखना हेय कार्य है, पर वास्तव में बात यह है कि उनमें से अधिकांश एक पंक्ति भी शुद्ध हिन्दी नहीं लिख सकते। हां, यदि वे चाहें तो उनके लिये हिन्दी का शुद्ध लिखना सीखलेना कोई बड़ी बात नहीं है। अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग यह सोचते हैं कि जो आनन्द अंग्रेज़ी में है, जितनी पुस्तकें अंग्रेज़ी में हैं, उतनी हिन्दी में नहीं; इसलिये क्या आवश्यकता है कि हम हिन्दी पढ़ें, हमारा काम तो अंग्रेज़ी से ही भली भांति चला जाता है। ऐसे स्वार्थान्ध, कूपमण्डूकवत् विचारनेवाले लोगों को यह नहीं सूझ पड़ता कि किसी देश ने अपनी मातृ भाषा की उन्नति बिना, उन्नति नहीं की है। दूसरा कारण हिन्दी की उन्नति के अवरोध का यह है कि इसकी दो प्रकार की भाषाएं हैं, एक गद्य की—दूसरी पद्य की। पद्य की भाषा गद्य से स्वतंत्र है, उसकी विभक्ति निराली और प्रादेशिक भाषा की है; उसमें जोड़ तोड़ भी अनोखा है। इसलिये पद्य के लि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अलग व्याकरण की आवश्यकता है। एक व्याकरण से गद्य पद्य दोनों का काम नहीं चल सकता। वस्तुतः गद्य पद्य की भाषा एक होनी चाहिए; जब जो भाषा बोली और लिखी जाती है उसके काव्य भी उसी भाषा में होने चाहिएं। यह रीति पृथ्वी की सब भाषाओं में है। हमारी हिन्दी इस नियम से क्यों बाहर रहे यह समझ में नहीं आता। हमारी समझ में तो वह भाषा कदापि भाषा नहीं कहा सकती जिसका एक व्याकरण न हो। हमारे इस कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि तुलसीदास सूरदास आदि ने जो ग्रन्थ लिखे हैं वे हिन्दी के ग्रन्थ नहीं हैं। वरन् समयानुकूल भाषा में परिवर्तन सदा होता रहता है। अतएव ये सब ग्रन्थ हिन्दी के अवश्य हैं, पर आधुनिक हिन्दी के नहीं। इसलिये इनका मान अधिक होना चाहिए। अब यदि हम यह चाहते हैं कि हमारी भाषा ठीक हो, वह उन्नति करे, तो हमें उचित है कि हम पुराने ढर्रे को छोड़कर पद्य को भी उसी भाषा में लिखें जिसमें हम गद्य लिखते हैं। यदि यह न हुआ तो हमारी भाषा सदा अपाहज बनी रहेगी और उसकी उन्नति सम्यक प्रकार से कभी भी न हो सकेगी।

***

हिन्दी कविता के सम्बन्ध में एक बात का जान लेना आवश्यक है। इस समय हमारे पद्य में जितने छन्दों का प्रचार है, प्रायः सभी मात्रा के हिसाब से गढ़े जाते हैं, पर आधुनिक हिन्दी की कविता का काम इन छन्दों से न चल सकेगा। बङ्गालियों ने छन्दों की उन्नति अच्छी की है। जब उन्होंने देखा कि प्राचीन छन्दों से हमारी भाषा का काम न चल सकेगा, तो उन्होंने नए छन्दों की रचना कर डाली। यह काम सदा से कवियों का रहा। क्या हमारी भाषा के कवि भी नायिकाभेद और समस्यापूर्ति को छोड़कर निज भाषा की वास्तविक उन्नति पर ध्यान देंगे?

***

खड़ी बोली की कविता के विषय में कुछ लिखते ही पण्डित श्रीधर पाठक का नाम स्मरण हो आता है। इसमें सन्देह नहीं है कि मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्याप्रसाद जी ने भाषा की इस सुधार पर बहुत कुछ जोर दिया और अभी तक वे इस उद्योग में लगे हुए हैं। पर इस अभाव की पूर्ति व्यर्थ की लिखापढ़ी से न हो सकेगी जब तक प्रतिभाशाली कविगण सुन्दर मनोहर कविता करके हिन्दी प्रेमियों को उसका रसास्वादन न करावेंगे और दूसरे कवियों को कविता करने का मार्ग न दिखावेंगे। क्या पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, तथा अन्य कविगण इस ओर ध्यान न देंगे और क्या यह उद्योग अनुचित होगा कि प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों में खड़ी बोली की कविता ही से पद्यभाग सुशोभित रहे? हमारी प्रार्थना है कि वे लोग इस ओर ध्यान दें जिन्होंने हिन्दी का बीड़ा उठाया है और जो इस कार्य को करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं। आग्रह, ईर्षा, अथवा द्वेष से काम न चलेगा, जो वास्तव में उचित है उसीकी ओर ध्यान रहना चाहिए।

***

अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतवर्ष में जातिभेद चला आता है। पुराने ढर्रे के कट्टर हिन्दुओं का यह कथन है कि जातिभेद वेद के समय से चला आता है। आधुनिक विद्वान लोगों की यह सम्मति है कि ज्यों ज्यों आर्यजाति की उन्नति होती चली त्यों त्यों यह वर्णभेद भी बनता चला और समय पाकर यह इतना पूर्ण हो गया। परन्तु इस बात को सब लोग मानते हैं कि प्रारम्भ में यह भेद कर्म्मप्रधान था, जन्मप्रधान नहीं। ज्यों ज्यों समाज की उन्नति होती चली, पुरुषों के कर्म्मों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा और समय पाकर ये चार भेद हो गए। जिन लोगों ने पठन पाठन पर ध्यान दिया और जो शुद्धता और सत्यता आदि सद्गुणों के लिये प्रसिद्ध हुए, वे ब्राह्मण कहलाए; जिन लोगों ने युद्धकौशल दिखलाया और दूसरों की रक्षा करना अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य माना, वे क्षत्रिय कहलाए; जो दूसरों को आवश्यक सामग्री देने लगे तथा वाणिज्य व्यापार में दत्तचित्त हुए, वे वैश्य कहलाए; और जो दूसरों की सेवा सुश्रुषा करने लगे वे शूद्रनाम से पुकारे जाने लगे। प्रारम्भ में यही चार जातिभेद थे, पर अब समय पाकर न जाने कितने ही भेद हो गए हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में सैकड़ों जातियां बसती हैं जिनके भेदों और उपभेदों की संख्या सहस्रों तक पहुंचती है। इन सब जातियों की रहन सहन, विचार और रीति रस्में भिन्न भिन्न हैं। भारतवर्ष में इस समय एक विदेशी गवर्न्मेण्ट राज्य करती है। शासन के उत्तम होने के लिये यह आवश्यक है कि वह सब जातियों का ब्योरा पूरा पूरा जाने। इसके अतिरिक्त अब शिक्षा के प्रभाव से रीति नीतियों में भी भेद पड़ चला है। इसलिये यह आवश्यक है कि अब तक जो अवस्था है यह लिख ली जाय कि जिसमें आगे चल कर यह जाना जा सके कि शिक्षा का प्रभाव कहां तक पड़ा है। इन्हीं विचारों से गवर्न्मेण्ट ने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक प्रान्त में एक एक पुस्तक बन जाय जिसमें वहां वहां की जातियों का पूरा पूरा वृत्तान्त संगृहीत रहे। इस कार्य के लिये डेढ़ लाख रुपया गवर्न्मेण्ट ने व्यय करना स्वीकार किया है। इसका प्रबन्ध इस प्रकार पर सोचा गया है—मद्रास, बम्बई, बङ्गाल, पश्चिमोत्तर प्रदेश, पञ्जाब, बर्मा, मध्यप्रदेश और आसाम में ये पुस्तकें बनाई जांयगी; प्रत्येक प्रान्त में २००) रु० मासिक वेतन पर एक पुरुष नियत किया जायगा और ५०) रु० महीना उसे आफिस व्यय के लिये दिया जायगा, तथा २०००) रुपया उन लोगों को पुरस्कार के लिये दिया जायगा जो लेखों द्वारा इस कार्य में सहायता करेंगे। गवर्न्मेण्ट का अनुमान है कि यह कार्य ५ वर्ष में समाप्त होजायगा, पर कहीं कहीं जहां उस सम्बन्ध में कार्य हो चुका है, कम समय लगेगा। अतएव सम्पूर्ण व्यय डेढ़ लाख सोचा गया है। वास्तव में गवर्न्मेण्ट का यह उद्योग सराहनीय है। हमें आशा है कि एद्देशीय लोग उसमें गवर्न्मेण्ट की सहायता करेंगे। गवर्न्मेण्ट ने राजपुताने को क्यों छोड़ दिया है यह समझ में नहीं आता। राजपुताने की जातियों का वृत्तान्त तो अवश्य होना चाहिए था। क्या हिन्दी के सम्पादकगण इसपर ध्यान देंगे?

* * *

लाला बैजनाथ रायबहादुर, सदरआला, आगरा से लिखते हैं—"मेरा यह संकल्प है कि यूरप और एमेरीका के उन धनाढ्य और उद्योगी महात्माओं के जीवनचरित्र मुद्रित करूं कि जिन्होंने अपने देश की उन्नति में प्रयत्न किया और उसीके साथ भारतवर्ष के उन महात्माओं के भी चरित्र वर्णन करूं कि जिन्होंने अपना धन और समय लगा कर इस देश की सेवा की। इस पुस्तक में उन लोगों को जो जो कष्ट प्रारम्भ में उठाने पड़े और जिस रीति से कि उन्होंने उनको जीता और अन्त में कृतार्थ हुए, और किस रीति से उन्होंने अपने देश की सेवा के अवसर को हाथ से न जाने दिया वर्णन किया जावे और धन के उपार्जन और व्यय के विषय में उनकी सम्मति क्या थी दिखलाई जायगी। इस समय में प्रत्येक मनुष्य को इस भारतवर्ष में जीविकोपार्जन की चिन्ता लगी हुई है और किस रीति से धन की वृद्धि हो यही उत्कण्ठा है। इस पुस्तक द्वारा धनोपार्जन की शुद्ध और धर्मानुकूल रीति निरूपण की जायगी और धनाढ्य पुरुषों के लिये यह दिखाया जावेगा कि वे अपने धन का कुछ भाग परोपकार में किस प्रकार लगा सकते हैं। मेरे पास यूरप और एमेरिका के और इस देश के कई महात्माओं के जीवनचरित आ गए हैं, परन्तु पुस्तक पूरी होने के लिये यहां के बहुत से लोगों के जीवनचरित्रों की आवश्यकता है। आपके पाठकगणों से सविनय प्रार्थना है कि वे कृपा करके मेरे पास ऐसे महात्माओं के जीवनचरित्र भेज दें कि जिन्होंने अपने बाहुबल से धनोपार्जन किया और जो परोपकार में तत्पर हुए या हैं। यथार्थ जीवन चरित्र आना चाहिए। वर्तमान और गत महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जीवनचरित्र सब इस किताब में संक्षेपतः निरूपण किए जावेंगे"। आशा है कि इतिहास प्रेमीगण इस प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

वर्षाऋतु वर्णन

[कालिदास के ऋतुसंहार से]

बारि फुहार भरे बदरा सोई
सोहत कुञ्जर हैं मतवारे।
बीजुरी जोति धुरा फहरैं
घन गर्जन शब्द सोई हैं नगारे।
रोर कौ घोर कौ ओर न छोर
नरेसन की सी छटा छवि धारे।
कामिन के मन कौ प्रिय पावस
आयौ प्रिये नव मोहनी डारे ॥ १॥

नीले सरोजन के दल की कहुं
लीनी मनोहर गाढ़ी लिलाई।
कीनी कहूं कजरा के कलाप की
सोभा सनी रमनीक निकाई।
गर्भवती अबलान की त्यों
छतियान की छीनी कहूं कमनाई।
घेरि रही हैं घटा नभ में चहुं
ओर अनौखी छटा छवि छाई ॥२॥

प्यासे पपीहन के कुल पै जल
जाचना त्रास भरी करवावत।
बारि के भार नये उनये झुकि
झूमि छटा अलबेली दिखावत।
बोरि सुधा जल सों वसुधातल
श्रौन मनोहर घोर सुनावत।
प्यारी अहो! किमि बादल ये गति
मन्द महादल बांधिकें धावत ॥३॥

गर्जन ये घन की घन घोर
विथा जियकी बहु भांति बढ़ावत।
इन्द्र कौ चाप धरैं चपला गुन
काम कमान प्रतिश्चा चढ़ावत।
तीखन ज्यों जलधार मयी पुनि
बानन की बरसा बरसावत।
गोरी! ये बैरी बिदेसिन* के
मन कों बदरा बर जोरी सतावत ॥४॥

नीकी नई तृन घास जमी
मनु नीलम कूटि दिये हैं बिछाई।
त्यों उलहे दल कन्दली के
कल चारु चहूं दिसि देयं दिखाई।
वीरबहूटिन की अवलीन में
लाल लड़ीन की है समताई।
सेत सों भिन्न मनीनु सजी
रमनी सी बनी अवनी है सुहाई ॥५॥

मेहन की धुनि के सुनिवे कों
सनेह सने हिय माहिं सुखारे।
सोहैं सलौने सरूप सजे पख
चित्रित चन्द्रिका चारु संवारे।
प्रेम अलिङ्गन चुम्बन में रत
जोवन के मद में मतवारे।
नाचन लागे प्रिये! मुरवागन,
बागन में बन में अब प्यारे ॥ ६॥

बहु बेग बढ़े गदले जल सों
तट रूख उखारि गिरावती हैं।
करि घोर कुलाहल व्याकुल ह्वै
थल कोर करारन ढावती हैं।
मरजादहि छांड़ि चलीं कुलटा
सम विभ्रम भौंर दिखावती हैं।
इतराति उतावरी बावरी सी
सरिता चढ़ि सिन्धु कों धावती हैं ॥७॥

तृन घास घने कुलहा उलहे
रँग नीले मनोहर मञ्जु लसैं।
मृगतीयन के मुख सों खुतरे
सुथरे थल दूबन के विलसैं।

---

* अथवा वियोगिन के ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रुम बल्लिन में नव पल्लव की
कमनीयता देखि हिये हुलसैं ।
गिरि विन्ध्य के कानन सुन्दर सो
सुठि सोभा समुन्दर से दरसैं ॥८॥

उत्पल के दल से जिनके सुठि
चञ्चल नैन बने कजरारे ।
सो चहुं ओर संसङ्कित से
विहरैं मृगयूथ जहां अति प्यारे ।
ऐसी नदीतट की बनभूमि
सुहाति मनोहर सी छवि धारे ।
चित्त में चिन्तित होत युवा अति
व्याकुल वाके विलोकनहारे ॥९॥

श्रीधर पाठक [क्रमशः]

प्रलय

सृष्टि में जितने पदार्थ देखे जाते हैं, वे सभी उत्पन्न और नाश हुआ करते हैं। इस बात को हमलोगों ने साधारण रीति से निश्चय कर लिया है कि जो वस्तु उत्पन्न होगी, वह नाश को भी अवश्य प्राप्त होगी। इसी प्रकार पृथिवी के विषय में भी बहुत दिनों से हमारे प्राचीन आर्ष-शास्त्रकारगण निश्चय करचुके हैं कि पृथिवी का नाश अवश्य होगा। किन्तु यह ऐसी बात है, कि इस (प्रलय) के विषय में जरा ध्यान पूर्वक विचार करने से रोमाञ्च हो आते हैं और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगता है। प्रलय तो अवश्य होता आता है और होता रहेगा, परन्तु वह महाप्रलय जिसमें भूमण्डल मात्र का नाश होना सम्भव है, क्योंकर और कैसे होगा, तथा आधुनिक वैज्ञानिकों के इस (प्रलय) के विषय में क्या क्या मत निश्चित हो चुके हैं, उन्हींका नीचे संक्षेप में वर्णन किया जायगा।

प्राचीन समय के विद्वान् बड़ेही सूक्ष्मदर्शी अथवा सरल प्रकृति के थे, इसमें संदेह नहीं। वे लोग आज कल के समान युक्ति तर्क की जटिलता और कठिनता के भीतर नहीं जाते तथा बड़े बड़े सिद्धान्तों को अपनी आत्मिक दूरदर्शिताही से निश्चय कर लिया करते थे, किन्तु इसी आध्यात्मिक बल के न रहने ही से आजकल नित्य नए नए सिद्धान्त निश्चित हुआ करते हैं और फिर भी उनपर पूरा विश्वास नहीं रहता। अस्तु, सृष्टि में कोई मनुष्य दूरदर्शिता की परम सीमा तक न पहुंच सका, किन्तु बुद्धिरूपी आध्यात्मिक अणुवीक्षण यन्त्र से आधुनिकविज्ञानवेत्ताओं ने सूक्ष्मदर्शन-शक्ति की तीक्ष्णता के कारण प्राचीन उक्ति के भीतर अनेक अनेक सिद्धान्तों के आविष्कार किए हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो कुछ हो परन्तु हमलोगों को साधारण मनुष्यों के सिद्धान्तों को त्याग कर वैज्ञानिक सिद्धान्तों ही से अपने प्रश्न के उत्तर पाने की आशा रखनी उचित है।

विज्ञानशास्त्र के ज्ञाता जिस विषय को निश्चित करदें, उसे विज्ञान का ही उत्तर समझना चाहिए। हमारे उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक अध्यापक क्लिफोर्ड ने सब प्रकार के मतों का मन्थन करके निश्चित किया है कि पृथिवी का नाश तो अवश्य ही है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह नाश अग्निद्वारा होगा वा जल द्वारा। अध्यापक जेवन्स ने भी वैज्ञानिक आलोचनाओं से निश्चय किया है, कि पृथ्वी ध्वंस होने में संदेह नहीं, परन्तु एक लाख वर्ष के पीछे महाप्रलय होने की सम्भावना है। तथापि यह दृढ़ता के साथ नहीं कह सकते कि एक लाख वर्ष के पहिले वा पीछे होगी। पाठकगण! इससे बढ़कर और क्या उपयुक्त उत्तर मिल सकता है? इस उत्तर से यदि पाठकों को सन्तोष न हो, किन्तु अनेक योग्य विद्वान एकमत हो जिसके विषय में कहते हों, उसीका सारांश मात्र दिखानाही इस लेख को उपयुक्त होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमलोग पृथ्वी के अधिवासी हैं, इससे अन्यान्य लोक के विषयों को त्यागकर प्रथम भूलोक के विषय में विवेचना करना ही युक्ति और न्याय संगत प्रतीत होता है।

हमलोगों की पृथ्वी भी सौर जगत के अन्तर्गत है। सूर्य्यमण्डल को बीच में रखके जो कई एक छोटे बड़े ग्रह बहुत दिनों से अकारण घूम रहे हैं, पृथ्वी भी उनमें से एक है। सूर्य्यमण्डल की प्रबल आकर्षणिक शक्ति के कारण जितने ग्रह सूर्य्यमण्डल को घेर कर घूम रहे हैं, वे आपस की खींचा खींची के कारण कोई भी अपने एक नियमित पथ के अनुगामी होकर नहीं चल सकते। इसीसे पृथ्वी भी एक नियमित मार्ग से नहीं चल सकती, वरन् सूर्य के आकर्षण के कारण सदा ही नियमित पथ से कुछ न कुछ मार्गभ्रष्ट हो जाया करती है। इससे यह प्रश्न हो सकता है कि इस निर्दिष्ट मार्गभ्रंश वा कक्षच्युति हो जाने से क्या कभी ऐसे समय का भी आजाना सम्भव है, कि जब दो ग्रह अकस्मात् एकही समय में एक स्थान में उपस्थित हो कर परस्पर के प्रतिघातों से नष्ट हो जांय?

इस प्रश्न का उत्तर देना कोई साधारण बात नहीं है। वैज्ञानिक निउटन ने दो पदार्थों में आपस का आकर्षण का रहना एक साधारण नियम माना है और उसका निश्चय करके भविष्यत् में होनेवाले वैज्ञानिकों पर एक बड़ा बोझा रख दिया है। यदि जगत में दोही पदार्थ होते तब यह सहज ही में निश्चय हो जाता और उसके निश्चय करने में बहुत सा कष्ट नहीं सहना पड़ता। किन्तु खेद है कि जगत में खण्ड पदार्थ दो से बहुत ही अधिक हैं। निउटन के नियमानुकूल तीन पदार्थ परस्पर के आकर्षण से कौन कब कहां रहेगा, इसके निश्चय करने में गणितज्ञों के प्राण होठों पर आजाते हैं; और तब गणितज्ञों को चार पदार्थ लेकर उपर्युक्त महाशय के मत से सिद्ध करना बड़ाही कठिन और दुष्कर हो जाता है। वास्तव में यह विषय भी बहुत ही कठिन है, तथापि माहात्मा लापलस इसके निश्चय करने में बहुत कुछ कृतकार्य्य हुए हैं, इन्होंने निश्चय किया है, कि परस्पर के आकर्षणों से ग्रहण का चिरस्थायी कक्षच्युत होना कदापि सम्भव नहीं है। सूत्रलम्बित पेण्डुलम वा परिदोलक जैसे अपने स्थान से एकाएक अलग नहीं होता, केवल उसी स्थान को लक्ष्य करके जरा इधर उधर हट बढ़ जाता है, वैसे ही प्रत्येक ग्रह अपने साथियों के आकर्षण से कुछ अपने मार्ग से हट बढ़ जाता है, परन्तु पुनः घूम फिरके अपने निर्दिष्ट पथ पर ही परिक्रमा करते हैं, कि जिससे यह आशंका की जाय कि किसी ग्रहविशेष का सदा के लिये मार्ग परिवर्त्तन हो जायगा। इन सबको आलोचना करने से सिद्ध होता है, कि सौरजगत में परस्पर ग्रहों के टक्कर से महाप्रलय के होने की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती।

महामनस्वी लापलस को इस सिद्धान्त की हुई युक्ति के भीतर आज तक किसी गणितज्ञ ने किसी प्रकार की भूल नहीं निकाली, यहां तक कि केम्ब्रिज कालेज के प्रसिद्ध अध्यक्ष हुवेलस साहब ने लापलस के निश्चय किए हुए सिद्धान्त पर श्रद्धा के साथ कहा है कि देखो विधाता का कैसा अपूर्व कौशल है, कि सौरजगत के समान ऐसे जटिलयन्त्र में भी ऐसी सुनियत सुश्रृंखला है, कि जिससे इससे इसके नाश अथवा महाप्रलय होने की कोई सम्भावना नहीं है। हे मनुष्यो! ईश्वर को धन्यवाद दो, कि उसने अपनी सृष्टि को ऐसे सुन्दर नियमों के अभ्यन्तर बांध रक्खा है, कि जिससे जगत् का कभी लोप नहीं होसकता।

महात्मा लापलस के उपर्युक्त सिद्धान्त में किसी प्रकार का प्रमाद नहीं दिखाई देता, किन्तु एक और उपद्रव की सम्भावना से वैज्ञानिक मंडली में एक प्रकार का पुनः असमंजस होगया है, अर्थात् सुन्दर सुनियमित सौरजगत में न जाने कहां से कभी कभी बड़े बड़े पूंछवाले धुमकेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक पदार्थ चले आते हैं, कि जिनको देखकर वैज्ञानिकों से लेकर साधारण व्यक्ति तक के हृदय में भय का सञ्चार हो आता है। धूमकेतु के उदय होने पर महामारी वा राष्ट्रविप्लव के डर से वैज्ञानिक लोग पूजा पाठ करना आवश्यक नहीं समझते, तथापि उनकी स्थिति, विस्तृति, आकार तथा अवयव ऐसे अपूर्व रहस्य से भरे हुए होते हैं, कि जिन्हें देखकर बिना सशंकित हुए नहीं रह सकते। अन्यान्य पदार्थों के समान धूमकेतु में भी माध्याकर्षण शक्ति रहती है। किन्तु यह धूमकेतु कहां रहता है, और किस प्रकार आ जाता है इसका कुछ भी भेद नहीं विदित होता। तथापि इसके एकाएक अज्ञात स्थान से आकर माध्याकर्षण के बल से पृथिवी से अकस्मात् टकरा जाने के भय की तर्कना करने का अवसर न रहते भी अवसर होजाता है। आज कल इस आशङ्का की बहुत कुछ निराकृति हो भी गई है, परन्तु धूमकेतु का स्वरूप और बड़ाई जैसी भयानक है, वैसा इसका स्वभाव भयानक नहीं है। अर्थात् पृथिवी से दसगुना बड़ा रहने पर भी गुरुत्व में यह पृथिवी के दस छटाक के भी समान नहीं होता। यह पृथिवी ऐसी है, कि दस हजार सूर्य्य के समान यदि धूमकेतु की बड़ाई होजाय तब भी इसके धक्के से पृथिवी को किसी प्रकार की हानि भी नहीं पहुंचा सकता। ऐसा भी सुनने में आया है, कि आज तक हमलोगों के अज्ञान में दो एक धूमकेतुओं के भीतर से पृथिवी जाचुकी है, जिसमें केवल उल्कावृष्टि के अतिरिक्त और किसी प्रकार का उपद्रव नहीं दिखाई दिया था। कितने लोग यह भी सन्देह करते हैं, कि यह धूमकेतु केवल उल्कापिण्ड का समूह मात्र है। एक समय एक धूमकेतु वृहस्पति के समीप चला गया था जिससे वृहस्पति की कुछ भी हानि नहीं हुई, वरन् धूमकेतु का ही गन्तव्यपथ विचलित हो गया था।

सम्भव है, कि जितने प्रकार के धूमकेतु आज तक हम लोगों के दृष्टिगोचर होचुके हैं, उन में से कोई भी हमारी पृथिवी को हानि पहुंचाने में समर्थ न हुआ हो। किन्तु इसपर यह प्रश्न हो सकता है, कि यदि ऐसाही कोई पदार्थ सौर जगत के बाहर से आकर हमारी पृथिवी को क्या नहीं कर सकता? परन्तु आज लों इस प्रश्न के अनुकूल और प्रतिकूल कोई प्रमाण नहीं मिला है। लापलस की गणना सौर जगत के अभ्यन्तर माननीय है, क्योंकि बाहरी अर्थात् धूमकेतु इत्यादि पदार्थों पर, जोकि समय समय पर प्रगट हो जाते हैं, उन्होंने कोई गणना नहीं की है; यदि वे करते भी तो वह कदापि माननीय न होसकती। बाहर कौन पदार्थ कब आकर अकस्मात् महाप्रलय करने वाला होगा यह निश्चय नहीं कहा जासकता। नक्षत्रलोक के इसी प्रकार के आकस्मिक महा अभ्यन्तर प्रलय होने के भी दो एक उदाहरण मिलते हैं। थोड़े दिन हुए कि हुगिन्स साहब एक नक्षत्र को एकाएक जलते हुए देखा। उस नक्षत्र को एक बड़े दूरवीक्षण यंत्र की सहायता द्वारा देखने से विदित हुआ कि इसके एकाएक जलने का प्रधान कारण हाइड्रोजन अर्थात् उदजान वाष्प है। हाइड्रोजन जलने के अन्त में अवश्य पानी हो जाता है। एक बोतल में हाइड्रोजन भर कर उसे बालने से इतनी उसमें गरमी उत्पन्न होती जाती है कि उस (बोतल) के छोटे से मुंह पर लोहे की चद्दर भी कागज़ के समान जलने लगती है। सुदूरस्थ एक नक्षत्र में हाइड्रोजन नामक वाष्प का जल उठना कोई साधारण बात नहीं है। पृथिवी की ऐतिहासिक घटना भी इसी प्रकार की है। हमलोगों की वर्त्तमान वायु में उपर्युक्त वाष्प ऐसी थोड़ी रहगई है, कि जिसे यह भी कह सकते हैं कि वह (हाइड्रोजन) अब शेष नहीं रहगई है। किन्तु किसी समय में यही हाइड्रोजन हमलोगों की वायु में यथेष्ट वर्त्तमान थी, जिससे यह ज्ञात होता है, कि अवश्य यह किसी समय में जलगई है और तभी से समुद्र की उत्पत्ति भी हुई है। इस समय जो बचा हुआ उदजान वाष्प है, न तो उसके जलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही आशा है और न वह जलता है। उदजान वाष्प के अतिरिक्त और भी कोई ऐसे पदार्थ इतनी विशेषता से नहीं दिखाई देते हैं, कि जो भविष्यत् में एकाएक जल कर महाप्रलय करदें। दहनादि रासायनिक क्रिया भूमण्डल के अभ्यन्तर नहीं हो रही है, ऐसा नहीं है, वरन् उसका कार्य्य ऐसे धीरे धीरे हो रहा है, कि जिससे विशेष डर नहीं है, तथापि भूकम्प के रूप में वा ज्वालामुखी इत्यादि का आविर्भाव होकर समय समय पर भूमण्डल के किसी किसी भाग में उत्पात हो जाया करते हैं। किन्तु ऐसे उपद्रवों से यह नहीं कहा जा सकता कि अन्त में महाप्रलय के करनेवाले होंगे। हुगिन्स ने जिस नक्षत्र को जलते हुए देखा था, वैसी घटनाएं और भी कई एक बार देखने में आचुकी हैं। इसी प्रकार एक दिन उत्तर आकाश की ओर "गारेमा" नामक नक्षत्रपुञ्ज के समीप एक नक्षत्र, जो पहिले कभी नहीं देखा गया था वह, बहुत दिनों तक प्रकाश के साथ जलता हुआ दिखाई दिया था। इस आकस्मिक प्रकाश के होने का कारण निश्चित हुआ था वा नहीं यह मैं नहीं कह सकता, पर सभी नक्षत्र किसी अन्तरीय कारण से ही जल उठते हों, ऐसा नहीं। अस्तु, जिस नक्षत्र में अग्नि लग जाने का वृत्तान्त लिखा है, उसके विषय में ऐसा भी लोग कहते हैं, कि केवल दो उल्कासमूह के संघर्षण से उसमें अग्नि लगी थी। बाहर के आघात अथवा नक्षत्र के संघर्षण से भी अग्नि लगजाना कोई असम्भव नहीं है।

और भी कई प्रकार के लोग प्रश्न करते हैं तथा कहते हैं, कि क्या पृथिवी अपने भीतर की शक्ति से कभी एकाएक फट कर सौ टुकड़े हो सकती है? क्या आज भी भूमण्डल के अभ्यन्तर तरल पदार्थ बड़े भयङ्कर रूप से तप रहे हैं? और यही आज तक बहुत से लोग विश्वास भी किए हुए थे कि आज तक इस पृथिवी के अभ्यन्तर पूर्ववत् द्रव अवस्था ही में वर्त्तमान है। किन्तु लार्ड केलविन ने प्राकृतिक नियमों द्वारा निश्चय किया है कि चाहे पृथिवी कितनी ही तप्त अवस्था में हो जाय, इससे भूमण्डल के अधिवासियों को कोई हानि नहीं पहुंच सकती, क्योंकि भूपृष्ठ का ऊपरी दबाव इतना अधिक है कि जिससे पृथिवी का भीतरी भाग द्रव अवस्था में कदापि नहीं रह सकता। और यह भी सिद्ध है कि अब इस (पृथिवी) की पहिले के समान द्रव अवस्था नहीं है, क्योंकि इसके और भी कई एक प्रमाण मिलते हैं। समुद्र में सूर्य्य और चन्द्र की आकर्षणिक शक्ति से जैसे ज्वार भाटा सदा आया करता है, वैसेही पृथिवी के द्रवस्थान में भी आन्दोलन होता रहता और वह भूपृष्ठ के रहनेवालों के लिये कदापि सन्तोषजनक न होता। इन्हीं सब कारणों से पण्डितवर केलविन साहब अनुमान करते हैं, कि पृथिवी अन्दर से अवश्य इस्पात के समान कड़ी होगई है।

पृथिवी का पृष्ठभाग भी किसी समय में अवश्य तरल अवस्था में था, इसमें सन्देह नहीं। इसपर लोग यह भी प्रश्न कर सकते हैं, कि यह पृथिवी तरल अवस्था को त्यागकर कठिन अवस्था में कब से आई है? इस प्रश्न का उत्तर जो वैज्ञानिकों ने दिया है उसके अतिरिक्त और कोई ऐसे प्रमाणों के न रहते भी वे प्रमाण ऐसे सुनियमित हैं, कि जिनपर कोई अविश्वास का कारण नहीं हो सकता। जैसे पृथिवी के ऊपर का भाग क्रमशः ठण्ढा और कठोर उन्नतावनत व नीचा ऊंचा मिलता है, तथा कहीं कहीं पृथिवी का भाग फटा हुआ मिलता है, कि जिसमें से कभी कभी भू-गर्भस्थ तरल पदार्थ निकल कर बहुत ही हानि पहुंचाते हैं और इसीको हम लोग ज्वालामुखी कहते हैं। १८८२ ई० में क्रक्टायर नामक स्थान में जो अग्न्युत्पात हुआ था, कि जिसमें से अनेकानेक पदार्थ भूगर्भ में से निकल कर नभोमण्डल में निक्षिप्त हुए थे, जो वैज्ञानिकों के मत से आज भी वायुराशि में वर्त्तमान है। वैज्ञानिकों ने यह भी हिसाब करके देखा है, कि जो पदार्थ एक सेकण्ड में आठ मील वेग के साथ ऊपर चला जाय वह पुनः पृथिवी पर नहीं आता। इससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अनुमित होता है, कि जिस समय यह पृथिवी बहुत तरल अवस्था में थी, उस समय अग्न्युत्पात भी विशेषता के साथ हुआ करते थे। सम्भव है कि उस समय पृथिवी का कोई अंश वेग में आठ मील जाकर इस पृथिवीतल से सदा के लिये बिछुड़ गया हो। सर रवार्ट नेल साहब के मत से ऐसे उपद्रवों से अनेक उल्कापिण्ड उत्पन्न होते हैं। जो कुछ हो, इस समय पृथिवी की जैसी अवस्था भीतर वर्त्तमान है, उससे क्राकटायर ऐसे छोटे छोटे देश में प्रलय होना सम्भव है, किन्तु इससे महा-प्रलय की आशङ्का नहीं की जासकती। और ऐसा भी सम्भव नहीं है कि एक बड़े ज्वालामुखी के निकलने से पृथिवी के एक वा दो सहस्र टुकड़े हो जायंगे।

लापलस ग्रहण के कक्षच्युति होने की गणना करने में एक कारण छोड़ गए है, कि जिसके विषय में लार्ड केलविन ने स्वयं और इनके पथानुवर्त्ती जर्ज डारविन ने कई एक कारण दिखाए हैं।

इनका कथन है, कि चन्द्रमण्डल समुद्र की जलराशि को नित्य प्रति पृथिवी के दैनिक आवर्त्तन के प्रतिकूल खींचता जाता है, जिसका फल यह है कि पृथिवी के आवर्त्तन का वेग क्रमशः कम होता जाता है और चन्द्रमा का दूरत्व भी बढ़ता जाता है। ऐसा भी एक दिन था, कि चन्द्रमण्डल हमलोगों के बहुत ही समीप था और अब एक ऐसा समय भी आवेगा की चन्द्रमण्डल और भी दूर चला जायगा। आज कल चौबीस घण्टे में पृथिवी एक बार घूमती है और तब ग्यारह सौ वा बारह सौ घण्टे में एक बार घूमेगी। अभी केवल छोटे दिनों के तीन सौ पैंसठ दिनों में एक वर्ष होता है और उस समय में बड़े दिनों के सात वा आठ दिन का एक वर्ष होगा। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उस समय तक मनुष्य जाति रहेगी वा नहीं, किन्तु जो कारण लार्ड केलविन ने दिखाया है उससे उपर्युक्त समय के आने में शंका भी नहीं की जा सकती।

जिन कारणों से चन्द्र पृथिवी से दूर हुआ जाता है, ठीक उन्हीं कारणों से पृथिवी भी सूर्य्य से दूर होती जाती है। पृथिवी के कक्षच्युति होने का यह एक बड़ा पुष्ट प्रमाण है। इस घटना के अनन्तर भविष्यत् में क्या होगा इसका निश्चय करना व्यर्थ है।

और प्रकार से भी वैज्ञानिक लोग कहा करते हैं कि आकाश के शून्य न होने में तो किसी प्रकार का सन्देह है ही नहीं, क्योंकि आलोकवाही और तड़िततरङ्गवाही ईथर नामक पदार्थ सम्पूर्ण आकाश में व्याप रहा है, कि जिसे पृथिवी ढकेल कर अपने मार्ग में घूमती है। जल किम्वा वायु पदार्थ के चलने से रोकता है। ईथर अति सूक्ष्म और लघु पदार्थ होने पर क्या पृथिवी को किसी प्रकार की बाधा न देता होगा? ईथर में प्रतिघात क्षमता है वा नहीं इसके निश्चय करने के लिये साहब ने बहुत परिश्रम किया, किन्तु उनके मनोरथ विषय का कुछ भी प्रमाण नहीं मिला। एंकि साहब के आविष्कृत धूमकेतु की कक्षच्युति ईथर के प्रतिघातोंही से हुई हो, ऐसा नहीं। उस धूमकेतु के कक्षच्युति होने के और भी कारण हो सकते हैं। आज कल कई एक विद्वान् लोग जड़पदार्थ के साथ ईथर का सम्बन्ध निर्णय कर रहे हैं, भविष्यत् में जिसके अनुसन्धान से क्या निश्चय होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

लार्ड केलविन प्रधान तत्व के आविष्कार करने वाले हुए हैं जिसे हम लोग जागतिक शक्ति की क्षति कह सकते हैं। शक्ति सदा से अनेकानेक रूप में विद्यमान रहती है और शक्तिमात्र अपनेही में सर्वत्र तप्त अवस्था में रहती है। कभी ऐसा समय आवेगा कि जब सारी शक्तियां बुझ कर जगत् के सम्पूर्ण यन्त्रों का चलना बन्द कर देंगी; ग्रह उपग्रह सभी गतिहीन होकर सूर्य में मिल जांयगे; ब्रह्माण्ड गतिहीन होकर, चाहे तप्त अवस्था में, चाहे ठंढी होकर, कई एक महाशून्य का रूप धारण कर लेंगी। इस परिणाम का हटानेवाला उपाय नहीं दिखाई देता और इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेवाले भयङ्कर समय को ही महाप्रलय होने का अनुमान कर सकते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर का कथन है, कि इस प्रकार के महाप्रलय होने के पीछे पुनः नवीन सृष्टि का आरम्भ होगा। किन्तु इन्होंने इसके उत्पन्न होने का (पुनः सृष्टि का) कोई उचित उत्तर नहीं दिया है, कि जिससे यह विश्वास किया जाय कि सृष्टि का पुनः आविर्भाव होगा।

हेल महोलत्ज़ ने वर्त्तमान सृष्टि के नाश वा प्रलय होने का बहुत अच्छा अनुसन्धान किया है, अर्थात् सूर्य्यमण्डल बहुत विषेशता के साथ अपनी किरणों द्वारा जीवमात्र को जो कुछ लाभ पहुंचा रहा है वह किसीसे छिपा नहीं है। हम लोगों की गति, विधि, स्थिति इत्यादि सब कार्य सूर्य्यमण्डल की कृपा ही से चल रहे हैं; यदि आज इस (सूर्य्य) में ज्योति न रहे तो आजही महाप्रलय के होने में सन्देह नहीं। अस्तु सूर्य्यमण्डल से जो कुछ हम लोगों को प्रकाश मिल रहा है, उतना ही सूर्य्य का तेज क्षीण होता जाता है। प्रकाश के नित्य प्रति क्षीण होने से एक वर्ष में सूर्य्यमण्डल की परिधि प्रायः अस्सी हाथ कम होती जाती है। इस प्रकार के नित्यप्रति घटते रहने पर भी अभी बीस हज़ार वर्ष पर्य्यन्त ऐसी आशंका नहीं की जा सकती कि जिससे जीव को क्षति हो; किन्तु पचास लाख वर्ष पीछे सूर्य्य का आकार वर्त्तमान आकार और प्रभा का आठवां भाग वा दो आना रह जायगा। फिर कोई ऐसा अभागा दिन आवेगा कि सूर्य्य बिलकुल ज्योतिरहित हो जायगा। वैज्ञानिकों ने गगनमण्डल में यह भी अनुसन्धान किया है कि वर्त्तमान सूर्य्य के सदृश और भी दो एक सूर्य्य हैं। हमलोगों के वर्त्तमान सूर्य्य के नाश होने में कोई सन्देह नहीं, किन्तु पृथिवी इसके प्रथम ही जीव-शून्य हो जायगी इसमें भी सन्देह नहीं।

आज तक जो कुछ प्रलय के विषय में विज्ञान की उक्ति थी वह पाठकों के सम्मुख उपस्थित है और यदि अवकाश हुआ तो प्रलय के विषय में अपने प्राचीनतम शास्त्रों का क्या मत है इसका उल्लेख करूंगा। पचास वर्ष पहिले जिस विषय को डाक्टर हुवेलस् प्रभृति वैज्ञानिकों ने कहा था कि प्रलय नहीं होगा, और उसी विषय को पचास वर्ष पीछे वैज्ञानिकमण्डली एक प्रकार से कहने लग गई है कि महाप्रलय नहीं होगा, ऐसी आशा कभी नहीं की जा सकती। पं० सिद्धेश्वर शर्मा

नायिका-भेद

औपन्यासिक पुस्तकों के लिये केवल काशी ही और तान्त्रिक पुस्तकों के लिये केवल मुरादाबाद ही, इस समय, प्रसिद्ध हो रहे हैं; परन्तु नायिकाभेद और नखसिख वर्णन के लिये यह देशका देश ही, किसी समय, प्रसिद्ध था। देश से हमारा अभिप्राय उन प्रान्तों से है जहां हिन्दी बोली जाती है और जहां हिन्दी ही में कवियों की कविता-स्फुर्ति का प्रकाश होता है। राजाश्रय मिलने की देरी, राजा जी को सब प्रकार की नायिकाओं के रसास्वादन का आनन्द चखाने के लिये कवि जी को देरी नहीं। १० वर्ष की अज्ञात-यौवना से लेकर ५० वर्ष की प्रौढ़ा तक के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बतलाकर और उनके हाव, भाव, विलासादि की सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सन्तोष नहीं करते थे। व्यभिचार में सुकरता होने के लिये दूती कैसी होनी चाहिए; मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि में से इस काम के लिये कौन सबसे अधिक प्रवीण होती है; इन बातों का भी वे निर्णय करते थे। नायक के सहायक विट और चेटक आदि का भी वर्णन करने से वे नहीं चूकते थे। इस प्रकार की पुस्तकों अथवा कविताओं का बनना अभी बन्द नहीं हुआ, वे बराबर बनती जाती हैं। तथापि पहिले बहुत बनती थीं, इसी लिये हमने भूतकाल का प्रयोग किया है।

२। सब नायिकाओं में नवोढ़ा अधिक सुखद होने के कारण किसीने, अभी कुछही वर्ष हुए, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नवोढ़ादर्श" नाम की पुस्तक अकेले नवोढ़ा ही नायिका की महिमासे आद्योपान्त भर कर प्रकाशित की है। समस्यापूर्ति करनेवाले कविसमाजों और कवि-मण्डलों का तो नायिकाभेद जीवनसर्वस्व हो रहा है। सुनते हैं "सुकवि-सरोज-विकास" में भी नायिकाभेद ही है। नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ाओं ही की कृपा से हमारी भाषा की कविता-लता सूखने नहीं पाई; कविजन अब तक उसे अपने काव्यरस से बराबर सींच रहे हैं और मुग्धमति युवक उसकी शीतल छाया में शयन करके विषयाकृष्ट हो रहे हैं।

३। इस निबन्ध का नाम "नायिकाभेद" पढ़कर नायिकाभेद के भक्तों को यदि यह आशा हुई हो कि इसमें नवोढ़ा के सुरतान्त और प्रौढ़ा के पुरुषायित सम्बन्ध में कोई नवीन उक्ति उन्हें सुनने को मिलैगी तो उनको अवश्य हताश होना पड़ैगा। परन्तु हताश क्यों होना पड़ैगा? आज तक नायिकाओं का क्या कम वर्णन हुआ है? इस विषय में, हिन्दीसाहित्य में, जो कुछ विद्यमान है उससे भी यदि उनकी काव्यरस पीने की पिपासा न शान्त हो तो हम यही कहैंगे कि उनके उदर में बड़वानल ने निवास किया है।

४। ऋषियों के बनाए संस्कृत-ग्रन्थों तक में नायिकाओं के भेद कहे गए हैं, परन्तु पद्माकर और मतिराम आदि के ग्रन्थों का सा विस्तृत विभाग वहां नहीं है। नायिकाओं की भेदभक्ति हमारे यहां बहुत प्राचीनकाल से चली आई है। कालिदास के काव्यों में भी नायिकाओं के नाम पाए जाते हैं—

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा
पर्य्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः॥
रघुवंश, ५म सर्ग।

यहां खण्डिता नायिका का नाम आया है। संस्कृत में ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनमें नायिकाओं की विभाग-परम्परा और उनके लक्षणों का विवरण है। तथापि भाषा पुस्तकों की सी प्रचुरता संस्कृत में नहीं है। दशरूपक और साहित्यदर्पण इत्यादि में प्रसङ्गवश इस विषय का विचार हुआ है, परन्तु वह विचार गौण है, मुख्य नहीं। जिसमें केवल नायिकाओं ही का वर्णन हो, ऐसी पुस्तक संस्कृत में एक "रसमञ्जरी" ही हमारे देखने में आई है। मिथिला के रहनेवाले पण्डित् भानुदत्त ने इसे बनाया है। भानुदत्त के अनुसार नायिकाओं के ११५२ भेद हो सकते हैं। इस पुस्तक में इन्हीं नायिकाओं का यद्यपि बहुत विस्तृत वर्णन किया है, तथापि इनका वर्णन संस्कृत में होने के कारण इतना उद्वेगजनक और हानिकारक नहीं है जितना सुरतारम्भ, सुरतान्त और "विपरीत" में विलक्षण होनेवाले हमारे भाषाकवियों का है। इस विषय में भाषा की पुस्तकों का प्राचुर्य देखकर यही कहना पड़ता है कि, इस महा-अनुपयोगी और महा-सत्यानाशी नायिकाभेद में संस्कृत कवियों की अपेक्षा भाषा के कवियों और भाषा की कविता के प्रेमियों की सविशेष रुचि रहती आई है। नगरों की बात जाने दीजिए, छोटे छोटे ग्रामों तक में साठ साठ वर्ष के खूसट बुड्ढों को भी नायिकाभेद की चर्चा करते और ज्ञात-यौवना और अज्ञात-यौवना के अन्तर के तारतम्य पर वक्तृता देते हमने अपनी आंखों देखा है!

५। निश्चयात्मकता से हम यह नहीं कह सकते कि नायिकाभेद की उत्पत्ति कब से हुई और क्यों हुई? वात्स्यायन मुनिकृत "कामसूत्र" बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें नायक और नायिकाओं के सामान्य भेद कहे गए हैं। ये भेद वैसे ही हैं जैसे इस प्रकार की पुस्तकों में हुआ करते हैं। वह आड़म्बर और वह अश्लीलत्व जो आजकल के नायिकाभेद में पाए जाते हैं, वहां बिलकुल नहीं हैं। जान पड़ता है इसी प्रकार के ग्रन्थ नायिकाभेद की उत्पत्ति के कारण हैं। सम्भवतः इन्हींको देख कर नायिकाओं के पक्षपातियों ने इसे पृथक् विषय निश्चित करके पृथक् पृथक् अनेक ग्रन्थ रचडाले और सैकड़ों, नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ारों, भेद उत्पन्न करके सब रसों के राजा का राज्यविस्तार बहुत ही विशेष बढ़ा दिया। नायिकाएं ही शृङ्गाररस की अवलम्बन हैं, और शृङ्गार रस ही सब रसों का राजा है। राजा का जीवन ही जब इन नायिकाओं पर अवलम्बित है तब कहिए क्यों भाषासाहित्य में इनकी इतनी प्रतिष्ठा न हो? इनकी कीर्ति का कीर्तन करके क्यों कविजन अपनी वाणी को सफल न करें? और इन्हीं की बदौलत नानाप्रकार के पुरस्कार पाकर क्यों न वे अपने को कृतकृत्य मानें?

६। कृष्ण, राधा, गोपिका, वृन्दावन, यमुना, कुञ्जकुटीर आदि ने नायिकाभेद के वर्णन में विशेष सहायता पहुंचाई है; परन्तु यदि कोई यह कहे कि, यह भेद-वर्णन राधा-कृष्ण के उपासना-तत्व से सम्बन्ध रखता है तो उसका कथन कदापि मान्य नहीं हो सकता। नायिकाओं में "सामान्या" एक ऐसा भेद है जिससे कृष्ण का कोई सम्पर्क नहीं, और नायिकाभेद के आचार्यों ने कृष्ण की नायिकाओं के भेद नहीं किए, किन्तु सामान्यरीति से नायिकामात्र की भेद-परम्परा बतलाई है। अतएव कृष्ण के उपासकों के लिये इस विषय से कृष्ण का सम्बन्ध न बतलाना ही अच्छा है।

७। जहां तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है; और बहुत भारी हानि है। फिर हम नहीं जानते क्या समझकर लोग इस विषय के इतना पीछे पड़े हैं। आश्चर्य इस बात का है कि इस भेद-भक्ति के प्रतिकूल आजतक किसीने चकार तक मुख से नहीं निकाला। प्रतिकूल कहना तो दूर रहा, नायिकाओं की नई नई चेष्टा वर्णन करनेवालों को प्रोत्साहन और पुरस्कार दिया गया है! इस प्रोत्साहन का फल यह हुआ है कि, नवोढ़ा आदि नायिकाओं के सम्बन्ध में कवियों को अनन्त स्वप्न देखने पड़े हैं। हिन्दी के समान बँगला, मराठी, गुजराती भाषाएं भी संस्कृत से निकली हैं; परन्तु इन भाषाओं में नायिकाओं का कहीं भी उतना साम्राज्य नहीं जितना हिन्दी में है। हिन्दी में इनका आधिक्य क्यों? जान पड़ता है, और कहीं भी ठहरने के लिये सुखदायी स्थान न पाकर विचारे नायिकाभेद ने, विवश होकर, हिन्दी का आश्रय लिया है! इस विस्तृत विश्व में ईश्वर ने इतने प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, निर्झर, नदी, तड़ाग आदि निर्म्माण किए हैं कि यदि सैकड़ों कालिदास उत्पन्न होकर अनन्तकाल तक उन सबका वर्णन करते रहें तोभी उनका अन्त न हो। फिर, हम नहीं जानते, और विषयों को छोड़ नायिका-भेद सदृश अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिए? इसप्रकार की कविता करना वाणी की विगर्हणा है।

८। अब देखिए इसप्रकार की पुस्तकों में लिखा क्या रहता है। लिखा रहता है परकीया (परस्त्री) और वेश्याओं की चेष्टा और उनके घृणित कृत्यों के लक्षण और उदाहरण! परकीया के अन्तर्गत अविवाहित कन्याओं के पापाचरण की कथा!! पुरुषमात्र में पतिबुद्धि रखनेवाली कुलटा स्त्रियों के निर्लज्ज और निरर्गल प्रलाप!!! और भी अनेक बातें रहती हैं। विरह-निवेदन करने अथवा परस्पर मेल करादेने के लिये दूत और दूतियों की योजना का वर्णन रहता है; वेश्याओं को बाज़ार में बिठला कर उनके द्वारा हज़ारों के हृदय हरण किए जाने की कथा रहती है; परकीओं के द्वारा, कबूतर के बच्चे की सी कूजित के मिष, पुरुषों को आह्वान करने की कहानी रहती है! कहीं कोई नायिका अन्धेरे में यमुना के किनारे दौड़ी जा रही है; कहीं कोई चांदनी में चांदनीही के रङ्ग की साड़ी पहन कर, घर से निकल, किसी लता-मण्डप में बैठी हुई किसीकी मार्ग-प्रतीक्षा कर रही है; कहीं कोई अपनी सास को अन्धी और अपने पति को विदेश गया बतलाकर द्वार पर आए हुए पथिक को रात भर विश्राम करने के लिये प्रार्थना कर रही है; कहीं कोई, अपने प्रेम-पात्र के पास गई हुई सखी के लौटने में विलम्ब होने से कातर होकर, आंसुओं की धारा से आंखों का काजल बहा रही है!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही बातें विलक्षण विलक्षण उक्तियों के द्वारा, इस प्रकार की पुस्तकों में विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। सदाचरण के सत्यानाश करने के लिये क्या इससे भी बढ़कर कोई युक्ति हो सकती है? युवकों को कुपथ पर लेजाने के लिये क्या इससे भी अधिक बलवती और कोई आकर्षण-शक्ति हो सकती है? हमारे हिन्दी साहित्य में इसप्रकार की पुस्तकों का होना कलङ्क है; लज्जा की बात है; समाज के सच्चरित्र की दुर्बलता का दिव्य चिन्ह है! हमारी स्वल्प-बुद्धि के अनुसार इसप्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द होजाना चाहिए; और यही नहीं, किन्तु, आजतक ऐसी ऐसी जितनी घृणित पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण होना भी बन्द हो जाना चाहिए। इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुंचेगी; उलटा लाभ होगा। इनके न होनेही में समाज का कल्याण है। इनके न होनेही में नव-वयस्क मुग्धमति युवाजनों का कल्याण है। इनके न होनेही में इनके बनाने और बेचनेवालों का कल्याण है।

९। जिस प्रकार नायिकाओं के अनेक भेद कहे गए हैं और भेदानुसार उनकी अनेक चेष्टा वर्णन की गईहै, उसी प्रकार पुरुषों के भी भेद और चेष्टा-वैलक्षण्य वर्णन किए जा सकते हैं। जब नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा नायिका होती हैं तब नवोढ़ और विश्रब्ध-नवोढ़ नायक भी हो सकते हैं। वासकसज्जा, विप्रलब्धा और कलहान्तरिता नायिका के समान वासक-सज्ज, विप्रलब्ध और कलहान्तरित नायक होने में क्या आपत्ति आसकती है? कोई नहीं। क्या स्त्री ही अज्ञात-यौवना होती है? पुरुष अज्ञात-यौवन नहीं होता? "रसमञ्जरी" वाले कहते हैं कि स्वभावभेद से पुरुषों के चारही भेद होते हैं—अर्थात् अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ; परन्तु अवस्था-भेद से स्त्रियों के अनेक भेद होते हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। जिस प्रकार के लक्षण और उदाहरण नायिकाओं के विषय में लिखे गए हैं उसी प्रकार के लक्षण और उदाहरण प्रायः पुरुषों के विषय में भी लिखे जा सकते हैं। परन्तु हमारे भाषा-कवियों ने नायकों के ऊपर इस प्रकार की पुस्तकें नहीं लिखीं, इसलिये हम उनको अनेक धन्यवाद देते हैं। यदि कहीं वे उस ओर भी अपनी कवित्व-शक्ति की योजना करते तो भाषा का कवित्व-साहित्य और भी अधिक चौपट होजाता।

हे कविते!

(१)

सुरम्यरूपे! रस-राशि-रञ्जिते!
विचित्रवर्णाभरणे! कहां गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा-
कवीन्द्र-कान्ते! कविते! अहो कहां

(२)

कहां मनोहारि-मनोज्ञता गई?
कहां छटा क्षीण हुई नई नई?
कहीं न तेरी कमनीयता रही;
बता तुही तू किस लोक को गई?

(३)

नहीं कहीं भी भुवनान्तराल में
दिखा पड़ै है तव रम्य-रूपता।
सजीव होती यदि जीव-लोक में
कभी कहीं तो मिलती अवश्यही॥

(४)

सती हुई क्या कवि-कालिदास के
शरीर के साथ तभी अनाथ हो?
विलुप्त किम्वा भवभूति-सङ्गही
हुई मही से, अवलम्ब के बिना?

(५)

प्रयाण तूने तब जो नहीं किया,
विराजती भूतल में रही कहीं।
अवश्य श्रीहर्ष-शरीर गोद ले,
सहर्ष तू साथ गई, गई, गई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

हुआ पुनर्जन्म फिरङ्ग-देश में;
परन्तु सो भी कुछ काल के लिये।
पता वहां भी मिलता नहीं हमें;
बता कहां है अब तू मनोरमे!

(७)

नितान्त अन्धों पर भी कभी कभी
कृपावती होकर हे सुलक्षणे!
सदैव तू तन्मुख-मन्दिर-स्थिता
प्रकाशती है निज सर्व सम्पदा।

(८)

सुनेत्रधारी यदि तू चहै नहीं;
अनेत्रियों का न अभाव हिन्द में।
अतः उन्हींसे चुन एक आध को
कृपाधिकारी अपना बना, बना॥

(९)

कभी कभी तू अब भी दयाधने!
दया करै है इस दीन देश पै।
महान्महाराष्ट्र विशाल-वङ्ग में
विलास तेरा कविते! कल्ही हुआ॥

(१०)

मनुष्य सारे सम हैं तुझे सदा;
विचारती जाति न पांति तू कभी।
इसी लिये दोष तुझे न दे सकैं;
अनेक-दोषाकर हाय! हैं हमी॥

(११)

अनन्तवर्षावधि तू यहां रही;
तथापि तेरा कुछ ज्ञान हो नहीं।
विचित्रता और विशेष क्या कहैं?
कृतघ्नता का बस अन्त हो गया॥

(१२)

अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ,
रही किमाकारक हे रसात्मिके!
स्वरूपही का जब ज्ञान है नहीं;
विभूषणों की तब क्या कहैं कथा?

(१३)

तुकान्तही में कवितान्त है—यही
प्रमाण कोई मतिमान मानते।
उन्हें नहीं काम कदापि और से;
अहो महा-मोह! प्रचण्डता तव॥

(१४)

कवीश कोई यमकच्छटामयी
महा-घटाटोपवती सुचोलिका।
बनाय नानाविध हे विचक्षणे!
तुझे वशीभूत हुई विचारते॥

(१५)

सदा समस्या सबको नई नई
सुनाय कोई कवि पाय पूर्तियां।
तुझे उन्हींमें अनुरक्त मान, वे
विरक्त होते नहिं; हा रसज्ञता!

(१६)

कहीं कहीं छन्द; कहीं सुचित्रता;
कहीं अनुप्रास-विशेष में तुझे।
सुजान ढूंढ़ैं अनुमान से सदा;
परन्तु तू काव्य-कले! वहां कहां?

(१७)

सकैं तवाकार बनाय भी यदि,
वृथा परिश्रान्ति तथापि सर्वथा।
बताइए, जीव-विहीन-देह से
सजीव की सुन्दरि! क्या समानता?

(१८)

विचार ऐसे जगदम्ब हैं जहां,
न दर्शनों का तव आसरा वहां।
अजेय इच्छा उस ईश की; उसे
मिटाय देवै, यह शक्ति है किसे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९)

विड़म्बना जो यह हो रही तव,
समूलही भूल उसे दयामयि !
पधारने की अभिलाष होय जो,
न आव तौभी कुछ काल लौं यहां ॥

(२०)

अभी मिलैगा व्रज-मण्डलान्त का
सु-भुक्त-भाषामय वस्त्र एकही।
शरीर-सङ्गी करके उसे सदा,
विराग होगा तुझको अवश्यही ॥

(२१)

इसी लियेही भवभूति-भाविते !
अभी यहां हे कविते ! न आ, न आ।
बता तुही कौन कुलीन कामिनी
सदा चहैगी पट एकही वही ?

(२२)

सुरम्यताही, कमनीय कान्ति है;
अमूल्य आत्मा, रस है मनोहरे !
शरीर तेरा, सब शब्द मात्र है;
नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही ॥

(२३)

हुआ जिन्हींको यह तत्व ज्ञात,
तुझे वही वशीभूत करैंगे।
विलम्ब से वा अविलम्ब से वा
दया उन्हीं पै तव देवि ! होगी ॥

(२४)

कुछ समय गए पै योग्यता जो दिखावै
सदय-हृदय होके तू उसीके यहां आ।
न उचित अबला का नित्य स्वच्छन्द-वास;
बस अधिक कहें क्या ? हे महा-मोद-दात्रि !

बाणभट्ट

रुचिर स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत्किन्तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य *
विदग्ध मुखमण्डन

संस्कृत कविता की मध्यावस्था में प्रायः अने कवि हुए हैं। उन सबका यथार्थ वर्ण करना कोई सामान्य कार्य्य नहीं है; उसके सम्प दनार्थ बहुत परिश्रम और दीर्घकाल आवश्यक है एतावता उनमें जो जो प्रमुख होगए हैं उनमें से तीन कविमात्र के विषय में यहां पर लिखते हैं। ये तीन कवि बाणभट्ट, सुबन्धु और दण्डी हैं।

मध्यमकालीन कविगणों में से इन्हीं तीन कवियों का प्रधानतया वर्णन करने का कारण यह है कि संस्कृत भाषामें गद्य काव्य रचना की प्रथा इन्हीं कवियों ने प्रचलित की। वास्तव में गद्य काव्य की सृष्टि पद्य काव्य के पश्चात् होनी चाहिए, यह नियम सर्व भाषा के लिये घटित होता है; और इसका कारण भी स्पष्ट ही है। यह बात प्रायः सब मनुष्यों को निज के अनुभव से ज्ञात होगी कि बाल्यावस्था में मनुष्य की कल्पनाशक्ति जैसी तीव्र रहती है वैसी वह आगे उसकी युवावस्था में नहीं रहती; जैसे जैसे मनुष्य को ज्ञान लाभ होता जाता है वैसे वैसे इस कल्पनाशक्ति का ह्रास हो विचार शक्ति का उदय होने लगता है। यही बात जातीय विषय में भी चरितार्थ होती है। उसके सज्ञान दशा में पदारोपण करते ही प्रथम उसकी कल्पना शक्ति कविता के रूप से प्रकाशित होने लगती है। ऐसे होते होते कुछ काल के अनन्तर इसी कल्पनाशक्ति

---

* इस का अर्थ आगे चल कर लिखेंगे ॥

† हमारे बहुतेरे पाठक कदाचित् गद्यकाव्य का नाम बड़ी उलझन में पड़ जाँयगे। उनकी शङ्का के निवारणार्थ यहां पर संक्षेप में कुछ लिखने की अपेक्षा हम यही उचित समझते हैं कि वे काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री से भारतरत्न साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत 'गद्यकाव्य मीमांसा' मंगाकर विचारें तो इस विषय का उन्हें बहुत बोध होजायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के गर्भ से तत्त्वजिज्ञासा अर्थात् आसन्नवर्त्ती सृष्टि में जो अनेक चमत्कारिक और आश्चर्योत्पाक पदार्थ सन्तत और जो थोड़े काल तक क्रमानुसार आलोक-पथ में आते रहते हैं, उनका तत्त्व अर्थात् यथार्थ स्वरूप जानने की इच्छा स्वभावतः उद्भूत होती है। पर इस दूसरी मानसिक शक्ति का पहिली से प्रकृतिजात विरोध रहता है; क्योंकि कल्पना अर्थात् असत्यभास का सर्वस्व ऐसी अवस्था में उसका तत्व-जिज्ञासा के साथ कि जिसका सर्वस्व एक सत्यही कैसे मेल पा सकता है ? सारांश यह कि, तत्त्व जिज्ञासा जैसी जैसी हृष्ट पुष्ट एवं बलिष्ट होती जाती है, वैसी वैसी कल्पनाशक्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक हीन क्षीण होती जाती है। अर्थात् कवित्वानुकूल मन की पहिली कोमल अवस्था लुप्त हो सत्यासत्य विवेचना रूप कठोर मानसिक शक्ति का अधिकार बढ़ता जाता है। इस अधिकार के होते ही काव्य-ग्रन्थों की अधिकता मन्द हो उत्तरोत्तर प्रतिपाद्य विषयों की ओर लोगों की मनःप्रवृत्ति होती जाती है। ऐसे विषयों के ग्रन्थों को छन्दोबद्ध रचना यतः किञ्चित् भी शोभाप्रद नहीं होती; सर्वसाधारण की भाषा ही उन्हें अनुकूल होती है। अतः गद्यकाव्य की प्रथा प्रचलित होती है। यह परिपाटी प्रचलित ग्रन्थरचना की इसी प्रथा का निश्चित हो जाना भी विद्यावृद्ध का एक शुभ लक्षण है; क्योंकि स्वर संयोग, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारादि भिन्न भिन्न बहिरङ्ग साधन जो काव्य को मनोहर एवं हृदयग्राही करने के हेतु काम में लाए जाते हैं, उनमें से एक भी गद्यग्रन्थ में नहीं पाए जाते, पर तौभी उनके भावों की मनोहरता एवं सुन्दरता के द्वारा मन का रञ्जन हो सकता है। अस्तु, यह सब प्रतिपादन वर्त्तमान विषयानुमोदित न होने पर भी उसके यहां पर इतने विस्तृत करने का कारण यही है कि इस श्रेणीक विषय का हमारे केवल भाषा जाननेवाले पाठकों को प्रसंगवशात् कुछ दिग्दर्शन हो जाय, और "काव्य के लिये अज्ञानावस्था विशेष रूप से अनुकूल है", "ज्ञान सम्पन्नता के समय में उसका क्रमशः ह्रास होता जाता है" आदि जो सिद्धान्त सहसा बड़े विलक्षण जान पड़ते हैं, उनका भी उन्हें कुछ भेद विदित हो। उक्त सिद्धान्त का वर्त्तमान विषय के साथ केवल व्यतिरेक सम्बन्ध है; अर्थात् उक्त बातों में से एक भी उसके विषय में चरितार्थ नहीं होती। पूर्वोक्त तीन कवियों ने यद्यपि गद्य-काव्य रचना को परिपाटी प्रचलित की है, तौभी उनकी वह रचना केवल नाममात्र के लिये ही वैसी है। और वास्तव में तो वह पहिली काव्य-रचना का ही रूपान्तर है। पुराकालीन ग्रीक और रोमन लोगों में जिस प्रकार के गद्य-काव्य की प्रथा प्रचलित हुई, और सम्प्रति अंगरेज़ी आदि योरोप की भाषाओं में उसका जो रूप पाया जाता है, वैसा संस्कृत में कदापि किसी काल में उसने ग्रहण किया हो सो नहीं जान पड़ता। उसके गद्यकाव्य का ढङ्ग कुछ निराला ही है, वैसा और किसी भाषा में कदाचित् ही होगा। इस भाषा के वर्णों की विलक्षण मधुरता एवं प्रौढ़ता है, और रचनावैचित्र के लिये शब्दप्रचुरता, समास बनाने के विलक्षण प्रकार और उनकी दीर्घता का अनिर्बन्ध प्रभृति सामग्री अनुकूल होने के कारण अकेले छन्द को छोड़ कर कविता की पूरी सजावट गद्यकाव्य को देना नितान्त सुकर कार्य्य होगया; यही कारण है कि उक्त तीनों ग्रन्थ रचयितृगण कवियों में परिगणित किए गए हैं।

अपर दोनों की अपेक्षा बाणभट्ट ही विशेष प्रसिद्ध हैं; अतः प्रथम उन्हींका वर्णन प्रारम्भ किया जाता है।

बाणभट्ट ने अपने परम प्रसिद्ध 'कदम्बरी' संज्ञक ग्रन्थ की भूमिका में अपने पूर्व पुरुषों का नामोल्लेख मात्र किया है; इससे अधिक और परिचय उसमें कुछ नहीं प्राप्त होता। वह त्रुटि उसके अब इधर प्राप्त हुए 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थ द्वारा पूर्ण हो सकती है। इस ग्रन्थ के प्रथम उच्छ्वास के अन्त में निम्नलिखित वृत्त पाया जाता है।—

बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु, और माता का नाम राज्यदेवी था। बाण जब चौदह वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का था तभी उसका पिता मृत्यु को प्राप्त हो गया था। भद्रनारायण, ईशान और मयूरक उसके बालमित्र थे। शोण (सोना) नदी के पश्चिम को प्रीतिकूट नामक ग्राम में उसका घर था। इसी नदी के किनारे सेमार के बगल में यष्टिगृह नाम का एक ग्राम था। इस गांव से तनिक आगे बढ़ते ही श्रीकण्ठ नामक देश की सीमा लगती थी। हर्षराजा की राजधानी यहां ही थी।

उक्त प्रकार से अपने कवि के ही ग्रन्थ द्वारा उसके वसतिस्थान का निर्णय हो गया है, और साथ ही थोड़ा सा कुलवृत्तान्त भी ज्ञात हो गया है। पर समय जानने के हेतु कोई साधन हस्तगत नहीं होता। इस देश के प्राचीन काल का पूरा इतिहास यदि हमारे पास होता तो वह इस समय अत्यन्त उपयोगी होता। पर क्या किया जाय! उस साधन का हमारे पास सर्वथा अभाव है ऐसा कहना कदाचित् अनुचित न होगा। और सब विषयों में प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों से समता प्राप्त करनेवाले, और कहीं कहीं तो उनसे भी बढ़ चढ़ गए हुए हमारे भूतपूर्व पुरुषों के हाथ से न जानें विद्या का यह एक प्रधान अंग क्यों छूट गया? इसका कारण चाहे यह मान लिया जाय कि ग्रीक लोग जैसे परराज्यदलित हुए और उन्हें अपनी वीरता प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हुआ, वैसा अवसर यहां के लोगों को कभी भी प्राप्त नहीं हुआ। वा हिरडोटस्, जिनोफन् और थुसीडिडीज़ के समान हमारे देश के विद्वान् लोग प्रवासविमुखता के कारण देशपर्य्यटन कभी भी न करते थे; वा वे लोग नरस्तुति को मिथ्या मानते थे; वा ग्रन्थलुप्त हो जाने के कारण। इनमें से कारण चाहे जो हो, पर यह बात तो स्पष्ट बोध होती है कि हमारे देश का प्राचीन इतिहास सर्वथा लुप्त हो गया। यह असामान्य हानि केवल उसीके सम्बन्ध से शोचनीय नहीं है, किन्तु ग्रन्थों के सम्बन्ध से भी वह वैसी ही शोचनीय है। जैसे निबिड़ अंधकार में रङ्ग, रूप, आकार और अन्तरादि का ज्ञान सब नष्ट हो जाता है, वैसेही एक इतिहास के अभाव के कारण समस्त ग्रन्थसमूह के विषय में गड़बड़ पाई जाती है। कौनसा ग्रन्थ पहिले लिखा गया, कौनसा पीछे लिखा गया, कौनसा ग्रन्थ अपने जन्मदाता के जीवनकाल में किस प्रकार से समादृत हुआ इत्यादि अनेक बातें जानने के लिये मन अत्यन्त उत्कण्ठित एवं लोलुप होता है; और उनका बोध होने में भी बड़ी बहार है, कभी कभी तो यह सब आनन्द उन बातों में ही पाया जाता है।

एथेन्स नगर के अरिस्तोफेनीज़ नामक एक प्रहसनकर्त्ता का 'मेघमालासंज्ञक' एक प्रहसन अद्यावधि प्रसिद्ध है। वह यदि अपने 'प्रबोधचन्द्रोदय' की नांई इतिहासप्रसिद्धिशून्य होता, तो क्या आश्चर्य्य है कि उसका सब रस विनष्ट सा न हो गया होता? सारांश, यह कि जैसे किसी मृत स्त्री के मुख द्वारा उसके अपर अंगों का आकार, उसका वर्ण आदि ही केवल दृश्यमान रहता है, पर जीवितकाल का सौंदर्य और मुखमण्डल की शोभा एक बार ही अस्त हो जाती है सो हो ही जाती है, उसकी पुनः कल्पना तक नहीं हो सकती,-उसी प्रकार से संस्कृतभाषा के ग्रन्थों की नूतन शोभा अपने आप समय के साथ ही प्रायः कभी की लय को प्राप्त हो गई, ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं बोध होती। पर यदि वही शोभा इतिहासरूप चित्र में आज दिन ज्यों की त्यों बनी रहती, तो सूर्य्योदय हो सब दिशाओं के प्रफुल्लित होने पर नदी, वृक्ष, पर्वतादि द्वारा चित्र विचित्र रूप धारण करनेवाली प्रकृति देवी की जैसी अपूर्व शोभा आलोक पथ में आती है और उसके समस्त दृश्य रमणीक देख पड़ते हैं उसी प्रकार से पूर्वोक्त ग्रन्थसंग्रह सम्प्रति की नाईं उलझन में न फंस कर यथाक्रम हस्तगत होता और उससे सम्प्रति की अपेक्षा कहीं बढ़के आनन्द और लाभ प्राप्त होता। तात्पर्य्य यह है कि अपने देश का पुरातन इतिहास उपलब्ध न होने के कारण अपनी और सब जग की बड़ी भारी हानि हुई है। अब यह बात सच है कि प्रसंगवशात् 'राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरङ्गिणी' * के से ग्रन्थ द्वारा काम निकल जाता है। पर उसे इतिहास के नाम से पुकारना युक्तियुक्त बोध नहीं होता, क्योंकि पहिले तो उसकी लेख-प्रणाली शुद्ध इतिहास की सी नहीं है, किन्तु वह केवल काव्य की सी है, और दूसरे इतिहास के जो दो सुदृढ़ आधारस्तम्भ कालक्रम और भूगोल (देश ज्ञान) हैं, उनकी ओर लेखकगणोंने वैसा कुछ ध्यान दिया सो नहीं देख पड़ता। भारतवर्ष अत्यन्त विस्तीर्ण देश होने के कारण भिन्न भिन्न प्रान्तों के राजा लोगों ने भिन्न शक प्रचलित किए हैं। एतावता काल का निश्चय करने में बहुत आपत्ति उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त हमलोगों के यहां पूर्व से एक ऐसी भद्दी चाल पड़गई है कि कोई शक वा संवत लिखते ही नहीं। आज दिन भी बहुत से पुराने ग्रन्थ-विद्यमान हैं, पर उनमें से ऐसे कदाचित् ग्रन्थ ही होंगे कि जिनमें उनका शक लिखा हुआ है। पर इतने दूर जाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। आज दिन भी केवल भाषा जाननेवाले वा पुराने पण्डित लोग अपने पत्रों में केवल तिथि अवसर महीने का ही नाम लिखते हैं, वर्ष का शक वा संवत कदापि नहीं लिखते। कहने का अभिप्राय यह है कि अपने भूतपूर्व ग्रन्थप्रणेतृगणों के समय की खोज लगाने के साधनों का अपने पास प्रायः अभाव ही है। तौभी यहां पर एक बड़ी आश्चर्य्यजनक एवं लज्जोत्पादक बात पाठकों को सूचित की जाती है। वह यह कि बाण कवि का समय जानने की अपनी जिस उत्कठ उत्कण्ठा को स्वयं अपने ग्रन्थ तृप्त नहीं कर सके, उसे एक चीन के ग्रन्थ ने पूर्ण किया है !!

यह महदाश्चर्य्य-संयुक्त घटना क्यों कर हुई, और चीन के ग्रन्थ और हमारे बाण कवि के काल का क्या सम्बन्ध है, आदि का यथावत् बोध होने के हेतु यहां पर थोड़े से ऐतिहासिक वृत्त का उल्लिखित होना आवश्यक जान पड़ता है। हमारे पाठकों में से सारज्ञ पाठकों को यह बात अवश्यमेव विदित होगी कि मुसलमानों का अधिकार हमलोगों की बुद्धिप्रबलता का बाधक हो उसकी अवनति का कारण होने के पूर्व सैकड़ों वर्ष लों धर्म्म के सम्बन्ध से इस देश में कई बड़े बड़े उलट फेर हो गए थे। आर्य्य लोगों के मूल वैदिकधर्म्म पर आक्षेप कर पहिला मतभेद बुद्ध ने प्रचलित किया। कालक्रमानुसार बहुतेरे लोग उसके मत का अनुधावन करने लगे और इस प्रकार से धर्म में दो भेद हो गए, और यह नूतनधर्मावलम्बी लोग अपनेको बौद्ध कहने लगे। इनके नवीन मत कैसे थे, इनका उदय, विस्तार और लय कब और क्यों हुआ, आदि बातें इतिहास-लेखकों के बड़े मनोहर विषय की सामग्री थीं, पर अब उसकी चर्चा करने में लाभ ही क्या है ? पिछली ही खेदकारक बात का यहां पर पुनः एक बार उल्लेख करना चाहिए कि इतिहास के अभाव के कारण हमको समस्त जगत् के साथ इस महल्लाभ से हाथ धो बैठना पड़ा है।

अस्तु, बुद्ध के विषय में यद्यपि हमें कुछ भी ज्ञात नहीं हैं* तौ भी यह बात तो स्पष्ट ही है कि उनकी बुद्धि लोकोत्तर होगी, क्योंकि स्वयं उनके विपक्षी ब्राह्मणों ने भी उन्हें ईश्वर का साक्षात् नवम अवतार माना है। जयदेव स्वामी अपने 'गीतगोविन्द' के आदि में लिखते हैं:—

* यह वृहत् ग्रन्थ चार भागों में शेष हुआ है। कल्हण पण्डित ने इसके पहिले भाग में काश्मीर देश का ई० सन् ११४८ पर्य्यन्त का इतिहास लिखा है। दूसरे भाग में जोन राजा ने ई० सन् १४१२ पर्य्यन्त का वृत्त लिखा है। तीसरे भाग में (जोन राजा के शिष्य) श्रीवर पण्डित ने ई० सन् १४९९ पर्य्यन्त की घटनाओं को लिपिबद्ध किया है। और चौथे भाग में प्रजयभट्ट ने अकबर के काश्मीर विजय का वृत्तान्त और आगे शाह आलम बादशाह पर्य्यन्त का वृतान्त लिखा है। काव्य रीति के अनुसार यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रशंसनीय है।

* आनन्द का विषय है कि केवल भाषा जाननेवाले लोग भी अब काशीनिवासी श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० लिखित 'शाक्यवंशीय गौतम बुद्ध' नामक प्रबन्ध द्वारा बुद्ध के विषय में बहुत कुछ परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शित पशुघातं
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ (ध्रुवपद)

इसमें बुद्धके मुख्य प्रतिपाद्य मत का कथन किया है कि "वेदाज्ञानुसार यज्ञों में जो पशुहिंसा की जाती थी उसका उन्होंने सदय अन्तस्करुण हो निषेध किया"। इस धर्म्मसंस्थापक का मरण अंगरेज़ ग्रन्थकर्त्ताओं ने ईसवी सन के पूर्व ६४३ कहा है। इसके अनन्तर इस धर्म्म ने परमोन्नति प्राप्त की थी। ईसवी सन के पूर्व अनुमान ३०० वर्ष उस धर्म्म का परम प्रसिद्ध अशोक संज्ञक राजा शासन करता था। सुना जाता है कि उसने अपने सम्पूर्ण राज में पश्वादिकों के वध का निषेध कर दिया था। इस समय की साक्षी देनेवाले अक्षरों के खुदे हुए कई स्तम्भ प्रभृति आज दिन भी कहीं कहीं पाए जाते हैं। अस्तु, पर बुद्ध का यह समस्त विभव आगे कुछ काल के अनन्तर समूल विनष्ट हो गया। ईसवी सन के आरम्भ में पर बौद्ध और ब्राह्मणों में प्रचण्ड वाद विवाद हुआ था। तब श्रीमच्छङ्कराचार्य्य ने बौद्ध धर्म्म का खण्डन कर ब्राह्मण धर्म्म को स्थापित किया था*। इस प्रकार से बौद्धों का पराजय होने पर स्वेच्छानुसार कहो, वा राजाज्ञानुसार कहो, उन लोगों ने देश त्याग किया और कोई तिब्बत, कोई चीन और कोई लङ्का में जा बसे। आगे चिरकाल पर्यन्त उन्हें अपने आदि के देश का स्मरण बना रहा था। और बीच बीच में कोई कोई लोग स्वधर्म्मी लोगों के पूर्व के स्थान और विशेषतः अपने धर्म्मोत्पादक की धरती का निरीक्षण करने के हेतु भारत में आया करते थे। इस प्रकार का एक चीनी हुएनसङ्ग नाम का यात्री पिछले दिनों भारत में आया था। उसने ईसवी सन् ६२९ से ६४५ पर्य्यन्त, अर्थात् अनुमान १६ वर्ष लों, भारत में भ्रमण किया था। उसने अपने ग्रन्थ में उस समय के हिन्दू राजाओं का, तथा उसने जितना देश देखा था उसका, वर्णन इतना परमोत्कृष्ट किया है कि योरोप के भुवन विख्यात संस्कृतज्ञ पण्डित मोक्षमूलर महोदय ने उसकी अत्यन्त प्रशंसा की है। सम्प्रति यहां पर हमें यही बात प्रदर्शित करनी अभीष्ट है कि इसी हुएनसङ्ग ने अपने ग्रन्थ में हर्ष राजा का वर्णन किया है। इससे यह बात निश्चित होती है कि ईसवी सन् ६१० के प्रारम्भ में बाण कवि जीवित था। इस गुरुतापूरित वृत्त के खोज लगाने की प्रतिष्ठा सुयोग्य डाक्टर हाल साहिब को, कि जो पिछले दिनों कलकत्ते की ओर थे, प्राप्त हुई है। इस छोटी सी बात से हमारे आधुनिक विद्वान् यदि यह शिक्षा ग्रहण करें कि विद्या की सफलता पल्लवग्राही पांडित्य और शुष्क तर्कना में नहीं हैं, वैसे ही जीवन का प्रधान अभिप्राय विलासप्रियता एवं तंद्रिलता नहीं है, जैसा कि वे अपने आचरण द्वारा लोगों को प्रायः प्रदर्शित किया करते हैं, तो बहुत कुछ लाभ की आशा की जा सकती है।

बाण कवि का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रंथ 'कदम्बरी' है; और आज पर्य्यन्त यही एक उसके नाम से विख्यात था; पर अभी पीछे लिख आए हैं कि अब इधर 'हर्षचरित' नाम का उसका दूसरा ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ अभी चारों ओर ताद्दश प्रसिद्ध नहीं हुआ है, तथापि उसके अभिधान से यह बात स्पष्ट बोध होती है कि जिस हर्षराजा ने बाणभट्ट को निज आश्रय प्रदान किया था उसका उसने इसमें वर्णन किया होगा। 'चंडिका शतक' नाम का ग्रंथ के विषय में भी अब इधर सुना जाता है कि वह भी बाणभट्ट का लिखा हुआ है। इसके विषय में एक अचरज की बात कही सुनी जाती है। अभी ऊपर उल्लिखित हो चुका है कि बाणभट्ट के बालमित्रों में मयूर भी था। यह आगे बड़ा नामी

* सर्व्वसाधारण की यह सम्मति विलसन् साहिब को स्वीकृत नहीं है। आपने अपने कोश की भूमिका में एक स्थान पर यह लिखा है कि माधवाचार्य्य के शङ्करविजय ग्रन्थ और स्वयं आचार्य्य के ग्रन्थों द्वारा इस मत के लिये कहीं कुछ आधार नहीं मिलता, हां उक्त ग्रन्थ उनके स्वभाव की सौम्यता अवश्य प्रदर्शित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि हुआ। इसने अपने महारोग निवारणार्थ सूर्य्यस्तव रूप 'सूर्य्यशतक*' नाम का एक काव्य प्रणीत किया है। इस पुण्यकर्म्मानुष्ठान द्वारा उस का महारोग दूर हो गया और वह पूर्ववत् पुनः सुन्दरकाय होगया। उक्त सूर्य्यप्रसाद की बाण कवि को बड़ी डाह हुई, और उसने अपने हाथ पांव काट लिए। वे उसे पुनः उक्त काव्य द्वारा प्राप्त हो गए। पीछे कालिदास और भवभूति विषयक आख्यायिकाओं के सम्बन्ध में लिखती बार ऐसी जनवार्त्ता के विषय में हम अपना मत प्रदर्शित कर ही चुके हैं; तथापि यहां पर यह बात लिखे बिना लेखनी आगे को संचालित नहीं होती कि उक्त किम्वदन्ती में युक्तिसङ्गतता और सुन्दरता इन दोनों गुणों की ऊणता लक्षित होती है। बाणकवि के नाम से 'पार्वतीपरिणय' नाम का एक नाटक भी प्रसिद्ध है। इस नाटक के विषय में भी हम अपनी सम्मति पीछे लिख चुके हैं†। यहां पर उससे और कुछ अधिक लिखना अभीष्ट नहीं जान पड़ता। उक्त ग्रन्थों की अपेक्षा और भी एक ग्रन्थ की कर्त्तृता अपने कवि की ओर आना चाहती है। वह ग्रन्थ कोई ऐसा वैसा सामान्य ग्रन्थ नहीं है, किन्तु सुप्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' है। यह मत पूर्वोक्त डाक्टर हाल साहिब का है। 'रत्नावली' का सुप्रसिद्ध रचयिता श्रीहर्ष है; पर अपना कवि जिसका आश्रित था वह हर्ष और यह यदि एकही हों तो इस प्रसिद्धि का कारण सहज ही में कहा जा सकता है। वह कारण यही हो सकता है कि राजा ने बाण कवि को द्रव्य दे उससे उक्त नाटिका लिखा-ली है, और एक बार वह प्रसिद्ध हो गई हो और वही प्रसिद्धि आजलों चली आती हो। उक्त साहिब को यह शङ्का उपस्थित होने के लिये यह कारण हुआ है कि 'रत्नावली' के कतिपय श्लोक हर्षचरित के श्लोकों से मिलते हैं। हमने 'हर्षचरित' देखा नहीं है, अतः इसके विषय में हम दृढ़तापूर्वक यहां पर कुछ भी नहीं लिख सकते। तौभी इतना लिखदेना आवश्यक समझते हैं कि जब यह मत, आज सैकड़ों वर्षों से चली आती हुई प्रसिद्धि का विरोधी होगा, तब जब लों विश्वासपात्र एवं दृढ़ प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं तबलों उक्त विवाद का निर्णय करना अनुचित है।

एक 'कादम्बरी' बाण कवि का अत्युत्तम ग्रन्थ है; इस ग्रन्थ का जितना भाग स्वयं बाण कवि ने लिखा है, उतना ही यदि उसका ग्रन्थ मानाजाय, तौ भी वह ग्रन्थ बहुत कुछ बड़ा है। एतावता यह कहने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती कि उसका कवित्वगुण उसमें बहुत समाविष्ट हुआ है। अतः उसके और भी जो ग्रन्थ होंगे उनकी ओर दत्तचित्त न होकर संप्रति उक्त ग्रन्थ को ही समीप रखकर उसके कवित्व गुण की परीक्षा लिखते हैं। भरोसा तो है कि इस कार्य्य में हम धोखा न खाने पावेंगे।

विषयवर्णन-क्रमानुरोध से तो यह समुचित है कि यहां पर वर्त्तमान ग्रन्थ के सम्विधानक का कथा संग्रह का) उल्लेख किया जाता। पर सम्प्रति यहां पर उसे लिखने के लिये हम असमर्थ हैं। इसका कारण यही है कि वह संक्षेप में नहीं लिखा जा सकता और उसका यों ही थोड़ा बहुत लिखा जाना केवल निरुपयोगी है। अतः इस कथानक के लिखने को एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखना समझ कर हम उसे यहां पर नहीं लिखते; और इस ग्रन्थ के विषय में पूर्व क्रमानुसार सामान्यतया हमें जो कुछ लिखना है उसका सहसा प्रारम्भ करते हैं।

अङ्गरेज़ी में जिस अद्भुत कथासमूह को 'रोमान्स' के नाम से पुकारते हैं, तदन्तर्गत 'कादम्बरी' परिणत की जा सकती है। इस ग्रन्थ की नायिका कादम्बरी है। यह एक गन्धर्व की कन्या है। उज्जैन के राजपुत्र चन्द्रापीड़ के साथ इसका विवाह हुआ है। यह राजपुत्र दिग्विजय की अभिलाषा से प्रस्थित हो हिमालय पर कैलास के बगल में डेरा डाले पड़ा हुआ था। एक दिन आखेट को खोज में फिरते फिरते वह एकाकी गन्धर्वों के देश में जा

* यह प्रौढ़ काव्य आज दिन भी प्रसिद्ध है।

† देखो भवभूति की टिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकला। आगे महाश्वेता और कादम्बरी से उसकी भेंट हुई। महाश्वेता कादम्बरी की सखी और इस उपन्यास को उपनायिका है। इसने पुण्डरीक नामक ऋषिकुमार से विवाह किया था। जन्मान्तर में यही चन्द्रापीड़ का मित्र वैशम्पायन हुआ; और आगे महाश्वेता के शापार्थ पुनः तोता हुआ। कथा के आदि में अंत्यजकन्या जिस सुग्गे को लेकर शूद्रक राजा के निकट आई है वह यही कीर है। शूद्रक भी जन्मान्तर का चन्द्रापीड़ है। अस्तु, इस समास कथानक द्वारा हमारे विज्ञ पाठकगण इस उपन्यास के सन्धानक तथा उसके वृहत्काय एवं आश्चर्योत्पादक होने का अनुमान सहज ही में कर सकते हैं। सम्बिधानक चातुर्य्य वही वस्तु है कि जिसके द्वारा आख्यायिका के प्रायः पर्यवसान पर्य्यन्त आगे क्या क्या होगा उसकी पाठकों को थाह न मिलने पावे और उनका कौतूहल सन्तत जाग्रत बना रहे। इस विशेषता को बाण कवि ने वर्त्तमान ग्रन्थ में बड़ी निपुणता से सन्निविष्ट किया है। आदि में ही नहीं, किन्तु कथा के बीचो बीच आ जाने पर भी दीर्घ काल लों उसके अवसान के विषय में कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। आज पर्य्यन्त सहस्रों मनुष्यों ने यह कथा पढ़ी होगी, पर हम नहीं समझते कि उनमें से कितने लोग इस मर्म को समझे होंगे कि शूद्रक और तोता इस कथा के यथाक्रम नायक और उपनायक हैं। जो इस ग्रन्थ के अभिधान का प्रधान कारण है, उसी मुख्य नायिका का आधे से कहीं अधिक ग्रन्थ पढ़ जाने पर परिचय मिलने लगता है; तब लों पाठकों को यह रहस्य यत्किञ्चित् भी नहीं विदित होता को कि इस ग्रन्थ का नाम 'कादम्बरी' क्यों विहित किया गया है। आगे कथा जैसी जैसी बढ़ती जाती है वैसा वैसा उसमें यह सन्देह उत्पन्न होता जाता है कि–निदान एक को वह अवस्था हुई। ग्रन्थकार कथा के आरम्भ को (अर्थात् तोता राजा से और जाबालि मुनि शिष्यों से बोल रहा है सो) भूल तो नहीं गया? आदि में अंत्यज की कन्या एक बार आकर जो चंपत हो जाती है सो, अन्त के पृष्ठों में जा पुनः दृष्टिगत होने लगती है; वह जाति की पतित होने पर भी आदि में उसके निरुपम सौंदर्य्य का इतना वर्णन क्यों किया गया है; उसने तोते को राजा के आधीन क्यों किया, आदि बातों का रहस्य बिलकुल अन्त में जा कर ज्ञात होता है। तात्पर्य यह सम्बिधानक अत्यन्त निपुणता के साथ जोड़ा गया है; अब हिन्दी आदि भाषाओं में इस काव्य की जो मधुरता लाई जायगी उसके इस सम्बिधानक की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होना सर्वथा असम्भव सा बोध होता है।

पर यह सम्बिधानक उक्त भव्यभवन की नींव मात्र है। इसकी मधुर एवं प्रौढ़ वर्णरचना, श्लेष की खूबी, भिन्न भिन्न स्थानों के चित्र विचित्र एवं मनोहर वर्णन, आलाप का प्रवाह, आदि के गुण समुच्चय द्वारा इस ग्रन्थ को जो विलक्षण शोभा प्राप्त हुई है सो वर्णनशक्ति से परे है! प्रथम तो गीर्वाण भाषा ही अनेक गुणसम्पन्न होने के कारण नितान्त मनोहर है, तिसपर फिर उसका बाणभट्ट के से सहृदय चतुर एवं कल्पनाशील कवि के साथ मेल हो जाने पर पूछना ही क्या है? जो जो चमत्कार हों वे सब थोड़े ही हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जिन जिन लोगों ने अपने कवि को अपने पाठकों को अपने प्रकृतिसुलभ वाग्विलास द्वारा आश्चर्यित कर देने को और उनके मन को ठौर ठौर पर चमत्कृत करने की शक्ति का स्वयं अनुभव लिया होगा, उनमें से ऐसा कौनसा रसिक है जो निम्नलिखित गोवर्द्धनोक्ति को यथार्थ मान शिरःप्रकम्प न करेगा और उक्त आचार्य्य जी को न असीसेगा!

जाता शिखंडीनी प्राक् यथा शिखंडी तथाऽवगच्छामि
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

"हम समझते हैं कि जैसे पुराकाल में शिखण्डिनी शिखण्डी हुई, वैसे ही अधिक प्रगल्भता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने के हेतु वाणी (सरस्वती) बाण हुई*"। आचार्य्य की इस आर्य्या को पढ़ हम इस बात को निश्चित नहीं कर सकते कि यहां पर हम आचार्य्य के सहृदयता की अधिक प्रशंसा करें वा उनकी चतुरता की अधिक प्रशंसा करें।

सारांश, यह ग्रन्थ उक्त प्रकार से अनेक गुण-संयुक्त होने के कारण रमणीक हुआ है। जिस किसीको हिन्दू लोगों की कल्पनाशक्ति, संस्कृत भाषा का शब्दार्थरूप अक्षयभाण्डार, उसका श्लेषादि विचित्रतोत्पादक असामान्य सामर्थ्य, उसके काव्य का नितान्तोज्वल स्वरूप, आदि गुणों को एकत्रित हुए देखने की इच्छा हो, उसकी इच्छा वर्त्तमान ग्रन्थ पूर्णकर सकता है। और इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के अवलोकन द्वारा प्रचीनकाल की रीति भांति, लोगों की रहन सहन आदि का भी परिचय मिल सकता है। परस्थ विजातीय लोगों द्वारा पददलित होने के पूर्व इस सुवर्णभूमि के अपार विभव का जो दुन्दुभीनाद दूर दूर के देशों में सुनाई पड़ता था, उसका परिचय इस ग्रन्थ द्वारा जिस प्रकार से प्राप्त हो सकता है, वैसा कदाचित् और ग्रन्थ द्वारा न हो सकेगा।

[शेष आगे

मुक्ति का उपाय

[१]

फकीरचन्द की प्रकृति बाल्यावस्था ही से गम्भीर थी। बूढ़े मनुष्यों की सङ्गति में वह कभी बेढब नहीं जँचता था। हँसी दिल्लगी उसे बिलकुल नहीं भाती थी। एक तो वह गम्भीर था ही, तिसपर वर्ष के अधिकांश समय में अपने मुखमण्डल के चारों ओर काले ऊन का गलाबन्द लपेटे रहता था। और थोड़ी ही वयस में उसके ठिड्डू और गाल घने बालों से आच्छादित हो जाने के कारण सारे मुखड़े पर हास्यविकाश के लिये तिलमात्र भी ठौर नहीं बचा था। इन सब कारणों से लोग उसे एक बड़ी ऊंची श्रेणी का मनुष्य समझते थे। उसकी स्त्री कल्याणी का वयस नवीन था और उसका मन भी पार्थिव विषयों में बहुत लगता था। वह नाना भांति के नए नए नावेल पढ़ा करती और पति को ठीक देवता की भांति पूज कर भी तृप्त नहीं होती थी। कुछ कुछ हास्य रङ्ग में भी उसकी रुचि रहती थी और खिलता हुआ पुष्प जैसे वायु के झकोरे और प्रातः काल के उजाले के लिये व्याकुल होता है, उसी भांति वह भी इस नए यौवन के समय पति से आदर और हास्यामोद की यथापरिमाण प्रत्याशा करती थी; परन्तु पतिदेवता सावकाश पाते ही उसे भागवत पढ़ाते, सन्ध्या के समय भगवद्गीता सुनाते और कभी कभी उसकी आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा से शारीरक शासन करने में भी नहीं चूकते थे। जिस दिन कल्याणी के सिरहने के तले गदाधरसिंह की कादम्बरी निकल पड़ी, उस दिन उस लघुप्रकृति युवती को सारी रात आंसू टपकवा कर फकीरचन्द ने दम लिया था। एक तो नावेल पाठ, तिस पर पति से प्रवञ्चना! अस्तु, अविराम आदेश अनुदेश उपदेश धर्म्मनीति और दण्डनीति के द्वारा,—निदान कल्याणी के मुख की मुसक्यान, मन का सुख और यौवन की उमङ्ग पूरी पूरी निचोड़ लेने में स्वामी महाराज कृतकार्य हो गए।

परन्तु अनासक्त मनुष्य के लिये संसार में बहुत विघ्न हैं। होते होते फकीरचन्द के एक पुत्र और एक कन्या ने जन्म लेकर संसार का बन्धन बढ़ा दिया। और पिता की ताड़ना से इतने बड़े गम्भीर

---

* भारतान्तर्गत उद्योगपर्व्व के अन्त में शिखण्डी की कथा वर्णित है। काशीराज की कन्या अम्बा भीष्म से बदला लेने के लिये दूसरे जन्म में पहिले शिखण्डिनी हुई। आगे एक यक्ष ने आजन्म के लिये उसे अपना पुरुषत्व दिया। तब वही शिखण्डी हुई। अनन्तर भीष्म के वध का कारण यही शिखण्डी हुआ। अब इस कथा का अनुधावन कर हमारे आचार्य्य कहते हैं कि हम ऐसी ही वाणी का बाण (वर्णयोरभेदः) हुआ ऐसा समझते हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिवान् पुरुष को भी दफ़तर दफ़तर नौकरी की उम्मीदवारी में निकलना पड़ा। परन्तु जीविका की सम्भावना कहीं भी न देख पड़ी।

तब तो उसके मन में आया कि बुद्धदेव की नाईं संसार ही को त्याग दूं। यह सोच एक दिन गहरी रात को वह घर छोड़ बाहर निकल पड़ा। यहां पर एक और वृत्तान्त कहना आवश्यक है।

[२]

नयागांव-निवासी मनबोधराम के एक ही पुत्र था। नाम उसका माखनलाल। बिवाह हो जाने के पश्चात् सन्तान सन्तति न होने के कारण पिता के अनुरोध और नवीनत्व की लालच से माखन ने दूसरा बिवाह कर डाला। इस बिवाह के अनन्तर यथाक्रम उसकी दोनों स्त्रियों के गर्भ से सात कन्या और एक पुत्र आविर्भूत हुए।

माखनलाल बांका और चपल स्वभाव का था, किसी प्रकार के गुरुतर कार्य में अपनेको फंसाना उसे तनिक नहीं भाता था। एक तो बाल बच्चों का बोझ, तिसपर जब दोनों कर्णधार* दोनों कानों में झटका देने लगे, तो जब और सहा न गया, तो एक दिन अँधेरी रात को उसने भी डुबकी मारी।

बहुत दिन हो गए, उसका कुछ पता नहीं लगता। कभी कभी सुनने में आता है कि उसने पञ्जाब में जाकर एक और ब्याह कर लिया है, और लोग कहते हैं कि अभागे को अब कथञ्चित् शान्ति-सुख मिला है। केवल कभी कभी स्वदेश में आने के लिये उसका मन उतावला हो जाता है, पर फिर फन्दे में पड़ जाने के भय से यहां नहीं आता।

[३]

कुछ दिन रमते रमते उदासीन फकीरचन्द नयागांव में आ पहुंचा। मार्ग के पास ही एक बरगद के तले बैठ कर लम्बी सांस भरके कहने लगा—"आहा, वैराग्यमेवाभयम्! दारा पुत्रं क्षेत्रं वित्तं कोई किसी का नहीं। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः"। यों कह कर एक राग उसने छेड़ दिया—

मनुआ मेरी बात को सुनले तू है बड़ा अयाना रे!
मुक्तिपन्थ बतलावे साधू उसको क्यों नहिं माना रे?
जगत की सीपी तोड़ले मनुआ मुक्तिमोति मनमाना रे!
मनुआ तू दिवाना भारी फिरता कहां भुलाना रे?—

अकस्मात् गीत रुक गई। "कौन है वहां? ऐं पिता जी! मालूम होता है कि उन्हें मेरा पत लग गया! अरे बड़े आपद में आ फँसे! फिर जान पड़ता है कि संसार के अन्धकूप में खींच ले जांयगे भागना पड़ा।"

[४]

झट पट फकीरचन्द पास के एक गृह में घुस पड़ा। बूढ़ा गृहस्वामी चुपचाप बैठा हुआ तमाखू पी रहा था। उसे घर में घुसते देख कर पूछा "तुम कौन हो जी?"

फकीर—बाबा, मैं सन्यासी हूं।

वृद्ध—सन्यासी! देखें, देखें, उजाले में तो आओ। यों कह कर वृद्ध उसे उजाले में घसीट लाया और बड़े यत्न से फकीरचन्द के मुख पर झुक कर, बूढ़े मनुष्य जैसे बड़ी कठिनाई से पोथी पढ़ते हैं, उसी भांति उसके मुख को निरीक्षण कर धीरे धीरे कुछ बड़बड़ाने लगा—

"अरे यह तो हमारा माखनलाल दीखै है! वही आंख, वही नाक, खाली माथा कुछ बदलसा गया है, और चांद से मुखड़े को दाढ़ी मोछ ने बिलकुल घेर लिया है!" यों कह कर उस वृद्ध ने प्यार से फकीरचन्द के जङ्गलमय मुखपर दो एक बार हाथ फेरा और फिर कहा "माखन, बेटा!"

इसके कहने का कोई प्रयोजन नहीं है कि वृद्ध मनबोधराम था।

फकीर—(विस्मित होकर) माखन! मेरा नाम तो माखन नहीं है! पहिले मेरा नाम चाहे जो कुछ रहा हो, अब मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है। और चाहो तो मुझे परमानन्द भी कह सकते हो।

मनबोध—बेटा, तुम अब अपना नाम चाहे ऊधो रक्खो चाहे माधो, मेरे लिये तुम माखन ही हो, यह भला मैं कैसे भूल सकता हूं? बेटा रे, तुम

* दूसरा अर्थ नौका चलानेवाले केवट॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन से दुःख के मारे गृहस्थी छोड़ दी ? तुझे किस वस्तु का अभाव है ? दो दो स्त्रियां घर में हैं, बड़ी से प्रेम न हो छोटी है। लड़के बालों का भी कुछ क्लेश नहीं। राम की दया से तेरे सात बेटियां हैं, एक बेटा है। तुझे किस बात की कमी है ! और मैं बूढ़ा बाप और कै दिन जीऊंगा, तेरा राजपाट सब तुझ ही को फलेगा।

फकीरचन्द चौंक कर बोल उठा "अरे बापरे ! सुनते भी डर लगता है !"

इतनी देर में उसे वास्तविक बात ज्ञात हुई। सोचने लगा हानि क्या है, दो दिन वृद्ध का पुत्र ही बन कर छिप रहूं। फिर पिता जब मेरा खोज पता न पाकर लौट जांयगे तो मैं भी यहां से चल खड़ा होऊंगा"।

फकीर को निरुत्तर देख वृद्ध के मन में और कुछ संशय नहीं रहा। नौकर को पुकार कर बोला अरे ओ किसना, सब लोगों से तू जाकर कह आ मेरे माखन लौट आए हैं।

[५]

देखते देखते लोगों की भीड़ जम गई। आस पास के प्रायः अधिकांश लोगों ने कहा हां वही है। किसी किसीने सन्देह भी जताया। परन्तु विश्वास करने के लिये सब इतने व्यग्र हो रहे थे कि सन्दिग्ध मनुष्यों पर वे बिगड़ बैठे। मानो ये लोग जान बूझ कर रसभङ्ग करने आए थे, मानो ये न भूत को मानते थे न ओझा ही को। आश्चर्य कथा को सुनकर जब सब लोग भौचक्के हो गए, उस समय भला ये मनुष्य सन्देह कैसे करने बैठे ! इन्हें तो एक प्रकार का नास्तिक ही कहना चाहिए था। पर, चाहे भूत पर विश्वास न भी करते, किन्तु बूढ़े बाप के खोए हुए पुत्र को सामने देखते हुए विश्वास न करना तो बड़ी हृदयहीनता का कार्य था। अस्तु ये अविश्वासी सब लोगों से ताड़ना पाकर दुम दबाकर वहां से चल खड़े हुए।

फकीरचन्द के अति भीषण, अटल गाम्भीर्य्य पर तिल भर भी ध्यान न देकर टोले के लोग उसे घेर कर कहने लगे—"अरे, अरे, हमारे माखनलाल आज ऋषीश्वर हुए हैं, महात्मा बन बैठे हैं ! जनम भर तो बांके छैले बने फिरा किए, आज अकस्मात् महामुनि यमदग्नि बन बैठे हैं"।

उन्नतचेता फकीर को यह बात बहुत बुरी लगी। परन्तु निरुपाय होने के कारण सब सह लेना पड़ा। एक मनुष्य देह से चिपट कर बोल उठा, "अरे माखन, तू तो जामुन सा काले रङ्ग का था, ऐसा गोरा कैसे बन गया ?"

फकीरचन्द ने उत्तर दिया "योगाभ्यास के कारण।" सब बोल उठे "ओः हो ! योग का कैसा आश्चर्यमय प्रभाव है !!"

एक मनुष्य बोल उठा आश्चर्य का इसमें क्या कारण है ? शास्त्र में लिखा है कि हनुमान जी की पूंछ पकड़ कर जब भीमसेन उठाने लगे तो वह उससे नहीं उठी। यह कैसे हुआ ? योगबल ही से न !

यह बात सबको माननेनी पड़ी।

इतने में मनबोधराम ने आकर फकीरचन्द से कहा "बेटा, एक बार भीतर चलो"।

गृह के भीतर स्त्रियों के निवासभवन में जाने की सम्भावना पहिले फकीरचन्द की बुद्धि में नहीं आई थी। अब वृद्ध की बात सुनते ही सहसा वज्रपात के समान उसके मस्तिष्क में घुस गई। बहुत देर तक चुप रह कर और महल्लेवालों के अनेक अन्याय परिहास को सहकर अन्त में वह बोला "बाबा ! मैं सन्यासी होगया हूं। मैं अन्तःपुर में नहीं जा सकता"।

इसपर मनबोधराम ने सब लोगों से कहा, "महाशयो ! जब ऐसी बात है तो आप लोग कृपा कर एक बार बाहर चले जाइए। बहुओं को मैं यहीं लिए आता हूं। वे बहुत व्याकुल हो रही हैं"।

सब लोग उठ गए। फकीर ने सोचा मैं भी इसी अवसर में चल खड़ा होऊं। परन्तु तुरन्त यह सोच कर चुपचाप खड़ा रहा कि बाहर जाते ही गांव के सब लोग मेरे पीछे कुत्तों की भांति पड़ जांयगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माखनलाल की दोनों स्त्रियां ज्यों ही उसके सामने आईं त्योंही फकीरचन्द ने साष्टांग दण्डवत करके कहा माता, मैं आप लोगों का पुत्र हूं।

बस, तुरन्त उसके नाक के सामने, कङ्कन पहिरा हुआ एक हाथ खड्ग के समान आ लपका और टूटी हुई कांसे की थाली जैसे बजती है उसी प्रकार के स्वर से एक स्त्री बोल उठी "क्यों रे! तूने किसको माता कहा?"

उसी क्षण एक दूसरा कण्ठस्वर दो सुर और ऊपर को चढ़ कर मुहल्ले भर को कँपाकर झङ्कार उठा "तेरी आंखें फूट गई हैं? तू मरता क्यों नहीं"?

फकीरचन्द को अपनी स्त्री के पास ऐसी ठेठ हिन्दी सुनने का अभ्यास नहीं था। इससे बड़ा कातर हो कर वह हाथ जोड़ कर बोला "आप लोग भूल रही हैं। मैं उजाले में खड़ा होता हूं। मुझे अच्छी तरह देख लीजिए"।

प्रथमा और द्वितीया दोनों साथ साथ बोल उठीं "हां, हां, बहुत देखा है। देखते देखते आंखें घिस गई हैं। तुम छोटे से बच्चे नहीं हो। आज नए नहीं जनम हो। तुम्हारे दूध के दांत बहुत दिन हुए टूट गए। तुम्हारे उमर का क्या कुछ ठिकाना है? यमराज तुम्हें भूलगए हैं, हम नहीं भूली हैं"।

इस भांति एक तरफ़ा दाम्पत्य आलाप कब तक चलता, यह विचार करना कठिन है; क्योंकि फकीरचन्द सम्पूर्ण बाकशक्तिरहित होकर सिर नीचा किए खड़ा था। ऐसे समय बहुत गुल गपाड़ा सुनकर और गृह के बाहर भीड़ बहुत जमते देख कर मनबोधराम वहां पर आया। कहने लगा "आज तक मेरा घर निस्तब्ध था, कोई चूं तक शब्द नहीं करता था। आज जान पड़ता है कि मेरा माखन घर आगया है"।

फकीरचन्द ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज! अपनी पतोहुओं के हाथ से मेरे प्राण बचाइए"।

मनबोधराम-"बेटा, बहुत दिनों में आज घर आए हो इसीसे पहिले पहिल कुछ अनकुस मालूम पड़ता होगा। तो बेटिओ, अब तुम लोग जाओ। माखन मेरा तो अब यहीं रहेगा, उसे अब किसी भांति नहीं जानें देंगे"।

दोनों स्त्रियां जब बिदा हो गईं तो फकीरचन्द ने मनबोधराम से कहा "महाशय, आपका पुत्र जिस कारण से गृहस्थी छोड़ गया है मुझे उसका ज्ञान अच्छी रीति से हो गया। महाशय, मैं आपको प्रणाम करता हूं। मैं अब चला"। उसे जाते देख बुड्ढा ऐसे उच्चस्वर से रोने लगा, कि मुहल्ले के लोगों ने समझा कि माखन अपने पिता को मार रहा है। हैं! हैं! करते हुए सबके सब फिर आंगन में घुस पड़े और फकीर से कहने लगे कि अब तुम्हारे पाखण्ड से काम न चलेगा। भले आदमियों की नाईं चुपचाप रहो तो अच्छा, नहीं तो तुम्हारी भी पूरी पूरी खबर ली जायगी। एक मनुष्य ने कहा "आप परमहंस नहीं हैं, परम बगुला हैं!"

जब फकीरचन्द पिता के यहां गम्भीर मूर्ति को गलमुच्छे और गलाबन्द से सुशोभित रखता था उस समय उसे कभी ऐसी ऐसी कुत्सित कथाएं नहीं सुननी पड़ी थीं। परन्तु वह फिर भाग न जाय इसलिये सब लोग बहुत सावधान हो गए। स्वयं गांव के ज़मींदार भी मनबोधराम का पक्ष लेने लगे।

[६]

फकीरचन्द ने देखा कि पहरा इतना कड़ा बैठा है कि मृत्यु के पहिले ये लोग उसे कभी घर के बाहर नहीं होने देंगे। इसलिये चुपचाप बैठा बैठा वह गाने लगा—

मुक्तिपन्थ बतलावें साधू उसको क्यों नहिं माना रे!

यहां इसके कहने का कुछ प्रयोजन नहीं है कि भजन का आध्यात्मिक अर्थ इस समय बहुत क्षीण हो गया था।

अस्तु, यों भी किसी भांति समय कट ही जाता। परन्तु माखनलाल के लौटने का समाचार पाकर दोनों स्त्रियों के नाते से साले और सालियों की एक पलटन की पलटन आ पहुंची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लोग आतेही पहिले तो फकीरचन्द की मोछ दाढ़ी पकड़ पकड़ कर खींचने लगे। कहने लगे यह कुछ सच मुच की दाढ़ी थोड़े ही है। इसने ढोंग करके मुंह पर बहुत से बाल चिपका लिए हैं। इस भांति नाक के नीचे के बाल पकड़ पकड़ कर खींचने से फकीरचन्द के समान बड़े बड़े महात्मा पुरुषों के लिये भी अपना माहात्म्य रक्षा करना कठिन हो जाता है। इसके सिवाय कान पर भी उपद्रव हो रहा था। सचमुच कनैठी देने के उपरान्त लोग विशेष कर ऐसी ऐसी भाषा सुना रहे थे कि जिन्हें सुनने से न ऐंठने पर भी कान आप ही लाल हो जाते हैं। कोई कोई साधू को ऐसे ऐसे भजन गाने की आज्ञा देने लगे कि आधुनिक बड़े बड़े पण्डित लोग भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए हार जाते हैं। सोते, जागते, भोजन करते, सब समय इन सम्बन्धियों ने फकीरचन्द का नाक में दम कर दिया। वह विचारा क्रोध से भर कर कभी दुखी होने और कभी चिल्लाने और धमकाने लगा, परन्तु उपद्रवियों के मन में भय का कुछ भी सञ्चार न हुआ। वरन् सर्वसाधारण के पास वह अधिकतर हास्यास्पद ही हुआ। इन सबके ऊपर किवाड़ों की ओट से कभी कभी एक मीठे स्वर की हंसी सुन पड़ती थी। वह स्वर परिचित सा जान पड़ा और उसे सुन सुन कर फकीरचन्द दुगना अधीर होने लगा।

परिचित स्वर पाठक का अपरिचित नहीं है। मनबोधराम किसी दूर के नाते से कल्याणी के मामा थे। मातृपितृहीना कल्याणी ससुराल में जब बहुत क्लेश उठाती तो किसी न किसी बहाने वह अपने कुटुम्बियों के घर चली आती थी। आज बहुत दिन पीछे अपने मामा के घर आ कर वह नेपथ्य से परम कौतुकमय अभिनय को देख रही थी। उस समय उसकी स्वाभाविक रङ्गप्रियता के साथ ही प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति भी उभड़ आई थी कि नहीं, इस बात को चरित्रतत्वज्ञ पण्डित लोग समझ लें। हम इसके विचार करने में असमर्थ हैं।

परिहास सम्पर्की लोग तो कभी कभी चुप भी हो जाते थे, परन्तु स्नेहसम्पर्की जनों के हाथ से छुटकारा मिलना कठिन था। सात कन्या और एक पुत्र एक क्षण भर भी उसे नहीं छोड़ते थे। पिता के स्नेह पर अधिकार जमाने के लिये उनकी माताओं ने उन्हें उसके पास से पल भर नहीं हटने दिया था। तिसपर दोनों माताओं में टक्कर चल रही थी, दोनों चाहती थीं कि मेरी ही सन्तति को पितृस्नेह का अधिकतर भाग मिले। दोनों दल मिल कर उसके गोद में बैठ कर, उसका गला पकड़ कर, मुख चूम कर, तथा अन्य नाना उपायों से प्रबल-स्नेह-प्रकाश के कार्य्य में एक दूसरे को जीतने की चेष्टा करने लगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फकीरचन्द का स्वभाव यदि अत्यन्त निर्लिप्त न होता तो अपनी सन्तान को भी बिना दुःखद्वन्द के छोड़कर वह कभी नहीं जा सकता था। बालकगण भक्ति को नहीं पहिचानते हैं और न उन्होंने साधुत्व की ही मर्यादा सीखी है, इसलिये फकीरचन्द शिशुजाति के प्रति तिलमात्र भी अनुरक्त नहीं होता था। वह उन्हें कीट पतङ्गों की नाईं अपनी देह से दूर ही रखना चाहता था। इस समय वह रात दिन शिशुरूपी टिड्डियों के दल से आच्छादित हो कर बर्जाइस अक्षर* के छोटे बड़े नोटों से साद्योपान्त समाकीर्ण ऐतिहासिक प्रबन्धों की नाईं शोभायमान हुआ। अनेक समय शुद्ध शुचि फकीरचन्द की आंखों से आँसू निकल पड़ते, पर वे कदापि आनन्दाश्रु नहीं थे।

पराए बालक बालिका जब नाना सुरों से 'पिता' कह कह कर उसे आदरसहित पुकारने लगते, उस समय उसके जी में आता था कि उन्हें ऐसा मारे कि वे मरही जांय। परन्तु डरके मारे कुछ नहीं कर सका, आँख भौं चढ़ाकर मुंह टेढ़ा करके चुपचाप बैठा ही रहा।

---

* एक प्रकार के छोटे टैप का नाम है, जो बहुधा फुटनोट आदि छापने में लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७]

अन्त में वह बहुत गुल गपाड़ा माचने लगा और बोला कि "मैं जाता हूं, देखूं कौन मुझे रोकता है"। तब सब गांववाले एक मुखतार को बुला लाए। मुखतार ने आकर कहा "आप जानते हैं कि आपकी दो स्त्रियां हैं।"

फ–जी, यह मैंने आज पहिले पहिल सुना।

मु—और आपकी सात कन्याएं और एक पुत्र हैं। दो कन्याएं उनमें से विवाह के योग्य हैं।

फ—जी, मैं देखता हूं कि आप मुझसे भी बहुत अधिक जानकारी रखते हैं।

मु—इस भारी परिवार के पालन पोषण का भार यदि आप अपने ऊपर न लें तो आपकी दोनों अनाथिनी स्त्रियां अदालत का आश्रय लेवेंगी। यह मैं आपको पहिले से जताए देता हूं।

अदालत के नाम से फकीरचन्द बहुत डरता था। वह जानता था कि वकील लोग ज़िरः करने के समय महापुरुषों की मान मर्य्यादा वा उनके गाम्भीर्य का कुछ भी आदर नहीं करते। प्रकाश में वे उनका अपमान करते हैं और सम्वादपत्रों में भी छपवा देते हैं। फकीरचन्द नेत्रों में आंसू भर कर मुखतार महाशय से अपना विस्तारित परिचय कहने लगे। मुखतार सुनकर उसकी चतुराई, उपस्थित बुद्धि और मिथ्या कहानी रचने की असाधारण क्षमता की बारम्बार प्रशंसा करने लगा, जिसे सुन फकीर के जी में यों आने लगा कि आप अपने हाथों अपने प्रान ले डालूं तभी अच्छा है।

मनबोधराम फकीरचन्द को फिर भागने में तत्पर देखकर शोक से अधीर हो रोने लगा। इस कारण टोलेवाले सब लोग चारों ओर से उसे मनमानी गालियां देने लगे। और मुखतार ने उसे ऐसा डराया कि उसके मुख से फिर कोई शब्द तक नहीं निकला।

इन सबके ऊपर आठ आठ बालक बालिकाओं के गाढ़े स्नेह ने उसे चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया था कि विचारे का दम घुटने लगा। तब उसकी विपत्ति को देखकर ओट में बैठी हुई कल्याणी यह ठीक न विचार सकी कि वह हँसे अथवा रोवे।

कई दिन जब इसी भांति बीत गए, और जब प्राण बचने का कोई और उपाय न रहा तो फकीरचन्द ने एक पत्र द्वारा अपने पिता को अपना यथार्थ समाचार लिख भेजा। उसके पिता पत्र के पढ़ते ही तुरन्त चले आए। परन्तु टोलेवाले और जिमीदार, मुखतार, आदि कोई उसपर से अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहते थे। उन लोगों ने सब भांति से प्रमाणित कर दिखाया कि यह सन्यासी माखनलाल को छोड़ दूसरा और कोई नहीं है। यहां तक कि जिस दासी ने माखनलाल को शिशुकाल में गोद में लेकर खिलाया और पालन किया था, उस बुढ़िया तक को वे पकड़ लाए। उसने अपने कांपते हुए हाथों से फकीरचन्द की ठुड्डी पकड़ कर बड़ी बेर तक उसके मुख को निरीक्षण कर उसकी दाढ़ी पर आंसू की धारा बहा दी।

जब देखा कि फकीर अब भी राह पर नहीं आया, तो घूंघट से मुख छिपाकर माखन की दोनों स्त्रियां वहां आ पहुंचीं। सबलोग चट पट बाहर उठ गए। केवल दोनों पिता, फकीर और शिशुगण वहां पर रहे।

स्त्रियां हाथ हिला हिला कर दोनों ओर से पूछने लगीं "किस भाड़ में, यमराज की कौनसी गुफा में जाने को जी चला है?"

फकीर इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर न सोच सका, इस कारण निरुत्तर रहा। परन्तु उसके भावों को देखकर ऐसा कुछ नहीं जान पड़ा कि वह किसी विशेष यमगुफा का पक्षपाती था। इस समय कोई भी गुफा उसे मिल जाती तो उसके प्राण बच जाते। तब एक और स्त्री की मूर्ति वहां पर आई और उसने फकीर के चरणों में प्रणाम किया। फकीर पहिले तो अचरज से अवाक् हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, परन्तु तुरन्त आनन्द से उछल कर बोल उठा "अरे, यह तो कल्याणी है !"

इससे पहिले कभी अपनी अथवा पराई स्त्री को देख उसके मन में इतना प्रेम प्रकाशित नहीं हुआ था। उसने समझा कि मूर्त्तिमती मुक्ति आकर आप साक्षात् खड़ी हो गई है।

ठीक इसी समय एक और मनुष्य दुशाला ओढ़े हुए वहां पर सिर बढ़ाकर ताक रहा था। उसका नाम था माखनलाल। एक अपरिचित निरीह मनुष्य को अपने पद पर अभिषिक्त देख कर उसे एक अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था। परन्तु जब कल्याणी को सामने आते देख कर उसे जान पड़ा कि यह मनुष्य उसीका बहनोई है, तो दया-परतन्त्र होकर सबके सामने आकर वह बोला, "नहीं, अपने कुटुम्ब को इस भांति विपद में डालना महापातक का कार्य है। दोनों स्त्रियों की ओर दिखा कर उसने कहा "यह मेरी गगरी है और यह मेरी रस्सी"*। माखनलाल के इस असाधारण महत्व और वीरत्व से गांव भर के सब लोग आश्चर्यित हो गए। †

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

एनलार्जिंग वा प्रवर्द्धित चित्रण

नेगेटिव से इच्छानुसार चित्र बढ़ा कर छापने को एन्लार्जमेन्ट वा वर्द्धित चित्रण कहते हैं। यह भी आलोक-चित्र-मुद्रण-प्रणाली की एक शाखा है। चित्र बढ़ाने के लिये एक स्वतन्त्र यन्त्र के लेने की आवश्यकता है जिसे एन्लार्जिंग एपारट्स (Enlarging apparatus) कहते हैं जो देखनेमें फोटो के क्यमरे के समान होता है, किन्तु इसके पीछे एक लालटेन लगी रहती है। हमारे पाठकों में से बहुत से ऐसे महाशय होंगे जो मैजिक लालटेन के छाया चित्र के खेल से परिचित हों। यह एन्लार्जिंग एपारटस भी उसीके समान होता है, किन्तु यह मैजिक लान्टेन की अपेक्षा उत्तम रीति से बना रहता है। इसके पीछे लालटेन में एक लम्प जलता रहता है और उसके सामने एक शीशा लम्प के समान लगा रहता है। इन्हीं दोनो मध्यवर्त्ति स्थान के मध्य में ६-७-इञ्च के व्यास का एक बड़ा लेन्स वा कन्डेन्सर लगा रहता है। इसी कन्डेन्सर की ओर सामने वाले लेन्स के मध्य में तुम्हें अपने छोटे नेगेटिव को रखना होगा।

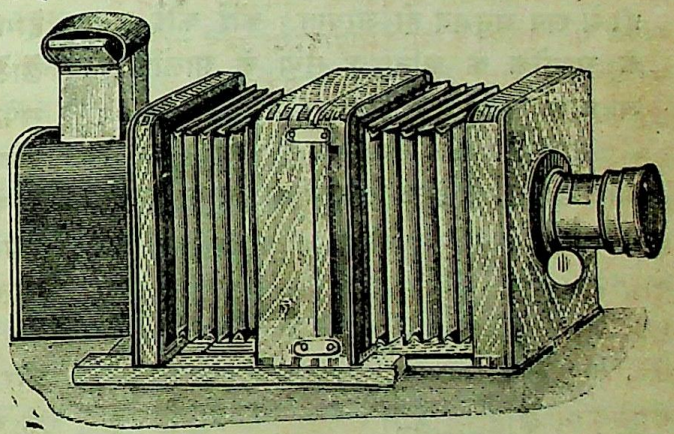

एक अंधेरे मकान में एक टेबिल पर वा त्रिपाई पर अपने एन्लार्जिंग एपारेटस को रक्खो और उस के सामने की दीवाल में एक ड्राइङ्ग बोर्ड Drawing Board अर्थात् चौकोने तखते को काँटों से जड़ कर वा कड़ी से लटका कर, और उसके ऊपर एक सादा काग़ज़ लगा कर उक्त यंत्र से उसके ऊपर चित्र को पातित करो और लेन्स की सहायता से फोकस को ठीक करो। जब छाया काग़ज़ पर

---

* यह बङ्गभाषा का एक चलित प्रवचन है। अर्थ—इस रस्सी से इस गगरी को गले में बांध कर गङ्गा जी में डूब मरूंगा। इससे मेरा पिण्ड नहीं छूटने का। लोग प्रायः ग्लानि दिलाते समय कहते हैं कि 'गले में रस्सी और घड़ा बांध कर डूब मरो'॥

† बङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लिखी कहानी का अनुवाद उनकी सम्मति से प्रकाशित हुआ, इस कारण उनको धन्यवाद है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोक्त नेगेटिव के समान स्पष्ट दिखाई पड़े तब उस यन्त्र को हटाना बढ़ाना नहीं चाहिए। इसी छाया को बड़ी वा छोटी करने के लिये यन्त्र क्रम से सामने की ओर पीछे को हटा लेना उचित है। जब इच्छानुसार बड़ी और स्पष्ट हो जाय तब काले रंग के शीशे की आवरणी वा कैप से लेंस का मुंह बन्द कर दो। अब बढ़ाए हुए चित्र की छाया के बराबर बोमाइड पेपर (Bromide paper) * को उक्त बोर्ड पर ड्राइंग पिन् (Drawing pin) से लगा कर और कैप खोल के उसे एक्सपोज अर्थात् आलोकित करो। नेगेटिव की घनता (Deepness) के अनुसार एक्सपोज अधिक और कम करना पड़ता है। यद्यपि एक्सपोज करने के नियमों को लिख कर किसी व्यक्ति को हृदङ्गम कराना बड़ा ही कठिन है, तथापि साधारणतः एक्सपोज ५ से दस मिनट तक करना आवश्यक है।

इसका कुछ दिनों तक अभ्यास करने से सहज ही में सब अनुभव हो जायगा। कोई कोई लम्प के आलोक के अतिरिक्त सूर्य्य के आलोक की सहायता से भी एन्लार्ज करते हैं।

नीचे जो चित्र दिया गया है इससे सूर्य्यालोक की सहायता से इन्लार्ज करने का उपाय दिखाया गया है।

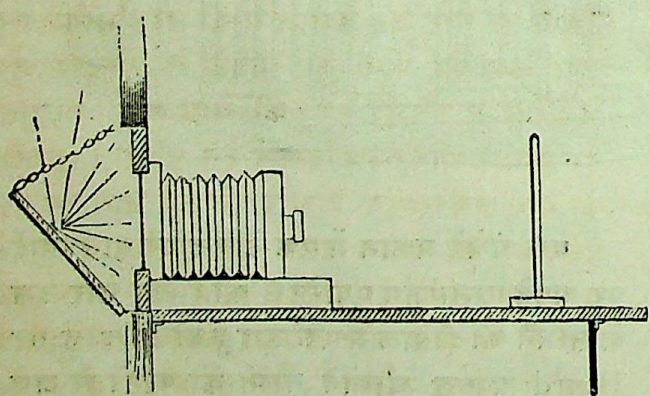

सूर्यालोक से चित्र प्रवर्द्धित करना

अंधेरी कोठरी के मध्य में लाल रोशनी के लिये जैसे स्थान खुला रहता है, अथवा किसी किस किवाड़ों में कोठरी में चांदना पहुंचने के लिये छोटी सी खिड़की बनी रहती है, ऐसे द्वार का परिमाण चारों ओर से सात इञ्च रहने से वह कार्योपयुक्त हो सकता है। ऐसे द्वार के सामने अन्धेरी कोठ के मध्य में एक कन्डेसर रक्खो। यदि कन्डेसर न तो एक घिसा हुआ शीशा वा ground gla रख देना चाहिए, और इसी कन्डेसर के सा एक क्यामरा रक्खो, जिसके पीछे का भाग छोटे से छिद्र की ओर रहे और लेन्स अथवा क्या का मुख उपर्युक्त कोठरी के भीतर की ओर रहे पीछे क्यमरे के साथ जो ग्राउण्डग्लास रहता है को हटाकर वा खोल कर डार्क स्लाइड के दोनों के स्लाईड को हटाकर दरजा खोलकर जैसे उस प्लेट रखते हैं, वैसेही अपने प्रवर्द्धित करने चित्र का नेगेटिव उसमें रक्खो। ध्यान रहे नेगेटिव के फिलम का मुख लेन्स की ओर रख होगा। अब तुम्हें उक्त कोठरी के बाहर की छोटे दरवाज़े के सामने एक सफ़ेद कपड़ा सफेद काग़ज़ धूप में टांगना होगा कि जिस उजेला उपर्युक्त द्वार पर अच्छी तरह पड़े और से कोठरी के भीतर ग्राउण्ड ग्लास पर से हो हुआ नेगेटिव और लेन्स को भेद कर कोठरी भीतर दीवार पर पड़ सके। अब पुनः भीतर ज इस आलोक की सहायता से क्यामरे और ले द्वारा अपने चित्र को प्रवर्द्धित करो। पहि के रक्खे हुए क्यमरे और लेन्स से कुछ दूर एक स्टैण्ड पर एक पीसबोर्ड खड़ा करके काग़ज़ उसपर लगा दो। इस समय तुम्हारे प्र द्धित करनेवाले चित्र का प्रतिबिम्ब उसपर पड़े जिसपर तुम सावधानी से फोकस करके देख कि पूर्वोक्त नेगेटिव के आवश्यकीय भाग का तद्वत् आ रहा है अथवा नहीं। जब छाया स्प दीख पड़े तब समझ लेना चाहिए कि अब ठीक फोकस हो गया। इसमें और किसी यंत्र सहायता की आवश्यकता नहीं है।

* इसमैन का ब्रोमाइड पेपर उत्तम होता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे एक बड़े तालाब में से एक छोटे तलाब में जल भेजने के लिये एक मार्ग अर्थात् नाली बनानी पड़ती है और उसी नाली के द्वारा छोटे से लेकर बड़े और बड़े से छोटे में पानी जासकता है, उसी प्रकार उसी लेन्स तथा क्यामरे से छोटे नेगेटिव से बड़ा नेगेटिव और बड़े नेगेटिव से छोटा नेगेटिव बन सकता है। इसका कारण यही है कि जितने समीप से चित्र लिया जायगा उतनी ही बड़ी तसवीर आवेगी और जितनी दूर से उतारी जायगी उतनही छोटी आवेगी।

इस समय अंधेरी कोठरी में फोकस करो और जब तुम्हारा फोकस ठीक होजाय तब कमरे के लेन्स पर लाल शीशे की आवरणी से (कैप से) उसका मुख बन्द करके तब उपर्युक्त बोर्ड पर ब्रोमाइड पेपर लगाओ और आलोक का तेज समझ कर ४-५ सेकेण्ड तक आलोकित अथवा एक्सपोज करो। इसी प्रकार से पहिले छोटे छोटे काम करने से क्रमशः इसके विषय का विशेष ज्ञान भी स्वतः आजायगा। नेगेटिव का फिलम मोटा होने से उसको देरी तक आलोकित करने से और यदि फिलम पतला हो तो थोड़ी देर तक आलोकित करने से उत्तम चित्र उतरेगा। बिना २-३ टुकड़े ब्रोमाइड पेपर के खराब किए इसके एक्सपोज़ करनेके समय का हृदयङ्गम होना कठिन है। इसका भी ध्यान रखना चाहिए, कि जिस समय इसके उतारने का काम होता हो, उस समय किसी और स्थान से सफेद उजेला न आता हो, यदि कोई ऐसा स्थान हो तो उसे प्रथम बन्द करदेना चाहिए।

चित्र के एक्सपोज़ होने के पीछे ड्राइंगपिन को खोलकर उसी अंधेरी कोठरी में ही डेवेलप इत्यादि कार्य करलेना उचित है।

डेवेलपर वा परिस्फोटक अरक

१	ओक्सलेट आफ पोटास (Oxlate of Potash)	१ आउंस
	सलफ्यूरिक एसिड (Acid sulphuric)	१ बूंद
	गरम जल	३ आउंस
२	प्रोटो सल्फ आफ आयरन (Proto sulf of iron)	१ आउंस
	सलफ्यूरिक एसिड	२ बूंद
	गरम जल	२ आउंस
३	ब्रोमाइड पटासियम	½ ड्राम
	जल	२ आउंस

क्लियरिंग सोल्यूशन

४	साइट्रिक एसिड	१ ड्राम
	जल	२४ आउंस

फिक्सिंग सोल्यूशन

५	हाइपो	३ आउंस
	जल	३२ आउंस

इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बना कर अलग अलग बोतलों में रख लेना चाहिए। डेवलप करते समय १ नं० की बोतल से ३ आउन्स, २ नं० की बोतल से ½ आउन्स और ३ नं० की बोतल से ३० बून्द एक शीशे के ग्लास में उलट लो और एक बड़ी डिश में एक्सपोज किए हुए ब्रोमाइड पेपर के फिलम के भाग का मुख ऊपर कर के साफ जल में भिगो दो और जब कागज अच्छी तरह भींगले तब उस जल को फेंक कर पहिले से मिलाए हुए डेवेलपर से डेवेलप करने की चेष्टा करो। थोड़ीही देर में धीरे धीरे चित्र दिखाई देने लगेगा। छायांश का भाग जब सम्पूर्ण दिखाई देने लग जाय तब इस डेवेलपर को अलग उलट कर पूर्वोक्त ४ नं० के अरक से उसको धो डालो। इसमें यह आवश्यक नहीं है कि जैसे प्लेट डेवेलप करने के पीछे साफ पानी से धोना उचित है, वैसे ही ब्रोमाइड कागज को पानी से धोने की कोई आवश्यकता नहीं है, वरन् साथही क्लियरिङ्ग सोल्यूशन से धो डालो। इस अरक को अदल बदल कर दो तीन वार धोना अच्छा है और प्रत्येक बार २ मिनिट तक कागज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरक में रहना उत्तम है। पुनः सम्पूर्ण रूप से शुद्ध जल से धोकर पीछे ५ नं० के अरक से १० मिनिट तक धोकर फिक्सड कर लो। उपर्युक्त सम्पूर्ण क्रिया के कर लेने के पीछे क्रमागत दो घण्टे तक पानी से धो लेने के अनन्तर सुखा कर कार्ड पर मौन्ट अथवा चिपका दो। इस प्रकार के प्रवर्द्धित चित्र को सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न करने के लिये साधारण ड्राईंग अर्थात् अङ्कन विद्या का जानना परम आवश्यक है, क्योंकि इसके असम्पूर्ण स्थान को क्रेयन पिन्सिल (Crayon Pencil) से वा चीन की स्याही (China Ink) से पूर्ण करना पड़ता है। अर्थात् इस चित्र में जहां पर अधिक काला होगया है वा कोई कोई स्थान स्पष्ट नहीं आया है वहां वहां पेंसिल या स्याही से सुन्दर और स्पष्ट करना पड़ता है।

यहां पर ब्रोमाइड पेपर के विषय में कुछ थोड़ा और भी कहना शेष रह गया है, जिसे हम आप लोगों के सन्मुख निवेदन करते हैं। ब्रोमाइड प्रिण्ट यदि अधिक काला हो जाय तो कार्ड पर चिपकाने के पहिले थोड़ा सा साईनाइड आफ पोटासियम (जितने में कागज डूब सके) जल में घोल कर और उसे एक डिश में उलट कर अपने चित्र को डुबोकर थोड़ी देर तक हिलाते रहो। इस अरक में कागज डुबाने के प्रथम उसको पानी में भिगो लेना चाहिए। यद्यपि प्रिंट का रंग उत्कृष्टता का काला तो नहीं होगा, तथापि एक डिश में ५-७ बूंद गोल्ड सेल्यूशन जिसमें कागज डूब सके, इतने पानी में मिला कर और उसे एक दूसरी डिश में उलट कर उसमें अपने प्रिण्ट को धोओ, थोड़ी ही देर में चित्र का सुन्दर काला रङ्ग हो जायगा।

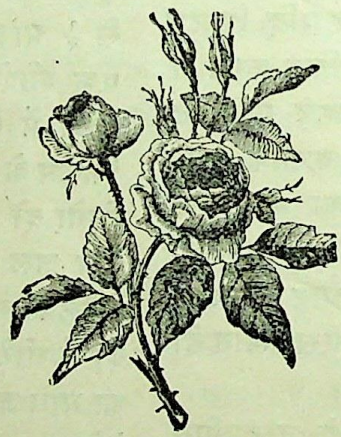

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] जुलाई १९०१ ई० [संख्या ७

विविध वार्त्ता

सुदर्शन मासिकपत्र के सुयोग्य सम्पादक ने मार्च की संख्या में यह प्रस्ताव किया है कि व्यास अम्बिकादत्त के स्मरणार्थ एक "व्यास पुस्तकमाला" नाम से पुस्तकावली प्रकाशित की जाय जिसमें हिन्दू शास्त्रों के अनुवाद छपाकरें तो एक पन्थ दो काज हो जांय—इधर व्यास जी का स्मारक स्थापित हो जाय और उधर जनसाधारण में हिन्दूशास्त्रों का प्रचार हो जाय। वास्तव में व्यास जी का स्मारक इससे उत्तम और दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके जीवन का विशेषांश मातृभाषा या निज सनातन धर्म्म की सेवा ही में बीता था। अतएव उनके लिये ऐसाही स्मारक होना चाहिए जिसमें दोनों बातें मिली रहें। इस पुस्तकमाला के प्रकाश से मातृभाषा के भण्डार की पूर्ति और धर्म्म विषयक ग्रन्थों का पूर्ण प्रचार हो जायगा, जिससे समय पाकर भारतवासियों को अपने वास्तविक धर्म्म का सच्चा ज्ञान हो सकता है, और बहुत सी कुरीतियां और कुविचार जो इस समय इनमें प्रचलित हो रहे हैं, क्रमशः दूर हो जांयगे। इन्हीं कारणों से हम सुदर्शन-पत्र-सम्पादक के प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करते हैं। वे इस पुस्तकमाला के प्रबन्ध के विषय में लिखते हैं कि "यदि इस कार्य्य को काशी नागरीप्रचारिणी सभा उचित रीति से सम्पादन करने में बद्धपरिकर हो तो उसे धार्म्मिक हिन्दू महाशयों से सहायता की पूर्ण आशा करनी उचित है।" हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं। कारण इसका यही है कि सभा का सम्बन्ध धर्म्मसम्बन्धी विषयों से कुछ भी नहीं है और इस पुस्तकमाला के सम्पादन करने में बिना उसमें हस्तक्षेप किए काम न चलेगा। अतएव इसका दूसरा प्रबन्ध होना उचित है। भारतवर्ष में इस समय ऐसी अनेक धर्मसभाएं वर्तमान हैं जिनके केवल नाम और उद्देश्यों पर ध्यान देकर यह कहने में आता है कि यह काम उन्हीं को सौंपना चाहिए, पर जिनकी वास्तविक अवस्था को जानकर और उनका पूर्ण अनुभव यह पाकर कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल शुद्ध स्वार्थ को छोड़कर और उनमें कुछ नहीं है, यही सम्मति देनी उचित जान पड़ती है कि इन सभा समाजों और मंडलों से इस पुस्तक-माला का प्रबन्ध स्वतन्त्र होना उचित है। क्या सुदर्शन के सम्पादक एक छोटी सी कमेटी बनाकर और इस कार्य्य में अधिक सहायता देनेवालों को उसमें सम्मिलित करके इस कार्य्य को नहीं कर सकते ?

* *
*

उदयपुर से कुँवर जोधसिंह मेहता सम्वाद-वाहक पक्षियों के विषय में लिखते हैं कि—

"कबूतरों से तो बहुत दिनों से सम्वादवाहक का काम लिया जाता है परन्तु अब कौवों से भी यह काम लिया जाने लगा है। जरमनी के लोग कौवों को सम्वादवाहक का काम सिखाने लगे हैं। कहते हैं कि इस कार्य में उनको सफलता प्राप्त हुई है। युद्ध के समय कौवों से सम्वादवाहक का काम लेने में केवल इतना ही भय है कि कहीं ये अपना सिखलाया हुआ काम भूल कर दूसरे शिकारी पक्षियों के सङ्ग मिल न जावें और उनके साथ ये भी रणक्षेत्र में भोजन का आनन्द कहीं लूटने न लगें।

"बहुत से लोगों की सम्मति है कि युद्धकाल में मधुमक्खियों से भी पत्रवाहक का काम लेना चाहिए। कहते हैं कि इङ्गलिस्तान के पश्चिमी प्रान्त में कोई कृषक मधुमक्खियों से पत्रवाहक का काम लेने लगा है और उसमें वह कृतकार्य भी हुआ है। छत्ते से मधुमक्खी को पकड़ कर घर से अन्यत्र ले जाते हैं और उसकी पीठ पर एक कागज़ का टुकड़ा चिपका दिया जाता है जिसपर सुक्ष्म फोटोग्राफी (Microphotography) द्वारा बड़े सुक्ष्म अक्षरों में कुछ लिखा होता है। फिर वह मधुमक्खी छोड़ दी जाती है और वह उड़ती हुई वापस अपने छत्ते पर आने के लिये घर लौट आती है। मधुमक्खी का लघु आकार होने से किसीका उसे मार्ग में देख लेना वा रोकना असम्भव सा है। और यही कबूतरों तथा कौवों की अपेक्षा मधुमक्खी से पत्रवाहक का कार्य लेने में अधिकतर लाभ है जो रणक्षेत्र के लिये बड़ा उपयोगी है।"

* *
*

पहिली जनवरी १९०० ई० से लेकर ३१ दिसम्बर १९०० तक समस्त भारतवर्ष में ८८७ ग्रन्थ हिन्दी के प्रकाशित हुए, जिनमें से ५४८ पश्चिमोत्तर प्रदेश में, ११६ बङ्गाल में, ३१ मध्यप्रदेश में, ८ बम्बई में, १०१ पञ्जाब में और ६ अजमेर-मेवार में। इन ८८७ ग्रन्थों में से २२७ कविता के, १२८ शिक्षा विभाग सम्बन्धी, ११७ भिन्न भिन्न विषयों के, ११३ संस्कृत-अनुवाद, ९९ धर्म विषयक, ४१ उपन्यास, २८ अंग्रेजी अनुवाद, २५ अन्य भाषा के अनुवाद, २३ सामयिकपत्र, २० विज्ञानगणित आदि, १९ उर्दू हिन्दी, १६ नाटक, १० चिकित्सा, ८ इतिहास, भूगोल, ५ वेदान्त, ५ साहित्य और ३ जीवनचरित। इस अवस्था को देखकर हिन्दी के प्रेमीगण स्वयं जान सकते हैं कि हिन्दी की कैसी मन्द अवस्था है। इन पुस्तकों में से विशेष पुस्तकें ऐसी निकलीं कि जिन्हें पुस्तक कहना ही अन्यभाषा की पुस्तकों का उपहास करना है। विज्ञान तथा गणित आदि के २० ग्रन्थ निकले जिनमें अधिकांश स्कूली पुस्तकें और प्रश्नोत्तरिएं हैं। नाम लेने को भी एक ग्रन्थ नहीं है जिससे हिन्दी का गौरव हो सके। समस्त ग्रन्थों में से आधे से अधिक तो पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रकाशित हुए जो हिन्दी का वासस्थान माना जाता है, पर इस प्रान्त में हिन्दी के रसिक कितने हैं इसका अनुभव हमलोगों को बहुत अच्छा है। लेखकों में भी इतने महाशय हैं जो अँगुलियों पर गिने जा सकें और तिसपर विशेषता यह कि इन प्रसिद्ध लेखकों में से किसी एक ने भी दो चार प्रबन्ध लिखने के अतिरिक्त अपनी लेखनी को श्रम न दिया। यह अवस्था हिन्दी के लिये शुभ नहीं है। सामयिक पत्रों की संख्या २३ है। इसमें केवल त्रैमासिक, मासिक, तथा पाक्षिक पत्र सम्मिलित हैं। इन २३ में से १७ पश्चिमोत्तर प्रदेश में छपते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ये पत्र कौन कौन और कैसे हैं यह सब लोगों पर विदित है। हिन्दी को नाश करनेवालों और कवितादेवी के गले पर छुरी फेरनेवालों की संख्या ही अधिक है।

रोशन आरा

पहिला परिच्छेद

महानगरी दिल्ली में आज दिवाली की रात का महोत्सव है। कोई ऐसा हिन्दुओं का घर नहीं है जिसमें दीपावली की सजावट न हुई हो। जिधर देखो उधर ही जगमगा रहा है। मुसलमानों के घर में तो उत्सव का कोई चिन्ह नहीं है। हिन्दुओं में भी सबसे चढ़ बढ़ के दिवाली की सजावट राजा रतनचन्द के घर में है। उस समय रतनचन्द मानो हिन्दुस्तान भर के शासनकर्त्ता हो रहे थे। अबदुल्लाख़ाँ कुतुब-उल-मुल्क बादशाही प्रधान वज़ीर थे। सच तो यह है कि फर्रुख़शियर नाम मात्र के बादशाह थे। रतनचन्द वज़ीर के दाहिने हाथ थे। जितना काम काज था सबका भार वज़ीर ने राजा साहेब को सौंप रक्खा था। आज नीचे से ऊपर तक राजा का महल बिल्लौरी पात्रों में सुन्दर सुगन्धित चन्दन चमेली के तेल और काफूरी बत्तियों से देदीप्यमान हो रहा है। तृपौलिया पर अति चमकीली रंग बिरंगी रोशनी के चाँद सूरज जग मगा रहे हैं, जिनकी ओर निहारने से आँखों मे चकाचौंध लगती है। द्वारपर राजा के कर्म्मचारी हाथों में गुलाबपास अतरदान लिए आए हुए लोगों के ख़ातिर कर रहे हैं।

नगर में उत्सव का और विशेष कोई चिन्ह देखने में नहीं आता है। दर्शक रोशनी देख देख डरते हुए अपने अपने घरों को लौट रहे हैं। उस समय सब लोग अपनी अपनी हथेली पर प्राण लिए रहा करते थे, क्योंकि कब किसके भाग में क्या है इसका खुटका प्रायः सबही के जी में लगा रहता था। जब से फ़र्रुख़शीयर तख़्त पर बैठा था, तब ही से नगर मे खून खराबा मचा हुआ था। इसीसे नगर में उदासी सी छा रही थी। बस जो लोग अबदुल्ला ख़ाँ के कृपापात्र थे वेही बेखटके थे। इसीसे राजा रतनचन्द के यहां आज दिवाली का त्योहार धूमधाम से मनाया गया है।

दुमहले के सजे हुए दीवानख़ाने में महफ़िल बैठी है, तायफ़े का नाच हो रहा है। राजा रतनचन्द मख़मली मसनद पर आराम से बैठे हुए थे कि कई एक नौकर दौड़े हुए आके बोले—महाराज! स्वयम् अमीर-उल-उमरा कुतुब-उल-मुल्क बाहर खड़े हैं। यह सुनते ही राजा साहेब गीत सुनना छोड़ चट पट बाहर आ उपस्थित हुए। वज़ीर पालकी के अन्दर थे। रतनचन्द बाँयां हाथ पालकी की छत्त पर रख और झुकके बड़े अदब से लम्बी सलाम करके बोले "ताबेदार को क्या खुशनसीबी है कि खुद हुजूर ताबेदार के ग़रीबख़ाने पर रौनक़ अफ़रोज हुए?" वज़ीर पालकी के बाहर निकल रतनचन्द के कंधे का सहारा ले मकान के अन्दर गए और बोले "मुझे तुमसे तख़लिए में कुछ कहना है"।

जिस दालान में महफ़िल थी वहां न ले जाकर एक निराले स्थान में राजा वज़ीर को लिवा ले गए। वज़ीर को बैठा राजा दस्तबस्तम् सामने खड़े रहे।

वज़ीर ने कहा—"रतनचन्द! इस वक़्त मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हो रहा है। जो तकलीफ़ मुझे हो रही है ज़बान को ताक़त नहीं है कि मैं उसका तुमसे बयान करूं"।

राजा ने मुस्करा के अर्ज़ की—"हुजूर को तो दो दिन भी आराम से नहीं बीतते, न जाने फिर किस खुशनशीब के तेग़ेनजर ने हुजूर के जिगर पर ज़ख़म पैदा किया है।"

औरतों के इश्क के लिये वज़ीर हमेशः बदनाम थे। नित्य नए प्रेम में फंसा करते थे, नित्य नई प्रेमिका की खोज रहा करती थी। वज़ीर के चरित्र को राजा खूब समझे हुए थे, इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलेजा नित्य हज़ार टूक हो जाता और चट मरहम पट्टी करके जुड़ भी जाया करता था। उनकी बात सुन राजा कुछ चकित या विस्मित न हुए, केवल इतना ही बोले "अब किसका नसीबा जगा?"

वज़ीर अपनी छाती पर हाथ रख एक ठण्डी सांस खींच के बोले—अब की सहज सी बात नहीं है। बेतरह चोट खाई है। कौन है, क्या नाम है, कुछ भी पता नहीं है। फ़क़त इतना ही मालूम है कि है वह तुम्हारी परोसिन।

वज़ीर की बात सुन राजा चौंक और जी में कुछ डर कर सोचने लगे किसका भाग फूटा। दिखलौआ हँसी हँस के वे बोले—मैं तो नहीं जानता, मेरे मकान के नज़दीक कौन सी हूर रहती है, मुझे तो उसकी कुछ भी ख़बर नहीं है"।

अबदुल्ला ख़ाँ बोले—भला तुम्हें तरजुमा करने से फ़ुरसत कहां कि हूरों की खोज रक्खो! मेरे साथ आओ। तुम्हारे घर के पिछवाड़ेवाली गली जहां से दिखाई देती है वहां मुझे ले चलो।

राजा रतनचन्द वज़ीर को साथ ले तिखने पर चढ़ एक छोटी सी कोठरी में घुसे। उसके अन्दर जा वज़ीर ने सामने का दिया बुझा दिया। इस पर राजा ने वहां के सब दिए बुझा दिए। जब ख़ूब अँधेरा होगया तब धीरे धीरे वज़ीर ने एक झरोखा खोला। मार्ग की दूसरी ओर एक तिखना मकान था, उसमें दीपावली नहीं थी। कदाचित् किसी मुसलमान का घर होगा। उस मकान का भी एक झरोखा खुला हुआ था। उस झरोखे में एक नवयौवना सुन्दरी खड़ी थी। एक एक बेर राजा रतनचन्द के मकान की सजावट निहारती थी, जिससे असंख्य प्रदीपों का उजेला उसके मुखचन्द पर पड़ता था। उस समय वज़ीर ने अँगुली उठा के राज रतनचन्द से कहा—"वह देखो!"

रतनचन्द ने भी उसकी ओर देखा। जिस समय प्रदीपों का उजेला उसके मुँह पर पड़ता था तो वह चट पीछे हट जाया करती थी। इससे बहुत देर तक राजा ने उसे नहीं देख पाया, पर जो देखा उससे वज़ीर के जी की बेकली समझ गए। वह एक महीन बहुमूल्य ओढ़ना ओढ़े हुए थी जिसकी कोर पर मोतिओं की झालर टकी हुई थी। उसके वस्त्र ऐसे महीन थे कि देह पर सट जाने के कारण उसके अंग प्रत्यङ्ग की बनावट साफ मालूम होती थी। गोल चमकीला चेहरा और सुन्दर ललाट पर घूंघरवाली लटें ऐसी शोभा दे रही थीं मानो फणधर के बच्चे चन्द्रमा पर मचल रहे हैं। धनुषाकार सुन्दर भौंहों के तले मृगशावक के समान श्याम कटीले चञ्चल चपल लोचन बड़े बड़े ऋषि मुनियों के मन को चलायमान करने में सक्षम थे। गोल दोनों गालों पर कभी गुलाबी, कभी श्वेत झलक शोभा दे रही थी। कुन्दरु से लाल लाल पतले ओठ माणिक का भ्रम डालते थे। सिख नख से सुन्दर सवाँरी मानो रूप के समुद्र सी वह रमणी कुछ लम्बी आकार की, विधाता की पूर्ण कारीगरी का एक अच्छा नमूना बन कर वहां खड़ी थी।

राजा रतनचन्द ने देख कर कहा—आज मेरी आँखें सफल हुईं। आप शाहों के शाह हैं, यह रूप का समुद्र आपही के लायक है। शायद शाही महल में भी इस जोड़ को कोई बेगम न होगी।

वज़ीर ने कहा—मैं इस तरफ़ से जारहा था। मेरी निगाह इस दरवाज़े पर पड़ी। सिवाय इसके और इसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। तुम्हारे मकान के सामने है, इसका पूरा हाल तुम्हें जानना चाहिए। जो हो, अब तो इसके हाथ मेरी ज़िन्दगी है। अगर मिली तो तो ठीक ही है, नहीं तो इसके ऊपर मैं न्योछावर हो जाऊंगा।

रतनचन्द ने कहा—ऐसा न कहिए। कुल रियासत आपही के कदमों से लग रही है, आप इतना मत घबड़ाइए।

वज़ीर ने कहा—अगर मुझमें कुछ भी हुकूमत है तो आज इस पर मैं जान निसार करूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतनचन्द ! तुम्हारे हाथ मेरी ज़िन्दगी है, जल्द कहो यह मुझे क्योंकर मिलेगी।

रतनचन्द ने सिर झुकाके कहा—दुनियां में ऐसी कौन सी चीज़ है जो आपको नहीं मिल सकती। पर ज़रा मुझे वक़्त दीजिए तो मैं इसका पता लगालूं।

वज़ीर ने कहा अच्छा, मैं यहां ठहरा हुआ हूं। जहां तक हो जल्द इसका पता लगा लाओ। पर इतना खूब याद रखना कि इसके बिना मेरा कलेजा जला चला जाता है। जब तक इसे कलेजे से न लगाऊंगा मेरी बेचैनी न मिटेगी।

रतनचन्द अपने दोनो हाथों को बगल तले दबा सिर नीचा कर वज़ीर से रुख़सत हो नीचे आए। उधर उस अंधेरी कोठरी में बैठे वज़ीर उस रूप के समुद्र को टकटकी बाँधे निहारते रहे।

जब रतनचन्द लौट आए, उस समय वज़ीर बैठे ठंढी साँस भर रहे थे। रतनचन्द को आते देख बोले "जल्दी कहो क्या पता लगा"।

रतनचन्द ने कहा, विशेष और तो कुछ पता नहीं लगा है, बस इतना ही मालूम हुआ है कि वह दिल्ली की रहनेवाली नहीं है, अभी कुछ दिनों से यहां आई है। कुछ दिन हुए उसके शौहर ने यह घर मोल लिया है। नौकर मजदूरिनें भी बहुत नहीं हैं और न उसका पति सदा घर में रहता है। यह भी नहीं मालूम कि वे लोग क्या करते हैं, और न वे ज्यादा किसीसे मिलते जुलते हैं।

वज़ीर ने कहा—यह तो अच्छी ही बात है। जो यहां का कोई अमीर उमराव होता तो बड़ा बखेड़ा मचता। पर मैं तो तौभी उसे न छोड़ता, जान जाय तो जाय, पर उसके पाने की उम्मैद मेरे जी से न छूटेगी। जैसे बने तुम उसे मेरे पास लिवा लाओ।

रतनचन्द ने डरते डरते कहा—"यहां ?" वज़ीर जो जुदाई को सह नहीं सकता था, बोला "इसमें डर क्या है ?"

रतनचन्दने कहा,—यह भी तो हुज़ूर ही का घर है। पर यह ऐसी नाज़नीन के लायक नहीं है। दुसरे परोस का वास्ता है। शायद कुछ बखेड़ा हो। इससे मेरा कहना यह था कुछ दूर होता तो अच्छी बात थी।

ज़रा सोच के वज़ीर ने कहा अच्छी बात है। अकेली जगह यह मुझे मिल जाय तो कुछ दिन इसे लेके कहीं में रहूं और किसी से न मिलूं। जमुना किनारेवाले बाग़ मे जाता हूं। बस, वहीं उसे पहुंचवा दो।

रतनचन्द बोले—जो हुक्म। ताबेदार को एक अर्ज़ और करनी है; वह यह है कि मेरे नौकर इस काम में बहुत होशियार नहीं हैं। जो इस काम के लायक चुस्त व चालाक कुछ लोगों को आप भेजदें तो काम चट पट सरोतर उतर जाय।

व०—अच्छा अभी हम अपने खोजों को भेज देते हैं। अब देरी नहीं सही जाती।

सीढ़ी उतरते उतरते वज़ीर ने कहा, राजा रतनचन्द ! मुझे तुमसे वही उम्मेद था, तुमने वैसीही मेरी मदद की।

रतनचन्द भी बड़ा हाज़िरजवाब था, चट बोला—भला, मैं एक नाचीज़ ताबेदार हूं, मुझसे भला आपको क्या मदद मिलेगी और खुदा के फ़ज़ल से आपको किस बात की कमी है कि किसीकी मदद मांगेंगे ?

द्वार पर पहुंचके वज़ीर ने कहा—जो तुम्हारे पड़ोस में वह मिली है इससे मैं तुमपर बहुत खुश हूं।

रतनचन्द कमान से झुकके दस्तबस्ता हो बोले—हुज़ूर ! जो मुझ नाचीज़ पर खुश हैं तो बहुत दिनों से ख़ाकसार की एक आरज़ू है उसे पूरा कर दें।

पालकी पर चढ़ते चढ़ते वज़ीर ने कहा—उन्नाव परगने की सनद चाहिए ? अच्छा कल सनद लिखालाना, मैं मोहर दस्तख़त करदूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा परिच्छेद

आधी रात का समय है। दीपावली बुझगई है। अँधेरे मे जमुना बह रही है। उसी अंधेरे में वज़ीर अपने बाग में उदास हो चेहलकदमी कर रहे हैं।

अनगिनत तारे की और किनारे के पेड़ों की छाया जमुनाजल में तिलमिला रही है। जल का प्रवाह बेखटक बह रहा है, बहाव का कल कल छप छप शब्द सुनाई दे रहा है।

वज़ीर के ऐशबाग़ में अँधेरा खूब हो रहा है। उसी घने अँधेरे मे एक ऊंचा महल खड़ा है। महल के बाहरवाले छाएदार बरिन्दे मे जहां एक भी चिराग न था वज़ीर चेहलकदमी कर रहे थे।

चार कहार एक पालकी कंधे पर उठाए बाग़ के अंदर चुप चाप आए। पालकी के आगे पीछे दस बारह हथियारबंद सिपाही साथ थे। पालकी के देखते ही वज़ीर मकान के अंदर गए।

दरवाज़े पर पालकी के पहुंचते ही, एक बूढ़ी मजदूरिन वहां आ उपस्थित हुई और द्वार खोल पालकी को भीतर लिवा ले गई।

रक्षकों का सरदार, जहां वज़ीर गए थे उसी ओर गया। वज़ीर वहां एक कोठरी में खड़े थे। इसे देख उन्होंने पूछा "क्यों अख़तर, कोई ज्यादः बखेड़ा तो नहीं हुआ?"

ख़ोजा ने हाथ जोड़ के कहा "जी नहीं हुजूर, उस घर में ज्यादः लोगों की भीड़ भाड़ नहीं थी। ज्योंहीं मैंने बेगम साहेब से अर्ज़ की त्यों ही वे पालकी पर सवार होगईं"।

"क्या ख़ाविन्द घर में मौजूद न था?"

"जी नहीं! अगर वह होते तो बखेड़ा जुरूर होता। पर हुजूर ने जैसा हुक्म दिया था, उससे यों ख़ाली हाथ हमलोग शायद न लौट सकते"।

वज़ीर ने कहा, "अच्छा, जाओ"। खोजा चला गया। वज़ीर किवाड़ बन्दकर कई एक कोठरियों में होके और दबे पांव एक दूसरी किवाड़ी धीरे से खोल अन्दर गए। उनके अन्दर जाते ही आप से आप किवाड़ धीरे से बन्द होगए।

उस रमणी के सिवाय जिसे अबदुल्लाखां ने बुलवाया था, उस घर में और कोई न था। वह भौचक सी चारो ओर निहारने रही थी।

वह कमरा बहुत लम्बा चौड़ा और सजा हुआ था। सोने चांदी की जंज़ीरों में नीले, पीले, लाल, गुलाबी, सुफेद झाड़ों में धीमी धीमी रोशनी हो रही थी। ईरानी नमदा और बहुमूल्य गलीचा बिछा हुआ था, जिसपर कहीं मखमली मसनद लगी हुई थी; कहीं लदाखी भेड़िओं की अति कोमल खाल, कहीं बुख़ारे की बिनी हुई बहुमूल्य रेशमी सुजनियां बिछी थीं। दालान के एक ओर छोटा सा नकली उपवन बना हुआ था। सुन्दर तमाल के वृक्ष और अंगूर की टट्टियों के कुंज जिसके बीच में बिल्लौरी हौज़ में चीन देश की रङ्गीन मछलियां किलोल कर रहीं थी, अंकित थे। एक ओर एक जड़ाऊ परी खड़ी थी, जिसके हीरे के दांत, नीलम की आँखें, सोने की बांहें थीं; इसके मुह से फुहारा छूट रहा था। रोशनी की झलक से जल की धार में रङ्ग बिरङ्गी ज्योतियां निकल रही थीं, और अति सूक्ष्म जलधार बिल्लौरी हौज़ में धीरे धीरे गिर रही थी। उस दालान की छत्त शीशों से मढ़ी हुई थी। दीवारों पर दिल्ली के नामी चित्रकारों के बनाए हुए चित्र लटक रहे थे। इस सजावट को देख नवागत स्त्रीरत्न के मुख पर मारे लाज के लालिमा सी छा रही थी।

पहिले जब स्त्री उस घर में आई तब वह भौचक सी हो गई, क्योंकि ऐसी सजावट बादशाहों के महल में होनी भी सहज नहीं है। जिस समय अबदुल्ला ख़ाँ घर के अन्दर आए, उसके आने की उस स्त्री को कुछ भी खबर न हुई। वह घर की चारों ओर निहार ही रही थी, कि एकाएक उसे वज़ीर दिखाई दिए। उसे देख चौंक और डर वह बोली "तुम कौन हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज़ीर ने अपनी छाती पर दोनों हाथ रख के मुस्करा कर कहा—मैं खूबसूरती का गुलाम हूं। तुम सी खूबसूरत मैंने दूसरी नहीं देखी इससे मुझे अपना गुलाम समझो। लोग मुझको अबदुल्ला खाँ बादशाह का वज़ीर कहते हैं।

वज़ीर ने सोचा था मुझे बादशाह का वज़ीर सुनके वह चकित हो मेरा सन्मान करेगी। पर उसने यह सब सुन धीरे धीरे कहा, "कुछ दिन हुए मैं हिन्दुस्तान में आई हूं, मैंने अभी तक किसीका नाम भी नहीं सुना है। पर मुझे यहां कौन ले आया? मैं तो यह जी में समझी थी कि मैं अपने शौहर से मिलने चली हूं"।

इसके जवाब में अबदुल्ला खाँ ने कहा, "जहां तुम थीं क्या तुम्हारे शौहर वहां न थे?"

यह सुन वह अबला उसकी ओर गरदन उठा एक बेर देख कर बोली, 'क्यों तुम मुझसे ऐसा पूछते हो? क्यों मुझे यहां बुलाया है? मेहरबानी कर मैं जहां थी वहीं मुझे पहुंचवा दो"।

अबदुल्ला खाँ बोले, "इसे अपना ही घर मानो और अपनेको इस घर की मालिकिन जानो। तुम्हें यहां डर काहे का है? मैं तो तुम्हारा बिना दाम का गुलाम हूं। जो मेरे कहे का एतबार न हो यह देखो"। यह कह बादशाह का वज़ीर, हिन्दुस्तान भर का मालिक दोनों हाथों को उस स्त्री के चरणों की ओर पसार आप उसके चरणों पर गिर पड़ा।

डर से धड़कते हुए कलेजे से वह स्त्री पीछे को हट गई। बोली "अरे पापी! यह क्या कर रहा है? मेरे शौहर के रहते मैं आज़ाद नहीं हूं। जिन बातों के सुनने का पाप है, क्यों ऐसी बात मुझे सुना रहा है?"

वज़ीर उठ खड़ा हुआ—"जब तक मैं चाहूं बादशाह को बैठाए रहूं और जब चाहूं तब दिल्ली के तख़्त पर से उसे उतार दूं। अबदुल्ला खाँ को अपने पैरों पर पड़ा देख जो औरत अपने को खुशकिस्मत न माने उसका सा बदकिस्मत दुनियां में दूसरा नहीं है। पर मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता, क्योंकि इस शहर में तुम्हें आए अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। प्यारी! जिस वक़्त से मैंने तुम्हें देखा है, उसी घड़ी से मेरा कलेजा तड़फ रहा है। जब तक तुम्हें छाती से न लगाऊंगा तब तक वह ठण्ढा न होगा। अब मुझे बचाओ, अब देर न करो।" यह कहते हुए वज़ीर ने उसका हाथ पकड़ लिया। स्त्री ने कहा मेरा हाथ छोड़ो नहीं तो मैं चिल्लाती हूं। वज़ीर ने हँसके कहा "तुम्हारे नाज़ुक गले में चोट लगेगी, इससे मैं तुम्हे चिल्लाने से रोकता हूं, नहीं तो मुझे कोई डर नहीं हैं। तुमसे पहिले न जाने कितनी सुन्दरी स्त्रियां इसी दालान में चिल्ला चुकी हैं जिसका नतीजा कुछ भी नहीं हुआ है। हज़ार चीख़ो, घर से बाहर आवाज़ ही नहीं जाती। यह मेरा घर है, मुझे यहां किसी बात का डर नहीं है। भला सोचो तो सही यहां आके कौन तुम्हारी मदद कर सकता है?" ऐसा कह वज़ीर ने चाहा कि उसका हाथ पकड़ कर खींचे कि घर के अन्दर का द्वार हिला और किसी मनुष्य का कण्ठस्वर सुन पड़ा—"अरे नीच छोड़ औरत का हाथ"। गुस्से से भरे क्रोधवाक्य को सुन, वज़ीर चकित और कुपित हो उसी ओर देखने लगा। अभी तक वह औरत बहुत ज़ोर से चिल्लाई नहीं थी, अब हाथ छुटते ही और तीसरे मनुष्य की आवाज़ सुन वह भी उसी ओर घूमकर देखने लगी और उस नए पुरुष को आते देख रुद्धस्वर से चीख उठी, और थर थर कांपने लगी।

नवागत मनुष्य ने उसकी ओर देखके इतना ही कहा, "रोशन आरा!"

स्त्री चकित हो तुरन्त चुप हो गई। वज़ीर ने देखा कि जितनी किवाड़ियां बन्द थीं सब ज्यों की त्यों बन्द हैं, कहीं से अन्दर आने का रास्ता नहीं है। परन्तु क्रोध में भरकर उसकी ओर झपट के बोला, "तुम कौन हो जी?"

उसने उत्तर दिया "अभी तो तुम्हें पाप कर्म्म से रोकने वाला"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज़ीर ने फिर कहा, "कौन है बाहर, इस बदज़ात को पकड़ के बांधो" ।

उस मनुष्य ने पहिले की भांति कहा, "वज़ीर साहेब, ज़रा और चिल्लाकर बुलाइए। औरत का शब्द तो बाहर जाही नहीं सकता, तुम तो मर्द हो, ज़रा चिल्ला के देखो तो सही, शायद तुम्हारा शब्द बाहर तक पहुंचे" ।

तब वज़ीर को याद आया कि जिस कौशल से घर की दीवार बनी है, चाहे कितना ही चिल्लाओ, भीतर की आवाज़ बाहर न जायगी। और कुछ न कह द्वार खोल वह बाहर जाया चाहता ही था कि चट उस मनुष्य ने वज़ीर का हाथ पकड़ कर उससे कहा—अबदुल्ला ख़ां ! इतने उतावले न होओ। जब मेरा जी चाहेगा तब द्वार खोलूंगा। अभी आप घबरावें नहीं।"

अबदुल्ला ख़ाँ अच्छे बलवान थे। बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ाया चाहते थे कि उसने चट उठा के उन्हें गलीचे पर दे मारा और पटक कर छाती पर चढ़ कमर से कटार निकाल वह वज़ीर से बोला—"इसी घर में न जाने तुमने कितनी स्त्रियों से पाप-कर्म्म किया है, ज़रा याद तो करो। इससे इसी घर में उन पापों का प्रायश्चित्त होना चाहिए। अब इसी कटार को तुम्हारी कोख में गोपता हूं, देखूं तो सही तुम्हें कौन बचाता है ?"

तब तो अबदुल्ला ख़ाँ मन ही मन विचारने लगा कि उसके किसी शत्रु ने उसके प्राण लेने को इसे भेजा है। मृत्यु को सामने खड़ी देखने पर भी वह न डरा और अपने मारनेवाले के आगे न गिड़-गिड़ाया और न कुछ बोला। इसका जन्म अजमेर के प्रसिद्ध सैयद घराने में हुआ था जिसमें कभी कोई कायर उत्पन्न नहीं हुआ था। ज़ोर दिखाना व्यर्थ जान वज़ीर उसके मुंह की ओर देखने लगा।

मारनेवाले को देख यह नहीं मालूम होता था कि वह हत्यारा नरघाती है। परदेशियों सा वह भी था—लम्बा कद, महीन कपड़े के अन्दर से गठीली बोटी झलक रही थी। सिर के बाल और मूंछें कुछ पीलापन लिए, बड़ी बड़ी चमकती आँखें इस समय मारे क्रोध के बाहर निकली पड़ती थीं, नथुने फड़क रहे थे। उस कड़ाई में वज़ीर को दया का कोई चिन्ह न दिखाई दिया और न नरघाती सा पिशाची लक्षण ही देख पड़ा। बस, चुपचाप पड़ा वह अपनी मृत्यु की बाट देखता रहा। पर वह अबदुल्ला ख़ाँ को छोड़ के उठ खड़ा हुआ और बोला—ले उठ खड़ा हो और जो जीने की जी में लालसा हो तो मैं जो कहता हूं सुन।

मारे ग्लानि और क्रोध के वज़ीर भीतर ही भीतर जल रहा था। बिना कुछ बोले वह उठ खड़ा हुआ। उसके घातक ने अपने कपड़े के अन्दर से कागज़, कलम, दवायत निकाल कर कहा"—मैं जो कहता हूं उसे इस कागज़ पर लिखना होगा। तुम अपने नौकरों के नाम लिख दो कि मुझे और इस औरत को बाहर जाने में कोई रोक टोक न करें।

वज़ीर ने कहा—यह औरत तुम्हारी कौन है, यह तुम्हारे संग जाने में राज़ी है वा नहीं, यह मैं क्योंकर जान सकता हूं ?

उसने कहा यह तुम्हें जानने की कोई ज़रूरत नहीं है और न इस बारे में तुम कुछ कहो, सिर्फ़ जो मैं कहूं सो करो।

वज़ीर ने कहा मैं न लिखूंगा।

"तो मरो" यह कह फिर उसने वज़ीर की छाती पर कटार बैठाई। कटार की नोक लगने से कपड़े में खून का दाग आ गया। चोट खाकर वज़ीर बोला "अच्छा लिख देता हूं"।

जैसा उसने कहा वैसा ही वज़ीर ने लिख दिया। जब सब लिख गया तब उसने कहा "तुम्हारी अंगुली में जो मोहरवाली अंगूठी है उसे उतार दो"।

वज़ीर ने कहा यह तो नहीं दे सकता, क्योंकि इसमें बादशाह का नाम खुदा हुआ है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा "मैं कोई चोर उचक्का नहीं हूं। मुझे इसे लेना नहीं है, इस वक्त मुझे इसकी ज़रूरत है, फिर तुम्हें लौटा दूंगा"।

वज़ीर ने बिना कुछ कहे अंगूठी उतार कर दे दी। उसे ले उसने वज़ीर की पगड़ी उतार उसके द्वारा वज़ीर का हाथ पांव बांध डाला। वज़ीर ने कहा "जो जो तुमने कहा मैंने किया, अब मेरी क्यों बेइज़्ज़ती कर रहे हो?"

उसने हँस कर कहा—"भला मैं आपका अपमान कर सकता हूं? होश आने के लिये ज़रा आपको तकलीफ़ देता हूं। न जाने आपका दिल फिर जाय। शायद जाते देख दी हुई चीज़ों को लौटाना चाहें।

मारे क्रोध और अपमान के वज़ीर विकल हो बल दिखाने लगे। परन्तु उनको बांधनेवाले मनुष्य ने कहा, "वज़ीर साहेब! क्यों ताकत दिखा कर अपने नाज़ुक बदन को तकलीफ देते हैं?" और तब उसने उन्हें पकड़ कर, उनके दोनो हाथ पांव खूब कसके बाँध डाले। तब तो वज़ीर को यह ताकत भी न रही कि उठ कर खड़े हों। तब उसने उसे चिढ़ाने के लिये कहा "अबदुल्लाख़ां, कुतुब-उल-मुल्क, वज़ीर-आलम! तुम दिल्ली के बादशाह के मालिक हो, पर तुम्हारी चाल चोर और जानवरों की सी है। जो जानवर की तरह तुम्हें मारूं तो मुझे कुछ पाप नहीं है, पर इतनी जल्दी तुम्हारी छुट्टी नहीं है। अभी बांधने में तुम अपनी बेइज़्ज़ती मानते हो, पर कैदी की हालत में तुम्हें मुद्दत बिताना है। तब कैद में बैठ मुझे याद करना और अपने किए कामों को याद कर के रोना"।

वह स्त्री पुतली सी चुपचाप छिपी हुई एक कोने में खड़ी थी, और जैसी डरी हुई चिड़िया अजगर को देखती है, वैसीही वह उसे देख रही थी। उसने उससे कहा "रोशन आरा, मेरे साथ आओ"।

रोशनआरा कठपुतली सी उसके पीछे हो ली। जब वे लोग घर के बाहर निकल आए तब फिर किवाड़ बन्द हो गए। भीतर अपने सजे हुए गृह में वज़ीर साहब बँधे पड़े रहे। [क्रमशः]

लखनऊ वर्णन

राजति आर्यावर्त्त देश
उत्तर महँ धरनी जोई।
उत्तम नगरन मांहि जासु
गणना नित ही नित होई॥
लक्ष्मणपुरी सुहावनि पावनि
मनभावनि सबही के।
मोद बढ़ावनि सुख सरसावनि
दुख बिसरावनि ही के॥
चित्त खेद हठि दूरि पठावनि
परम लुभावनि जी को।
चिन्तित व्यथित उदास जनन कहं
कौतुक कारिनि नीकी॥
श्रीयुत लक्ष्मण बुद्धि बिचक्षण
रच्यो तोहि रजधानी।
तातें अटल रहहि तव कीरति
यह निहचय हम जानी॥
राजस्थान सुदेस अवध को
फैजाबाद रह्यो जो।
सो पुर छाड़ि नवाब चाव सों
तो कहं आनि गह्यो जो॥
यहि गद्दी को अन्तिम राजा
वाज़िद अली भयो है।
तेहि ठहराइ अयोग्य राजा धुर
धरि अङ्गरेज़ लयो है॥
बेली गारद और जहां तहं
भई अनेक लराई।
पै बिधि अङ्कित भाल रेख तें
किए कछू न बसाई॥
अवधदेश की 'हाई कोर्ट' हूं
याही पुर मधि भ्राजै।
और अनेक न्याय के आलय
विरचित अति छबि छाजै॥
सीतापुर बड़ो हरदोई
अरु उन्नाव विराजैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिनके बीच थान नव सुन्दर
देखि अमर पुर लाजैं ॥
अमल प्रतीत धवल जल गोमति
बहत मन्द गति सोहै ।
भांति भांति के तटी भवन की
सोभा तिमि मन मोहै ॥
सुघर छबीले जलयानन पर
नागर चढ़ि छवि छावैं ।
होड़ लगाइ नाव दौड़ावैं
तुरगन चाल लजावैं ॥
कहूं मतङ्ग कलोलत चिहरत
न्हात फुहारत पानी ।
कहूं काठ कहुं वस्तु विविधि विधि
भरीं नाव सुखदानी ॥
कहूं बाटिका सोहैं तट पर
बिकसित फलित मनोहर ।
बिम्ब परत जल मांहि होत भ्रम
मनहुं दूसरी सोदर ॥
शाहबाग़ अरु बाग़ बनरसी*
आलमबाग़ विराजत ।
बाग़ सिकन्दर बहुरि जमुनिहा
लखे ताप जिय भाजत ॥
इन सब बाग़न में अति छवि सों
बाग़ बनरसी* सोहै ।
निरखि जासु सोभा रुचिराई
नन्दन बन मन मोहै ॥
अलि लोलुप लहलही लतन पर
लसत लेत इमि स्वादू ।
मानहु रसिक रमत युवतिन मधि
भरो अमित अहलादू ॥
कीर कपोत मयूर लवादिक
चहचहात तरु डारन ।
मनहुं लखाइ रहे सब जग कहं
बन निवास सुख कारन ॥

कहूं बधिक गन बिहँग गहन हित
फिरत लगावत घाता ।
दुरजन बस परि गुनहु कहत जनु
होंहि कबहुं दुखदाता ॥
वायु बेग सों गिरे कहूं तरु
मूल सहित इमि दोसैं ।
मनहुं छाड़ि लघु जनन बिपति गन
परैं गुरुन के सीसैं ॥
गुरु बिटपन तट अन्न वृक्ष
सब लखियत दीना ?
कलि धनीन ढिग होत यथा
सज्जन अति छीना ॥
हरे भरे जनुढरे चारु बहु
बिटप बितान विराजैं ।
बाल समय की सोख युवक कहं
योहीं सुखसों साजैं ॥
लान अनेक सोधि कै रोलर
सींचत लै जल चारू ।
यथा बाल ताडन लालन में
उन्नति केर पसारू ॥
बीथी सुघर अलंकृत बहु बिधि
चौकी चहुं दिसि सोहैं ।
बीच मनोहर भवन विराजै
मूरति अति मन मोहैं ॥
कुसुम दरस संवत्सर तहँ
व्यक्ति अमित जुरि आवैं ।
लेडी इंगलिश और पारसी
गहिरी धूम मचावैं ॥
कर में कर दै दम्पति बिचरैं
मिसैं जहां तहं डोलैं ।
घेरैं तिन्हैं रिझावनहारे
मरम चाह के खोलैं ॥
धरनी हरित सोई थल जल मय
तिय सरोज तिमि सोहैं ।
अलिगन सुघर रसिक गुंजारैं
विधुवदनिन मुख जोहैं ॥

* बनारसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौंसठ हाट ललित अति रूरे
मंडी छप्पन जानहु।
चौकहु हज़रतगंज अमीनाबाद
सदर गुरु मानहु॥
फ़ैशन नूतन और पुराने
इन सब में लखि लीजै।
चौक जाय साही को अनुभव
पूरन मन सों कीजै॥
ठसक नवाबी लम्बे पट्टे
चूड़ीदार दुटंगा।
कान फुरहरी हाथ रुमालिया
जूता रंग बिरँगा॥
बने लिफाफा ऊपर चितवैं
फूंकहु ते उड़िजावैं।
घरमें बेगम नंगी बैठी
आप नवाब कहावैं॥
दिवस बटेर पतंग लड़ावैं
देइं उड़ाइ बसीका।
बेंचि कसीदा जब लै आवैं
होइ पेट को ठीका॥
बहुत महाजन आफ़त मारे
देइं 'रुपैया' इनको।
डिगरी में वे पावैं केवल
चूल्हा चौका तिनको*॥
जहां कुंवरि श्रीयुत सुनि पावै
झपटैं तुरत रिझावैं।
करि निकाह धन खीस करैं सब
पीछे ताहि खिझावैं॥
फाटकहू पर देखि गाहकै
ठग दलाल चट दौरैं।
जानि गंवार घेरि सब चहुं दिसि
बांह पकरि झकझौरैं॥
स्वान गोध जम्बुक मौकुलि गन
देखि शवहिं जिमि टूटैं।

तिमि जूटैं गाहक पै ये सब
बड़भागी जे छूटैं॥
ऊंचे महल गली सकरी अति
कोठे नरक-कि-दूती*।
सबक पढ़ाइ छीनि धन सरबस
पीछे मारैं जूती॥
बड़ी दूरि लौं पांति दुकानैं
वस्तु अनेक बिराजैं।
मनि मानिक अरु हाटक चांदी
वाच क्लाक छवि छाजैं॥
हजरतगँजहि फिसन आधुनिक
देखि परै सब ठौरैं।
कोट पैंट सों डटे महाशय
चढ़े वाइसिकिल दौरैं॥
तहां दूकानै अंगरेजन की
सौदा बेचैं नीके।
दुगुने तिगुने दाम परैं पै
होहिं अतिहि वे जीके॥
तरहदार अंगरेजी बाना
इहां मिलै अधिकाई।
नाहिन हजरतगंज हाट
लन्दन की धौं उठि आई॥
हाट अमीनाबाद रुचिर अति
सब विधि के जन आवैं।
पुराचीन अरु नूतन फेशन
दोऊ इत मिलि जावैं॥
इक्का फिटन वाइसिकिल टमटम
अमित पयादे जावैं।
सांझ समय की भीर इहां की
देखतही बनि आवैं॥
वस्तु अनेक भांति की उत्तम
धरी दुकानन माहीं।
आइ अनेक खरीदैं बेचैं
हाट सराहत जाहीं॥

* तृण का बना हुआ।

* Messengers of hell अर्थात् बेश्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदर माहिं कारे गोरन की
पलटन अति अधिकाई ।
तहां सफाई अधिक रहै कछु
उपमा कहि नहिं जाई ॥
बेचनवारे उतरे कपड़े
गोरन के लै लेहीं ।
साहेब बने किरानिन के सिर
झारि पोंछि मढ़ि देहीं ॥
पिए वरांडी झूमत घूमैं
लड़खड़ात कछु गोरे ।
देसी फौजी अकड़े विचरैं
भरे गरूर अथोरे ॥
धवल धाम कै ध्वजा नगर की
प्रविसि रहीं घनमाहीं ।
कैधौं ये हिमपूरित भूधर
जहँ तहँ तुंग लखाहीं ॥
रैनि उजारी छटा निहारैं
यों मन में भ्रम व्याप्यो ।
जगमगात गोबर्द्धन गिरि कोउ
भ्रम करिलैइत थाप्यो ॥
आवत जात देखि जन यूथन
मन पुनि होइ खभारू ।
बड़े नगर के आलय सोहत
यों थिर होई विचारू ॥
जहं जहं पथिक जाहिं देखन को
मुख फैलाइ रहैं यों ।
तोनि अवोधन की संभवता
को दरसाय रहैं ज्यों ॥
जिन लखि इक मीनार बाट में
अचरज परम कियो है ।
कूप ताहि गुनि मूरखता को
परिचय तुरत दियो है ॥
गुरु अरु लघु इमामबाड़ा
तिमि छत्रमँजिलहि सु देखो ।
ला मारटीनर रौसनदौला
केसर बागहिं लेखो ॥

निरखि मुहर्रम चन्द चन्द सम
दीप नछत्र समाना ।
मन भ्रम लहै लहै नहिं थिरता
गुनि सुरपुर सुखदाना ॥
ऋतु पावस भरि ऐशबाग़ में
मेला सुथरे चारु ।
प्रति सप्ताह जुरहिं मन मोहन
भरित अनन्द भँडारू ॥
सब विधि भूषित सुघर छबीले
नागर यान सवारी ।
रतिपति सरिस इतैं उत विचरैं
भरे चाव चित भारी ॥
इत सित चलदल अशित स्वान सह
भैरवनाथ विराजैं ।
तेजपुञ्ज अभिराम स्याम तनु
कोटि काम छवि लाजैं ॥
सूर दिवस प्रति देव दरस हित
होति इहां बड़ि भीरा ।
गुरु रविवार भीर भारन चपि
धरति धरनि नहिं धीरा ॥
जित तित हाट बाट बीथिन जन
करत दण्डवत आवैं ।
प्रेम पूरि करि विनय विविधि विधि
प्रभु पद सीस नवावैं ॥
अलीगञ्ज पति महावीर तिमि
राजत अति छवि धारे ।
चौक माहिं तिमि अम्ब कालिका
परमा परम पसारे ॥
यथा विभीषण भवन लङ्क महं
रहयो भिन्न मन भायो ।
खल मण्डली निवसि जेहिं निसि दिन
पूरन धर्म दृढ़ायो ॥
ताही विधि यहि रम्य पुरी महं
देव भवन ये राजैं ।
दरसन करत "बिनोद" सुसंचित
पाप पुरातन भाजैं ॥

कुंवर रघुनाथप्रसाद
बी. ए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणभट्ट

विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूण कर के लेख से अनुवादित

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

'कादम्बरी' की रचना के विषय में एक चमत्कृतिजनक घटना हुई है। उसका भी उल्लेख यहां पर आवश्यक बोध होता है। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं—पर वे कवि-कृत नहीं हैं किन्तु कालकृत हैं! बाण कवि इस काव्य को अनुमान आधे तक लिख चुके होंगे कि सहसा कराल काल ने इन्हें कवलित कर लिया। पूर्वार्द्ध के अन्त में, अर्थात् जहां पर कथा-विच्छेद हुआ है वहां, प्रारम्भ किया हुआ (कादम्बरी का) भाषण वैसा ही अधूरा रह गया है सो वह अगले भाग में पूरा किया गया है। इस अनूठे काव्य की सृष्टि जिसने मन में निर्म्मित की उसी के हाथ से वह अन्त पर्य्यन्त पूर्ण नहीं होने पाया, इस बात को देख कर मन को बहुत खेद होता है और जान पड़ता है कि एतद्द्वारा संस्कृत भाषा को विषम हानि पहुंची है! अस्तु अब जो बात होगई सो तो हो ही गई; पर आज दिन इस घटना को देख परम सन्तोष होता है कि अधूरे रह गए हुए सुन्दर भवन को देख दर्शक को युगपत् आनन्द और शोक सर्वथा न होने देने की तजबीज बाणभट्ट के पुत्र ने कर रखी है। उसका रचा हुआ यह उत्तरार्द्ध यद्यपि पूर्वार्द्ध की योग्यता का नहीं हो सका है, तथापि इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि रसिक लोगों की यह सेवा तदतिरिक्त कवि द्वारा होनी सर्वथा असम्भव थी। सन्तत पिता के साथ रहने के कारण, और विशेषतः बाल्यावस्था से उसकी शिक्षा पिता द्वारा ही हुई होगी, एतावता उसके कवित्वगुण की झलक का उसपर पड़ना जैसा सम्भव था वैसा वह अपर कवि के लिये सम्भव न था, सो स्पष्ट ही है। सारांश, दूसरे कवि को बुद्धि कैसी ही विशाल क्यों न होती और उसका 'कादम्बरी' के साथ कैसा ही घनिष्ट परिचय क्यों न होता, पर तौ भी वह बाणपुत्र की नांई 'कादम्बरी' को पूर्ण कदापि न कर सकता। स्वयं बाण कवि ही यदि इस अपूर्व काव्य को शेष कर पाते तो आज दिन उसका जो आकार है उसकी अपेक्षा डयोढ़ा तो वह अवश्य ही हो जाता; साथ ही यह भी निस्सन्देह बात है कि सम्प्रति उत्तरार्द्ध में जितना रस पाया जाता है उससे वह कहीं अधिक पाया जाता; तौभी यह बात कुछ सामान्य नहीं है कि मृत्युकाल के समय पिता ने जो अल्पमात्र सम्बिधानक बतला दिया था उसीके आधार से पुत्र ने उस कथा को ऐसी उत्तमता पूर्वक परिशेष किया कि उसमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती जो मूलग्रन्थ का विरोध करती हो। महान् महान् ग्रन्थकार भी अपने समस्त काव्यों में ही नहीं किन्तु कभी कभी एक ही काव्य में एक सा रस लाने के लिये असमर्थ हुए हैं। क्योंकि शिल्पकार्य्य की सफलता जितनी समय के गुण से सम्बन्ध रखती है उतनी शिल्पी के परिश्रम से नहीं रखती। विचार का स्थल है कि विशालबुद्धि-सम्पन्न मिल्टन कवि जिस उत्तमता के साथ अपने 'प्याराडैज लौस्ट' संज्ञक काव्य को पूर्ण कर सके हैं, उस उत्तमता के साथ वह उसी काव्य के उत्तर भाग 'प्याराडैज रिगेंड' को नहीं लिख सके। उसी प्रकार से यह बात भी अनेक बार दृष्टिगोचर हुई है कि ग्रन्थकारों ने अपनी प्राप्त पूर्व कीर्ति को अधिक बढ़ाने के अभिप्राय से अपने मूल ग्रन्थों में हेर फेर किए; पर उनका परिणाम कुछ और ही हुआ; यही कारण है कि चतुर लोग काव्यादि ग्रन्थों के एक बार उत्कृष्ट सम्पादित होजाने पर पुनः उनमें परिवर्तन नहीं करते। यह सब निजके ग्रन्थों के विषय में कहागया। फिर दूसरे के ग्रन्थ में हाथ डाल उसमें उलट फेर करना वा कुछ जोड़ तोड़ मिलाना कैसा दुरूह एवं गुरुतम कार्य्य है सो सब रसमर्मज्ञ लोगों पर विदित ही है। जैसे प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव स्वरूप और स्वर एक दूसरे से कदापि नहीं मिलते, वैसे ही परस्पर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिगुण भी परस्पर के एक से नहीं पाए जाते। और इसके सिवाय एक बात यह भी देखने में आती है कि बड़े बड़े कुशाग्रबुद्धि वाले मनुष्यों को भी दीर्घ काल लों सतत परिश्रम करने के कारण गुणपुञ्ज में से किसी एकही में अधिकतर निपुणता प्राप्त होती है, और शेष सब गुण योंही रहते हैं। किसीका चित्त गद्य की ओर, किसीका पद्य की ओर, किसीका इतिहास की ओर, किसी का भिन्न भिन्न शास्त्रों की ओर, जैसा जैसा आकृष्ट होता है, और उसमें जैसा जैसा उसका प्रवेश होता जाता है, उसी प्रकार से वह उस विषय का पूर्ण वेत्ता हो जाता है। एक ही व्यक्ति में अनेक गुण एकत्रित हुए हों ऐसे उदाहरण कालिदास, सीज़र और आरिस्टॉटल के से लेखों में एकही दो पाए जाते हैं। सामान्यतः एकही गुण पूर्णतया प्राप्त करने के हेतु कई जन्म बिताने पड़ते हैं। अभिप्राय यह है कि जब एक का मन दूसरे के मन से सर्वथा मेल नहीं खाता, तब एक की कृति में (कविता में) दूसरे का हाथ डालना प्रचण्ड साहस का कार्य्य है। इस विषय में प्राचीन काल का एक उदाहरण अत्यन्त समर्थक है। उक्त चतुर चूड़ामणि सीज़र बड़ा रणधुरन्धर था। उसके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि लड़ाई में उसे जो समय लिखने पढ़ने को मिल जाता था, उसमें उसने अपनी चढ़ाइयों की संक्षिप्त टिप्पणी लिख रखी हैं कि जो आज दिन प्रसिद्ध हैं। उन टिप्पणियों के लिखने में उसका अभिप्राय यह था कि मेरे पीछे कोई महान इतिहासकार उस समय का इतिहास लिखती बार मेरे लेख को आधार मान कर उसपर विस्तार करे। पर अचरज की बात है कि उक्त टिप्पणी आज दिन भी ज्यों की त्यों पाई जाती है, और उस समय के इतिहास का परमोत्कृष्ट एवं विश्वासपात्र ग्रन्थ भी वही मानी जाती हैं। सीज़र बादशाह के अनन्तर कई नामी इतिहासलेखक हुए, पर उनमें से एक को भी भरोसा न हुआ कि मैं उसकी उत्कृष्ट मूल रचना में कुछ हेर फेर कर कुछ विशेषता प्राप्त कर सकूंगा। सारांश, निज की नूतन रचना करना तादृश कठिन कार्य्य नहीं है, पर दूसरे के ग्रन्थ में जोड़ लगा दोनों का एक जी कर देना प्रतिसृष्टि निर्म्मित करने के समान प्रायः दुःसाध्य है। सारांश, ऐसे प्रचण्ड साहसकार्य्य में यश लाभ करना सामान्य बात नहीं है। हम समझते हैं कि 'कादम्बरी' परिशेष के विषय में बाणतनय उक्त श्लाघ्य यश को लाभ कर सके हैं।

सुना जाता है कि 'कादम्बरी' के शेष भाग को बाप के पहिले श्राद्ध के पूर्व ही अर्थात् एक साल के भीतर पूर्ण करने की उसने प्रतिज्ञा की थी और वैसा ही किया भी।

बाणपुत्र का नाम क्या था सो विदित नहीं है, और उसका उसने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध में उल्लेख भी नहीं किया है। इसका कारण स्पष्ट है। उसने अपने पिता के अन्तिम नियोग की पूर्त्तिमात्र की है, उसमें कोई बात नई और निज की नहीं है। इसके सिवाय जैसे चन्द्रकान्त का द्रवित होना चन्द्र के आधीन रहता है, उसी प्रकार से बाणभट्ट के पूर्वार्द्ध की शैली का अनुधावन कर उत्तरार्द्ध रचा है। अतः हम समझते हैं कि पूरा ग्रन्थ बाप के नाम से ही प्रसिद्ध हो इस उद्देश से उसने अपना नाम जान बूझ कर प्रगट नहीं किया, यह बात उसकी पितृभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण बोध होती है। इसके अतिरिक्त उत्तरार्द्ध के आदि में उसने जो थोड़ी सी प्रस्तावना लिखी है उससे उसका प्रकृति सुलभ एवं बुद्धि-संस्कार-जन्य विनय भी स्पष्टतया बोध होता है। इस प्रस्तावना को पढ़ती बार मन की कुछ विलक्षण ही अवस्था हो जाती है! पाठकों को कथा की नायिका पर्य्यन्त पहुंचा कर अपना कवि उन्हें कथा में लाने के लिये उद्योग करही रहा था कि निठुर काल ने उसके आयुष्य की डोर काट दी, अतः यह अद्वितीय ग्रन्थ ऐसाही अधूरा रह गया, यह देखकर मन नितान्त उदासीन हो जाता है, और अगला मङ्गलाचरण भी अमङ्गलवत् जान पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है। अगले पद्य प्रस्तावनास्वरूप होने पर भी ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे कविविषयक विलाप के हैं और मनमें इस वृत्तिका सञ्चार होने का प्रधान कारण तदन्तर्गत वृत्तों की मन्दता बोध होती है। वंशपरम्परागत बिरले ही स्थान में पाएजाने वाला बुद्धिगुण इन पिता पुत्र में एकत्रित था और इस अभूतपूर्व घटनों को देख-मन कौतूहल समुद्र में मग्न हो जाता है; अर्थात् बाप की कृति का बेटे के हाथ से पूरा होना देख-कर मन नितान्त आश्चर्यित होता है; और मन वहीं से भय-चकित होने लगता है कि ऐसे प्रचण्ड साहस कार्य्य में हमारे होनहार कवि को क्योंकर यश लाभ हो सकेगा। पर ग्रन्थ आगे को जैसा जैसा पढ़ते जाओ वैसा वैसा वह भय दूर होता जाता है और अन्त में उसे प्राप्तयश देख प्रसन्नता होती है!

'कादम्बरी' शृङ्गार-रस-प्रधान ग्रन्थ है। इस रस की अपेक्षा इसमें किञ्चिदून कहीं कहीं अद्भुत और करुणा रस भी पाए जाते हैं; और अपर रसों की तो यों ही कहीं कहीं प्रसङ्गवश झलकमात्र देख पड़ती है। इस ग्रन्थ की पद रचना की विशेषता, अर्थात् लम्बे लम्बे समास प्रयुक्त करने की रीति, इसके प्रत्येक पृष्ठ में स्पष्टरूप से दीख पड़ती है। यह रीति कालिदास, भर्तृहरि प्रभृति प्राचीन कवियों के ग्रन्थों में बिलकुल नहीं देख पड़ती। उनके ग्रन्थों में चार पांच पदों के समास से अधिक पद के समास बहुत ही कम पाए जाते हैं। परन्तु काल-क्रमानुसार जब से यह प्राथमिक सरल रीति उठ कर कविता को सजाने के लिये यत्न किया जाना प्रारम्भ हुआ, तब से बड़े बड़े समास प्रयोग द्वारा रचना को विचित्र करने की प्रथा चल निकली। यह प्रणाली पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिकतर स्वल्प कष्टसाध्य एवं विशेष शोभाप्रद होने के कारण गद्यरचना की परिपाटी चल निकली होगी ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है। सम्प्रति संस्कृत के लभ्यमान ग्रन्थों को देख यह अनुमान होता है कि, इस नई परिपाटी का उत्पादक सुबन्धु कवि होगा। उसीको आगे बाणभट्ट और दण्डी ने अनुसृत किया*। पीछे यह बात उल्लिखित हो ही चुकी है कि भवभूति ने भी प्रसङ्गानुरोधवश ऐसी सजावट कहीं कहीं की है। अब यह रचना सदोष है वा निर्दोष है, इसके विषय में यहां पर कुछ लिखना आवश्यक बोध होता है। आज कल इस बात का अनुमान करलेना किञ्चित् कठिन जान पड़ता है कि जिस समय चारों ओर संस्कृत भाषा का पूर्ण अधिकार था, उस समय ऐसी रचना कैसी विलक्षण जान पड़ती होगी। तथापि उसकी ओर से पाठकों को थोड़ा सा वृत्तान्त सूचित करना आवश्यकीय जान पड़ता है। प्रथम तो यह बात सिद्ध ही सी बोध होती है कि जब बाण और भवभूति जैसे सुप्रसिद्ध कविगणों ने भी उसका अपने ग्रन्थों में प्रयोग किया है तो इस बात के मान लेने में क्या हानि है कि उक्त रचना को तत्कालीन पण्डितों ने सदोष नहीं माना, क्योंकि उक्त बात यदि वैसी न होती तो इन लोगों की कीर्त्ति ही कदापि न होने पाती। यह बात अवश्य मानी जा सकती है कि उस समय संस्कृत भाषा का प्रचार न्यून होकर वह केवल उच्चपदाभिषिक्त तथा विद्वान लोगों द्वारा ही व्यवहृत की जाती होगी। तो भी इसमें अनुमात्र भी सन्देह नहीं है कि उक्तपद रचना को विलक्षण निश्चत करने के लिये उक्तलोग थोड़े बहुत अधिकृत थे; पर उनके अनन्तर और कुछ दिन बीतजाने के कारण अब हमलोगों को वह अधिकार भी नहीं रहा। ऐसी अवस्था में इसके विषय में सम्प्रति और भविष्यत में केवल बाह्यतःमात्र मत देने का अधिकार रह गया है। अर्थात् यह पदरचना कानों को कैसी लगती है, इसके योग से मन चमत्कृत हो आनन्दानुभव करता है वा नहीं, अब इस दूसरी बात के सम्बन्ध में नूतन मत प्रकाशित करने की वैसी कुछ आवश्यकता नहीं देख पड़ती।

* यह लेख जब प्रथम लिखा गया तब हमारी यही सम्मति थी। पर अगले दण्डी के निबन्ध द्वारा ज्ञात हो जायगा कि यह भूल थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण कवि का यह ग्रन्थ आज बारह सौ वर्ष से विद्वान् लोगों के समीप विद्यमान है और गोवर्द्धन आचार्य्य प्रभृति सहृदय धुरीण रसिक लोगों ने उसे कसौटी लगाकर परमोत्कृष्ट निर्धारित किया है। एतावता हम समझते हैं कि हमारा निम्न-लिखित मत उन्हींके पुनरुच्चारण का सा है। 'कादम्बरी में शृङ्गाररस ही प्रधान होने के कारण कवि * उसकी पद रचना को मार्दव, एवं लालित्यादि गुणों द्वारा विशेष रूप से अलंकृत कर सका है। साथ ही प्रसाद गुण की इस काव्य में प्रचुरता पाया जाता है। ये बातें यहां पर स्पष्ट रूप से उल्लिखित करने का कारण प्रस्फुटित ही है कि, इसमें बड़े बड़े समास और बीच बीच में बहुत सी वक्रोक्ति यद्यपि लाई गई हैं तौ भी ग्रन्थ के पढ़ते ही वे सब समझ में आजाती हैं। अर्थ की तिल-मात्र भी हानि वा क्लिष्टता न होने देते बाणभट्ट ने श्लेषादि की विचित्ररचना की। इसमें संस्कृत भाषा उसके बस में किस प्रकार थी सो स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। पीछे लिखी हुई गोवर्द्धनाचार्य्य की आर्य्या और "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्व्वम्†" इस पण्डितप्रसिद्ध वाक्य का मुख्यार्थ भी वही है। यह ग्रन्थ पढ़ती बार केवल दो प्रकार के श्रम मन को उठाने पड़ते हैं। एक तो यह कि जहां जहां विस्तृत वर्णन हैं, वहां वहां अन्वय ठीक प्रकार से ध्यान में आने के लिये उसके भिन्न टप्पों की ओर दत्तचित्त रहना पड़ता है, और दूसरे यह कि ऐसे वर्णनों में अनेक कल्पनाओं की एक ही स्थान में गुत्थमगुत्था होने के कारण उनमें से प्रत्येक के ठीक ठीक समझ में आने तक ठहरना पड़ता है। पर यह श्रम ऐसे हैं कि पढ़ने की बहार में इनका ज्ञान यों नहीं होने पाता।

अब इस ग्रन्थ के कतिपय परमोत्तम संग्रह पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

प्रथमतः शृङ्गार के उदाहरण लिखे जाते हैं। यही रस वर्त्तमान काव्य में प्रधान है सो पीछे लिख चुके हैं। और यह रस अपने कवि को कितना प्रि था सो उसकी प्रस्तावना मात्र से ज्ञात हो सकत है। दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति करन यह कवियों का सम्प्रदाय प्रायः निश्चित् ही हो गया है; सो उसका अनुधावन करते हमारे कवि लिखते हैं:—

कटुक्वणंतो मलदायकःखलःस्तुदन्त्यलम्बन्धनशृङ्खला इव।
मनस्तु साधु ध्वनिभिः पदे पदे हारन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥

"दुर्जन लोग पांवों की बेड़ियों की नांई कर्ण कटु शब्द (भाषण) बोलते हैं; और मल के (पा के) भागी बना देते हैं, पर सज्जन लोग मणिनूपु की नांई मञ्जुल शब्दों द्वारा (मधुर भाषण द्वारा पद पद पर मन को रिझाते हैं"। [क्रमशः]

कवि-कर्तव्य

कवि-कर्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी कवियों के कर्तव्य से है। समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके हम यह दिखलाना चाहते हैं कि कवि का कर्तव्य क्या है। अपने मनोगत विचारों को ह थोड़े ही में कहना है; अतः इस लेख को हम चा ही भागों में विभक्त करेंगे; अर्थात्—छन्द, भाषा अर्थ और विषय। इन्हीं की यथाक्रम हम समीक्ष आरम्भ करते हैं।

छन्द

२—गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। यह समझना अज्ञानता की पराकाष्ठा है कि जो कुछ छन्दोबद्ध है सभी काव्य है। कविता का लक्षण जहां कहीं पाया जाता है, चाहे वह गद्य में हो चाहे पद्य में, वही काव्य है। लक्षणहीन

---

* यहां पर कवि शब्द पिता पुत्र दोनों का बोधक है सो रसिक पाठकगण जान ही गए होंगे।

† 'सब जग बाणकवि की जूठन है' अर्थात् उसने कुछ नहीं छोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य नहीं कहलाए जा सकते और लक्षणयुक्त होने से सभी गद्य-बन्ध काव्यकक्षा में सन्निविष्ट किए जा सकते हैं। गद्य के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित करने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी पद्य के विषय में है। इसलिये हम, यहां पर, पद्य ही का विचार करेंगे। भाषा, अर्थ और विषय के सम्बन्ध में जो कुछ हम कहेंगे वह गद्य के सम्बन्ध में भी प्रायः समान भाव से प्रयुक्त हो सकेगा।

३—ऐसी पंक्तियां जिनमें वर्णों की अथवा मात्राओं की संख्या नियमित होती है, उन्हें छन्द कहते हैं; और छन्द में जो कुछ कहाजाता है वह पद्य कहलाता है। कोई कोई छन्द और पद्य दोनों को एकही अर्थ का वाचक मानते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें उनका पद्य अच्छा ही होता है; परन्तु, सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्दोयोजना करनी चाहिए। जैसे समय-विशेष में राग-विशेष के गाए जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होता है, वैसेही वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता के आस्वादन करनेवालों को अधिक आनन्द मिलता है। गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्तरूपी हारलता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञानता दर्शित होती है। इस छोटे से लेख में हम इस बात का विवेचन नहीं कर सकते, कि किस विषय के लिये कौन छन्द प्रयोग में लाना चाहिए। काव्य के मर्म्मज्ञ निपुण कवि स्वयमेव जान सकते हैं, कि कौन छन्द कहां विशेष शोभावर्धक होगा। प्राचीन संस्कृत-कवि इसका पूरा पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति छन्द में किया है; नीति का वंशस्थ में किया है; चन्द्रोदयादि का रथोद्धता में किया है; वर्षा और प्रवास का मन्दाक्रान्ता में किया है; और स्तुति, यश, शौर्य आदिका शार्दूलविक्रीड़ित और शिखरिणी में किया है। यही नहीं; किन्तु वृत्तरचना में छन्दःशास्त्र के नियमों के अतिरिक्त वे लोग और और विषयों का भी ध्यान रखते थे। दोधक वृत्त का लक्षण ३ भगण और २ गुरु है; इस नियम का प्रतिपालन करते हुए वे तीन ही तीन अक्षरवाले शब्द प्रयोग करते थे; जिससे छन्द की शोभा विशेष बढ़ जाती थी। तोटक में वे रूखे अक्षरवाले ही शब्द रखते थे; क्योंकि, ऐसे अक्षरवाले शब्दों से संगठित हुआ तोटक, ताल की द्रुतगति के समान, मन को सविशेष आनन्दित करता है। भाषा-कवियों को भी इन बातों का विचार रखना चाहिए।

४—हम समझते हैं कि दोहा, चौपाई, सोरठ, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और और छन्द भी वे लिखा करें। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिए जावें। हमारा अभिप्राय यह है कि, इनके साथ साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गए वृत्तों में से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी हिन्दी में प्रचार किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार भाषा में होने से भाषा काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। किसी किसी ने इन वृत्तों का प्रयोग आरम्भ भी कर दिया है। यह सूचना उन्हीं लोगों के लिये है जो सब प्रकार के छन्द लिखने में समर्थ हैं; जो घनाक्षरी और दोहे अथवा चौपाई की सीमा उल्लंघन करने में असमर्थ हैं उनके लिये नहीं।

आजकल के बोलचाल की हिन्दी (खड़ीबोली) की कविता उर्दू के से एक विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है; अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिएं।

किसी किसी को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है; उसेही वे अच्छा लिख सकते हैं। उनको दूसरे प्रकार के छन्द लिखने का प्रयत्न भी न करना चाहिए। यदि कविता सरस और मनोहारिणी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो चाहे वह एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द में क्यों न हो, उससे आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और बिहारी लाल ने दोहा लिख कर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है। प्राचीन कवियों को भी किसी किसी वृत्त से समधिक स्नेह था; वे अपने आदृत वृत्त को ही अधिक काम में लाते थे, और उसमें उनकी कविता खुलती भी अधिक थी। भारवि का वंशस्थ, रत्नाकर की वसन्ततिलका, भवभूति और जगन्नाथ राय की शिखरिणी, कालिदास की मन्दाक्रान्ता और राजशेखर का शार्दूल-विक्रीड़ित इस विषय में प्रमाण है।

५-हमारा यह मत है कि पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिएं। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अङ्गरेज़ी और बँगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं, कि हमारी भाषा में वे न लिखे जावें। संस्कृत ही हिन्दी की माता है। संस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकबन्दी के बखेड़े से बहिर्गत है। अतएव इस विषय में यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें तो सफलता की पूरी पूरी आशा है। अनुप्रास-युक्त पादान्त सुनते सुनते हमारे कान उस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गए हैं। इसीलिये अनुप्रासहीन रचना अच्छी नहीं लगती। बिना तुकवाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगेगी; इसमें कोई सन्देह नहीं। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाड़म्बर कविता के आधार नहीं हैं जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जावे या उसे कोई अपरिमेय हानि पहुंचे। कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूंढ़ने का प्रयास उठाने में समर्पक शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुकरता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ को व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त में अनुप्रासहीन छन्द भाषा में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में प्रयोग किए गए शिखरिणी, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनमें अनुप्रास का न होना भाषा-काव्य के रसिकों को बहुत ही कम खटकेगा। पहिले पहल इन्हीं वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए।

किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रम भङ्ग होता देख प्राचीनों के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नवीन संशोधन के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टा और दोषोद्भावना करने लगते हैं। हमको आशङ्का है कि इस विषय में भी किसी किसी का मत हमारे मत के प्रतिकूल होगा। परन्तु कुछ दिनों में हमारे प्रतिपक्षियों को इस नवीन सूचना की उपयोगिता स्वीकार करके, अपने मत को उन्हें अवश्यमेव भ्रान्तिमूलक मानना पड़ेगा। इसका हमको दृढ़ विश्वास है। अतः इस विषय में यदि कोई कुछ प्रतिकूल भी कहे तो भी उसके कहने की ओर नयननिक्षेप न करना चाहिए। हमारा यह कथन नहीं कि पादान्त में अनुप्रासवाले छन्द नितान्त लिखे ही न जाया करें। हमारा कथन इतना ही है कि, इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रासहीन छन्द भी लिखे जावें। बस।

भाषा

६-कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझकर अर्थ को हृदयङ्गम कर सकें। पद्य को पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द आता है और पढ़ने में जी लगता है। परन्तु, जिस काव्य का भावार्थ क्लिष्टता से समझ में आता है उसके आकलन में जी नहीं लगता और बार बार अर्थ का विचार करते करते उससे विरक्ति हो जाती है। जो कुछ लिखा जाता है वह इस अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का हृद्गत-भाव दूसरे समझ जावें; यदि इस उद्देश्य ही को सफलता न हुई तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखना ही व्यर्थ हुआ। खेद की बात है कि, हमारे लेख बहुधा क्लिष्ट होते हैं; परन्तु हम सत्य बातको सानन्द स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार वांछनीय है। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकर हैं; परम विद्वान् होकर भी इन्होंने सरलता ही को विशेष मान दिया है; इसीलिये इनके काव्यों का इतना आदर है। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है वह बहुत कम लोक-मान्य होता है। कवियों को इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

७—कविता करने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है। इस समय के कोई कोई कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृकपात् तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। ब्रजभाषा की कविता में कविजन मन मानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं। जहां तक सम्भव हो शब्दों के मूलरूप न बिगाड़ने चाहिएं।

मुहाविरे का भी विचार रखना चाहिए। बे मुहाविरे की भाषा अच्छी नहीं लगती। "क्रोध क्षमा कीजिए" इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुंचाते हैं। मुहाविरा ही भाषा का जीव है; उसे जिसने नहीं जाना उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

८—विषय के अनुकूल शब्दस्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिये बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आंच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दों का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी किसी स्थल-विशेष पर रूक्षाक्षरवाले शब्द अच्छे लगते हैं; परन्तु, और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों ही को प्रयोग में लाना उचित है। शब्दों के चुनने में अक्षरमैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए। अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अंतःकरण को द्रवीभूत कर देता है। "टुटत अडु बैठे तरु जाई" इत्यादि वाक्य लिखना भाषा की कविता के मुख पर कालिमा लगाना है।

शब्दों को यथास्थान रखना चाहिए। शब्द स्थापना ठीक न होने से कविता की जो दुर्दशा होती है और अर्थांश में जो क्लिष्टता आजाती है उसके उदाहरण देखने हों तो हमारी लिखी हुई "हिन्दी कालिदास की समालोचना" देखिए।

९—गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिए। यह एक हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य-समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए। गद्य का प्रचार हिन्दी में थोड़े दिन से हुआ है। पहले गद्य न था; भाषा का साहित्य केवल पद्यमय था। गद्य-साहित्य की उत्पत्ति के पहिले पद्य में ब्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था। अब कुछ अन्तर होने लगा है। गद्य की, इस समय, उन्नति हो रही है; अतएव अब यह सम्भव नहीं कि, गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत करलेता है। यह बात भाषा के सम्बन्ध में भी तद्वत् पाई जाती है। ५० वर्ष पहले के कवियों की भाषा इस समय के कवियों की भाषा से मिलाकर देखिए। देखने से तत्काल विदित हो जायगा, कि आधुनिक कवियों पर बोलचाल की हिन्दीभाषा ने अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है; उनकी लिखी ब्रजभाषा की कविता में बोलचाल (खड़ी बोली) के जितने शब्द और मुहाविरे मिलेंगे उतने ५० वर्ष पहले के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों की कविता में कदापि न मिलेंगे। यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा, व्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिये कवियों को चाहिए कि क्रम क्रम से वे गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें। बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। जो लोग हिन्दी ही बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की शुश्रुषा करते हैं उनके पद्य में व्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिन तक नहीं रह सकता।

अर्थ

१०—अर्थ-सौरस्य ही कविता का जीव है। जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं वह कविता ही नहीं। कवि जिस विषय का वर्णन करै उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए; ऐसा न होने से अर्थसौरस्य नहीं आ सकता। विलाप वर्णन करने में कवि के मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयम् विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयम् अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तः-करण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि, वर्ण्य-मान नदी, पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयम् उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। कवि के आत्मा का वर्ण्य-विषयों से जब, इस प्रकार, निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता को पढ़ कर पढ़नेवालों के हृदय पर तद्वत् भावनाएं उत्पन्न होती हैं। कविता करने में, हमारी समझ में, अलङ्कारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। विषयों का तादात्म्य करते हुए धाराप्रवाह से जो कुछ टेढ़ा या सीधा उस समय मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिए। बलात् किसी अर्थ के लाने की चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृतभाव से जो कुछ आजावे उसे ही पद्यबद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीत अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए कि पद्य के पढ़ते ही पढ़ने वाले उसे तत्क्षण हृदयङ्गम कर सकें; क्लिष्टकल्पना अथवा सोच विचार करने की आवश्यकता उन्हें न पड़े।

११—बहुत से शब्द ऐसे हैं जो सामान्य रीति से सब एकही अर्थ के व्यञ्जक हैं, परन्तु विशेष ध्यानपूर्वक देखने अथवा धातु के अर्थ का विचार करने से पृथक् पृथक् शब्दों में पृथक् पृथक् शक्ति-यों का गर्भित रहना प्रकट होता है। 'तन्वी' शब्द का सामान्य अर्थ स्थलविशेष में स्त्री होता है, परन्तु 'तनु' शब्द का कृश अर्थ होने के कारण 'तन्वी' का विशेष अर्थ दुर्बल है। यदि कहें कि "यह तन्वी अपने पति के साथ सुखसे अपने घर रहती है" तो यहां 'तन्वी' शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक नहीं हो सकता जो अर्थ 'रामा' इत्यादि शब्दों का होता है। परन्तु, यदि, कहें कि "यह तन्वी अपने प्रिय-तम का वियोग बड़े धैर्य्य से सहन कर रही है" तो यहां 'तन्वी' शब्दकी गर्भित शक्ति से वियोग-द्योतक अर्थ को सहायता पहुंचती है। अतः ऐसे स्थल पर इस शब्दका प्रयोग बहुत प्रशस्त है। अर्थ-सौरस्य के लिये जहां तक सम्भव हो, ऐसेही ऐसे शक्तिमान् शब्द प्रयोग करने चाहिएं।

१२—घनाक्षरी और सवैया आदि के कोई कोई कवियों की कविता में कभी कभी अनेक निरर्थक शब्द आजाते हैं। कभी कभी शब्दों के ऐसे विकृत रूप प्रयुक्त हो जाते हैं कि उनका अर्थ ही समझ में नहीं आता। कभी कभी पादान्त में समान अक्षर लाने ही के लिये निरर्थक अथवा अपभ्रष्ट शब्द लाए जाते हैं। व्रजभाषा की कविता, अथवा घनाक्षरी या सवैया के हम प्रतिकूल नहीं हैं; परन्तु, हमारा यह मत है कि, अर्थ के सौरस्य ही की ओर कवियों का ध्यान अधिक होना चाहिए; शब्दों के आड़म्बर की ओर नहीं। अर्थहीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिएं और न शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ना ही चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

शब्दों को बिगाड़ने से उनके बिगड़े हुए रूप पढ़नेवालों के कान को खटकते हैं और जिस अर्थ में वे प्रयुक्त होते हैं उस अर्थ को कभी कभी वे पोषकता भी नहीं करते।

१३—अश्लीलता और ग्राम्यतागर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए; और न देश, काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। कविता को सरस करने का प्रयत्न करना चाहिए। नीरस पद्यों का कभी आदर नहीं होता। जिसे पढ़ते ही पढ़नेवाले के मुख से 'वाह' न निकले, अथवा उसका मस्तक न हिलने लगे, अथवा उसकी दन्तपंक्ति न दिखलाई देने लगे, अथवा जिस रस की कविता है उस रस के अनुकूल वह व्यापार न करने लगे तो वह कविता कविता ही नहीं; वह तुकबन्दी मात्र है। कविता के सरस होने ही से ये उपर्युक्त बातें हो सकती हैं; अन्यथा नहीं। रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है। श्रीकण्ठचरित के कर्त्ता ने ठीक कहा है—

नैस्तैरलंकृतिशतैरवतंसितोऽपि रूढ़ो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
रसं विना घनरसप्रसराभिषेकं काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥

अर्थात् सैकड़ों अलङ्कारों से अलंकृत होकर भी, शब्द-शास्त्र के उच्चासन पर अधिरूढ़ होकर भी, और सब प्रकार सौष्ठव को धारण करके भी, रस रूपी अभिषेक के बिना कोई भी प्रबन्ध काव्याधिराज पदवी को नहीं पहुंचता।

विषय

१४—कविता का विषय मनोरञ्जक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के "गतागत" की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल; अनन्त आकाश; अनन्त पृथ्वी; अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरञ्जन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि, इन विषयों को छोड़कर स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कोई कोई कवि कविता की चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अन्धपरम्परा! यदि "मेघनादवध" अथवा "यशवन्तराव महाकाव्य" वे नहीं लिख सकते, तो उनको ईश्वर की निःसीम सृष्टि में से छोटे से छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी छोटी कविता करनी चाहिए। अभ्यास करते करते शायद कभी किसी समय वे इससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ होवें और दण्डी कवि के कथनानुसार* शायद कभी वाग्देवी उनपर सचमुच प्रसन्न होजावै। के हाव भावादि के वर्णन का अभ्यास करने वालों पर भी सरस्वती की कृपा हो सकती है; परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करनी ही अच्छा है।

१५—संस्कृत में सहस्रशः उत्तमोत्तम काव्य विद्यमान हैं। अतः उस भाषा में काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, कुवलयानन्द, रसतरङ्गिणी आदि साहित्य के अनेक लक्षणग्रन्थों का होना अनुचित नहीं। परन्तु हिन्दी भाषा में सत्काव्यों का प्रायः अभाव होने के कारण अलङ्कार और रस-विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रन्थों के बनने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'हेला'-हाव का लक्षण और उसका चित्र देखने से क्या लाभ? अथवा दीपक अलङ्कार के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदों के जानने का क्या उपयोग? हिन्दी में ऐसे कितने काव्य हैं जिनमें ये सब भेद पाए जाते हैं? हमारी अल्पबुद्धि के अनुसार रस-कुसमाकर और

* न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥
काव्यादर्श।

अर्थात्—पूर्व वासना और अद्भुत प्रतिभा न होने पर भी शास्त्र के अनुशीलन और यत्न के अभिनिवेश द्वारा उपासना की गई सरस्वती कुछ न कुछ अनुग्रह अवश्य करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जसवन्तजसो(!)भूषण के समान ग्रन्थों की, इस समय, आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि किसी आदर्श पुरुष के चरित्र को अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हमारे हिन्दी-साहित्य को अलभ्य लाभ होता। कनिष्ठा और ज्येष्ठा का भेद और उनके चित्र देखे तो क्या और न देखे तो क्या? और उत्प्रेक्षा अलङ्कार का लक्षण नामानुसार सिद्ध हो गया तो क्या और न सिद्ध हो गया तो क्या? नायिकाओं के भी झगड़े में उलझकर हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिए कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए; अलङ्कार-रस और नायिका-निरूपण बहुत हो चुका।

१६—इस समय, कवियों का एक दल कवि समाजों और कवि-मण्डलों में बद्ध होकर समस्या-पूर्ति करने में व्यग्र हो रहा है। इन पूर्तिकारों में से कुछ को छोड़ शेष सब कविता के नाम को बड़ी ही अवहेलना कर रहे हैं। इनको चाहिए, कि बिना योग्यता सम्पादन किए समस्यापूर्ति करने के झगड़े में ये न पड़ें। अच्छी समस्यापूर्ति करना असाधारण प्रतिभावान् का काम है। एक साधारण कवि अपने मनोऽनुकूल विषय पर एकही घड़ी में चाहे ५० पद्य लिख डाले और वे सब चाहे अच्छे भी हों; परन्तु किसीकी समस्या के टुकड़े पर अच्छी कविता करने में वह शायद ही सफल-मनोरथ होगा। समस्यापूर्ति के लिये असामान्य कौशल और प्रबल प्रतिभा की आवश्यकता है। इस समय, प्रतिभा का पूरा पूरा विकास बहुत कम देखा जाता है; इसलिये समस्याओं की पूर्तियां भी प्रायः अच्छी नहीं होतीं। हमारी यह सम्मति है कि इस समस्या-पूर्ति के विषय को छोड़ कर, अपनी अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुनकर, कवियों को, यदि बड़ी न हो सकै, तो छोटी छोटी स्वतन्त्र कविता करनी चाहिए; क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में प्रायः अभाव है।

१७—संस्कृत और अङ्गरेज़ी काव्यों का हिन्दी में अनुवाद करने की ओर भी कवियों की रुचि बढ़ने लगी है। परन्तु स्वतन्त्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अन्यभाषा में अनुवाद करना बड़ा कठिन काम है। अङ्गरेज़ी से हिन्दी में और संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने में, क्रमशः पण्डित श्रीधर पाठक और राजा लक्ष्मणसिंह ही ने सफ़लता प्राप्त की है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब पहले डालने ही में कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो चार बूंद इधर उधर टपके वह दूसरी शीशी में चला भी गया, तो इस उलट फेर करने में उसके सुवास का विशेषांश अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करनेवालों को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है; क्योंकि अनुवाद के द्वारा उसके गुणों का ठीक ठीक परिचय न होने के कारण पढ़नेवालों की दृष्टि में वह हीन हो जाता है। इसलिये किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं। परन्तु अच्छा कवि होना ही दुर्लभ है। महाकवि मङ्खक ने यथार्थ कहा है—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसंघेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पाः यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

अर्थात्—अर्थरत्न और सुवर्णसमूह से जो परिपूर्ण नहीं हैं वे महादरिद्री लोग केवल रीतिमात्र का अवलम्बन करके कवीश्वर की पदवी कदापि नहीं पा सकते।

१८—काव्य के गुणों और दोषों की विवेचना संस्कृत की जिन पुस्तकों में है उनमें कवियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य और अकर्तव्य पर बहुत कुछ कहा गया है; परन्तु, उन सब बातों का विचार हम यहां पर नहीं कर सकते। केवल स्थूल स्थूल बातों ही के विचार करने की इच्छा से हमने यह लेख आरम्भ किया था; अतएव, अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

शिक्षा

किसी ने ठीक ही कहा था कि "वाणिज्ये वसते लक्ष्मी"। परन्तु अब तो अवस्था ही दूसरी है, अतएव अब "वाणिज्ये वसते सर्वम्" यही कहना पड़ेगा। संसार का चक्र कदापि स्थिर न रहा है न रहेगा। वह सदा चलायमान है। इससे जो एक समय बियावान जङ्गल था, वह अब जनस्थल हो सुन्दर उच्च प्रासादों से सुशोभित है; और जहां किसी काल में एक सुरम्या जनसंकुला नगरी बसी थी, वहां अब उसके एक चिन्ह भी पृथ्वी के ऊपर नहीं देख पड़ते। इसी प्रकार से जो जातियां एक समय सर्वोत्तम आसन पर विराजती थीं, आज उनको सभ्य कहने में भी लोग सकुचाते हैं। कुछ तत्वज्ञों का यह कथन या सिद्धान्त ही है कि जातियां गिरकर यदि उठतीं नहीं तो अब तक कोई भी उनमें से नहीं उठी है। अंशतः यह सत्य हो सकता है, पर गिरकर जातियां यदि उठी नहीं तो पड़ी भी नहीं, वे बैठने में समर्थ हुई हैं और सम्भव है कि समय पाकर वे खड़ी भी हो जांय, और तब पुनः अपने आसन को ग्रहण कर सकें। इस उद्देश्य का सफलीभूत होना सम्भव हो अथवा असम्भव, पर आँखों के सामने तो इसी उद्देश्य का रहना उचित और श्रेयस्कर है। अस्तु इस उद्देश्य को सामने रख कर अधोपतित जातियों को क्या करना उचित है इसीका विचार इस प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है। कुछ लोग सामाजिक सुधार, कुछ लोग राजनैतिक स्वत्वप्राप्ति और कुछ लोग अन्य बातों को ही देश की उन्नति का तारक मन्त्र मानते हैं। पर संसार की अवस्था दिनोदिन बदलती जाती है। अपनेको वर्त्तमान अवस्थानुकूल बनाना ही उन्नति की सोपान पर पैर रखना है। किसी किसी का यह मत है कि शारीरक वा सैनिक बल ही से एक जाति दूसरी जाति पर प्रभुत्व जमा सकती है। यह किसी अंश में ठीक हो सकता है, पर आजकल वाणिज्य की उन्नति से ही प्रभुत्व जमते देख पड़ता है। जिस जाति में इसका अभाव है, जहां इसमें कुशल लोग नहीं, वहां की अवस्था अत्यन्त ही शोचनीय है। अतएव यह निर्धारित होता है कि शिल्पनैपुण्य का ही होना परम आवश्यक है। इसलिये इसे प्राप्त करने का उपाय केवल तद्विषयक उपयुक्त और उत्तम शिक्षा ही है। आजकल प्रतिदिन नाना प्रकार के द्रव्यों का आविष्कार हो रहा है और नई नई वस्तुओं के बनाने के लिये नए नए सुन्दर यन्त्र बनते चले जाते हैं जिनसे, दिनोदिन चीजें अच्छी और सस्ती हो रही हैं। इसलिये जबतक शिल्पशिक्षा के साथ ही साथ उच्च वैज्ञानिक शिक्षा को न देंगे तब तक दूसरों के सम्मुख अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त साधारणतः स्मृतिशक्ति आदि मस्तिष्क-शक्तियों को परिमार्जित करना भी आवश्यक है। इसलिये साधारण शिक्षा का देना प्रयोजनीय होगा। यदि यह कहा जाय कि अमुक विषय की शिक्षा से कोई लाभ नहीं है तो यह ठीक नहीं, क्योंकि प्रथमतः तो प्रत्येक विषय मस्तिष्क शक्तियों को परिमार्जित करते हैं, दूसरे सम्भव है कि जिन शास्त्रों से अभी कुछ काम नहीं निकलता, उनसे आगे चलकर निकल सके। अतएव यह सिद्धान्त निकलता है कि जातीय उन्नति के लिये साधारण शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा और शिल्प शिक्षा की आवश्यकता है।

यह बात सर्वसम्मत है कि प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के लिये शिष्य, शिक्षक और शिक्षादान इन तीन वस्तुओं का बड़ा प्रयोजन है। इन तीनों में से यदि एक भी न हो तो शिक्षा का काम नहीं चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगा। इस बात को सब लोग मानते हैं कि भारतवासी सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। कोई यह नहीं कहता कि अमुक विषय में यह शिक्षा नहीं पासकते। अतएव शिक्षाशक्ति के रहने पर उसे परिमार्जित करना और बढ़ाना कोई दुःसाध्य काम नहीं है। यह साधारण रीति से काम करने ही से हो सकता है। परन्तु शिक्षा तब तक कदापि अच्छी नहीं हो सकती जब तक अच्छे शिक्षक न मिलें। शिक्षकों में निम्नलिखित गुणों का होना नितान्त आवश्यक है। बिना इनके इन्हें शिक्षक कहना और उनसे उत्तम शिक्षा की आशा करना भूल है—चरित्रबल, श्रमशीलता, धैर्य्य, निज कर्तव्य में उत्साह, तथा उसके महत्व और गौरव में दृढ़ विश्वास। किन्तु इन सब बड़ी बड़ी बातों को छोड़कर शिक्षक में उस विषय का पूरा ज्ञान चाहिए जिसको वह शिक्षा देता हो, और उसे शिक्षा-प्रणाली का पूर्णवेत्ता होना चाहिए। कुछ लोगों का यह विचार है कि ज्ञान का रहना ही अलम् है, प्रणाली आती हो या नहीं। पर आजकल के शिक्षा-तत्वज्ञों ने इस बात को पूर्णतया स्पष्ट करके दिखा दिया है कि बिना उपयुक्त प्रणाली के जाने शिक्षा का कार्य सफलतापूर्वक करना नहीं आसकता। जैसे वैद्य, बिना रोगी का रोग समझे उसे औषधि नहीं दे सकता, वैसेही शिक्षक बिना अपने शिष्य के स्वभाव, उसकी प्रकृति और मस्तिष्क-शक्ति को जाने उसे पूरी पूरी शिक्षा नहीं दे सकता। इस लिये हमारे देश में पहिले इस बात का प्रबन्ध होना चाहिए कि हमारे भावी शिक्षकों को उपयुक्त शिक्षा हो। अभी थोड़े दिन हुए हैं कि भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में ऐसे विद्यालय स्थापित हुए हैं, पर उनकी अवस्था ऐसी हो रही है कि होने से उनका न होना ही अच्छा है। जिन्हें शुद्ध बोलने नहीं आता, जो स्वयं उन नियमों का पालन नहीं कर सकते, जिन्हें वे अपने शिष्यों को सिखाया चाहते हैं, जो स्वयं साधारण शिक्षा पाकर उच्च शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों को पढ़ाने का साहस करते हैं, ऐसे जिन विद्यालयों के अध्यापक हैं, उनसे कहां तक हमारे भावी शिक्षक पढ़कर अच्छे सांचे में ढाले जा सकेंगे, यह विज्ञ पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि या तो अच्छे विद्यालय स्थापित किए जांय या भावी शिक्षकगण विदेश भेजे जांय। ये दोनो कार्य बहु-व्यय-साध्य हैं।

अच्छे शिक्षकों के होने पर भी वे सामान्य वेतन पर नहीं मिल सकेंगे और यदि मिलेंगे भी तो ठहरेंगे नहीं। कुछ लोगों का यह विचार है कि शिक्षकों में स्वार्थत्याग का ध्यान रहना अच्छा है, यह ठीक है, पर वास्तव में ऐसे लोग कितने मिल सकते हैं? शिक्षक के लिये यह बात बड़ी आवश्यक है कि वह समाज में प्रतिष्ठा का पात्र रहे। यदि उसकी रहन सहन ऐसी न हो सको तो उसका प्रभाव शिष्यों पर कदापि अच्छा न पड़ सकेगा। उसकी आय इतनी होनी चाहिए कि जीविका निर्वाह के लिये उसे दूसरे उपायों का अवलम्बन न करना पड़े। यदि उसे कम वेतन मिलेगा तो वह अवश्य ही कोई न कोई उपाय उपयुक्त आय का निकालेगा और उसके ऐसा करने से उस विद्यालय को उससे पूरा पूरा लाभ न पहुंच सकेगा। इसके अतिरिक्त उसे इतना समय मिलना चाहिए कि जिस विषय की वह शिक्षा देता है उसकी नवीन पुस्तकों का निरन्तर अध्ययन करता रहे, ऐसे ऐसे पत्र देखता रहे जिनमें इन विषयों की चर्चा रहती हो। यदि उसे दो तीन विषयों को पढ़ना या प्रति सप्ताह २४ या ३० घण्टे काम करना होगा तो वह इन बातों के करने में कदापि समर्थ न होगा। सारांश यह कि शिक्षक के लिये चारों ओर धन ही धन की आवश्यकता देख पड़ती है। बिना इसके उसका काम नहीं चल सकेगा और बिना अच्छा वेतन दिए और बिना उससे कम काम लिए कभी अच्छे अध्यापक नहीं मिलेंगे। कुछ लोग अवैतनिक कार्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं, पर वास्तव में इससे बढ़कर कार्य को हानि पहुंचाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला दूसरा उपाय नहीं हो सकता। लोग सदा उसके अनुगृहीत रहेंगे इससे उसके दोषों पर ध्यान न देंगे, और न देना चाहेंगे और उन्हें जानकर भी मौन का अवलम्बन करना नीतिसङ्गत मानेंगे। मेरे कथन का यह आशय नहीं है कि अच्छे अवैतनिक कार्यकर्ता मिलेंहीगे नहीं। मिलेंगे अवश्य, पर बहुत कम! अतएव उपयुक्त वेतन देकर ही कार्य कराना उचित है।

अब यदि अच्छे शिक्षकों का प्राप्त करना बहुधनसाध्य है तो इस बात का जान लेना भी उचित है कि कोई अध्यापक एक साथ २०, २५ लड़कों से अधिक को भली भांति शिक्षा न देसकेगा। एक श्रेणी के असंख्य लड़कों को बैठा कर शिक्षा देना कभी भी लाभदायक नहीं होता। अध्यापक नियत समय तक अपने विषय के सम्बन्ध में एक वक्तृता को देदेना ही अपने कर्तव्य का शेष समझता है। बालक समझते हैं या नहीं इस पर उसका ध्यान नहीं जा सकता, अथवा इसके विचार करने का उसे समय भी नहीं मिलता कि किस बालक को किस प्रकार बतलाने से ठीक होगा। इन बातों पर विचार कर यही मानना पड़ेगा कि एक श्रेणी में २०, २५ से अधिक बालक कभी नहीं रहने चाहिए। यह कार्य भी व्ययसाध्य है।

अच्छी शिक्षा देने के लिये और किन किन बातों का होना आवश्यक है इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। सबसे पहिले तो शिक्षागृह एकान्त पर साफ सुन्दर और हवादार होना चाहिए। सुन्दरता मन को मुग्ध कर आत्मा को उन्नत करती है। एक कोपड़े में बैठाकर पढ़ाने से वह प्रभाव नहीं पड़ सकता जो एक दिव्य गृह में बैठाने से हो सकता है। यह पूछा जा सकता है कि प्राचीन काल में तो सुन्दर सुन्दर गृह नहीं बने हुए थे। उस काल में तो ऋषि लोग पर्णकुटीर में ही बैठ कर शिक्षा देते थे और जैसे जैसे विद्वान् उस समय हुए वैसे अब देखने में नहीं आते। यह ठीक है, पर प्राकृतिक शोभा और सुन्दरता से बढ़ कर और कोई सुन्दरता नहीं है। एकान्त निर्जन स्थान में लता पत्रादि से आच्छादित कुटीरों में बैठ कर निर्झरों का आनन्द उठाना और पठन पाठन करना वास्तव में नैसर्गिक सुख का अनुभव करना है। पर उस समय की अवस्था में अब बहुत कुछ परिवर्तन होगया है। अब उस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कहां, वह गुरुसेवा, वह गुरुआज्ञा पालन कहां और वह शान्ति और सुखमय जीवन कहां? अस्तु स्कूल या कालेज का भवन लतापत्रादि से आच्छादित रहना चाहिए। गर्मी के दिनों में पंखों का सुप्रबन्ध होना चाहिए। टेबुल कुर्सी बेंच आदि ऐसे होने चाहिए कि किसी को कष्ट न हो। ऐसा न हो कि लम्बे लड़के को नीची बेंच और टेबुल और नाटे लड़के को ऊंचे बेंच और टेबुल मिलें। युरोपीय देशों में आज कल ऐसे टेबुल बनने लगे हैं जो आवश्यकतानुसार ऊंचे वा नीचे किए जा सकते हैं। विद्याभवन के चारो ओर इतना स्थान छूटा रहना चाहिए कि व्यायामस्थान आदि का उत्तम प्रबन्ध रह सके। दुःख की बात है, इन सब बातों पर हमारे देश में साधारण ध्यान भी नहीं दिया जाता। पंखे कहीं कहीं तो इस बुद्धिमानी से लगाए जाते हैं कि दिवालों को हवा लगे तो लगे पर लड़कों को भूल कर भी न लगने पावे। फिर जिस गृह में पठन पाठन का काम होता है उसीमें पंखाकुली भी बैठा दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब वह ऊंघने लगता है तो लड़कों का ध्यान पढ़ने पर से हट कर उसके ऊंघने की ओर लग जाता है और वे अति उत्कण्ठा से इस बात की प्रतीक्षा करने लगते हैं कि कब वह ऊंघ कर गिरता है। ऐसी बुद्धिमानी से लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना रहती है। जिन महानुभावों के हाथ में स्कूलों और कालिजों का प्रबन्ध हो, उन्हें इन बातों पर ध्यान रखना चाहिए और विद्याभवन को जहां तक हो सके रम्य और चित्ताकर्षक बनाना चाहिए। साथ ही व्यायाम आदि के लिये भी विस्तृत स्थान का होना प्रयोजनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात को तो सब लोग जानते और मानते हैं कि प्रत्येक विद्याभवन में एक स्थान पुस्तक आदि के पढ़ने का और एक पुस्तकालय का चाहिए। प्रायः यह देखने में भी आता है। पुस्तकालय में पुस्तकों के अतिरिक्त अच्छे अच्छे तथा प्रत्येक विषय के मासिक तथा अन्य सामयिक पत्रों का रहना आवश्यक है। हमारे देश में इसका पूर्ण अभाव रहता है। यूरप और अमेरिका के एक एक स्कूलों में २००, २५० पत्र तक आते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय में वैज्ञानिक यन्त्रादि तथा उस विषय की शिक्षा के लिये एक परीक्षागृह का रहना अत्यन्त आवश्यक है। विज्ञान शिक्षा का फल यही है कि जिसमें पढ़नेवालों की मस्तिष्क-शक्तिओं की उन्नति और शिक्षा इस प्रकार से की जाय कि जिसमें समय पाकर वह पढ़नेवाला स्वयं नए आविष्कार करने में समर्थ हो सके। इसलिये लड़कपनही से उसे सब बातों को अपनी आंखों से देखना, अपने कानों से सुनना और अपने हाथों से करना चाहिए। बिना इसके किए उसमें उस आविष्कारिणी शक्ति का प्रदुर्भाव नहीं हो सकता। ऐसी सिक्षा के लिये एक अध्यापक एक साथ २०।२५ लड़कों को नहीं पढ़ा सकता। कुछ लोगों का यह विचार है कि कालिजों में इन सब गृहों और यन्त्रों का होना आवश्यक है, स्कूलों में नहीं। पर वे इस बात को नहीं जानते कि एक गृह को दृढ़ और बहुकालस्थायी बनाने के लिये पहिले उसकी नेव की ओर ध्यान देना पड़ता है, यदि नेव अच्छी न बनी तो गृह के शीघ्र ही गिर जाने की सम्भावना रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्कूल में भी सब बातों का रहना अत्यन्त आवश्यक है। सारांश यह कि जिस विषय की शिक्षा देनी हो उसकी पूर्ण सामग्री रहनी चाहिए। उद्भिजविद्या के लिये उद्यान, कृषीविद्या के लिये कृषीक्षेत्र, ज्योतिषविद्या के लिये मानमन्दिर, प्राचीन तत्व के लिये शिलालेख, ताम्रपत्रादि का होना अत्यन्तही प्रयोजनीय है। परन्तु येसब कार्य्य बिना बहुत सा धन व्यय किए नहीं हो सकते।

प्रत्येक स्कूल में इतिहास और भूगोल की शिक्षा दी जाती है और इसमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों और व्यक्तियों का वर्णन आता है, पर क्या एक भी स्कूल या कालिज ऐसा है जहां बालकों को इन स्थानों और व्यक्तियों के चित्र दिखाए जा सकें। स्वदेशीय बड़े बड़े लोगों के चित्रों अथवा प्रस्तरमूर्तियों के रखने से लड़कों में स्वदेशानुराग उत्पन्न होता है और उनके चरित्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। विलायत के डबल्यू ग्रिग एण्ड सँस ने सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की आज्ञासे ५०० ऐसे चित्र बनाए हैं जो भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध दुर्ग, प्रासाद, स्तूप, देवमन्दिर, शिलालेख स्तम्भ आदि के फोटो से बने हैं और जिन्हें मैजिक लालटैन द्वारा दिखा सकते हैं। ये सब ३०० रु० में मिल सकते हैं। इनको एकत्रित करके स्कूल और कालिजों में रखना कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु लाभ अनेक हैं।

स्कूलों के छोटे से छोटे दर्जों में ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं जिनमें रबर शीशा लकड़ी और जन्तु आदि का वर्णन रहता है। बंगाल में जो वर्नाक्यूलर शिक्षा की नई प्रणाली अभी स्वीकृत हुई है उसके अनुसार तो अब इस प्रकार की पढ़ाई का बहुत अधिक प्रचार हो जायगा। ऐसी अवस्था में इन सब वस्तुओं के नमूनों का रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह तो कभी आशा नहीं की जा सकती कि प्रत्येक स्कूल और कालिज के साथ लण्डन का बृटिश म्यूज़ियम या कलकत्ते का इण्डियन म्यूज़ियम बना दिया जायगा, पर सब में इन सब अद्भुत वस्तुओं और जीवों का अथवा उनके प्रतिरूप का रहना अत्यन्त आवश्यक है।

उत्कृष्ट शिक्षालय के लिये दो बातें और भी आवश्यक हैं—एक क्रीड़ा तथा व्यायामस्थल और दूसरा छात्रावास। मस्तिष्क रक्षा के साथही साथ शारीरक रक्षा उपयुक्त प्रकार से हो सकती है। एक के बिना दूसरे का होना असम्भव सा है। यदि कोई पुरुष अत्यन्त तीव्र तथा चमत्कारिणी बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हो परन्तु उसका स्वास्थ्य अच्छा न हो तो उसकी वह बुद्धि किसी काम की नहीं हो सकती। इसलिये व्यायाम आदि का करना अत्यन्त प्रयोजनीय है। इसके अतिरिक्त इसमें और भी कई प्रकार की शिक्षा होती है। जो नायक (Captain) बनाया जाता है उसे सदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि मेरे अधीनस्थ सब लोग मेरा कहा मानें और मुझसे प्रसन्न रहें। साथ ही उसे इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये बहुत कुछ स्वार्थ-त्याग करना पड़ेगा। अंगरेज़ी में एक प्रसिद्ध कहावत है कि वाटरलू का युद्ध ईटन के क्रीड़ा क्षेत्र में जीता गया था। इसका अर्थ यह है कि वेलिङ्गटन ने बाल्यावस्थाही में ईटन के क्रीड़ाक्षेत्र में इस बात की पूर्ण शिक्षा पाई थी कि नायक का काम कैसे करना चाहिए। यहां के लोगों को सुन आश्चर्य होगा कि विलायत और अमेरिका के एक एक स्कूल और कालिजों में शारीरक शिक्षा के लिये दो लाख तक प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। छात्रावास से भी अनेक लाभ हैं। प्रथम तो परस्पर में स्नेह और भ्रातृभाव की वृद्धि होती है। दूसरे अनेक लोग एक प्रकार के सांचे में ढाले जा सकते हैं। उनके एक से भाव, एक से विचार, एक से चरित्र और एकही सी रहन सहन हो सकती है और साथही बड़ी सुगमता से उन्हें गार्हस्थ्य धर्म पालन की शिक्षा दी जासकती है। परन्तु इन सब बातों के लिये उपयुक्त पुरुषों और प्रबन्ध की आवश्यकता है। ऐसा कभी भूल के भी न करना चाहिए कि फीस इतनी अधिक रख दी जाय कि जिसमें अधिक लोग छात्रावास से लाभ उठाने में ही असमर्थ हों। लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज के छात्रावास का प्रबन्ध अच्छा जान पड़ता है। वहां ७ या ८ लड़कों का एक समुदाय बना दिया जाता है और उसमें प्रत्येक लड़के को एक सप्ताह तक अपने समुदाय के सब लड़कों का सब प्रकार का प्रबन्ध करना पड़ता है। उन्हें केवल एक नौकर और एक रसोइया दे दिया जाता है। इस प्रकार के प्रबन्ध में असीम लाभ हैं जिनका वर्णन करना वृथा है। बुद्धिमान लोग उन्हें स्वयं विचार और समझ सकते हैं, परन्तु इसके लिये एक उपयुक्त कर्मचारी का होना आवश्यक है जो इस बात को देखता रहे कि लड़के अपव्यय या अधिक व्यय तो नहीं करते और उनके प्रबन्ध में किसी प्रकार की त्रुटि तो नहीं रहती। यदि ऐसा होता हो तो उसे उचित है कि उपयुक्त सम्मति और शिक्षा द्वारा इसका संशोधन कर त्रुटि को दूर करे।

निदान सब बातों में हमलोगों ने देखा कि विना प्रचुर धन की सहायता के उपयुक्त शिक्षा का काम नहीं चल सकता और बिना उपयुक्त शिक्षा के हुए देश का उद्धार नहीं हो सकता। तो अब यह धन कहां से आवे? छात्रों के वेतन से यह कार्य कभी भी सुसम्पन्न न हो सकेगा। इसके लिये दानवीर लोगों की सहायता ही काम कर सकेगी। हमारे देश के धनाढ्य लोग, जो अपने धन का अपव्यय करते हैं, उसे ही यदि वे अच्छे अच्छे कामों में लगावें तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है। अमेरिका के शिक्षाविषयक दान की बात सुनकर तो भारतवासियों को आश्चर्य होगा। गत जनवरी १९०० से उसी वर्ष के नवम्बर मास तक ११ महीनों में ५ करोड़ २० लाख रुपए का दान हुआ था। सायंस नाम का पत्र लिखता है कि एक सप्ताह में अमेरिका में प्रायः २८ लाख ३० हज़ार रुपए का दान हुआ था। दूर की बात जाने दीजिए, अभी उसी दिन मिस्टर कार्नेजी ने ३ करोड़ रुपए का दान इसलिये दिया है कि स्काटलैण्ड के चारो विश्वविद्यालयों में किसी स्काच छात्र को कुछ व्यय न देना पड़े, विना व्यय के वह पढ़ सके। वास्तव में यदि ऐसी जाति के लोग उन्नति न कर सकेंगे तो क्या हम लोग कर सकेंगे? आज तक भारतवर्ष में जिन जिन दानवीरों ने शिक्षा के लिये दान किया है उनका संक्षेपतः वर्णन कर हम अपने देशवासी धनाढ्य लोगों से सविनय यही प्रार्थना करेंगे कि वे इस ओर ध्यान दें और अपने धन को सुफल करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्द्राज में आजकल पचयप्पा नाम का एक

श्रीयुत पचयप्पा मुदालियर।

प्रसिद्ध कालिज वर्तमान है। जिन महाशय के नाम से यह कालिज चल रहा है उनका नाम पचयप्पा मुदालियर है। इनका जन्म १७५४ ई० में हुआ। जन्म होने के कुछ मास पहिले ही उनके पिता का परलोकवास हो गया था। उन दिनों में विलायती सौदागर तथा कम्पनी के नौकर व्यवसाय करके धनोपार्जन करते थे, पर देश भाषाओं के न जानने से उन्हें बड़ा कष्ट होता था और सदा द्विभाषियों की आवश्यकता रहती थी। मुदालियर महाशय ने कुछ शिक्षा पाकर यह काम प्रारम्भ किया और ईश्वरेच्छा से इसमें प्रचुर धन संगृहीत किया। मरते समय ये अपनी समस्त सम्पत्ति देवसेवा, दीन दुखियों की सहायता और संस्कृत शिक्षा के लिये दे गए। कई वर्ष तक इनकी इच्छा के अनुसार कार्य न होने से सब मिलाकर साढ़े सात लाख रुपया एकत्रित हो गया। अन्त में सन् १८४१ ई० में सुप्रीम कोर्ट की सम्मति से एक कालिज स्थापित हो गया जो अबतक मुदालियर महाशय की अक्षयकीर्ति की ध्वजा फहरा रहा है।

सर जमशेठजी जीजी भाई।

जमसेट जी जीजीभाई पारसियों में प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानी होगए हैं। इनका जन्म सन् १७८३ ई में हुआ था। छोटी ही अवस्था में उनके पिता माता दोनो परलोक सिधारे, अतएव उन्हें पढ़ाने लिखाने आदि का भार उनके श्वसुर ने अपने ऊपर लिया। सन् १७१९ ई० में ये एक जहाज़ पर नौकर होकर चीन गए। उस समय उनकी पूंजी केवल १२०) रु० की थी। जब ये बम्बई लौट कर आए तो ३५०००) रु० लगाकर इन्होंने व्यापार करना प्रारम्भ किया। इनके दान की प्रशंसा है। इन्होंने २५ लाख रुपए के लगभग दान किया। इसी उपलक्ष में गवर्नमेन्ट ने उन्हें नाइट की उपाधि दी। इन्होंने कई स्कूल तथा अनाथालय आदि स्थापित किए जो अबलों वर्तमान हैं।

पण्डित गङ्गाधर शास्त्री पटवर्द्धन बरोदा के रहनेवाले थे। जिस समय मरहट्ठों ने उत्तरी भारतवर्ष को जय किया तो उन्होंने मथुरा को अपनी राजधानी माना। उसी समय पटवर्द्धन महाशय भी मथुरा में आकर बसे। यहां इन्होंने एक संस्कृत की पाठशाला और आगन्तुकों के लिये एक धर्मशाला खोली। इन दोनों कार्यों की सहायता के लिये महाराज सेन्धिया ने उन्हें ५ गांव दिए। जब बृटिश सिंह ने उत्तरी भारत मरहट्ठों से जीता और मथुरा भी उनके हाथ आया, उस समय ये गांव उनसे नहीं लिए गए, वरन् उनपर बहुत थोड़ा कर लगाया गया। पटवर्द्धन महाशय ने बिवाह नहीं किया था। इसलिये अपनी निजकी सन्तति न थी। पर कई भतीजे थे जिन्हें अनुपयुक्त पा उन्होंने मरने के पूर्व अपनी समस्त सम्पत्ति ईष्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दी कि जिसमें उसकी आय से धर्मशाला और संस्कृत पढ़ाने का काम निरन्तर चला जाय। उनकी मृत्यु सन् १८१८ में हुई। उस समय डाईरेक्टर्स ने यह निश्चिय किया कि दो गांव की आय तो धर्मशाला में लगाई जाय और शेष आय से एक कालिज चलाया जाय। जिस समय सन् १८२३ में आगरा कालिज स्थापित हुआ तो आय में का १७८००० एकत्रित हो गया था। इसके प्रामेसरी नोट लेलिए गए और उनकी आय भी कालिज को दी जाने लगी। अब प्रतिवर्ष २२०० रुपया आगरा कालिज को मिलता है।

प्रसन्नकुमार ठाकुर का नाम बङ्गाल में

बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर।

प्रसिद्ध है। इन्होंने टागोर ला लेक्चर्स स्थापित कराए और उसके लिये तीन लाख रुपया दान दिया।

हाजी मुहम्मद मोहसिन का दान भी प्रसिद्ध है। इन्हींकी सहायता से हुगली कालेज प्रतिष्ठित हुआ और इन्हीं के दान से आज दिन बङ्गाल में सहस्रों मुसलमान उनके स्कूलों और कालिजों में कम फीस दे कर पढ़ सकते हैं। इनके दान का परिमाण नौ लाख के लगभग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर मङ्गलदास नाथूभाई का नाम बम्बई के सब पठित लोग जानते हैं। शिक्षा के लिये जो कुछ

सर मङ्गलदास नाथूभाई।

इन्होंने दान किया, उससे इनकी बड़ी कीर्त्ति हुई। सन् १८६३ में इन्होंने २००००० रु० बम्बई विश्वविद्यालय को दिया जिससे एक फेलोशिप स्थापित की गई। इनकी मृत्यु के पीछे इनके पुत्रों ने साढ़े तीन लाख रुपया और विश्वविद्यालय को दिया जिसकी आय से बालक शिल्पशिक्षा के लिये इङ्गलैण्ड भेजे जाते हैं और वहां उन्हें तीन वर्ष पर्य्यन्त रह कर पढ़ना पड़ता है।

प्रयाग की कायस्थ पाठशाला को स्थापित करने वाले मुन्शी कालीप्रसाद के नाम से प्रायः सब लोग परिचित हैं। इन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति जो लगभग ५ लाख रुपए के है इस विद्यालय के लिये दे दी है।

सरदार दयालसिंह और श्रीयुक्त जमसेठ जी नौशेरवांजी ताता के विषय में गतवर्ष लिखा जा चुका है। इन महादानियों के दान से अभी भारतवासियों ने लाभ नहीं उठाया है पर आशा है कि इसके प्रबन्धसम्बन्धी सब बातें शीघ्र ही निश्चित् हो जांय।

पढ़े लिखे लोगों में कदाचित ही कोई ऐसा निर्बोध निकलेगा जिसने सेठ प्रेमचन्द रायचन्द का नाम न सुना हो। ये महाशय अब तक जीवित हैं। इन्होंने २ लाख रुपया कलकत्ता विश्वविद्यालय को दान दिया था, जिसकी वार्षिक आय १४०० होती है। इससे परीक्षोत्तीर्ण बालकों में से सर्वश्रेष्ठ को ५ वर्ष पर्यन्त एक वृत्ति दी जाती है जिसकी सहायता से वह उतने दिनों तक पठन पाठन में ही केवल अपना समय बिताता है।

इन दानियों के अतिरिक्त बङ्गाल के बाबू भुदेव मुखोपाध्याय का डेढ़ लाख का दान, जो संस्कृत की उन्नति के लिये हुआ है, उल्लेख करने योग्य है।

कलकत्ते के बाबू गुरुप्रसन्न घोष ने ४ लाख रुपए का दान विश्वविद्यालय को दिया था, जिससे शिल्पशिक्षा के लिये वृत्तिएं स्थापित की गईं।

यहां पर हमने विद्या के लिये केवल मुख्य मुख्य दानकरने वालों का संक्षेपतः वर्णन किया है। इन्हीं वीरों के धर्म से अब भी देश का मस्तक कभी कभी ऊंचा हो जाता है, पर जितने धन को हमें उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उत्कृष्ट शिक्षा के लिये आवश्यकता है उसकी पूर्ति हमारे धनीमानी उदारप्रकृति लोगों पर

मुन्शी कालीप्रसाद कुलभास्कर।

निर्भर है। यदि उन्हें अपने देश से किञ्चित भी हित है तो उन्हें उचित है कि उपयुक्त दान से दानी कहा इहलोक और परलोक दोनों में अमर सुख के भागी हों*।

* इस लेख के लिखने में हमें वङ्गभाषा में प्रकाशित तथा मिडियन प्रेस में मुद्रित "प्रवासी" नामक मासिकपत्र से विशेष सहायता मिली है।

साहित्यसमालोचना *

[भाग १]

खेद का विषय है कि हमारे यहाँ यह एक प्रणाली सी पड़ी जाती है कि यदि कोई व्यक्ति किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करै तो यदि वह समस्त पाठकों के पूर्ण रूपेण चित्तानुसारही हो तब तो कोई बात नहीं, पर यदि वे किसी पाठक के विचारों के लेशमात्र भी प्रतिकूल हुए तो वह महाशय उस लेख को तो सहन करने की बात तक एक किनारे रख चटपट स्वयं लेखकही को अपना घृणापात्र बना बैठते हैं और इसी कारण लेख के स्थान पर वह उस लेखकही के शत्रु बन जाते हैं। पर प्रत्येक प्रबन्ध का प्रत्येक पाठक के विचारानुकूलही होना तो सर्वथा असम्भव है। लेख इस हेतु लिखे जाते हैं कि उनके अवलोकन से पाठकों के विचार उन विषयों की ओर आकर्षित हों जिससे उनपर आन्दोलनान्तर कोई दृढ़ नियम निश्चित हो और उन विषयों पर भ्रममूलक विचार परित्याग किए जायँ। परन्तु भूल भी सिवाय परमेश्वर के और सभी करते हैं, सो यदि किसी प्रबन्ध का लेखक भी अन्य मनुष्यों की भांति किसी भ्रम में पड़ जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस कारण यदि कोई महाशय किसी लेख में कोई बात अशुद्ध समझें तो उन्हें सहज स्वभावही से उसे खण्डन कर उसके लेखक

* यह लेख कई कारणों से अब तक न छप सका, यद्यपि लेखकों ने इसे कई मासे पूर्व भेज दिया था – सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सजग कर देना हमें इससे श्रेष्ठ जान पड़ता है कि, उस बेचारे को मूर्ख बनाने अथवा उसपर कटुवाक्यों की बौछार करने लगने की अपेक्षा किसी लेखक के लेखों से कुछ लाभ उठाना, या उसकी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न करना, यह दोनोंहीं कार्य्य अति श्लाघनीय हैं। यदि किसी मनुष्य का विचार किसी विषय विशेष पर नितान्त अशुद्ध हो तो भी यह आवश्यक नहीं है कि उसके विचारों का विरोधी स्वयं उसका ही शत्रु हो जाय। हमने पं० श्रीधर पाठक की कविता पर एक लेख लिखा जिसमें गुण और दोष दोनों दिखलाने का हमने यथाशक्ति उद्योग किया है, तो इससे क्या कोई यह सिद्ध कर सकता है कि हम उक्त महाशय के शत्रु या द्वेषी हैं? इसके प्रतिकूल हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि हमारे चित्त में पाठक जी की ओर सदाही की भांति सहृदयता और मित्रभाव ही वर्तमान है और रहैगा। वैसेही यदि कोई व्यक्ति हमारे लेखों पर कुछ लिखै तो वह हमारा रिपु न हो जायगा, वरन् हम उसको अपना मित्र मानेंगे। क्योंकि वह हमारी भूल सुधारना चाहता है। पर यदि वह व्यक्ति ऐसा करने में कटु शब्दों का व्यवहार करना ही अपना कर्तव्य मान ले, तो हमें खेद अवश्य होगा। ये सब बातें साधारण लेखकों को भी ध्यान में रखनी उचित हैं, परन्तु जब स्वयं एक अति प्राचीन पत्र का सम्पादक ऐसी भूल करता है तब तो आश्चर्य और खेद दोनोंही होते हैं, क्योंकि 'चु कुफ़्र अज़ काबा बरख़ेज़द कुजा मानद मुसल्मानी?" (अर्थात् जब तीर्थस्थानों से ही नास्तिकता का प्रादुर्भाव हो तब धर्म कहाँ रह सकता है?)। अस्तु हम भारतमित्र के सम्पादक महाशय को अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न करने पर धन्यवाद देते हैं, परन्तु उनके कटु एवं उपहासपूरित वाक्यों पर खेद और आश्चर्य प्रकट करने के सिवाय और क्या कर सकते हैं!

(२) नवम्बर मास की "सरस्वती" पत्रिका में पं० श्रीधर पाठक की कविता पर हमारी समालोचना प्रकाशित हुई थी। तारीख १७ दिसम्बर सन् १९०० के संस्करण में भारतमित्र जी ने हमारी समालोचना पर बहुत कुछ लिखा है। लिखते हैं "जान पड़ता है कि हिन्दी के सौभाग्य का सूर्य अब चमकैगा, क्योंकि हमारे एम० ए०, बी० ए० बाबुओं का दमाग़ अब अर्श से फ़र्श पर उतर आया है"।

आपका यह कथन कि "हिन्दी के सौभाग्य का सूर्य अब चमकैगा" या तो सव्यंग्य है या अव्यंग्य। यह सन्देह हमको इस कारण उपस्थित हुआ कि अपने इस कथन के पुष्टयर्थ भारतमित्र ने जो कारण दिए हैं वे उपहासास्पद जान पड़ते हैं। फिर जब समस्त लेख निन्दा से ही परिपूर्ण है तो इसी वाक्य में वह क्यों न होगी?

(क) यह कथन यदि सव्यंग्य है और आपने इसका यह आशय रक्खा है कि अब एम० ए०, बी०ए०, लोगों के लेखों से हिन्दी घोर अन्धकाराच्छन्न हो जायगी तो हमारी समझ में सिवाय आपके और कोई भी कदाचित ऐसा न कहैगा। क्या समस्त मनुष्य अँगरेज़ी पढ़कर मूर्ख हो जाते हैं! अथवा यदि कोई व्यक्ति अँगरेज़ी पढ़ा हो तो उसका हिन्दी जानना असम्भव हो जाय!! और यदि दैव वशात् वह पहले ही से हिन्दी जानता हो तो उसे वह भूल जाय!!! यह एक प्रसिद्ध जनश्रुति है कि एक व्याधि ऐसी होती है कि जिसके आक्रमण से रोगी के नीरोग्य हो जाने पर उसे कोई एक विद्या विस्मरण हो जाती है। सम्भवतः अँगरेज़ी हमारी देशभाषाओं (हिन्दी, मराठी, बँगला, इत्यादि) के हेतु इसी व्याधि का काम करती हो, और भारतेन्दु, विद्यासागर, बंकिमचन्द्र, चिपलूनकर, भाण्डारकर आदि सुप्रसिद्ध लेखकों ने अँगरेज़ी जानने के कारण निज मातृ भाषाओं को डुबोही दिया हो!

(ख) परन्तु यदि वह वाक्य अव्यंग्य है तो इससे यही ज्ञात होता है कि आप एम० ए१, बी० ए० लोगों का हिन्दी लिखने में प्रवृत्त होना अच्छा अवश्य मानते हैं, तब न जानें फिर भी उनपर यह बौछार क्यों! "दिमाग़ को अर्श से फ़र्श पर" उतारने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमित्र जी का कदाचित यह प्रयोजन हो कि कुछ एम० ए, बी० ए० लोग अब अङ्गरेज़ी छोड़ हिन्दी लिखने लगे हैं तो उनके मतानुसार अङ्गरेज़ी "अर्श" सी उच्च और हिन्दी "फ़र्श" सी नीच हुई। पर यह तो हमें आपही के लेख से विदित हुआ! हम यह जानने को भी उत्सुक हैं कि इसके पूर्व क्या सभी ऐसी उपाधिधारियों के दिमाग़ अर्शही पर थे? और यदि ऐसाही है तो उनमें से कतिपय मनुष्यों के अब फ़र्श पर उतरने से क्या उनको गालिप्रदान करनाही उनका समुचित सत्कार है? हिन्दी फ़र्श सी है तो नहीं, परन्तु यदि दुर्भाग्यवश उसमें ऐसी अनुचित लेखप्रणाली संस्थापित हो जाय तो यह दुखद बात सम्भव हो सकती है। हम तो कह सकते हैं कि हम एण्ट्रेंस ही परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पहिले से हिन्दी भाषा के रसिक थे। तब न जानें हमारे मित्र जी का कटाक्ष कहां तक यथार्थ कहा जा सकता है। यदि आप हमारा लवकुशचरित्र काव्यग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़े होते तो कदाचित आप ऐसी बेपर की फपती न उड़ाते। केवल नाम मात्र की समालोचना करनेवाले महाशय तो यथातथ्य समालोचना होते देख चट लाल लाल आंखें कर ही लिया चाहैं। इसीसे तो आप छत्तीसगढ़ मित्र और हम पर टूट ही पड़े।

३—"छत्तीसगढ़ मित्र की देखा देखी समालोचना की चाल हिन्दी भाषा में भी चल पड़ी है। यदि इस बहुतायत से समालोचना होती रही तो आश्चर्य्य नहीं जो पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जाय"।

भारतमित्र जी के इस अनुमान से प्रतीत होता है कि छत्तीसगढ़ मित्रही ने समालोचना की प्रणाली निकाली है। क्या विश्वनाथ कविराज ने मम्मट भट्ट और श्रीहर्ष ने शङ्कर स्वामी की समालोचना ही न की थी, यहां उस की रीति में कुछ विभिन्नता अवश्य थी फिर भाषा में भी भारतेन्दु जी "the only critic of Northern India (उत्तरीय भारत के एक मात्र समालोचक)" कहलाते थे—"कवि व समालोचक" एक पत्र भी पं० कुन्दन लाल जी निकालते थे और मित्रवर पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने भी नैषधचरित चर्चा में तथा साहित्याचार्य स्वर्गवासी पं० अम्बिकादत्त जी व्यास ने गद्य-काव्य-मीमांसा में समालोचना ही की है। फिर "छत्तीसगढ़ मित्र की देखा देखी" हम भी समालोचना नहीं लिखने लगे हैं। हम कह सकते हैं कि हम्मीरहठ और पं० श्रीधर जी पाठक की कविता पर समालोचना लिखकर प्रेस में देने के बहुत दिन पश्चात् हमने बा० ठाकुरप्रसाद जी के मुख से छत्तीसगढ़मित्र का नाम सुना और श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी की कविता पर समालोचना करने के हेतु हम छत्तीसगढ़ मित्र के जन्म के पूर्व ही काल से सब सामग्री एकत्रित कर रहे हैं और बहुत से नोट लिख भी चुके हैं जो हमारे मित्रों पर भली भाँति विदित है, यद्यपि इसके सम्पूर्ण और प्रकाशित होने में अभी अवश्य बिलम्ब है। हां, छत्तीसगढ़मित्र समालोचना पर अन्य पत्र पत्रिकाओं की अपेक्षा विशेष ध्यान अवश्य देता है और उसकी समालोचना प्रणाली भी प्रशंसनीय है।

आश्चर्य्य कि भारतमित्र जी दो ही चार समालोचकों के होने से भयभीत हो गए कि "पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जायगा"! एक ओर तो भारत के प्रसिद्ध विद्वान् पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि भाषा में गद्य काव्य की बड़ी आवश्यकता है और दूसरी ओर हमारे मित्र जी डर रहे हैं कि गद्य का एक स्वल्प विभाग (समालोचना) पद्य की समस्त पुस्तकों से बढ़ जायगा!! क्या बारह चौदह सौ प्राचीन व नवीन कवियों के होते भी आधुनिक समालोचक ऐसे प्रबल लेखक हैं कि वह उन सबसे बढ़ जांय!!! यदि अङ्गरेज़ी पर टुक ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि केवल शेक्सपियर के कितने समालोचक हैं। कोलरिज, जरवाइन, हडसन, फ़रनेस, डाउडन, बोडस, चार्ल्स लैम्ब, सिरिल रैनसम आदि प्रधान समालोचकों ही के ग्रन्थ यदि जोड़े जांय तो कदाचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेक्सपियर के लेख उन व्यक्तियों के घोड़शांस भी न ठहरें। परन्तु तब भी उस कविकुलचूड़ामणि को कविता रसातल को न धस गई। फिर न जानें क्यों हमारे मित्र जी को समालोचकों द्वारा भाषा काव्य नष्ट हो जाने का इतना खटका है!

(४) "सरस्वती में पाठक जी की पुस्तकों की जो आलोचना हुई है उसे देख कर हमें एक लड़के की याद आई। उसने अपनी मिठाई का दोना रेत में पटक दिया और फिर उसे पोंछ पोंछ कर दोने में रखने लगा"।

किसी वस्तु को गोल गोल रीति पर निकृष्ट कह देना अति सुगम है। परन्तु उसमें कोई स्पष्ट दूषण बतलाने में कुछ विचार की आवश्यकता है। सुतरां हमारे मित्र जी के कटाक्ष प्रायः सभी ठौर गोलही गोल हुआ करते हैं। आपको तो एक लड़के की बात याद आई, पर आपका लेख पढ़ हमें यह किम्वदन्ती स्मरण हुई कि 'नाव नाव झगड़ालू आवैं तैरत आवैं साखी (मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त)"-स्वयं पाठक जी तो इसी समालोचना के हेतु हमें वास्तविक धन्यवाद दें और मित्रजी ऐसे बिगड़ें! आप कदाचित् अब तक यही माने बैठे हैं कि समालोचना से कवि के सुयश को अवश्यमेव धक्का पहुँचता है। पर वास्तव में सच्चे कवियों के विशेष गुण समालोचना ही द्वारा झलकते हैं, और हमने पाठक जी की गणना ऐसेही कवियों में की है नहीं तो उनकी कविता पर हम समालोचना ही न करते। क्या हमारा मनोविनोद के द्वितीय और तृतीय भागों को प्रथम की अपेक्षा अति हीन बतलाकर यह कहना कि तौ भी आधुनिक मध्यम श्रेणी के कवियों को उपहासजनक कविता से वे दोनों भाग भी कहीं बढ़े चढ़े हैं, भारतमित्र जी को लड़केवाली मनगढ़त को किसी अंश में भी चरितार्थ कर सकता है? फिर हमारे लेख के सम्बन्ध में इस मनगढ़त का अर्थ लगाना ही कठिन है। इस मिठाई के फेंकने और पोंछने से तो यह व्यञ्जित होता है कि हमने पाठक जी को समस्त कविता को पहिले निकृष्ट कह कर फिर उसे भूषित करने का प्रयत्न किया है। यह मित्र जी की कृपा है और और इस सहृदयता पर हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। वास्तव में हमने पाठक जी का अधिकांश काव्य गुणयुक्त ही बतलाया है, पर शेष स्वल्पांश में कुछ दोष अवश्य आरोपित किए हैं जो वस्तुतः हमें उसमें समझ पड़ते हैं। हां, एक एक दोष बतलाना और उसपर विस्तार करना हमें ठीक न जान पड़ा, इसी कारण दो चार दोष स्थूलरूप पर बतला कर हम विशेष न बढ़े। कदाचित भारतमित्र जी का यह मत है कि यदि किसी पदार्थ की प्रशंसा करने लगें तो उसमें कोच तक लगा जान अपना वर्णन यही करें कि वह कोच नहीं चन्दन है और निन्दा में उसके अमृत को भी विष ही कह दें। पर नीति का बचन यह है कि "शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि" अर्थात् शत्रु के भी गुण एवं गुरुजनों तक के अवगुण कह देना चाहिए।

[क्रमशः]

मिश्रबन्धु

निराश प्रेमिक

अहो यातना अमित अनोखी, कासों कहिए?
कोउ न जाननहार पीर, यातें चुप रहिए!
दियो प्रान-मन-हृदय-हार, हँसिकै गलमाहीं।
पै वह आपनायो नहिं चाहत, करि करि नाहीं॥
जापर कियो निछावर, निज सर्वस मनमानो।
सोउ हाय अवहीं लै, बनि बैठ्यो अनजानो॥
हँसि हँसि हाहा खाइ, हाय! हिय हरत सिराहीं।
पै करि हेत, न हृदय देत निज, बरु अनखाहीं॥
भयो नैन जल सार, प्रेमतृष्णा नहिं मेटी।
जाको चाह्यो,—चाहि सोइ हिय हनत लपेटी॥
मृगतृष्णा मधि, कबै, कौन की आसा पूरी?
झूठी प्रेमपिपासा, या जग रहत अधूरी॥
जाके सुख-सों सुखी, सोइ मम दुख लखि हाँसै।
बिन जाने करि प्रेम, मनुज—निज प्राननि फाँसै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परखे बिना परायो मन, नहिं नेह लगैये।
अपने करसों निज पामन, क्यों काठ गहैये॥
प्रेमजाल जञ्जाल जगत में भूल न करिए।
अपनो मानस रतन, कबौं जनि पर कर धरिए॥
बरबस बिपति पराई अपने सीस चढ़ावन।
पाछे पछतावन, बिन जाने नेह लगावन॥
आसा ही दुखमूल, निरासा सोमा सुख को।
प्रेम पिपासा बिना, रहै लालो जग मुख को॥
सुधा जानि बिष खाइ सुखायो निज तन चोखो।
तऊ अटल नहिं टल्यो, बज्र सम हृदय अनोखो॥

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

ब्रोमाइड ओपलस (Bromide Opals)

ब्रोमाइड ओपल आलोकचित्र छापने का एक दूसरा उपाय है। जितने प्रकार के चित्र छापने की प्रथाएं हैं उनमें यह सबसे उत्तम और सुन्दर है। इसमें छायालोक बहुत ही सुन्दरता के साथ दिखाई देता है। इसकी गम्भीर घन छाया आलोक के समीप नेत्रों को इतना सुख देती है, कि जिसके देखने मात्रसे विमोहित हो जाना पड़ता है। स्फटिक (सफेद पत्थर) के समान सफेद पोरसलेन (Porcelain) की पट्टियों पर ब्रोमाइड पेपर के समान रासायनिक उपादान से यह चित्र बनता है। ड्राई प्लेट के समान ब्रोमाइड ओपल भी विलायत से बन कर आता है, और जैसे ब्रोमाइड पेपर मुद्रित किया जाता है, उसी प्रकार इसका मुद्रण करना भी बड़ा सुगम है। इसकी परिस्फोटन प्रणाली ब्रोमाइड पेपर के सदृश है। ब्रोमाइड ओपल पर ब्रोमाइड पेपर के सदृश एनलार्जमेण्ट अथवा वर्द्धित चित्र भी मुद्रित हो सकता है।

नेगेटिव से जैसे पी. ओ. पी. इत्यादि कागज़ छापे जाते हैं, वैसेही प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में नेगेटिव को सटा कर उसके ऊपर ब्रोमाइड ओपल के फिलम के भाग (Film side = जिस ओर ड्राई प्लेट के समान चमक होती है) को लगा दो, साधारण मोमबत्ती वा लम्प के उजाले से १ फुट के अन्तर पर रख के उसे १५-२० सेकेण्ड आलोकित अथवा एक्सपोज करो। नेगेटिव के आलोक और उसके दूर तथा समीप के अनुसार इसके आलोकित करने में समय का अल्पाधिक्य करना पड़ेगा। केवल आलोकित करने के समय को छोड़ कर और सम्पूर्ण कार्य्य ड्राई प्लेट के सदृश रुबिलाइट में करने होंगे।

परिस्फोटन करने के लिये निम्नलिखित अरक तैयार करलो और उनके ठंढे होजाने पर उन्हें व्यवहार में लाओ।

१ नं०	सलफेट अफ आयरन	२½ आउन्स
	गरम जल	१० आउन्स
	सलफ्यूरिक एसिड	१५ बूंद
२ नं०	एक्सलेट पोटास	१० आउन्स
	गरम जल	४० आउन्स
	पोटासियम ब्रोमाइड	२० ग्रेन

उपर्युक्त द्रव्य के व्यवहार करने के समय १नं० की औषधि १ आउन्स और २ नं० की औषधि का ४ आउन्स लेकर एक में मिलालो। इच्छानुसार उपयुक्त औषधि थोड़ी भी बनाकर काम में ला सकते हैं।

नेगेटिव का फिलम पतला होने पर वा ब्रोमाइड ओपल के अधिक आलोकित होने से आधे पुराने और आधे नए अरक से परिस्फोटन करने का काम लो। इस प्रकार करने से चित्र सुन्दर उज्वलता धारण करेगा। इसके पीछे पानी से न धोकर क्लियरिङ्ग सोल्यूशन* से धोकर फिक्सिङ्ग वाथ में हाइपो के पानी से १०-१५ मिनिट धोने के पीछे साधारण जल से २ घण्टे धोना चाहिए। ब्रोमाइड पेपर के परिस्फोटक अरक से भी इसका कार्य्य हो सकता है।

---

* ब्रोमाइड प्रिंटिङ्ग का प्रकरण देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Formulæ फर्मुला।

कई एक प्रकार के नए और अत्यन्त आवश्यकीय अरक के विषय की नियमावली भी यहां लिखी जाती है, जिससे आशा है, कि प्रथम शिक्षार्थियों को विशेष लाभ होगा।

प्लेट के फिलम को मोटा वा घना करने का उपाय।

Intensifying इनटेनसिफ़ाइङ्ग

(१)

१	परक्लोराइड आफ मरकरी	८० ग्रेन
	गरम जल	४ आउन्स
२	लाइकर एमोनिया	२ ड्राम
	ठण्डा जल	४ आउन्स

पहिले एक नम्बर के अरक को ठण्डा करके उसमें प्लेट डुबादो और जब प्लेट साफ होजाय तब साफ जल से उत्तम रीति से धोकर २ नम्बर के अरक में उसे डुबादो। पीछे जब उपयुक्त काला हो जाय तब निकाल लो।

(२)

जो लोग मरकरी व्यवहार करने से डरते हैं, वे लोग निम्नलिखित अरक व्यवहार कर सकते हैं।

१	पोटासियम ब्रोमाइड	१८० ग्रेन
	जल	१० आउन्स
२	कापर सलफेट	२४० ग्रेन
	जल	१० आउन्स

क्रमागत इन दोनों अरकों से प्लेट धोकर पीछे एमोनिया के १ ड्राम को १० आउन्स जल में घोलकर प्लेट को काला करलेना होगा।

(३)

१	साइट्रिक एसिड	४ ड्राम
	फिटकिरी का चूर (विलायती)	४ ,,
	ठण्डा जल	१० आउन्स
२	आयरन प्रोटो सलफेट	१ आउन्स
	गरम जल	४ आउन्स
३	नाइट्रेट अफ सिलवर	२० ग्रेन
	ठण्डा जल	१ आउन्स

इसको व्यवहार करते समय १ नं० का चौथा भाग, नं० २ का १ भाग और नं० ३ की कई एक बूँद मिला लेनी चाहिए।

मोटे फिलम वाले प्लेट को पतला करना

Reducing रिडूसिङ्ग

(१)

आयरन परक्लोराइड	१ ड्राम
ठण्डा जल	१ आउन्स

इस अरक में प्लेट को डुबाकर पीछे हाइपो बाथ में रख कर फिक्सड कर लो।

(२)

विशुद्ध हाइड्रोक्लोरिक एसिड	१० बूंद
ठण्डा जल	४ आउन्स

इस अरक से भी वही काम निकलता है जो नं० १ से होता है।

काठ की डिश को वाटरप्रूफ़ करना

साधारण जल	½ पाउण्ड
अच्छी मोम	२ आउन्स

इसे टीन के वर्त्तन में गरम करके मिलाओ और पुनः काठ की डिश में उलट कर चारों ओर लगा दो। डिश को पहिले ही से सुखा लेना और गरम कर लेना चाहिए।

नेगेटिव में सिलवर रहजाने से उसके साफ करने का उपाय

थोड़ी सी रुई को साईनाइड पोटासियम में जो बहुत ही तेजरहित हो भिगोकर प्लेट के दाग लगे हुए स्थान पर धीरे धीरे लगाओ। जहां अधिक लगा हो उस स्थानपर किञ्चित अधिक जोर से उसे मलो और पीछे साफ जल से धोकर सुखाने के अनन्तर नेगेटिव वार्निश कर दो। [शेष आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] अगस्त १९०१ ई० [संख्या ८

विविध वार्ता

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि स्वर्गवासी प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने योरप में संस्कृत विद्या के प्रचार और भारतवर्ष के सम्मान और गौरव के लिये जो कुछ किया है वह कदाचित ही किसी दूसरे से बन पड़े। इनकी मृत्यु के पीछे इनका बृहत् पुस्तकालय बिका और उसे जापान के व्यारन इवास्की ने टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के लिये खरीद लिया। हमें सन्तोष है कि यह पुस्तकालय और किसी देश में न जाकर जापानही में गया, पर भारतवर्ष के लिये इससे बढ़कर लज्जा की और कोई बात नहीं हो सकती कि असंख्य राजों महाराजों और धनिकों के रहते किसीने भी इस पुस्तकालय को खरीद कर भारत को अकृतज्ञता के कलङ्क से बचा एक बड़े भारी ऋण से मुक्त न किया। भारतवर्ष सा अकृतज्ञ देश कदाचित भूमितल पर दूसरा न हो। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की मृत्यु पर हमने सभाएं कीं, शोक प्रकाश के लिये लेख लिखे और उनके वंश के लोगों को सहानुभूति-सूचक पत्र भेजे, परन्तु इतनाही करके हम थक बैठे। हा दुर्भाग्य भारत! तेरा एक भी ऐसा सपूत न निकला जो इस पुस्तकालय को यहां लाने के लिये धन अर्पण करता!!!

* *
*

हमारे हिन्दूशास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि जीवधारी जैसे जैसे कर्म करता है उनके अनुसार वह जन्म पाता है, यहां तक कि पशु पक्षी अच्छा कर्म करने से मनुष्य का जन्म पा सकते हैं। इसी सिद्धान्त से मिलता जुलता सिद्धान्त प्रोफ़ेसर डारविन का था। उनका कथन था कि छोटे से छोटे कीट पतङ्ग उन्नति करते करते मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। युरोपीय वेदान्तियों ने इसी सिद्धान्त का नाम "ला आफ़ इवोल्यूशन" रक्खा है। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये प्रोफ़ेसर डारविन ने यह निश्चय किया था कि मनुष्यों का पूर्व रूप बन्दर था जिससे उन्नति करके मनुष्य का शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना। परन्तु मनुष्य और बन्दर के बीच का कोई ऐसा जीवधारी नहीं मिलता था जिसमें दोनों के गुण हों और जो दोनों के बीच की शृङ्खला हो। पर उस समय इसका कुछ पता नहीं लगा था। अब सर हेनरी जानस्टन ने यह पता लगाया है कि अफ़्रिका के कांगो नामक वन में एक प्रकार के मनुष्य मिले हैं जिनका मैले पीले रंग का चमड़ा, सटी हुई आंखें, ऊंची भौं और चिपटा सिर है। इनके बाल हबशियों की भांति घुँघराले और कभी कभी भूरे रङ्ग के भी होते हैं। इनकी बांह लम्बी और पैर छोटे होते हैं। सर हेनरी जानस्टन का अनुमान है कि ये ही लोग प्रोफ़ेसर डारविन की शृङ्खला की अब तक अप्राप्त और लुप्त कड़ी हैं। देखा चाहिए वैज्ञानिक मण्डली अब क्या सिद्ध करती है।

* *
*

'समालोचक समिति' की चर्चा अभी तक शान्त नहीं हुई है और न उसका कुछ फल ही अभी देखने में आया है। गत मई मास की सरस्वती में हमने इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव किए थे और काशी नागरीप्रचारिणी सभा से प्रार्थना की थी कि वह उनपर उचित विचार करे। सभा ने उन प्रस्तावों पर अनेक लोगों की सम्मति ली और बड़े विवाद के पीछे यह निश्चय किया कि सभा का इस विषय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। इसके कई कारण माने गए हैं। प्रथम तो यह कि समिति करके पुनः वह उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध न रख सकती है और न रखना सम्भव है, और ऐसा न करने से सभा का पूर्ण अधिकार प्रकाशित समालोचनाओं पर न रह सकेगा और ऐसी अवस्था में सभा उस समिति से अपना सम्बन्ध नहीं रक्खा चाहती। दूसरे यह कि कभी कभी समालोचकों के सामने ऐसे ग्रन्थ भी विचारार्थ आ जांयगे कि जिनके विषय का पूर्ण सम्बन्ध धर्म और राजनीति से हो और इन विषयों में सभा अपने नियमानुसार हस्तक्षेप न कर सकेगी। तीसरे समिति के सभ्य भिन्न भिन्न स्थानों के रहने वाले हैं, अतएव जब तक वे एक स्थान में एकत्रित न हों तब तक कोई समालोचना सर्वसम्मति से स्थिर न हो सकेगी, और सब लोगों का बेर बेर एक स्थान पर इस कार्य के लिये एकत्रित होना असम्भव है। इन्हीं सब कारणों से काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने यह निश्चय किया है कि वह इस समिति के स्थापन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी, परन्तु साथ ही इस बात का भी समझ लेना उचित है कि पुस्तकों पर समालोचना अवश्य होनी चाहिए।

* *
*

छत्तीसगढ़-मित्र के सम्पादक महाशय ने इस बात पर खेद और आश्चर्य प्रकट किया है कि काशी की सम्पादक-समिति क्यों और कैसे टूट गई। इस समिति के तोड़ देने के कई कारण हुए। परस्पर में अनेक (लेख सम्बन्धी) विषयों में मतभेद, कई सभासदों का अनावकाश, एकही मनुष्य पर सम्पादन का बोझ पड़ जाना, अन्य लोगों का यह विचार कि काशी ही से सम्पादक क्यों चुने गए, क्या बाहर से हिन्दी के योग्य लेखक नहीं चुने जा सकते थे,—ऐसे कारण हुए कि जिनसे सम्पादक-समिति का तोड़ देना आवश्यक जान पड़ा। इस समय समिति के टूट जाने पर अथवा उसकी आधुनिक कार्य-प्रणाली पर जो कभी कभी कटाक्ष हो जाते हैं, उनका कारण हमारे "मित्र" को यह समझ लेना चाहिए कि कितने ही लोग तो अपने चित्र और चरित्र भेज देते हैं और साथही लिखते हैं कि इन्हें छाप दीजिए तो हम ग्राहक हो जांय, अथवा छपाई और चित्र बनवाई का व्यय भी हम देंगे। ऐसे महानुभावों को हम दूरही से साष्टांग प्रणाम करते हैं और यही उनकी रुष्टता और उनके असभ्य कटाक्षों का मूल कारण होता है। हां, जो महानुभाव हमारे सच्चे दोष दिखाते हैं उनके हम चिर-कृतज्ञ रहेंगे। सम्पादक-समिति के टूट जाने के साथही साथ यह भी प्रबन्ध किया गया है कि लेखकों को निज सामर्थ्यानुसार कुछ पुरस्कार भी दिया जाया। जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशयों ने इसे ग्रहण करना स्वीकार किया है उन्हें यह बराबर दिया जाता है। हमारी समझ में तो हिन्दी लेखों के लिये चाहे एकही पैसा पुरस्कार क्यों न मिले उसे ग्रहण करना हिन्दी का सम्मान बढ़ाना और अपनी योग्यता का आदर पाना है। अस्तु, अब सभा से तो निश्चय हो चुका है कि वह सम्पादक-समिति स्थापित न करेगी, तो अब दूसरा उपाय इस कार्य के साधन का कौन-सा है? अन्य स्वतन्त्र समिति के स्थापित होने के हम पक्ष में नहीं हैं, क्योंकि उससे हमें अनेक विघ्नों की आशंका है। समालोचक पत्र का निकालना भी एक असम्भव सा काम है। प्रथम तो उसके ग्राहक नहीं होंगे कि उसका ख़र्चा निकल सके, दूसरे इस बोझे को अपने सिर पर उठाने वाला कोई दिखाई नहीं देता। सभा ने अभी नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका और निकाली है। उसकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि वह "समालोचक" पत्र निकाल सके। दूसरे उसका यह विचार है कि यदि विशेष आय हो सके तो पहिले "ग्रन्थमाला" और "पत्रिका" दोनों का आकार बढ़ा दिया जाय, क्योंकि इनसे हिन्दी के विशेष उपकार की सम्भावना है। रहे इण्डियन प्रेस के स्वामी। वे अभी एक नवीन पत्र निकालने का साहस नहीं कर सकते, क्योंकि अभी सरस्वती ही में सैकड़ों की प्रति वर्ष हानि उठानी पड़ती है। ऐसी अवस्था में हमारा यही सिद्धान्त है कि पत्र सम्पादक अपने अपने पत्र में उपयुक्त समालोचना करना प्रारम्भ कर दें। सरस्वती में भी यथासाध्य इस नियम का पालन किया जायगा और जो महाशय किसी पुस्तक की समालोचना लिखकर भेजेंगे, और यदि वह सम्पादक को स्वीकृत होगी, तो सरस्वती में छाप दी जायगी। यदि हमारे छत्तीसगढ़ मित्र इस सम्मति को स्वीकार करें तो हम इस कार्य के लिये कुछ नियम बनाकर इसे प्रारम्भ कर सकते हैं।

ग्रन्थकार-लक्षण

१

एक प्रवासी ज्ञान-निधान,
तीर्थराज-वासी, गुणवान,
बुद्धि-राशि, विद्या का वारिधि, पास हमारे [आया है।
नाना कथा नवीन नवीन
कहने में वह महा-प्रवीण;
ग्रन्थकार-माहात्म्य मनोहर उसने हमें सुनाया है॥

२

सुन कर वह माहात्म्य अपार;
सोच समझ कर भले प्रकार;
परमानन्द-रूप-नद में मन बहता है लहराता है।
उसका ही ले कर आधार;
निज वचनों का कर विस्तार;
लक्षण-मात्र ग्रन्थकारों का यहां सुनाया जाता है॥

३

शब्द-शास्त्र है किसका नाम?
इस झगड़े से जिन्हें न काम;
नहीं विराम-चिन्ह तक रखना जिन लोगों को [आता है।
इधर उधर से जोर बटोर,
लिखते हैं जो तोड़ मरोड़;
इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

४

भला बुरा छपवाए सिद्ध;
धन न सही; नाम ही प्रसिद्ध;
नाटक, उपन्यास लिखने में ज़रा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूद का सार
बँगला-भाषा का भण्डार,
वे ही महा-महिम-विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

५

जिनके लोचन कोटर-लीन;
कच-कलाप तक तैल-विहीन;
जिनके जर्जर तन को मैले कपड़े सदा छिपाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटिल कटाक्ष किन्तु दुर्दान्त ;
मति भी, गति भी कुटिल नितान्त ;
वे ही भारत-वर्ष देश में ग्रन्थकार-पद पाते हैं ॥

६

अन्यदेश-भाषा का ज्ञान
कालकूट के घूंट समान ;
स्वयं मातृभाषा भी जिनको देख देख घबड़ाती है।
भाड़े पर रख विज्ञ विशेष ,
लिखवाते हैं जो निज लेख ,
ग्रन्थकार-पदवी उनको ही दौड़ दौड़ लिपटाती है ॥

७

जिनकी जिह्वा की खर धार
देख, चमत्कृत छुरे हज़ार ,
किन्तु लेखनी जिनके कर में धार-हीन हो जाती है।
लेखन-कला-कुशलता-हीन ;
बातों में जो बड़े प्रवीण ;
ग्रन्थकार-पदवी उनको हो बिना मोल मिल [जाती है ॥

८

लक्ष्मी जिन लोगों के द्वार
आती नहीं एक भी बार ;
सरस्वती जिनके प्रताप से भूतल से भग जाती है।
मानी मत्त-गयन्द समान ;
अथवा मूर्त्तिमान अभिमान ;
उनको ही सद्ग्रन्थकार की पदवी गले लगाती है ॥

९

पाकालय का अन्तर्भाग
नहीं देखता जलती आग ;
किन्तु सदा ईर्षानल से तन जिनका जलता रहता है
सुर गुरु को भी गाली-दान
देने में जिनको लज्जा न ,
उनको ही ऊंचे दरजे के ग्रन्थकार जग कहता है ॥

१०

ए, बी, सी, डी का भी ज्ञान
जिनको अच्छी भाँति हुआ न ,
अँगरेज़ी उद्धृत करने में किन्तु न जो शरमाते हैं।
ऐसे विद्या-बुद्धि-निधान
जिनका बड़ा मान सम्मान ,
निश्चय वेही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं ॥

११

संस्कृत-भाषा कौन पदार्थ ?
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ ;
धर्मशास्त्र का मर्म किन्तु जो लिख लिख कर [समझाते हैं।
जन-समाज-संशोधन-कार ;
व्यर्थ-वाद जिनका व्यापार ;
सत्य सत्य वेही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते हैं ॥

१२

अपने ग्रन्थों का प्रति वर्ष
विज्ञापन लिख स्वयं सहर्ष ,
व्यास और वाल्मीकि तुल्य जो अपने को बतलाते हैं।
अथवा पुत्र , मित्र का नाम
दे कर जो निकालते काम ,
अति गम्भीर-ग्रन्थकारों के गुरुवर वे कहलाते हैं ॥

१३

अपनी पुस्तक की सानन्द
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द ,
अन्य नाम से अख़बारों में जो शत बार छपाते हैं।
निज मुख से जो गुण-विस्तार
करते सदा पुकार पुकार ,
ग्रन्थकार-पद- योग्य सर्वथा वेही समझे जाते हैं ॥

१४

गृह में गृहिणी कोप-निधान
देती जिन्हें न आदर-दान ;
बाहर जिन्हें न पाठक-गण भी भक्ति-भाव दिख- [लाते हैं।
जिनका कहीं नहीं सम्मान ;
तिस पर घोर घमण्ड घटा न ;
ग्रन्थकार-सिंहासन ऊपर आसन वही लगाते हैं ॥

१५

ग्रह ज्यों रवि के चारों ओर
किया करें हैं दौरा दौर ,
त्यों पुस्तक-विक्रेता की जो बहु प्रदक्षिणा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दग्धोदर जो किसी प्रकार
भरते हैं सदैव झख मार ;
ग्रन्थकार-गौरव को झोली वेही यश से भरते हैं ॥

१६

किसी समालोचक के द्वार
सिर घिस घिस कर बारम्बार ,
निज पुस्तक की समालोचना जो सविनय लिख-
[वाते हैं ।
यदि आशय पाया प्रतिकूल ,
ढूंढ़ा और कहीं अनुकूल ;
ग्रन्थकार-कुल-कुमुद-चन्द्रमा वे ही माने जाते हैं ॥

१७

टेक्स्टबुक्स की सभा प्रधान ;
उसके जितने सभ्य सुजान ,
उनके प्रिय-पुत्रादिक को जो मोदक मञ्जु खिलाते हैं।
आते हैं जो प्रातःकाल ;
और झुकाते हैं निज भाल ;
ग्रन्थकार-कनकासन ऊपर वे ही मज़े उड़ाते हैं ॥

१८

नूतन-चित्र-चरित्र-प्रचार
करके उनकी रुचि अनुसार ,
निज पुस्तक में जो धनिकों की व्यर्थ बड़ाई गाते हैं।
उनसे रख भिक्षा की आस ,
करते हैं जो वचन-विलास ,
ग्रन्थकार-गुरुवों के भी वे कर्णधार कहलाते हैं ॥

१९

ग्रन्थकार-गुण-गण निःशेष
गान नहीं कर सकता शेष ;
इसी लिये हम इस वर्णन को आगे नहीं बढ़ाते हैं।
हे हे ग्रन्थकार ! गुण-धाम !
हे समर्थ ! हे पावन-नाम !
शत योजन से हम यह अपना मस्तक तुम्हें झुकाते हैं॥

द्विवेदी

रोशन आरा

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन राजा रतनचन्द उन्नाव का पट्टा अपने नाम लिखके मोहर दस्तख़त करवाने वज़ीर के घर गए, पर जाके सुना कि वे घर पर नहीं हैं। राजा मन ही मन कुछ हँसे। वज़ीर जहां थे वे जानते थे। वज़ीर चाहे जहां रहे राजा के लिये डोढ़ी खुली रहती थी। वे आराम बाग़ में पहुंचे।

राजा को देख खोजा अख़तर सिर हिला के धीरे से बोला वज़ीर साहब अभी आराम से नहीं उठे हैं।

"ग़ुसलख़ाना भी नहीं हुआ है ?"

"नहीं"

"हैं ! बेगम साहेबा कहां हैं ?"

"यहां नहीं हैं, वह तो कल रात ही को चली गई थीं।"

राजा को आश्चर्य्य हुआ, जब वही नहीं हैं तब अभी तक वज़ीर क्यों नहीं उठे और उन्होंने क्योंकर रात ही को उसे विदा भी कर दिया। ऐसी सुन्दरी स्त्री मिलने पर तो इतनी जल्दी छोड़ते नहीं। ज़रूर इसमें कुछ छिपा भेद है।

राजा ने कहा "इतनी देर तक तो उनकी सोने की आदत नहीं है। उनके पास भी कोई नहीं हैं। तुम्हारे जी में कुछ शक तो नहीं होता ?"

"बिन बुलाए क्योंकर अन्दर जाऊं ? शायद ख़फ़ा हों"।

राजा ने कहा "तुम जाओ, शायद ख़फ़ा हों तो मेरा नाम ले देना कि किसी ज़रूरी काम से आए हैं, तो ख़फ़ा न होंगे"।

यह तो सब लोग जानते ही थे कि राजा रतनचन्द वज़ीर के परले सिरे के कृपापात्र हैं, इससे बिना कुछ कहे खोजा आरामख़ाने के अन्दर चला; उसके पीछे राजा भी हो लिए। द्वार के पास पहुंच धीरे धीरे उसने किवाड़ खोले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर देखते ही खोजा चीख मार अन्दर घुस पड़ा, राजा रतनचन्द भी घबरा कर उसके पीछे जा घुसे। उसे यह डर था कि कहीं वज़ीर का बाल बाँका हुआ तो राजा जीते ही मर मिटेंगे।

बड़े दुख की बात है कि बादशाह के शाह वज़ीर-उलमुल्क सामान्य कैदी से हाथ पांव बांधे धर्ती पर नीचा सिर किए बैठे हैं, उठने की ताकत नहीं। दोनों ने मिल चट पट उनके बन्धन खोले। अपमान, अभिमान दुःख और क्रोध के मारे वज़ीर की आँखों में आँसू भर आए थे। बन्धन से खुलते ही उन्होंने खोजा को लात मारी और बोले—"निमकहराम कहीं का, मेरे मकान के अन्दर चुपके से दुशमन घुस आवे और तुझे कुछ ख़बर भी न हो"।

रोते रोते हाथ बाँध खोजे ने अर्ज़ की कि खुदा-वन्द! इस महल का पहरा ताबेदार के ज़िम्मे नहीं है; और कल रात को हुज़ूर ने ताबेदार को दूसरी जगह तैनाती करदी थी। बेगुनाह ताबेदार कसूर वार होता है"।

वज़ीर रतनचन्द की ओर देखकर बोले, "मेरी नज़रों से हट जा, मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहता"।

दस्तबस्ता हो राजा ने अर्ज़ की "ताबेदार की क्या ख़ता है?" असल में बात यह थी कि खोजा और राजा ने उनको उस हालत में देखा था, उसी पर खिजला के जो सामने आया उसीको फटकार सुनाई। फिर नौकरों को बुलवा कर उनसे बहुत से सवाल किए, पर क्योंकर कोई अजनबी महल के अन्दर गया यह कोई भी न बता सका। इस पर वज़ीर ने ख़फ़ा होके उनको इतने कोड़े बेंत लगवाए कि वे लोग मूर्छित होकर गिर पड़े; पर कह कुछ भी न सके।

तब वज़ीर राजा रतनचन्द से वह जो रात को अन्दर आया था उसका हुलिया बयान कर बोले "जो वह दिल्ली भर में कहीं मिले तो चाहे जीता या मरा उसे मेरे हुज़ूर में हाज़िर करो। जो उसे जीता पकड़ लाओ तो मैं बहुतही खुश हूंगा"। और उस स्त्री के बारे में बोले मैंने उसके लिये इतनी ज़हमत उठाई है इस लिये उसे न छोड़ूंगा, जहां मिले या जैसे मिले उसे मेरे पास लिवालाओ।

राजा रतनचन्द बिना एक शब्द भी कहे यथा नियम धर्ती तक सिर झुका सलाम कर वहां से रुख़सत हुए। उन्नाव परगने की सनद ज्यों की त्यों उनके रूमाल में बँधी की बँधी रह गई, क्योंकि उस बारे में कहने का कोई मौका न था। इतनाही नहीं, वरन् वज़ीर के हुक्म को सुन राजा के होश चक्कर होगए थे। कहां तो बिना तरद्दुद के एक पर्गना मिला जाता था। भला वह बात तो एक ओर रही, ऊपर से ऐसा हुक्म लगा जिसका पूरा होना बस भगवान ही के हाथ था। भले ही राजा रतनचन्द का बहुत चढ़ा बढ़ा समय था, शहर भर में उनकी तूती बोलती थी, पर तो भी वज़ीर के सामने वे एक सामान्य किंकर थे। वज़ीर चाहे तो एक फूंक में उन्हें न जाने कहां का कहां उड़ा दे। क्योंकर और कहां से राजा उसे गिरफ़्तार करेंगे; फिर न जाने वह किसी बड़े उमराव का भेजा हुआ हो तो राजा से एक नई दुशमनी बढ़ेगी, न जाने उसका कैसा फल हो; न जाने कैसी खोटी सायत से उस रमणी पर वज़ीर की नजर पड़ी थी और न जाने किस सायत में वे उन्नाव का परवाना लिख लेगए थे।

घर आ कर राजा ने सुना कि उनकी मुलाकात के लिये कोई बहुत देर से बैठा हुआ है। कोई ऐसा ही ज़रूरी काम है कि बिना राजा से मिले वह हरगिज़ लौट नहीं सकता। राजा ने उसे बुलाने की आज्ञा दी।

जब वह आया तो उसे देख राजा ने उसके पहनावे से अनुमान किया कि यह फ़ारस देश का रहनेवाला है, इससे फ़ारसी में पूछा "तुम क्या चाहते हो?"

उसने कहा "जनाब! मैं आपका पड़ोसी हूँ। यहां आए मुझे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। आपकी हवेली के पिछवाड़े में अपनी स्त्री के साथ रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं। कल रात को मेरे घर पर डाका पड़ा, डाकू मेरी स्त्री को ले भागे"। यह कहते कहते उसके नथुने फड़कने लगे, और ललाट की नसें फूल उठीं।

राजा रतनचन्द जी में सोचने लगे "मुझे यह क्यों कहने आया है? मैं इसका क्या करूं?"

फारसवासी ने कहा—"आप वज़ीर के बड़े मुलाहिज़ेदार हैं और बड़े इख़्तियार रखते हैं, आप जो जी में लावें वही कर सकते हैं। सिवाय आपके पास और कहां जाऊं? यह मुझे ख़बर न थी कि दिल्ली में भले घर की स्त्रियों पर यों अनर्थ हुआ करता है। मुझे तो गुमान था कि यहां गृहस्थों की स्त्रियों की भली प्रकार रक्षा होती होगी"।

राजा—"क्या यह झूठ है?" ज़रा सोच के राजा ने पूछा 'क्या किसी पर तुम्हें शक है?"

ज़रा चौंकके वह बोला—"भला यह मुझसे क्यों पूछते हैं?"

राजा—"जो कहने में कुछ डर हो तो न कहो"।

फारसवासी-"बस, एक आदमी पर मुझे सन्देह है। उसीके लिये मैं अपना देश छोड़ यहां आया। मैंने यह सोचा था कि इतनी दूर वह मेरे साथ थोड़े ही आने लगा है। अगर वही है तो मनुष्य से सहायता मांगना व्यर्थ है, क्योंकि आदमी उसका कुछ भी नहीं कर सकता"।

राजा—"क्यों?"

फारसवासी—वह बड़ा कड़ा जिन्न है।

राजा मुस्किराए, क्योंकि भूतपिशाच की बातों पर उन्हें विश्वास न था। पूछा—"वह किस डील डौल का है?" फारसवासी का कहा हुलिया वज़ीर के हुलिए से मिलता हुआ था। राजा समझ गए कि उस फारसवासी कि स्त्री को हर ले जानेवाला और वज़ीर को बाँधने वाला एक ही आदमी है। राजा ने कहा "अच्छा, वह जल्दी पकड़ जायगा। उसने यहां और भी अपराध किए हैं"।

फारसीवासी ने लम्बी सांस लेकर कहा—"आप अभी उसकी ताक़त नहीं जानते"।

राजा—"तुम उसका पता तो लगाओ। मैं भी आदमी तैनात किए देता हूं, जो कुछ ख़बर लगेगी तुम्हें मालूम हो जायगा"। फारसीवासी उदास हो कर लौट गया।

वज़ीर घर लौट आए थे। राजा रतनचन्द किसी दूसरे से यह सन्देसा न कह स्वयम् आप ही वज़ीर के पास गए। जल्दी के कारण अर्दली में अधिक भीड़भाड़ साथ न ली। जाते जाते रास्ते में पतली सी कुछ अन्धेरी एक गली थी, उसके अन्दर बादशाही फौज की वर्दी पहिरे कुछ लोग खड़े थे। उनके सर्दार ने आगे बढ़कर पूछा "कौन जाता है?"

राजा रतनचन्द के अर्दलीवाले बादशाही नौकरों की ज्यादा परवाह नहीं करते थे, क्योंकि यह तो उन्हें मालूम ही था कि असल में बादशाह कौन है। इससे अलगर्ज़ीपन से बोले, "राय रायान राजा रतनचन्द की सवारी है। हटो रास्ता छोड़ के खड़े हो'।

रास्ता छोड़ना कैसा, उसने तो आकर राजा की पालकी पकड़ कर कहा बोला—"राजा साहेब! आपकी गिरफ्तारी का हुक्म है; यह देखिए गिरफ्तारी का परवाना"—यह कहकर उसने उन्हें परवाना दिखाया।

रतनचन्द ने देखा परवाने पर शाही अँगूठी की मोहर लगी हुई है। वज़ीर राजा से मोहर वाली अँगूठी की बात कहना भूल गए थे। यह तो राजा जानते ही थे कि वह अँगूठी हमेशा वज़ीर की उंगली में रहती है, और जब ऐसा ही कोई ज़रूरी काम पड़ता है तब उससे मोहर लगाई जाती है। इससे तो जान पड़ता था कि ख़ास वज़ीर ने ही राजा की गिरफ्तारी का परवाना जारी किया है। राजा की दोनो जांघें थरथराने लगीं, सिर में चक्कर आ गया, कांपते हुए हाथ से परवाना लेकर सिर से लगाया; डबडबाई आंखों और रूँधे शब्दों से बोले "बादशाही हुक्म मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर आंखों से मंज़ूर है। ईश्वर उन्हें चिरञ्जीव रक्खें"।

सिपाहियों को यह सुन बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजा रतनचन्द की बादशाह पर कब से इतनी भक्ति श्रद्धा हुई। उन्हींमें कोई एक विश्वासी मनुष्य भी था, वह आगे बढ़ राजा के कान से लग के बोला, "महाराज! आप यह कर क्या रहे हैं? जो हम लोगों को हुक्म हो तो इन्हें मार कर भगा दें।"

राजा ने सिर हिला कर कहा, "जब इस परवाने पर शाही मोहर है तो ज़रूर यह कुतुब-उल्ल-मुल्क के इजलास से जारी हुआ है, फिर उस पर उज़्र कैसा?" आकाश की ओर निहार राजा एक ठंढी सांस भर के बोले "जो कुछ भाग में लिखा है सो होगा!"

राजा ने अपने अरदली वालों को कहा—"तुम लोग कोठी पर लौट जाओ, मैं इन सिपाहियों के साथ जाता हूं, क्योंकि मुझे तो बादशाही हुक्म मानना है।" और झगड़े से भी कोई फल न होता, क्योंकि अरदलीवालों से सिपाही गिनती में अधिक थे, इससे राजा की अर्दली अवश्य ही हार जाती।

पालकी पर से राजा को उतरना न पड़ा। सैनिकों की आज्ञा के अनुसार कहार उनके साथ ही साथ पालकी ले चले। राजा के अर्दलीवाले भयभीत और उदास हो घर लौट गए।

चौथा परिच्छेद

राजा रतनचन्द क़ैद हो गए, एक घड़ी भर में सारी दिल्ली में यह बात फैल गई। इस ख़बर को सुन बहुतों को इस लिये खुशी हुई कि बहुत गिरी अवस्था से रतनचन्द वज़ीर की मेहरबानी से ऊंचे दर्जे को पहुंचे थे और लोगों पर मनमाना अत्याचार करते थे, पर वज़ीर के भय से कोई कुछ न कह सकता था। इसीसे उसके विपद के समय में भी किसीने तर्स न की, जो कुछ भय या दुःख हुआ, वह उनके घरवालों को और उन्हें जिनकी उनसे जीविका थी। उनके कई एक मुसाहब वज़ीर के सामने जाके रोने और दुःख करने लगे।

पहिले तो अबदुल्ला ख़ां को विश्वास ही नहीं हुआ। वह कहने लगा कि बिना मुझे कहे बादशाह भी राजा को गिरफ्तार या किसी प्रकार उनका अपमान नहीं कर सकते हैं। भला राजा की तो बात दूर है, मेरे दरवाज़े के एक कुत्ते का भी बिना मेरी राज़ी के कोई अपमान करे! फिर भला राजा और मैं तो दो कालिब एक जान हैं, वे कब ऐसा कर सकते हैं? मुझे तो किसी तरह भी एतबार नहीं होता।

राजा रतनचन्द के एक मुसाहिब ने अर्ज़ की कि बादशाही शरीररक्षक सेना-वालों ने राजा को गिरफ्तार किया है और गिरफ्तारी के परवाने पर शाही अँगूठी की मोहर थी।

इतना सुनते ही वज़ीर को चट अँगूठी की बात याद आगई। तब तो घबरा के बोले "जो रतनचन्द पर कोई मुसीबत आगई है तो ज़रूर मुझपर भी आवेगी। सिर्फ़ राजा ही की फिक्र नहीं है, बल्कि मेरी हिफ़ाज़त भी भरपूर होनी चाहिए। इसमें किसी तरह की गफ़लत न होनी चाहिए। अच्छा अब ज़्यादः बात करने का मौक़ा नहीं है। राजा के बचाने में कोई बात उठा न रक्खी जावेगी। बस इतना समझ अब तुम लोग अपने घर जाओ"।

तुर्त ही वज़ीर उठ के घर के अन्दरवाले राजमहल में गए, जहां जापनाह बुलबुल की लड़ाई देख रहे थे। यह सुनते ही कि मुलाकात को कुतुब-उल-मुल्क आए हैं, चट पट उठ ड्योढ़ी तक आए। ख़ास दीवानख़ाने के बगल वाले एक छोटे से घर में वज़ीर साहेब ठहरे हुए थे। बादशाह का आना सुन चट उठ कुछ आगे बढ़ कर दरबारी क़ायदे से कोरनिश बजालाए, और दस्तबस्ता हो बोले जापनाह! किसी ख़ास अर्ज़ करने के लिये ताबेदार हाज़िर हुआ है।

बादशाह का रुख़ देख सब लोग बाहर चले गए। बादशाह फर्रुख़सियर हाथ थाँभ वज़ीर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने बग़ल में बैठा बोले "क्या है ? आज तुम्हारे चेहरे पर कुछ उदासी छा रही है, सब ख़ैरियत तो है न ? किसी तरफ़ किसी दुशमन की चढ़ाई तो नहीं है ?"

वज़ीर ने कहा, "जहांपनाह ! बाहरी दुशमन का कोई ख़तरा तो नहीं है, पर घरेऊ दुशमन ही का डर है। एक अजीब ग़रीब ख़बर कहने आया हूं"।

बादशाह ने समझा न जाने क्या विपद आने वाली है। घबरा कर बोले, "क्या है कहो भी ?"

वज़ीर ने कहा "रतनचन्द क़ैद हो गए। शहर भर में शोहरत है कि खुद बादशाह के हुक्म से वे क़ैद हुए हैं"।

बादशाह ने वज़ीर की ओर देख कर कहा "क्या मुझसे मज़ाक कर रहे हो ? बिना तुमसे मशविरा किए या पूछे भाले कभी मैंने कोई काम किया है ? और फिर रतनचन्द ! उस बिचारे ने मेरा क्या बिगाड़ा है कि मैं उसे गिरफ्तार करूंगा ? क्या मुझे नहीं मालूम कि उसपर तुम्हारी अबल दर्जे की मेहरबानी रहती है"।

'इसीसे तो मुझे एतबार नहीं आता, पर दो एक मेरे ख़ास आदमियों ने उस परवाने को अपनी आंखों देखा है। वे मुझे कहते थे कि उस परवाने पर ख़ास बादशाही अँगूठी की मोहर थी"।

उदास हो बादशाह ने कहा "वह अंगूठी तो तुम्हारे ही पास है न ?"

वज़ीर ने उँगली दिखा के कहा—"वह चोरी हो गई है"। चौंक के बादशाह बोले—"क्योंकर ?"

जो सच कहते हैं तो बहुत सी बातें खुल पड़ती हैं, इससे मुह फेर के धीरे से बोले—"मेरे अनजाने में चोरी हो गई"।

यह सुन के साफ़ बादशाह ने कह दिया "अबदुल्ला ख़ाँ, हम लोगों का कोई छिपा दुशमन पैदा हुआ है। तुमही उसका कोई बन्दोबस्त करो, मेरे किए क्या होना है, जैसा मुझे कहोगे मैं करने को बाहर नहीं हूं"।

वज़ीर—"यही तो मैं भी सोच रहा हूं, तो इस बारे में आप कुछ नहीं जानते ?"

बादशाह वज़ीर का हाथ थामके कुछ उदास से होके बोले—"तुमसे मेरी कौनसी बात छिपी हुई है ? तुमने और तुम्हारे भाई हुसेन अली ख़ां ने मुझे मुसीबत के वक़्त जो सहारा दिया था, लड़ाई में मेरी तरफ़ से हथियार थाम्हा था, तुम्हीने मुझे तख़्त पर बैठाया, क्या वे बातें मैं भूलगया हूं कि तुम्हारे साथ मैं खुटाई करूंगा ? जो रतनचन्द पर शायद नाखुश भी होऊं तो तुम्हें कहता। क्या मेरे कहने का तुम्हें एतबार नहीं होता ?"

वज़ीर ने कहा—माफ़ कीजिए, इस वक़्त तबियत निहायत परेशानी में है। आप बेफ़िक्र रहें, मैं इस बात का जल्द कुछ निबटेरा करता हूं"।

वज़ीर ने घर लौट कर राजा रतनचन्द की खोज में चारों ओर सन्धानियों को भेजा। वज़ीर के सन्धानिए दूत यों तो सभी ठौर और सब मौक़ों पर लगे ही रहा करते थे, पर इस समय राजा की खोज का उनपर अधिक ज़ोर डाला गया। क़िले के आस पास जिनकी तैनाती थी उन्होंने आके कहा कि न तो कोई पालकी गढ़ के अन्दर गई और न बादशाह का कोई सिपाही बाहर आया था। यह सुन वज़ीर समझ गया कि इस अनहोने साहस के काम में बादशाह का कोई लौलेस नहीं है। फिर रतनचन्द को किसने और क्यों क़ैद किया ? उसके जी में तभी खुटका हो गया था जब परवाने पर अंगूठी के छाप की बात सुनी थी। वज़ीर के जी में चट उस तीखी दृष्टिवाले अपरिचित मनुष्य का ध्यान आगया। उसके जी में भांति भांति की बातें उठने लगीं।

दिल्ली नगर भर में कोई ऐसी छोटी बड़ी प्रसिद्ध और छिपी जगह न थी जहां वज़ीर के गुप्त चर न रहा करते हों। पर राजा रतनचन्द को कौन कहां और क्यों ले गया इसकी किसीको भी थाह न लगी।

सन्ध्या के समय अपने मकान में वज़ीर बांए हाथ पर सिर झुकाए उदास बैठे सोच रहे हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने चुप चाप दो चार मुसाहेब भी बैठे हैं चारों ओर उदासी का सन्नाटा फैला हुआ है। एका एक वज़ीर जहां बैठे थे, किसीकी परछांहीं दिवाल पर दिखाई दी, वज़ीर ने सिर उठा दरवाज़े की ओर झुक के देखा।

अग्निशिखा निकलती आंखें और पीले बाल वाला वही अनजान असाधारण मनुष्य उन्हें देख पड़ा। उसे देखतेही वज़ीर चौंक कर उछल के खड़े हो चिल्लाके कहने लगे "पकड़ो, पकड़ो, देखो, ख़बरदार भागने न पावे"।

उसने कहा—"वज़ीर साहेब! जो मुझे भागना ही होता तो मैं आपके घर के अन्दर क्यों आता? अब तक सारा शहर तो ढूंढ फिरे, पर आपके आदमियों को कहीं भी पता न लगा, तब मैं आपही आपके सामने आ गया। आप इतना चीख़ क्यों रहे हैं?"

अन्त की बात सुनतेही वज़ीर के जीमें पिछले सब अपमान सौगुने होकर भभक उठे। मारे क्रोध के सारा बदन कांपने लगा। मुसाहेबों ने कहा—"देखो इसे बिना बांधे न छोड़ना, यह हमलोगों का पूरा वैरी है। इसे बांध के पांच सौ बेंत इसके पांओं में मार चिमटे से सारे शरीर की बोटी बोटी चीथ डालो और उन्हें मरघट के भूखे चील और गीधों के आगे डाल दो। जैसा इसने किया है वैसा ही बदला होना चाहिए"।

यह सुन वह मनुष्य सिर उठाकर हँसा। हँसी सुन वज़ीर कांप उठे और उसके साथियों ने चाहा कि उस अभिमानी धृष्ट को बांधें।

उस मनुष्य के हाथ में एक पतली सी गुप्ती थी, चट उसने उसके अन्दर से एक पतली लपलपाती तलवार निकाल आस पास वालों के अङ्ग में छुला दी। ज़रासा छूने में चोट लगने की कोई सम्भावना तो न थी, पर उसके छूजाने ही से चिल्लाके सबके सब मूर्छित हो पड़े।

यह देख वज़ीर बहुत ही डरा और पिछले अपमान उसके नस नस में बिन्धने लगे।

उसके बग़ल में एक गुप्त द्वार था जिसे ज़रा सा खोल वज़ीर ने ताली बजाई। ताली सुनते ही बहुत से खोजे और नौकर चट दूसरे द्वार से अन्दर आ घुसे। वज़ीर ने उँगली का संकेत कर उन से कहा "चट इसे पकड़ो और जो ताक़त दिखावे तो मार डालना"।

वज़ीर की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि वह अपने हाथ वाली तलवार तेज़ी से चारों ओर फेरने लगा। किसीके अङ्ग से न लगी, केवल अधर में घूम रही थी। ऊपर नीचे दाहिने बाएं चारों ओर उसमें से आग बरसने लगी, शुभ्र, तीव्र झुलसानेवाली ज्वाला, तलवार से चारों ओर फैल गई। सारे दालान में मानो आग की नदी सी बहने लगी और झलझलाती लहरें उसमें लहराने लगीं, पर उसी अग्निपुञ्ज में वह बलवान अपने पीले बाल बिखराए अटल खड़ा रहा, मानो सदेह अग्नि देव का वहां आविर्भाव हो गया था।

नौकर लोग भौचक से खड़े तमाशा देख रहे थे। कुछ देर तक तो वज़ीर भी चुप रहे, अन्त बोले-"अरे यह सब इन्द्रजाल का खेल है, डरो मत चट इसे पकड़ो, पकड़ो, नहीं तो तुम्हारी आंखों में धूल डाल लोप हो जायगा"।

उन नौकरों में से एक साहसी आगे तो बढ़ा पर बदन में आग की लपट लगते ही चिल्ला के धड़ से ज़मीन पर गिर पड़ा, उसे देख और किसी का आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

उस अनजान ने वज़ीर से कहा "अबदुल्ला ख़ां, ख़बरदार! दो बेर तुम देख चुके हो कि मैं तुम्हें कोई हकीकत नहीं समझता, अगर चाहूं तो देखते देखते तुम्हे और तुम्हारे इस घर को भस्म करदूं; बस, अब मेरे मुह न हो, दो बेर मैंने छोड़ दिया, अबकी तीसरी बेर न छोड़ूंगा"।

अपरिचित ने आपही जिस किवाड़ को बन्द किया था, उसे खोल वह बाहर निकल गया। उस के निकलते ही घर में की आग बुझ गई। साथही घर में की रोशनी भी बुझ गई और सारे घर में अँधेरा छागया। [क्रमशः

वा० कार्तिक प्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुँदेलखण्ड पर्य्यटन

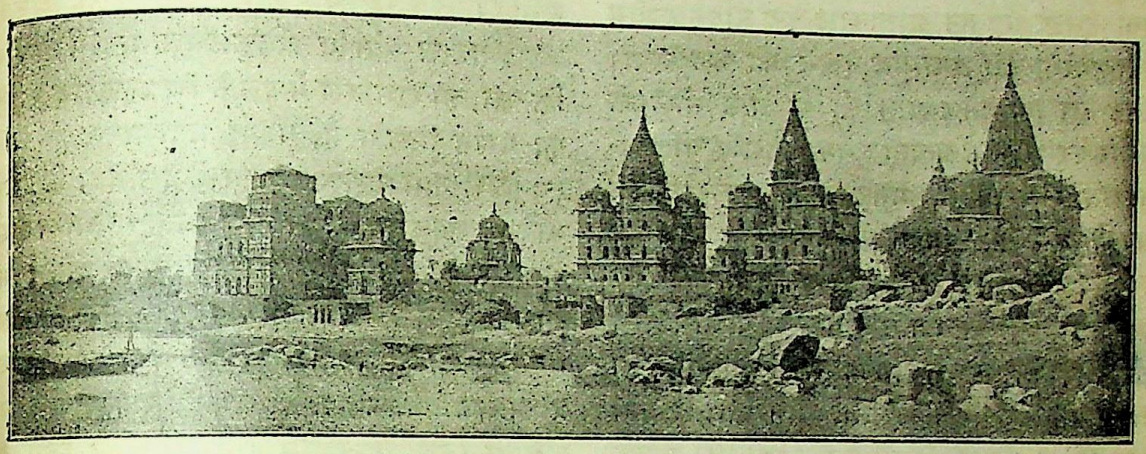

बेतवा के तीर पर बुन्देले सरदारों के समाधिभवन।

ओड़छा

कविकुल-कमल-दिवाकर महात्मा सूरदास जी ने सत्य कहा है—"सब दिन होत न एक समान"। निस्सन्देह यह वाक्य ऐसा सार-गर्भित है कि इसे जितना ही सोचिए उतना यह गूढ़ प्रतीत होता है और इतिहासानुरागी लोगों के लिये तो यह वाक्य ऐसा उपयोगी है कि यदि वह इसे स्वर्णाक्षरों से लिखकर रात्रिदिवस अपने सामने भी लटकाए रहें तौभी अनुचित न होगा। हम्मी पुरुषों के सम्मुख तो यह वाक्य घन घोर नाद से पढ़े जाने के योग्य ही है। जनवरी मास में बुँदेलखण्ड के अन्तर्गत पर्य्यटन करता हुआ जब मैं झांसी में पहुंचा और झांसी के दुर्गम दुर्ग, कोट तथा महाराणी लक्ष्मीबाई के राज्यभवन पर जब मेरी दृष्टि पड़ी, नगर में हिन्दूलोगों के प्राचीन नगरों के ढब के हाट, बाट, मन्दिर, गृह, जिनके द्वारों पर चित्रकारी के गज, अश्व, सेना, देवतादि के चित्र नाना रङ्गों के जब मैंने देखे, उसी समय अनायास, एर्यन, फाहयान, हयन्थशान लिखित भारतवर्षीय नगरों का चित्र आंखों के सम्मुख आ खड़ा हुआ और भारतवर्ष की उस सुख की दशा को वर्तमान दीन दशा से मिलाने पर चित्त बिकल हो उठा और कण्ठावरोधन होने को ही था कि पुनः महात्मा सूरदास ने मेरा प्रबोध किया, और 'सब दिन जात न एक समान' इस वाक्य को स्मरण कर जगत को परिवर्तनशील जान चित्त ने धैर्य धारण किया। पुनः कई दिन तक मैं झांसी नगर के प्राचीन चिन्हों का अनुसन्धान करता रहा। इसी अवसर पर एक दिवस मैं नगर के कोट के एक द्वार से निकला जो "ओड़छा द्वार" करके प्रसिद्ध है। इस द्वार को देखते ही मुझे अकस्मात् कवि-कुल-कमल-दिवाकर सूरदास जी के सहयोगी साहित्य-गगन के शोभावर्द्धक नक्षत्र कवीन्द्र केशवदास जी के, तथा उनके प्रतिपालक तथा प्रचण्ड मुगल सम्राट कुटिल-नीत्यवलम्बी अकबर के दर्प-दमनकारी बुँदेलवंशावतंश वीरशिरोमणि महाराज वीरसिंहदेव जी के अलौकिक चरित्रों की रङ्गभूमि का स्मरण हो आया, सब ओर से हट कर चित्त उसी ओर आकर्षित हो गया। यद्यपि मुझे कई एक आवश्यकीय कार्यों के कारण झांसी से बाहर जाने का अवकाश न था, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मन हट परयो न सुनहि सिखावा" की दशा हुई, सब काम छोड़ सबके बर्जने पर भी मैं गाड़ी मँगा दूसरे दिवस प्रातःकाल इन प्रातस्मरणीय महानुभावों की जन्मभूमि देखने को चल दिया। प्रगट हो कि ओड़छा झांसी से आठ मील के अन्तर पर है, मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, तद्यपि ओड़छाधिपति महाराज टीकमगढ़, ने जो बुँदेलखण्डीय राजमण्डली के अग्रणी हैं, उसे ऐसा सुधरवा रक्खा है कि गाड़ी आदि के जाने में कुछ कष्ट नहीं होता। पार्वतीय मार्ग होने से बहुधा मार्ग ऊंचा नीचा है, जो मुझे संसार के सम्पत्ति बिपत्ति की ठौर ठौर पर स्मरण दिलाता था। मार्ग के दोनों ओर सघन बनवृक्ष प्रहरीरूप में खड़े थे, उनपर खगवृन्दों का कलरव एक अपूर्व आनन्द का संचार कर रहा था। पाठकवृन्द, कदाचित् आपके नगरवासी होने से बनवर्णन ऊभट प्रतीत होता होगा और आप मुख्यस्थान के वृत्तान्त सुनने के लिये अधिक उत्सुक होंगे, अतः हम मार्ग का कुछ भी वृत्तान्त न कह मुख्यस्थान पर पहुंचते हैं। भारतवर्षीय इतिहास में जबसे यवनगण के सङ्कटमय चरणों के इस देश में पड़ने का वर्णन पाया जाता है, तबसे इस देश के दो प्रान्तों के राजपूत वीरों को हम विशेषतः रणक्षेत्र में पाते हैं; एक तो राजपुताना, दूसरे बुँदेलखण्ड। आज का हमारा आलोच्य विषय बुँदेलखण्ड का एक नगर है। इस लिये राजपूताने का वर्णन न कर हम कुछ संक्षेप सा वर्णन बुँदेल राजपूतों के वंश का करदेना उचित समझते हैं।

सीमा—भारतवर्ष के मध्यप्रदेश में राजपूताने की भांति एक वीरक्षेत्र यह बुँदेलखण्ड है। इसके उत्तर में यमुना नदी, पूर्व में रीवां का राज्य, दक्षिण में नर्मदा सिञ्चित प्रदेश और पश्चिम में ग्वालियर का राज्य है।

नाम पड़ने का कारण—विन्ध्याचल की नाना शाखाएं इस देश के अन्तर प्रविष्ट हैं, अतः यह पार्वतीय देश उसी सम्बन्ध से विन्ध्यखण्ड, अथवा विन्ध्येलखण्ड कहलाया और कालान्तर में इस शब्द का अपभ्रंश हो देश बुन्देलखण्ड कहलाने लगा*।

इतिहास—यों तो कविकुल-गुरु महर्षि वाल्मीकि जी की रामायण में इसके चित्रकूटादि स्थानों का वर्णन मिलता है, परन्तु महाभारत में चेदि (चन्देरी) नामक राज्यसम्बन्ध में इस देश के राज्य का सविस्तर इतिहास पाया जाता है। युगान्तर का इतिहास होने से हमें यहां उसके वर्णन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और हम कवि चन्द लिखित महोबा खण्ड की साक्षी पर चन्देल वंश का, जिनकी प्रथम राजधानी कालिञ्जर थी, जिसका दुर्गम दुर्ग अद्यापि उनके प्रतापशील होने की सुधि दिलाता है और द्वितीय राजधानी खञ्जूरपुर, जिसके अद्वितीय प्राचीर मठ मन्दिर तड़ागादि अब तक उनकी महानता के सूचक क्षत्रपुर राज्यान्तर्गत खड़े हैं, और तृतीय राजधानी महोबा थी, जिसके प्रबल वीर आल्हा, ऊदन, मलखान आदि ने एक बार समस्त भारत में चन्देल वंश की विजय का डङ्का पीट दिल्लीश्वर पृथ्वीराज तक को थर्रा दिया था और अपने बालपन में काबुल तक को विजय कर लिया था, जिनके आश्चर्यदायक विशाल चिह्न अब तक समस्त भारतवर्ष में और विशेषतः महोबा के सन्निकट देशों में फैले हुए हैं, सविस्तर वर्णन करने का अलग सङ्कल्प कर चुके हैं, इसलिये यहां पर केवल इतना ही लिखते हैं कि इस प्रचण्ड वंश के भाग्य का सूर्य भी, सन् ११९७ ई० के लगभग दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के भाग्यभानु के साथ ही साथ, यवनदीप के प्रज्वलित होने के समय, अस्ताचल को प्रस्थान कर गया और तदुपरान्त

* किसी किसी का यह पौराणिक मत है कि इस वंश के आदि मूल राजा वीर ने उग्रतप कर श्री विंध्यवासिनी को अपना शीश चढ़ाया था। भगवती उनसे ऐसी प्रसन्न हुईं कि उन्हें पुनः जीवित कर दिया। इतना ही नहीं, किन्तु शीश चढ़ाते में जो रक्त बिन्दु गिरे थे उनसे भी वीर उत्पन्न कर दिए और वह राजा के सहायक हुए और बुन्दोत्पन्न होने से बुन्देले कहलाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर बुन्देलवंशीय राजपूतों के शासन का इस देश में प्रादुर्भाव हुआ। जब चन्देलचन्द्र के वियोग में बुँदेल मुख-कुमुदनी यवन-भाग्य-भास्कर को देख मुरझा रही थी, इस देश का शृङ्खलाबद्ध राज्य नष्टप्राय हो गांव गांव के निराले ठाकुर होते जाते थे, उसी समय शाकम्भरी नरेश पृथ्वीराज को छल से मारनेहारे क्रूर शहाबुद्दीन गोरी के सेनानायक, पृथ्वीराज के राज्य के प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों में फैल गए और जिस लोरक खत्री ने आर्यवंश की अहितचिन्ता कर कई बार शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज के बन्धन से छुड़ा और अन्त में पृथ्वीराज की वैसी ही दशा में सहायता न कर, शहाबुद्दीन के हाथ उसका शिरोच्छेदन होने दिया, और इस प्रकार स्वजातिघातक पाप का दोष जिसके शिर पर छा रहा था उसीकी सन्तान महोबा राज्य की ओर यवनशासन होते हो आई और राज्य सीमा पर जालौन प्रान्त के कोंच परगने के मुहौनी नामक ग्राम में अपने राज की राजधानी नियत कर रहने लगी।

धन्य भारत! तेरा जल वायु अद्भुत पदार्थ है, कोई कैसा ही क्रूर कुटिल प्रकृतिवाला तेरे अन्तर्गत क्यों न आवे, जहां पतितपावनी भगवती जन्हुनन्दिनी के जलबिन्दुओं का उसने आचमन किया और जहां त्रैलोक्य त्रिभूति को तृण गिनने और ब्रम्हानन्दामृत को पान करनेहारे हिमशिखरस्थित ऋषियों के पद स्पृष्ट वायु का उसे स्पर्श हुआ, तहां उसके मानो विकार, जन्म जन्मान्तर के पाप, क्षणमात्र में दूर हो उसमें भी साधुत्व आही जाता है। "खल सुधरहिं सत्संगत पाई—पारस परस कुधातु सहाई" का न्याय होताही है।

लोरक के सन्तानों को भी यही दशा हुई। भारतवर्ष के जल वायु ने उन्हें यहां के पवित्र गुणों से अलङ्कृत कर दिया, सदाचार, सद्व्यवहार, बंधुभाव, सुशीलता और सुजनता का सञ्चार उनके हृदय में हो गया, मुहौनी गद्दी के एक वृद्ध महाराज निस्सन्तान थे उनके जीवनकाल की संध्या होने ही को थी, कि इतने में काशी के प्रसिद्ध गहिरवार-वंश-भूषण राजा कर्ण नामक किसी कारण अपने पूर्वजों की राजगद्दी काशी छोड़ मुहौनी आए; निस्सन्तान मुहौनी राज्याधीश ने बड़े प्यार से उनका सत्कार किया और उनको अपना पाहुना बनाया। कुछ कालोपरान्त दोनों में घनिष्ट प्रेम हो गया और मुहौनीराज महाराज कर्ण के गुणों से ऐसे मोहित हो गए कि अपना समस्त राज आगन्तुक को सौंप आप सुरपुर यात्रा कर गए। यही राजा कर्ण इस बुँदेल वंश के आदि मूल हैं। राजा कर्ण और उनके पुत्र अर्जुनपाल जो मुहौनी में राज करते रहे और अपने राज का विस्तार करते गए; परन्तु अर्जुनपाल जी के पुत्र राजा सहनपाल ने प्रबल खंगार जात को परास्त कर उनकी राजधानी गढ़ कूंडार को विजय कर मुहौनी से राजधानी हटा गढ़ कुंडार को अपनी राजधानी बनाया। राजा सहनपाल, राजा सहजइन्द्र, राजा नौनिध, राजा प्रथु, राजा सूर, राजा रामचन्द्र, राजा मेदिनीमल, राजा अर्जुन, राजा रायअनूप, राजा मलखान, राजा प्रतापरुद्र तक यहां राज्य करते रहे, परन्तु महाराज रणरुद्र ने गढ़ कुंडार से राजधानी हटा एक सिद्ध जी के आज्ञानुकूल वेत्रवती के तट पर ओड़छा बसाया। यही ओड़छा नगर आज हमारा आलोच्य विषय है।

पाठक महानुभावो! आप प्रथम टुक प्रकृति का वर्णन सुन लीजिए, कि यहां वह किस रुप में विस्तृत है। नगर के चतुर्दिक पर्वतों की छोटी छोटी शृङ्गें फैली हुई हैं। इनपर पलाश, खैर, बरगद, पीपल के बन के बन उगे खड़े हैं, इन्हीके बीच बीच कहीं शिव मन्दिर, कहीं फूटे कोट, कहीं तिद्वारी दृष्टि आती हैं। जंगली जन्तु भी बहुतायत से इन्हीं बनों में रहते हैं। पर्वतों के बीच बीच में बड़े बड़े नाले हैं जो बनबूटियों से भरे पड़े हैं। बंबई, दोनामरुआ और तुलसी के वृक्ष समभूमि पर सहस्रों देख पड़ते हैं। निर्मल वेत्रवती पर्वतों को विदार कर बहती है और पत्थरों की चट्टानों से समभूमि पर, जो स्वयं पथरीली है, गिरती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे एक विशेष आनन्ददायक वाद्यनाद मीलों से कर्णकुहर में प्रवेश करता है और जलकण उड़ उड़ कर मुक्ताहार की छवि दिखाते और रवि-किरण के संयोग से सैकड़ों इन्द्रधनुष बनाते हैं। नदी के थाह में नाना रङ्ग के प्रस्तरों के छोटे छोटे टुकड़े पड़े रहते हैं, जिनपर वेग से बहती हुई धारा नवरत्नों की चादर पर बहती हुई जलधारा की छटा दिखाती है। नदी के उभय तटों पर ऊंची पथरीली भूमि है और इसीपर नगर बसा था जिसके खंडहर अद्यापि कई मील तक विस्तृत हैं। और उभय तटों पर देवालयों की पांतें, कूप, बावली, राजाओं की समाधियों पर के मन्दिर देख पड़ते हैं जिनका विशेष वर्णन हम आगे चल कर करेंगे। जब वेत्रवती ओड़छे के मध्य में पहुंचती है तब वह दो धारों में विभाजित हो जाती है और मील भर के लगभग लंबा एक अंडाकृत टापू बीच में रहजाता है। पाठक महानुभावो! आप इस टापू को भूल मत जाना। आगे चल कर आप इस टापू पर फिर आवेंगे। नगर के चतुर्दिक पहाड़ी पत्थरों की टोलें चुन चुन कर कोट बनाया गया था और उसमें बड़े बड़े ऊंचे द्वार छोड़ दिए गए थे। ये टोलें चूने से जोड़ी नहीं गई हैं, केवल एक दूसरे पर चुन दी गई हैं। इनके दोनों ओर सघन वृक्ष जम आए हैं और उनकी जड़ों में फंसकर पत्थरों की टोलें ऐसी दृढ़ होगई हैं कि टाले नहीं टल सकतीं और इसी कारण स्वाभाविक पर्वतश्रेणी प्रतीत होती हैं, और इस ऊजड़ दशा में भी हमें वह स्थान रम्य जान पड़ता है, मानो मनुष्यों के अभाव में स्वयं प्रकृति देवी वहां पथिकों का सत्कार करती हों। इसी रम्य भूमि पर महाराज रणरुद्र जी ने ओड़छा बसाया था।

किसी कवि ने सत्य कहा है "गुण ना हिरानो गुणग्राहक हिरानो है"। राजा गुणग्राहक चाहिए, फिर गुणियों की त्रुटि कहां। राजा रणरुद्र की गुण-ग्राहकता से आन की आन में सैकड़ों गुणी, पण्डित, विद्वान्, नीतिज्ञ ओड़छे में आन बसे; सब का राजदर्बार से सत्कार होने लगा। महाराज रणरुद्र के पश्चात्, महाराज भारतचन्द्र, और तब हरिचन्द्र राजा हुए। इन सपूतों ने अपने पूर्वजों के राज्य को और भी बढ़ाया। कृतघ्न शेरशाह सूर ने पूर्व उपकारों को भूल महाराज हरिचन्द्र पर आक्रमण किया। परन्तु अन्त में वह कायर इनकी कृपाण का लेख अपने भुजा पर लिखा रक्तप्लावित आहत हो कायरों की भांति रण से भाग गया। ओड़छे का विशाल चतुर्भुज जी का मन्दिर इन्हीं महाराज का कीर्तिस्तम्भ है। यह स्वर्णकलशमय मन्दिर तीन शिखरों में विभाजित है। एक तो पर्वत के समान ऊंची बैठक पर यह मन्दिर बनवाया गया है, दूसरे मन्दिर की ऊंचाई भी एक पहाड़ के समान ही है। इसका विस्तृत सभामण्डप वृन्दावन के गोविन्ददेव जी के मन्दिर से किसी अंश में न्यून नहीं है। सभा-मण्डप में वायु तथा उजेले के लिये द्वार लगे हैं और एक छोर पर चतुर्भुज जी की मूर्ति स्थापित है। सभामण्डप के किसी द्वार पर खड़े हो जाइए, उस ओर के नगर का सब विभाग हथेली पर की वस्तु की भांति दृष्टिगोचर होगा। और छत पर से तो समस्त नगर ही देख पड़ता है। यह मन्दिर एक छोटे क़िले के समान है और ऐसा दृढ़ है कि कदाचित तोपों की मार भी वह सरलता से सहन कर सके। भूल भुलैयों की भांति इसको छत पर द्वार कटे हैं। अपने ढङ्ग का यह मन्दिर ऐसा अनूठा है कि कदाचित् इस बुँदेलखण्ड में कोई ऐसा मन्दिर न निकले। परन्तु किन्हीं विशेष कारणों वश यह मन्दिर अपूर्ण सा रहा और महाराज स्वर्गयात्रा कर गए और राज्य-सिंहासन पर यशस्वी महाराज मधुकरसाह राजा हुए। मुगलवंश का भाग्य इस समय पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चमचमा रहा था। शुद्ध स्वार्थी लोभीजन दिल्लीश्वर की तुलना "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कह कर परमेश्वर से तुलना करने लगे थे और अपनी कुटिल नीति से अकबर भारतवर्ष के हिन्दू राजामात्र से अपना सम्बन्ध जोड़ उन्हें धोखा दे मुसलमान बनाने का प्रबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा था, कि इतने में महाराज मधुकरसाह का अर्कोदय हो उठा। उनकी विमल कीर्ति मुगल सम्राट का हृदय शालने लगी। उसके यश का खद्योत इनके यशार्क के सम्मुख छविहीन हो गया और उसके यश की जर्जरित नौका इनके अगम कीर्तिसागर में डूबती जान पड़ी। तब दुराग्राही मुगल सम्राट ने ईर्षावश इन्हें भी राजपुताने के और राजपूतवंशों के समान अपने दासत्व-शृङ्खला में बांधने के नाना उपाय रचे, परन्तु यहां तो "भूख मरै दिन सात लौं सिंह घास नहिं खाय" की दशा थी। अकबर ने सब प्रयोगों के निष्फल होने पर अपने पुत्र मुराद को बलाध्यक्ष कर इनपर सेना सन्धान की। परन्तु वह सेना महाराज के कृपाण के प्रज्वलित दीपज्योति की पतङ्ग हुई। मुराद रण से भाग गया, अन्त में अकबर ने हार मानकर इनसे सन्धि करली। कवीन्द्र केशवदास जी के पितामह कृष्णदत्त जी मिश्र, जो प्रख्यात प्रबोध चन्द्रोदय नामक रूपक के रचयिता हैं, इन्हीं महाराज के राजपण्डित थे। इन्हीं घटनाओं के स्मरणार्थ कवीन्द्र केशवदास जी ने निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—

देव अदेवन को चरणोदक बोधो सबै कलि के कुलमानी।"
आरिद दुःख बहाय दए जिन दीरघ दान कृपान के पानी॥"
लोकहि* में परलोक रच्यो अरि देह विदहन की रजधानी।"
राज मधूकरसाह सों और न रानिन जैसी गणेशदे रानी†॥"
आपि बघेले को राजसुखायगो खोपरि क्षुद्र पठानि अठानी।"
केशव ताल तरङ्गनि सूख गई सिगरी रजधानी सुबानी॥"
चाहहिं‡ अकब्बर अर्क उदय मिटि मेघ महीपति की रजधानी"
रजागर सागर श्री मधुसाह के तेग चढ़्यो दिनही दिन पानी"

दोऊ दीन बखानही जग में जाकी कृत्ति।
कृष्णदत्त§ मिश्रहिं दई, जिन पुराण की वृत्ति॥

* से अभिप्राय रघुनाथ जी के मन्दिर निर्माण करने का है।
† यह राजमहिषी थीं। यही रघुनाथ जी की मूर्ति लाई थीं।
‡ इस पद में मुगल सम्राट की सेना के हारने का इङ्गित है।
§ यही कृष्णदत्त मिश्र महाराज के राजपण्डित थे और केशवदास जी के पितामह थे।

इन्हीं महानुभाव ने प्रख्यात रघुनाथ जी के मन्दिर के लिये अपना राज्यभवन दे दिया और नौचौकिया फूलबाग़ आदि निर्माण कराया, जिसका विशेष वर्णन हम आगे चलकर राज्यस्थानों के चिन्हों के साथ करेंगे।

इनका और अकबर का यहां तक घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ता गया और अकबर इनका यहां तक कृपाकांक्षी रहा कि उसने इनके पुत्र महाराज रत्नसेन के सिर पर अपने हाथ से पगड़ी बाँधी और इनके ज्येष्ठ पुत्र महाराज रामसाह की सहायता ले दक्षिण विजय किया। महाराज के स्वर्गवासी होने पर वीरकेशरी महाराज वीरसिंह देव राज्याधिकारी हुए। औदार्य, निच्छलता और शौर्य इन्हीं के भाग में आ पड़ा था। अकबर के आचरणों से इन्हें स्वाभाविक घृणा थी। उसके स्त्रियों का बाज़ार लगवा कर वहां से महिलागणों को भटकवाकर उनके धर्म-नाश करने और व्यर्थ राजपूत राजाओं को अपनी बेटियां यवनों के घर ब्याहने के लिये सताने आदि की कार्रवाइयों को सुन सुन इनको क्रोधाग्नि भड़क उठा करती थी। यह ऐसा अवसर ढूंढ़ा ही करते थे कि जिससे अकबर किसी प्रकार इनसे रण रोपै और यह अपने हाथ से रणभूमि में उसका दर्प दमन करें। होते होते ऐसा अवसर आन ही पड़ा। युवराज सलीम और उसके पिता अकबर के परस्पर वैमनस्य रहा करता था, क्योंकि अकबर तो अपने मन्त्रियों के पैरों चलता था, विशेषतः अबुल फ़ज़्ल के। और अबुल फ़ज़्ल यह चाहा करता था कि अकबर के पश्चात् किसी ऐसे को बादशाह बनावे जो उसके हाथ की कठपुतली हो। सलीम अपने पैरों चलनेहारा था, इसी कारण वह अबुल फ़ज़्ल को खटकता था। अबुल फ़ज़्ल फोड़ तोड़ के बल से अकबर को सलीम से लड़ाता रहता था। सलीम ने अपना पक्ष पिता की दृष्टि में निर्बल पाकर किसी बड़े तथा बलवान का आश्रय ढूंढ़ना चाहा और उसकी दृष्टि में वृत वीर महाराज वीरसिंह देव ही "निर्बल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलराम" देख पड़े। सलीम आकर महाराज का पाहुना हुआ और उसने अपना सब वृत्तान्त कहा। महाराज ने उसे सहायता देने का सङ्कल्प किया और जब गोलकुण्डे से अबुल फ़ज़ल लौटकर आगरे आ रहा था, तब ग्वालियर के निकट आन्तरी की घाटी में इन्होंने उससे रण रोपा और अपने हाथ से अकबर के एक मात्र प्यारे मन्त्री का शिर काटकर सलीम के पास प्रयाग भेजदिया और अकबर को रण रोपने के लिये उत्तेजित करना चाहा। परन्तु अकबर इतने पर भी इनके सम्मुख रण रोपने का सहास न कर सका और रो रो कर अबुल फ़ज़ल के शोक में अपना जीवन घटाता रहा और अन्त में अपने बुढ़ापे के दो वर्षों को दुख से काट मर गया। ओड़छे का राज्य तथा बुन्देल कुल के भाग्य का भानु इस समय पूर्ण उन्नति पर था। भारतवर्ष भर में उसकी प्रख्याति हो रही थी। राजसभा सर्वाङ्ग पूर्ण थी। महाराज वीरसिंह देव को महाराज इन्द्रजीत से सहोदर मिले थे, जिनका चातुर्य्य संसार भर में प्रगट था। महाराज को सावंत विक्रमसिंह, अर्जुनसिंह ऐसे स्वामिभक्त कर्मचारी और रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञान गीता ऐसे ग्रन्थों के रचयिता कवीन्द्र केशवदास से कवि और प्रवीणराय, सत्यराय, रङ्गराय सदृश काव्यकलासम्पन्न गान तथा वाद्य-विद्या-पारङ्गत गायक मिले थे। ओड़छाधीश की जय देश देशान्तर में बोली जाती थी। ओड़छे के इन्हीं प्रतापपुञ्ज दिनों का वर्णन केशवदास ने किया है। यथा—

दोहा

"केशव तुङ्गारण्य है नदी वेतवै तीर।"
"नगर ओड़छो बहु बसैं पण्डित मण्डित भीर॥"

कवित्त

"ओड़छे तीर तरङ्गनि वेतवै ताहि तरै रिपु केशव को है।
अर्जुन बाहु, प्रवाहु प्रबोधित रैन ज्यों राजन की रज मोहै॥
ज्योति जगै यमुना सी लगै युगलोचन लागत पाप बिमोहै।
सूरसुता शुभ सङ्गम तुङ्ग तरङ्ग तरङ्गति गङ्ग सी सोहै॥

दोहा

विदित ओड़छे नगर को राजा मधुकुर साह।
गहिरवार काशी सरव कुलमंडन यश जाह॥
वीरसिंह नृप की भुजा* यद्यपि केशव तूल।
एक शाह† को फूल सम एक शाह‡ को शूल॥

कवित्त

पवन ज्यों पुञ्जपंवार उड़ायगो तोमर मूलक तूल उड़ाये।
सिंह ज्यों बाघ ज्यों कच्छपबाहु हत्यो गज ज्यों गजराज दहाये।
केशवदास प्रकाश अगस्त्य ज्यों शेष अशेष समुद्र सुखाये।
वीर नरेश के खर्ग खगेश गुमान के विक्रम व्याल नसाये॥

दोहा

द्विजन§ दये सुखदान दिन दान दये निहकाम।
अभयदान देत न खलन परतिय दृष्ट समान॥
भूषण सूरज वंश को दूषण कलि को जान।
दासजो कहिये विप्र को सबही को प्रभु मान॥
कुल बल विक्रम दान बस गुनगन गनत अशेष।
चतुर पंचमुख षट सहस कहि न जाय सविशेष॥

कवित्त

केशवदास राजा वीरसिंहजू के नामही ते
अरिगज राजन के मद मुरझात हैं।
सजल जलद जैसे दूर से विलोकियत
पर दल दल चल दल कैसे पात हैं॥
भैरौं कैसे भूत भट देखतहिं प्रतिभट
घट घट देखे बल विक्रम विलात हैं।
पीरी पीरी देखत पताका होत पीर मुख
कारी कारी ढालैं लखि कारे ह्वै ह्वै जात हैं॥

ऐसी उन्नति के दिनों में, पाठक महानुभाव, हम आपको एक बार उस टापू पर जो तुंगारण्य से आगे हम आपको वेत्रवती की दो धारों के बीच में दिखा

---

* सलीम ने भुजा पूज महेन्द्र का पद तथा शाही मरातिब दिया था।

† सलीम।

‡ अकबर।

§ महाराज वीरसिंह देव ने मथुरा में ८१७ इक्यावी मन सोना एक दिन में दान किया था उससे अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

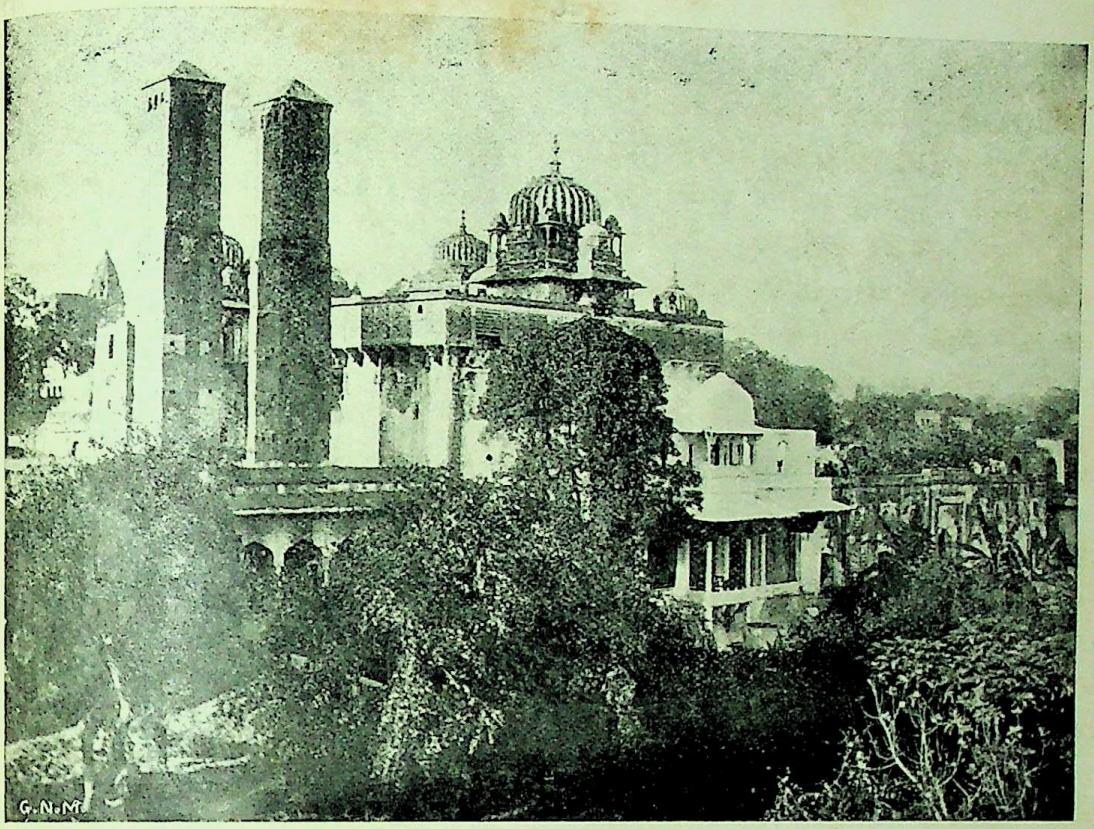

ओड़छा का सावन भादों महल ।

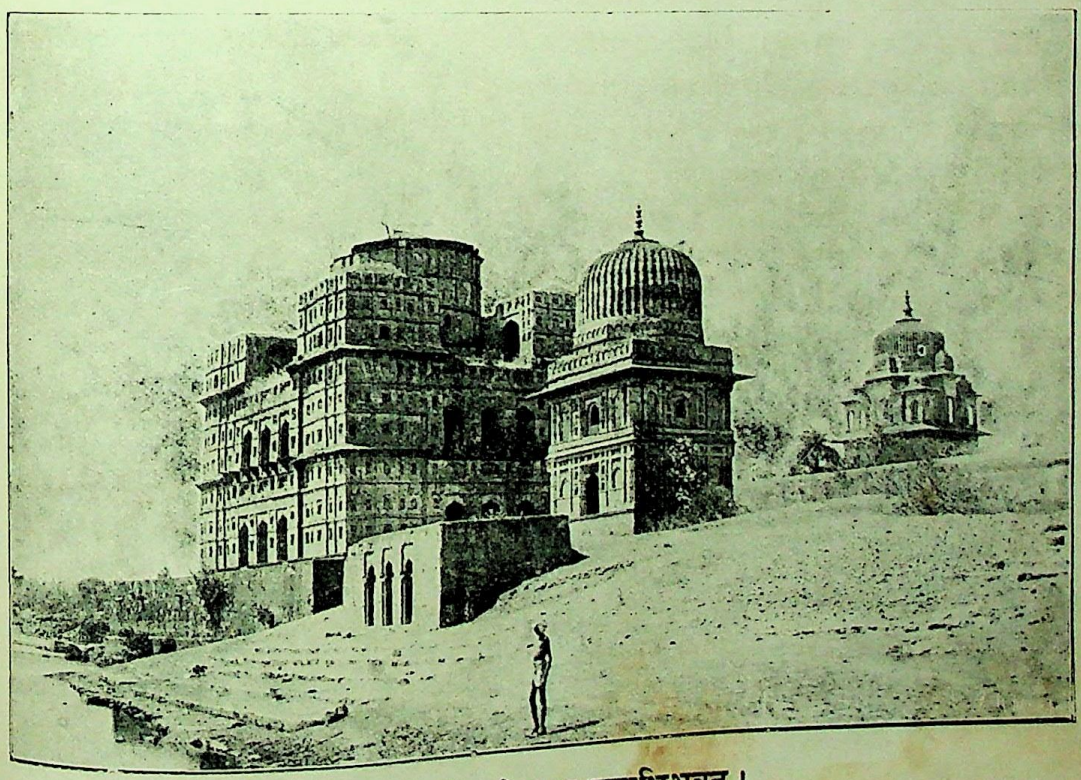

वीरसिंह देव का समाधिभवन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हैं, फिर बुलाया चाहते हैं। यह टापू रघुनाथ जी के मन्दिर के द्वार के सामने एक सरल रेखा में पड़ता है। चतुर्भुज जी के मन्दिर के सभामण्डप में खड़े हो जाइए, इस टापू की एक एक इञ्च भूमि देख पड़ेगी। जनरव है कि एक बार महाराज वीरसिंह देव चतुर्भुज जी के मन्दिर का दर्शन कर सम्मुख के द्वार पर खड़े वेतवा की तरङ्गमाला को देख रहे थे, कि इतने में उनको अनायास एक ग्रामीण युवती देख पड़ी। यह युवती अपने शिर पर एक डलिया लिए दूसरे तट से आरही थी। ज्योंही नदी की एक धार मंझियाकर टापू के तट पर पहुंची, त्योंही वह प्रसवपीड़ा से बिकल होकर शिर से डलिया उतार वहीं बैठ गई और मूर्छित हो गई। थोड़ी देर पीछे वह फिर बिकल हो कर रो उठी। दयालु वीरसिंहदेव यह कौतुक देखही रहे थे। उनको प्रगट हो गया कि यह नवलबाल प्रसव पीड़ा से बिकल है। महाराज ने उसी समय राज मन्दिर में जा परिचारिकाओं को भेजा कि वे इस निस्सहाय युवती की रक्षा करें। परिचारिकाओं ने जाकर उसे सम्हाला और वहीं उसके पुत्र का जन्म हुआ। महाराज वीरसिंहदेवने उसे तुरन्त पालकी पर बालक सहित उठवा मंगाया और बड़े प्रेम से उसकी रक्षा और सेवा कराई। अन्त में उसे उसके पति को सौंप दिया और प्रस्थान के समय उसे बहुत सा धन रत्न वस्त्रादि दे अपनी बेटी कह सम्बोधन किया। वह युवती ब्राह्मण वर्ण की थी; सती ब्राह्मणी उनको बहुत आशीर्वचन कहती अपने पति के घर गई। राजा के इस दयासम्पन्न कार्य की ख्याति फैल गई। कहते हैं कि जब महाराज उस ब्राह्मणी को प्रस्थान करा रहे थे, तब एक महात्मा आकर राजा के सम्मुख खड़े हो गए और बोले कि राजन्! तेरा यह पुण्यकार्य तेरे सब पुण्यकार्यों से गुरुतर है; यह टापू सिद्धाश्रम है और तूने भी यहां यह महायज्ञ किया है। यदि तू यहां पर अपना राजमन्दिर तथा कोट बनवावेगा तो तेरा आतङ्क वहां पर बैठ आज्ञा करने से दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जायगा। सिद्धवचन शिर धर कर राजा ने उसी समय वहां राजमन्दिर आदि बनवाना प्रारम्भ कर दिया। कहते हैं कि जब क़िले के लिये टापू में नीव खोदी जारही थी, तब एक मठ भूमि के भीतर देख पड़ा और जब वह खोला गया तो एक और सिद्धजी के दर्शन हुए, जिन्होंने यही आदेश किया कि मेरे मठ को वैसेही बंद करके ऊपर से अपना कोट बनालो। राजा ने वैसाही किया और कुछ काल में कोट बनकर प्रस्तुत हो गया, जिसका सविस्तर वर्णन हम अन्य स्थानों के साथ आगे चलकर करेंगे। महाराज के कोट के भीतर ही और बहुत से कार्यालय बन गए और ओड़छा राजसभा के प्रवीण सभासदों के सुयश की सुवास दूर दूर तक फैलने लगी। महाराज और उनके सहोदर इस सुअवसर और अपने सौभाग्य को परिपूर्ण देख फूले नहीं समाते थे। "संसार परिवर्तन शील है" यह बात महाराज भी भली भांति जानते थे। उन्हें यह भली भांति ज्ञात था कि मध्याह्न के पश्चात् सांझ होती है। शरीरधारी एक न एक दिवस मृत्यु का ग्रास होता ही है। कवीन्द्र केशवदास जी से महाराज ने स्पष्ट शब्दों में एक बार कह ही डाला कि हमारे जीवन की सन्ध्या अब होने का समय निकट आ चला; इसका तो मुझे कुछ शोक नहीं है, परन्तु जब यह ध्यान आता है कि मृत्यु के प्रचण्ड बवण्डर के झोंके से उड़ बालू के कणों की भांति यह मण्डली भी तितर बितर हो जायगी तो आंखों के सम्मुख अन्धकार सा छा जाता है और चित्त शोकाकुल हो उठता है, क्योंकि ऐसा समाज अब जन्मान्तर में भी मिलना दुस्तर प्रतीत होता है। गुरुवर, क्या आपके शास्त्र में कुछ ऐसा उपाय है जिससे यह समाज अधिक काल तक स्थिर रह सके? कवीन्द्र नेउत्तर दिया कि राजन! उपाय तो अवश्य है, परन्तु बहुत दुखप्रद है। समस्त सभा यदि एक वार ही आत्मसमर्पण कर दे तो समाज प्रेतयोनि में एक सहस्र वर्ष तक स्थित रह सकती है। राजा ने उपाय से सहमत हो कृत्य का विधान पूंछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवीन्द्र ने प्रेतयज्ञ* का विधान कहा। राजा ने यज्ञ के लिये आज्ञा दी। तुङ्गारण्य पर वेत्रवती तट के दक्षिण ओर प्रेतयज्ञ के लिये वेदी रची गई और वहीं पर सब सभा प्रेतयज्ञ में आत्मसमर्पण कर भस्मीभूत हुई। मेरे अनुमान में यह ठौर महाराज वीरसिंह देव के समाधिमन्दिर के निकट किसी स्थान पर है,† क्योंकि प्रेतयज्ञ तो तुङ्गारण्य में हुआ; परन्तु ठीक चिन्ह विवादित है। महाराज के भस्मीभूत होते ही ओड़छे के भाग्य ने पुनः पलटा खाया। कालचक्र किसी और ही गति पर घूमने लगा और महात्मा सूरदास जी का वाक्य "सब दिन जात न एक समान" यहां पर फिर चरितार्थ हुआ। जिस वीर केशरी ने अकबर सम प्रबल सम्राट का दर्प दमन किया था, उसके ही निर्बल पुत्र शाहजहां बादशाह के आधीन हो दिल्ली के दर्बार आम के खम्भों से टिक कर विनीत भाव से खड़े रहने लगे। केशवदास, विक्रमसिंह, अर्जुनसिंहादि आमात्यों के ठौर प्रतीतराय सदृश आमात्यों की प्रतीत होने लगी। विहारीदास सम कवि यह कह "जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीत बहार। अब अलि रही गुलाब की अपति कटीली डार" ओड़छा छोड़ने लगे। पाठक महाशयो! विहारीदास जी के "अपति कटीली डार" वाक्य से ही समझ लीजिए कि इतने ही स्वल्प काल में, अर्थात् पिता से पुत्र तक राज्य आने में, क्या अन्तर हुआ। कवि अपने पिता केशवदास जी के समय में ओड़छा की उपमा गुलाब के लहलहे पुष्पमण्डित द्वार और अपने समय में अपति कटीली डार से देते हैं, क्योंकि एक और दोहे में वह स्वयं कह चुके हैं "यह आशा अटक्यो रह्यो अलि गुलाब के मूल। ह्वै हैं बहुर वसन्त विच इन डारन वे फूल"। ओड़छे की राजसभा ने यहां तक पलटा खाया कि जो राजबन्धु बन्धुप्रेम में एक दूसरे पर प्राण निछावर करने को प्रस्तुत थे, उन्हीं की गद्दी के अधिकारी अपने सहोदरों को विष देने लगे। राजकुमार हरदेवसिंह जी* को उनके बड़े भाई ने अपनी स्वपत्नी द्वारा विष दिलवाया। इस जघन्य कार्यवश राजवंश से सब सम्बन्धी और सजातीय रुष्ट होगए। जिन वीरों पर राज के महत्व मन्दिर की नीव थी, वह निरुत्साहता रूपी कुदाल से ऐसे पोले पड़े कि राज्य धसकने लगा। सम्बन्धी इधर उधर छितर बितर हो अपने छोटे छोटे राज्य अलग बना बैठे, जिनमें अब तक बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यवंश हैं। ओड़छा धीरे धीरे उजड़ने लगा। कोई विशेष ख्याति के कार्य इन सभों में ऐसे नहीं हुए जिनसे इतिहास के पत्र सुभूषित होते, परन्तु तब भी राज ओड़छे में रहा और ओड़छे के राज मन्दिर में दीपक जलते रहे; परन्तु कुछ काल हुआ राजधानी ओड़छा से उठा कर टीकमगढ़ में कर दी गई, ओड़छे के राजमन्दिरों में ताले पड़ गए। जहां रात्रि दिवस राजकर्मचारी, राजकुमार, राजमहिषी, सैनिक, सेवक, दास दासियों के कोलाहल से "निज पराय कछु सुनिये न काना" का वाक्य सत्य होता था, वहां अब चतुर्दिक निस्तब्धता ही निस्तब्धता भीषण रूप में छाई है। धन्य है, कालदेव! तुम्हारे विचित्र कौतुक हैं! शिवधनुष टालने का साहस तो भगवान रामचन्द्र जी ने कर लिया था, परन्तु तुम्हारे चक्र को सम्हालने का साहस त्रैलोक्य में किसी को नहीं है। राजसभा टीकमगढ़ में हो जाने से ओड़छा अब नितान्त छवि छीन होगया है। वर्तमान काल में भी राज्य ओड़छे ही के नाम से प्रसिद्ध है और वर्तमान टीकमगढ़ नरेश, महाराजाधिराज महेन्द्र सवाई श्री प्रतापसिंह जू देव, जी. सी. आई. ई., हैं; और बुन्देलखण्ड में यही गद्दी सबकी शिरोमणि गिनी जाती है। महाराज का राज्य प्रबन्ध और धर्मरुचि अत्यन्त सराहनीय और उनके शील

* इसका सविस्तर वृत्तान्त जानने के लिये मेरा प्रेतयज्ञ नामक नाटक देखिए।

† कोई कोई प्रेतयज्ञ का स्थान सिंहपौर के निकट बताते हैं।

* प्रगट हो कि विशूचिका के दिनों में इन्हीं हरदेव की पूजा देश देशान्तर में रोग शान्त्यर्थ होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौजन्य की भी अत्यन्त प्रशंसा हो रही है। क्या ही उत्तम हो यदि टीकमगढ़ नरेश अपनी थोड़ीसी दया का विस्तार अपने पूर्वजों के कीर्तिखम्भ ओड़छे नगर पर भी कर दें और ऐतिहासिक महाराज मधुकरसाह, वीरकेशरी महाराज वीरसिंह देव जी के स्मारक उनकी समाधियों को, जो शोकप्रद जर्जरित और हीन दशा में अरक्षित पड़ी हैं, सुरक्षित कर उनका जीर्णोद्धार करा दें, जिससे इन प्रातस्मरणीय भारतरत्नों का नाम आगे को भी शेष रहे और वर्तमान महाराज को अपने पूर्वजों की अलौकिक भक्ति की सुकीर्ति प्राप्त हो। पाठक महानुभावो! लेख के अन्त में हम आपको ओड़छे के स्थानों की वर्तमान दशा सुनाया चाहते हैं और जिस समय हम ओड़छा देख रहे थे, उस समय हमारी मानसिक क्या दशा थी उसका भी कुछ साथ ही उल्लेख करेंगे।

राजाताल—झांसी से चल कर जब ओड़छे के निकट हम पहुंचे और ओड़छा दो मील के लगभग रह गया, उस समय हमें एक विस्तृत तड़ाग पर्वत खण्डों के बीच में देख पड़ा। इसके दक्षिण पूर्व दिशा में एक बन्ध बँधा है और बन्ध पर थोड़ी थोड़ी दूर के अन्तर पर घाट की सीढ़ियां बनी हैं; और घाटों के शिर पर छोटे छोटे शिखर जिनके उभय ओर लम्बे लम्बे प्रस्तरखण्डों में मच्छ कच्छ ग्राहादि की मूर्ति कटी हुई हैं; बने हैं, और बन्ध की भांति ठौर ठौर छोटी छोटी दालाने बनी हैं; बीच बीच में कुए हैं। यह तड़ाग राजाताल के नाम से प्रसिद्ध है; और जिस समय इसमें पर्वतखण्डों की ओर से आकर निर्मल जल भरता होगा, उस समय यह सरोवर एक अलौकिक ही छवि दिखाता होगा। परन्तु शोक है कि अब यह जलहीन हो रहा है। ताल में खेती होती है। शिखर टूट फूट गए हैं और अब कोई उसके तट पर ऐसा व्यक्ति शेष नहीं रहा है जो उस राजा का, जिसके नाम का वह ताल है, परिचय देता हो। उस समय का, जब यह ताल जलपूर्ण रहा होगा, अनुभव करते हुए ही जलजीवों की कल्लोलें दृष्टि में आ जाती हैं और ऐसा अनुभव होता है कि यह तड़ाग एक समय श्रीमानों के क्रीड़ा कौतुकों का ठौर रहा होगा। इसकी तरङ्गमाला सन्तप्त चित्तों को शान्ति देती रही होगी। परन्तु शोक, कि अब वहां न जल है न जलजीव; न श्री है न श्रीमान; मार्ग भटके हुए पथिक के मुख की क्लान्त छवि की भांति चतुर्दिक ऊभटता ही ऊभटता बरसती है और देखने से चित्त में क्लेश और उच्चाटनभाव उपजता है। और क्यों न उपजे? अब तो रीता सरोवर* है, "रीते सब हि तुच्छ जगमाहीं। बिन पूरनता गौरव नाहीं"। इसके तट पर दो चार झोपड़ों का एक ग्राम है जो नकटा नाम से प्रसिद्ध है और वास्तविक में इसी नाम के उपयुक्त है, क्योंकि उसके रहते हुए उसके सन्निकटस्थ इस ताल की यह दशा हुई।

कृष्णबलदेव वर्मा

[शेष आगे की संख्या में]

बाणभट्ट

[गत अङ्क के आगे]

'हृदय वसतिः पञ्च बाणस्तुबाणः' अर्थात् उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध में कवि के मन की झांई कैसी दीख पड़ती है। जयदेव स्वामी ने जो कहा है कि 'कवितावधू के हृदय में बास करनेवाला साक्षात् पञ्चबाण (मदन) ही बाणकवि है उसका भी अभिप्राय यही है।† इन उक्त पदों

---

* इस ताल का दूसरा नाम रामसागर भी है। कहते हैं कि जब रघुनाथ जी की मूर्ति ओड़छे को लाई जा रही थी, तब यहीं पुष्य नक्षत्र समाप्त होगया; इसी कारण इसी तालाब के तट पर दूसरे पुष्य नक्षत्र के आने तक बाग में डेरे डाल दिए गए वह बाग रामबाग कहाता था, अब उजड़ गया है।

† धर्मदास नाम के कवि ने अपने 'विदग्धमुखमण्डन' संज्ञक ग्रन्थ में ऐसेही आशय की एक छेकापन्हुति लिखी है। वह यह है—

रुचिर स्वरवर्णपदा रसभावती जगन्मनोहरति।
तत्किं तरुणी नहि नहि बाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सार्थकता अगले संग्रहों द्वारा प्रत्यक्ष हो जायगी—

आदि के शूद्रक राजा के स्नानसरोवर का वर्णन

अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनी कर मृदित ... ... कुंकुमजलेन वाराङ्गनाःक्रमेण राजानमभिषिषिचुः* ।

कादम्बरी और चन्द्रापीड़ की पहिली भेंट होने के अनन्तर उसे रहने के लिये क्रीड़ापर्वतस्थ बंगला दिलाकर महाश्वेता कादम्बरी के पिता से मिलने के लिये निकल गई। यह क्रीड़ाशैल कादम्बरी के महल के बगल में ही था। पार्श्ववर्त्ती उपवनों की शोभा देखने के हेतु चन्द्रापीड़ बाहर आए हुए हैं, यह देखकर मदनविवश कादम्बरी कुलीनोचित लज्जा को तिलांजलि दे उन्हें देखने के लिये अपनी अटारी पर आ उपस्थित हुई। उस समय का वर्णन—

कादम्बरी तु तं दृष्ट्वा चिरयतीति महाश्वेतायाः किल वर्त्मावलोकयितुं ... ... कालमतिक्रान्तं नाज्ञासीत् ।

वही घटना फिर—

अनतिदूरं गतायां च तस्यां क्रीड़ापर्वतकगतं- ... ... दिवसो बभूव ।

उक्त उभय संग्रहों में कादम्बरी की मुग्ध लीलाओं का वर्णन कितनी उत्तमता के साथ किया गया है! इसी प्रकार के और भी संग्रह यथेष्ट उद्धृत हो सकते हैं; पर वर्त्तमान ग्रन्थ के शृङ्गार का रसिक पाठकों को परिचय करा उन्हें उसका प्रेमी बना देने के लिये उक्त तीन ही संग्रह अलम् होंगे। तथापि यहां पर और भी एक स्थान का विशेषरूप से निर्देश किए बिना हमसे नहीं रहा जाता। पीछे यह तो लिखी आए हैं कि चन्द्रापीड़ मृगया की चिन्ता करते करते गन्धर्वों के प्रदेश को अकेले ही पहुंच गया। आगे कवि ने तदर्थ एक से एक अद्भुत घटनाएं घटित की हैं। पहिली घटना अच्छोद नामक विस्तृत एवम् रम्य सरोवर का दर्शन, दूसरी उस निर्जन वन में दूर पर्य्यन्त श्रवणगत होनेवाला मधुर गायन स्वर, और तीसरी शिवालय में बैठ शिवगीत गानेवाली दिव्यकन्या का दर्शन। यह कन्या महाश्वेता है। आगे उस कन्या ने जब राजा को आदरातिथ्य द्वारा समादृत किया, तब राजा ने परिचय चाहा। उसने अपना गन्धर्वकुल का जन्म निवेदन कर, पुंडरीक नामक एक दिव्य ऋषिकुमार के साथ उसकी अचानचक भेंट कैसे हुई, दोनों में तत्क्षण प्रेम किस प्रकार अंकुरित हुआ, और अन्त में रात्रि के समय तदर्थ अभिसरण करने पर उसे मदनव्यथा द्वारा गतप्राण देख कर वह कैसी विषम अवस्था को प्राप्त हुई, आदि सब अपनी कथा उसने उसे पूरी पूरी कह सुनाई। यह कथाभाग अत्यन्त ही हृदयभेदक है। इसमें शृंगार, करुणा और अद्भुत ये तीनों रस मिश्रित पाए जाते हैं। शृंगार का यहां पर अंश अत्यन्त शुद्ध होने के कारण और साथही महाश्वेता के मन की गम्भीरता दिखलाई जाने के कारण इस कथाभाग को विशेष शोभा प्राप्त हुई है। स्थानौचित्य की भी यहां पर किसी प्रकार की ऊनता नहीं है। हिमालय के गगनभेदी उत्तुङ्ग प्रदेश यहां के स्थान हैं। सारांश, जिस प्रकार से चन्द्रापीड़ को इस प्रदेश में प्रथम पदार्पण करते ही नितान्त विस्मय एवं हर्ष हुआ, वैसे ही पाठकों को भी होता है, और अगला वृत्तान्त जानने

कोई कहता है "अहा हा! उसके स्वर, वर्ण और पदों का सौन्दर्य कैसा अनोखा है, रस और भाव से चुहचुहाती हुई होने के कारण वह सबके मन पर बड़ी गंभीर चोट करती है!" यह सुनकर दूसरा उससे पूंछता है कि "भाई! क्या यह कोई नायिका है?" उत्तर में वह कहता है "नहीं यह नायिका नहीं है, मैंने यह मधुर शील बाण कवि की वाणी का वर्णन किया है" ॥

उक्त आर्यों के 'स्वर', 'पद', 'रस' और 'भाव' क्लिष्ट हैं, इनके अपर अर्थ भी स्पष्ट ही हैं।

* यहां पर स्थानाभाव से ये संग्रह छोड़ दिए गए हैं। संस्कृतज्ञ पाठक इन्हें मूल ग्रन्थ में पढ़कर लेखक के भाव को हृदयङ्गम करलें – स. स.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हेतु उनका रसिक मन परमोत्कण्ठित होता है; पर उनकी कल्पना की दौड़ यथार्थ घटना लों नहीं पहुंच पाती। अस्तु; इस स्थान के वर्णन को यहांपर उद्धृत करने के लिये स्थलाभाव होने के कारण हम विवश हो अपने रसिक एवं विवेकी पाठकों को मन्त्रणा देते हैं कि वे मूल ग्रन्थ द्वारा अपनी मनस्तुष्टि कर लेवें।

शृङ्गार के अतिरिक्त और भी रस इस ग्रन्थ में कहीं कहीं पाए जाते हैं; पर वे अप्रधान होने के कारण उनके उदाहरण यहां पर लिखना अभीष्ट नहीं जान पड़ता। अतः यहां पर अब इस ग्रन्थ में ठौर ठौर पर जो रसपूरित वर्णन उपलब्ध होते हैं उन्हें अपने पाठकों की भेंट करते हैं।

कथा के आदि में तोता जिस विशाल शाल्मली वृक्ष पर रहता था उसका वह वर्णन करता है—

तस्यैव पद्मसरसः पश्चिमे तीरे राघवशरप्रहार-जर्जरितजीर्णतालतरुषंडस्य च समीपे..... ..... विन्ध्यस्य शाखाबाहुभिरुपगूह्य व विन्ध्याटवीमवस्थितो महान् जीर्णः शाल्मली वृक्षः।

प्रथम तो तोते का इतिहास ही बड़ा विलक्षण है; तिसमें भी जब वह शाल्मली वृक्ष पर था, तब का वृत्तान्त, अर्थात् शबरों ने उस बनमें आखेट की, अन्त में एक ने उस पेड़ पर चढ़ अनेक सुग्गों को मारकर नीचे डाल दिया, उस अचिन्त्य एवं विषम आपत्ति से इसने अत्यन्त विलक्षणता पूर्वक अपनी रक्षा की, आदि घटनाएं बहुत ही चमत्कृतिजनक हैं और साथ ही उनका वर्णन भी परमोत्तम है। उन्हें पढ़ते ही मन कौतूहलमग्न हो जाता है, और जान पड़ने लगता है, मानो वे अगले ग्रन्थ की उत्तमता का आश्वासन दे रहे हैं। उक्त वर्णन उन्हींका एक छोटा सा अंश है। इसका रस उदात्त है। इस रस के और भी उदाहरण इस ग्रन्थ में कई स्थान पर पाए जाते हैं। उनमें से यह एक दूसरा है, कि जिसमें उक्त अच्छोदसंज्ञक सरोवर का वर्णन किया गया है—

प्रविश्य च तस्य तरुषंडस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः स्फटिकभूमिगृहमिव .... अतिमनोहरमाल्हादनं दृष्टेरच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।

विन्ध्याटवी में उक्त शबरों के मृगयार्थ धूमधाम मचा देने पर उनका सेनापति उक्त सेमर के पेड़ के नीचे श्रम निवारणार्थ बैठ गया; उस समय का वर्णन—

ततः स शबरसेनापतिरटवीपरिश्रमणसमुद्भवं .....शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

[शेष आगे की संख्या में]

राजा राममोहन राय

प्रिय पाठकगण! धन्य है वह देश और वह भूमि जहां सदा ऐसे देशहितैषी और परोपकारी पुरुष जन्मग्रहण करते हैं जो दुसरों के लिये आदर्श खड़ा कर देते हैं। किन्तु हमारे भारतवर्ष में अब इसकी बहुत ही कमी हो गई है। यदि कोई ऐसा मनुष्य जन्म भी लेता है, तो हम उसका इस कारण से निरादर करते हैं कि उसके सिद्धान्त हमारे अनुकूल नहीं होते। किन्तु यह हमारी भूल है कि हम केवल कुछ सिद्धान्तों के प्रतिकूल होने पर उस देशहितैषी के सब कार्य्यों पर पानी फेर दें। यह प्रथा कुछ काल से भारतवर्ष में प्रचलित हुई है। महात्मा बुद्ध, जिन्होंने भारत में जन्मग्रहण किया था, बड़े परोपकारी थे। उनके विरोधी उनकी निन्दा करते थे। वैसेही महर्षी शङ्कराचार्य की द्वैत मतवालों ने अप्रतिष्ठा की है। हमारी उपर्युक्त बातों का यह सारांश नहीं है कि उनके सब सिद्धान्त अङ्गीकार कर लिए जांय। हामरा अभिप्राय केवल यही है कि उनकी देशहितैषिता पर मिट्टी डालदेना हमारे लिये वैसीही कृतघ्नता का कार्य है जैसा की 'सुक़रात' के साथ उसके देशवासियों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। हमलोगों को इस विषय में युरोपीय जातियों की ओर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि वे इस विषय में क्या सम्मति रखते हैं।

एक समय महात्मा ब्रैडला जो कि नास्तिक थे (अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे) बड़े रोगग्रसित हुए। उनके देशवासियों ने, यद्यपि वे जानते थे कि वह अनीश्वरवादी हैं, मिलकर उनकी आरोग्यता के लिये गिरजाघर में प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी। यद्यपि इङ्गलैण्डवासी जानते थे कि वह नास्तिक हैं, तथा उनसे मत विभेद रखते थे, किन्तु उनको देशहितैषिता पर पानी फेर कर वे अपने माथे पर कलङ्क का टीका कदापि लिया नहीं चाहते थे और यह कहते थे कि ऐसे देशहितैषी परोपकारी महात्मा लोग सदा देश में उत्पन्न होते रहा करें। परोपकारी महात्माओं का जीवन और सिद्धान्त सदा स्थिर रहता है, क्योंकि "इस संसार में प्रभुत्व के साथ सिद्धान्त ही शासन करता है"। बिना धन और किसी सांसारिक बल के, परोपकारी जीव लाखों मनुष्य पर प्रभुत्व जमा लेता है। ऐसा जीवन गुलाब के पुष्प के सदृश है, कि जो जीवित अवस्था में महकता है और मुरझाकर सूख जाने पर भी उसी भांति सुगन्ध देकर परोपकार करता है। प्यारे सज्जनो! आज हम राजा राममोहन राय की जीवनी संक्षेप में लिपिबद्ध करने का उद्योग करते हैं। उक्त राजा साहब ने ऐसे समय में जन्म लिया था जब कि हमारे देश में महा अन्धकार फैल रहा था। जिस देश को मिग्यास्थनीज़ ने देखा था, जो फायान और और हीयंथशाङ् के नयनगोचर हुआ था, वह देश अब यह नहीं रहा। इस समय देश की राजकीय तथा सामाजिक अवस्था दोनों भ्रष्ट हो रही थीं। किसी किसी भाग में तो सामाजिक अवस्था इस अवनति को प्राप्त हो गई थी कि एक एक मनुष्य सौ से अधिक स्त्रियों से विवाह कर सकता था।

राजकीय अवस्था भी ऐसीही अवनति को प्राप्त थी। कई प्रान्तों में आपस के द्वेष तथा विरोध के कारण पुरी अशान्ति फैल रही थी। ऐसे अशान्ति काल में राजा राममोहन राय का जीवन धारण करना इस बात को सिद्ध करता है कि भारत में समयानुकूल देशहितैषी प्रगट हुआ करते हैं। भारत के इतिहास में सन् १७७४ ईसवी कई बातों के लिये प्रसिद्ध है। उनमें से यह साल सबसे अधिक प्रसिद्ध इन महाशय के जन्म के कारण है।

ये महात्मा, जिनका नाम राजा राममोहन राय है, एक छोटे से राधानगर नामक ग्राम में, जो कृष्णनगर, ज़िला हुगली, के समीप है, उत्पन्न हुए थे। जिस वंश में ये उत्पन्न हुए थे वह एक उच्चश्रेणी के ब्राह्मण का वंश था, जिसने औरङ्गज़ेब के समय में ब्राह्मण वृत्ति को छोड़ कर नौकरी करनी अङ्गीकार कर ली थी। इनके पुर्खों में सबसे पहिले राय कृष्णचन्द्र वैनरजी ने नवाब मुर्शिदाबाद के यहां नौकरी करनी आरम्भ की। कृष्णचन्द के तीन पुत्र थे, अमरचन्द, हरिप्रसाद, वृजविनोद, वृजबिनोद को सात पुत्र हुए जिनमें एक का नाम रमाकान्तराय था। और यही हमारे चरित्रनायक सुप्रसिद्ध राजा राममोहन राय के पिता थे। इनकी माता भी बड़ी सुशीला और गुणवती थी, इनका घराना वैष्णव सम्प्रदाय का अनुगामी था।

इस समय दो प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, एक तो पण्डितों की पाठशाला और दुसरी मौलवियों के मकतब में। फारसी शिक्षा राजा साहब को घर पर दी जाती थी, परन्तु संस्कृत पाठ के लिये उन्हें पाठशाला में जाना पड़ता था। अरबी की शिक्षा पाने के हेतु उनके पिता ने उन्हें नौ वर्ष की अवस्था में पटने भेज दिया था। अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता से इन्होंने दो ही वर्ष में इस भाषा में बहुत कुछ योग्यता प्राप्त करली थी। पटने से वह बनारस संस्कृत विद्यालाभार्थ और हिन्दूमत से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचित होने के लिये बारह वर्ष की अवस्था में भेजे गए। संस्कृत विद्या पढ़ने के पीछे राजा साहब घर लौट आए। तब उस समय बराबर धर्म-सम्बन्धी बातों पर विचार किया करते थे, जिसके कारण से पिता पुत्र में मतविरोध प्रारम्भ हुआ। कभी कभी आपस में वादानुवाद भी हो जाया करता था। रमाकान्त राय को अपने पुत्र को यह दशा देख कर प्रसन्नता के साथ ही साथ एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गई थी, जिसका परिणाम अन्त में यह हुआ कि इसी मतविरोध के कारण पिता ने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। घर से निकलने पर राजा साहब ने देश भ्रमण आरम्भ किया, और इसी देशाटन की अवस्था में हिन्दुस्तान के कई मतों की पुस्तकों को उन्होंने पढ़ा। इसके बाद वे हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर चले गए, और हिमालय के उस पार तिब्बत में जा पहुंचे। इनके वहां जाने के दो कारण बताए जाते हैं। एक यह कि अंगरेज़ी राज्य से उन्हें घृणा थी, दुसरे यह कि बौद्धमत के अनुसन्धान की उन्हें बड़ी इच्छा थी। जो कुछ हो, इसे पाठक स्वयं अपने लिये विचार लें, परन्तु ऐसी अवस्था में जब कि न तो सड़क इतनी उत्तम थी और न रास्ते में सुख देनेवाली चीज़ें मिल सकती थीं, एक सोलह वर्ष के बंगाली बालक का भारतवर्ष में विचरते हुए अन्य देश में बिना मित्र या बिना किसी सहायक के जाना कोई साधारण काम नहीं था। इससे मालूम होता है कि राजा साहब एक असाधारण मनुष्य थे।

तिब्बत पहुंच कर भी इन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा, क्योंकि वहां भी यह निर्भय होकर तिब्बत-वालों के मत का खण्डन करने लगे थे, और इसी कारण वहां इनके बहुत से शत्रु हो गए थे, जो इन्हें किसी न किसी प्रकार सदा कष्ट देते रहते थे। सौभाग्य से कोमलहृदय बालिकाओं ने इनकी पूरी सहायता की और उसी समय से उनके चित में स्त्रियों की प्रतिष्ठा ने स्थान पाया।

चार वर्ष देश विदेश भ्रमण करने के उपरान्त राजा साहब अपनी जन्मभूमि को लौट आए, और उसी समय में उनके पिता को भी उनकी बड़ी खोज थी, क्योंकि अब वे पुत्र के वियोग में बड़े दुःखी हो गए थे। परन्तु फिर भी पिता पुत्र में न बनी और पिता ने फिर उन्हें घर से निकाल दिया। परन्तु इस बेर वे द्रव्य से अपने पुत्र की सहायता करते रहे। इसी समय राजा साहब ने अङ्गरेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। इनकी अवस्था इस समय २२ वर्ष की थी, और सन् १८०१ ई० में इन्हें अङ्गरेज़ी नौकरी करने का ध्यान आया; क्योंकि वह इस बात को कब सहन कर सकते थे कि पिता से अलग होकर जीवन निर्वाह के लिये उनके अधीन बने रहें। उस समय भारतवासियों को अङ्गरेज़ी साधारण नौकरी के लिये १००) मासिक वेतन मिला करता था। उस समय के अङ्गरेज़ कर्मचारियों का बर्ताव अपने 'मातहतों' के साथ बहुतही बुरा होता था, इसलिये राजा साहब ने अपनी नौकरी के निवेदनपत्र पर यह भी जता दिया कि जब मैं किसी कार्य के लिये अपने अफ़सर कर्मचारी के सामने आऊं, तो मुझे बैठने को स्थान मिला करे, और दूसरों के समान मुझसे वर्ताव बुरा न किया जाय। मिस्टर डिगबी जैसे कृपाशील हाकिम ने इनकी इन बातों को शीघ्र स्वीकार कर लिया। सन १८०४ ई० में राजा साहब के पिता का देहान्त हुआ, और इनके पिता ने अपनी कुल सम्पति मृत्यु के पूर्व ही अपने अन्य तीन पुत्रों में बांट दी थी; राजा साहब को कुछ भी नहीं दिया था। परन्तु राजा साहब ने भी इसकी कुछ परवाह न की; हमारे सन्तोषी महात्मा को सांसारिक धन की लालसा न थी।

सन् १८१३ ई० में राममोहन राय ने तेरह वर्ष की नौकरी के पश्चात्, जिसमें कि उनकी वहां सदा बड़ाई होती रही, इस्तीफ़ा दिया। इस नौकरी से उन्हें इतना लाभ तो अवश्य हुआ कि उन्हें ऐसे उपाय मिलगए जिससे भविष्यत में वे अपने जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का काम स्वतन्त्रता के साथ कर सकें। उनके अफ़सर कर्मचारी उनके उत्तम कार्य के कारण उनसे बहुत ही प्रसन्न रहा करते थे, और काम करने ही से केवल उनकी पदवी शीघ्र बढ़ा दी गई थी, अर्थात् शीघ्र ही इन्हें दीवनी की शिरिश्तेदारी का पद प्रदान किया गया था।

इसी समय के लगभग जब उनके ज्येष्ठ पुत्र राधाप्रसाद का विवाह एक माननीय पुरुष के यहां हुआ, तो लोगों ने बहुत विरोध किया। यह विरोध यहां तक बढ़ा कि बहुत से लोगों ने एकमत हो उनके घर में हड्डियां फेंकनी आरम्भ कर दीं। किन्तु राजा साहब ने बदले में उन्हें सताने का ध्यान तक भी न किया और बराबर धैर्य के साथ सहन करते रहे। परन्तु इस बात से उन्हें इतना कष्ट नहीं हुआ जितना माता की ओर से आक्षेप होने से हुआ। उनकी माता ने उनका अपने गृह और ग्राम में रहना पसन्द नहीं किया, जिससे उन्हें अपनी जन्मभूमि त्याग कर रघुनाथपुर के स्मशान के निकट एक छोटी सी झोपड़ी बना कर रहना पड़ा।

किन्तु सन् १८१४ ई० में जब कि उनकी अवस्था चालीस वर्ष की हुई तो वे कलकते चले गए. और वहां रह कर और समाज संशोधन के कार्य में लगे, तथा अपना तन मन धन सब इन्होंने इसी देशोपकार में लगा दिया और देश की यावत् कुरीतियों के विरुद्ध आम तौर से विरोध का झण्डा खड़ा कर दिया। उस समय सारे बङ्गदेश में कोलाहल मच गया। बाबुओं की बैठक में, महाचार्यों की पाठशालाओं में, साराशं यह कि जहां चार मनुष्य एकत्र होते थे वहां इसके अतिरिक्त दुसरी चर्चा नहीं होती थी। परन्तु उस समय भी पठित समाज इनके पक्ष में था।

राजा साहब ने अपने मत प्रचार के लिये चार उपाय निकाले—एक मौखिक शास्त्रार्थ, दूसरा विद्यालय स्थापन करना, तीसरा पुस्तक तथा लेखों का मुद्रण कराना, चौथे समाज वा सभा संस्थापन करना। इनमें से पुस्तक रचना की ओर उन्होंने अधिक ध्यान दिया। सन् १८१५ में वेदान्तसूत्र का बङ्गला तथा हिन्दी में इन्हींके उद्योग से अनुवाद होगया, और सन् १८१६ ई० में वह अङ्गरेज़ी सांचे में ढाला गया। इसके बाद वेदान्तसार को अङ्गरेज़ी में छपाया जिसका संशोधन मि० डिगबी ने किया था। इन्होंने एक भूमिका अपनी ओर से बढ़ा दी थी। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हो कर तैयार हुई और पहिले पहल पादड़ियों के हाथ में पड़ी, तो वे विचारे बड़े आश्चर्य में आए। उन्हें यह देख कर कि हिन्दूधर्म में भी ऐसे गूढ़ दर्शन शास्त्र की पुस्तकें विद्यमान हैं, अति आश्चर्य हुआ और भारतवर्ष के धर्म का तत्व उनपर कुछ कुछ विदित होने लगा। वेदान्तसार के प्रकाशित होते ही राजा साहब ने पांच उपनिषदों का अनुवाद बङ्गला में कराके प्रकाशित करा दिया। इन पुस्तकों के प्रकाशित होते ही बङ्गदेश में यह कोलाहल मचगया कि "बस अब घोर कलियुग आ गया"। और प्राय पण्डितों से उनसे शास्त्रार्थ हुआ करता था जिसमें राजा साहब बराबर वेद, शास्त्र और उपनिषदों का प्रमाण दिया करते थे। उनके ये शास्त्रार्थ प्रायः हिन्दी बङ्गला और संस्कृत में छपे हैं।

राजा साहब में यह एक विलक्षण गुण था कि जो पुरुष उनके पास शास्त्रार्थ करने को आता, उसे वह इतने शान्तरूप से उत्तर देते कि उसे इनकी बातें माननी ही पड़ती थीं।

एक समय रेवेरेण्ड विलियम ऐडम महाशय ने राजा साहब को बैप्टिज़्म् दे कर कृस्तान बनाना चाहा। परस्पर वादानुवाद होनेपर ऐडम साहब को ही हार माननी पड़ी और उन्होंने अपना पादड़ीत्व त्याग दिया। इस बात पर कृश्चियन समाज में बड़ी हल चल मची। ऐडम साहब की पादड़ियों ने बड़ी निन्दा की। परन्तु ऐडम महाशय ने भी बड़ी दृढ़ता से इसको सहन किया।

मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त, चाहे वह साधारण हो वा असाधारण, उसकी कीर्ति ही इस संसार में पीछे रह जाती है, और किसी सत्पुरुष की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी लिखने से भी यही अभिप्राय है कि उसके पाठ से लोग लाभ उठावें और उसकी कीर्तियों का अपना आदर्श बनावें। एवं हम भी आज अपने चरित्रनायक की कीर्ति का कुछ वर्णन आपके सम्मुख रखते हैं। बड़े आदमियों के चरित्र पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि एक साधारण नित्यप्रति की बात पर उसके जीवन ने कैसा पलटा खाया है। अब इसी प्रकार हमारे राजा साहब के हृदय पर सतीदाह की प्रथा ने बहुत बड़ा प्रभाव डाला। इन्होंने पहिले पहल अपने भाई जगमोहन राय की पत्नी को अपने पुरुष के साथ सती होते देखा। सती होने के समय बाजा बड़े जोर से बजाया था, जिसमें उसके आर्त्तनाद का शब्द सुन न पड़े। वह स्त्री अपने प्राण बचाने के हेतु अग्नि से निकल निकल भागती थी, परन्तु उसके घरवाले बांसों से उसे रोकते थे। इसका प्रभाव उनके चित्त पर इतना पड़ा कि उन्होंने तत्क्षण प्रतिज्ञा की कि "इस कुरीति को जड़ मूल से उखाड़ देना ही उचित और न्यायसङ्गत है"। राजा साहब ने अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण कर दिखाया। जिस समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस विषय में हस्तक्षेप करना अनुचित समझ मौनधारण किए बैठी थी, उस समय राजा राममोहन राय का इस अत्याचार से पीड़ित अबलाओं के सहायतार्थ उद्यत होना सब प्रकार सराहनीय है। सती प्रथा को दूर करने के लिये उन्होंने सबसे पहिले तीन पुस्तकें बनाईं और सर्व साधारण में उन्हें बिना मूल्य वितरण किया। केवल इतना नहीं, वह स्मशान में स्वयं जाते और इस कठोर कार्य के रोकने का उपदेश देते थे।

४ थी दिसम्बर, १८२९, का दिन भारतवर्ष के इतिहास में स्मरण योग्य है। उस दिन लार्ड वेनटिङ्क की कौन्सिल ने अपने इजलास से इस प्रथा को बन्द करने का नियम प्रचलित किया। इस आईन के प्रकाश होने के पूर्व लाट महोदय ने राजा साहब को बुलाकर इस विषय में उनसे सम्मति ली। इस शुभमिलन का फल भी शुभ ही हुआ।

इस नियम के पास होने पर देशी सोसाइटी में बड़ी व्यग्रता फैली। बङ्गाल में यह हलचल मचा कि अब "घोर कलियुग" आन पहुंचा और गवर्नमेण्ट ने भी धर्म विषय पर हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इन सब बुराइयों का मूल राजा साहब को माना गया। राजा साहब इससे बड़े विपद में पड़े। इनके जातिवालों ने इन्हें जाति से अलग कर दिया। परन्तु सत्पुरुष महात्मा अपने जीवन को अपने कर्तव्य के सामने तुच्छ विचारते हैं, और अपने उद्देश्य में अन्त तक एक समान उत्साह बनाए रखते हैं। इसी प्रकार राजा साहब ने अपने कर्तव्य को भी अन्त तक पहुंचाया।

राजा साहब हिन्दू स्त्रियों के उपकारार्थ दूसरे उद्योग भी करते रहे। सन् १८२२ में उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने पुत्रियों के बेचने तथा कई एक विवाह की बुराइयों को दिखलाया और शास्त्र से यह सिद्ध किया कि स्त्रियां भी अपने पति की उत्तराधिकारिणी हो सकती हैं।

अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट के उपकारों में से जिस उपकार का भारतवासियों ने विशेष आदर किया है, और करना चाहिए, वह अङ्गरेज़ी शिक्षा है। अङ्गरेज़ी शिक्षा और सभ्यता ने मिल कर भारतवर्ष के लिये सञ्जीवनी का काम किया है। इन दोनों ने मिल कर मृतक शरीर में मानो प्राण डाल दिए हैं। यह इसी शिक्षा का फल है कि यह भारतवर्ष बीस वर्ष के पीछे अगला सा भारतवर्ष नहीं रहता, अर्थात् इसमें नित्य नए परिवर्तन हुआ ही करते हैं। ऐसे समय में जब कि न गवर्नमेण्ट उपकार किया चाहती थी और न भारतवासी इसकी आवश्यकता से विज्ञ थे, राममोहन राय महात्मा के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि भारत के उद्धार का केवल यही एक मात्र उपाय है। इस विश्वास के साथ उन्होंने इस विषय में भी उतना ही उद्योग किया जितना किसी और संशोधन के विषय में वे करते। राजा साहब, डयुडोयस साहब (जो स्काटलैण्ड के रहनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे और भारतवासियों से अत्यन्त प्रेम रखते थे), तथा बङ्गाल के कुछ और माननीय महाशयों ने १८१६ में एक हिन्दू कालिज स्थापित किया। इस कालिज के स्थापन करने का गौरव सर हाईडेस्ट (चीफ़ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट) और डयुडोयस महाशय को दिया जाता है। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो राजा साहब भी इस सम्मान के अंशभागी होने के योग्य हैं; क्योंकि उन्होंने भी गुप्तरीति से इसकी बहुत कुछ सहायता की थी। इसी समय कालिज के हितैषियों ने राजा साहब से उनके सम्मिलित होने के विषय में राय पूछी, जिसपर उन्होंने अपनी स्वाभाविक उदारता से उत्तर दिया कि "यदि इस प्रस्तावित कालिज के साथ मेरा सम्बन्ध रखने से कुछ भी हानि हो तो मैं उसके साथ अपना सम्बन्ध नहीं रखा चाहता"। प्यारे पाठक! सज्जन सदा कार्य्य के पूर्ण होने पर ध्यान देते हैं, न कि यह विचारते हैं कि वह कार्य्य हमारे द्वारा हो वा उसका यश हमें मिले। वरन् दूसरे किसीके द्वारा कार्य सिद्ध होने पर भी उन्हें उतनी ही प्रसन्नता होती थी।

सन् १८३३ में लार्ड ऐम्हर्स्ट की गवर्नमेण्ट ने उस धन से जो शिक्षा के निमित्त गवर्नमेण्ट में एकत्रित था, एक संस्कृत कालिज स्थापित किया। राममोहन राय ने गवर्नमेण्ट को इस विचार को छोड़ देने के हेतु एक पत्र लिखा और उसमें यह भी सिद्ध किया कि इस समय अङ्गरेज़ी शिक्षा की बड़ी ही आवश्यकता है, जिससे लोगों पर इसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। बहुतेरों ने तो इसे प्रामाणिक और समयोपयोगी स्वीकार किया। उनके पत्र से लाभ यह हुआ कि हिन्दु कालिज (अङ्गरेज़ी) और संस्कृत कालिज दोनों एकही मकान में स्थापित हुए, जिससे हिन्दुकालिज को कई रीति से सहायता मिलती रही। उन्होंने स्वयं अपने व्यय से एक कालिज खोला जिसमें माननीय पुरुषों के लड़के शिक्षा पाते थे। १८२० वा २२ ईसवी में यह विद्यालय स्थापित हुआ। उन्होंने जिस तरह अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार के लिये उद्योग किया उसी प्रकार अपनी मातृभाषा के प्रचारार्थ भी वे चेष्टा करते रहे। इनके पूर्व बङ्गला भाषा में गद्य लेख की प्रथा प्रचलित न थी। फोर्ट विलियम कालिज के लिये दो तीन पुस्तकें गद्य में नई नई बनी थीं। परन्तु राममोहन राय के धार्म्मिक शास्त्रार्थों ने बङ्गला में गद्य के लिये मार्ग खोल दिया। सन् १८१७ में जब कलकत्ता बुक सोसाईटी स्थापित हुई तो उसमें भी इन्होंने बहुत कुछ सहायता दी। यद्यपि पद्य की अपेक्षा गद्य उन्हें अधिक भाता था, परन्तु तौभी पद्य से उन्हें कुछ ऐसी अरुचि न थी। ब्रह्मसङ्गीत के येही महाशय अधिष्ठाता थे। ये गीतें इस समय तक बङ्गदेश में जातीय संगीत मानी जाती हैं। क्या ब्रह्मसमाजी, क्या हिन्दु, सभी इन पद्यों का गान करते हैं।

धर्म्मसम्बन्धी, सामाजिक तथा विद्यासम्बन्धी विषयों के उपरान्त उनका समय राजकीय विषयों के विचारने में भी व्यतीत होता था। जिस महापुरुष ने अपने देश की यावत् बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाया हो, वह राजकीय अभावों को देखकर भला कब मौन रह सकता है। सामाजिक विषय में जैसे ये महाशय सबसे प्राचीन लीडर माने गए हैं, वैसे ही राजकीय विषय में भी इन्हींको सबसे प्रथम अग्रगण्य मानना पड़ता है। इन्हींके समय से मानो पोलिटिकल एजिटेशन (राजकीय विषयक अन्दोलन) की प्रथा चली है। यह बात इनपर अच्छी तरह से भास गई थी कि अङ्गरेज़ी शासन में हमें राजनैतिक तथा सामाजिक उन्नति करने का अत्योत्तम अवसर है। राजा साहब समाचारपत्रों तथा उनकी स्वतन्त्रता की आवश्यकता से पूर्ण विज्ञ थे। जब इसका अवसर आन पड़ा तो उन्होंने इसके लिये कोई चेष्टा उठा न रक्खी। कलकत्ता जरनल नामक एक पत्र कलकत्ते में प्रकाशित होता था। सन् १८२३ में उसके स्वामी मिः बकिङ्घहम पर उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय के गवर्नर जेनरल मिः जान आडम का किसी कारण कोप प्रगट हुआ, और उन्हें आज्ञा हुई कि वे भारतवर्ष छोड़ के बाहर चले जांय। इसके पश्चात् ही सारे समाचार पत्रों की स्वाधीनता भी छीन ली गई। इस अवसर (अर्थात् ता० १४ मार्च सन् १८२३) पर राजा साहब की सबल लेखनी न्याय का पक्ष ले कर उठी और बहुत से माननीय मनुष्यों के हस्ताक्षर करा के एक निवेदनपत्र सुप्रीम कौन्सिल में भेजा गया; परन्तु कई कारणों से उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ, जिससे राजा साहब को अत्यन्त दुःख प्राप्त हुआ। पर उन्होंने धीरता को न छोड़ कर एक दूसरा निवेदनपत्र तैयार कर इस बेर इङ्गलेण्डेश्वर की कौन्सिल में भेजा, जिसका एक एक अक्षर हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते परन्तु लेख बढ़ जाने से ऐसा नहीं कर सकते। ८० वर्ष पूर्व उन्होंने ऐसे उच्च मानसिक भावों का प्रादुर्भाव दिखाया है जो इस समय पाया जाता है। इस निवेदनपत्र का यह परिणाम हुआ कि उस समय के हाकिमों के चित्त में राजा साहब की ओर से शङ्का उत्पन्न होगई।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि राममोहन राय उस समय उसी तरह समय का रुख देखते जैसा कि आज कल के बहुत से देशहितैषी देखते हैं तो इस समय हमको एक दूसरे ही राममोहन राय दिखाई देते। वे अपनी धुन के पक्के थे। अपने काम से काम रखते थे और खुशामद से दूर भागते थे। सन् १८२८ ईसवी में एक और लिखने योग्य घटना उपस्थित हुई। सन् १७९३ के १९वें नियम का जो बन्दोबस्त (Permanent Settlement) इसतमरारी (स्थायीप्रबन्ध) के सम्बन्ध में था, परिवर्तन सन् १८१९ के २रे नियम से हुआ। किन्तु सन् १८२८ में भूमि के प्रबन्ध का कुल भार ज़िले के कलक्टर पर छोड़ दिया गया। तीन काम एकही हाकिम के हस्तगत कर दिए गए। अर्थात् (१) कलक्टर ही इस बात की जांच करें कि कौन सी भूमि ऐसी कररहित (लाखिराज) है जिसका कर वसूल होना चाहिए; (२) कलक्टर ही ऐसी भूमि के भोगनेवालों पर सरकार की ओर से मुक़द्दमा चलावे और (३) कलक्टर ही स्वयं न्यायाधीश बनकर न्याय करे—जिससे कि माफ़ीदार ज़िमीदारों की बड़ी हानि हुई। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में इसके विरुद्ध बड़ा आन्दोलन मचा था और वहां की प्रजा राममोहन से सहायता की प्रार्थी हुई। राजा साहब के निकट एक मनुष्य की हानि बड़ी बात थी। इससे तो भला बहुतों के गले पर छुरी फिरती थी। राजा साहब ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी सहायता करनी और उनके अग्रगामी बनना स्वीकार किया और एक युक्तिपूर्ण निवेदनपत्र गवर्नर जेनरल की सेवा में भेजा। इसका प्रभाव इतना तो अवश्य हुआ कि उस समय यह नियम टाल दिया गया, परन्तु बिलकुल तोड़ा न गया। इसपर राजा साहब ने इसकी अपील विलायत तक की और स्वयम् भी विलायत जाने पर सर्वदा इसकी चेष्टा करते रहे। इसके अतिरिक्त सन् १८२९ व १८३० में हिन्दुओं के क़ानून विरासत (Law of Inheritence) का झगड़ा उठा, जिसमें भी राजा साहब ने स्वदेशियों की बड़ी सहायता की। १८३० में राजा साहब ने विलायत यात्रा की तैयारी की जिसके लिये वे बहुत काल से इच्छुक थे। परन्तु अर्थाभाव से ऐसा न कर सकते थे, क्योंकि उन्होंने अपना समस्त द्रव्य देशहित के लिये व्यय कर दिया था। परन्तु दैवयोग से इस कठिनता को परमेश्वर ने दूर कर दिया। अर्थात् उन्हीं दिनों में शाह देहली को सरकार कम्पनी के विरुद्ध कुछ शिकायत उत्पन्न हुई जिसको उन्होंने इङ्गलेण्डेश्वर की कौंसिल में उपस्थित करना चाहा। इस कार्य के लिये शाह देहली ने राममोहन को पसन्द किया और इसी समय अपनी ओर से उनको राजा की पदवी दी। उन्होंने उनकी विलायत यात्रा का समस्त व्यय भी अपने माथे लिया और इस प्रकार राजा साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपना प्रतिनिधि बनाकर विलायत भेजा। भारतवासी माननीय पुरुषों में राजा साहब ही सबसे प्रथम विलायत जानेवालों में से थे। विलायत में पहिले ही से इनकी बड़ी धूम थी, क्योंकि इनकी सर्वोत्तम योग्यता इनकी लेखनी द्वारा अपना प्रभाव पहिले ही से विलायत में जमा चुकी थी। विलायत में अनेक मनुष्य इनसे मिलने को उत्सुक थे और बहुत से नयनचकोर चन्द्र दर्शन की भांति इनकी ओर लगे हुए थे।

बहुत से विख्यात पुरुषों का यह विचार था कि उन्हें अपने जीवन में एक समय भी इनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो। भारतवर्ष से जहाज़ में चढ़कर लिवरपूल इत्यादि होते हुए और लोगों से मिलते हुए लण्डन में जिस समय कि 'इण्डियन रिफार्म बिल' (Indian Reform Bill) उपस्थित होने को था, ठीक उसी समय राजा साहब पहुंचे। यद्यपि वे इस बिल के वादानुवाद में संयुक्त न हो सके, परन्तु इस बात से कि यह बिल भारतवर्ष के अनुकूल पास हुआ, उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई।

अङ्गरेज़ जाति की तरफ़ से राजा साहब का जो कुछ स्वागत हुआ उसे हम स्थानाभाव से अपने पाठकों को सुनाने में असमर्थ हैं। परन्तु यह कहे बिना नहीं रह सकते कि आज तक किसी भारतवासी का विलायत में इतना आदर भाव नहीं हुआ था। अब हमको देखना चाहिए कि सरकार अङ्गरेज़ ने उनके साथ कैसा बर्ताव किया। यद्यपि इण्डिया कम्पनी ने शाह देहली की तरफ़ से उनका प्रतिनिधि होना स्वीकार नहीं किया, परन्तु तौभी उसने राजा साहब का पूरा पूरा स्वागत किया और एक श्रेष्ठ माननीय पुरुष की नाईं उनका सम्मान किया। गवर्नमेण्ट ने उनकी राजा की पदवी को स्वीकार किया। इङ्गलैण्डेश्वर के सिंहासनारोहणोत्सव के समय अन्य देशीय राजदूतों के साथ उन्हें भी स्थान मिला और शाह की ओर से इन्हें भी निमन्त्रण मिला। परन्तु इन सब सम्मानों से बढ़कर यह सम्मान था कि १८३२ ई० में हाउस आफ़ कामन्स (House of Commons) की जो एक सभा भारतसम्बन्धी विषयों पर विचार कर रही थी, उसमें इन्हें भी स्थान मिला और इनकी साक्षी लीगई। प्रत्येक प्रश्न पर, जिसका सम्बन्ध भारत से था, उनकी साक्षी लीगई थी। इन प्रश्नों पर इन्होंने ऐसी उत्तमता तथा बुद्धिमत्ता से विवाद किया जैसा कि आज कल का कोई नवीन पठितसमाज वा नैशनल काङ्ग्रेस का एक प्रतिनिधि कर सकता हो।

राजा साहब ने अपनी मातृभाषा में बहुत से ग्रन्थ लिखे। इन पुस्तकों के प्रकाशित होने से यह लाभ बड़ा भारी हुआ कि बङ्गदेश में संस्कृत शिक्षा और वेद वेदाङ्ग का अत्यन्त प्रचार हुआ और इसके साथ बङ्गाली भाषा की उन्नति हुई, जैसा कि पण्डित रामगति न्यायरत्न ने अपनी "बङ्गली भाषा तथा साहित्य" नामक पुस्तक में लिखा है कि "यह अवश्य मानने योग्य है कि राममोहन राय के समय में उनकी रचित और अनुवादित पुस्तकों और लेखों और उनके विरोधियों की रची प्रश्नोत्तर पुस्तकों और लेखों के द्वारा ही सबसे पहिले बङ्गला गद्य की प्रणाली उत्तम रीति पर बदली है।" राजा साहब अपनी रचित पुस्तकों द्वारा आर्थिक लाभ नहीं उठाना चाहते थे, जैसे कि एक फरांसासी एम. डी. स्कोटा महाशय, जो कि टाइम्स (Times) पत्र के सम्पादक थे, लिखते हैं कि "वह अपनी रचित पुस्तकों से द्रव्योपार्जन नहीं किया चाहते थे, न वह सरकार से किसी उच्चपद के के अभिलाषी थे"।

किसी किसी अङ्गरेज़ी लेखक ने हमारे प्रसिद्ध महात्मा को ऑल राउन्ड रिफार्मर (All round reformer) अर्थात् चौतरफ़ा संशोधन करनेवाले की पदवी दी है, जिससे उन लेखकों का यह अभिप्राय है कि वह सामाजिक और राजनैतिक दोनों विषयों में दखल देते और संशोधन करते थे। दोनों विषयों पर ध्यान देना उनकी प्रतिष्ठा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाता है; क्योंकि जब हम मनुष्यजीवन के प्रत्येक अंशों को एक साथ उन्नत न करेंगे, तो हम उसके किसी अंश को उन्नति नहीं कर सकते। राजा साहब अनेक भाषा के ज्ञाता थे; उन्हें भिन्न भिन्न मतों की पुस्तकों के पढ़ने और छान बीन करने की बड़ी रुचि थी।

लण्डन में रहकर उन्हें इतना मानसिक और शारीरक परिश्रम करना पड़ा था कि वे कुछ काल के लिये विश्राम लेने को ब्रुस्टल चले गए, किन्तु यह विश्राम अनन्त विश्राम में परिवर्तित हो गया। राजा साहब अपने जीवन के कार्य्य को, जो ईश्वर ने उन्हें सौंपा था, पूर्ण कर चुके थे, अब उनके लिये विश्राम ही विश्राम था। उन्होंने विश्राम के लिये ऐसी शय्या पर शयन किया जिसपर सोकर आज तक कोई भी नहीं उठा।

११ सितम्बर, १८३३ ई०, को योग्य पुरुषों की एक वृहत्सभा राजा साहब से मिलने और वार्तालाप करने को स्टेपिलटन (Stapleton) नामक स्थान में एकत्रित हुई, जिसमें भारतवर्ष सम्बन्धी सामाजिक और राजनैतिक विषयों के प्रश्न राजा साहब से किए गए। उनका उत्तर राजा साहब पूर्णतया देते रहे। किन्तु हा! शोक है कि यह कार्य्य उनका अन्तिम कार्य्य था।

१७ सितम्बर को उनका शरीर कुछ अस्वस्थ मालूम पड़ा; दूसरा दिन भी इसी तरह समाप्त हुआ; किन्तु १९ सितम्बर १८३३ को उन्हें ज्वर ने आ दबाया, जिसकी क्रमशः वृद्धि होती गई। अन्त में वह इस भयानक दशा को पहुंच गया कि २७ सितम्बर को रात्रि के २॥ बजे उसने उनकी जान लेकर छोड़ा। राजा राममोहन राय इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे, तथा अपने इच्छानुसार वह समाधिस्थ किए गए। यद्यपि बिना किसी समारोह के हमारे प्रसिद्ध चरित्रवान् महात्मा राजा राममोहन राय को समाधि में शयन करा दिया गया, परन्तु इस दुःसम्वाद ने युरोप भर में दुःख और शोक फैला दिया। प्रायः सभी अच्छे लोगों और समाचार पत्रों ने इनका शोक मनाया।

राजा साहब की समाधि अच्छी दशा में न थी। बाबू द्वारकानाथ ठाकुर ने विलायत जाने पर उत्तम प्रकार से इसे ठीक करवाया।

बा० माधवप्रसाद

साहित्यसमालोचना

[गत अङ्क के आगे]

यतिभङ्ग के विषय में हमारे मित्र जो यों कहते हैं—

"इस आलोचना से हमको यतिभङ्ग का भी नया अर्थ मालूम हुआ, आज तक हमें यह मालूम नहीं था"।

इसपर हमारा यह प्रश्न है कि आप यह भी जानते हैं कि हमने यतिभङ्ग का अर्थ क्यों किया? अर्थ तो दुर्बोध और अति क्लिष्ट शब्दों ही का किया जाता है और यतिभङ्ग शब्द ऐसा कदापि नहीं। इसका कारण यह है कि यतिभङ्ग प्रायः अर्द्धचरण के अन्तही पर होने से दूषित जान पड़ता है और जितने उदाहरण हमने पण्डित श्रीधर पाठक की कविता से दिए हैं, वे सब ऐसेही हैं। हम वस्तुतः उन्हीं यतिभङ्गों को दूषित मानते हैं जो सुनने में बुरे जान पड़ें। इसी हेतु हमने पाठकों की सुगमता पर ध्यान दे अर्द्धचरणान्त का नाम लिख दिया। यतिभङ्ग के विषय में भाषा के आचार्यों का यह मत है—

(१) और चरण के वरण जहँ और चरण सों लीन। यथा—हरि हरि केशव मदन मोहन घनश्याम सुजान, केशवदास जी (क. प्रि.)।

(२) जहँ बिराम पद और को और पदहिं सो लीन। सो यतिभङ्ग कवित्त है करैं न सुकवि प्रबीन॥ यथा—ब्रज को कुमारी कावै लीन्हे सुकुमारिका पढ़ावैं कोक करिकान केशव सबै निबाहि—श्रीपति जी (काव्य सरोज)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) ताहि कहत हम वृत्त जहँ छन्दोभङ्ग सुवर्ण। लाल कमल जीत्यो सु बृषभानु लली के चर्ण॥——दास जी (काव्य निर्णय)।

(४) बरन एक पद को कै पद में लीन। सो हतवृत्त कहत हैं जे परबीन॥ यथा—जै जै केशव मनमोहन घन श्याम।—जगत सिंह (साहित्य सुधानिधि)।

वर्तमान समय के प्रसिद्ध कवि लछिरामजी का भी यही मत है—

(५) अच्छर एकै चरन को युग पद में दरसाय। यथा—केसरि तिलक ललाट बेसरि बानक मुखबेस॥—(रावणेश्वर कल्पतरु)।

बस, अधिक उदाहरणों की अवश्यकता नहीं, उपर्युक्त उदाहरणों से विदित है कि यतिभङ्ग प्रायः अर्द्धचरणान्त ही पर हुआ करता है और वही वस्तुतः दूषित भी है। द्वितीय उदाहरण ही इस मत के विरुद्ध है सो उसे पढ़ने में बुरा कोई नहीं कह सकता है। यदि श्रीपति जी भी अपनी ओर से उदाहरण बना कर देते तो अन्य कवियों की भांति वह भी अर्द्धचरणान्तही पर यतिभङ्ग करते, पर काव्यपरिचित पाठकों पर अवश्य विदितही होगा कि उन्होंने सब दोषों के उदाहरण केशवदासजी ही की कविता से यथाशक्ति देने का नियम कर लिया था और केशवदास जी भला ऐसा दूषित यतिभङ्ग कब करने लगे! बस, बिवश हो श्रीपति जी को उन्हीं महाकवि की कविता में से एक ऐसा उदाहरण देना पड़ा जो बिशेष दूषण संयुक्त नहीं कहा जा सकता। कविता से कम परिचित पाठकों को तो बड़ोही कठिनता से जान पड़ेगा कि उसमें यतिभङ्ग है। किस स्थान पर ऐसी दशा में हमने नया लक्षण यतिभंग का क्या किया?

६—कुछ आगे चल कर आप लिखते हैं—

"समालोचक जी ने बड़ी दयादृष्टि से लड़कपन और प्रवीणकाल की कविता को एकही लाठी से हांकाने की कृपा दिखाई है। हमारे आलोचक सज्जनों ने चाहे आलोचन के मैदान में पहिलेही पहिले क़दम रक्खा हो, परन्तु जिस अङ्गरेज़ी के ज़ोर से उन्हें इस प्रकार की आलोचना लिखनी आई है उसमें उन्होंने और भी बहुत सी आलोचनाएँ पढ़ी होंगी और उनमें यह भी देखा होगा कि किसीकी बालकाल की कविता और प्रवीणकाल की कविता को एकही दृष्टि से नहीं देखा जाता"।

इसे पढ़कर तो हमसे हँसी रोके न रुकी। क्योंकि एक तो हमारे मित्रजी के मतानुसार कविता पशुओं के समान है और समालोचक चरवाहों के; नहीं तो वह उसे लाठी से कैसे हांकते? कविता और समालोचकों को ऐसा "घोर"* आदर प्रदान करना भारतमित्रही से सहृदय महापुरुषों का काम है। फिर इस बात का भी हमें विश्वास हो गया कि भारतमित्र ने निस्सन्देह यह लेख आँखें बन्द करके लिखा है। इसपर विशेष कुछ न कह कर हम पाठक जी के सब पद्य पूर्वापर क्रम से नीचे लिखे देते हैं—

१८८०—राम हिँडोल। १८८१—मंगलाचरण (पंक्ति १ से ६ तक), बसंतागमन, बसंत राज्य,† रामबिलाप, गोपिकागीत, कृष्णगुन गान, गोपीबिलाप। १८८२—कुछ नहीं। १८८३—मंगलाचरण (पंक्ति ७ से अन्त तक) भारतोत्थान, फाग, बसन्त, लार्ड रिपन का प्रयाग आगमन। १८८४—भ्रमराष्टक, चन्द बधाई, लावनी चेतावनी, समस्यापूर्ति (दो पूर्तियां छोड़, जो सन् ८५ व ८७ की हैं) चित्रकाव्य १। १८८५—हिमालय, भारतप्रशंसा, भारतश्री, कजली, मेघागमन, बलाबिधवा, जगनिठुराई, सरस बसन्त, मानमोचन, हिन्दबन्दना, कृष्ण जन्मोत्सव, चित्रकाव्य २, घनदिग्विजय।

*जैसे भारतमित्र जी "घोर सुलेखक" लिखते हैं।

†ये दोनों पद्य सन् १९०० ई० में संशोधित हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८८६—घनाष्टक, इवञ्जुलाइन, एकान्तवासी योगी। १८८७—जगत सचाई सार, हेमन्त, निबल अबला, चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी। १८८८—श्री हरिश्चन्द्राष्टक, चित्रकाव्य (जय श्री सीताराम और कांग्रेस बधाई)। १८८९—शरदऋतु वर्णन, ऊजड़ गाम। १८९० —कुछ नहीं। १८९१—चित्रकाव्य (रीवाँधीश को आशीर्वाद)। १८९२—कुछ नहीं। १८९३—प्राउस साहब का बैकुण्ठ वास, प्रेमपियाला। १८९४—८९५—कुछ नहीं। १८९६—विकटोरिया चिरजीवी, १८९७—१८९८—कुछ नहीं। १८९९—घनविनय, शरद समागत स्वागत, शवशिला लेख। १९००—गुनवन्त हेमन्त, नव बसन्त॥

बस, इसपर ध्यान देने से ही मर्मज्ञ पाठकों को विश्वास हो जायगा कि पण्डित श्रीधर पाठक महाशय की बाल और प्रबीण काल की कविता में कितना अन्तर है। उनकी कविता स्थूल रूप से दो दशाब्दियों पर विस्तृत कही जा सकती है। सो यदि पहिली को "लड़कपन" की और दूसरी को "प्रवीण काल की कविता" मान लें, तो बरबश यही कहना पड़ता है कि हमारे कवि जी की "लड़कपनही" की कविता बहुत उत्तम है। क्योंकि "प्रवीण काल" में एकतो उन्होंने रचनाही अति अल्प की है, पर जो कुछ की भी उसमें घनविनय को छोड़ शेष पद्य वैसे सराहनीय कदापि नहीं हैं। तो ऐसी दशा में हम नहीं कह सकते कि भारतमित्र जी का हमपर उपर्युक्त तीक्ष्ण कटाक्ष कहाँ तक उचित सिद्ध हो सकता है? हमने समालोचना लिखते ही समय इस सन संवत की बात पर ध्यान दिया था, पर इसकी विशेष विवेचना हमने यह सोच कर नहीं की थी कि हमारे पाठक जी भी सम्भवतः उन कवियों में से हैं जो एक ही दिन में एक समय अत्यन्त विलक्षण कविता रच सकते हैं और दूसरे समय उससे कहीं निकृष्ट। जिन अङ्गरेज़ी आलोचनाओं में हमने यह पढ़ा "कि किसीकी बालकाल की कविता और प्रवीणकाल की कविता को एकही दृष्टि से नहीं देखा जाता", उन्हींमें हमने उक्त प्रकार के कवियों का होना भी पढ़ा है जो unequal Poets (असम कवि) कहलाते हैं।

७—भारतमित्र जी पुनः लिखते हैं कि "केवल एकही बात हमको और कहनी है कि स्वाभाविक कविता में छन्द नहीं टूटता और न उनको कृत्रिम कवियों की भाँति तिनका लेकर छन्द नापना पड़ता है"। सबसे प्रथम हम मित्र जी से यह पूछेंगे कि वह स्वाभाविक कविता का क्या अर्थ समझते हैं;

(क) मनुष्यों के स्वभावों के वर्णन को, या

(ख) साहित्यप्रणाली से अपरिचित कवियों की रचना को, अथवा

(ग) प्राकृतिक वर्णनों को?

इसमें यदि प्रथम अर्थ माना जाय तो पाठक जी स्वाभाविक कवि कदापि नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्होंने मनुष्यों के शीलस्वभाव का (अनुवादों को छोड़, जिनके पात्रों के शीलस्वभाव वर्णन से पाठक जी से कोई सम्बन्ध नहीं माना जा सकता) कहीं भी विशेष वर्णन नहीं किया है। द्वितीय अर्थ भारतमित्र जी भलेही मानें, हम तो मान नहीं सकते; क्योंकि हमारा सदाही से यह दृढ़ अनुमान था कि पाठक जी भाषा साहित्य के मर्मज्ञ अवश्य होंगे, और अब आगराही के निवासी एक महाशय ने, जो अपना नाम "पर्य्यालोचक" बतलाते हैं, और जिन्होंने हमारी समालोचना पर बहुत कुछ लिखा भी है, हमारे उस अनुमान को दृढ़ विश्वास में परिवर्तित कर दिया है। काव्य-रचना के निमित्त तीन गुण हम आवश्यक समझते हैं—(१) शक्ति, (२) शिक्षा और (३) अनुभव [इस विषय में सरस्वती के दिसम्बर सन १९०० वाले अङ्क में प्रकाशित हमारा "हिन्दीकाव्य (आलोचना" नामक निबन्ध देखिए]। पर यदि स्वाभाविक कविता का तृतीय अर्थ माना जाय तो हम सहर्ष स्वीकार करते हैं कि निस्सन्देह पण्डित श्रीधर पाठक अति उच्च श्रेणी के स्वाभाविक कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। तो भी भारतमित्र का यह कथन सर्वथा भ्रममूलक है कि "स्वाभाविक कविता में कभी छन्द नहीं टूटता"। यह तो छन्द का गुण ही है कि उसमें चढ़ाव उतार, लघु और दीर्घ अक्षर और मात्राओं का यथास्थान होना इत्यादि ठीक ही ठीक हो। छन्दों का सदोष टूटना दो प्रकार से होता है—एक यतिभङ्ग और दूसरा छन्दोभङ्ग से। यतिभङ्ग का उद्धार श्रीपति जी ने यों लिखा है—

"परम चमत्कृत अर्थ जहँ बिनु यतिभङ्ग न होय।
तहँ न दोष यतिभङ्ग को कहैं सयाने लोय॥"

परन्तु यतिभङ्ग अथवा छन्दोभङ्ग का निवारण, यह किसी आचार्य्य ने नहीं कहा कि जहाँ प्राकृतिक वर्णन हो वहाँ ये दोष नहीं माने जाते। सुतरां भारतमित्र का यह कहना कि स्वाभाविक कविता में छन्द टूट ही नहीं सकता, किसी भांति माननीय नहीं। यदि स्वाभाविक कवि का अर्थ यह लें कि वह स्वभाव ही से कवि है, कृत्रिम नहीं, तो यही कह सकते हैं कि स्वाभाविक कवियों के मुख से स्वयं शुद्ध छन्द निकलते हैं, पर कृत्रिम कवि (अर्थात् तुक जोड़नेवाले) गुत्थिम गुत्था कर अवश्य तिनके से नाप नाप कर अपने भद्दे वाक्यों को छन्द के स्वरूप में कर देते हैं। सो छन्द दो प्रकार से टूटते हैं—एक टूटना सदोष होता है (जैसे छन्दोभङ्ग और यतिभङ्ग में) और दूसरा निर्दोष [जैसे प्रत्येक छन्द में विश्रामस्थल हुआ करते हैं; यथा "आगे चले बहुरि रघुराई"।—इसमें "चले" शब्द पर विश्राम के कारण छन्द निर्दोष रीति से टूटता है]। यह तो भारतमित्र जी ही कहें कि स्वाभाविक कविता में छन्द की डोरी ऐसी पुष्ट होती है कि वह टूट ही नहीं सकती। बलिहारी ऐसे छन्द की! हमने तो अब तक ऐसे छन्द का नाम न सुना था, कदाचित् भारतमित्र जी ने कोई नवीन विलक्षण पिङ्गल निर्माण करके उसमें ऐसा छन्द ला ठूँसा हो तो आश्चर्य्य नहीं!! कदाचित् हमारे बतलाए हुए यतिभङ्ग और छन्दोभङ्ग दूषणों से पाठक जी की कविता को मुक्त करने के हेतु यह विचित्र कल्पना आपको सूझी हो!

हमारे अनुमान से भारतमित्र जी ने भाषा काव्य-प्रणाली पर विशेष ध्यान देकर हमारी समालोचना (क्योंकि आपकी समालोचना वास्तव में हमारे लेख को छोड़ स्वयं हमारी ही समालोचना है) नहीं की है; अन्यथा वह खण्डितोपमा दूषण पर कुछ न कुछ अवश्य लिखते, क्योंकि यह सामयिक नाम हमने अपनी ओर से लिख दिया था, यद्यपि इसके समर्थन करने के भी कारण ग्रन्थों में प्रस्तुत हैं।

अन्त में हम भारतमित्र जी को काव्य और कवियों के शुभचिन्तक होने का धन्यवाद देते हैं और यह भी सूचित करदेना उचित समझते हैं कि हमने उनके लेख का उत्तर इस कारण नहीं दिया कि उन्होंने हमारी समालोचना का खण्डन करना चाहा था, वरन् हमने इस हेतु उत्तर दिया कि हम उनके लेख को अनुचित और अयोग्य समझते हैं। इसीके साथ यह भी प्रार्थना है कि वह केवल उत्तरही देने के अर्थ हमारे इस लेख का उत्तर न दें। हाँ, यदि वास्तव में उन्हें कोई सत्य युक्ति और प्रमाण देना हो तो अवश्य दें। कोरी दिल्लगी और कटु वाक्यों के प्रयोग का उत्तर मौनधारण ही ठीक है, सो यदि वह महाशय अबके हो भाँति फिर ऐसाही वर्ताव शिष्ट समझेंगे तो हम उत्तर न दे सकने की अभी से क्षमा माँगे लेते हैं।

मिश्रबन्धु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] सितम्बर १९०१ ई० [संख्या ९

विविधवार्त्ता

आज इस बात का प्रकाशित करते हमको विशेष आनन्द होता है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने यह निश्चय कर लिया है कि, जिस प्रकार से बन पड़े, पृथ्वीराज रासो छाप कर प्रकाशित कर दिया जाय। पुस्तक बहुत बड़ी है, अतएव समस्त पुस्तक के छपजाने में समय अधिक लगेगा; परन्तु इससे यह आवश्यक नहीं है कि यह काम ही प्रारम्भ न किया जाय। थोड़ा थोड़ा होने से भी कभी न कभी यह कार्य समाप्त हो ही जायगा। हमको विश्वास है कि कोटा और बूँदी के महाराज इस कार्य में सभा की सहायता करेंगे और गवर्मेंट भी कुछ प्रतिएं लेकर इसका उत्साह बढ़ावेगी।

* * *

हमारे पाठकों में से सब महाशयों ने तो निस्सन्देह कागज पर लिखी हुई और अनेकों ने भोजपत्र, तालपत्र और भेंड़ी के चमड़े आदि पर लिखी हुई पोथियां देखी होंगी, पर कदाचित् ही किसीने ईंटों पर खुदी हुई पुस्तकों को देखा अथवा उनका वृतान्त सुना होगा। आज जिस पुस्तक के विषय में हम लिखते हैं उसमें न उस कलम और न उस स्याही से ही काम लिया गया है जिनसे साधारणतः पुस्तकें लिखी जाती हैं। अक्षर भी इसके विचित्र हैं। न मिस्र के अक्षरों ही से मिलते हैं और न चीन के विचित्र पशुपक्षी की आकृतिवाले अक्षरों ही के समान हैं। योरप में असीरिया और अलजीरिया प्रदेशों के बीच मेसोपोटामिया नामक एक छोटा सा प्रदेश है। इसका अति प्रचीन और प्रसिद्ध नगर बैबिलन नाम का अब तक विभव-विहीन वर्त्तमान है। बाइबिल में यह स्थान अनेक बातों के लिये प्रसिद्ध है। उस पुस्तक के अनुसार इसी नगर में संसार की भाषाओं में भेद उत्पन्न हुआ था। उसमें ऐसा लिखा है कि महाप्रलय के भय से यहां के लोगों ने एक बड़ा भारी गुम्बज बनाना प्रारम्भ किया। इस काम को होते देखकर ईश्वर को भय हुआ कि कहीं ये लोग यह कार्य न कर लें। अतएव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने इन लोगों की भाषा में भेद डाल दिया, जिससे यह अवस्था होगई कि बनानेवाले ईंटा मांगने पर गारा और गारा मांगने पर पानी समझने लगे। इसी प्रसिद्ध स्थान पर ईंटों की पुस्तक भी अब तक विद्यमान है। इस बैबिलन नगर के वासी सूर्य्य के उपासक थे और इनके प्राचीन ग्रन्थ का नाम, जिसे इनका वेदही समझना चाहिए, "अन्तक" है।

* *
*

इस नगर में "कुरीदा" नाम का एक स्थान है जो एक चौथाई मील लम्बा और उतनाही चौड़ा है। इस भूभाग पर चिकने और मोटे लोहे की चद्दरें बिछी हुई हैं। ऐसी ऐसी ९ बड़ी बड़ी चद्दरें वहां पर बिछी हुई हैं, और वे एक दूसरे से इस प्रकार जोड़ी हुई हैं कि जोड़ दिखाई नहीं देता। इन चद्दरों पर वे ईंटें एक दूसरे के ऊपर जुड़ाई की भांति रक्खी हुई हैं। सब ईंटें मुटाई, लम्बाई और चौड़ाई में एक सी हैं। चारों कोनों पर लोहे के खम्भे गड़े हुए हैं, जिन सब पर धनुष बाण के आकार की मूर्ति खुदी हुई है। इन ईंटों के जोड़ की ऊंचाई कलकत्ते के मानूमेण्ट से ऊंची है। सब मिला कर इनपर १३ पुस्तकें खुदी हैं, जिनमें से "अन्तक" की सबसे पूर्ण है।

* *
*

इन ईंटों के पत्रों पर पृष्ठसंख्या के लिये १, २, ३, ४ आदि के चिन्ह नहीं बने हुए हैं। वरन् पहिले पृष्ठ पर कोई चिन्ह नहीं है, दूसरे पर सूर्य्य, तीसरे पर चन्द्रमा, चौथे पर अरुशा, पांचवें पर गुरुड़, छठवें पर मत्स्य, आदि के आकार बने हुए हैं। बैबिलन वालों का सिद्धान्त है कि इस क्रम से सृष्टि हुई थी। पुरातत्वज्ञों का अनुमान है कि यह पोथी ६०१० वर्ष पुरानी है। पहिले पहल सन १६१८ ई० में स्पेन के एक राजदूत ने इन ईंटों के ढेर को देख कर अनुमान किया था कि इनमें विचित्रता अवश्य कुछ होगी। उसने उसको एक पंक्ति की नकल करवाई और फिर तो विद्वानों के उद्योग से वे समस्त ईंटें पढ़ी गईं। अब वर्ष में दो बेर उनके दर्शन होते हैं। शेष समस्त काल में वे ढकी पड़ी रहती हैं।

* *
*

यह तो बैबिलन की पोथी का वृत्तान्त है। भारतवर्ष में यद्यपि ताम्रपत्र और शिलालेख बहुत पाए जाते हैं, पर पत्थर पर खुदी हुई पोथियां अब तक केवल दो ही मिली हैं; किन्तु वे भी खण्डित हैं। ऐसी जनगाथा है कि हनुमन्नाटक पत्थरों पर खोदा गया था। पर अब तक कोई ऐसा शिलाखण्ड नहीं मिला है जिसपर उस नाटक का अंशमात्र भी लिखा हो। शाकम्भरी-भुपति महाराज विग्रहराज ने एक हर्षकेलि नाटक बनाया था, उसे उन्होंने पत्थर पर संवत् १२१० वि० में खुदवाया था। ये शिलाखण्ड अजमेर के ढाई दिन के झोपड़े के नीचे दबे पड़े थे। अब अङ्गरेज़ विद्वानों की कृपा से ये लखनऊ म्यूज़ियम में वर्तमान हैं। इन्हीं महाराजाधिराज विग्रहराज के चरित्र वर्णन में सोमदेव ललित-विग्रहराज नाटक बनाया था। वह भी शिला पर खुदा था और अब उसका अंश लखनऊ म्यूज़ियम में वर्तमान है। इन शिलाखण्डों को देख हृदय के कुछ भाव ही दूसरे हो जाते हैं। पहिले तो उन कुत्सित् जघन्य कर्मवाले मुसलमानों की ओर दुःख शोक और क्रोध होता है जिन्होंने इन अमूल्य भारतरत्नों को नष्ट कर डालना चाहा था, और साथही हृदय अङ्गरेज़ों को कृतज्ञता स्वीकार करता है, जिनकी कृपा से इन वस्तुओं के हम पुनः दर्शन कर सकते हैं। चतुरानन! तेरी चतुराई पर मोहित हो हम तुझे प्रणाम करते हैं!!!

* *
*

हम आज उन सब महाशयों को हृदय से धन्यवाद देते हैं जो लेख द्वारा निरन्तर हमारी सहायता करते रहे हैं और जो हमें विश्वास है करते रहेंगे। इन महानुभावों के कोई कोई लेख यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलम्ब से छपें तो उन्हें हमें क्षमा करना चाहिए। जिन लेखों को हम स्वीकार कर चुके हैं, उन्हें हम अवश्य छापेंगे। परन्तु बात यह है कि पाठकों की रुचि पर ध्यान करके हमें कभी कभी लेखों को रोक रखना पड़ता है। हां, यदि सरस्वती का कलेवर और बढ़ा दिया जाय तो सम्भव है कि और भी अधिक लेख इसमें छप सकें। परन्तु अभी तक इसके वर्त्तमान रूप ही में प्रकाशित होने में प्रकाशक को बहुत व्यय और हानि स्वीकार करनी पड़ती है। यदि हिन्दी के पाठक सरस्वती पर यथोचित कृपादृष्टि रक्खें तो इसमें अब तक जो अन्यान्य त्रुटियां हैं वे भी दूर हो जांय। अतएव आशा है कि हमारी अवस्था पर विचार कर सज्जन जन हमपर क्रुद्ध न होंगे।

श्रीमान महाराजा सियाजी राव गायकवाड़

"Business has become a passion to me, and my work for the people, a real pleasure".—*Sayaji Rao Gaekwar.*

हमारे भारतवर्ष में आज कल कुछ ऐसा संयोग हो रहा है कि, जहां लक्ष्मी का वास है वहां से प्रायः सरस्वती देवी मुंह मोड़े हुई हैं। और जहां सरस्वती देवी विराजती हैं, वहां लक्ष्मी भूल कर भी पदार्पण नहीं करतीं। क्या इसी होतव्यता को जान कर हमारे प्राचीन पूज्य महर्षिगणों ने लक्ष्मी का वाहन उलूक बताया है? भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा देख कर तो यही कहना पड़ता है, कि वास्तव में अवस्था कुछ ऐसी ही हो रही है। परन्तु इस साधारण तथा स्पष्ट नियम के प्रतिकूल दृष्टान्त कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाया करते हैं। इन्हें हम केवल सृष्टि की चञ्चलता मात्र कह कर अपने हृदय का सम्बोधन कर लेते हैं। आज जिन महानुभाव का चित्र और चरित्र हम अपने पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया चाहते हैं, उनमें धन सम्पदा के अतिरिक्त विद्या की पूर्णता भी विद्यमान है। महाराज सियाजी राव जैसे विद्यासम्पन्न कुछ राजे महाराजे भारतवर्ष में यदि और देखने में आते, तो आज दिन भारतमाता के मस्तक से कलङ्क का वह टीका मिट जाता जो आधुनिक पाश्चिमात्य सभ्यता ने लगा रक्खा है। वास्तव में महाराज सियाजी राव यदि एक छोटे से ग्राम से लाकर राज-सिंहासन पर न बैठाए जाते, और यदि वे जन्म से ही राजगद्दी के उत्तराधिकारी होते, तो सम्भव है कि आज हम उन्हें इतना बुद्धिमान और विद्या-सम्पन्न न पाते जितना की अब देख रहे हैं।

महाराष्ट्र देशीय राज्यों में गायकवाड़ का ही वंश ऐसा है जिसने आज तांई बृटिश राज्य के प्रतिकूल कोई कार्य्य नहीं किया और न कभी उससे युद्ध ठानने का विचार भी किया। मुगलराज्य के क्षय होने और मरहट्ठों के बृहत् साम्राज्य के बनने के समय इस राज्य की उत्पत्ति हुई। खाण्डेराव धबरे नाम का एक महा वीर पुरुष सतारा के राजा साहुजी* का सेनापति था। ऐसा कहते हैं कि उस समय धबरे ने गुजरात पर कर बांधने के लिये आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसे दामाजी नाम के एक पटेल से बड़ी सहायता मिली। सेनापति धबरे ने पटेल की शूरता देख के उसे शमशेर बहादुर की पदवी दी और अपना सहायक बना लिया। अर्थात् दामाजी राव पटेल सहायक सेनापति नियत हुए। भारतवर्ष के इतिहास में बड़ोदा राज्य के आदि पुरुषों में सबसे पहिले इन्हीं दामाजी राव पटेल का नाम मिलता है। ये केरूजी राव पटेल के पुत्र थे। स० १७३१ ई० में इनकी मृत्यु हुई, और इनके भतीजे पिलाजी राव इनके पद पर नियत किए गए। वीरता में ये अपने चचा से किसी प्रकार कम न थे। इन्होंने अपने बाहुबल से गुजरात के मुख्य मुख्य नगरों को, जिसमें बड़ोदा भी सम्मिलित था, जीत कर अपने आधीन कर लिया था। इन्हें शमशेर बहादुर की उपाधि तो थी ही, अब 'सेना ख़ास खेल' की उपाधि और

---

* यही साहूजी महाराज शिवाजी के पौत्र थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली, और ये दो उपाधियां उसी समय से आज पर्य्यन्त गायकवाड़ राज्यवंश में पैतृक चली आती हैं। स० १७३२ ई० में मुगलों के दूत अभयसिंह ने छल से पिलाजी राव को मार डाला। इसलिये उनके पुत्र दामाजी राव उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने निज पितृवध का बदला लिया, और मुगलों को गुजरात प्रदेश से निकाल भगाया, और सं० १७३२ ई० में बड़ोदा को फिर से जीत लिया, जो कि उस समय से अब निरन्तर गायकवाड़ों की राजधानी चली आती है। पानीपत के युद्ध के समय एक बड़ी सेना दामाजी राव के आधीन थी। इन्होंने उसी सेना से काठियावाड़ के राजपूत राजाओं पर आक्रमण किया और उनसे कौड़ी लेने लगे, जो इस समय तक गायकवाड़ राज्य को अङ्गरेज़ी सरकार द्वारा मिलती आती है। दामाजी राव को किसी छल से अपने दुर्ग में बन्द करके महाराज साहु जी ने बलात् एक सन्धिपत्र लिखवा लिया, जिसके अनुसार दामाजी राव को अपना राज्य सतारा राज्य से पृथक करना पड़ा और आधा राज्य छोड़ना पड़ा। ऐसा कहा जाता है कि इसी समय से इस छल के कारण बड़ोदा राजवंशोत्पन्न सतारा राज-घराने-वालों को बाँएँ हाथ से सलाम करते हैं। इन्हीं दामाजी के पिता पिलाजी राव की सातवीं पीढ़ी में महाराज खाण्डेराव हुए। इन्हें कोई नर-सन्तति न थी, इस कारण इनके पीछे इनके भाई मल्हारराव को गद्दी मिली। यह मल्हारराव कई वर्ष लों राजकीय वन्दी रह चुके थे, क्योंकि वे अपने बड़े भाई महाराज खाण्डेराव के विरुद्ध विरोध फैलाते और उन्हें मारकर स्वयं राजा बना चाहते थे।

गद्दी मिलने पर प्रजा इनसे बड़ी दुखित रहती थी। यह असन्तुष्टता प्रति दिन बढ़ती गई, यहां तक कि वृटिश सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। सरकार ने इनके दुःशासन और कुरीतियों के अन्वेषण के लिये एक कमीशन बैठाया। कमीशन ने इनके विरुद्ध रिपोर्ट दी। इसपर बम्बई गवर्नमेण्ट ने मल्हारराव को तीन मास की अवधि दी कि उसके भीतर वे अपने राज्य को सुधार लें। अभी तीन मास व्यतीत होने भी न पाए थे कि वृटिश रेज़ीडेण्ट कर्नल आर. फ़ेरी को विष देने का अपराध इनपर लगाया गया। सरकार ने पुनः एक हाई कमीशन इसकी जांच के लिये बैठाया। जांच में यह निरपराधी निश्चित हुए। परन्तु फिर भी सरकार ने इन पर दया न कर के इन्हें गद्दी से उतार २२ अप्रैल, सन् १८७५ ईसवी, को मन्द्राज भेज दिया। इनके पदच्युत होने पर कहीं कहीं यह काना फूसी होने लगी कि बस, अब यह राज्य भी 'लालधारी' में सम्मिलित हुआ चाहता है। इसी बीच में महाराज खाण्डेराव की विधवा महारानी यमुना बाई ने, जो बड़ी बुद्धिमाती और दूरदर्शी स्त्रीरत्न थीं, गोपालराव को दत्तक लेने की सरकार से आज्ञा मांगी। सरकार ने आज्ञा प्रदान की और इस प्रकार गोपाल राव खानदेश के एक छोटे से ग्राम से एक कृषक के घर से लाकर भारतवर्ष की एक सर्वश्रेष्ठ और धनाढ्य राजगद्दी पर बैठाए गए।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस वंश के आदि मूल पिलाजी राव हुए हैं। इनके पुत्र दामाजी राव और प्रताप राव थे। दामाजी राव तो बड़ोदा नरेश हुए। इनके भाई प्रतापराव साधारण रीति से जीवन व्यतीत करने लगे और अपनी हीन आर्थिक अवस्था के कारण खानदेश के किसी ग्राम में जा बसे। प्रतापराव से पांचवी पीढ़ी में काशीराव हुए। इन्हींके पुत्र गोपालराव हैं जो इस प्रबन्ध के नायक और वर्त्तमान श्रीमान बड़ोदानरेश सियाजी राव गायकवाड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गोपालराव यद्यपि बड़ोदा के राजवंश से थे, परन्तु संसार-चक्र में पड़कर अब केवल एक सामान्य कृषक रह गए थे। सरकार से आज्ञा पाने पर महारानी यमुना बाई ने इन्हें ग्राम से बुलवाया और तारीख़ २७ मई, सन् १८७५ ईसवी, को दत्तक लेने का उत्सव बड़ी धूम धाम से किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन सर रिचर्ड मीड महाशय ने राजकुमार को राजतिलक दिया और उनका नाम सियाजी राव गायकवाड़ रक्खा। इस समय भारतवर्ष के गवर्नर जेनरल श्रीमान लार्ड नार्थब्रूक महोदय थे। ये जैसे प्रजावत्सल थे, वैसेही उदारचरित थे। इनकी उत्कट इच्छा हुई कि राजकुमार सियाजी राव को पाश्चिमात्य रीति पर उच्च शिक्षा दी जाय। इस दुस्तर कार्य्य के लिये मिस्टर एफ. ए. एच. इलियट महाशय नियत किए गए। इन्होंने अपना कर्तव्य इस उत्तम रीति से पूरा किया की गवर्नमेण्ट ने इन्हें सी. आई. ई. की उपाधि प्रदान करके इनका आदर किया और महाराज ने भी अपने राज्य में एक विश्वसनीय और उच्च पद देकर इनका सम्मान आवश्यक समझा। ऐसा कहते हैं कि विद्याध्ययन में राजकुमार की बड़ी रुचि रहती थी। जब इङ्गलैण्ड में यह बात निश्चय पा गई थी कि विलियम के पश्चात् विक्टोरिया को राजगद्दी दी जायगी, तो उनके मामा ने विचारा था कि जहां तक और जितने दिनों तक सम्भव हो, विक्टोरिया को यह बात प्रगट न होने पावे कि वह एक समय राजसिंहासन पर विराजमान होंगी; क्योंकि उनका मत था कि इससे उनमें गर्व उत्पन्न हो जाने, और तब उनकी उपयुक्त शिक्षा असम्भव हो जाने की विशेष सम्भावना है। परन्तु हमारे १३ वर्ष के राजकुमार ने इस बात को निरर्थक सिद्ध कर दिया। उनपर ज्ञात था कि मैं बड़ोदा का महाराज होने वाला हूं। किन्तु इससे उनके कोमल हृदय-पटल पर तनिक भी गर्व न उत्पन्न हुआ। और वे विद्योपार्जन में वैसेही दत्तचित्त रहे जैसा कि सम्भव था। ठीक इसी समय श्रीमान प्रिन्स आफ वेल्स (वर्तमान महाराज एडवर्ड दी सेवेन्थ) का भारतवर्ष में आगमन हुआ और राजकुमार अपने मन्त्री और रेज़िडेण्ट सहित उनको भेंट के लिये बम्बई गए। प्रिन्स महोदय राजकुमार से वार्तालाप करके बड़े प्रसन्न हुए। डाक्टर रसेल ने प्रिन्स के भ्रमणवृतान्त में राजकुमार के रहन सहन बोल चाल की बड़ी प्रशंसा की है। तारीख़ १ जनवरी, सन् १८७७ ईसवी, को दिल्ली के दर्बार में राजकुमार को "फरज़न्द ख़ास दौलत इङ्गलिशिया" की उपाधि मिलि। सन् १८८० ईसवी में तनजोर की लक्ष्मीबाई से राजकुमार का बड़ी धूम धाम से विवाह हुआ। अब राजकुमार के राजगद्दी का समय निकट पहुंचता जाता था, इसलिये उन्हें राजनैतिक शिक्षा देने की आवश्यकता हुई; और उसके लिये यह प्रबन्ध किया गया कि उनके मन्त्री राजा सर टी० माधव राव, तथा भिन्न भिन्न शासनविभाग के विशेषज्ञ, अपने अपने विषय में राजकुमार के सम्मुख वक्तृता देवें। यह युक्ति ऐसी कार्य्यकारिणी, सुगम और युक्तियुक्त निकली कि राजकुमार शीघ्र राजकर, आय व्यय, सुप्रबन्ध, नियम, पुलिस, बन्दीगृह और सेनासम्बन्धी जैसे कठिन विषयों के सिद्धान्तों से पूर्ण विज्ञ हो गए।

उनके मन्त्री राजा माधव राव ने राज्य शासन के एक वार्षिक विवरण में यों लिखा है कि "राजकुमार इन वक्तृताओं पर पूर्ण ध्यान देते थे, जिसका फल यह हुआ कि वे शीघ्र राज्य के प्रबन्ध और नियमों के साधन में पूर्ण विशारद हो गए। वह अपने कर्तव्यों को भली भांति जानते हैं, जिससे ऐसी आशा होती है कि वह अपने प्रजापालन में सदा सचेत और सयत्न रहेंगे"

सन् १८८१ ईसवी की २८ वीं दिसम्बर को राजकुमार को राजगद्दी मिली। बम्बई के गवर्नर श्रीमान सर जेम्स फ़रगुसन साहब ने वाईसराय का पत्र (खरीता) भरे दर्बार में पढ़ सुनाया। उसके उत्तर में महाराज ने भी चुने चुने शब्दों में बड़ी उत्तमता से अङ्गरेज़ी सरकार को धन्यवाद देने के पश्चात् यह विश्वास दिलाया कि, वे सदा अपनी प्रजा को सुख देने में प्रवृत्त रहेंगे और सरकार अङ्गरेज़ी की ओर मित्रभाव स्थिर रक्खेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अनन्तर बहुत काल ताईं महाराज अपने राज काज के आनन्द में प्रवृत्त रहे। परन्तु काल की कुटिलता इनके इस आनन्द को न देख सकी और उसने एक विघ्न खड़ा कर दिया; अर्थात् सन् १८८५ ईसवी के अप्रैल मास में महारानी लक्ष्मीबाई का स्वर्गवास हुआ। इस असामयिक मृत्यु से महाराज को अत्यन्त शोक हुआ। महाराज को इस महल से दो कन्याएं और एक पुत्र हुए। परन्तु कन्यायों का देहान्त माता के जीवन काल में ही हो गया था। इस महल से अब एक पुत्र राजकुमार फ़तेहसिंह विद्यमान हैं जो राज्य के उत्तराधिकारी हैं। इसी वर्ष के अन्तिम भाग में महाराज ने मध्यप्रदेश के देव घराने की एक कन्या से विवाह किया, जिससे उन्हें एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुए हैं।

महाराजा साहब की बाल्यावस्था में यद्यपि उनके मन्त्री राजा माधवराव ने राज्य के संशोधन और सुप्रबन्ध में कुछ त्रुटि न की थी, परन्तु राजगद्दी पर बैठकर महाराज साहब ने राज्य में बहुत सी नवीन बातें प्रचलित की हैं, जिनका संक्षेप में कुछ वर्णन हम अपने पाठकों को सुनाते हैं।

महाराजा साहब ने सबसे पहिले अपने राज्य का वैज्ञानिक रीति पर माप कराया, जिससे इनके राज्य के भूमिकर की बड़ी वृद्धि हुई। परन्तु उनका अभिप्राय यह था कि राज्य के शुद्ध नाप के हो जाने से एक तो उन प्रजाओं का बड़ा उपकार होगा जिनकी भूमि वा जोत पर अधिक अथवा नियम-विरुद्ध कर नियमित चला आता है। दूसरे भूमि कर का प्रबन्ध उत्तम रीति पर होने लग जायगा। इस कार्य्य का प्रबन्ध मि. इलियट महाशय के आधीन हुआ और वे बड़ोदा राज्य के सर्वे और सेटिलमेन्ट कमिशनर नियत हुए। दूसरा संशोधन भूमिकर सम्बन्धी नियमों में था और विशेषतः उन नियमों में, जिनका सम्बन्ध राज्य और कृषक प्रजा से कुछ अधिक था। इन नियमों के न होने से कार्य्य साधन में बड़ी कठिनाई पड़ती थी। इसी प्रकार न्यायसम्बन्धी नियमों का संशोधन हुआ और वे अङ्गरेज़ी ढङ्ग पर यथाक्रम एकत्रित किए। सरदार घरानेवालों को ऋण से मुक्त करने और उनकी अवस्था सुधार देने के हेतु महाराजा साहब ने कुछ नियम बना रक्खे हैं।

महाराजा साहब को इस बात का पूर्ण बोध है कि भारत की अवस्था का उद्धार उस समय तक सम्भव नहीं जब तक यहां के कृषिकारों की दशा अच्छी न होगी। इसलिये उन्होंने अपने राज्य में कृषकों की सुदशा बनाए रखने के हेतु पूरा प्रबन्ध कर रक्खा है। उनके नियम बड़े कोमल और भूमि कर बहुत ही न्यून हैं। कर के उगाहने में किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जाता। पूर्व गायकवाड़ों के समय से यह प्रथा चली आती थी कि कोई कृषक यदि चाहे तो अपने पूरे जोत वा खेत को छोड़ वा बदल सकता है। उसके अंश के छोड़ने वा बदलने का अधिकार कृषिकार को प्राप्त न था; क्योंकि इसमें यह भय था कि कृषक उन जोतों को रखलेगा जिनपर देन कम है और जिनपर अधिक है उन्हें छोड़ देगा। महाराजा साहब को ये नियम कुछ क्रूर जान पड़े और उन्होंने इसमें संशोधन करके अब कृषकों को यह अधिकार दे दिया है कि वे अपने इच्छानुसार जो जोत चाहें रख सकते हैं अथवा छोड़ सकते हैं। ऊसर भूमि बहुत ही कम लगान पर जोतने बोने के लिये दी जाती है और इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा जाता है कि कृषिकार अपनी भूमि की हर एक प्रकार उन्नति करता रहे। उन्होंने अपनी कृषक प्रजा के कल्याण के हेतु कृषिबैङ्क खोल रक्खे हैं। महाराजा साहिब ने हरएक प्रकार के स्थानिक करों (चूंगी इत्यादि) को क्षमा कर दिया है, क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रणाली से आय की सम्भावना तो बहुत ही कम है, पर सदा एक न एक उत्पात खड़े रहने का वह उत्तम द्वार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् ने अपने राज्य की सेना और पुलिस का प्रबन्ध भी बड़ी उत्तम रीति पर कर रक्खा है, और वे पुलिसशासन पर सदा ध्यान रखते हैं।

यद्यपि श्रीमान् का ध्यान सामाजिक संशोधन की ओर अधिक प्रवृत्त रहता है, पर वह सांसारिक उन्नति मात्र का तारकमन्त्र शिक्षा को मानते हैं। सदा अपनी दृष्टि के सम्मुख इसी उद्देश्य का रखना श्रेष्ठतर और श्रेयस्कर समझते हैं। इन्होंने अपने राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा का पूरा प्रबन्ध कर रक्खा है। यह इन्हींके उद्योग का फल है कि बड़ोदा में एक कालिज देखने में आता है, जहां बी. ए. श्रेणी तक की शिक्षा दी जाती है। जब से यह सिंहासनासीन हुए हैं, वर्नाक्यूलर स्कूलों की पूरी वृद्धि हुई है। उन्होंने आज्ञा दे दी है कि राज्य में ३० नवीन वर्नाक्यूलर स्कूल प्रति वर्ष स्थापित किए जांय। अब कुछ काल से उनका ध्यान शिल्पशिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ है और वह शीघ्र ही एक ऐसा शिल्पविद्यालय खोलने को हैं जिसमें युरोपियन रीति पर शिल्पविद्या और दस्तकारी की शिक्षा दी जायगी।

जिस भांति श्रीमान् बालकों को हरएक प्रकार की उच्चतम शिक्षा देने में किसी प्रकार पराङ्मुख नहीं होते, वैसे ही बालिकाओं को भी उपयुक्त शिक्षा देने में बद्धपरिकर रहते हैं। उनका मत है कि बिना इसके मनुष्य पूर्ण सुख को कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। मैं इस विषय में अपनी लेखनी से कुछ न लिख कर उनके श्रीमुख से निकले शब्दों को उद्धृत कर पाठकों को यह दिखाना चाहता हूं कि, स्त्री शिक्षा-विषय पर उनके आन्तरिक भाव कैसे परिपक्व और स्पष्ट हैं। अपने एक लेख में वे लिखते हैं कि "एक शिक्षित स्त्री घरमें उस स्त्री की अपेक्षा अधिकतर सुख और शान्ति फैला सकती है जिसे कभी कुछ शिक्षा नहीं दी गई, और जो अपना मुख्य धर्म इसीमें समझती है कि घर में अपने अधीनों पर अत्याचार करे और सदा किसी न किसी प्रकार की कलह और छल कपट में निमग्न रहे, हिन्दू धनाढ्य घरानेवालियों की प्रायः यही दशा है"। फिर अपनी एक वक्तृता में वे कहते हैं—"मेरा तो विश्वास है कि भारत में इस समय एक बड़ा परिवर्तन हो रहा है। शिक्षित भारतवासी पाश्चिमात्य सभ्यता और रहन सहन को ग्रहण करते जाते हैं। ऐसी अवस्था में वे उचित बातों को ग्रहण करते हों अथवा अनुचित, परन्तु दोनों का ही शीघ्र एक भारी प्रभाव पड़ेगा। इस समय भारतवासी मात्र को चाहिए कि उन्नति के इस मार्ग में आ सम्मिलित हों। जैसे वे बालकों की शिक्षा में प्रवृत्त रहते हैं, वैसे ही बालिकाओं की शिक्षा भी उन्हें अपना एक कर्त्तव्य समझ लेना चाहिए। हमारी ललनाएं शिक्षा में हमसे बहुत पीछे छूट गई हैं। यदि इन्हें उपयुक्त शिक्षा दी जाती, यदि इनकी बुद्धि प्रारम्भ से ही तीक्ष्ण की जाती और उनके चित्त में शिल्प और काव्यरस की रुचि उत्पन्न करादी जाती, तो साथ ही हमारे पुरुषों की बुद्धि की भी वृद्धि होती। हमलोग समाज की बहुतसी कुरीतियों को अति घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उनके संशोधन को अत्यावश्यक समझते हैं। किन्तु हमारी कन्याएं और स्त्रिएं निरक्षर होने के कारण स्वयं प्रतिबन्ध खड़ी हो कर एक ऐसी बाधा खड़ी कर देती हैं जिससे वह कार्य्य केवल असम्भव हो जाता है। हम पाश्चिमात्य शिक्षा से उन्हें लाभ उठाने से रोकते हैं, पर यह नहीं विचारते कि इसमें लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना है। इसलिये उनको यथोचित विद्योपार्जन करते देख हमें हर्षित और हुलसित होना चाहिए। एतद्देशीय भाषा में उनके उपयोगी विद्याविषय नहीं मिल सकते हैं; उनका प्राप्त होना केवल अङ्गरेज़ी भाषा में सम्भव है। इसलिये उच्चश्रेणी की स्त्रियों को चाहिए कि वे अङ्गरेज़ी भाषा की शिक्षा लें। क्या हमें यह बात समाज में कभी रहने देनी चाहिए कि बाहर तो वे (मनुष्य) बड़े उद्योगशील देख पड़ें, परन्तु घर में स्त्रियों के सम्मुख होते ही सब सुध बिसार दें? क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी पबिलक लाइफ़ का प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है इसलिये हमारे गार्हस्थ्यचरित्र भी अवश्य बदलने चाहिएं"। महाराजा साहब के इन सारगर्भित वाक्यों से पाठक समझ गए होंगे कि वे स्त्रियों को शिक्षा देने और उनकी अधोपतित अवस्था के सुधारने के कैसे पक्षपाती हैं। उन्होंने महाराणी साहिबा को अङ्गरेज़ी शिक्षा दिलवाई है। ऐसा कहा जाता है कि महाराणी साहिबा अङ्गरेज़ी में बड़ी प्रवीणा समझी जाती हैं। वह अब तांई एक लेडी से अङ्गरेज़ी साहित्य का मनन करती हैं; प्रायः अङ्गरेज़ी के समाचार पत्र देखती हैं। महाराजा साहब की नाईं संशोधन के विषय में इनके भाव भी वैसे ही उदार हैं। स्त्रीसमाज की बहुत सी कुरीतियों का बड़ा विरोध करती हैं और अपनी कन्या को उच्च शिक्षा देने की चिन्ता में हैं।

महाराजा साहब को अपने राज्य में उत्तमोत्तम इमारतों के बनवाने का बड़ा शौक़ है। अभी कुछ काल हुए ३० लाख की लागत पर एक राजभवन उन्होंने तैयार कराया है। इसके अतिरिक्त स्कूल, कालेज, अस्पतालादि की इमारतें भी देखने योग्य बनी हैं। रूई कातने की कल और कपड़ा बुनने की मिल भी महाराजा साहब ने बड़ोदा में चलाई है। मि. जहांगीर महाराजा साहब के विषय में लिखते हैं कि "महाराज सियाजी राव नाटे कद, सुडौल बदन और बलिष्ठ प्रकृति के हैं। इनकी चेष्टा प्रभावशालिनी है, जिससे आन्तरिक उदारता, दृढ़ता और उच्चभाव का लक्ष्य होता है। वे अन्तःकरण से सुशील और नम्र हैं, अपने किसी अधीन वा सेवक को कटु वचन नहीं कहते। उत्तर प्रत्युत्तर में बड़े चतुर हैं। इनकी बातें युक्तियुक्त होती हैं, किसी नवीन वार्ता के जानने के लिये बड़े उत्सुक और सुनने में बड़े धीरजवान हैं। बिरले अवसर पर अपनी लेखनी उठाते हैं और राजकार्य को बड़ी तत्परता से देखते भालते हैं"। राज्य की कोई प्रणाली या कोई विभाग ऐसा नहीं जिससे वे पूर्ण विज्ञता न रखते हों। सप्ताह में एक बेर सब उच्च कर्मचारी उनके सम्मुख उपस्थित होते हैं और श्रीमान बड़ी प्रवीणता से उनसे तर्क वितर्क करते हैं। उनकी ऐसी कार्य्यतत्परता देख राज्य के यावत् कर्मचारीगण अपने अपने कार्य्य में प्रवृत्त और लवलीन रहते हैं। राज्य के हर एक कार्य्य और विशेषतः अपनी कृषक प्रजा की अवस्था को निज नेत्रों से देखने और उनका सम्बोधन करने के अभिप्राय से वे वर्ष में प्रायः भ्रमण किया करते हैं। इन भ्रमणों में प्रायः अपने को छिपाते हैं। परन्तु वह स्वयं एक ठौर लिखते हैं कि "इसमें मुझे बड़ी कठिनाई पड़ती है और प्रायः मैं अपने को गुप्त नहीं रख सकता। इन भ्रमणों में प्रजा के विषय में यथासाध्य अधिक जानने के लिये मैं ग्राम के चौधरियों से स्वयं वार्तालाप करने लगता हूँ, और कभी कभी तो खेत में जो हुआ उसीसे कुछ प्रश्न कर बैठता हूँ"।

जो ऐसा श्रमी और उद्योगशील हो, जिसके चित्त को चञ्चल करने के लिये राज्य के एक हज़ार एक विघ्न घात लगाए खड़े हों, उससे कब ऐसी आशा की जा सकती है कि वह एकान्त में बैठ एकाग्रचित्त हो किसी ग्रन्थ के अवलोकन से आनन्द उठा सके। परन्तु नहीं, महाराजा साहब पुस्ताकावलोकन के बड़े प्रेमी हैं; राजकाज से छुट्टी पाकर वे शीघ्र अपने पुस्तकालय में जा बैठते हैं। दर्शनशास्त्र उनका प्रिय विषय है। भारतवर्ष के दर्शनशास्त्र के गूढ़ विषयों का मिलान ये युनानी दर्शनशास्त्र से किया करते हैं। भारतवर्ष, इङ्गलिस्तान, युनान, और रोम का इतिहास प्रायः पढ़ते हैं, मिः * गिबन की रची पुस्तकें इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। महाराजा साहब लिखते हैं कि "मि. ब्राइस की Democracy और टौकवाईल, मिल और फ़ौसेट की रची पुस्तकों का मैं प्रायः अध्ययन करता हूँ। हर्बर्ट स्पेन्सर लिखित Treatise

* एक अङ्गरेज़ी ग्रन्थकर्ता जिसने Wealth of the nation, Rise and Fall of the Roman Empire इत्यादि पुस्तकें लिखी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

on Education मुझे अधिक प्रिय है, परन्तु उनका दर्शनशास्त्र मैं पसन्द नहीं करता। शेक्सपियर लिखित नाटकों को मैंने बड़ी सावधानी से मनन किया है, और बेन्थाम और मेन की पुस्तकें मुझे अत्यन्त प्रिय हैं"।

महाराजा साहब जैसे अपनी विद्या, न्याय और अनुशासक के अन्यान्य गुणों के लिये प्रसिद्ध हैं, वैसे ही अपने सद्स्वभाव और सच्चरित्रता के लिये सराहे जाते हैं। अपने राज्य में उन्हें किसी जाति का पक्ष नहीं है, अच्छे गुण और विद्या के ग्राहक हैं, चाहे वह किसी वेष वा वर्ण में हो। श्रीमान् के धार्मिक भाव बड़े उच्च हैं। अपनी प्रजा का प्रतिपालन और देशहितैषिता को वह अपना मुख्य धर्म समझते हैं। समाज में जो जो कुरीतियां धर्म्म के नाम पर फैल रही हैं, उनके संशोधन के लिये वे अन्तःकरण से बद्धपरिकर रहते हैं।

महाराजा साहब राजकाज, तथा समाज-संशोधन में ऐसे प्रवृत्त रहते हैं और विश्राम उन्हें इतना कम मिलता है, कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है, और इसीलिये परिवर्तन के हेतु वे प्रायः युरोप चले जाया करते हैं। इन भ्रमणों में वे महाराणी साहिबा को भी अपने साथ रखते हैं। महाराजा साहेब चार बेर युरोप गए हैं। इनके इस रिफार्म का इनकी प्रजा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है; और इनकी देखादेखी इनकी प्रजा भी अपने पुत्रों को शिक्षा पाने के लिये युरोप भेज रही है। महाराजा साहेब अपने दोनों राजकुमारों को शिक्षा के हेतु बेलियल और इटन कालेज भेजने को हैं।

अब मैं यह लिख कर अपने इस निबन्ध को समाप्त करता हूं कि भारतवर्ष के दूसरे रजवाड़ों को उचित है कि जिस प्रकार श्रीमान महाराज सियाजी राव ने विद्या में, विज्ञान में, कला में, कौशल में, शिक्षा प्रचार में, समाजसंशोधन में तथा दीन दुखियों की सुध लेने में अपने राज्य को भारत में एक आदर्श स्वरूप बना दिया है, वैसे ही वे इन्हें अपना आदर्श स्वरुप बना कर इनके नियमों का अनुकरण करें और अपनी प्रजा तथा पठितसमाज के प्रशंसा के पात्र हों।

बा० केशव प्रसाद सिंह

रोशनआरा

पांचवां परिच्छेद

पहिले तो राजा पालकी में रहे। कुछ दूर जाने पर सिपाहियों के सर्दार के कहने से वे पालकी पर से उतर पड़े। राजा के उतर जाने पर कहारों से उसने कहा तुम लोग पालकी लौटा कर राजा के घर ले जाओ। राजा ने भी सिर हिला के ले जाने का संकेत किया। जब पालकी दृष्टि से बाहर चली गई, तब सिपाहिओं के सर्दार ने राजा से कहा, मैं तो हुक्म के ताबे हूं, मेरे अपराध पर ध्यान न दीजिएगा; अब इसी जगह से आज्ञा है कि आपकी आंखों पर पट्टी बांध के ले जांय।

राजा ने इसका कोई जवाब न दे सिर तो झुका लिया, पर भीतर ही भीतर जीवन की आशा भी छोड़ दी। यह उनके जी में निश्चय हो गया कि मेरी जान मारने के लिये वज़ीर ने ये सब बन्दोबस्त किए हैं। बेबस हो राजा अपने इष्ट देव का नाम स्मरण करने लगे।

आखें बांधे हुए राजा को बहुत दूर न जाना पड़ा। थोड़ी ही दूर पर एक द्वार खुला, और पीछे से फिर वही द्वार बन्द किया गया। यह किवाड़ के खुलने और बन्द होने से जान पड़ा। फिर कुछ सीढ़ियां मिलीं, और तब ऐसा जान पड़ा मानो किसी घर के अन्दर से जा रहे हैं। जो राजा को पकड़े लिए जा रहा था, खड़ा हो गया और राजा की आंखों की पट्टी खोली गई।

राजा को एक छोटी कोठरी में लिवा ले गए। वहां उन्होंने चारों ओर निहार के देखा तो सिवाय एक खटिया के और कुछ भी न देख पड़ा। जो राजा को लिवा ले गया था, उसने कहा—यही स्थान आपके रहने के लिये ठीक हुआ है; आप यहां से भागने की चेष्टा न करें, क्योंकि बाहर कड़ा पहरा है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने पीने को इसी जगह आ जाया करेगा। इतना कह वह द्वार खोल कोठरी से बाहर निकर द्वार को बाहर से बन्द कर चला गया।

बिवस राजा उस पुरानी खटिया पर बैठ गए। मारे दुःख के उनकी आंखें भर आईं।

एक छोटे से झरोखे से उजेला आता था। राजा बैठे बैठे उधर ही मुँह किए उजाला देखने लगे। जो में कोई आशा न बची थी, मानो जीवन की गांठ खुल चुकी थी। मृत्यु के आने का भी जी में खुटका था, क्योंकि वहां तो यह भासता था मानो सशरीर ही उन्हें पृथिवी से बाहर निकाल लाए हैं, न तो लौटने की सामर्थ्य है और न जी ही चाहता है।

धीरे धीरे उजेला भी घटने लगा। सन्ध्या से कुछ पहिले एक आदमी कुछ भोजन और पानी रख कर चला गया। रतनचन्द को भूख तो ज़रा भी न थी, पर प्यास के मारे गले में कांटे पड़ रहे थे। चट जल का लोटा हाथ में उठा सोचने लगे कहीं इसमें विष मिला न हो। और जो मिला भी हो तो डर काहे का! चाहे वज़ीर हो या बादशाह हो, जिस किसीपर वे अप्रसन्न होते हैं, वह बहुत थोड़े दिन जीता है; तो रतनचन्द के दिन जियेंगे? ऐसा सोचते हुए रतनचन्द ने पानी मुंह से लगाया पर उसमें तीता, कड़ुआ, कसैला, किसी प्रकार का कोई स्वाद न था। तब तो वे बेखटके जल पी गए।

राजा को एक रात हज़ार रात सी बीती और नींद उनसे कोसों अलग रही। खोटी खोटी चिन्ताओं में सारी रात बीती। दूसरे दिन दोपहर को पहिले दिनवाला मनुष्य कुछ खाना पानी धर गया, पर राजा से एक बात भी न बोला। राजा ने कुछ अन्न जल न किया। सन्ध्या से कुछ पहिले कोठरी का द्वार खुला और एक मनुष्य भीतर आया। उसे देख राजा उठ खड़े हुए और वज़ीर की कही हुलिया मिलाने लगे। पर जब उसकी उंगली मे शाही अँगूठी देखी तो सब जी का सन्देह मिट गया।

उसने कहा, "राजा रतनचन्द! तुम्हें न वज़ीर ने और न बादशाह ने कैद किया है; तुम्हें मैंने कैद किया है, अब यह शायद समझ गए होगे। डरो मत, क्योंकि तुम ऐसे छोटे से मनुष्य को मार मुझे क्या करना है। तुम्हें दो चार बातें कहनी है, इसीसे पकड़वा मंगवाया था। वज़ीर अबदुल्ला खां मुझ से कुछ चिढ़े हुए से हैं, कोई बात सुना नहीं चाहते, इससे तुम्हें कहता हूं। तुम वज़ीर के गुलाम हो, यह मुझे मालूम है। मेरे बल का कुछ परिचय वज़ीर को मिल चुका है और तुमने मेरी चालाकी भी देखी। अब वज़ीर साहेब से कह देना कि मेरे कामों में रोक टोक न किया करें। मेरे आगे वज़ीर तो क्या, बादशाह ही को भला मैं क्या समझता हूं? जब चाहूं तो इस मुग़लों की सलतनत और तैमुरी वंश का दुनिया से नाम तक उड़ादूं। पर मुझे ऐसा न करना होगा, मौक़ा पाकर आपही मटिया मेट हो जायगी। मुझे तुम और तुम्हारे मालिक को इतना ही कहना है कि मेरे कामों में छेड़ छाड़ न करें, जो मैं चाहूंगा तो तुम्हें और तुम्हारे मालिकों को चींटी सा रगड़ डालूंगा।"

राजा आदमी और मौका खूब समझते थे। उन्होंने देखा यह गुस्से का मौका नहीं है। इससे विनय करके बोले, भला मैं आपके कामों में टांग क्यों अड़ाने लगा? आपकी तो मुझ से इसके पहिले कभी भेट भी नहीं हुई थी, आपका नाम तक मैं नहीं जानता। उसने कहा—"मैंने तुमसे जो कुछ कहा है वज़ीर से कह देना, अब जो मेरा कोई भी अपराध किया तो याद रखना, दोनों में से किसीको न छोड़ूंगा।"

राजा रतनचन्द भकुआ से सुना किए। उसने अपनी उंगली से अँगूठी उतार कर राज को देके कहा—इसे वज़ीर को लौटा देना। अभी इसकी मुझे ज़रूरत नहीं है। इतना कह वहां से वह चला गया। सन्ध्या के बाद दो नौकरों ने आकर राजा की आंखों पर पट्टी बांध पहिले के समान उन्हें लौटा लेगए फिर सड़क पर कुछ दूर लाकर आंखों पर से पट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोल आप एक ओर चले गए। राजा ने आँखें खोल कर देखा तो ठीक उसी जगह अपनेको पाया जहां पकड़े गए थे। छुटकारा पाते ही अपने घर की ओर राजा भी दम छोड़ कर भागे। पैदल दौड़े जा रहे हैं इस बात को उस समय उनके जी में तनिक भी लाज न आई।

यह सुनते ही कि रतनचन्द अपने घर पर लौट आए हैं, वज़ीर ने अपने यहां उन्हें बुला भेजा। हथियार बन्द सिपाहियों को साथ ले राजा वज़ीर के यहां पहुंचे। जो कुछ उनपर बीती थी सब ब्योरेवार राजा ने वज़ीर से कह सुनाई, उनके दोहराने की अब आवश्यकता नहीं है। राजा की बातों को सुन वज़ीर बड़ाही चकित हुआ। आगे किसके सिर कैसी विपद पड़े इसी चिन्ता में दोनों व्याकुल हुए।

छठवां परिच्छेद

सवेरे उठ के राजा रतनचन्द कुतुब-उल-मुल्क के दरबार में चले ही थे कि इतने में रोशनआरा के पति ने सामने आकर सलाम करके कहा "राजा साहब, मेरे बारे में आपने क्या किया?"

राजा कुछ शरमाए। असल बात छिपा कर बोले "भाई, अभी तक कुछ पता नहीं लगा। मेरे आदमी तो चारों तरफ़ घूम फिरे"।

फ़ारसवासी—यहां एक साँई बाबा आए हुए हैं, उन्होंने मेरी मदद करने को कहा है।

राजा मुस्किरा के)—वे कौन हैं?

फ़ारसवासी—यह तो मैं नहीं जानता। और यहां उन्हें कोई पहिचानता भी नहीं। कहां से आए हैं यह भी नहीं मालूम। वे एक बेर आपसे मिला चाहते हैं।

राजा रतनचन्द ने भौंह सिकोड़ कर कहा—ऐसा कोई नहीं है जो मेरा घर दिखा दे?

फ़ारसवासी ने रुक कर कहा—वह किसी के मकान पर नहीं जाते।

यह सुन राजा चकित न हुए, क्योंकि उस समय बादशाह तक साधुओं के डेरे पर मिलने जाया करते थे। और ऐसा भी सुनने में आया है कि बादशाह को साधू फ़क़ीर ताज़ीम नहीं देते थे। किसी फ़क़ीर ने जहांगीर शाह बादशाह को कहा था कि मैं बादशाहों के बादशाह को भजता हूं, इससे दिल्ली के बादशाह की क्या हकीकत है। ऐसी कड़ी बात पर जहांगीर नाराज़ न हुए। राजा रतनचन्द कुछ सोच कर बोले, अच्छा, वे अगर तशरीफ़ न लावें तो मैं खुद उनके पास चलूंगा।

बहुत से नौकर चाकरों को साथ ले राजा रतनचन्द फ़क़ीर साहब की मुलाक़ात को गए। नदी किनारे एक छोटी सी कुटिया में साँई साहब रहा करते थे। राजा रतनचन्द और फ़ारसवासी उस कुटी के अन्दर गए; और लोग बाहर रहे।

राजा ने जाकर साँईं को हाथ जोड़ा। उसने हाथ उठा कर दुआ दी, पर वह अपने आसन पर से न उठा। वह एक गेरूआ बस्त्र पहिरे हुए था। बड़ी लम्बी दाढ़ी, सिर घुटा हुआ, चेहरे पर झलकता हुआ तेज, प्रशस्त ललाट के नीचे अन्तर्भेदी आँखें थीं। उसकी अवस्था लगभग ५० की होगी, पर शरीर पर बुढ़ापे का कोई चिन्ह न था। वह चाहे जो हो, पर ढकोसलेबाज़ साधू न था।

फ़क़ीर—तुम राजा रतनचन्द हो?

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर का गुलाम हूं।

फ़क़ीर फ़ारसवासी पर इशारा करके बोला—"इसपर कैसी विपद पड़ी है तुमने सुना है न? पर क्या इस शहर के हाकिमों से उसका कोई बन्दोबस्त नहीं हो सकता?"

राजा—इन पर जैसी विपद है, हमलोगों पर भी वैसी ही विपद है। आदमी की बात हो तो उसका बन्दोबस्त हो, पर अज़ीबी बला क्योंकर टल सकती है?

फ़क़ीर—अजीबी बला पर तुम्हें एतबार है?

राजा—जो खुद आँख से देखी जाय उसे क्योंकर न माने?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़कीर—जैसा ख़तरा तुम्हें है, वैसाही वज़ीर को भी है ?

राजा ने इसका कुछ जवाब न दिया। साँई ने फिर कहा-तुम्हें एक बात कहनी है। वह यह है कि अगर इसको औरत इसे मिल जाय, तो वज़ीर अपने खोटे ख़याल उसपर से हटालें और नहीं तो बड़ी आफ़त में पड़ेंगे। मैं जाना चाहता हूं वज़ीर इस बारे में क्या जवाब देते हैं।

चकित हो राजा ने कहा—वज़ीर के मन की बात आपको क्योंकर मालूम हुई ?

साँई—यह पूछके क्या करोगे। जो मैंने कहा तुम उतनाही वज़ीर से कह देना।

राजा रतनचन्द वज़ीर के पास गए। राजा से सब बातें सुन ख़ुद वज़ीर राजा के साथ साँई से मिलने आए। साहब सलामत के बाद वज़ीर ने कहा—आपका कहा मेरे सिर आँखों पर है, पर इस आदमी से हमलोगों को बचाइए, इतनी ही हमारी अर्ज़ है।

सां—जो कहता है वह भी इसी खोटे काम में फँसा है, अब उसकी वह ताकत न रही। तुम मेरे साथ आओ।

कुटी से बाहर आकर साँई ने कहा—किसी को साथ लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम अपना भेस बदलकर मेरे साथ आओ।

साँई से मिलने पर वज़ीर और राजा का उसपर ऐसा विश्वाश हो गया था कि जो वह कहता, बिना आगा पीछा विचारे वे उसे स्वीकार कर लिया करते। फारसवासी भी उनके साथ हो लिया।

आगे आगे साँई रास्ता दिखाता जाता था और पीछे पीछे वज़ीर और राजा चले जा रहे थे। इस भांति कुछ दूर जाने पर एक पतली सी गली मिली। उसके अन्दर जाकर एक दुमहले मकान के आगे सब लोग खड़े हो गए। सांई ने पुकारा-"नसीर ख़ां !"

द्वार खुलते ही, वज़ीर और रतनचन्द का पहिचाना हुआ पुरुष बाहर आया और सांई के सम्मुख हाथ जोड़ सिर झुका कर खड़ा हो गया।

सांई ने फारसवासी को इशारा करके कहा-नसीर ख़ाँ, तुम इसकी जोरू को क्यों भगा लाए हो ?

नसीर ख़ाँ इस सवाल का कुछ जवाब न दे चुप चाप खड़ा रहा।

सांई उस मकान के अन्दर घुसगया, और उसके पीछे सब लोग हो गए। सांई ने फ़ारसी से कहा-तुम्हारी जोरू इसी मकान के अन्दर है, उसे ले आओ।

फारसी बोला—अब वह नापाक हो गई, मैं अब उसे न लूंगा।

सांई ने जवाब दिया—जो नापाक हुई होगी तो अपनी राज़ी से। चाहे नसीर ख़ाँ बदमाश हो, पर उसकी इतनी जुर्रत नहीं है कि ज़िना बिलजब्र करे। और शायद ऐसा फेल करे तो जिस ताक़त से वह ऐसा ताकतवर हो रहा है, वही ताक़त उसे बरबाद करे देगी।

तब वह फारसी जाके घूंघट खींचे हुई रोशन आरा को लिवा लाया। सांई ने नसीर ख़ाँ से पूछा-क्या तुमने इस औरत का बदन छूआ है ?

नसीर ख़ाँ—मैंने इसे नहीं छुआ।

रोशन आरा ने भी सिर के इशारे से उसके कहने को स्वीकार किया।

सांई ने फ़ारसी से कहा—तुम्हारी जोरू पाक है, इसपर किसी तरह का गुनाह नहीं है। मेरे कहने से बिना कोई शक़ व शुबह के तुम इसे मंज़ूर करो।

फिर नसीर ख़ाँ से बोला-नसीर ख़ाँ, तुम कौल चूके। जो गुनाह तुमसे हुआ है उसके लिये तुम्हें मुआफ़ी मांगनी चाहिए। अच्छा मेरे साथ चले आओ।

और वज़ीर और राजा से कहा-बेख़ौफ तुम अपने घर जाओ, यह अब तुम्हें न दिखाई देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांई घर से बाहर आए। नसीर खाँ उसके पीछे हो लिए।

बाबू कार्तिकप्रसाद

आलोचक और आलोचना

आजकल हिन्दी काव्य-आलोचकों की संख्या बहुत बढ़चली है। प्रायः कोई ऐसा मासिक पत्र प्रकाशित नहीं होता जो "आलोचना" इस उत्तमोत्तम सारगर्भित शब्द से सुशोभित न पाया जाता हो। क्या यह हिन्दी साहित्य के लिये अल्प सौभाग्य की बात है! कोई कार्य क्यों न हो, आलोचना सभी के लिये आवश्यक है। यदि यथार्थ रीति से प्रत्येक विषय की समालोचना की जाय तो उसके द्वारा बहुत कुछ लाभ होना सम्भव है; क्योंकि आलोचना के बिना न तो किसी विषय की उपयोगिता सिद्ध हो सकती, न उसकी निर्दोषिता और उसके गुणत्त्व का सम्यक् बोध ही हो सकता है। मनुष्यकृत रचना में यदि किसी प्रकार की भूल रह गई हो, तो उसको युक्तितः सिद्ध करके प्रत्यक्ष बतला देना और तद्गत श्लाघ्य विषयों का उपपादन करना, यही आलोचना का मुख्य तात्पर्य है। (आ उपसर्ग पूर्वक लोच् धातु से आलोचना शब्द बना है—आ समन्तात् लोचनं दर्शनमित्यालोचना; अर्थात् अच्छी भांति देखने को आलोचना कहते हैं)। अतएव किसी विषय की आलोचना का साहस करना साधारण बात नहीं है। जिस विषय का जो पूर्ण ज्ञाता नहीं है, वह उस विषय की समालोचना करने का अधिकारी क्योंकर हो सकता है। इसलिये जिन महाशयों को आलोचक बनने की विशेष उत्कण्ठा हो, उन्हें प्रथम आलोच्य विषयक पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लेना मुख्य साधन है। तत्पश्चात् वे आलोच्य विषय की समालोचना में अधिकार जमावें। परन्तु आलोचकों को इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि, यदि द्रष्टव्य विषय की गुण गणना न कर दोष दिखलाने चले हैं, तो उत्तम रीति से जाँच के ही दोषोद्घाटन करें, क्योंकि अदोष पदार्थ में दोषारोपन करने से कदाचित् आलोचकों ही का दृष्टिदोष गिना जाया; जैसे कोई किसीको ध्यान करने के समय आंख मूंदे हुए देख बिना विचार किए ही चट उसे अन्धा कह कर पुकारने लग जाय, और कुछ काल के अनन्तर उसको आंखें खोलते हुए देख अपने दृष्टिदोष पर लज्जित हो समाज में दोषभाजन बन बैठे। समालोचकों को चाहिए कि आलोचना करने के समय अपनी दृष्टि को शुद्ध कर लें और किसी प्रकार की मलीनता उसमें न रहने दें, तब दृश्य पदार्थों के गुणदोषों की विवेचना करें; क्योंकि कभी कभी अपने नेत्रदोष से भी पदार्थों पर दोषाध्यास होना सम्भव है। यह तो प्रत्यक्ष है कि जिनके नेत्र में पीलापन आजाता है, तो वे विशद पदार्थ को भी पीत कह कर अपने नयनदोष का परिचय देने लगते हैं और सामाजिक लोग उनके कहे हुए को एक कौतुकमात्र समझते हैं। ऐसे ही शास्त्ररूपी चक्षु होते हुए भी जिनका ज्ञानप्रदीप विषयवायु से ताड़ित होकर लुप्त होगया है, उनको अपने हृदयागारस्थ विवेकरत्न ही का प्रत्यक्ष होना कठिन है; फिर वे दूरदर्शी सूक्ष्म विषयों की आलोचना क्या करेंगे, और हठात् उनकी की हुई आलोचना सभ्यसमाज में कैसे माननीय हो सकती है? शास्त्रपरिनिष्ठित बुद्धि न होने के कारण ग्रन्थकर्ता के आशय को बिना समझे ही उसके सदर्थबोधक विषय में दोष दिखलाना मानो एक प्रकार से अपना उन्माद प्रगट करना है। यद्यपि बड़े से बड़े विद्वानों के कृत सिद्धान्त में कुछ भूल निकल जाय तो असम्भव नहीं, क्योंकि मनुष्यमात्र से भूल होनी सम्भव है, तथापि गुणदोषाध्यासक समालोचकों को इस बात का तर्क कर लेना आवश्यक है कि ग्रन्थकर्ता ने किस अभिप्राय से किस प्रकरण में किस शब्द को किस अर्थ में प्रयुक्त किया है; तत्पश्चात् गुण दोष की विवेचना में हाथ डालना न्यायविरुद्ध न होगा। सारांश यह है कि बहुत से प्राचीन ग्रन्थान्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीचीन विषयों का आशय अपनी अल्पज्ञता के कारण न जान पड़ने से उस सदुक्ति को अयुक्तितर कह कर इतर लोगों की बुद्धि को संशय में डाल देना कदापि समुचित नहीं। अस्तु, इस प्रस्ताव को यहां समाप्त कर प्रसङ्गवशात् काव्य लक्षण के विषय में मैं कुछ अपना अभिप्राय प्रकाशित करना चाहता हूँ; यद्यपि हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० श्यामविहारी मिश्र, एम. ए., और पं० शुकदेव-विहारी मिश्र, बी. ए., इस विषय का एक लेख "सरस्वती" के प्रथम-भाग की द्वादश संख्या में लिख चुके हैं और स्वेच्छानुकूल हिन्दीकाव्यगत कतिपय दूषणों को दिखला चुके हैं। यदि उक्त महाशयों की भांति निष्पक्षपात हो अपने विशद विचार के सहारे काव्यगत गुण दोषों की समीक्षा की जाय, तो निस्सन्देह थोड़ेही दिनों में काव्य की अपूर्व योग्यतायुक्त शोभा झलक पड़ेगी।

उक्त हिन्दीकाव्य के आलोचक महोदय लिखते हैं कि, हमने भाषाकाव्य प्रणाली के गुणों की कुछ भी विवेचना किए बिना केवल उसके दोषों ही पर विचार किया है। इस लेख के लिये वे पहिले ही क्षमाप्रार्थी होचुके हैं। अस्तु, यह आलोचक की इच्छा पर निर्भर है कि प्रथम गुणगौरव की ओर दृष्टि न देकर दोषों ही का अनुशीलन करे। अच्छे आलोचक प्रायः पहिले दोषों ही का अनुसन्धान करते हैं। किसी कवि ने भी कहा है "यस्य योऽस्ति हितप्रेप्सुः सतद्दोषं पुरः स्पृशेत्"। मिश्र जी महोदयों ने हिन्दीकाव्यगत बहुतसी भूलें निकाली हैं, परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि उसमें कितनी भूलें ठीक हैं; क्योंकि उक्त महोदयों ने जो बाबू जगन्नाथदास बी. ए. (रत्नाकर) कृत काव्य लक्षण को खण्डन किया है उसकी समीक्षा पं० किशोरीलाल गोस्वामी सरस्वती के द्वितीय भाग की प्रथम संख्या में प्रकाशित कर चुके हैं, जो मेरी समझ में भी युक्ति-युक्त प्रतीत होती है। अनन्तर इसके सिरमौर और शशिभाल जी ने साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कृत काव्यलक्षण में अतिव्याप्ति दोष देकर निजकृत काव्यलक्षण में कुछ विलक्षण विचक्षणता प्रगट की है, अर्थात् पण्डितराज और रत्नाकर जी इन दोनों कवियों के कहे हुए लक्षणों को फेंट फांट कर अपना एक नवीन लक्षण बना लिया है और उसे ही काव्य का शुद्ध लक्षण मान लेना उचित समझा है।

अब व्यास जी लिखित लक्षण पर ध्यान दीजिए। उन्होंने अपनी गद्यकाव्यमीमांसा में काव्य का लक्षण यों लिखा है कि "लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्धः काव्यनामभाक्। दृश्यं श्रव्यमिति-द्वेधा तत्काव्यं परिकीर्त्तितम्॥" मिश्र जी लिखते हैं कि प्रबन्ध शब्द अनेकार्थबोधक है, इसलिये ऐसे शब्द का प्रयोग किसी पदार्थ के लक्षण में करना ठीक नहीं। पाठकवृन्द! तब पदार्थ के लक्षण ही में क्यों वरं और और स्थान में भी अनेकार्थ-बोधक शब्द का प्रयोग न करना ही उत्तम होगा; क्योंकि यदि कोई "हरये नमः" कहे और कोई यही समझ ले कि इसने वानर को प्रणाम किया है, नमस्कर्ता का आशय भगवद्वन्दना हो का क्यों न हो। "सैन्धवो धावति" इस वाक्य के सुनने से क्या किसी को लवण दौड़ने को भ्रम नहीं हो सकता? यदि कोई बोल उठे कि "पयो वर्षति", अवश्यही किसीके मन में दूध का बरसना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध सर्वथा असम्भव जान पड़ेगा। इसी प्रकार और भी जितने अनेकार्थवाची शब्द हैं, वे कितने मनुष्यों के लिये अवश्यमेव भ्रमोत्पादक हैं और ऐसे शब्दों का प्रयोग तो काव्यलक्षण के लिये यथार्थ ही में भारी भ्रमोत्पादक है। इससे तो यही अच्छा होता कि अनेकार्थबोधक शब्दों के अन्यान्य अर्थों को उड़ाकर उनमें केवल एकही अर्थ का समावेश रहने दिया जाता। ऐसे नियम के बर्ताव से विशेष लाभ तो यह होता कि कितने गम्भीर बुद्धिवाले विवेकियों को काव्य के लक्षणोपयोगी प्रबन्ध इत्यादि अनेकार्थबोधक शब्द में दोष, कपट, इन्तज़ाम आदि अनपेक्षित अर्थों का भ्रम होना कदापि सम्भव न होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त महोदयों ने प्रवन्ध शब्द का अर्थ किया है "प्रकर्षेण वध्यत इति प्रवन्धः", और इसी धात्वर्थ पर आरूढ़ हो प्रवन्ध शब्द का अर्थ इन्तज़ाम आदि में सन्निवेशित किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु यदि हम कोष की ओर दृष्टि न देकर शब्दार्थ विवेचना के लिये केवल व्याकरण ही का आश्रय लिया करें, तो बड़ा गड़बड़ उपस्थित होजायगा, क्योंकि ऐसे बहुत शब्द हैं जो व्याकरण की व्युत्पत्ति से और ही अर्थ बतलाते और कोष के द्वारा वे और ही अर्थ में व्यवहृत किए जाते हैं और सब कोई उसे सादर स्वीकार करते हैं। अब यदि मैं मिश्र जी की सम्मति से अनेकार्थबोधक शब्द का प्रयोग किसी पदार्थ के लक्षण में उचित न समझूं तो अभिधाशक्ति का सर्वनाश होना ही सम्भव है।

प्रवन्ध शब्द का अर्थ भले ही बहुत हो, परन्तु जब कोषकार ने ऐसा लिखा है कि "प्रवन्धो वाक्यविस्तर" अर्थात् प्रवन्ध शब्द वाक्यविस्तर-बोधक है, तब जिस वाक्यसमुच्चय में लोकोत्तरानन्ददातृत्व है, वह निस्सन्देह काव्य है, जिसका समर्थन पं० किशोरीलाल गोस्वामी अपनी समीक्षा में भली भांति कर चुके हैं। अतएव ऐसे स्थान में जहां कि काव्य लक्षण के लिये प्रवन्ध शब्द का प्रयोग किया गया है, वहां प्रवन्ध का अर्थ बाजा बजाना, अथवा सेनाओं की व्यूह रचना मानकर लक्षण में अतिव्याप्ति दोष देना सर्वथा प्रकरणार्थविरुद्ध है। यदि उक्त लक्षण में प्रवन्ध का अर्थ वाक्यसमुच्चय न मान इन्तिज़ाम ही आदि लेकर अतिव्याप्ति दोष दिया जाय, तो शिरमौर और शशिभाल जी ने भी अपना यह लक्षण लिखा है कि "वाक्य अर्थ वा कहू जहँ रमणीय सु होय—शिरमौरऊ शशिभालमत काव्य कहावै सोय"। इसमें रमणीय शब्द का अर्थ आप वही मानते हैं जो पं० जगन्नाथ कवि ने माना है, अर्थात् "रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनक ज्ञान गोचरता"। यदि मैं भी इस समय मिश्र जी महोदय के दत्त नियमानुसार विशेषण रूप रमणीय शब्द का अर्थ रमणस्य भावः रमणीयः, अथवा रन्तुं योग्यमिति रमणीयम् मानलूं और "तव पुत्रो जातः" इस वाक्य की रमणीयता पर काव्यत्व का होना स्थिर करूं, तो फिर मिश्रजी कृत काव्य लक्षण की अतिव्याप्ति बात बात में व्याप्त हो जायगी। अतएव मिश्र जी ने जो रमणीय शब्द का अर्थ अलौकिक हर्ष माना है उचित समझा है। और इसी प्रकार व्यास जी ने जो प्रवन्ध शब्द का अर्थ कोषानुसार वाक्यसमुच्चय अर्थात् योग्यताकांक्षासक्तियुक्त पदोच्चय रक्खा है, बहुत ठीक है; और यह लक्षण रत्नाकर जी के इस लक्षण से कि "होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय," मिल जाता है, क्योंकि रत्नाकर जी ने भी रमणीय का अर्थ लोकोत्तरानन्द ही माना है और इस लक्षण का शुद्ध होना पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने युक्ति पूर्वक बतलाया है।

इसके अनन्तर मिश्र जी महोदय दृश्य काव्य का अभिप्राय और तत्प्रयुक्त भावार्थ समझ जाने पर भी दृश्य शब्द को वाच्यार्थ में परिगणित कर धोखे में आगए। जब तक हमलोग केवल धात्वर्थ ही की ओर दृष्टि फैलाते रहेंगे, तब तक ग्रन्थकर्त्ता के आशय समझने में इसी प्रकार अवश्य ही कोलाहल होता रहेगा। इसीलिये साहित्यकार ने लिखा है कि अर्थोवाच्यश्च व्यंग्यश्च लक्ष्यश्चेति त्रिधा मतः। व्यंग्यो व्यञ्जनयाताःस्युस्तिस्राः शब्दस्य शक्तयः। इत्यादि। और काव्य के जो दो भेद व्यास जी ने माने है बहुत ठीक हैं। साहित्यदर्पणकार ने भी षष्ठ परिच्छेद की द्वितीय कारिका में लिखा है कि "दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधामतम्। दृश्यं तत्राभिनेयं तदित्यादयः।

दृश्यकाव्य के विषय में मुझे और कुछ लिखना शेष रह गया है, जो अवकाश पाने पर फिर किसी दूसरी संख्या में लिख कर प्रकाशित करूंगा। अब विशेषतः मेरी प्रार्थना यह है कि इस लेख में यदि मैंने भ्रमात् कुछ असङ्गत बातें लिखी हों तो पाठकवृन्द उसे क्षमा करेंगे। किमधिकमितिशम्॥

राजा कमलानंद सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकविनोद

कोकिल

[१]

कोकिल अति सुन्दर
चिड़िया है ;
सच कहते हैं
अति बढ़िया है ।
जिस रङ्गत के
कुँवर कन्हाई
इसने भी वह
रङ्गत पाई ॥

[२]

अथवा जामुन का रँग जैसे
इसका भी होता है तैसे ।
ज्योहीं चैत मास लगता है
जाड़ा अपने घर भगता है ॥

[३]

त्योहीं यह अति मीठी बानी
नित्य बोलती है रससानी ।
आम-मौर इसको अति प्यारा ;
सत्य सत्य यह वचन हमारा ।

[४]

मौरों के सुगन्ध की माती
कुहू कुहू यह सब दिन गाती ।
मन प्रसन्न होता है सुनकर
इसके मीठे बोल मनोहर ॥

[५]

सम्मुख आम वृक्ष के ऊपर
देखो, वह आती है उड़कर ।
बोलो मत ; उँगली न उठावो ;
आवो, वहीं चलें सब, आवो ॥

[६]

मीठी तान कान में ऐसे
आती है, बंशी धुनि जैसे ।
सिर ऊंचा कर मुख खोलै है;
कैसी मृदु वानी बोलै है !

[७]

इसमें एक और गुण भाई ।
जिससे यह सबके मन भाई ।
यह खेतों के कीड़े सारे
खा जाती है बिना बिचारे ॥

[८]

जिस परमेश्वर ने दिया यह पक्षी गुण धाम ।
प्रेम सहित कर जोड़कर उसे अनेक प्रणाम ॥

वर्षाऋतुवर्णन

[कालिदास के ऋतुसंहार से]

(जुलाई में प्रकाशित से आगे)

जोर सों बादरवा गरजै
सु छिन पै छिन घोर सुनावत भारी ।
हाथ को हाथ सुझात नहीं ।
अति कारी कराल झुकी अंधियारी ॥

ऐसेहू औसर पै नहीं चूकत
प्रेम पगी अभिसारिका नारी ।
पीय की गैल दिखावत है
चपला की प्रभा जिनको अति प्यारी ॥

घोर भयावनी मेघन की
मन में अति आतुरता उपजावति ।
त्यों दमकामनि दामिनि की
दुति दूनी दिखाय जिय डरपावति ॥

भारी किये अपराधन हूं
तव कन्त के तीय तुरन्त भुलावति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंक में आय निसंक ह्वै सेज पै
भेटि निरन्तर कंठ लगावति ॥

नीले सरोज से नैनन सों
अंसुआन की बूंदन को झर लावति।
बिम्ब से होठन के सुठि पल्लव
सींचि तिन्हें तिन सों अन्हवावति ॥

छाँड़ि दियौ है सिँगार सबै
नहीं धारति माल न गन्ध लगावति।
छाये बिदेस पिया जिन के
तिय पावस सो ह्वै निरास बितावति ॥

मैलौ मटीलौ महा गदलौ
तृन कीट अनेकन संग लिये।
दौरत सर्प सौ दर्प भरौ
गति वक्र सों कुण्डली चक्र दिये ॥

भेक की भीर निहारी रहीं
दृग फारि धरैं भय भारी हिये।
ऐसौ नयौ जल मेघन को
थल नीचे कों जात सुहात प्रिये ॥

पत्र पुष्प बिन देख कमलिनी को
मधुकर अब त्याग चले।
श्रवण सुखद गुंजित रव करते
उत्सुक मन अनुराग भरे ॥

गिरे नृत्यरत मोरों की
चन्द्रिका चक्र पर मूढ़ बड़े।
नव उत्पल के भ्रम से सत्वर,
रस पराग सुख आस धरे ॥

सुन के नव घन घोर हुए बनगज मद माते।
बारबार हो मुदित, हर्ष चिंघार सुनाते ॥
जिनके विशद कपोल विमल-उत्पल-आभाधर।
सोहैं मद में* सने, घने लिपटे हैं मधुकर ॥

[क्रमशः

* अथवा 'लसैं दान में'

बुंदेलखण्ड पर्य्यटन

[गत अङ्क के आगे]

नगर का कोट

यहां से चल कर हमें कोट देख पड़ा। झांसी द्वार से हमने इसमें प्रवेश किया। यह कोट अब केवल रर रह गया है। शेरशाह तथा औरंगज़ेब के समय के मुसलमानों की लड़ाइयों में धुआंधार तोपों के गोलों के प्रहार से इस ओर की भीत नितान्त सिलपट होगई थी। तब यहां रर बांधी गई। रर इस देश में उस भीत को कहते हैं जो पत्थर गढ़ कर बनाई गई हो और पत्थर चूने से न जोड़े गए हों। यह रर भी अब ठौर ठौर पर टूट गई है। प्राचीन झांसीद्वार से मार्ग अब बन्द कर दिया गया है। उसमें अब निराश्रय दीन व्यक्ति रह कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। मार्ग के लिये एक नवीन द्वार रर के पत्थर हटा कर खोल लिया गया है। इसीमें होकर हमने ओड़छे नगर में प्रवेश किया। पाठकगण! अब इस रर पर आपको प्रहरी देख नहीं पड़ेंगे। तथापि यह रर ऐसी सुरक्षित है कि कोई व्यक्ति इसपर चढ़ने का साहस नहीं करता। नगर में अब रघुनाथ जी विराजते हैं। अस्तु उनकी सेना के लंगूर और बन्दर ही अब इस रर के रक्षक और प्रहरी हैं। उनके कारण सरलता से मनुष्यों को मार्ग चलना भी कठिन है।

मार्ग

एक सीधा मार्ग रर से ले तुङ्गारण्य और कञ्चनाघाट तक मरहटों की हवेली के नीचे से होकर चला गया है। यह मार्ग ककरीली भूमि पर बहुत चौड़ा है, इस कारण इसमें कच्चे मार्ग का कोई कष्ट नहीं होता। मार्ग के किनारे पर प्रायः वृक्षों का अभाव है, परन्तु उभय ओर मीलों तक कोसों की चौड़ाई में पक्के मकानों के खण्डहर, दूकानों के दर, चौतरे और धनाढ्यों के घरों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तुङ्ग द्वार तथा भीतें देख पड़ती हैं। गङ्गा के मार्ग में मदार के गीतों की भांति इन्हीं खण्डहरों पर एक बड़े विस्तृत उत्तुङ्ग शिखरमय मसजिद देख पड़ती है। उसीके दूसरी ओर प्रतीतराय के महलों के द्वार खड़े हैं। जहां तक दृष्टि जाती है वहां तक खण्डहर ही खण्डहर देख पड़ते हैं, जो इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि, ओड़छा एक समय में इस देश का एक अद्वितीय नगर था और कवीन्द्र केशव के "नगर ओड़छो जहं वसै पण्डित मण्डित भोर" वाक्य को सत्य करता था। परन्तु शोक, कि वहां न अब पण्डित हैं न पांडित्य, न चतुर हैं न चातुरी ; निर्जन और निस्तब्ध हो यह श्रीमानों के निवासस्थान स्यारों के विश्रामागार हो रहे हैं; और निखण्ड काली अर्धनिशा में केवल इन्हीं वनजीवों का रोदन तथा वायुसंयोग से पत्तों की खड़खड़ाहट प्रकृति देवी की निद्रा को प्रहरी रूप से चौकानेहार प्रतीत होते हैं। नगर के मध्यभाग में सड़क ने एक हवेली को काटा है, जिसका नाम हमें मरहटों की हवेली बताया गया। इसपर मीने का काम अत्यन्त सुन्दर है। मार्ग से अब वह बीस हाथ के लग भग उंचाई पर है, और टीलों पर होकर उसका मार्ग है, मार्ग की ओर से नहीं। उसी हवेली की पूर्व दिशा को ओर हरसिद्धि माई का मन्दिर है। संक्षेपतः यह मार्ग श्रीमानों के मन्दिरों का योंही हृदय विदीर्ण करता हुआ बाज़ार में पहुँचता है। यह एक छोटा सा पांच छः दूकानों का बाज़ार है, जिसमें ग्रामीणों की विशेष विशेष आवश्यकता की वस्तुएं, आटा दाल आदि, मिल जाया करती हैं। हा शोक ! एक दिन वह था जब ओड़छे का हाट इस देश भर में प्रसिद्ध था और लोगों की दृष्टि में एक चमत्कार ठौर प्रतीत होता था; परन्तु दैवदुर्विपाकवश अब वह ऐसा उजड़ा है कि ग्रामों के हाटों से भी हीनदशा में है। दूकानवाले दीन दुखित श्रीहत से प्रतीत होते हैं। बाज़ार में पहुंच कर सड़क त्रिशूलाकार हो जाती है। एक शाखा रघुनाथ जी के मन्दिर, नौचौकिया फूलबाग और चतुर्भुज जी के मन्दिर की ओर जाती है। दूसरी वेत्रवती से समानान्तर रेखा में होकर व्यासपुरा, महाराज वीरसिंह देव के समाधिमन्दिर, कञ्चनाघाट, तुंगारण्य की ओर जाती है। तीसरी शाखा वेत्रवती की एक भुजा पर के पुल से होकर राजमन्दिरों की ओर जाती है। यह मार्ग त्रिशूल ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी वीर ने ओड़छे के अभाग्यकारी दुर्दैव से युद्ध करने और ओड़छे को भाग्य रक्षा के लिये इसको दुर्भाग्य समय सन्धाना हो; परन्तु काल की कराल गति को स्वयं न सम्हाल कर दुर्दैव के भीषण आक्रमण से वह वीरशिरोमणि मृत्यु की तीव्र डाढ़ का ग्रास होगया, और उसका वीरास्त्र त्रिशूल वहीं पड़ा रह गया हो। पाठक महाशयो ! धैर्य धरिए, अभी हम आपको इस त्रिशूल को इन्हीं तीनों शाखाओं पर लिवा ले चलेंगे। यद्यपि त्रिशूलधारा पर चलना सहज कार्य नहीं है, परन्तु यदि आपको अपने पूर्वजों की भक्ति है, यदि आप उनके सुयश को सुन सुख पानेहारे हैं, तो आप प्रेमवश निश्शङ्कोच इन तीव्र धाराओं पर चल सकेंगे; क्योंकि दुर्गम और दुस्तर धाराओं के तारने की नौका केवल प्रेम ही है।

नौचौकिया फूलबाग़

पाठक महाशयो! इस त्रिशूल की मध्य भुजा से दाहिनी ओर चलकर आपको एक विस्तृत वाटिका मिलेगी जो नौचौकिया फूलबाग के नाम से प्रसिद्ध है। यह राजमन्दिर की बिलासवाटिका है। दीर्घदर्शी महाराज मधुकरसाह ने अपने नौ पुत्रों के रहने के लिये नौ चौक का एक राजमन्दिर बनवाया और उसके मध्य भाग में यह वाटिका लगवाई थी। इसके वृक्षों के घरुए पक्के बने हैं और बिचित्र आकार के बनाए गये हैं। थालों के मध्यभाग में एक ऊंची बैठक का पक्का एकखण्डा वर्गाकार मन्दिर बना है। यह राजकुमार हरदेवसिंह की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। इसके चतुर्दिक बहुत बड़ी बड़ी तिखण्डी चौखण्डी दालानें और कमरे बने हैं। सैकड़ों फुहारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पातें वाटिका में फैली चली गई हैं। जब कभी उनमें जल संचार होता है तब वह एक विशेष कौतूहल का कारण होता है और सैकड़ों यात्री इस उत्सव को देखने के लिये श्रावण मास में एकत्रित होते हैं। वाटिका में नाना प्रकार के फल फूलादि के लहलहे वृक्ष अपने आरोपण करनेहारे के स्मारक की भांति खड़े हैं। एक कमरे के नीचे, जिसमें टीकमगढ़ नरेश के राजकर्मचारी बहुधा आन कर ठहरा करते हैं, एक पत्थर का प्याला, जिसमें मनुष्य डूब जावे, रक्खा है। इसमें यह विचित्रता है कि यह बजाने से कांसे के बर्तन की भांति बजता है। इसके निकट एक बहुत बड़ा भुंइहरा (तहखाना) है जो फूलबाग से लेकर बावली के निकट होता हुआ बाज़ार तक फैला चलागया है। उसमें उजेले तथा वायु के प्रवेश के लिये दो बड़े ऊंचे ऊंचे खम्भे बने हैं जो सांवन भांदों नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके मुख पर पानी भरा थी, इस कारण हमने उसमें प्रवेश नहीं किया, परन्तु बाहर ही से ऐसा अनुमान हुआ कि यह भुंइहरा एक दिव्य स्थान है, और ऐसा बड़ा स्थान इस प्रकार का कोई दूसरा नहीं है। इसी कमरे में महाराज टीकमगढ़ के प्रसिद्ध राजकर्मचारी-"प्रिंसीपैल रेवेन्यू आफ़िसर ओड़छा स्टेट", मौलवी सय्यद मुहम्मद मुजतिबा साहब ठहरे हुए थे। मौलवी साहब एक बड़े सज्जन पुरुष हैं। आप बनारस के रहनेहारे हैं। आपने हमारा बड़ा ही सत्कार किया और बड़े प्रेम से हमें और राजामन्दिर दिखवाए। हम आपके अत्यन्त अनुगृहीत हैं और आप की सुजनता की जहां तक प्रशंसा करें न्यून है। फूल-बाग अभी तक अच्छी दशा में है। इस वाटिका में एक बड़ी शोकप्रद ऐतिहासिक दुर्घटना हुई थी। कहते हैं कि जब ओड़छाधीश, महाराज वीरसिंह देव के पीछे, दिल्लीश्वर की राजसभा में रहने लगे, तब राज्यप्रबन्ध का भार राजकुमार हरदेवसिंह के सिर पर पड़ा। अपना कार्य सभी भली भांति सम्हालते हैं। राजकुमार दत्तचित हो राज्य प्रबन्ध करते रहे। उनके प्रबन्ध में घूंस खानेहारों का निर्वाह न था। जिन लोगों का पेट घूंस ही के द्वारा भरता था, उनको हरदेव सिंह से ईर्षा उत्पन्न हो गई और राज-प्रबन्ध हरदेव सिंह से छीनने का वे लोग प्रयत्न करते रहे। राजकुमार की भक्ति अपनी भ्रातृपत्नी में माता के समान थी और वह भी अपने देवर को पुत्रवत्ही मानती थीं। परस्पर यही सम्बन्ध सदैव रहता था। पुत्रवत्सला माता को जैसे अपने पुत्र को बिना देखे चैन नहीं आता, वही दशा उनको भ्रातृपत्नी की थी। विश्वासघाती प्रतीतराय ने यह देख भ्राताओं में वैमनस्य कराना चाहा और एक पत्र राजा को लिखा कि राजकुमार का राज-महिषी से अश्लील सम्बन्ध है। सत्य है "विनाश-काले विपरीत बुद्धिः"! राजा ने पत्र पढ़ राज-महिषी के सतीत्व में सन्देह कर परीक्षा करनी चाही। आतेही राजमहिषी से कहा कि यदि तुम्हारे सतीत्व में अन्तर नहीं पड़ा और तुम्हारा हरदेव सिंह से घृणित सम्बन्ध नहीं है, तो तुम अपने हाथ से उसे विष दो। राजमहिषी ने बड़े दुःख से अपनी धर्मरक्षार्थ प्रस्ताव स्वीकार किया और भोजन प्रस्तुत किए। कहते हैं कि जब वह भोजन हरदेव सिंह को परोसने लगी, तब उनके अश्रुसंचालन हो उठा। हरदेव सिंह ने क्लान्त हो पूछा कि माता! आज पुत्र को खिलाने में तुम क्यों रोती हो? क्या मैंने कुछ तुमको दुख दिया है, भूमि की तृप्ति तो मघा के बरसे और पुत्र को तृप्ति माता के परोसने से होती है। क्या आज तुममें कुछ मातृस्नेह न्यून हो गया है जो तुम रोती हो? राजमहिषी चीख मार कर रो उठी और जब हरदेव सिंह ने बहुत प्रबोध किया तो बोली कि वत्स! अब मैं माता कहे जाने के उपयुक्त नहीं हूं! महाराज को मेरे सतीत्व में सन्देह हुआ है। जगत प्रलय होते हुए भी स्त्री का पहिला धर्म सतीत्व रक्षा है; अस्तु उसीकी इस समय परीक्षा ली गई है, जिसके कारण तुझसा देवर, जो वास्तव में मेरे पुत्र के समान ही था, आज विष भोजन कर रहा है और अपनी धर्म रक्षा के लिये आज मुझ दुर्भागिनि को यह घोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वत्सहत्या करनी पड़ी। हरदेव सिंह यह सुनते ही उस भोजन को बड़े प्रेम से शीघ्र शीघ्र खाने लगे और बोले कि माता ! यह भोजन मेरे लिये अमृत समान है। तेरी धर्मरक्षा से मेरी सुकीर्ति युगानुयुग होगी। राजमहिषी इन सौजन्यपूरित वाक्यों को सुन और भी कातर हो उठीं। उनके ज्येष्ठ भ्राता यह धर्मपरीक्षा और धर्मभक्ति देख कर्तव्यविमूढ़ पत्थर की प्रतिमासम मुग्ध हो अपनी दुर्बुद्धि पर रोने लगे। हरदेवसिंह जी वहां से रसोई का विष-पूरित शेष भोजन उठवा लाये और उन्होंने अपनी दशा का अन्तिम समाचार अपने मित्रों, सेवकों और कर्मचारियों से कहा, उनमें से कितनेही हर-देव सिंह जी के सद्गुणों से ऐसे अनुरक्त थे जो उनके साथ ही चलने को उद्यत हो गए और बहुतों ने वही विषपूरित भोजन पा लिया। हरदेव सिंह जी के प्यारे हाथी घोड़े को भी वही भोजन खिलाया गया। हरदेव सिंह जी अपनी बैठक के बँगले में बैठ गए। प्रेमरस पीनेहारे थोड़ी देर में झूम झूम गिरने लगे। हरदेव सिंह जी अपनी सेना के अग्रणियों का स्वर्गमार्ग में बढ़ना देखते ही देखते स्वयम् भी झूमने लगे। अन्तकाल-रूपी अश्व इनके लिये प्रस्तुत होने लगा। जब विष की तरंगों की उमंगें आपके शरीर में उठने लगीं, तब आप बाटिका के बँगले से उठ एक पत्थर के टुकड़े पर, जो रघुनाथ जी के मन्दिर के आँगन में ठीक मूर्ति के सम्मुख गड़ा है, मर्य्यादापुरुषोत्तम की मूर्त्ति के सम्मुख हाथ जोड़ आ बैठे और ध्याना-वस्थित आंखें किए प्रेमपूर्ण लड़खड़ाती वाणी से त्रैतापहारी अवधबिहारी से अपने पापों की क्षमा और उनकी दया की भिक्षा मांगने लगे और थोड़ीही देर में वहीं समाधिस्थ हो अटल निद्रा में ब्रह्मानन्द के स्वप्नों के दृश्य देखने लगे। महाराज हरदेव सिंह उसी समय से प्रख्यात हरदेव लाल के नाम से विशूचिका के दिनों में पुजने लगे। इनके चौतरे समस्त भारतवर्ष में ठौर ठौर बने हुए हैं। हरदेवसिंह जी की मृत्यु के पीछे समस्त ओड़छे में उदासी छागई। राजा के इस जघन्य कर्म की निन्दा सजातीय और विजातीय सब लोग करने लगे और ऐसे अविवेकी महाराज के साथ को सर्वदा भय-प्रद जानकर उनसे सम्बन्ध तोड़ बैठे। सम्बन्धियों ने भी महाराज से नाता तोड़ा। ओड़छे के लिये यह बड़े अभाग्य का दिन था। हमें इस बँगले के देखते ही वह दिन और दृश्य स्मरण आगया और अविवेक का जो अन्तिम फल होता है वह आंखों के सम्मुख घूमने लगा। यहां से चल हम चौक में पहुंचे।

रघुनाथजी का मन्दिर

यह चौक महाराज मधुकरसाह के स्वयं रहने का है। सुनते हैं कि पहिले यह राजमन्दिर था। इस-के द्वार पर बड़े बड़े खण्डहर पड़े हैं। न जाने ओड़छाधीश ऐसे देवस्थान के द्वार को ऐसा अरक्ष्य रहने देना क्यों उचित समझते हैं। द्वार से यह स्थान बहुत दिव्य नहीं प्रतीत होता। एक मालिन चौखट के निकट बैठी यात्रियों के हाथ फूल मालादि बेचा करती है। अन्दर प्रवेश करते ही बड़ी बड़ी उत्तुङ्ग दुहरी दालानें, कोठे, आदि जो राज्यमन्दिर के समीचीन हैं, देख पड़ेंगे। इस मन्दिर का आंगन वर्गाकार बहुत बड़ा है। आंगन में तुलसी के वृक्ष के निकट वह पत्थर गड़ा है जहां राजकुमार हरदेव सिंह ने अपने अन्त समय में बैठकर रघुनाथ जी के दर्शन करते हुए अन्तिम स्वांस ली थी। उसीके निकट वह तीन प्याले गड़े हैं जिनमें हरदेव सिंह जी के भोजनों में मिलाने को विष घोला गया था। हा हन्त ! वह विष हरदेव सिंह ही का घातक न था, किन्तु ओड़छे के राजवंश की सुकीर्ति का भी घातक हुआ। आजतक वे प्याले हमें कुल कलह के अनिष्ट फल का स्मरण दिलाते हैं। इसके सामने एक बड़ा लम्बा चौतरा है। इसपर एक बड़ी दालान तीन खण्ड की है। ऐसी ही दालानें चारों ओर हैं। यह दालान कांच, बर्तन, गोले और चित्रों से अलङ्कृत है। इसी दालान के भीतर राघवेन्द्र की मनोहर प्रतिमा है। महाराज मधुकरसाह के राजप्रासाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का देवालय हो जाना भी एक ऐतिहासिक सम्वाद है। पाठक महानुभावो! कहते हैं कि महाराज मधुकरसाह की राजमहिषी महाराणी गणेश देवी ने एक बार एक विचित्र स्वप्न देखा। जब महाराणी अपने शयनागार में पुष्पशय्या पर एक निशा स्वस्थ और शान्तभाव से सो रहीं थीं, तब उन्हें अकस्मात् एक श्यामल बालक, जिसकी दैवी छवि थी, देख पड़ा। महाराणी ने देखा कि वह बालक खेलते खेलते एक अगाध सरिता में निमग्न हो गया और वहां से बड़ी मधुर बाल-वाणी में पुकार कर महाराणी से कहने लगा कि रानी! मुझे लीजिए। यह स्वप्न देखते ही महाराणी चौंक पड़ीं। अर्धनिद्रित दशा में ऐसी विव्हल हो उठीं कि उस बालक को लेने के लिये उठ खड़ी हुईं और जब ध्यान आया कि वह तो स्वप्न था, तभी वहीं मुग्धभाव से खड़ी हो रहीं। परन्तु इसी क्षण से उस धर्मधुरीणा दयाशीला महाराणी के हृदय में वह बालछवि बस गई। रात दिन सोते जागते, उठते बैठते, चलते फिरते, वही बालक उनकी आंखों के सम्मुख फिरने लगा। महाराणी की तन दशा भी बदलने लगी और चिन्ता से शरीर भी कृशत हो गया। होते होते इस स्वप्न का वृत्तान्त महाराज तक पहुंचा। महाराज ने राजपण्डितों से इसका मर्म पूछा। उन दीर्घदर्शियों ने विचार कर एकमत हो उत्तर दिया कि दीनबन्धु! ऐसा ज्ञात होता है कि कोई देवमूर्ति किसी दुर्घटनावश किसी जलाशय में पड़ गई है और महाराणी को धर्मधुरीणा जान अपने उद्धारार्थ आदेश कर रही है। रानी ने भी इस उत्तर से सहमत हो महाराज से तीर्थयात्रा की आज्ञा चाही। महाराज ने सहर्ष आज्ञा दी और यात्रा का प्रबन्ध कर दिया। महाराणी गणेशदेवी ने यह नियम किया कि जब वह किसी तीर्थ में पहुंचती थीं, तो यथाविधि देवाराधन कर जलाशय में स्नानार्थ प्रवेश करतीं थीं और यह कह कर कि "महाराज! आइए, मैं सेवा को प्रस्तुत हूं", जलाशय में डुबकी लगातीं थीं, और जब कुछ हाथ न आता था तो खिन्न बदन वहां से प्रस्थान करती थीं। महाराणी सब तीर्थों में हो आईं, केवल अयोध्या शेष रह गई। महाराणी का नैराश्य बढ़ता जाता था। होते होते वह अयोध्या में पहुंचीं और यह दृढ़ संकल्प कर कि, यदि यहां भी मेरी आशा पूर्ण न हुई तो इस पापपुंज शरीर की जर्जिरित नौका को सरयू के अंक ही में समर्पण करूंगी, ज्योंही महारानी ने स्वर्ग-द्वार के निकट सरयू में प्रवेश किया और कातर हो भवभयहारी श्री अवधविहारी की शरणाश्रित हुईं, त्योंहीं "जेहि को जेहि पर सत्य सनेहू-सो तेहि मिलहि न कुछ संदेहू" के न्याय से जल से बुड़की मार के निकलते हुए ही एक दिव्य प्रतिमा उनके हाथों में अपने आप ही आगई। महाराणी ने अपनी खोई हुई निधि फिर से पाई और मारे आनन्द के गद्गद हो उठीं और तुरत जल से बाहर निकल आईं। यहां पर यह स्मरण रखना योग्य है कि श्रीमती को यह मूर्ति पुष्य नक्षत्र में मिली थी, इसीसे उन्होंने यह विचार स्थिर किया कि केवल पुष्य नक्षत्र में ही देवमूर्ति की यात्रा कराई जावे। अस्तु वह पुष्य ही पुष्य नक्षत्र में अयोध्या से चलकर ओड़छे पहुंचीं और अपने राजमन्दिर में उन्हें स्थापन कर आप दूसरे चौक में निवास करने लगीं और अहिर्निश भगवान की सेवा में तत्पर रहने लगीं। इस मन्दिर में स्थापित श्रीरघुनाथजी की विशाल मूर्ति दर्शनीय है। उसका सौन्दर्य वर्णन करते हुए "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" की ही कहावत होती है।

चतुर्भुज जी का मन्दिर

रघुनाथ जी के मन्दिर के सन्निकट ही यह विशाल मन्दिर है। इसका बहुत कुछ वर्णन हम आगे कर आए हैं, इसलिये इसका अधिक वर्णन यहां पर न कर इतना ही लिखना उचित समझते हैं कि बुंदेलखण्ड भर में यह मन्दिर अद्वितीय है और इसकी सीढ़ियों के प्रस्तरों पर ठौर ठौर शिलालेख हैं; ओड़छे की ऐतिहासिक घटनाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगभूमि इसी मन्दिर के चतुर्दिक विस्तृत है; परन्तु न जाने क्यों महाराज ओड़छाधिपति की इस मन्दिर पर अधिक प्रीति नहीं है, क्योंकि यह स्वर्गीय स्थान बहुत मन्द और ऊभट दशा में डाल रक्खा गया है। इस स्थान के उपयुक्त यहां कुछ सामान नहीं है। ओड़छे के पूर्व प्रातस्मरणीय महाराजों के ऐसे बड़े स्मारक के ऐसी अशोभित दशा में पड़े रहने से हमारी समझ में उन महानुभावों की आत्मा स्वर्गलोक में अवश्य दुःखी होती होंगी। यशस्वी महाराज टीकमगढ़ को इस ओर अवश्य ध्यान देना योग्य है।

किला

यहां से चल वेतवा नदी की एक बाहु पर के पुल पर से होकर हम महाराज वीरसिंहदेव के किले के द्वार पर पहुंचे। इस समय हमें यह सुधि नहीं रही थी कि हम चैतन्य अवस्था में हैं और कुछ दृश्य आखों के सम्मुख देख रहे हैं, अथवा निद्रित दशा में कुछ स्वप्न देख रहे हैं, या अनायास किसी देवलोक में आ गए हैं और वहां के दृश्य देख रहे हैं, अथवा किसी महान कवि की कविता में वर्णित किसी दृश्य का अनुभव कर रहे हैं। बहुत देर तक हम प्रतिमावत् उसी स्थान पर खड़े रहे और भौचकवत् देखा किए। न पग आगे पड़ता था न पीछे ही हटा जाता था। अपने पूज्य भ्राता श्रीयुत बाबू मुन्नूलाल जी के अनुरोध करने से कुछ अपनी चैतन्य दशा का स्मरण आ गया। किले के द्वार से प्रवेश कर सबसे प्रथम जनहीन जहांगीरपुर नामक मन्दिर में प्रवेश किया। यह राजप्रासाद मुगल सम्राट जहांगीर के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि जहांगीर जब अपने घनिष्ट मित्र वीरसिंह देव जू के अतिथि हुए थे, तब वह इसी राजप्रासाद में ठहराए गए थे। इसी मन्दिर को शीशभवन भी कहते हैं। बहुत ऊंची बैठक पर यह विस्तृत राजमन्दिर तीन खण्ड ऊंचा बना है। इसका आँगन बहुत स्वच्छ और लम्बा चौड़ा है। लाल पत्थर की सीढ़ियां तीनों खण्डों में लगी हुई हैं। मन्दिर का आकार वर्गक्षेत्र का है। प्रत्येक खण्ड में चौड़ी चौड़ी खुली छतें और उनके समानान्तर बन्द कमरे, जिनमें खिड़की, झरोखे, गौखे हैं, बने हुए हैं तीसरा खण्ड भी ऐसा ही है। उसपर के कलश और कंगूरे तथा गुमजियों की सुराहियां मीने के काम से अलङ्कृत हैं। इसीके चतुर्दिक किले की दीवारें मीलों तक फैली चली गई हैं। यह राजप्रासाद इतना विस्तृत है कि उसमें घूमने से और सीढ़ियों पर चढ़ने से बलवान मनुष्य भी थक जाते हैं। इसके दूसरी ओर एक फाटक है जो रनवास का द्वार था और सिंहपौर के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि प्रेतयज्ञ की बीभत्स चर्चा पहिले पहल उसीके सन्निकट किसी मन्दिर में उठी थी। इस अनुपम राजमन्दिर की छत पर से समस्त ओड़छा हथेली पर की रक्खी हुई वस्तु के समान देख पड़ता है। अपने पदों के नीचेही किले की दिवारों के भीतर उगा हुआ भयानक बन, राजकर्मचारियों के मन्दिरों के चिन्ह, कुए, बावली, व्यासपुराके खण्डहर भूमितल पर सफेद पगड़ी की भांति फैली हुई वेत्रवती की पीनधारा, मन्दिरों और समाधियों की पांतें, नगर के ऊजड़ चिन्ह, ओड़छे के निर्जन मार्ग, और वृक्षों पर लंगूरों और बन्दरों तथा पक्षियों के समूह, और भिटारों के निकट स्यार दृष्टि आते हैं। इसके अतिरिक्त केवल निस्तब्धता ही निस्तब्धता बरसती है। हाय, दुष्ट काल! तेरे विचित्र चरित्र हैं! एक दिन वह था जब इसी राजमन्दिर के दीपावली के सम्मुख नक्षत्रावली तुच्छ जान पड़ती थी; सोने और चांदी की शमेदानों में कपूरी बत्तियां जलती थीं; मखमल और अतलस की ज़रीज़ी मसनदें बिछी रहती थीं; वीणा की झंकार, मृदङ्ग की धमक, और कोकिल कण्ठ विनिन्दन कलगान, राजमहिषी राजकुमार, परिचारिका, बन्दी, मागध और सूतगणों के कौतूहल से घनघोर नाद मचा रहता था;—रमणीयता से जहां की भूमि सदा सिंचित रहती थी, बड़े बड़े मान्य पुरुष जिसको देखने को तरसते थे,—हा शोक, आज हमें उस राजमन्दिर को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्दशा में देखना पड़ा कि न वहां एक दीपक जलानेहारा कोई था, न झाड़ू देनेहारा; सैकड़ों मन लंगूरों की विष्ठा छत और कमरों में भरी पड़ी थी। एक कमरे में एक उलूक बैठा हुआ देख पड़ा, जो हमारी आहट पाते ही पङ्ख फटफटा कर उड़ा। परन्तु फिर गिर पड़ा। यह दशा देख अश्रुधारा पुनः बहने लगी। फार्सी कवि का एक वचन स्मरण हो आया।

"पर्देदारी मी कुनद बर काख़ किसरा अनकबूत—
चुग्द नौबत मीज़नद बर गुम्बदे अफ़रासियाब"॥

अर्थात्, किसरा ऐसे बली सम्राट के राजमन्दिर में अब दिनों के फेर से मकड़ियों ने जाले तान रक्खे हैं, और अफ़रासियाब से बली की समाधिमन्दिर पर उल्लू बोल रहे हैं। यह मन्दिर ऐसा दृढ़ बना है कि ऐसी, मन्द दशा में छोड़ दिए जाने पर भी कहीं कुछ टूटा फूटा नहीं है; हां, कहीं कहीं एक दो गोखों में से पत्थर शिलाएं गिर गई हैं। शोक कि धनी ओड़छाधीश ने उसे भी नहीं सुधराया! यहां से चलकर हम इसीसे मिले हुए राजमन्दिर नामक महल में पहुंचे। इसके द्वार पर दर्बार हाल बहुत सुन्दर सुडौल तिहरी दालान का बना है। इसकी छत में सुनहला और रङ्गीन काम है। ओड़छे के बड़े बड़े दर्बार और राजतिलक के उत्सवादि इसीमें होते थे। इसे देखते ही महाराज वीरसिंह देव जू के प्रबल प्रताप और आतङ्क का चित्र आंखों के सम्मुख घूम जाता है। राज्यसिंहासन के लिये एक ऊंचा चबूतरा सा अलग बना है। भारत के गौरव, मान्यपुरूषों, आर्य-कुल-कमल भास्करों के पवित्र राजसभामण्डप में यद्यपि अब न सिहासन है न राजगद्दी, तद्यपि हमने उसे पवित्र और मान्य ठौर जान कर नम्रभाव से सच्चे राजभक्त की भांति उसमें प्रवेश किया और उसका समुचित मान कर राज्यमन्दिर में प्रवेश किया। इस मन्दिर में बहुधा टीकमगढ़ नरेश ठहरते हैं। जहांगीरपुर की भांति यह राजमन्दिर भी बड़ा ही विस्तृत और सुन्दर बना है, परन्तु इसमें मीने का काम नहीं है। हां, दीवारों पर और छतों में अद्भुत चित्रकारी अवश्य है और ठौर ठौर शीशे भी जड़े हैं। इसकी स्वच्छता भी जहांगीरपुर से अधिक है। यह किले के फाटक से मिला हुआ है। बेत्रवती इसके बहुत ही निकट बही है। महाराज ने इसमें ऐसे झरोखे बनाए हैं जहां से बैठकर वह श्री चतुर्भुज देव की मूर्ति का मन्दिर के भीतर ही होते हुए सेज से सिर उठाते ही दर्शन कर सकते थे। नीचे का खण्ड इस मन्दिर का कुछ अधिक मलीन हो गया है, परन्तु ऊपर की भीतें बहुत स्वच्छ हैं; और ऐसा जान पड़ता है मानों कारीगरों ने अभी बनाकर काम छोड़ा है। महाराज को यह राजमन्दिर सुनते हैं कि बहुत प्रिय है; तबभी हम यह कहे बिना नहीं रहेंगे कि इस मन्दिर के योग्य इसमें सजावट का नाम भी नहीं है; क्योंकि जहां कहीं सुनहरी बेलें खंडित हो गई हैं, वहां चूना पोत दिया गया है, जो ऐसा जान पड़ता है मानो कमख़ाब के बस्त्र में गाढ़े का पैबंद हो। उदास भाव से इस राजमन्दिर को छोड़ हम किले के एक चबूतरे पर के रक्खे हुए तोपखाने को देखने गए। वह भी दुर्दशा में पड़ा था। कई तोपें भूमि पर पड़ी हैं, किसी के चर्ख के पहिए टूटे हैं, किसीमें रंज का ताल पुर गया है। दुःखावसन्न "सब दिन जात न एक समान" कहते हुए मार्ग-त्रिशूल की दो धारों पर चल आहत होते हुए भी प्रेमविवश हम तीसरी धारा पर चले। इसपर चलते ही हमें कवीन्द्र केशवदास जी के व्यासपुरे के खंडहर देख पड़े। ये खंडहर न थे, किन्तु उन पूर्वजों की, जिनके नाम से अब भी हमारे देश, जाति और साहित्य का गौरव है, हमें बिखरी हुई और पगमर्दित होती हुई अस्थि प्रतीत होती थी, जिनसे हम निर्लज्ज हिन्दूसन्तानों के मुख में कलंक की कालिमा पुतती जान पड़ती थी। धन्य है विद्या-बिलासी इंगलैंड! जहां के लोग आज पर्य्यन्त शेक्सपियर की कुर्सी और मिल्टन के घर को देखने सैकड़ों कोस जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और एक तुच्छ चिन्ह तक को प्राणवत् प्रिय जान सुरक्षित रखते हैं; और धिक्, शत धिक्, और सहस्र धिक् है हम हिन्दू सन्तानों को जो अपने देश के गौरवही नहीं किन्तु अपने ही पूर्वजों के स्मारक बनाने की चर्चा कौन चलावे, स्वयम् उनके चिन्हों को, जिनमें हमारा कुछ व्यय भी नहीं हुआ, नाश होने देते हैं, और उसका गौरव नहीं करते। कहते हैं कि इसी व्यासपुरे में कवीन्द्र केशवदास जी का घर था जिसके खंडहर अद्यापि हमें रुलाते हैं। इसीके पास चतुर्भुज जी के मन्दिर के द्वार के निकट एक पीपल का वृक्ष, तथा हनूमान जी की एक छोटी सी मूर्ति है। कवीन्द्र उसी मूर्ति का पूजन करते थे और ऐसा लोगों का कथन है कि प्रेतयोनि में कविवर ने उसी पीपल के वृक्ष पर निवास किया था और भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी से वहीं भेंट कर उन्हें रामचंद्रिका सुनाई थी। इस चर्चा को सुन हमें रोमांच होता था। इसी स्थान के निकट कवीन्द्र के साथ प्रेत यज्ञ में भस्मीभूत होनेहारे प्रसिद्ध प्रेत बारेलला के मकान के खंडहर हैं। लोगों का विश्वास है कि बारे लला अबतक प्रेतरूप में वहां निवास करता और लोगों को अपनी रुचि और उनके विश्वासानुसार सुख दुख देता है। साहित्यप्रेमियों के देखने ही के योग्य यह स्थान है। अनित्य संसार का यह दृश्य भी देख कर हम आगे बढ़े।

बेतवा का तट, घाट, छतरी

इस समय ग्रहपति का तेज मन्द हो रहा था, विश्रामार्थ वह अस्ताचल की ओर प्रबल वेग से परिधावित थे। अन्धकार का समावेश हो रहा था। धुन्ध बढ़ती जाती थी। पवन का वेग घट गया था, जिससे न वनवृक्षों के पत्र ही खड़खड़ाते थे, न नदी में तरङ्गमाला ही उठ रही थी। तरङ्गमाला का क्या कहना, नदी की धारा तक रुकी जान पड़ती थी। जिधर देखो उधर सांय सांय हो रहा था। यह क्यों? पाठको! यहां ऐसाही होना योग्य था; क्योंकि यहां पर साधारण लोग नहीं, किन्तु वीर, धर्मात्मा, और आर्यकुल के गौरव, प्रातस्मरणीय, प्रतापवान राजा महाराज अपने आयुष और कर्तव्यों की यात्रा पूर्ण कर अटल निद्रा में निद्रित पड़े सो रहे हैं। ऐसे वीरों को निद्रित देख प्रकृति का भी हियाव नहीं पड़ता कि वहां कोलाहल करे, उनकी निद्रा छुटावे। अस्तु, वह भी वहां इस समय निस्तब्ध हो रही थी और हमें वहां का चित्र दिखा यह शिक्षा दे रही थी कि, संसार के चरित्रों को देख मौनधारण करो, बोलने से कुछ कार्य्य साधन नहीं होने का; क्योंकि इसकी यात्रा का अन्तिम फल मौन ही है। अन्यथा यह कब सम्भव था कि जिन महाराजाओं के आतङ्क से दिग्गज थर्राते थे, उनकी अन्तिम शय्या की यह दुर्दशा हो कि उन्हींका समाधि-मन्दिर तक पूरा न बने। महाराज मधुरकुरसाह की छतरी जलमग्न हो जावे, और कोई उसका उद्धार भी न करे। जिन वीरकेशरी वीरसिंह देव के विमल यश से राजपूत वंश का मुख उज्वल है, उन्हींकी अस्थियों की समाधि पर करोड़ों मन नदी की बालू और सड़े गले दुर्गन्धित पदार्थ पड़े हैं। जिनके उत्तुङ्ग शिखरमय गगनपथ-भेदी राजमन्दिरों पर पवन के भी आसन नहीं जम पाते थे, उन्हींकी अपूर्ण समाधि-शिखर पर कटीली घास उग रही हैं, कौवे, चील, गीध और उलूकों ने अपने घोंसले बनाए हैं। जिनके यश से आर्यावर्त आज प्रकाशित हो रहा है, जिनके बाहुबल के उपार्जित राज्य की आय से आज लाखों घरों में दीपावली होती है और साधारण उत्सवों में लाखों रुपए विदेशीय लोगों को प्रसन्न करने के लिये आतशबाज़ी में फूंक दिए जाते हैं, हाय शोक, आज समय के फेर से उन्हीं महाराज बीरसिंहदेव की समाधि में कोई एक दिया भी बालनेवाला और झाड़ू लगानेवाला नहीं है। न किसीमें इतनी पितृभक्ति है कि उस अधूरे समाधि-मन्दिर को पूरा कर दे। दिनों का फेर यही है। इस दशा को देखकर प्रकृति के अनुकूल ही वहां मौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करना पड़ा; दुःख और विमूढ़तावश कंठावरोधन सा हो आया; आंख भरकर यह चित्र देख तुंगारण्य होते हुए महाराज सामन्तसिंह और महाराणी हिमञ्चल कुंवरि की अरक्षित खण्डित मूर्त्तियों का दर्शन करते हुए, इस स्मशान भूमि में चित्त की उमंगों की भी दाहक्रिया कर दीपक जलते समय मलिन चित्त से वेत्रवती के निर्मल जल का आचमन कर कालदेव को प्रणाम करते हुए झाँसी की ओर लौट चले।

बाबू कृष्णबलदेव वर्मा

बाणभट्ट

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

चन्द्रापीड़ का विद्याध्ययन पूर्ण होजाने पर उनके पिता उन्हें उज्जयिनी को लौटा लाए और उन्हें युवराजपदाभिषिक्त करना विचारा। तब एक दिन उनके पिता के मन्त्री शुकनास ने उन्हें उस प्रसंगानुकूल उचित उपदेश प्रदान किया। यह उपदेश सामान्य पुस्तक के साठ दश पृष्ठों में समाविष्ट हो सके इतना है। इसमें तारुण्य, राजलक्ष्मी, ठकुरसोहाती करनेवाले नरपिशाच एवं धूर्त लोग आदि द्वारा राजपुत्रों को जो अनर्थकारक आपत्ति होती हैं, उनका कविसंप्रदायानुरूप अलंकारिक वर्णन किया है। इस स्थल पर बाण कवि ने अपने शब्दार्थ के अक्षय कोश को पूर्ण रूप से प्रगट किया है। इसमें से राजलक्ष्मी के वर्णन को हम अपने रसिक पाठकों के पठनार्थ यहां पर उद्धृत करते हैं—

"आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्.....चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति"।

चन्द्रापीड़ के दिग्विजयार्थ प्रस्थित होने पर उसके सैन्य की पदरज उड़ी थी। उसकावर्णन नीचे उद्धृत किया जाता है—

शनैः शनैश्च बलसंक्षोभजन्मा क्षितेरनेकवर्णतया कचिज्जीर्णशफरक्रोड़धूम्रः ..... विस्तारमुपगन्तुमारेभे।

उक्त वर्णनप्रधान संग्रहों को पढ़ अपने कवि की वर्णन करने की शैली, श्लेष, उत्प्रेक्षा प्रभृति अलङ्कार चमत्कृति आदि की कल्पना हमारे पाठकों के चित्त में बहुत कुछ आ गई होगी। अब भिन्न प्रकार के दो संग्रह और उद्धृत कर इस लेख को शेष करते हैं।

महाश्वेता के उक्त दुःख वृतान्त को सुन कादम्बरी ने यह निश्चय कर लिया था कि यावत्काल पर्य्यन्त महाश्वेता पतिविरहित रहेगी, तावत् काल पर्य्यन्त मैं विवाह कदापि न करूंगी। उसके इस हठ से उसके चित्त को हटाने के लिये उसके माता पिता ने पराकाष्ठा की, पर उसने एक न सुनी। अन्त में उन लोगों ने महाश्वेता को ही यह सन्देसा भेजा कि तू भी तो कुछ कह सुन कर उसे अनुकूल कर। उन के आज्ञानुसार उसने अपनी सखी तरलिका को उसके पास भेजा था, सो उसके साथ वहां से आया हुआ वीणावादक केयूरक कादम्बरी को सन्देसा कहता है।

"भर्त्तिदारिके! महाश्वेता देवी कादम्बरी दृढ़दत्तकण्ठग्रहा त्वां विज्ञापयति.....स्वन्येऽपि पुनरिममर्थं मनसि इत्याभिधाय तूष्णीमभूत्॥

उक्त संग्रह की स्वतन्त्ररूप से यहां पर प्रशंसा करनी अनावश्यक है। यहां पर हमारे कवि ने कथा की नायिका का पाठकों को किञ्चित् परिचय दे उसको गम्भीरता, उदारता, स्नेहशीलता, चतुरता आदि गुण प्रदर्शित किए हैं। इन सबका पाठकों के चित्त पर ऐसा कुछ प्रबल संस्कार होता है कि अगला वृत्तान्त पढ़ने के लिये उनका मन अतीव उत्कण्ठित होता है।

उक्त समस्त संग्रह 'कादम्बरी' के पूर्वार्द्ध के ही हैं, अर्थात् स्वयं बाण कवि लिखित हैं। अब यह अन्तिम मात्र तत्पुत्र लिखित उत्तरार्द्ध से उद्धृत किया जाता है। अकेले इसीको पढ़ उसकी कवित्व शक्ति और पूर्वार्द्ध पूर्ण करने की योग्यता का पाठकगण अनुमान कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा के आदि का तोता चन्द्रापीड़ का पूर्व जन्म का मित्र अर्थात् मन्त्री शुकनास का पुत्र, वैशम्पायन था। दिग्विजयार्थ निकली हुई सेना चन्द्रापीड़ का पता लगाते लगाते जब महाश्वेता के आश्रम के पास पहुंची थी, तब वह भी उसके साथ में था। इसके अनन्तर एक बड़ी विलक्षण घटना हुई है, वैसी बहुधा कहीं भी * न हुई होगी। वैशम्पायन पूर्व जन्म का ऋषिकुमार पुण्डरीक था। अतः पूर्व जन्म में जहां पर महाश्वेता के साथ उसकी शृङ्गारलीला हुई थी, वहीं पर कर्म्म धर्म्म-संयोग से वह पुनः आगया। उस समय एक दिन ऐसा हुआ कि

अन्यस्मिन्नहनि आहतायां प्रयाणभेर्य्यां सज्जी क्रियमाणे.....

चक्षुषा लतामण्डपमालोकितवान्।

उसे सहसा ऐसी अवस्था को प्राप्त होते देख सैन्य के लोग आश्चर्य्य चकित हो रहे। अनन्तर उन लोगों ने वहां से निकल आने के लिये उससे बहुत अनुरोध किया, सबने उसकी प्रार्थना की, और अन्त में निर्भर्त्सना भी की। तौभी वहां से उठने तक का उसे विचार न हुआ। अन्त में वह उन्हें कहता है —

"किमहमेतावदपि न वेद्मि यदुगमनाय मां भवन्तः प्रतिबोधयन्ति.....लतागहने पुनरुपविश्य तस्थौ।"

उक्त लताभवन का वर्णन कितना रमणीक है! साथही वहां पर वैशंपायन के मन में पूर्व जन्म के बिरह वृत्तन्त का किञ्चित्स्मरण अस्पष्ट रूपसे उद्भूत * हो उसकी चित्तवृत्ति में अचानचक जो विकार उत्पन्न हो गया, उसका और उस समस्त घटना का उक्त वर्णन पढ़ती बार मन तल्लीन हो उसकी वृत्ति कैसी विलक्षण हो जाती है। वर्त्तमान घटना कोई सामान्य नहीं है। यहां पर समस्त कथानक का रुख फिर कर चिरकाल के अनन्तर आदि की कथाभाग का यथार्थ रूप किंचित् दृष्टिगत होने लगता है। एतावता इसे बड़ी चतुराई से निबाह ले जाने के लिये मूल कवि की ही शक्ति अपेक्षित थी। पूर्वार्द्ध रचयिता ने वर्त्तमान स्थान पर सर्वथा उसीको प्रगटित किया है।

हम समझते हैं कि बाणभट्ट के विषय में लिखने योग्य अब और कोई विशेष बात शेष नहीं रही। तौभी अपने कवि से विदाई के प्रार्थी होने के पूर्व उसपर आता सा देख पड़नेवाले एक मद्दोषारोप का यहां पर निर्णय करदेना आवश्यक बोध होता है। जिन विदेशी लोगों को संस्कृत कविता का अच्छा सा परिचय नहीं है, और जिन्हें उसके प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं है, वा शक्ति नहीं है, अथवा दोनों नहीं हैं, ऐसे एतद्देशीय अनन्यशरण संस्कृतज्ञ लोग उक्त ग्रन्थों के अन्तर्गत बहुतेरे वर्णनों को पढ़ उन्हें बड़े विलक्षण एवं विचित्र कहा सुना करते हैं। पर वे लोग यह बात नहीं विचारते कि दो भिन्न जातियों और सम्प्रदाय परस्पर में अत्यन्त समता रखनेवाले कदापि नहीं पाए जाते; और उनका वैसा पाया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि मनोधर्मों की विभिन्नता जैसी व्यक्तिगत दृष्टिपथ में आती है, वैसी

* इसका कारण स्पष्ट ही है कि पुनर्जन्म का प्रतिपादन केवल हिन्दूधर्म में ही पाया जाता है। योरोप खण्ड में पैथागोरियन लोगों को छोड़ इस मत को कोई नहीं मानता। इस धर्म की हिन्दू लोगों के साथ एक और भी विलक्षण समता पाई जाती है। वह मांसाहार-निषेध विषयक है।

* अनुमान होता है कि इस विचित्र घटना की कल्पना को बाणभट्ट ने 'शकुन्तला' से अनुकृत किया है। उस नाटक के पांचवें अङ्क के प्रारम्भ में एक मधुर गीत सुनकर बिना कारण राजा का अन्तःकरण (उसके मतानुसार) अत्यन्त विरहोत्कंठित हुआ। यह क्या है ऐसा सन्देह कर यह कहता है-रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः। तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वं भाव स्थिराणि जननांतर सौहृदानि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उसकी स्थिति जाति में भी अवश्य पाई जानी चाहिए। ऐसी अवस्था में अत्यन्त भिन्नजातीय अंगरेज़ादि लोगों के काव्यसम्प्रदाय का संस्कृत के काव्यसम्प्रदाय से सर्वथा कैसे मेल मिल सकता है! अतः उभय लोगों को उचित है कि देश, काल, और आचार विचारादि के अनुसार परस्पर के यथार्थ रूप का बोध प्राप्त करने के हेतु बुद्धिमानी एवं निष्कपटता पूर्वक यत्न करें। ऐसा करने में कदाचित् हम हार जांय और हमें नीचे देखने की बारी आ जाय, ऐसी शंका कदापि न करनी चाहिए।

यहां पर यह लिखने पर उत्साह होता है कि एतद्विषय में इतना दृढ़ विश्वास होने का कारण विशाल बुद्धि एवं उदारचेता अंगरेज़ पण्डितों के लिखे हुए लेख ही हुए हैं। अस्तु; यह सब समस्त संस्कृत कवियों के विषय में कहा गया। पर बाण कवि जैसे उपन्यास लेखक के पक्ष में अभी और भी एक बात पाठकों को सूचित करने योग्य है। वह यह कि उक्त ग्रन्थ में वस्तुतः वस्तुस्थिति का विरोध करनेवाली अनेक बातें वर्णित की गई हैं—जैसे हंसादिकों का कादम्बरी के महल में परिचितों की नाईं रहना, उसके अन्यत्र चले जाने पर तन्मुखसुगन्ध प्राप्त्यर्थ भ्रमरों का चेष्टा करना, शबरों के सेनापति का अनेकानेक पक्षियों का बध कर पल्लवासनासीन हो कमललता-पत्र-निर्म्मित पात्र द्वारा जलपान करना, कमल के शुभ्र डंठों को ही खाकर रहना, इत्यादि। पर इन सब कारणों के योग से उक्त ग्रन्थ को सदोष निश्चित करने के पूर्व, गुण दोष विवेचकों का अभिमान धारण करनेवालों को सोचना चाहिए कि बाण कवि का उद्देश्य इतिहास लिखने का न था, किन्तु कल्पित एवं अनोखी कथा लिखने का था; एतावता उसकी कल्पना निर्म्मित अपूर्व सृष्टि को संसार की व्यवहारिक घटनाओं की दृष्टि से देखना, अरसिकता की पराकाष्ठा और वाग्देवी का उपमर्द करने के तुल्य समझा जायगा।

निरीश्वरवाद

ईश्वर है अथवा नहीं है, इस विषय में बहुत प्राचीन काल से विवाद चला आता है। निरीश्वरताविधायक कई धर्म अद्यावधि अपने देश में भी प्रचलित हैं। ईश्वर के अस्तित्व को न माननेवाले बौद्ध, चार्वाक आदि के अनुयायियों से, शङ्कराचार्य के समय तक, यह भारतवर्ष परिपूरित था। परन्तु आचार्य ने जबसे उनके धर्म का मूलोच्छेद किया तब से ये लोग, विशेषतः बौद्ध, इस देश को परित्याग करके अन्यान्य देशों को चले गए।

बौद्धधर्म के अनुयायी ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। यह धर्म इस समय चीन, जापान, ब्रह्मा और तिब्बत आदि अनेक देशों में सर्वतोभाव से मान्य हो रहा है। इस के अनुयायियों को भी जब हमारे ईश्वरास्तित्वविधायक धर्म्म के सम्मुख हार मान द्वीप द्वीपान्तरों को प्रयाण करना पड़ा, तब अवश्यमेव हमारे धर्म्म में कोई विशेषता है और अवश्यमेव ईश्वर का होना उसके न होने से अधिक योग्यता के साथ सिद्ध किया जा सकता है, यही मानना पड़ता। तथापि, आज, हम निरीश्वरवाद के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं।

३—"यह ब्रह्माण्ड स्वयमेव उत्पन्न हुआ है; इसका कर्त्ता कोई नहीं" यह निरीश्वरवादियों का कथन है। "ईश्वर है अथवा नहीं, यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता" यह सन्देहवादियों का कथन है। "यह समग्रसृष्टि एक आदि शक्ति से उत्पन्न हुई है, परन्तु अल्पज्ञ मनुष्यों को उस आदिशक्ति के स्वरूपादि का ज्ञान सम्भव नहीं", यह अज्ञेयतावादियों का कथन है। "जब तक यह देह है तभी तक सुख दुःखादि का अनुभव होता है, प्राणोत्क्रमण होने के अनन्तर फिर और कुछ होना शेष नहीं रहता" यह देहात्मतावादियों का कथन है। इन सब मतों में ईश्वर के ऊपर विश्वास नहीं किया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—"नास्तिको वेदनिन्दकः" अर्थात वेद की निन्दा करनेवाले को नास्तिक कहते हैं। महापण्डित अमरसिंह कृत कोश में, 'नास्तिक' शब्द की इस प्रकार व्याख्या की गई है। वेद हमारेही देश के धर्म्म ग्रन्थ हैं, इससे केवल हमी लोग अथवा हमारे ही धर्म्म के अनुयायी उनको मान दे सकते हैं; अन्य देशवाले तथा अन्य धर्मावलम्बी नहीं दे सकते। इस लिये इस भूमण्डल में ईश्वर को न माननेवाले सारे लोगों के विषय में 'नास्तिक' शब्द व्यापक नहीं हो सकता। सब के लिये 'निरीश्वरवादी' इस शब्द का ही प्रयोग करना ठीक है। तस्मात् इस निबन्ध में जहां कहीं आवश्यकता होगी हम इसी शब्द को उपयोग में लावेंगे।

५-हमारे देश के प्राचीन निरीश्वरवादियों के सिद्धान्तों का अब हम दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

६-बृहस्पति के मत का अनुसरण करनेवाले निरीश्वरवादियों के शिरोमणि कोई चार्वाक जी हो गए हैं। इनका यह सिद्धान्त है कि पृथिवी, जल, तेज और वायु के योगही से शरीर में चैतन्य उत्पन्न होता है और वह चैतन्य शरीर के नष्ट अर्थात् उन चारो तत्वों के विश्लेषण होने से नष्ट हो जाता है। ये लोग स्वभावही से जगदुत्पत्ति मानते हैं और स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म, परमात्मा किसी को नहीं मानते। इनके मत में आत्मा न ईश्वर का अंश है, न अमर है, और न कर्म्मजन्य फलही उसे भोगना पड़ता है। चेतनाविशिष्ट देह ही को ये आत्मा कहते है और प्रत्यक्ष प्रमाण को छोड़ अनुमानादि प्रमाणों को प्रमाण ही नहीं मानते। इनके मत में यज्ञानुष्ठान, अग्निहोत्र, जप, तप इत्यादि सब निष्फल है। "अंगनालिङ्गनादि" सुखही सुख है; और जिस प्रकार हो उस प्रकार उसका उपार्जन करना ही परम पुरुषार्थ है। इस मत के प्रवर्तक बृस्पति जी के वचन कई कौतुकावह श्लोकों में सूत्रित हैं, जिन्हें हम सर्वदर्शनसंग्रह से नीचे उद्धृत करते हैं—

* न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ १ ॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदंडं भस्मगुंठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥ २ ॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ ३ ॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥४॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥५॥
यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥६॥

जिस मतवालों की तर्कनाशक्ति इतनी बलवती और विवेकपरम्परा इतनी विशाला थी, उस चार्वाक मत का नाम तक, जो इस समय दो चार दर्शनशास्त्र के जाननेवालों के अतिरिक्त, किसीको विदित नहीं रहा, वह आश्चर्यजनक नहीं।

---

* न स्वर्ग है, न अपवर्ग है, न पारलौकिक आत्मा है और न वर्णाश्रमपरायण मनुष्यों की क्रिया ही किसी प्रकार फल की देनेवाली है।

अग्निहोत्र करना, वेद पढ़ना, त्रिदण्ड सन्यास लेना और भस्म इत्यादि धारण करना निर्बुद्धि और पौरुषहीन आलसी लोगों की जीविका सुख से निर्वाह होने के लिये ब्रह्मा ने बनाया है।

ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारा गया पशु यदि स्वर्ग को जाता है तो यज्ञ करनेवाला यजमान यज्ञ में अपने बापही को क्यों नहीं मार कर उसे स्वर्ग भेज देता?

मरे हुए प्राणियों को भी घर बैठे श्राद्ध करने से यदि तृप्ति हो सकती है तो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने वालों के लिये इस लोक में 'सतुआ' बांधना व्यर्थ है। घर में एक बार श्राद्ध कर देने ही से वर्ष भर के लिये छुट्टी हो जानी चाहिए।

उतनी दूर स्वर्ग में रहनेवाले प्राणियों की भी यदि दान से तृप्ति होनी सम्भव है तो यहां बड़े बड़े ऊंचे घरों के दूसरे तीसरे खण्डों में रहनेवालों की उसी प्रकार दान से तृप्ति क्यों नहीं होती?

जब तक जीवन है सुख से रहना चाहिए, और आवश्यकता होने पर ऋण करके भी दूध मलीदा उड़ाना चाहिए, क्योंकि मरने के अनन्तर भस्म हुए शरीर का इस लोक में पुनरागमन होना किसी प्रकार सम्भव नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान पड़ता है कि इस मत के आचार्य देवगुरु बृहस्पति ही जी हैं और अपनी स्त्री तारा के हरण किए जाने पर दुःखित हो उन्होंने उन्मत्त की नांई प्रलाप रूप यह शास्त्र बनाया है। हमने पण्डितों के मुख से सुना भी है "तारापहारविकलो विकलाप बृहस्पतिः" अर्थात् तारा के अपहरण होने से इस प्रकार बृहस्पति ने विलाप किया है। यह ठीक जान पड़ता है; क्योंकि, लोक में भी स्त्री पुत्रादि के नष्ट होने से लोग विलाप करते हैं और कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं; यदि होता तो हमें इतना दुःख क्यों देता।

७—अपने अपने स्वाभाविक गुणों ही से एकत्र हुए द्रव्यों से संसार उत्पन्न हो जाता है; उसका कर्ता कोई नहीं; यह गौतम बुध के अनुयाई बौद्ध लोगों का मत है। पुनर्जन्म, परलोक और आत्मा चार्वाक नहीं मानते; परन्तु बौद्ध मानते हैं। ये लोग अर्थात् बौद्ध मुक्ति को मानते हैं और जीव के अनादित्व विषय में भी शङ्का नहीं करते। चार्वाक की नांई केवल प्रत्यक्ष ही को नहीं किन्तु अनुमान को भी ये प्रमाण मानते हैं। यही चार्वाक और बौद्ध मत में अन्तर है। परन्तु यह सब माना तो क्या? जैसे घोर निरीश्वरवादी चार्वाक हैं, वैसे ही बौद्ध भी हैं। ये ईश्वर और वेद को नहीं मानते।

बौद्धों की चार शाखाएं हैं। माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। जो कुछ अपनी बुद्धि में सयुक्तिक जान पड़े उसीको मानना और उसीके अनुसार व्यवहार करना बौद्ध लोगों का सिद्धान्त है। "बौद्ध" शब्द का अर्थ भी यही है। चारो प्रकार के बौद्ध सकल भावनाओं को निवृत्ति द्वारा शून्यरूप निर्वाण मानते हैं। इनके मत में संसार क्षणभंगुर और दुःखमय है। इस संसार को क्षणभंगुरत्व और दुःखमयत्वरूपी भावना करके रागादि के नाश होने ही को ये मुक्ति कहते हैं और सब पदार्थों से मन को खींच कर शून्यतत्व का चिन्तन करना मुक्ति का लक्षण बतलाते हैं। संसार को दुःखमय कल्पना करके भी बौद्ध लोग द्वादशायतन पूजा करते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, मिलकर १० तथा ११वां मन और बारहवीं बुद्धि, यही इनके द्वादशायतन हैं। नाना प्रकार को अर्थोपार्जना करके इनको प्रसन्न रखना, अर्थात् खूब खाना, पीना और मस्त रहना इनकी पूजा हुई। डर क्या है, कर्मजन्य फल का देनेवाला ईश्वर तो मानते ही नहीं, फिर चाहे इन्द्रियों की जितनी सेवा करें! इधर तो संसार को दुःखमय भावना करते हैं, उधर अपने क्षणभंगुर शरीर के अन्तर्गत क्षुद्र इन्द्रियों को आनन्दित रखना ही श्रेयस्कर मानते हैं, यह क्या आड़म्बर है कुछ समझ में नहीं आता!

८—बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खंडन मंडन हमारे सनातन धर्म्मावलम्बी आचार्यों ने अनेक स्थल पर किया है, इसलिये इस अवसर पर एतद् विषयक इतनीही चर्चा हम बस समझते हैं। हां, इतना और हमको यहां पर कहदेना चाहिए कि कलकत्तानिवासी बाबू मनोमोहनदत्त, एम० ए०, इस मत को निरीश्वरवादी नहीं बतलाते। एक पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि गौतम बुध अपनेको श्रीकृष्ण की भांति ईश्वर कहता था और आत्मोन्नति के द्वारा अपने समान होकर 'बुध' होजानेही को ईश्वरप्राप्ति अथवा मुक्ति मानता था और इसी प्रकार सबको उपदेश करता था। परन्तु जहां तक हमने देखा है अनेक ग्रन्थकारों ने इस धर्म को निरीश्वरताविधायक ही माना है; इसी लिये हमने भी इसे इस प्रकरण में स्थान देना उचित समझा।

९—जैनधर्म्म बौद्धधर्म्म ही की एक शाखा है। दोनो निरीश्वरवादी हैं। दोनो के सिद्धान प्रायः एकही हैं; जहां कहीं भेद है, बहुत सूक्ष्म है। यह ब्रह्माण्ड आदि और अन्त रहित है; इसका बनानेवाला कोई नहीं; न कभी यह उत्पन्न हुआ और न कभी इसका विनाश होगा—यह जैनियों का मत है। इनके मत में रागादिदोषरहित,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वज्ञ, त्रैलोक्यपूजित, यथार्थवादी, इनका अर्हन-देवही परमेश्वर है। ये कहते हैं कि जिस वस्तु को पूर्णतया अथवा उसके किसी एक भाग को कभी किसीने अपने नेत्र से नहीं देखा, उसका अनुमान भी नहीं हो सकता। इस लिये हमारा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वस्रष्टा जगदीश्वर जब प्रत्यक्ष नहीं देखा गया, तब उसका अनुमान कैसे किया जा सकता है? तस्मात् ईश्वर कोई नहीं।

बौद्ध आकाश, काल, जीव और पुद्गल ये चारही द्रव्य मानते हैं, परन्तु जैनलोग धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ये छ द्रव्य मानते हैं। बौद्धों के समान जैन भी स्याद्वाद और सप्तभङ्गी मानते हैं। यह सप्तभङ्गी और स्याद्वाद तार्किकों के अकाण्ड तांडव के उपयोग में आते हैं, इस लिये यहां पर हम इनके नामोल्लेख मात्रही से सन्तोष करते हैं। "अहिंसा परमो धर्मः" यह इनके धर्म का मूल तत्व है। ये लोग चेतन और जड़ दो ही पदार्थ मानते हैं और उनके विवेचन को विवेक कहते हैं। रागादि का त्याग और यह जगत् किसी के द्वारा निर्मित है, इस प्रकार के अविवेक का नाश, जैन लोग अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं। ये परम ज्योतिः स्वरूप जीवही की भावना को सर्वोपरि मानतेहैं और चेतना विशिष्ट जीव जिसका अंश मात्र है उस सर्व-शक्तिमान् परमात्मा का अस्तित्व तक स्वीकार नहीं करते!

१०—सांख्य दर्शनके अनुसार यद्यपि कोई पृथक् धर्म इस समय नहीं देखा गया, तथापि यह दर्शन निरीश्वरवादी होकर अत्यन्त प्राचीन है और बौद्ध-धर्म इसीके तत्वों का अवलम्बन करके अद्यावधि इस भूगोल के एक तृतीयांश में व्याप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त सांख्य का बीज भारतवर्ष के अनेक संप्रदायों का इस समय भी भित्तिमूलक हो रहा है। इस दर्शन के कर्ता कपिल मुनि हैं।

११—हरिभद्र सूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय में लिखा है "सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वर देवताः", अर्थात् कोई कोई सांख्य मतवाले ईश्वर को मानते हैं और कोई कोई नहीं मानते। परन्तु यह दर्शन विशेषतः निरीश्वर ही के नाम से प्रसिद्ध चला आता है और सांख्य प्रवचन के प्रथमाध्याय का ९२ सूत्र—

ईश्वरासिद्धेः

इसका मूल कारण है। सांख्यकार प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय में लिख रहे हैं और कहते हैं कि—

यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्।
अ० १ सू० ८९

अर्थात् जिसका सम्बन्ध सत् (विद्यमान) पदार्थ से हो और जिससे बुद्धि की वृत्तियों में तदा-कार का ज्ञान हो जाय, उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। इसमें यह संदेह हुआ कि योगिजनों को जो प्रत्यक्ष होता है वह चक्षुरादि इन्द्रियसंयोगजन्य न होकर भी त्रैकालिक पदार्थों का साक्षात्कार रहता है। इस लिये उपर्युक्त लक्षण प्रत्यक्ष का ठीक न हुआ। इसका समाधान अगले सूत्र में यों है—

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षान्न दोषः—अ० १ सू० ९०

अर्थात् कहा गया लक्षण बाह्य प्रत्यक्ष का है; परन्तु योगियों का प्रत्यक्ष बाहर नहीं है; आन्तरिक है; अतः वही लक्षण ठीक है। अब यहां पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि यदि इन्द्रियों का पदार्थों के साथ सम्बन्ध होने ही से प्रत्यक्ष ज्ञान होता हैं, तो ईश्वर का ज्ञान होना कदापि संभव नहीं; क्योंकि उसका किसी इन्द्रिय द्वारा सम्बन्ध नहीं होता, और अनुमान भी उसका नहीं कर सकते, क्योंकि अनु-मान तो उसी का हो सकता है जिसका कभी किसी वस्तु के साथ संयोग हुआ हो। इसपर सूत्रकार "ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र में यह कहते हैं कि पहिले ईश्वर ही सिद्ध नहीं, साक्षात्कार किसका हो सकैगा। प्रमाण द्वारा प्रथमतः ईश्वर का होना सिद्ध कीजिए, तदनंतर हमारे प्रत्यक्ष लक्षण को सदोष ठहराइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र में कही गई ईश्वर की असिद्धि को दृढ़ करनेके लिये इसका अगला सूत्र सूत्रकार ने यों लिखा है—

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः। अ०१ सू०९३

अर्थात् ईश्वर न तो मुक्त ही है और न बद्ध ही है, इससे उसकी सिद्धि प्रमाण द्वारा नहीं हो सकती। यदि मुक्त होता तो सृष्टि रचना के जंजाल में क्यों पड़ता और यदि बद्ध होता तो अविद्या के कारण जगदुत्पत्ति करही न सकता। यदि इन दोनों स्वभावों से पृथक् कोई विलक्षण शक्तिमान् ईश्वर है तो हो सकता है; परन्तु तर्क द्वारा उसका होना प्रमाणित नहीं हो सकता। इस सूत्रके अर्थ को आस्तिक लोग खींच खांच कर अपनी ओर लगाते हैं और कहते हैं कि काकुन्याय से इसका इस प्रकार अर्थ करना चाहिए कि "ईश्वर बद्ध और मुक्त दोनों से भिन्न है, इस कारण क्या उसकी सिद्धि न होगी?" परन्तु जिस प्रसंग में और जिस प्रकार इन दो चार सूत्रों की रचना होती चली आई है, उसके अनुसार यह अर्थ सयुक्तिक नहीं जान पड़ता।

१२—अथवा थोड़ी देरके लिये कल्पना कीजिए कि कपिल जी का यह आशय है कि ईश्वर है अवश्य, परन्तु उसके अस्तित्व को प्रमाणद्वारा सिद्ध नहीं कर सकते। तो क्या इस प्रकार की कल्पना करने से सांख्यकार को ईश्वरवादी कह सकते हैं? हमारी समझ में तो नहीं कह सकते। जो कहता है ईश्वर नहीं है वह भी निरीश्वरवादी है; और जो कहता है कि ईश्वर के होने का कोई प्रमाण नहीं, वह भी निरीश्वरवादी ही है। अतः दो प्रकार के निरीश्वरवादी मानने पड़ते हैं; जिनमें कपिल महाराज को दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत समझना चाहिए।

१३—"अथ त्रिविधदुखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः" यह सांख्यदर्शन का प्रथम सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि तीन प्रकार के दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक, ये तीन प्रकार के दुःख हैं। इनके समूलोच्छेदन का यत्न प्रतिपादन करके अपवर्ग प्राप्त करने का उपदेश इस दर्शन का सिद्धान्त है।

यदि कोई शंका करै कि यन्त्र, मन्त्र, औषधादि ही से दुःखों की निवृत्ति हो सकती है, सांख्य की युक्तियों को अवलम्बन करके उसके अनुसार उपाय करने की कोई आवश्यकता नहीं, तो यह शंका ठीक नहीं; क्योंकि, एतादृश उपायों से दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। एक वार ज्वरांकुश का सेवन करने से ज्वर चला जायगा, परन्तु संभव है कि पुनर्वार उसका आगमन हो। अथवा किसी अभिलषित वस्तु की अपेक्षा से हुआ दुःख उस वस्तु के प्राप्त होने से जाता रहेगा, परन्तु यह कौन कह सकता है कि पुनर्वार फिर किसी अन्य वस्तु के पाने की इच्छा से फिर भी अन्तःकरण को दुःख न पहुंचेगा? भोजन करने अथवा जल पीने से जैसे बुभुक्षा और पिपासा तत्काल के लिये शांत हो जाती हैं, परन्तु कुछ देर में नियमित समय पर फिर लगती हैं, उसी प्रकार यह दुःख एतादृश बाह्योपचारों से अल्प काल के लिये नष्ट हो सकते हैं; परन्तु उनकी परंपरा नहीं छूटती। उनके फिर भी उत्पन्न होने का सर्वदा भय बना ही रहता है।

यदि यह शंका की जावै कि नाना प्रकार के यज्ञानुष्ठान, जप, तप इत्यादि से ही दुःखात्यन्त निवृत्ति हो सकती है, सांख्य का आड़म्बर हमको न चाहिए, तो इस प्रकार की भी शंका सयुक्तिक नहीं कही जा सकती; क्योंकि शारदीय देवीपूजन, सत्यनारायण व्रत तथा तत्पूजन, पार्थिवार्चन, और नाना प्रकार के अनुष्ठानादि से जो दुःख निवृत्ति होती है वह सर्वकालिक नहीं। इस प्रकार के उपाय अनेक कारणों से फलप्रद ही नहीं होते और यदि मान भी लें कि होते हैं तो ये दुःख की अत्यन्त निवृत्ति के करने में कदापि समर्थ नहीं होते। जब तक इन कृत्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा सञ्चित किया गया पुण्य प्रस्तुत रहता है, तब तक अवश्य शान्ति रहती है; परन्तु पुण्यक्षीण होने से फिर भी पहिलेही के समान दुःख भोग करना पड़ता है। अतएव यह भी साधन कोई अच्छा साधन नहीं।

एक यह भी शङ्का उद्भूत हो सकती है कि ईश्वर ने जो नैसर्गिक नियम बना दिए हैं, उनके प्रतिपालन करने से दुःखोत्पत्ति की संभावना न होगी। नियमों का उल्लंघन करना ही दुःख पाने का मूल कारण है। विचार करने से यह शङ्का भी निःसार जान पड़ती है। प्रथम तो ईश्वरीय नियम ही ऐसे हैं कि सहज ही में उनका उल्लंघन हो सकता है; दूसरे उनके उल्लंघन करने की इच्छा प्राणियों में सदैव जागृत रहती है। इससे यही अनुमान होता है कि सुख की अपेक्षा अधिक दुःख देने ही का ईश्वरीय उद्देश्य है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो मादक पदार्थ, जो इतने अनिष्टकारी हैं, उनके सेवन करने की प्रवृत्ति मनुष्यों में क्यों वह उत्पन्न करता, और फिर उत्पन्न करके भी आपाततः तत्सेवन सुखकर क्यों करता? नियम भी कोई कोई ऐसे हैं कि उनका ज्ञान ही मनुष्यों को नहीं होता। कल्पना कीजिए कि किसी स्थान की वायु दूषित हो रही है; वहां जाने ही से कोई न कोई रोग उत्पन्न होने का डर है। अब यदि हम वहां जावें और किसी रोग से ग्रस्त हो जावें, तो हमारे ऊपर बड़ा भारी बलात्कार समझना चाहिए, क्योंकि नियमोल्लंघन का ज्ञान न देकर तज्जनित दण्ड देना तो किसी प्रकार न्याय्य नहीं। हां, विधि का न जानना लोक में अपराधी के लिये दण्ड से बचने का कारण नहीं कहा जा सकता—यह सत्य है, परन्तु लौकिक अल्पज्ञ न्यायाधीश और सर्वज्ञ परमदयालु ईश्वर की समता नहीं कर सकते। सर्वसाधारण के लिये ऐसे ऐसे नियमों के सहज ही में जानने का साधन सुलभ न करके, निर्दयता से तदुल्लंघन का दण्ड देना समुचित नहीं देख पड़ता। सूक्ष्म विचार करने से इसके अनेक कारण बोध होते हैं; परन्तु विषयान्तर होने के भय से उनका उल्लेख हम यहां पर नहीं करते।

यदि हमने सारे नियमों का यथोचित परिपालन भी किया तो क्या हमें दुःख न मिलेगा? दुःख फिर भी मिलेहीगा। वह नहीं छूट सकता। कल्पना कीजिए कि किसीके परम प्रिय, साधुस्वभाव, और अति विद्वान् एक मात्र पुत्र है। पुत्र की अभिलाषा पूर्ण करने के हेतु, अथवा भविष्यत् में उसका उत्कृष्ट सम्मान होने और उच्च पद प्राप्त करने से अपनेको कृतकृत्य मानने के निमित्त यदि पिता ने उसे सहस्रशः मील दूर विद्याध्ययनार्थ इङ्गलैण्ड प्रस्थान कराया और अभाग्यवश वहां उसे कुछ अनिष्ट हुआ, तो कहिए पिता को यन्त्रणाओं का क्या ठिकाना है? उसको जीवित दशा ही में नरक की यातनाएं भोग करनी पड़ेंगी। कोई नैसर्गिक नियम उसने नहीं उल्लंघन किया, तथापि उसे जो दुःख हुआ उस दुःख से अधिक असह्य और घातक लोक में और कोई दुःख नहीं हो सकता। अब देखिए, नियमों का उल्लंघन किया पुत्र ने, जिससे उसकी मृत्यु हुई; परन्तु दुःख भोग करना पिता को पड़ता है। इस प्रकार के भी दुःख का निवारण एक ऐसे ही दूसरे पुत्र के होने, अथवा कालान्तर में उस घटना को भूल जाने अथवा और किसी अभिलषित वस्तु में मनोनिवेश करने से हो सकता है; परन्तु कौन कह सकता है कि फिर किसी पुत्र अथवा पौत्र के मरने से पुनः पुनः उसी प्रकार का दुःख न भोगना पड़ेगा?

१४—यह हम नहीं कहते कि संसार में दुःख ही दुःख है। सुख भी है; परन्तु वह सुख दुःख से इतना मिश्रित हो गया है कि उसे भी दुःख ही कहना पड़ता है। यही सांख्यकार का अभिप्राय है। यह यथार्थ है। संसार अवश्यमेव दुःख का घर है और इस दुःख का समूल और सर्वदा के लिये नाश करना ही परम पुरुषार्थ है। देह ध्वंस होने से दुःखोच्छेद नहीं होता; क्योंकि सांख्यकार पुनर्जन्म मानते हैं और जन्मपौनःपुन्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण जरामरणादिज दुःखों की भावना करते हैं, यहां तक कि आत्मा के विश्वकारण में विलग्न होने पर भी दुःख का अत्यन्ताभाव नहीं मानते। वे कहते हैं कि जैसे जल में मग्न होने से पुनरुत्थान होता है—"मग्नवदुत्थानात्"—वैसे ही कारण में लीन होने पर भी आत्मा के पुनर्जन्मादि का संभव बना ही रहता है। अच्छा, तो क्या किया जाय जिस से दुःखपरंपरा का समूलोच्छेद हो जावे? सांख्यकार कहते हैं कि अपवर्ग की प्राप्ति ही इस कार्य के साधन का एक मात्र उपाय है। अपवर्ग कहते किसको हैं?

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः। अ०३ सू०६५।

दोनों, अर्थात् प्रकृति और पुरुष की आपस में उदासीनता हो जाना ही अपवर्ग अर्थात् मुक्ति है। अब प्रकृति और पुरुष क्या है इसका सूक्ष्म परिचय करा देना चाहिए।

१५—हमको इस दुःखमय संसार में नाना प्रकार के दुःख भोग करना पड़ते हैं; परन्तु "हम" कौन हैं? हमारा देह तो "हम" नहीं। सुख दुःख देह को कदापि नहीं होता; जब, जहां और जितना होता है उसी "हम" को होता है। हमारे देह और दैहिक चलन वलनादि शक्ति के अतिरिक्त हमको और कुछ भी दृग्गोचर नहीं होता; तो क्या यह सुख दुःखादि शरीर ही को होते हैं? यदि ऐसा है तो प्राणोत्क्रमण होने के अनन्तर उस देह को सुखादि का अनुभव क्यों नहीं होता? अथवा जीवित दशा ही में किसीके द्वारा अपमानित होने पर देह को कोई विकार नहीं होता; परन्तु अपमानज दुःख अवश्यमेव होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारा देह "हम" नहीं। देह से स्वतन्त्र जो सुख दुःखादि भोग करनेवाला है वही "हम" है। यह "हम" हमारा दृग्गोचर नहीं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि इस जगत् का कुछ भाग इन्द्रियगोचर है और कुछ इन्द्रियगोचर नहीं। चक्षुरादि इन्द्रियों का अगोचर और दुःखादि का भोग करनेवाला "हम" "तुम" इत्यादि शब्दों का वाचक आत्मा है। इस आत्मा को सांख्यकार पुरुष कहते हैं। इस पुरुष के अतिरिक्त और जो कुछ जगत् में देख पड़ता है वह प्रकृति है। इन्हीं दोनों की आपस में उदासीनता होजाना मोक्ष है।

१६—जितना दुःख आत्मा अर्थात् पुरुष को भोग करना पड़ता है सब प्रकृतिजन्य है। बाह्य पदार्थ ही उसका आदि कारण हैं। साधारण श्लेष्मा से लेकर उग्र सन्निपात, उदावर्त, राजयक्ष्मादि रोग, तथा इष्टजन-वियोगज सन्ताप और अन्यकृत अपमान सब प्रकृति के साथ पुरुष का संयोग होने ही से सहन करना पड़ते हैं। यद्यपि आत्मा प्रकृति से सर्वथैव पृथक् है, तथापि प्रकृति से उसका विलक्षण संसर्ग भी है। स्फटिक और रक्तवर्ण कमल दो पृथक् पदार्थ हैं, परन्तु जब कमल पुष्प स्फटिक के पास रक्खा जाता है, तो वह उसमें प्रतिफलित होकर स्फटिक को भी रक्तवर्ण कर देता है। वास्तव में दोनों पदार्थ एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और परस्पर स्पर्श तक नहीं करते। यही दशा प्रकृति और पुरुष की है। दोनों यद्यपि देशव्यवधान-विहित हैं, तथापि प्रकृति ने पुरुष को इतना रंजित कर रक्खा है, कि वह भी उसीके वर्ण का हो गया है और प्रकृतिजन्य दुःख को पाता है। इस प्रकार का संयोग नित्य नहीं है। जैसे कमल पुष्प को स्फटिक के निकट से हटा लेते ही स्फटिक अपने पूर्व वर्ण को प्राप्त हो जाता है, वैसेही प्रकृति जब पुरुष को नटी के समान अपना नाचकूद बतलाकर अन्तर्हित हो जाती है तब पुरुष पूर्ववत् शुद्धस्वभाव शेष रहजाता है, और फिर उसे सुख दुःखादि की भावना नहीं होती। प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध का विच्छेद ही परमपुरुषार्थ है। यह विच्छेद ज्ञानसाध्य है।

१७—मैं कर्ता नहीं; मेरा इस संसार में कुछ नहीं; और मुझमें कोई क्रिया भी नहीं; इस प्रकार की भावना और उसमें निर्भ्रमात्मक विश्वास को ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान सांख्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शनान्तर्गत कथित तत्वों का विवेचन और उनका सतताभ्यास करने से उत्पन्न होता है और क्रम क्रम से प्रकृतिजन्य बन्धन को छुड़ा कर आत्मा को अपने सच्चिदानन्दस्वरूप का साक्षात्कार कराने में समर्थ होता है। हम लोगों ने ज्ञान को मुक्ति और अंगरेज़ों ने ज्ञान ही को शक्ति मान रक्खा है। इसी कारण से एक ही पदार्थ को भिन्न भिन्न रीति द्वारा उसका उपयोग करने से भिन्न भिन्न फल दृग्गोचर हो रहा है। ज्ञानार्जन द्वारा संसार को दुःखमय जान हमलोग विरक्त होते हैं; परन्तु अंगरेज़ लोग तदुपार्जन ही से नाना प्रकार के यन्त्रादि रचना करते हैं, नूतत नूतन विज्ञानतत्वों का पता लगा कर नूतन नूतन विद्या और कला कौशल प्रादुर्भूत करते हैं, तथैव हमारे विरक्त देशवासीजनों को विजय करके उनके ऊपर अपनी सत्ता भी पूर्ण रूप से चलाते हैं।

१८–कारणपरम्परा जिसके आगे नहीं जा सकती, ऐसी मूल प्रकृति को सांख्यकार जगत् का आदि कारण मानते हैं और सांसारिक पदार्थों को २५ भेदों में विभक्त करते हैं। ये २५ भेद ये हैं—पुरुष, प्रकृति, महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, एकादशेन्द्रिय और पञ्चस्थूलभूत।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को स्थूलभूत कहते हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और मन—ये एकादशेन्द्रिय हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, तन्मात्र कहलाते हैं। "हम" इस प्रकार का ज्ञान अहङ्कार है। महत् मन को कहते हैं। प्रकृति और पुरुष का लक्षण कही चुके हैं।

१९–सांख्यकार आत्मा को शरीर से पृथक् मानते हैं और देहध्वंस होने के अनन्तर भी उसका स्थायित्व प्रतिपादित करते हैं; एवं आत्मा का लोकान्तर में पुनः पुनः शरीर के साथ सम्बन्ध होने से नाना प्रकार के जरामरणादिज दुःख की कल्पना भी सत्य समझते हैं। प्रकृति से विरक्तता सम्पादन करके दुखों का समूलोच्छेद करने को वे परमपुरुषार्थ कहते हैं और उसीको अपवर्ग प्राप्ति का एक मात्र द्वार निश्चित जानते हैं। यही कपिल सूत्रों का सिद्धान्त है।

निरीश्वरताविषयक प्रस्ताव में इस मत की सूक्ष्म समालोचना बस थी; परन्तु यह दर्शन अति प्राचीन और अत्यादरणीय होने के कारण हमने किञ्चित् विस्तार से इसकी आलोचना की। यह इसी दर्शन का प्रभाव है कि हम लोगों के हृदय में यह बात भरी हुई है कि यह संसार दुःख का सागर है और इसके पार जाने के लिये प्रयत्न करना हमारा परम धर्म्म है।

२०–अन्य देश, अर्थात् इङ्गलैण्ड, फ़्रांस, जरमनी, अमेरिका इत्यादि के निरीश्वरवादी अनेक युक्ति प्रयुक्ति द्वारा ईश्वर के अस्तित्व में शङ्का करते हैं। कोई कहते हैं ईश्वर नहीं; सृष्टि स्वभाव ही से उत्पन्न होती है। कोई कहते हैं ईश्वर हो तो सकता है, परन्तु उसके होने का कोई प्रमाण नहीं। कोई कहते हैं कि जहां चेतनाशक्ति देखी जाती है तहां शरीर सम्बन्ध अवश्य होता है, अत एव चेतनाविशिष्ट ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी साकारता किसी ने नहीं देखी, अथवा प्रमाण द्वारा सिद्ध करके नहीं बतलाई। इन सब मतों का समालोचन बहुत दुरूह है; अतएव इस प्रस्ताव को हम यहीं समाप्त करते हैं।

द्विवेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] अक्तूबर १९०१ ई० [संख्या १०

विविध वार्ता

गत अगस्त मास की २७ तारीख़ को कलकत्ते की साहित्यसभा का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, जिसमें बंगाल प्रान्त के लेफ़्टनेण्ट गवर्नर श्रीमान सर जान बुडवर्न महोदय ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। श्रीमान ने बंगला भाषा की उन्नति पर प्रसन्न होकर उसके लेखकों की प्रशंसा की थी और साथ ही यह सम्मति दी थी कि जिस प्रकार अब बंगाल में संस्कृत के ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में छपने लग गए हैं, उसी प्रकार यदि बंगला भाषा के लिये वे देवनागरी अक्षरों को ग्रहण करलें और उसीमें अपने ग्रन्थ लिखने और छपवाने लग जांय, तो वे अपनी भाषा की विस्तार सीमा को बहुत दूर तक शीघ्रही फैलाने में समर्थ हो जांयगे। वास्तव में सर जान बुडवर्न की सम्मति पर बंगाल के लीडरों को ध्यान देना चाहिए। भारतवर्ष में भिन्न भिन्न जातियों के अतिरिक्त भिन्न भिन्न भाषाओं को होना भी जातीय उन्नति का मूल बाधक है। यदि कोई उपाय ऐसा है कि जिसमें सब भाषाएं मिलकर एक हो जांय, तो वास्तव में समस्त देश एक हो सकता है। इस कार्यसिद्धि का सबसे सुगम उपाय यही है कि पहिले भिन्न भिन्न भाषाएं एकही प्रकार के अक्षरों में लिखी जांय। यह सब लोग मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे कि नागरी अक्षरों से बढ़कर सर्वाङ्गसुन्दर और पूर्ण अक्षर दूसरे नहीं हैं। अतएव इन्हीं का ग्रहण करना उचित और युक्तिसंगत जान पड़ता है। हिन्दी भाषा नागरी अक्षरों में लिखी ही जाती है, मराठी और उर्दू भी लिखी जाने लगी है। अब यदि गुजराती और बंगला भाषाओं में नागरी अक्षरों का प्रयोग होने लगजाय तो वास्तव में एक बड़ा भारी काम होजाय। क्या बंगदेशीय और गुजरातस्थ विद्वान् महानुभाव इन बातों पर विचार कर कुछ देशहित करने की ओर दत्तचित्त होंगे?

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष में शिक्षित-समाज-मात्र को विदित है कि हमारे वाइसराय शिक्षा की ओर बड़े दत्त-चित्त हो रहे हैं। अभी गत सितम्बर मास में उन्होंने शिक्षा विभाग के बड़े बड़े अफ़सरों की एक सभा की थी, जिसकी बैठक १५ दिन के लगभग हुई थी और जिसमें सभापति का आसन स्वयं श्रीमान् लार्ड कर्ज़न महोदय ने ग्रहण किया था। इस सभा ने क्या निश्चय किया और क्या सम्मति देनी उचित समझी है, यह अभी प्रगट नहीं हुआ है; परन्तु सभा के प्रथम अधिवेशन में श्रीमान् ने एक वक्तृता दी थी जो छपगई है। उसके पढ़ने से यह विदित हो जाता है कि सभा ने किन किन विषयों पर विचार किया है। इन सब विषयों पर विस्तार रूप से हम अगली संख्या में लिखेंगे, पर आज श्रीमान् के एक प्रस्ताव के विषय में कुछ लिखा चाहते हैं।

श्रीमान् ने अपने वक्तृता में देशभाषाओं की शिक्षा के विषय में यों कहा था—

"Ever since the cold breath of Macaulay's rhetoric passed over the field of the Indian languages and Indian text-books, the elementary education of the people in their own tongue has shrivelled and pined. This I think, has been a mistake and I say for two principal reasons. In the first place, the vernaculars are the living languages of this great continent. English is the vehicle of learning and advancement to the small minority. But for the vast bulk it is a foreign tongue which they do not speak and rarely hear. If the vernaculars cnotained no literary models, no classics, I might not be so willing to recommend them. But we all know that in them are enshrined famous treasures of literature and art; while even the secrets of modern knowledge are capable of being communicated thereby in an idiom and in phrases which will be understood by millions of people to whom our English terms and ideas will never be anything but an itelligible jargon."

श्रीमान् ने दूसरा कारण यह बताया है कि देशभाषाओं की शिक्षा के प्रचार से सर्वसाधारण में विद्या का प्रचार हो जायगा और इससे बहुत कुछ अशान्ति, पाप और कुत्सित् कर्मों की न्यूनता हो जायगी। श्रीमान् ने हमलोगों की देशभाषा की जो कुछ प्रशंसा की है उसके लिये हम उनके अनुगृहीत हैं; पर वास्तव में देशभाषाओं की क्या अवस्था है, यह जान लेना आवश्यक है। हमारा सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू से ही है। इन भाषाओं की क्या अवस्था है और इनमें आजकल कैसे कैसे ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। दोनों भाषाओं में केवल रद्दी उपन्यासों की भरमार है। एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं निकलता जिससे भाषा का गौरव और पढ़नेवालों के चरित्र पर उसका कुछ प्रभाव पड़ कर उनको लाभ हो सके। एलीज़बेथ के समय में अंग्रेज़ी की भी यही अवस्था थी। जैसे आज कल भारतवर्ष में पढ़े लिखे लोग अपनी भाषा से घृणा करते और उसमें ग्रन्थ लिखने में अपना अपमान समझते हैं, वही अवस्था उस समय इङ्गलैण्ड में भी थी। परन्तु उस समय में वहां अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद हुए जिससे भाषा की उन्नति हो चली। हिन्दीभाषा में किसी उत्तम ग्रन्थ का नाम पूछा जाय तो लोग तुलसीकृत रामायण बतला देते हैं। अभी ही काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दी के तत्वज्ञों से यह प्रश्न किया था कि हिन्दी के गद्य और पद्य की सर्वोत्तम बारह पुस्तकें कौन हैं। पर हमारे पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि, किसी महाशय ने इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया, और हिन्दी के तत्वज्ञों और सुप्रसिद्ध लेखकों ने तो प्रश्न का नाम तक भी न लिया। इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दी तत्वज्ञों में गुण दोष विवेचन की शक्ति नहीं है; परन्तु वास्तव में गद्य के ऐसे बारह ग्रन्थों का मिलना ही कठिन है जो लेखप्रणाली में सर्वोत्तम, माननीय और अनुकरणीय हों। जब यह अवस्था है तो हिन्दी में उच्च शिक्षा किस प्रकार से दी जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है यह समझ में नहीं आता। कुछ लोगों का यह सिद्धान्त है कि हिन्दी की समस्त पुस्तकें नित्य की बोल चाल की भाषा में लिखी जांय। हम इस विचार से सहमत नहीं हो सकते। जिस श्रेणी के पाठक के लिये जो ग्रन्थ लिखा जाय, उसकी भाषा वैसी होनी चाहिए। अस्तु यदि गवर्नमेण्ट की यह इच्छा हो कि देशभाषाओं का प्रचार हो और प्रारम्भिक तथा सर्वसाधारण की शिक्षा उसी के द्वारा हो, और यदि देशहितैषी महानुभावों की यह आन्तरिक इच्छा हो कि देशभाषाओं की उन्नति हो, तो ऐसा उद्योग करना चाहिए जिसमें अन्य भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हो जाय। जब तक हिन्दी लेखकों के पास ऐसी पुस्तकें न होंगी, जिनको पढ़कर और जिनके आशय पर वे अनेक बातें जान सकें, और अनेक विद्याओं के विषय में अनुभव प्राप्त कर सकें, तब तक सम्भव नहीं है कि वे अन्य अच्छे ग्रन्थों के लिखने में समर्थ हो सकेंगे। अतएव हमारी गवर्नमेण्ट से प्रार्थना है कि वह उपयुक्त पुरुषों द्वारा अन्य भाषा के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का हिन्दी आदि देश भाषाओं में अनुवाद करावें जिसमें ये भाषाएं इस योग्य हो सकें कि उनके द्वारा उच्च शिक्षा तक दी जा सके।

* *
*

हिन्दी के रसिकों को नागरीप्रचारिणी सभा का ध्यान कराना, अथवा उनके सम्मुख उसका वृत्तान्त उपस्थित करना, व्यर्थ है। परन्तु हमें यह देखकर दुःख होता है कि सभा का अब तक कोई भवन नहीं बना है जिससे सभा के अधिवेशनों में विशेष कष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अवैतनिक कार्य शृङ्खला से नहीं होता। इन बातों पर विचार कर सभा ने एक स्थायी कोष का स्थापित करना निश्चित किया है और हिन्दी रसिकमात्र से आवेदन किया है कि वे इसमें सभा की सहायता करें। परन्तु हमें दुःख है कि इस ओर अब तक बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है। इस बात को सब लोग मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि सभा ने हिन्दी की बहुत कुछ सेवा की है, और आशा है कि भविष्यत् में भी यह हिन्दी का उपकार कर सके। इस अवस्था में हम यह नहीं समझते कि हिन्दीप्रेमीगण सभा की सहायता क्यों नहीं करते। हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि यदि वे एक एक रुपया भी स्थायी-कोष की सहायता में हमारे अथवा सभा के पास भेज दें, तो वे वास्तव में हिन्दी की बड़ी भारी सेवा करेंगे। हमको आशा है कि हमारे सहयोगी-गण भी उस ओर ध्यान दे अपने पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे सभा की सहायता करें।

* *
*

अन्यत्र मैसूर के भूत दीवान सर कुमारपुरम् शेषाद्रि आयर का चित्र दिया है। राजा सर टी माधवराव, राजा दिनकर राव, आदि भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजनैतिकों की गणना में सर आयर का नाम कदापि नहीं छूट सकता। गत सितम्बर मास के प्रारम्भ से सर आयर के रुग्न होने का वृत्तान्त समाचारपत्रों में छपने लगा था और चारों ओर लोग इनकी अवस्था जानने के लिये उत्सुक थे। परन्तु रोग बढ़ता ही गया और १३ सितम्बर के प्रातःकाल इस असार संसार को छोड़ कर वे परलोक को सिधारे और अपनी अक्षय कीर्ति को छोड़ गए जो प्रत्येक पुरुष के भाग्य में नहीं होती। इनकी मृत्यु पर समस्त मैसूर पर महाशोक छा गया और कई दिनों तक जहां चार आदमी मिलते तो वे इन्हींकी मृत्यु की चर्चा करते थे।

* *
*

आयर महाशय का जन्म सन् १८४५ ई० को हुआ था। पढ़ने में इन्होंने अच्छी दक्षता प्राप्त की और २१ वर्ष की अवस्था में बी. ए. हो गए। कालेज में सदा इनकी गणना अच्छे बालकों में होती थी। पहिले तो ये कालिकट के कलक्टर के आफ़िस में अनुवादक के पद पर नियुक्त हुए। सन् १८६८ में ये मैसूर में जुडिशल शिरिस्तेदार

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियत हुए। इसके पीछे इन्होंने अनेक दिनों तक अनेक पदों पर नियुक्त होकर काम किया। सन् १८८३ ई० में ये मैसूर के दीवान नियत हुए और इस पद पर रह कर इन्होंने जो मैसूर राज्य का उपकार किया है, उसे सब लोग मानते और स्वीकार करते हैं। जिस समय ये दीवान नियत हुए थे, उस समय राज्य की वार्षिक आय एक करोड़ तीन लाख थी, और जब उन्होंने दीवानी छोड़ी तो वह एक करोड़ अस्सी लाख थी। सन् १८८१ ई० में राज्य को ३० लाख का देना था। इसको इन्होंने सब चुका दिया और अन्त में एक करोड़ छिहत्तर लाख की बचत दिखाई, और इसके साथही साथ करोड़ों रुपए उन्होंने देशहितकर कार्य्यों में व्यय किए। इन्हीं सब उपकारों को स्मरण करके महाराज मैसूर ने चार लाख पुरस्कार और दो हज़ार मासिक की पेनशन कर दी थी। इन महानुभाव की मृत्यु से मैसूर राज्य ने एक बड़ा भारी सहायक और भारतवर्ष के एक सुन्दर रत्न खोया है।

श्री गुरु नानक जी

भारतवर्ष की इस अधोपतित अवस्था में यह बात अत्यन्त ही आवश्यक जान पड़ती है कि हम अपने पूर्व पुरुषाओं के चरित्र से भली प्रकार विज्ञ होकर स्वदेश की उन्नति पर ध्यान दें और आंख खोलकर देखें कि हमारे पूर्वजों ने कैसी कैसी कठिनाईयां सह कर स्वदेश को अधोपतित होने से बचाया था। और कई तो स्वयं धर्म्मोपदेश द्वारा मुसलमान शासनकर्त्ताओं और हिन्दुओं में ऐक्य फैला कर, तथा पददलित हिन्दू प्रजा को मुसलमान बादशाहों के अन्याय से बचा कर, इस असार संसार में अटल कीर्तिस्तम्भ स्थापित कर गए हैं।

ये महात्मा, जिनके चित्र अन्यत्र एक साथ दिए गए हैं, और जिनके नाम इस प्रकार हैं—गुरु नानक जी, गुरु अङ्गद जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुन जी, गुरु हरगोविन्द जी, गुरु हरराय जी, गुरु श्री हरिकृष्ण जी, गुरु तेगबहादुर, तथा दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह जी, इत्यादि—ऐसे प्रतिभासम्पन्न हो गए हैं कि जिनके धर्म्मोपदेशों से राज्य मद में अन्धे, अन्यायी यवन बादशाहों के भी हृदयकपाट खुल गए थे, तथा वे लोग पक्षपात-शून्य होकर इनके सिद्धान्तों को मानने लग गए थे, और इस उपाय से दुर्बल पददलित हिन्दूजातियों की रक्षा कर, ये महात्मागण अनन्त यश के भागी हो, इस नाशवान जगत में अमरत्व प्राप्त कर गए है।

आज मैं आप लोगों के सम्मुख उनमें से एक ऐसे महात्मा पुरुष का चरित्र वर्णन करता हूं जो भारतवर्ष में मुसलमानी शासन के समय आविर्भूत हुए थे, और जिनके सारगर्भित उपदेशों ने हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों को चकित और पुलकित किया था; और जो परस्पर दोनो जातियों में एकता का बीज बोकर, हिन्दुओं के प्रति यवन बादशाहों के प्रचण्ड अग्निरूप अत्याचार को अपने शीतल, गम्भीर, वारिरुपी धर्म्मोपदेश से शान्त कर, हिन्दू जाति मात्र के श्रद्धास्पद हो गए हैं और जिनका नाम सभ्य जगत के अन्तिम समय तक संसार में अटल भाव से विराजमान रहेगा।

सिख धर्म्म के जन्मदाता, यवन बादशाहों को मुरीद बनानेवाले, तथा हिन्दुओं को मुसलमान शासनकर्ताओं के अत्याचार से छुड़ानेवाले महात्मा गुरु नानक जी का नाम कौन नहीं जानता? ये परमात्मा की ओर से निष्पीड़ित हिन्दु जातियों को मुसलमानों के अत्याचार से बचाने के लिये इस मर्त्तलोक में भेजे गए थे, और इन्होंने संसार में आकर अपने कर्त्तव्य का साधन उत्तमत्ता पूर्वक किया, अर्थात् मुसलमानों को अपने युक्तिपूर्ण सुललित धर्म्मोपदेश द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार करने से विरत रक्खा और एक ऐसे मत की नीव डाली जिसने केवल हिन्दुओं पर ही नहीं, पर मुसलमानों पर भी विशेष प्रभाव डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ऐसे परोपकारी महात्माओं का जीवन चरित्र पढ़कर हमें उनके गुणों से परिचित होना उचित नहीं है जिससे कि हम उनको अपना आदर्श मानकर स्वदेश तथा स्वजाति को कुछ भी भलाई कर सकें? अतएव, पाठकगण, आइए, हम लोग भी बाबा गुरु नानक जी के परोपकार और स्वकर्त्तव्यसाधन के वृत्तान्त की चर्चा कर अपने उत्सुक चित्तों को शान्ति दें।

गुरु नानक जी के पूर्वजों की वंशावली का सिलसिला सूर्यवंशी श्री रामचन्द्र जी के पुत्र कुश से मिलता है। इसका सविस्तर वर्णन स्वयं गुरु गोबिन्दसिंह जी ने अपने 'विचित्र' नामक नाटक में लिखा है। सूर्यवंशी श्री रामचन्द्र जी के दो पुत्र हुए, लव और कुश। कुश ने कसुर और लव ने लाहौर बसाया। इनके कई पीढ़ी पीछे कुश के वंश में कालराय और लव के वंश में कालकेतु नामक दो पराक्रमी राजा हुए जो अनेक समय तक परस्पर युद्ध करते रहे। निदान कालकेतु की जय हुई और कालराय सन्नोउ देश की ओर भाग गया, जहां वह एक राजकन्या से विवाह कर रहने लगा। इसी स्त्री से सोढीराय नामक एक पुत्र कालराय को उत्पन्न हुआ, जिसके वंशज सोढी खत्री के नाम से विख्यात हैं। सोढी राय से पांचवीं पीढ़ी में विजयराय नामी एक महाबली राजा हुआ, जिसने पञ्जाब में कुश के वंशजों पर चढ़ाई कर उन्हें युद्ध में परास्त किया।

महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध में एक वेदी वंशीय* अभीज नामक राजा ने (जो सूर्यवंशी था) राजा शल्य की आधीनी में पांडवों से युद्ध किया था। समय के फेर से इसके उत्तराधिकारियों के हाथ से राज्य जाता रहा और जो बचे बचाए कतिपय ग्राम थे, वह भी नाथजी वेदी के समय महमूद गज़नवी के हमलों में दूसरों के हस्तगत हुए।

वेदी वंश में एक रामनारायण खत्री हुए, जिनके पुत्र शिवरामदास के दो पुत्र, कालूचन्द संवत् १४९३ विक्रमी में, तथा लालूचन्द संवत् १५०० में उत्पन्न हुए। कालूचन्दराय बुलार हाकिम तिलवंडी का अधीनस्थ कार्यकर्त्ता था। सुलतान बहलोल लोदी के समय में कार्तिक सुदी पूर्णिमा संवत् १५२६ विक्रमी (सन् १४६९ ई०), को चार घड़ी रात रहे हमारे प्रसिद्ध महात्मा श्री गुरु नानक जी ने माता के गर्भ से कालूचन्द खत्री के घर में तिलवण्डी नामक ग्राम में, जिसकी तहसील शरकपूर, जिला लाहौर में है, जन्म लिया था।

पुत्ररत्न के उत्पन्न होने का शुभ समाचार सुन कर कालूचन्द ने आनन्दित होकर, याचकों को मुंह मांगा द्रव्य दान किया और हरदयाल ज्योतिषी को बुलाकर पुत्र की जन्मपत्री बनाने का आदेश किया। ज्योतिषी जी ने गणना कर कहा कि यह पुत्र बड़ा यशस्वी, धर्म्मिष्ठ, तथा प्रभावशाली होगा, और इसकी कीर्ति संसार में प्रलय पर्य्यन्त व्याप्त रहेगी। पुत्र का भावी भाग्य सुनकर नानक जी के पिता फूले अङ्ग न समाए, और उन्होंने पण्डितजी को यथोचित दक्षिणा देकर विदा किया।

किसी किसी इतिहासवेत्ताओं का मत है कि नानक जी ने अपने नाना के घर जन्म लिया, इसी कारण उनका नाम नानक पड़ा; और कोई कोई यह भी कहते हैं कि नानक जी की बड़ी बहिन का नाम नानकी था, इसलिये इनका नाम भी नानक रखा गया। परन्तु इस विवरण का सत्यासत्य स्पष्ट रूप से कुछ निर्णय नहीं हुआ है।

गुरु नानक के जन्मस्थान में एक पक्का मकान 'नानकाना साहब' के नाम से बना हुआ अब तक

* जिस समय विजयराय ने पञ्जाब में कुश के वंशजों पर चढ़ाई कर उन्हें युद्ध में परास्त किया, उस समय कुश के वंशधरों में से कुछ लोग पूर्व की ओर गए। अवध और कानपुर के ठाकुर जाति इनके वंशजों में से हैं और कुछ लोग काशी जी में विरक्त होकर वेद पढ़ने लगे। वे वेदी खत्री के नाम से विख्यात हुए।

CC-0. In Public Domain. G

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तमान है। इस स्थान पर नानक जी के स्मारक स्वरूप एक मेला प्रतिवर्ष लगा करता है, जिसमें लोग दूर दूर से आते हैं।

एक ही वर्ष की अवस्था में हमारे चरित्र के नायक खड़े भी होने लग गए और उनके दांत भी निकल आए। कहावत प्रसिद्ध है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। और जब कभी यह बैठते थे तो पैर मोड़ कर बैठते थे और कुछ न कुछ भजन की रीति पर अवश्य बोलते रहते थे। जब पांच वर्ष की अवस्था हुई तो सहचारी बालकों को ईश्वर के विषय में उत्तम उत्तम उपदेश देने लगे और जो कुछ द्रव्य घर से हाथ लगता, याचकों और फकीरों को बांट दिया करते। संवत् १५३३ में सात वर्ष की जब इनकी अवस्था थी, तब इनके पिता ने इन्हें हिन्दी पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा। गुरु जी ने इन्हें प्रथम हिन्दी का पहाड़ा लिख कर पाठ याद करने को दिया। ऐसा सुनने में आता है कि आपने इस पर गुरु जी से कहा कि "जिसने इस लौकिक हिसाब किताब को पढ़ा वह अत्यन्त कष्ट और कठिनाइयों में फंसा रहा है; मैं तो परमेश्वर की स्तुति पढ़ने आया हूं और मेरी राय यह है कि आप भी इस पचड़े को छोड़ कर सच्ची विद्या का अध्ययन करना प्रारम्भ कीजिए।" संवत् १५३५ में कालूचन्द ने इन्हें संस्कृत पढ़ने के लिये पं० ब्रजनाथ के समीप भेजा। पण्डित जी ने "ओंकार" का "अकार" लिख कर पाठ करने को दिया। आपने पण्डित जी से इसका अर्थ पूछा। तब तो पण्डित जी चकराए और कुछ क्षण तक नानक जी की ओर स्थिरदृष्टि से देखकर कहने लगे कि "बालकों को आदि में इसका अर्थ नहीं बताया जाता। तुम यदि स्वयं जानते हो तो कहो"। फिर तो हमारे स्वाभाविक ज्ञानी महात्मा ने इस ओंकार की ऐसी सारगर्भित और सरल व्याख्या की कि पण्डित जी दङ्ग रह गए और उनके ज्ञानचक्षु खुल गए।

कई इतिहासवेत्ताओं का मत है कि नानक जी का प्रथम शिक्षक मुसलमान था। विख्यात इतिहासज्ञ एलफिन्सटन (Elphinstone) साहब कहते हैं कि "He was a disciple of Kabir"* = वह कबीरदास के शिष्य थे। किन्तु शायर-उल-मुताख़रीन (पारसियों का इतिहास,) के प्रणेता कहते हैं कि सैयद हुसैन नामक एक विभव शाली मुसलमान ही नानक जी का शिक्षा-गुरु था। ऐतिहासिक केनिङ्गहम साहब कहते हैं कि "A manuscript compilation in Persian mentions that Nanak's first teacher was a Mohametan. Nanak is reported by the Mohametans to have learnt all earthly sciences from Khizzer, *i. e.*, the prophet Elias." नानक जी फारसी जानते थे, आश्चर्य नहीं कि उन्होंने इस भाषा को किसी मुसलमान से सीखा हो; परन्तु इनके प्रथम शिक्षक मुसलमान थे, या वह मुसलमान द्वारा शिक्षित हुए थे, यह बात सर्वथा असत्य जान पड़ती है; क्योंकि नितान्त बाल्यावस्था में ही उन्होंने वह ज्ञान की बातें कही हैं, कि उनका किसी गुरुविशेष द्वारा शिक्षित होना प्रमाणित नहीं होता।

बाल्यावस्था ही से गुरु नानक जी का एक ईश्वर में दृढ़ विश्वास था। उनका यह सिद्धान्त था कि सृष्टि के आदि में केवल मूल एक ही धर्म था; पीछे मनुष्यों की कुटिलता तथा स्वार्थपरता से भिन्न भिन्न धर्मों का प्रचार हो गया। सब धर्मों का मूल एक ही है। इसी कारण नानक जी हिन्दू, मुसलमान, सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते और सभी जाति के मनुष्यों को धर्मोपदेश देते थे। परन्तु इस समय सिख धर्म को देखकर लोग यह नहीं विश्वास कर बैठें कि इसमें जो भिन्न भिन्न प्रकार के पन्थ हैं, वे नानक जी ही के चलाए हुए हैं। गुरु नानक जी तो एक दृढ़ ईश्वरवादी थे और इस सिद्धान्त का प्रचार भी करते थे; परन्तु उनके पीछे भिन्न भिन्न

* Vide Elphinstone's History of India.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के पन्थ चल गए, और यह बात स्वाभाविक है कि समय पाकर किसी प्रधान नेता के सिद्धान्तों में अनेक अन्य बातें सम्मिलित हो जाया करती हैं। सिख धर्म्म में भी यही बात जान पड़ती है।

गुरु नानक की बाल्यावस्था के विषय में अनेक विचित्र बातें प्रसिद्ध हैं। परन्तु वे अधिकांश में तो कपोलकल्पित जान पड़ती हैं, क्योंकि अपने प्रतिभाबल से संसार में जो पुरुष सबका पूज्य और मान्य हो जाता है, उसकी बाल्यावस्था के विषय में इस प्रकार की बहुत सी कथाएं प्रायः सुनी जाती हैं; तो हमारे अद्भुत क्षमताशाली, प्रतिभासम्पन्न, गुरु नानक जी के विषय में ऐसी ऐसी बातों का सुनना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नानक जी योगीराज थे और जो कुछ योगबल की प्रभुता उन्होंने दिखाई भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु जितना की ऐतिहासिक लोगों ने बढ़ा रखा है वह कदापि सम्भव नहीं है। उपर्युक्त बातों को ध्यान पूर्वक पढ़नेही से पाठकों को इसका सत्यासत्य स्वयं ही स्पष्ट होजायगा।

जिस समय नानक जी की अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी, तो उनके पिता ने उनका ध्यान सांसारिक कार्य्यों की ओर आकर्षित करने के लिये बाला नामक नौकर के साथ नोन (लवण) खरीदने को उन्हें कुछ द्रव्य देकर भेजा और पुत्र से कह दिया "देखो खूब खरा और अच्छा सौदा खरीदना"। परन्तु हमारे ज्ञानी महात्मा इन सब सांसारिक पचड़ों में कब फंसने वाले थे। उन्होंने चिड़काना नामक ग्राम में पहुंच कर देखा कि बहुत अभ्यागतों तथा अतिथियों की मण्डली अन्न बिना भूखी पड़ी है। "इन्हें भोजन द्वारा तृप्त करने के अतिरिक्त मुझे और कोई खरा और लाभकारी सौदा नहीं दिखाई देता।" नानक जी ने ऐसा सोचा और तत्क्षण भोजन की सामग्री मंगवा उन अतिथियों को भोजन करादिया, तथा खाली हाथ पिता के सम्मुख आ खड़े हुए। सब हाल कालूचन्द को मालूम होने पर वह अपने पुत्र नानक पर बड़े ही क्रुद्ध हुए और उनका यथोचित तिरस्कार किया; किन्तु महात्मा नानक जी ने इसकी कुछ भी परवाह न की।

नानक जी के चित्त में जब धर्म्मचिन्ता उदय होती तब वह बस्ती छोड़ कर निर्ज्जन बनों में चले जाते। पिता को उनके बहुत काल तक बाहर रहने से बड़ा दुःख होता, और कई बार तो वे पुत्र के खोजने से हताश होकर उसके जीवन तक से निराश हो चुके थे। इन्हीं सब कारणों से, तथा पुत्र को संसार के कार्य में फंसाकर अपना अनुयायी बनाने के लिये, उन्होंने सं० १५४१ में नानक जी को सुलतानपुर उनके बहनोई जयराम के पास भेज दिया, जहां उनके बहनोई ने उन्हें नवाब दौलत अली खां के यहां मोदीखाने में नौकर करा दिया; और सं० १५४५ में ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को मूलचन्द चूना की पुत्री सुलक्ष्मी से इनका विवाह भी हो गया। सं० १५५१ सावन बदी पंचमी को नानक जी की धर्म्मपत्नी से एक लड़का भी, जिसका नाम श्री चन्द्र था, उत्पन्न हुआ, जिसने उदासी पन्थ चलाया। कुछ दिनों के अनन्तर नानक जी ने दूसरे पुत्र का भी मुख देखा। यह समाचार सुनकर नानक जी के पिता अत्यन्त हर्षित हुए और मन में कहने लगे कि "लड़का अब राह पर आता जाता है"। परन्तु गुरु नानक जी संसार में जल के कमल सदृश अपना समय बिताते थे, तथा जब कभी अवकाश मिलता तो लोगों को धर्म्मोपदेश दिया करते। इस तुच्छ परिवर्तन से नानक जी की धर्म्मचिन्ता में तनिक भी व्याघात न पड़ा; वे सदा अपने धर्म्म कर्तव्य में यत्न किया करते और लोगों को ईश्वर के विषय में उत्तमोत्तम उपदेश दिया ही करते थे।

एक समय नवाब दौलत अली खां से काज़ियों ने शिकायत की कि नानक जी यदि एक ही सच्चे मत को मानते हैं, और किसी मत से द्वेष नहीं रखते, तो वह हमलोगों के साथ मसजिद में निमाज़ शरीफ पढ़ें। हमारे समदर्शी महात्मा नानक जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी क्षण सङ्कोचरहित होकर निमाज़ पढ़ने पर प्रस्तुत हुए और काज़ियों को लज्जित होना पड़ा।

सं० १५५६ में नानक जी देश विदेश में उपदेश देने की इच्छा से फ़कीरी भेष धारण कर मरदाना नामक अनुचर के सहित घर से बाहर निकले। उन्होंने पत्नी के कातर विलाप और घर के लोगों के बार बार अनुरोधों का कुछ भी ध्यान न किया। जो व्यक्ति इस संसार में दृढ़ता के साथ स्वकर्तव्य साधन में तत्पर हो जाता है, उसको ऐसी ऐसी सांसारिक बाधाएं नहीं रोक सकतीं। पञ्जाब के कुछ स्थानों में उपदेश देकर मार्ग में पश्चिमोत्तर देश, अवध, काशी, पटना, बंगाल, बिहार होते हुए कामरूप कामाक्षा में पहुंच गए। तदनन्तर आसाम आदि देशों में भ्रमण करते हुए, तथा जगन्नाथ जी में उपदेश देते हुए, लौट कर ताल भूपाल, थानेश्वर आदि देशों में होते हुए अपने घर सुलतानपुर को लौट आए।

संवत् १५६७ में बाला और मरदाना दो सहचरों के साथ दक्षिण भ्रमण के लिये दूसरी बेर घर से निकले, तथा अजमेर में जैनियों को उपदेश देते हुए घर को लौट आए। इनकी तीसरी यात्रा कर्तारपुर के पहाड़ों में हुई थी।

उनकी चौथी यात्रा हिन्दू सन्तान के लिये विचित्र कहलाने योग्य है। इस बेर उन्होंने अपने मुख्य कर्तव्य साधन के लिये मुसलमानों को उपदेश करते हुए मक्के ऐसे दूरदेश में जाने का दृढ़ सङ्कल्प किया और इस हेतु भाई मरदाना और बाला को साथ लेकर उस देश की यात्रा की, तथा गुजरात इत्यादि देशों में उपदेश करते हुए सं० १५७५ में मक्के पहुंच ही गए।

नानक जी थकावट के कारण विख्यात मसजिद की ओर पैर कर के सो रहे; किसी मुसलमान ने बाहर आकर देखा कि एक फ़कीर जिसकी आकृति हिन्दू सी जान पड़ती थी, दरगाह की ओर पैर कर के सोया है। वह अत्यन्त ही कुपित हुआ और गुरु नानक को सोते से जगाकर उनको ऐसा निन्दनीय कार्य करने पर बहुत कुछ भला बुरा कहने लगा। नानक इसकी बातें चुपचाप सुनते रहे और अन्त में कहने लगे कि मैं जिधर पैर करता हूं उधर ही खुदा की दरगाह पाता हूं, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी है और समस्त ब्रह्माण्ड ही उसका मन्दिर (दरगाह) है। इस घटना के विषय में ऐसा भी लोग कहते हैं कि गुरु नानक ने जिधर अपना पैर घुमाया उधर ही मक्का भी घूम गया। यह बात निरी असत्य नहीं हो सकती है, क्योंकि नानक जी योगी थे और योगबल से यदि लोगों की दृष्टि में उन्होंने भ्रम उत्पन्न कर दिया हो तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। इसपर काज़ी ने पूछा कि आप हिन्दू हैं या मुसलमान? गुरु नानक ने एक दोहा पढ़ा—

हिन्दू कहों तो मारिए, मुसलमान भी नाहिं।
पांच तत्व का पूतला, नानक मेरा नाम॥

इसके अनन्तर उन्होंने यह भी समझाया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के शरीर एक ही रक्त मांस से बने हुए हैं और एक ही ईश्वर ने इन्हें उत्पन्न किया है और दोनों में एक ही शक्ति और आत्मा दी है, किसी जाति पर किसी जाति को उच्चासन नहीं दिया है, और न किसी मनुष्य या जाति विशेष को किसी पर अत्याचार ही करने वा पददलित करने का अधिकार दिया है।

मक्के से गुरु नानक मदीने की ओर गए और वहां भी अपने सुललित उपदेशों द्वारा उन्होंने मुसलमानों को मोह लिया। इसी प्रकार यवनों के प्रधान तीर्थस्थानों में उपदेश देते हुए, मक्के से चल कर ईरान, फ़ारस, रूम, आदि देशों में होते हुए बुगदाद पहुंचे, वहां का ख़लीफा इनके प्रभाव का वृत्तान्त पहिले ही सुन चुका था, अतएव वह आगवानी कर बड़े आदर भाव से इन्हें अपने शाही महलों में लिवा लेगया, तथा इनके दर्शन पाकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगा, और नानक जी का उपदेश सुन कर अत्यन्त प्रसन्न और मुग्ध हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उसने उनका विशेष आदर किया, और एक बहुमूल्य चोला (एक प्रकार का कुर्ता) जिस पर कुरान शरीफ़ की आयतें बिनी हुई थीं, इनके भेट किया जिसे वे अपने साथ लेते आए। यह चोला अभी तक पञ्जाब में काबुलासिंह बन्दई के पास रखा हुआ है और प्रति वर्ष इसका दर्शन और पूजन होता है। बुगदाद में गुरु नानक जी का स्मारक अभी तक वर्तमान है और वहांवाले इन्हें नानक पीर के नाम से पुकारते हैं।

इसके अनन्तर नानक जी रूम तथा ईरान होते हुए बुख़ारे पहुंचे जहां उनके सहचर मरदाना की मृत्यु हुई। यह सहचर नानक जी को विशेष प्रिय था और वे जो जो भजन रचते उसे वह वीणा में बराबर बजाया करता। संवत् १५७९ में नानक जी कर्तारपुर जा पहुंचे और उनके जीवन का शेष भाग ऐरावती नदी के तीर कर्तारपुर में ही पूरा हुआ।

यह गुरु नानक ही ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ और निर्भय-चित्त वाले पुरुष का साहस था कि उन्होंने किसी प्रकार का भय तथा संकोच न कर हिन्दूद्वेषी यवनों के प्रधान तीर्थस्थान मक्के में जाकर अपने पवित्र धर्म्मोपदेश द्वारा मुसलमानों के हृदय से हिन्दुओं की ओर घृणावृक्ष का जड़मूल से नाश किया।

नानक जी जब घर लौट कर आए उस समय उनके आत्मीय बन्धुगणों ने उनसे घर ही पर रहने के लिये आग्रह किया। नाना देश विदेश भ्रमण कर, तथा नाना प्रकार के मनुष्यों से मिलने जुलने से नानक जी के हृदय में बस्ती में रहने से जो वैराग्य हो आया था, वह जाता रहा और वे अपने घर कर्तापुर ही में रहने लगे।

अपने घर के निकट नानक जी ने एक अतिथि-शाला बनाई, जिसमें भिक्षुक अतिथिगण नित्य भोजन पाते थे। यह अतिथिशाला कर्तापुर में अभीलों वर्तमान है और वहांवाले इसे "डेरा बाबा नानक" के नाम से पुकारते हैं।

नानक जी ने सिखों को कोई सामाजिक या राजनैतिक उपदेश नहीं दिया था। उनका उपदेश बहुधा धर्म्मविषयों पर ही हुआ करता था; सिख लोगों के आचार, व्यवहार में उन्होंने कुछ भी परिवर्तन नहीं किया था। नानक जी के शिष्य उन्हें ईश्वरतुल्य मानते थे, परन्तु नानक जी सम्पूर्ण अहङ्कार रहित थे, क्योंकि उन्होंने एक भजन में, जिसका पद यों है, रचकर कहा है कि

"तु है निरङ्कार, नानक बन्दा तेरा"।

इसी प्रकार से नानक जी भगवत भजन रचना करते, तथा लोगों को अपने ललित धर्म्मोप-देश द्वारा मुग्ध करते हुए, अपने जीवन का शेष-भाग ऐरावती नदी के तीर पर कर्तारपुर में बिताने लगे, जहां कुछ काल के अनन्तर लहना नामक एक खत्री से, जो वैष्णवदेवी दर्शनार्थ जा रहा था, इनसे भेट हुई। इनके पवित्र धर्म्मोपदेश को सुनकर लहना ऐसा मोहित हो गया कि वह वैष्णवदेवी न जाकर इन्हींके सन्निकट रहने लगा, तथा इनपर विशेष श्रद्धा, भक्ति रखने लगा। नानक जी ने उसे अपना दीक्षित शिष्य बनाकर और उसका नाम "गुरु अङ्गद" रखकर उसे गुरु की गद्दी दी, क्योंकि कई बार की परीक्षा से यह शिष्य गुरु नानक जी के पुत्रों से भी अधिक गुण-वान ठहरा था।

संवत् १५९०, कार्तिक बदी १३ को, नानक जी की माता का देहान्त हो गया, तथा इसके बीस दिन बाद ही नानक जी के पिता भी परलोक को सिधारे।

यह संसार अनित्य है। यहां जो आया वह अवश्य एक दिन जायगा। हमारे चरित्रवीर महात्मा भी अपने सच्चे और पवित्र सिद्धान्त का अनुमोदन करते हुए, तथा मरण समय पर्यन्त लोगों को धर्म्मोपदेश देते हुए ६९ वर्ष १० महीने की आयु भोग कर संवत् १५२६, आश्विन बदी १० को, इस देह को त्यागकर परम धाम को सिधारे। केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका नाम और उनकी कीर्ति जगत में गुलाब के फूल की नाईं अब तक सुगन्ध फैला रही है।

इन महात्मा का मरण समय भी विचित्र था। इनकी अन्तेष्टि क्रिया के विषय में हिन्दू मुसलमानों में बड़ा झगड़ा हुआ। एक कहावत प्रसिद्ध है कि "गुरु नानक हिन्दू का गुरु और मुसलमानों का पीर था"। अतएव हिन्दुओं ने इनके शव को जलाना और मुसलमानों ने कबर में गाड़ना चाहा। शेष में शव किसीको भी न मिला और उनके ऊपर जो चद्दर पड़ी थी, लाचार होकर दोनों ने आधी आधी बांट ली, जिसको हिन्दुओं ने जलाया और मुसलमानों ने अपनी रीति के अनुसार गाड़ दिया। सम्भवतः ऐसा मालूम होता है, शव के बारे में झगड़ा होने की सम्भावना किसी चतुर पुरुष ने समझकर पहिलेही से उसे यथोचित जगह पहुंचा दिया जिसका किसीको पता भी न लगा कि किस दलवालों में से किसने ऐसा किया।

पं. वेणी प्रसाद

"कवि" और "काव्य"

उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा को धन्य है, कि जिसने मनुष्यजाति के लिये कैसे कैसे सुख साधन वितरित कर दिए हैं; जिनमें सर्वोपरि साहित्य और सङ्गीत जैसे अलौकिक आनन्दकारक विषय के निर्माण की ओर देखते हैं, तब उस कृपानिधि की मर्यादातीत कृपा का यह भी एक अपूर्व उदाहरण मिलता है।

अहा ! पूर्णानुभवी महाराजा भर्तृहरि ने क्या ही यथार्थ कहा है—

"साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः"

नीति शतक—श्लो० १२

निस्सन्देह साहित्य और सङ्गीत विषय से जिस मनुष्य ने अपने चित्त को अत्याल्हादित न करके इस क्षणिक संसार में अपने बहुमूल्य काल को यों ही खोदिया है, उसको पशु से बढ़कर दूसरे शब्द से विभूषित नहीं कर सकते हैं। अस्तु।

आज हम इनमें से केवल साहित्य अर्थात् काव्य के विषय में लिखते हैं। सबसे प्रथम यही लिखना युक्तियुक्त और मनोरञ्जक होगा, कि 'कवि' और 'काव्य' इन शब्दों का क्या अर्थ है? 'कुङ्' धातु से 'कवि' शब्द बना है, 'कुङ्' धातु का अर्थ है शब्द। 'कवि' शब्द का अर्थ है शब्द करनेवाला। शब्द ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दो प्रकार का होता है। ध्वन्यात्मक शब्द वीणानाद आदि है, वर्णात्मक शब्द उच्चारण किया जाता है, सो अकारादि अक्षर है। ये (दोनों) भी रमणीय और अरमणीय दो प्रकार के होते हैं। यहां वर्णात्मक रमणीय शब्द का उच्चारण करने में 'कवि' शब्द की रूढ़ि है। और 'कवि' का तादृश कार्य वही 'काव्य' कहा जाता है।

अब यह द्रष्टव्य है कि सबसे प्रथम 'कवि' शब्द किसके लिये व्यवहृत हुआ है, और 'काव्य' की पहिले पहल किसके द्वारा और कबसे लोकमें प्रवृत्ति हुई है, एवं इस (काव्य) के प्रसिद्धाचार्य कौन हैं ?। इन सब बातों का विचार करने से ज्ञात होता है कि सच्चिदानन्द परमेश्वर ही को प्रथम 'कवि' शब्द व्यवहृत हुआ है, और वेद ही काव्य का मूल है। क्योंकि—

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः"

इत्यादि श्रुतियों में सच्चिदानन्द परमेश्वर को 'कवि' कहा है, और जब परमेश्वर को कवि कहा गया तो उस (परमेश्वर) की वाणी, जो वेद है, सो काव्य सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त वेद में काव्य रचना भी देखी जाती है—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
सोध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—जो आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को राशि, इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को उनका चारा समझता है सो इस विष्णु के परमपद रूप मार्ग के पार होता है। इस वेदान्त सूत्र में "रूपक" अलङ्कार है।

एतावता वेद के साथ ही इस काव्य की भी प्रवृत्ति परमेश्वर द्वारा सिद्ध होती है। एवं रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि पुराण भी काव्य हैं। वाल्मीकि रामायण का पाठ करने का जिन महाशयों को सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, उन्होंने तो उसके प्रति सर्ग की इति श्री में 'आदि-काव्ये' अवश्य पढ़ा होगा।

जैसे व्याकरण के पाणिनि, न्याय के गौतम, इसी प्रकार साहित्यशास्त्र के प्रसिद्धाचार्य भगवान् भरत मुनि हैं। ये भरतमुनि कब हुए सो ठीक समय निश्चित नहीं होसकता। परन्तु इतना निःशङ्क कह सकते हैं, कि वे महानुभाव भगवान् वेदव्यास महाराज से पूर्व हुए हैं। क्योंकि कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यास जी ने अग्निपुराण में, जहां कि अलङ्कार वर्णन किए हैं, लिखा है—

"भरतेन प्रणीतत्वाद्भारती रीति उच्यते"

अर्थात् भरत ने रचना की इससे 'भारती' रीति कही जाती है। भगवान् वेदव्यास महाराजा युधिष्ठिर के समय में थे यह तो प्रसिद्ध ही है। और महाराजा युधिष्ठिर को हुए ४५०० वर्ष हुए हैं, क्योंकि राजतरङ्गिणी के रचयिता पुरातत्व-निपुण कवि कल्हण ने ६५३ वर्ष कलियुग के व्यतीत होने पर पाण्डवों का समय लिखा है।

आदि में इन्हीं महानुभाव (भरतमुनि) का बनाया हुआ "नाट्यशास्त्र" ग्रन्थ काव्य विषय पर है। उसके पीछे इन (भरतमुनि) के ही मत से महाराजा भोज, रुद्रट, आचार्य दण्डी और मम्मटाचार्य आदि बहुत से प्राचीन और अप्पय दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ आदि तत्कालापेक्षा अर्वाचीन विद्वानों ने "सरस्वती कण्ठाभरण" "काव्यालङ्कार", "काव्यादर्श", "काव्यप्रकाश", "चित्रमीमांसा", "रसगङ्गाधर" आदि अपूर्व एवं अकथनीय पाण्डित्यपूरित अनेक ग्रन्थ निर्माण किए हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों के सहारे से ही हम साहित्य विषय में अभिमान रख सकते हैं। किन्तु कराल काल के परिवर्तन से सम्प्रति इस (काव्य) की भी अवनत दशा देख चित्त को बड़ा ही खेद होता है। इसकी अवनति के कारण बहुत से देखे जाते हैं। प्रथम तो पूर्वकाल में भर्तृहरि, भोज, श्रीहर्ष जैसे गुण-ग्राहक, विद्योत्साही, उदारचेता, राजा महाराजाओं की इस ओर अधिकतर रुचि रहती थी। वे महानुभाव प्रगाढ़ प्रतिभासम्पन्न विद्वानों का मनोत्साह बढ़ाके अपूर्व ग्रन्थ सर्वदा निर्माण कराते थे। यही नहीं, किन्तु स्वयं भी व्युत्पत्तिपूर्ण ग्रन्थ-रत्न निर्माण करके साहित्य के भण्डार को परिपूर्ण करते थे। यही कारण है कि हमारे प्राचीन साहित्य का गौरव अद्यापि आसमुद्रान्त प्रकट हो रहा है। परन्तु शोक है कि इस समय के राजा लोगों में उस रुचि का अभाव सा हो गया है। इसी से विद्वान लोगों की लेखनी ने भी हतोत्साहित होके मौनावलम्बन कर लिया है। द्वितीय कुछ मतिमान् लोग विदेशीय भाषा के पूर्ण प्रेमी ही नहीं वरु अभिमानी भी हो गए हैं। इनके अतिरिक्त शेष जो मनुष्य हैं, उनमें अधिकतर तो जड़ बुद्धि हैं, उनको छोड़ के बहुत से ऐसे भी हैं जो अपनी बुद्धि का गौरव इसीमें समझ के इस (काव्य) को तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, कि काव्य केवल मनोरञ्जक और शृङ्गाररस पूरित होने से इससे कुछ लाभ नहीं है। किन्तु हा! ऐसे सु (कु) बुद्धियों के विचार के अन्यथा यदि विचार कर देखा जाय तो यह (काव्य) कितनी प्रयोजनीय वस्तु है? और इससे क्या—

लाभ

है सो अनुभवातिरिक्त सर्वमान्य ग्रन्थों के प्रमाणों से भी सिद्ध है। मम्मटाचार्य ने "काव्य प्रकाश" में लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"काव्यं यशसेर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतर क्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्ता सम्मितयोपदेश युजे ॥"
प्रथमोल्लास श्लो० २

अर्थात् काव्य से यश. द्रव्यलाभ, व्यवहार ज्ञान, दुःख नाश, शीघ्र ही पूर्ण आनन्द और कान्ता के समान (रमणीय) उपदेश प्राप्त होते हैं। इनमें कौन वस्तु किसको प्राप्त हुई वा होती है सो नीचे स्पष्ट किया जाता है–

"यश"

महाकवि कालिदास, भवभूति, आदि की भांति अक्षय यश, जिनके काव्य की अद्वितीय प्रशंसा केवल एतद्देश में ही नहीं वरन् द्वीपान्तरीय विद्वानों द्वारा भी मुक्तकण्ठ से की गई, है।

द्रव्य लाभ

महाराजा श्रीहर्ष, भोज आदि से धावक और अनेक कवियों को अमित द्रव्य प्राप्त होना प्रसिद्ध ही है।

व्यवहार ज्ञान

महाकवि प्रणीत काव्यालोकन से प्रवीणता प्राप्त होने के कारण व्यवहार कुशलता भी स्वभाव सिद्ध है।

दुःख नाश

श्रीसूर्यादि से मयूरादि कवियों की भांति दुःख नाश होता है। मयूर नामक एक कवि के 'सूर्य शतक' ग्रन्थ रचना करने पर भगवान् भास्कर ने प्रसन्न होके उक्त कवि का कुष्ठ नष्ट किया था। यह एक प्रसिद्ध प्राचीन इतिहास है।

शीघ्र ही पूर्ण आनन्द

अर्थात् बहुत कष्टसाध्य यज्ञादिकों के फलरूप स्वर्गादि की प्राप्ति में कालान्तर और देहान्तर में आनन्द प्राप्त होता है। किन्तु काव्य के तो श्रवणानन्तर ही रसास्वादन समुद्भूत अद्भुत अथाह आनन्द होता है। सोही आर्या सप्तशतीकार सहृदय गोवर्धनाचार्य ने कहा है—

आर्या

"सत्कविरसना सूर्पी निस्तुषतर शब्दशालि पाकेन ।
तृप्तो दयिताधरमपि नादियते का सुधा दासी ॥"
आर्या सप्तशती-श्लो० ४६

अर्थात् जो मनुष्य सुकवि की जिव्हा रूपी सूप से बिलकुल तुषरहित किए हुए शब्द रूप शालि (चावल) पाक से तृप्त है, सो अपनी प्रियतमा के अधर रस का भी आदर नहीं करता है, तब बिचारी सुधादासी क्या वस्तु है ?

कान्ता के समान उपदेश

अर्थात् शब्द तीन प्रकार के होते हैं। प्रभुसम्मित, सहृदसम्मित और कान्तासम्मित जिसमें प्रभुसम्मित शब्द, प्रधान वेद स्मृति आदि हैं जो बिधि रूप राजा को भांति आज्ञा करते हैं। सुहृदसम्मित शब्द पुराण इतिहासादि हैं जो सुहृद् की भांति समझाके सदुपदेश करते हैं। इन दोनों से विलक्षण 'कान्ता सम्मित शब्द' शब्दार्थ गुणी भाव से रस प्रगट करनेवाला, ललित रचना निपुण कवि कृत 'काव्य' हैं जो नीति शास्त्र विमुख जनों को रमणीय अर्थ द्वारा कान्ता के समान सरसता पूर्वक अपने सम्मुख करके, "श्री रामादि की भांति चलना चाहिए, न कि रावणादि की भांति" यह सारगर्भित मधुर उपदेश करता है।

उपदेश में मधुरता का होना सोने में सुगन्ध की भांति बड़ा ही दुर्लभ है। सोही महाकवि भारवि ने कहा है—

"हितंमनोहारि च दुर्लभं वचः"–किरातार्जुनीय १ सर्ग श्लो० ४

किन्तु यह अलौकिक गुण एक काव्य ही में है। सत्य कहा है—

स्वादु काव्यरस मिलि रुचै नीति बचन हू कान।
जिमि करि मीठी जीभ व्है कटु औषध हू पान॥

निष्कर्ष यह है कि इस 'काव्य' से जो इच्छा की जाय सो सब प्राप्त हो सकता है। काव्यालङ्कार में रुद्रट ने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अर्थमनर्थोपशमं सममथवा मतं यदेवास्य ।
विरचित रुचिर सुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः ॥
अध्याय १ श्लो० ८

अर्थात् धन, अनर्थनाश, असाधारणसुख, अधिक क्या जो जो कवि वाञ्छा करता है, सो सब देवताओं की रुचिर स्तुति रचना से प्राप्त होता है।

इस उपर्युक्त लेख पर दृष्टि देने से हमारे अनुभवशील पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं, कि वस्तुतः काव्य एक सम्पूर्ण सुखसाधन रूप प्रधान वस्तु है। बस, अब यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि एवंभूत प्रयोजनीय वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना एवं उसकी उन्नति के लिये यत्न करना नितान्त आवश्यक है।

और इस (काव्य) को असार एवं केवल मनोरञ्जक समझना निरी भूल ही नहीं, किन्तु घोर मूर्खता भी है।

यहां तक काव्य का फल लिखा गया। अब इसके निर्माण का कारण लिखने के प्रथम यह लिखना ठीक होगा कि इस समय बहुत से महाशय काव्य निर्माण के साधन एवं महाकवियों के रहस्य से अभिज्ञ होने का कुछ उपाय किए बिनाही काव्य रचना करके उस (काव्य) को प्रसिद्ध कर रहे हैं। पर ऐसी कविता के प्रचार से साहित्य की कुछ उन्नति नहीं होसकी है, उलटी अधिक अवनति ही होती है। क्योंकि काव्य जितना प्रयोजनीय और मनोरञ्जक है उतनाही महान् कष्ट साध्य भी है, जैसा कि कविभूषण मंखक ने कहा है—

"अर्थोऽति चेन्नपदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या ।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेतद्व्यर्थं
विना रसमहो गहनं कवित्वम् ॥"
श्रीकण्ठचरित सर्ग २ श्लो० ३०

अर्थात् कविता में प्रथम अर्थ लालित्य होना ही दुष्कर है। यदि यह हुआ भी तो पदशुद्धि नहीं होती, और यह भी हुई तो रीति अर्थात् छन्द की शुद्धतापूर्वक गुणवती पद रचना नहीं होती; यदि यह भी हुई तो और घटना वर्णनीय विषय की रमणीयता कहां; यदि यह भी हुई तो नवीन वक्रोक्ति की मनोहरता नहीं देखी जाती, और ये सब होने पर भी रस के विना तो काव्य ही व्यर्थ है; निदान कविता बड़ी गहन है।

एतावता काव्य प्रणेता कवि को काव्य रचना करने के लिये लेखनी को हस्तावलम्बन देने के पहिले, उसके निर्माण में क्या करना आवश्यक है उसको जानना चाहिए, और वह क्या है, सो काव्य प्रकाश में कहा है।

"शक्तिर्निपुणता लोक-काव्य-शास्त्राद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञ शिक्षायभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे" ॥
उल्लास १ श्लोक० ३

(१) "शक्ति" अर्थात् काव्य का बीज भूत एक संस्कार विशेष, जिसका लक्षण रुद्रट ने यह कहा है—

"मनसि सदासु समाधिनि विस्फुरण मनेकधाभिधे यस्य ।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः ॥
काव्यालङ्कार अध्याय १ श्लोक १५

अर्थात् जिस (शक्ति) से अविचल चित्त में नाना प्रकार के वाक्यार्थ का विस्फुरण, और कठिनता रहित पदों का मान हो, निदान जिससे नाना विधि के शब्दार्थ हृदयंगम हों, उसको 'शक्ति' कहते हैं।

(२) "निपुणता" अर्थात् लोकवृत्त (स्थावर जङ्गम आदि की स्वरूपादि स्थिति), शास्त्र जो छन्द, व्याकरण, कोश, अर्थशास्त्र, नृत्य गीतादि कला, चतुर्वर्ग (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष), गज, अश्व (इत्यादि की परीक्षा के ग्रन्थ) खड्ग आदि के लक्षणों के ग्रन्थ और काव्य जो महाकवि प्रणीत काव्य इतिहासादि, इनको ज्ञान जनित जो व्युत्पत्ति प्राप्त हो।

(३) "अभ्यास" अर्थात् काव्य रचने और विचारने में कुशल ऐसे सद्गुरु के उपदेश द्वारा काव्य निर्माण और व्याखान में बार बार प्रवृत्ति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये तीनों १ 'शक्ति', २ 'निपुणता', ३ 'अभ्यास', परस्पर सापेक्ष, न कि एक वा दो किन्तु तीनों मिलके इस काव्य रचना के हेतु हैं। अर्थात् ये तीनों जुदे जुदे कारण नहीं हो सकते हैं। किन्तु तीनों मिलके एक कारण है। सारांश यह है कि इन तीनों (शक्ति, निपुणता और अभ्यास) को समानता दी जाने से तीनों ही का होना परमावश्यक है। ऊपर हमने सुप्रसिद्ध 'काव्यप्रकाश' ग्रन्थ का अखण्डनीय मत प्रदर्शित किया है और यही हमारे प्राचीन काल के सर्वमान्य प्रायः सब साहित्य ग्रन्थों का मत है। अब हम ऊपर के मत के विरुद्ध एक महाराष्ट्रीय विद्वान (जो अभी हो गए हैं) का मत प्रकाशित करते हैं। आगे उसकी आलोचना की जायगी।

दक्षिण में श्रीयुत विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर महाशय महाराष्ट्रीय भाषा के एक बहुत अच्छे विद्वान हो गए हैं। ये महाशय संस्कृत काव्य के बड़े मार्मिक रसिक थे और इन्होंने संस्कृत काव्य में बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था। यह बात संस्कृत काव्य पर इनके लिखे हुए निबन्धों से भली प्रकार ज्ञात होती है। इन्हीं महाशय ने एक "विद्वत्व और काव्यत्व" शीर्षक निबन्ध लिखा है। उस निबन्ध में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि काव्यत्व को विद्वत्व की कुछ भी अपेक्षा नहीं है, केवल 'प्रतिभा' मात्रही काव्य का एक मात्र कारण है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

"इस लेख में हमारा प्रधान अभिप्राय यही है कि कवित्व को विद्वता की अणुमात्र भी आवश्यकता नहीं है। भिन्न भिन्न शास्त्रों में पूर्ण रूप से गति प्राप्त कर उसे कविता का सहायक मानना विडम्बना मात्र है, क्योंकि उससे कोई लाभ तो होगा ही नहीं, उलटी जब होगी तब हानि ही होगी।" *

* यह लेख श्री विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर कृत महाराष्ट्रीभाषा की 'निबन्ध माला' के पं० गङ्गाप्रसाद जी अग्निहोत्री कृत "निबन्धमालादर्श" नामक अनुवाद से उद्धृत किया गया है। और आगे भी इसीसे उद्धृत होगा, क्योंकि महाराष्ट्री भाषा के पढ़ने में हिन्दी के पाठकों को कठिनता होती थी।

हमको ऐसे काव्य रस-मार्मिक परमानुभवी विद्वान के मुख-विनिसृत ऐसा कथन देखके बड़ा आश्चर्य होता है। हां, यह बात निस्सन्देह सर्व सम्मत है कि काव्य निर्माण के कारण में 'प्रतिभा' (जिसका पर्याय 'शक्ति' है) को प्रधानता है, अर्थात् यह मुख्य मानी गई है। इस (शक्ति) को दो भेदों में विभक्त करते हुए रुद्रट कहते हैं—

"प्रतिभेत्यपरैरुदिता सहजोत्पाद्या च सा द्विधा भवति।
पुंसा सहजातत्वादनयोस्तु ज्यायसी सहजा॥"

काव्यालङ्कार अ० १ श्लो० १६

अर्थात् शक्ति, जिसको अन्य ग्रन्थकारों ने 'प्रतिभा' नाम से कथन किया है, वह दो प्रकार की होती है—'सहजा' और 'उत्पाद्या'। उन दोनों में सहजा अर्थात् ईश्वर प्रदत्त शक्ति (जिसके विषय में उक्त महाशय का कथन है) श्रेष्ठ है। और उत्पाद्या शक्ति व्युत्पत्ति अर्थात् निपुणता जन्य कष्टसाध्य है।

यह तो हम प्रथम ही कह चुके हैं कि 'प्रतिभा' को प्रधानता है, पर यह नहीं कि वह एक शक्ति मात्र ही काव्य निर्माण का पूर्णतया कारण हो, और व्युत्पत्ति, अभ्यास आदि के लिये यत्न निरर्थक वा उलटा हानिकारक हो, जैसा कि उक्त महाशय का सिद्धान्त है। हमतो साहस पूर्वक ऐसा कह सकते हैं कि जितनी आवश्यकता 'प्रतिभा' की है उतनी ही निपुणता और अभ्यास की भी है। इन तीनों की समानता के प्रमाण में हम ऊपर काव्य प्रकाशगत कारिका लिख चुके हैं। काव्य-प्रकाशकार उस कारिका की व्याख्या में यह स्पष्ट करा दिया है कि ये तीनों मिलके एक कारण है, न कि जुदे जुदे तीन कारण। इसके अतिरिक्त अब हम निम्न लिखित प्रमाण से यह दिखाते हैं, कि केवल 'प्रतिभा' होने से काव्य में चारुता नहीं आ सकती है, किन्तु व्युत्पत्ति अर्थात् विद्वत्ता भी (जिससे युक्तायुक्त विज्ञान प्राप्त होता है) काव्य रचना में नितान्त सहायक है। देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति का स्वरूप कथनानन्तर आचार्य दण्डी ने व्युत्पत्ति को कितनी आवश्यकता प्रतिपादित की है—

"तत्र शक्त्या शब्दार्थौ मनसि संनिधीयते।
तयोः सारासारग्रहणीनरासौव्युत्पत्त्या क्रियते।"

अर्थात् शक्ति से शब्द और अर्थ मन में संनिधान किए जाते हैं, और उनमें से सार का ग्रहण एवं असार का त्याग व्युत्पत्ति द्वारा किया जाता है। ऊपर के लेख को पढ़के हमारे सुविज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं, कि व्युत्पत्ति अर्थात् विद्वत्ता भी काव्य में नितान्त सहायक होने से उसकी भी सर्वथा आवश्यकता है। उक्त महाशय ने अपने मत के प्रमाण में महाकवि जयदेव विरचित "प्रसन्न राघव" नाटक का निम्न लिखित अंश उद्धृत किया है—

"नेटः — नन्वयं (कविः) प्रमाण-प्रवीणोपि श्रूयते। तदिह चन्द्रिकाचण्डातपयोरिव कवितातार्किकयोरेकाधिकरणतामालोक्य विस्मितोऽस्मि।

सूत्रधारः—क इह विस्मयः

येषां कोमलकाव्य कौशलकला लीलावती भारती।
तेषां कर्कश-तर्कचक्र-वचनोद्गारेऽपि किं हीयते॥
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भ शिखरे नारोपणीयाः शराः॥"

इसका भाषानुवाद—

"नट—सुनते हैं यह कवि तर्कशास्त्रमें भी बड़ा प्रवीण है। इस कवि में चन्द्रिका और प्रचण्ड आतप के समान कविता और तर्कना शक्ति को एकत्रित देख मैं बड़ा विस्मित हो रहा हूं॥

"सूत्रधार—इसमें विस्मय की बात ही क्या है? जिन लोगों की वाणी से कोमल काव्य रचना प्रसूत होती है, उसीसे तर्क शास्त्र के तीक्ष्ण बचन भी प्रसूत हों तो इसमें हानि ही क्या है? जिन लोगों ने आनन्द पूर्वक कान्ताकुचमण्डल पर नखक्षत किए हैं। उन्हें मदमत्त हाथी के गण्डस्थल पर वाणघात करना क्या कोई कठिन कार्य है?"

इतना उद्धृत करके फिर शास्त्री जी यों लिखते हैं—

"इसी प्रकार अनुमान सात आठ सौ वर्ष पूर्व ही जयदेव को भी कविता और तार्किकता का विरोध जान पड़ता था।"

इसपर हमको केवल यही वक्तव्य है कि उक्त महाशय अपने मत के पक्ष में इस प्रमाण को देके कितने कृतकार्य हुए हैं, उसके विचार का भार हम अपने विचारशील पाठकों ही पर छोड़ते हैं, क्योंकि हमको तो ऐसा प्रतीत होता है, कि जब उनको अपने मत के पक्ष में प्रमाणों को ढूंढते ढूंढते कहीं कुछ उपलब्ध नहीं हुआ, तब विवश होके उन्होंने उक्त अंश उद्धृत किया है। नहीं तो भला कहां तो वे सामान्य विद्वत्ता के विरुद्ध अपना मत दृढ़ कर रहे थे, और कहां फिर विद्वत्ता के विशेष अंश के बल तार्किकता के विषय में प्रमाण दे बैठे; सोभी अधूरा; क्योंकि उक्त नाटक के लेख में तो प्रत्युतः कविता और तार्किकता के एकाधिकरणता की प्रशंसा व्यक्त होती है। क्या विद्वत्ता कथन मात्र से केवल तार्किकता ग्रहण हो सकती है? तब बिचारे और शास्त्रों के विचारजन्य विज्ञान को (विद्वत्ता को छोड़के) किस वस्तु में समावेश किया जायगा? हां, यदि उनका अभिप्राय केवल तार्किकता ही से था, तो फिर उनको विशेषता से लिखना योग्य था। पर सोभी नहीं है, उनके उक्त निबन्ध से उनका विरोध विद्वत्ता मात्र से ही प्रत्यक्ष देखा जाता है। यहां तक उक्त सब बातें अन्य ग्रन्थों के मत से वा हमारे अनुभव से लिखी गई हैं। अब हम उक्त महाशय के उक्त निबन्ध के एक अंश से यह सिद्ध करते हैं कि उक्त महाशय स्वयं उपर्युक्त अपना नवीन मत निशङ्क स्थिर करने में समर्थ नहीं हुए हैं। कई स्थानों पर उन्होंने कहा है कि इस लेख को पढ़के लोग आश्चर्य चकित होंगे, नानाविध आक्षेप करेंगे, दुःखित होंगे, इत्यादि। इसके सिवाय एक स्थान पर आप स्वयं लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उक्त गुणों को * अप्रधान कहने में हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि काव्य के लिये उनकी कोई अवश्यकता ही नहीं है.....सत्य काव्य से यदि उनका संयोग हो जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी रमणीयता को वे कहीं बढ़ा देते हैं...सर्व साधारण के मनोरञ्जनार्थ रत्नों को जैसे कुन्दन में खचित करना पड़ता है, वैसेही काव्य को उक्त गुणों से अवश्य अलंकृत करना चाहिए....."। इत्यादि।

बड़े आश्चर्य का विषय है कि प्रथम तो आप कह चुके हैं कि विद्वत्ता की अणुमात्र भी आवश्यकता नहीं है, वह उलटी हानिकारक है। अब आप उन गुणों की (जो कि विद्वत्ता द्वारा प्राप्त हो सकते हैं) आवश्यकता बताते हैं और उनका काव्य में होना रमणीयताबर्द्धक बताते हैं। क्या अच्छा होता हमारे माननीय शास्त्री जी महाशय कुछ ऐसे महाकवियों के नाम और उनकी लोकमान्य रमणीय कविता के उदाहरण ठीक ठीक उद्धृत करते जो व्युत्पत्तिहीन केवल शक्तिमात्र से निर्माण की हुई होती। हां, पाश्चात्य महाकवि शेक्सपियर को लेखोपान्त में व्युत्पत्तिरहित कवि अवश्य कथन किया है, परन्तु शेक्सपियर को विद्वत्ता-विहीन कवि किस प्रकार मान सकते हैं, जब कि उन्हींके लेख में उक्त कवि का काव्य श्लेष योजना के उत्साह से पूरित कहा गया है। भला श्लेषमयी कविता बिना विद्वत्ता के कहां हो सकती है! अनुमान होता है कि हमारे शास्त्री जी की रुचि पश्चमीय भाषा के विद्वानों के अधिक मतानुयायी थी; अस्तु जो कुछ हो। शास्त्री जी के निबन्ध उच्चश्रेणी के होने पर भी यह हम अवश्य कह सकते हैं कि उक्त निबन्ध उनका सर्व सम्मत एवं समादरणीय नहीं हो सकता है। तथापि हम उक्त शास्त्री जी महाशय की अलौकिक काव्य मार्मिकता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। केवल यही नहीं, हम उनके अनुग्रहीत भी हैं क्योंकि वे कालिदास, भवभूति यदि महाकवियों के काव्य पर बहुत ही सारगर्भित एवं विद्वत्तापूरित और चित्ताकर्षक आलोचना करके पूजनीय प्राचीन कवियों के लोकोत्तर काव्य का रसास्वाद चखाने के लिये एवं रुचि उत्पादन के लिये साधन रूप निबन्ध लिखकर छोड़ गए हैं, जिनके पढ़ने से उक्त महाकवियों के काव्य का अवर्णनीय रसानुभव काव्य प्रेमी एक साधारण पाठक भी कर सकता है। अस्तु।

काव्य निर्माण का कारण कथन करते हुए हमने ऊपर जो उक्त शास्त्री जी के निबन्ध के विषय में लिखा है, यह लेखोपयोगी होने से आशा है कि अति प्रसङ्ग तथा निरुपयोगी न समझा जायगा।

उपर्युक्त विवेचना से यह प्रतिपादित हुआ कि काव्य निर्माण में कवि को जिस प्रकार 'प्रतिभा' की आवश्यकता है, उसी प्रकार निपुणता और अभ्यास की भी नितान्त अपेक्षा है।

यहां तक काव्य के कारण के विषय में बिचार किया गया। अब हम इसके दोषरहित रचना करने के विषय में लिखते हैं। क्योंकि काव्य निर्माण में उपर्युक्त कारण का ज्ञान जितना गौरवास्पद है, उसी प्रकार काव्य ग्रंथों में कथन किए हुए दोषों से अभिज्ञ हो के उसको जहां तक होसके दोषरहित करना भी कवि का प्रधान कर्त्तव्य है। आचार्य दण्डी ने कहा है—

"तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन"

अर्थात् काव्य में थोड़े भी दोष की उपेक्षा न करनी चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण अलङ्कारयुक्त भी काव्य एक दोष से दूषित होजाता है, जिस प्रकार सर्वालङ्कार विभूषित कामिनी का मुख एक नेत्र हीन होने से। एतावता काव्य के लक्षण में भी "अदोष" शब्द का प्रयोग प्रायः काव्याचार्यों ने किया है। वे दोष किस प्रकार के कितने हैं, सो

* पदलालित्य, मृदुता, मधुरता, सरलान्वय, व्याकरण शुद्धता, छन्दों की निर्दोष व्यवस्था, इत्यादि गुणों को ऊपर उक्त निबन्ध में अप्रधान कह चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यहां उदाहरण नहीं दिखा सकते हैं। उनका ज्ञान काव्य ग्रन्थों द्वारा करना चाहिए। निस्सन्देह सर्वथा निर्दोष काव्य होना अत्यन्त दुःसाध्य है, क्योंकि काव्य प्रकाशादि में जहां काव्यदोष वर्णन किए गए हैं, वहां पर महाकवियों का काव्य भी दूषणयुक्त काव्य के उदाहरण में कहीं कहीं दृष्टिगत होता है, तब इतर काव्य के विषय में क्या कहा जा सकता है? किन्तु इस कथन से हमारा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि महाकवियों का काव्य भी दूषणयुक्त है, क्योंकि आधुनिक काव्य में जिस प्रकार अधिक ढूंढने पर भी नाम मात्र गुण बहुत ही अल्प कहीं कहीं मिल सकते है, उसी प्रकार उन काव्यों में कुशाग्रबुद्धि द्वारा दोष गवेषण करने से भी किसी काव्य में कहीं एक दो उदाहरण मिल जांय तो बहुत है; सो भी केवल—

"दृष्टं किमपि लोकेस्मिन् न निर्दोषं न निर्गुणम्"

इस प्राचीन मत को सार्थक करने ही के लिये मानो उन कविरत्नों ने दोष रक्खे हों। परन्तु जो काव्य अकथनीय गुणराशि परिपूर्ण है, उसमें नाम मात्र कोई दोष कहीं पर हो तो भी कविकुल चूड़ामणि कालिदास के इस कथनानुसार गण्य नहीं हो सकता है।

"एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः"

यहां तक काव्य के प्राचीनकाल के इतिहास, सांप्रतकाल की अवनति के कारण, काव्य द्वारा लाभ, काव्य रचना में कठिनता, काव्य निर्माण का कारण, एवं उसके ज्ञान की आवश्यकता और निर्दोष रचना, इत्यादि विषयों पर लिखा गया है। इसको पढ़कर हमारे सहृदय पाठकों के जी में यह इच्छा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी कि जिस (काव्य) के विषय में ऊपर इतना बिचार किया गया है, वह क्या है? और उसका यथार्थ स्वरूप कैसा है? यद्यपि इस छोटे से लेख में काव्य का उसके भेद प्रभेदों सहित स्वरूप प्रकाश करना तो दुःसाध्य ही नहीं वस्तुतः असंभव है, तथापि संक्षेप से उसका स्वरूप यहां लिखना परमावश्यक है। क्योंकि उसके लिखे बिना पाठकों की इच्छा पूरी न होने के अतिरिक्त यह निबन्ध भी अपूर्ण समझा जायगा। अतएव काव्य का शुद्ध

लक्षण

जिसको पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने पहिले बने हुए अन्य ग्रन्थों का निष्कर्ष निकालके एवं निज अपरिमित पाण्डित्य और अगाध अनुभव द्वारा अपने "रसगङ्गाधर" नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में निश्चित किया है, सो ही लिखते हैं। और वह यह है—

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं।

रमणीय का अर्थ है अलौकिक आह्लाद करनेवाला अर्थात् लोकोत्तर आनन्द करनेवाले अर्थ को प्रगट करनेवाला शब्द काव्य कहा जाता है। रमणीयता कामिनियों के कटाक्षादि में भी होती है, अतः कटाक्षादि से पृथक्ता दिखाने के निमित्त लक्षण में 'शब्द' का ग्रहण किया गया है। काव्य में व्यंग्य ही प्रधान है और व्यंग्य का कथन हो नहीं सकता है, किन्तु वाच्यार्थ से अधिक प्रतीत होता है; एतदर्थ यहां 'वाचक' अर्थात् कथन करनेवाला न कहके 'प्रतिपादक' कहा है। 'प्रतिपादक' शब्द का अर्थ 'कथन करनेवाला' समझना नितान्त प्रमाद है।

इसके मुख्य दो भेद हैं—'व्यंग्य' और 'वाच्य', सोही श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य प्रणीत 'ध्वन्यालोक' गतकारिकाकार ने लिखा है—

"अर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मायो व्यवस्थितः।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्यभेदावुभौ स्मृतौ॥"
प्रथमोद्योत श्लो० २

अर्थ—सहृदयों के श्लाघ्य जो काव्य की आत्मा रूप अर्थ है उसके 'वाच्य' और 'प्रतीयमान' अर्थात् व्यंग्य नामक दो भेद हैं। इनमें से व्यंग्य के मुख्य दो भेद हैं, प्रधान और अप्रधान, अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ध्वनि' और 'गुणीभूतव्यंग्य'। चित्रमीमांसाकार विद्वद्वर अप्पय दीक्षित ने ध्वनि का स्वरूप यह कथन किया है—

"यत्र वाच्यातिशायि व्यंग्य स ध्वनिः।"

अर्थात् जहां वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो वह ध्वनि है। व्यञ्जना से जाने हुए अर्थ को व्यंग्य कहते हैं। सोही 'काव्यप्रकाश' में कहा है—

"व्यापारो व्यञ्जनात्मकः"

अर्थात् व्यङ्ग्यार्थ बोध में जो व्यापार है सो व्यञ्जना रूप है।

व्यञ्जना का अर्थ है एक अञ्जन विशेष। अञ्जन कई प्रकार के होते हैं। जैसे कज्जलादि अञ्जन प्रत्यक्ष पदार्थों को स्पष्ट दिखाता है। सिद्धाञ्जन देशान्तर वा लोकान्तर वस्तु को स्पष्ट दिखाता है। इसी प्रकार यह अञ्जन अभिधा और लक्षणा शक्ति से बोध नहीं कराए हुए अर्थ को स्पष्ट दिखाता है। वह व्यंगार्थ क्या वस्तु है सो कहा है, 'ध्वन्यालोक' की कारिका में—

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणिषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥"

प्रथमोद्योत श्लो० ४

अर्थ—महाकवियों की वाणी में जो पुनः अर्थात् वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ से अधिक प्रतीयमान वस्तु अर्थात् व्यंग्य अर्थ है, सो वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ से अन्य ही है, जिस प्रकार अङ्गनाओं में प्रसिद्ध अवयवों (अङ्गों) से अतिरिक्त लावण्य विभूषित रहता है।

इस ('ध्वनि') का उदाहरण काव्यरस मार्मिक पण्डितराज जगन्नाथ ने यह दिया है—

"शयितासविधेऽप्यनिश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान्।
दयिता दयिताननाम्बुजं दृग्मीलन्नयना निरीक्षते॥"

रसगङ्गाधर प्रथमानन

अर्थ—नायक के निकट ही सोई हुई सामर्थ्य विहीना प्रियतमा, अपने मनोरथ सफल करने के अर्थ, कुछ मुंदे हुए नेत्रों से प्रियतम के मुख कमल को देखती है।

यहां नायक आलम्बन विभाव है, निकट शयनादि कथन से जाना हुआ एकान्त स्थान उद्दीपन विभाव है, तादृश देखना आदि अनुभाव है और लज्जा उत्सुक्यादि व्यभिचारी है। इनके संयोग से नायिका की सम्भोगेच्छा व्यङ्ग्य है, और इसीमें चमत्कार है-अतः ध्वनि है।

इस (ध्वनि) अर्थात् प्रधान व्यङ्ग्य के दो भेद हैं-अविवक्षित वाच्य और विवक्षित वाच्य। इनके भी दो दो भेद हैं-पहिले (अविवक्षित वाच्य) के अर्थान्तर संक्रमित वाच्य और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य, और दूसरे (विवक्षित वाच्य) के असंलक्ष्य-क्रम, और संलक्ष्यक्रम। और इनके आवान्तर भेद तो बहुत से हैं। भाव रस आदि सब 'असंलक्ष्यक्रम' के भेदान्तर हैं। कहांतक लिखें असंख्य भेद हैं। 'गुणीभूत व्यङ्ग्य' का चित्र मीमांसाकार ने यह लक्षण लिखा है—

"यत्र व्यङ्ग्यं वाच्यानतिशायि तद्गुणीभूत व्यङ्ग्यम्"।

अर्थात् जहां वाच्य से व्यङ्ग्य में अधिक चमत्कार न हो अर्थात् वाच्यार्थ प्रधान हो और व्यङ्ग्य गौण हो। इसका उदाहरण यह है—

"राघव-विरह-ज्वाला संतापित सह्य शैल शिखरेषु।
शिशिरे सुखं शयानाः कपयः कुप्यन्ति पवनतनयाय"॥

रसगङ्गाधर, प्रथमानन।

अर्थ—लीला-मानुष-विग्रह महाराज श्रीरामचन्द्रजी के (श्रीजनकनन्दिनी के वियोगजनित) विरह ज्वाला से संतापित सह्याद्रि के शिखर पर शिशिरकाल में सुख पूर्वक सोए हुए बानरगण पवनतनय श्रीहनुमान जी पर कोप करते हैं। यहां वाच्यार्थ तो यह है, और श्री वैदेही के कुशल सम्वाद निवेदन से श्रीरघुनाथ जी को विरह ज्वाला दूर होने से शीतलता हो गई, यह व्यङ्ग्य है, सो गुणीभूत है, क्योंकि इस व्यङ्ग्य की अपेक्षा उक्त वाच्यार्थ ही में अधिक चमत्कृति है। इसके मुख्य भेद आठ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१-अगूढ़, २ अपराङ्ग, ३ वाच्य सिद्ध्यङ्ग, ४ अस्फुट, ५ संदिग्ध, ६ तुल्य प्रधान, ७ काकाक्षिप्त और, ८ असुन्दर। इनके भी भेदान्तर बहुत हैं।

काव्य के प्रथम भेद अर्थात् व्यङ्ग्य के केवल दिङ्मात्र मुख्य भेद ऊपर दिखाए गए हैं। काव्य का दूसरा भेद वाच्य अर्थात् अलङ्कार है, सोही ध्वनिकार ने कहा है—

"तत्र वाच्यः प्रसिद्धो यः प्रकारै उपमादिभिः।
बहुधा व्याकृतः सोन्यै काव्य लक्ष्म विधायिभिः" ॥
प्रथमोद्योत् श्लो० ३

अर्थ—तहां अर्थात् काव्य के दोनों भेदों में प्रसिद्ध जो वाच्य भेद है, सो 'उपमा' आदि अलङ्कारों के प्रकार से बहुधा दिखाया गया है। इसका स्वरूप चित्रमीमांसा में यह लिखा है—

"यदव्यङ्ग्यमपिचारु तच्चित्रम्।

अर्थ—जो बिना व्यङ्ग्य के भी सुन्दर अर्थात् चमत्कारवाला हो, वह चित्र अर्थात् अलङ्कार है। यह तीन प्रकार का होता है। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और शब्दार्थ उभयालङ्कार। शब्दालङ्कार उदाहरण, यथा—

"नव-पलाश-पलाश-वनं पुरः स्फुट-पराग-परागत-पङ्कजम्।
मृदुलतान्त-लतातमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः"॥
माघ ६-२

अर्थ-नवीन पलाशों (पत्रों) युक्त पलाश (ढाक) वृक्ष के वन, पराग (पुष्परज) से परागत (व्याप्त) खिले हुए कमल, आतप से किञ्चित् म्लानता को प्राप्त लताओं के कोमल अग्रभागवाले, पुष्प समृद्धि से सुगन्धित वसन्त ऋतु को वह (श्रीकृष्णचन्द्र) प्रथम देखते हुए। यहां पलाश, पराग, आदि पदों की द्विरुक्ति होने से शब्दों में चमत्कार है। अतः यहां शब्द प्रधान यमकालङ्कार है।

अर्थालङ्कार उदाहरण यथा—

श्यामं सितञ्च सुदृशो नदृशोः स्वरूपं
किन्तु स्फुटं गरलमेतदथामृतञ्च।
नोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव
मोहं मुदञ्च नितां दधते युवानः॥
रसगङ्गाधर द्वितीयानन

अर्थ-सुलोचनी (स्त्री) के (नेत्रोंमें) श्याम और श्वेत रङ्ग नेत्रों का स्वरूप नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष अमृत और विष है; यदि ऐसा न होता तो इनका कटाक्षपात होते ही उसी क्षण युवापुरुष अत्यन्त मोह तथा मोद को क्यों प्राप्त होते! यहां इस वाच्यार्थही में चमत्कार होने से हेतु अपन्हुति अलङ्कार है।

उभयालङ्कार उदाहरण यथा—

दोहा

वन्दनीय किहिक नहीं वे कविन्द मतिमान।
स्वर्ग गये हू काव्यरस जिनको जगत जिहान॥
अलङ्कार प्रकाश द्वितायोल्लास *

यहां 'जगत', 'जिहान' ये भिन्न आकारवाले शब्दों की प्रथम में एकार्थता भान होने में चमत्कार होने से "पुनरुक्तिवदाभास" नामक शब्दार्थ उभय प्रधान अलङ्कार है।

शब्द, अर्थ, और शब्दार्थ उभय, इन तीनों प्रकार के अलङ्कारों का ऊपर सामान्य स्वरूप प्रकाश किया गया है। विशेष भेद तो 'वक्रोक्ति' आदि शब्दालङ्कार के 'उपमा' आदि अर्थालङ्कार के और 'पुनरुक्त वदाभास' आदि उभयालङ्कार के अनेक भेद हैं, यहां कहां तक लिख सकते हैं।

संक्षेप से हमने काव्य के दोनों भेद व्यङ्ग्य और वाच्य का स्वरूप इस प्रकार प्रकाशित किया। इससे यद्यपि उसका सम्यक्ज्ञान प्राप्त करने में हमारे पाठक सन्तुष्ट न होंगे, क्योंकि विस्तार भय से बहुतही समास किया गया है, तथापि इतने से भी काव्य की गौरवता का ज्ञान तो अवश्य ही होगा। अब उपसंहार में केवल हमको यह वक्तव्य है, कि हमारे प्राचीन सबही साहित्य ग्रन्थकारों ने उपर्युक्त प्रकार से काव्य का स्वरूप और उसके भेद कथन किए हैं और इन्हीं में काव्यत्व माना है। किन्तु इसके विरुद्ध पश्चिमीय

* 'अलङ्कार प्रकाश' ग्रन्थ हिन्दी भाषा का गद्य पद्य में हमने लिखा है। इसमें काव्य प्रकाश आदि कई प्राचीन ग्रन्थों के मत से विस्तार पूर्वक अलङ्कार वर्णन किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों के मतानुयायी आधुनिक कितने काव्यज्ञ महाशयों का मत कुछ विलक्षण है। अर्थात् वे महाशय केवल प्रकृति के वर्णन मात्र में ही 'काव्यत्व' प्रतिपादन करते हैं। निस्सन्देह यह विषय भी अवश्य आलोचनीय है, कि कौन सा मत युक्तियुक्त है और वस्तुतः 'काव्यत्व' की निवास-भूमि किसको कह सकते हैं। किन्तु इस विषय पर विस्तारभय से यहां आलोचना न करके एक स्वतन्त्र 'काव्यत्व' शीर्षक निबन्ध में लिखने के लिये हम अपने सहृदय पाठकों से आज्ञा लेते हैं। इस निबन्ध में तो हमारा उद्देश्य केवल काव्यकर्त्ता कवि के लिये कर्त्तव्य कार्य और तत्सम्बन्धीय कतिपय विषयों पर विचार, और काव्य का संक्षेप से स्वरूप प्रकट करना मात्र था, सो हम ऊपर निवेदन कर चुके। आशा है उपर्युक्त विवेचन हमारे काव्यरसिक पाठकों के अरुचिकर न होगा॥

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार

सारनाथ

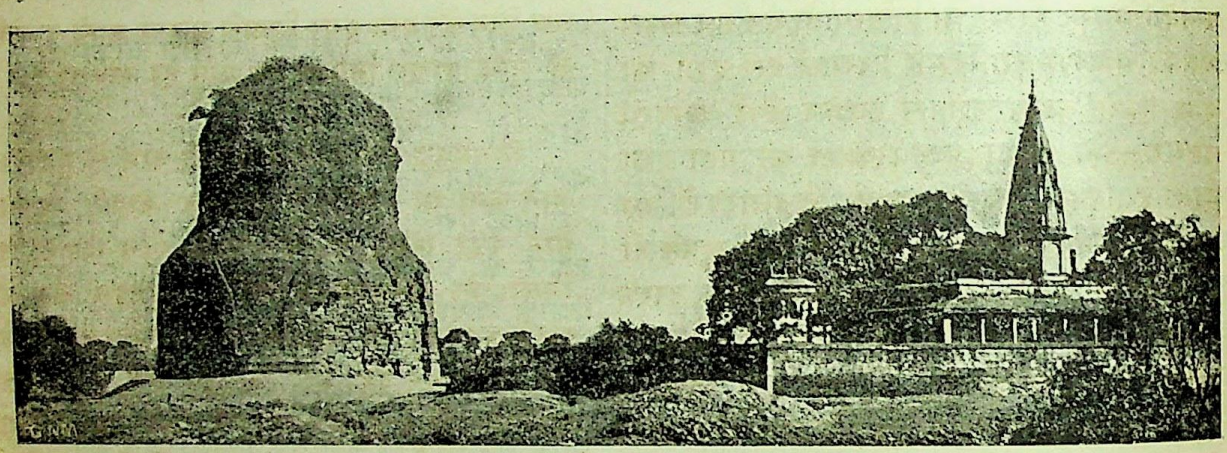

ईसा से ४७७ वर्ष पूर्व भारतवर्ष के एक कपिलवास्तु नामक नगर में राजा शुद्धोदन की पटरानी मायावती के उदर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। इसके धरती पर गिरते ही 'ज्योतिषियों ने यह भविष्यद्वाणी की कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजा होगा, अथवा राज्य छोड़ वैराग्य लेगा, परन्तु उसमें भी प्रसिद्ध होगा"। राजा ने यह वाणी सुन प्रारम्भ से ही ऐसी रचना की जिससे बालक सिद्धार्थ का ध्यान संसार की माया में फंसता जाय और वह दुःख का स्वप्न भी न देखने पावे, क्योंकि उनसे संसार से विरक्ति उत्पन्न हो-जाने की सम्भावना है। उसका पालन पोषण बड़े लाड़ प्यार से हुआ। कुछ बड़े होने पर विवाह की चर्चा छिड़ी। एक अतीव सुन्दरी कन्या से विवाह कर दिया गया और नाना प्रकार के सुख तो थेही, अब इस नवीन प्रकार के सुख के अनुभव प्राप्त करने का अवसर सिद्धार्थ को दिया गया। इनका परस्पर संयोग भी वृथा नहीं गया, एक पुत्र राहुल नाम का उत्पन्न हुआ। यह सब कुछ तो हुआ, किन्तु होतव्यता अति प्रबल है। उसे कौन मेट सकता है? इस संसार में जैसे बड़े बड़े परिवर्तन सदा छोटी छोटी बातों से उत्पन्न हो जाया करते हैं, वैसे ही अब सिद्धार्थ के सङ्ग हुआ। ऐसा कहते हैं कि एक दिन वह अपने रथ पर चढ़ा भृत्यगण सहित फुलवारी की सैर को जा रहा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मार्ग में उसे एक वृद्ध पुरुष देख पड़ा जिसके शरीर की एक एक रगें जीर्णता के कारण पृथक पृथक दिखाई देती थीं; न मुख में एक दांत था, न माथे पर एक केश; सारे शरीर पर झुर्रियां लटक रही थीं; विचारा लाठी टेकता गरदन कंपाता चला जाता था। इसे देखते ही सिद्धार्थ ने सारथी से प्रश्न किया "यह कौन मनुष्य है? क्या इसके वंश में कोई विशेषता है अथवा मनुष्यमात्र की यही दशा होती है?" सारथी ने उत्तर दिया "यह एक वृद्ध पुरुष है; इसकी इन्द्रियां मन्द पड़गई हैं; इसकी दैहिक शक्ति दुःख झेलते झेलते नष्ट होगई है; इसके अपने बिगानों ने इसे छोड़ दिया है; वह इस समय अनाथ अशरण हो रहा है। इसका इस दशा को प्राप्त होना इसके वंश से विशेष कोई सम्बन्ध नहीं रखता। एक दिन मनुष्यमात्र की यही दशा होनी है। इस सृष्टि में जितने जीवधारी हैं, उन सबका अन्तिम परिणाम यही है"। यह सुनते ही राज कुमार ने रथ लौटाने की आज्ञा दी। उसके हृदय में उसी समय से एक सोच उत्पन्न हुआ। संसार की यावत् वस्तुएं उसे अब भय दिलाती देख पड़ने लगीं। जिन वस्तुओं को वह पहिले प्राण से अधिक प्रिय रखता था, उनसे अब आन्तरिक घृणा सी होने लगी। सारांश यह कि संसार से विरक्त करनेवाले भाव उसके हृदय में उत्पन्न हो गए और प्रतिक्षण वे प्रबल होते गए।

ऐसा कहते हैं कि राजपाट छोड़ने के पूर्व एक दिन रात्रि के समय वह अपनी पत्नी के निकट गया और उसे नवजात राहुल को गोद में लिये निद्रित अवस्था में पाया। "संसार और घर द्वार छोड़ने के पूर्व अपने आत्मज को निज अङ्क में ले हृदय से लगाने की उत्कट कामना उसके मन में हुई, परन्तु ऐसा करने से कदाचित् उसकी पत्नी जाग उठे और वह तब अपने महत् कार्य्यसम्पादन में दृढ़ न रह सके, अपने मन को सम्हाल, अपने मनोगत विचारों पर दृढ़ हो, दुख और बेमन से सिद्धार्थ उस स्नेह और आनन्दमय दृश्य से हट गया।" वहां से हटते ही राजपाट को लातमार राजगृह की ओर चला। वहां उसने छओं शास्त्र का अध्ययन किया। फिर बुद्धगया के निकट तपस्या की। परन्तु तपस्या से कोई प्रत्यक्ष लाभ न देख वहां से भी वह चल दिया। तपस्या छोड़ने पर उस के पांच शिष्य उसका साथ छोड़ काशी को चले आए। सिद्धार्थ निरञ्जरा नदी के निकटवर्ती वन में बोधी वृक्ष के नीचे बैठके सोचने लगा और बहुत काल ताईं विचारसागर में निमग्न रहा। अन्त को उसकी आंखें खुलीं। उसके नेत्रों के सम्मुख से अन्धकार का पर्दा उठा और वह उस ज्ञान को प्राप्त हुआ जिससे मनुष्य अपने दुःखों से मुक्ति पाकर निर्वाण को प्राप्त हो सकता है।

गौतमबुद्ध (सिद्धार्थ अब इसी नाम से पुकारा जाने लगा था) यहां से चलकर काशी पहुंचा और वहां सबसे पहिले अपने पांच शिष्यों से मिला जो सरनाथ के समीप ईसापट्टन मठ में इसके उपदेशों पर विश्वास लाए। पांच महीने में ६० शिष्य और बढ़े, और फिर इन सब के निरन्त धर्मोपदेश और उद्योग से इनके धर्म्म का प्रचार होने लगा और उसकी बराबर वृद्धि होती गई। परन्तु अब बुद्धदेव का अन्त निकट पहुंचता आता था, यहां तक कि ८० वर्ष के वयस में कुशीनार नामक स्थान में इनका शरीर छूट गया। दाह क्रिया के पश्चात जो अंश अस्थीरूप में बच गया, उसके आठ भाग हुए और महाराज अशोक ने उनके स्मारक में आठ स्थानों में बड़े बड़े स्तूप और मठ बनवा दिए। आज इन्हीं आठ मठों में से एक का वृत्तान्त हम पाठकों को सुनाया चाहते हैं, और जिसके लिये इतनी भूमिका बांधी गई है।

सारनाथ शब्द के अर्थ प्रभु वा स्वामी के हैं और यह महादेव की एक उपाधि है, जिनका प्रतिरूप एक लिङ्ग, समीप ही झील के तट पर एक मन्दिर में विद्यमान है। परन्तु केनिङ्गहैम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहब * का मत है कि "यह शब्द 'सारङ्गनाथ' का अपभ्रंश है और यह शब्द भी महादेव की उपाधि है"। जिस झील के तट पर यह मन्दिर है उसे सारङ्गताल कहते हैं। इस वार्ता से केनिङ्गहैम महाशय के कथन की पूरी पुष्टि होती है। अब बौद्धमतवाले कहते हैं कि सारङ्गनाथ बुद्धदेव की उपाधि थी†। इसके प्रमाण में वे यह कहते हैं कि बुद्धदेव अपने पूर्वजन्म में ठीक इसी स्थान पर मृगयूथ के राजा होकर परिभ्रमण कर चुके हैं। इस वार्ता का प्रमाण अब ताईं मिलता है कि प्राचीन समय में इन स्तुपों के समीप ही कहीं मृगवाटिका वा हरिनों का रमना था, जिसके विषय में राजा शिवप्रसाद अपने इतिहास में लिखते हैं कि "यह जगह अवश्य सारनाथ के पास रही होगी। अब तक भी वहां खोदने से बौद्धों की मूर्तियां निकलती हैं और बौद्धों की पुरानी इमारतों की नेव मिलती हैं। स्तूप भी मौजूद हैं।" इसमृगवाटिका का बौद्धमतवाले बड़ा आदर करते हैं, क्योंकि इसके विषय में उनके यहां एक विचित्र कथा‡ प्रचलित है। वह यह है कि "प्राचीन समय में काशी के एक राजा आखेट के बड़े अनुरागी थे। इन्होंने इस बन के बहुतेरे मृगों का खेल में बध किया। इसपर मृगयूथ नृपति (बुद्ध) ने उन्हें रोका और यदि खेल में मृगों का बध न करें तो एक मृग प्रति दिन देने की प्रतिज्ञा की। राजा ने यह बात स्वीकार करली और उसे एक मृग प्रति दिवस मिलता रहा। ऐसा कहते हैं कि कुछ काल के पश्चात् एक दिन एक गर्भवती मृगी की राजा के पास जाने की पारी आई। उस मृगी ने जाना अस्वीकार किया और कहा कि यद्यपि मेरा प्राणान्त आन पहुंचा है, परन्तु मेरे गर्भ के अत्यल्प जीव का दिन नहीं पुरा हुआ। मृगनृपति (बुद्ध) को यह सुनकर बड़ी दया आई और उसके बदले वह आप राजा के निकट चले गए। राजा यह कथा सुनकर बड़ा चकित हुआ और कहने लगा कि "मैं मनुष्य देह धर के भी अबताईं एक मृग के समान हूं। परन्तु आप मृगरूप में मनुष्य हैं।" यह कहकर राजा ने मृगरूपी कर लेना बन्द कर दिया और वह बन भी सदा के लिये मृगबाटिका बनाने को दे दिया"।

इसी रमने में बौद्धों का स्तूप और मठ है। परन्तु मठों का तो अब पता नहीं। बनारस के रहनेवाले इन स्तूपों को धमेख कहते हैं। इस 'धमेख' शब्द की उत्पत्ति के विषय में बड़ा मत विभेद है। कुछ तो यह कहते हैं कि यह 'धर्ममृग' का अपभ्रंश है, क्योंकि यहां हरिन बहुत पाए जाते थे और उनका बध उनके धर्मग्रन्थों में मना था। दूसरे यह कहते हैं कि यह शब्द 'धर्मोपदेशक' से* होते होते कालान्तर में धमेख बन गया है, क्योंकि उनका कथन है कि बौद्धधर्म का उपदेश प्रथम प्रथम इसी स्थान से प्रारम्भ हुआ है। और महाराज अशोक ने इसी स्थान पर एक कीर्तिस्तम्भ निर्माण करा के 'धर्मोपदेशक' उसका नाम रक्खा। इन दो अनुमानों से यह निर्णय करना कि वास्तव में यह शब्द क्या है, बड़ा कठिन है; परन्तु मेजर केनिङ्गहैम का कथन अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है।

सीलोन के बौद्ध धर्मग्रन्थों में सारनाथ को स्वयं एक नगरी माना है और लिखा है कि सारनाथ काशीराज्य के अन्तर्गत है। परन्तु और कई प्राचीन ग्रन्थों में इसे बनारस का एक भाग माना है। अब वर्तमान समय का बनारस वरुणा नदी से कोई ½ मील दक्षिण दिशा में स्थित है और सारनाथ उससे तीन मील और उत्तर दिशा

* See Archaelogical Survey N. W.-P. Vol. I by G. Cunningham.

† See Sherring's Benares.

‡ See Huen Thsang's 'सियाकु'

* See 'Monumental Antiquities and Inscriptions, Vol. II. P. 215,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है। सारनाथ और बनारस के बीच अब ताईं कहीं ऐसे खण्डहर वा पुरानी इमारतों के ईंटों का ढेर और कहीं ऐसे टीले देख पड़ते हैं, जिनसे यह अनुमान होता है कि किसी समय में बनारस की बस्ती वहीं रही होगी।

चीन देश का फाहियान नाम का यात्री ५ वीं शताब्दी के आदि में भारतवर्ष में आया था। वह अपने भ्रमणवृत्तान्त में लिखता है कि "हेङ्ग नदी (गङ्गा नदी) के किनारे किनारे पश्चिम दिशा में जाने से मैं फोलोनाई (बनारस) नामक नगर में पहुंचा। यह नगर कियाशि (काशी) राज्य में है। इस नगरी के उत्तर पश्चिम कोण में दस ली (वर्तमान २ माइल से कुछ कम) के अन्तर पर सारङ्गनाथ का मन्दिर स्थित है।" वह इसीके समीप एक मठ का वर्णन करता है और लिखता है कि इसके सन्निकट चार स्तूप और थे, जिनमें से एक तो अब तक उस स्थान पर कीर्ति स्वरूप खड़ा है, जहां श्री बुद्धदेव ने पहिले पहल अपने धर्म पर व्याख्या की थी। वह इसीके "आस पास दो 'सेङ्ग क्यालान' (मठ) का वर्णन करता है, और लिखता है कि "इसमें धर्म्मानुरागी जन रहा करते थे। प्राचीन समय में यह रमना 'पीचीफो' (बुद्ध) का निवासस्थान था, हरिण इस वन में बहुतायत से पाए जाते थे। जब महात्मा बुद्ध अपने महान मनोव्रत में कृतकार्य्य हुआ चाहते थे, तो देवताओं ने यह गान किया कि राजा 'पीटसिङ्ग' (शुद्धोधन) के पुत्र ने धार्मिक जीवन अङ्गीकार कर लिया है, उसने धर्मविषयक गूढ़ तत्वों का भली भांति अध्ययन किया है, एक सप्ताह में वह 'फो' हो जायगा। 'पीचीफो' यह सुन कर नीवान (निर्वाण) को प्राप्त हुआ, और इसीसे यह स्थान उस अविनाशी के हरिण का रमना कहा जाता है। उस महानुभाव ने इस स्थान पर धर्म व्याख्यान दिया था, इस कारण उसके अनुयायी जनों ने यहां (इस स्थान पर) एक मठ बनवा दिया है"। यह फाहियान का कथन है। इसके अनन्तर ७वीं शताब्दी के मध्य में एक दूसरा चीनी यात्री हुयन थसाङ्ग नामक देशाटन करता करता भारतवर्ष में आया था। उसने भी अपने भ्रमण-वृत्तान्त में सारनाथ के विषय में बहुत कुछ उल्लेख किया है, जिसका कुछ अंश उद्धृत करके मैं पाठकों को सुनाता हूं। वह लिखता है कि "गङ्गा नदी से लगभग दस ली के अन्तर पर ईशान कोण में मृगउपवन स्थित है। यह उपवन आठ भागों में विभाजित है, और चारों ओर दिवार से घिरा है। इसके बीच के खम्भे श्रृङ्खलाबद्ध खड़े हैं, और सुन्दर सुन्दर दोमहले प्रासाद बने हैं। एक दो सौ फीट ऊंचा विहार है जिसके शिखर पर स्वर्ण का उभड़ा हुआ एक अनमोला (आम) फल बना हुआ है। इसकी नेव और सोपान पत्थर की हैं। कीर्तिस्तंभ के चारों ओर ईंट के आलों की १०० पंक्तियां हैं। इन प्रत्येक आधारों में बुद्धदेव की स्वर्णप्रतिमा स्थापित है। विहार के मध्य में बुद्धदेव की एक पीतल की बड़ी मूर्ति है। इस विहार से दक्षिण-पश्चिम कोण में एक दुसरा स्तूप पत्थर का बना हुआ खड़ा है, जिसे महाराज अशोक ने निर्माण कराया था।

इसके अभिमुख एक तीसरा स्तम्भ ७० फीट ऊंचा है, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसी स्थान पर बुद्ध ने पहिले पहल धर्मोपदेश किया था। इसके समीप ही सात छोटे स्तूप और हैं। इस रमने के भीतर तीन जलाशय हैं, जहां महात्मा बुद्ध ने स्नानादि किया था। इनमें से एक जलाशय के तट पर एक चौकोन पत्थर रक्खा हुआ है, जिसके विषय में कहा जाता है कि इसपर बुद्ध देव के काछे के सूत्रों का चिन्ह देख पड़ता है"।

ये दोनों यात्री इस विषय पर एकमत हैं और दोनों ही इस वार्ता का अपने अपने वृत्तान्त में उल्लेख करते हैं कि जहां महात्मा बुद्ध ने पहिले पहल धर्मव्याख्यान दिया था, और जहां उसके पांच शिष्यों ने आकर उसको अभिवन्दना की थी और उसके उपदेशों पर विश्वास लाए थे, वहां एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तिस्तम्भ निर्माण करा दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि इन दोनों ने एक ही स्तंभ को देखा था।

हुएन थसाङ्ग के लेख से सिद्ध होता है कि उसके समय में सारनाथ के रमने में कई एक स्तूपस्तम्भ थे, परन्तु काल की कुटिलता और विधर्म परायण राजाओं के क्रूर अत्याचारों से अब केवल दो स्तम्भ देखने में आते हैं और शेष सब मिट्टि में मिला दिए गए, जिनका अब कहीं पता निशान भी नहीं मिलता* इन दोनों में से एक धमेख के नाम से प्रसिद्ध है, और दुसरा २५०० फीट की दूरी पर इससे ठीक दक्षिण दिशा में है, जिसे चौखण्डी कहते हैं। यह स्तम्भ लोरी-की-कुदान † के विचित्र नाम से भी प्रसिद्ध हो गया है। इस की ऊंचाई ७४ फीट है, और शिखर पर एक अष्ट-कोण भवन बना हुआ है, जो २३½ फीट ऊंचा है। इस भवन के एक द्वार पर एक शिलालेख लगा है, जिसमें लिखा है कि बादशाह हुमायूं इस टीले पर चढ़े थे, और उसीके स्मारक चिन्ह में यह भवन निर्माण कराया गया है। इस समय सारनाथ में चार मुख्य खण्डहर देख पड़ते हैं, और मैदान में जिस ओर देखिए उधरही टूटी फूटी ईंटें पड़ी हैं, जिनमें से कुछ तो सादी और कुछ पर चित्रकारी की हुई हैं। ये सब ईंटें दृढ़ और पक्की हैं। इस खण्डहर में कहीं कहीं खण्डित मूर्तियां भी देख पड़ती हैं, परन्तु दिनों के फेर ने और कुटिल काल ने इन्हें ऐसा जर्जरित बना दिया है कि, इन्हें देखते ही चित्त में यह भाव उठता है कि वास्तव में यह संसार परिवर्तनशील है, सदा एक सा दिन किसी का भी नहीं रहा; अन्यथा यह कब सम्भव था कि जहां बौद्ध धर्म का जन्म हो, जिसे तीर्थ स्थान समझ के चीन जापान और तिब्बत देश से यात्रीजन दर्शन के हेतु आवें, जिन महात्मा बुद्ध के विमल यश ने धार्मिक संसार में भारतवर्ष का मुख उज्वल कर रक्खा है, उनके स्मारक में कीर्ति-स्तम्भ बनें और उनकी यह दुर्दशा हो कि उनके शिखर पर कांटे और घास पात उग आए हों और उलूक और चील कौओं ने अपने घोंसले बना लिए हों। परन्तु नहीं, सृष्टि की यह सामान्य बातें हैं, ऐसा नित्य प्रति हुआ ही करता है और होता ही जायगा।

हम ऊपर कह आए हैं कि इस समय सारनाथ में चार मुख्य खण्डहर देख पड़ते हैं, इन खण्डहरों में से एक तो पत्थर का वह बड़ा स्तम्भ है जो धमेख के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा उस स्तम्भ का खण्डहर जिसे बाबू जगतसिंह ने ईंटों की लालच से खुदवा डाला था, जिसका स्थानान्तर में वर्णन किया जायगा। तीसरे उन इमारतों के चिन्ह, जिनको जेनरल कनिङ्गहैम ने स० १८३५-३६ ई० में खुदवा के पता लगाया। चौथे ईंटों का एक ऊंचा और स्थूल टीला जिसे चौखण्डी कहते हैं, और जिसके शिखर पर एक अष्टकोण भवन बना है।

अब हम पहिले धमेख का वर्णन किया चाहते हैं, क्योंकि चारों में यही मुख्य है। इस गोल स्थूल

---

* इन क्रूर अपहरणों के दृष्टान्त में हमें बड़े दुख से प्रगट करना पड़ता है कि वरुणा नदी पर पुल बनाने के समय काशी मुनिसिप्यालिटी ने ४८ बड़ी बड़ी मूर्तियां और बहुतेरे चित्रकारी किए हुए पत्थर सारनाथ से उठवाके सेतुबन्ध के आस पास जल का तोड़ रोकने के हेतु नदी में फेंकवा दिये थे, और इसी प्रकार जब दूसरा पुल बना तो वहीं से पचास साठ गाड़ियां पत्थर लदके गईं, और जल में फेंक दी गईं, परन्तु जगतसिंह (यह राजा चेतसिंह के दिवान थे) की कारवाइयां इनसे भी बढ़ गई हैं। शहर में एक बज़ार बनवाने के हेतु इन्हों-ने सारनाथ का एक सारा स्तूप खोदवा के गिरवा डाला, और ईंटें और पत्थर ले गए। मि. शेरिङ्ग इनके इस जघन्य कार्य्य के विषय में लिखते हैं कि धमेख के नीचस्थ भाग का ऐसे कुदशा को प्राप्त होना जगतसिंह की निकृष्टता और अधमता के कारण हुआ है, और ऐसा कहा जाता है कि केवल कुछ रुपए बचाने के लिये इस स्तूप का उन्होंने असाहसिक नाश कर डाला।

† इस विचित्र नामकरण का कारण यह बतलाते हैं कि लोरी नाम का एक अहीर उस पर से कूद कर मर गया था, तभी से बनारसवाले इस लोरी-की-कुदान कहने लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तम्भ का व्यास धरातल में ९३ फीट है, और यह १२८ फीट ऊंचा है। इसके नीचे का भाग ४३ फीट की ऊंचाई तक पत्थर का बना हुआ है, जिसके पत्थर लोहे की कीलों से बैठाए हुए हैं। इसका ऊपरी भाग ईंटों का है, किन्तु बाहर की एक वा दो ईंटें खसक कर नष्ट हो गई हैं, जिससे यह सन्देह होता है कि इनमें या तो पत्थर जड़े रहे होंगे, अथवा पलस्तर रहा होगा और इस प्रकार रंग दिया हो कि वह भी नीचे की नाईं पत्थर का जान पड़े। परन्तु पलस्तर की विशेष सम्भावना है, क्योंकि यह कुछ असंभव सा जान पड़ता है कि इसमें के सारे पत्थर गिर कर नष्ट हो गए हों और हज़ारों में से एक भी नाम मात्र के लिये न बचा हो। इसके नीचे के भाग में बाहर की ओर उभड़े हुए आठ खण्ड बने हैं, और इन प्रत्येक खण्डों की चौड़ाई २१ फीट ६ इञ्च है। इन खण्डों में अर्द्धगोलाकार आले बने हुए हैं, जिन में ऐसा अनुभव होता है कि किसी समय बुद्ध की मूर्ति स्थापित रही होगी। किसी किसी जर्जरित प्रतिमाओं के, जो बच गई हैं, देखने से जान पड़ता है कि इन प्रतिमाओं के हाथ वक्षस्थल तक उठे हुए होंगे, और दाहिने हाथ का अंगुष्ठ और तर्जनी बांएं हाथ के कनिष्ठ पर रख छोड़ी थी, जिससे यह आशय जान पड़ता है कि वह अपनी युक्ति को प्रमाणित करने की प्रेरणा कर रही हैं। इन आलों में ऐसा अनुमान किया जाता है कि बुद्ध की मनुष्य परिमाण प्रतिमा रही होंगी।

पश्चिमी खण्ड में आले के नीचे पुष्प और पल्लव के चित्र बने हुए हैं, और इनके मध्य में एक पट्टिका जड़ी हुई है, जो कदाचित इस अभिप्राय से लगाई गई हो कि इस भवन का नाम और उसके निर्माण का समय खुदवा दिया जाय। धमेख के चारों ओर आलों के नीचे नीचे चित्र और अलङ्कारादि की तेहरी पंक्ति बनी हुई है। इनमें से मध्य की श्रेणी में, जो सबसे अधिक चौड़ी है, कि क्षेत्र चित्र बने हुए हैं। ऊपरवाली श्रेणी सब से कम चौड़ी है, और इसमें कमल की लताएं बनी हुई हैं। दक्षिण के खण्ड में कमल के पुष्प पर एक चकवा बैठा हुआ है, और मध्य में एक मनुष्य कमल की लताओं को हाथ में लिए उसके पुष्प पर बैठा है। इसके दोनों ओर कमल के एक पुष्प हैं, और इन पुष्पों पर राजहंस की जोड़ी बनी है। इन के ऊपर मण्डूक का चित्र बना हुआ है। इन पक्षियों के भाव अति मनोहर हैं, और मनुष्य का भाव अत्यादरयुक्त और सुन्दर देख पड़ता है। कमल की लता अपनी लहलहाती और ललित टहनियों, कोमल कलियों और खिले पुष्पों सहित अति सुन्दर देख पड़ती है * इस स्तूप का उपरी भाग बड़ी जर्जरितावस्था में है। इसके शिखर पर घास पात उगे हैं, और एक वृक्ष भी देख पड़ता है। यह स्तूप स्थूल है, परन्तु मध्य में केन्द्र के पास एक छोटी कोठरी है, और उसके अन्तर से एक संकीर्ण धूमनाली ऊपर तक बनी हुई है, जिसमें से आकाश देख पड़ता है। इस कोठरी में जाने के लिये एक संकीर्ण मार्ग बना हुआ था।

एक खण्ड की चौड़ाई ३६ फ़ीट ६ इञ्च है, जिसे आठ से गणना करने से २९३ फीट होती है, जो इस स्थूल स्तम्भ की परिधि है।

सारनाथ के खण्डहरों के खोदने और उसकी अन्तरङ्ग बातों के जानने की उत्कट कामना प्रारम्भ से ही एतद्देशीय तथा विदेशीय विद्वानों को समान रूप से रही है, इसी हेतु कई एक प्रसिद्ध अङ्गरेज़ों ने इसे खुदवा के अनेक अन्वेषण किए हैं। इनमें जेनरल केनिङ्गहैम, मेजर किटो और मिस्टर ई. टामस और डो. एफ. हाल के नाम मुख्य हैं। परन्तु इनमें भी कनिङ्गहैम का परिश्रम सबसे अधिक बहुफलप्रद सिद्ध हुआ है। वह अपनी रिपोर्ट † में लिखते हैं कि "मैं एक बेर इन्हीं खण्डहरों में एक स्थान पर खुदवा रहा था कि कोई

* Mr. Sherring's Benares

† Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. XXXII.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०½ फीट की गहराई पर मुझे एक अभिलिखित पत्थर मिला, जो २८ इञ्च लम्बा, १३ इञ्च चौड़ा और ४ इञ्च मोटा था। यह पत्थर इस समय बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के म्युज़ियम में है। इस शिलालेख पर संस्कृत के कुछ शब्द लिखे थे, जिसका अर्थान्तर मि. हौजसन ने यों किया है कि संसार के "यावत कार्य्य का कोई कारण होता है; इन कारणों का बुद्ध ने भली भांति निरूपण किया है। उस महान शर्मण ने जीवन से मुक्ति पाने के कारण भी बताए हैं"। इस शिला लेख के अक्षर बहुत ही स्पष्ट हैं।

ऐसे ही एक बेर खुदवाते हुए इन्हें एक गृह की छत सी दृष्टिगोचर हुई। कुछ अधिक खुदवाने पर वह छत एक छोटे जलाशय के तट से जा लगी। फिर इस आंगन के चारों ओर दुहरे खंभों के आधार मिले, और इनके बीच कतवार में एक धुन्धले रंग का पत्थर मिला जिसपर बुद्ध देव की निर्वाण के समय की प्रतिछाया बनी हुई थी। यह पत्थर इस समय कलकत्ते के म्युज़ियम में है। इस प्रतिछाया में महात्मा बुद्ध के शय्या को चारों ओर अनुचर जन खड़े हैं,—कोई तो मृतक शरीर पर छाता लगाए है, कोई भक्तिपूर्वक उन के चरण धरे हुआ है। इनके अतिरिक्त नवग्रह तथा अष्ट शक्ति के चित्र भी बने हुए हैं"। ऐसे ही इन्हें एक बेर कोई १०० मूर्तियां और प्रतिछाया मिली थीं, जिन्हें इन्होंने कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी में भेज दिया था।

मिस्टर ई. टामस (बनारस के जज थे) और डाक्टर एफ. हाल को भी बहुत सी मूर्तियां और शिलालेख मिले थे, जिनमें से कुछ तो इन महाशयों ने एशियाटिक सोसायटी में भेज दिया और कुछ मुर्तियां बनारस कालिज में रक्खी हुई हैं।

सन् १७९४ ई० में बाबू जगतसिंह ने एक बड़े स्तूप को गिरवा डाला था। गिराती समय मजूरों को संगमर्मर के दो बर्तन मिले, जो एक दूसरे के भीतर रक्खे थे। भीतर वाले बर्तन में मनुष्य की कुछ हड्डियां थीं, और साथ ही कुछ मोती, सोने की पत्तियां, और रत्न थे। इसी स्थान में उन्हें बुद्ध देव की एक मूर्ति मिली थी, जिसपर संवत् १०८३ (अर्थात् १०२६ ई०) खुदा हुआ था।

११वीं वा १२वीं शताब्दी में जब भारतवर्ष से बौद्धमतावलम्बी निकाल दिए गए और उनके स्थान इत्यादि फूंक दिए गए, तो ऐसा जान पड़ता है कि उन सभों ने बुद्ध की मूर्ति और शिलालेख इत्यादि भूमि में गाड़ दिए, फिर इन खण्डहरों में स्थान स्थान पर राख के ढेर का मिलना भी इस बात को पुष्ट करता है।

जेनरल कनिङ्गहैम, मेजर किटो और मिस्टर टामस के अन्वेषण ने यह सिद्ध कर दिया है कि धमेख और चौखण्डी के बीच किसी समय मठ तथा दुसरी इमारतें होंगी। वे यह कहते हैं कि इन मठों के नीचे ऐसी दिवारें और इमारतों की नेव मिली हैं जिससे यह जान पड़ता है कि किसी प्राचीन इमारतों के खण्डहर पर ये मठ इत्यादि बने थे। इनमें कुछ मूर्तियां और प्रतिछाया ऐसी मिली हैं जिनपर ५वीं और ६ठी शताब्दी के अक्षर खुदे हुए हैं। इनमें एक विचित्र बर्तन एक बेर मिला, जिसे चैत्य कहते हैं। यह बर्तन मिट्टी का था। इसके नीचे का भाग तो सपाट था, परन्तु ऊपर नोकीला था। जब उसका पेंदा उससे पृथक कर दिया गया तो उसमें से मिट्टी की एक मोहर वा मुद्रा निकली * जिस पर ६ठी शताब्दी के अक्षरों में बौद्ध-धर्म-विषयक कुछ वाक्य खुदे हुए थे।

अब तक यह सारनाथ का स्थान वर्तमान है। वर्ष में एक बेर यहां मेला भी लगता है और विलायती अथवा बौद्धधर्मावलम्बी यहां जब कभी काशी आते हैं तो अवश्य जाते हैं। लार्ड कर्ज़न जिस समय काशी आए थे तो इस स्थान को देखने गए थे। उन्हें यहां की अवस्था देखकर दुःख हुआ था।

* See Monumental Antiquities and inscriptions, Vol. II.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यहां पर उनकी आज्ञा से एक कैरोगेटेड आयरन का छप्पर पड़ गया है, जिसके नीचे टूटी फूटी मूर्तियां आदि बटोर कर रख दी गई हैं। सुनने में आता है कि इस स्थान की दशा के लिये कुछ और भी प्रबन्ध होगा। वास्तव में अब तक इस स्थान को देखकर हृदय के भाव कुछ और ही हो जाते हैं और उस समय का स्मरण आने लगता है जब वहां सुन्दर नगरी बसी हुई थी और बौद्धों का निवासस्थान था। क्रूर काल ने किसीको नहीं छोड़ा, भला ये स्थान क्यों बचने लगे थे!

बा० केशवप्रसाद सिंह

महिषशतक की समीक्षा

हमारे "बलीवर्द" "और गर्दभ काव्य" को देखकर कई लोगों ने अप्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार की कविता लिखना उनके मन में वाणी का असत्प्रयोग करना है। कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरञ्जन और प्रमोद-दान है। चाहे जिस विषय का कवित्व हो, यदि उससे चित्त चमत्कृत और हृदय प्रफुल्लित हुआ, तो यह समझ लेना चाहिए कि कवित्व सफल हो गया। हय गजादि का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। शिशुपालवध में माघ ने ऊंटों तक का वर्णन किया है। इस प्रकार की कविता को हम दूषित नहीं समझते। जिस कविता पर, आज, हम यह निबन्ध लिख रहे हैं, उस कविता ने आज तक बनी हुई पशुवर्णनात्मक सारी कविताओं को मात किया है। इसका नाम "महिष शतक" अथवा "माहिषशतक" है। इसमें भैंसे की स्तुति है।

२—"महिषशतक" के कर्ता बाल नामक एक महाविद्वान् थे। महाविद्वान् हम इनको इसलिये कहते हैं, क्योंकि इनकी कविता में इनकी अलौकिक विद्वत्ता का साक्ष्य प्रायः प्रति पद्य में मिलता है। दो दो अर्थ वाले अनेक श्लोक लिखकर, इन्होंने भैंसे को कवि, तार्किक, वैयाकरण, मीमांसक, योगिराज, भूपाल, दिक्पाल, मुनि, गृहस्थ, देवता, दैत्य, समुद्र, पर्वत, रामायण, महाभारत आदि सभी कुछ सिद्ध किया है! यहां तक कि भैंसे में परब्रह्म का भी आरोप किया है!! इस प्रकार का व्यापार अप्रतिम प्रतिभा और असामान्य विद्वत्ता के बिना सर्वथा असाध्य है। बाल कवि ने "महिष शतक" लिख कर, काव्यप्रकाश-कर्ता की "नियतिकृत नियम रहितां" इस उक्ति की यथार्थता प्रमाणित कर दी है।

कवियों को ऐश्वरीय नियमों का बन्धन नहीं होता। वे अपनी एक स्वतन्त्र ही सृष्टि की रचना किया करते हैं। नाल और पत्तों के बिना कमल नहीं होता; और जब होता है तब जल ही में होता है। इस प्राकृतिक नियम की ओर कविजन दृक्पात तक नहीं करते। उनका कमल कामिनियों का कोमल मुख है। चन्द्रमा को कविजन चन्द्रमा ही नहीं कहते; वे कहते हैं कि आकाश-गङ्गा में खिला हुआ वह एक वृहदाकार सरोरुह है! बाल कवि भी भैंसे को भैंसा नहीं कहते; वे उसे सर्वदेवमय, ईश्वरावतार, सर्वशास्त्र-पारङ्गत, राजाओं का भी राजा मानते हैं!! कवियों की स्वतन्त्रता का यहां अन्त है। इस प्रकार की भी विलक्षण कविताएं जब संस्कृत में विद्यमान हैं, तब, कारण वश, यदि हम "बलीवर्द" सदृश पद्य लिख डालें तो कोई आश्चर्य्य नहीं। इस संसार में जितने काव्य आज तक हुए हैं, वे सब उन उन कवियों के अन्तःकरण के व्यक्त-स्वरूप किम्वा चित्त समझने चाहिएं। इन कविता-चित्रों के भाव और कौशल को देख कर इनके निर्माता कवियों की स्थिति, विचार, अन्तरङ्ग रहस्य और काव्य करने के कारण आदि का बहुत कुछ पता लग जाता है; और उनके अन्तःकरण से अपने अन्तःकरण का समीकरण करने से उन्हींके से विकारों का तत्क्षण अनुभव होने लगता है। बाल कवि को चोल देश के राजा के अधिकारियों ने बहुत पीड़ित किया था। उनपर कवि ने वाक्यरूपी तीक्ष्ण-बाण-वर्षा की है। कवि की खेदोक्तियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन कर उसके साथ सहानुभूति और चोल-राज तथा उसके अधिकारियों पर घृणा हुए बिना नहीं रहती।

३-बाल कवि कब हुए और कब उन्होंने "महिष शतक" बनाया, यह उन्होंने नहीं लिखा। शतक का दूसरा श्लोक यह है —

ये जाता विमलेऽस्मिन् भोसलकुले सूर्येन्दुवंशोपमे।
राजानश्चिरजीविनश्च सुखिनस्ते सन्तु सन्तानिनः॥
ये तद्वंशपरम्पराक्रमवशात् सभ्याः समभ्यागता-
स्ते सन्तु प्रथमानमानविभवा राज्ञां कटाक्षोर्म्मिभिः॥

अर्थात् चन्द्र और सुर्य-वंश के समान विमल इस भोसलवंश में जो राजा उत्पन्न हुए हैं वे आयुष्मान्, सन्ततिमान् और सुखी रहें। वंश परम्पराक्रम से जो उनकी सभा के सभ्य हैं, उनपर राजाओं की कृपा बनी रहे और उनका मान तथा वैभव सदैव बढ़ता रहे।

ग्रन्थ के अन्त में भी कवि ने भोसल नरेश को आशीर्वचन कहा है। इससे यह विदित होता है कि जिस समय नागपुर में भोसलों का राज्य था, उसी समय बाल कवि विद्यमान थे।

४-"महिष शतक" की सुबोधिनि नामक एक टीका है। इसे श्रीनिवास पण्डित ने शक १७२६ को वैशाख कृष्ण षष्ठी को समाप्त किया है। यह उन्होंने अपनी टीका के अन्त में लिखा है। इस टीका को बने केवल २७ वर्ष हुए। यद्यपि यह बहुत आधुनिक है, तथापि इसकी प्रत्येक पंक्ति में लिखनेवाले का पाण्डित्य झलकता है। इसी टीकाकार ने लक्ष्मी सहस्र, भारत चम्पू और भैष्मी परिणय चम्पू की भी टीका लिखी हैं। श्रीनिवास के पिता का नाम कृष्ण, पितामह का रामचन्द्र और प्रपितामह का सिद्धेश्वर योगिराज था, यह भी इन्होंने टीका में लिखा है। अपने विषय में ये यह लिखते हैं —

तत्सुतः श्रीनिवासोऽहं रामपादाब्जषट्पदः।
साहित्यशास्त्रनिष्णातो वेदवेदांगपारगः॥

जिससे सिद्ध होता है कि ये रामोपासक थे। ये अपने ही मुख से अपने को साहित्य में निष्णात और वेद वेदाङ्ग में पारङ्गत कहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये परम पण्डित थे। इनकी बनाई हुई टीकाएं इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनके प्रपितामह कोल्हापुर में रहते थे और शिव छत्रपति के गुरु थे। श्रीनिवास पण्डित के लिये, यहां पर, यद्यपि हमने भूतकाल का प्रयोग किया है, तथापि हमको यह विदित नहीं कि वे इस समय जीवित हैं अथवा नहीं। यह भी हमको विदित नहीं कि किस नगर में उन्होंने यह टीका लिखी। टीका समाप्त होने के एक ही महीने के अनन्तर "महिषशतक" पूना के "जगद्धितेच्छु" यन्त्रालय से निकला है, जिससे यह सूचित होता है कि उस समय श्रीनिवास पण्डित पूना ही में, अथवा वहीं कहीं, उसीके आस पास थे। "महिषशतक" के विषय में जो आख्यायिका हम सुनते आए हैं, उसकी पुष्टि श्रीनिवास पण्डित ने अपनी टीका की भूमिका में की है। उसका संक्षिप्तसार हम नीचे देते हैं।

५-भोसलों की राजधानी नागपुर में एक श्रोत्रिय ब्राह्मण का बालक बाल कवि नामा था। यह बाल कवि यथार्थ ही बाल कवि था। सोलह ही वर्ष के वय में यह अनेक विद्याविशारद हो गया था। एकबार चोल देशान्तर्गत श्रीरङ्गपत्तन का राजा नागपुर आया। वहां भोसला राजा की सभा में बाल कवि की चातुरी और विद्या देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और भोसलाधीश से बाल कवि को अपने साथ ले जाने की इच्छा उसने प्रकट की। नागपुर के राजा ने उसकी इच्छा पूर्ण की। चोलाधिप बालकवि को अपनी राजधानी में लाए। वहां अपनी सभा में, अपने नगर के समस्त विद्वानों को बुलाकर, बाल कवि के साथ राजा ने शास्त्रार्थ कराया। शास्त्रार्थ में बाल कवि की जीत हुई। तब से बाल कवि चोलनरेश के यहां तक प्रेमपात्र हुए कि राज-मन्त्रियों तक को वे तृणप्राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगे। यह बात मन्त्रिमण्डल और उन परास्त हुए पण्डितों को बहुत बुरी लगी। उन लोगों ने परामर्श करके, एक दिन राजा को एकान्त में पाकर, बाल कवि के प्रतिकूल अनेक बातें कहकर, राजा का चित्त कवि की ओर कलुषित कर दिया। उन्होंने यहां तक बातें बनाईं कि यह कवि आपको मारकर आपका सिंहासन छीन लेना चाहता है। राजा ने इस जाल को सत्य समझ कर बाल कवि को अपनी राजधानी से निकाल दिया। निकाले जाने पर बाल कवि ने जीविका के लिये एक ऐसी वृत्ति ग्रहण करनी चाही जिसमें श्रीमान राजमन्त्री और विद्वान् पण्डित दोनों का उनसे द्वेष रखने का अवसर न मिले। उन्होंने कृषकवृत्ति अवलम्बन करने का निश्चय किया और भैंसे मोल लेकर वे कृषी करने लगे। कृषी में बहुत अन्न हुआ। यह समाचार जब उनके शत्रुओं को मिला तब उन्होंने वह सब धान्य हरण कर लिया। इसपर बाल कवि बहुत कुपित हुए; परन्तु उन लोगों को और कोई दण्ड न दे सकने के कारण भैंसे की स्तुति के मिष उन्होंने उनको भैंसे से भी भद्दा बना दिया।

यह "महिषशतक" के निर्म्माण होने का कारण है। चोल देश के राजा और उसके अधिकारी सूबेदारों को बाल कवि ने जो धिक्कारा है, उससे तथा उनके धन धान्यादि के लुटजाने के विषय में "महिषशतक" में जो उन्होंने उल्लेख किया है, उससे भी इस आख्यायिका की सत्यता प्रमाणित होती है।

६–यहां पर यह शङ्का हो सकती है कि जब चोलेश्वर ने बाल कवि का अनादर किया, तब वे अपने पूर्वाश्रयदाता भोसलानरेश के यहां क्यों न चले आए? खेती क्यों करने लगे? इसका कारण या तो यह होगा कि अनादृत होकर श्रीरङ्गपत्तन से नागपुर लौट जाना उन्होंने लज्जाजनक माना; या वहीं उनको चोलनरेश ने पहले कुछ भूमि दे रक्खी होगी; जिसे छोड़ लौट जाना उन्होंने अनुचित समझ कर, अपनी ही भूमि में वे कृषी करने लगे। क्या आश्चर्य्य है जो राजा के अधिकारियों से दुःखित होकर पीछे से वे नागपुर चले भी आए हों।

७–दूसरे पेशवा बाजीराव के समय में अर्थात् १७४० ई० के लगभग, भोसलों का आधिपत्य नागपुर में हुआ और १८५३ ई० तक बना रहा। १८५३ ई० में नागपुर अङ्गरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। अतः १७४० ई० के अनन्तर और १८५३ ई० के पहले बाल कवि का होना सिद्ध है। परन्तु श्रीरङ्गपत्तन पर हैदरअली और टीपू का प्रभुत्व १७९९ ई० तक था, इसलिये १७४० और १७९९ ई० के मध्य बाल कवि का चोलदेश को जाना अनुमान करना अनुचित है। हैदर और टीपू के सदृश अकृतविद्य, कट्टर और मराठों के महाशत्रु के यहां उनका रहना नितान्त असम्भव है। टीपू के अनन्तर श्रीरङ्गपत्तन का सिंहासन कृष्णराज को प्राप्त हुआ था। इस राजा का राज्य प्रबन्ध अच्छा न था। इसके समय में इसके कर्म्मचारियोंही का विशेष प्राबल्य था। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में इसीके यहां बाल कवि रहे होंगे और इसीके सूबेदारों ने उन्हें सताया होगा।

८ "महिषशतक" के छठे पद्य में बाल कवि कहते हैं :—

नानाजीप्रभुचन्द्रभानुशहजीन्द्रान्दरायादयो।
विद्वांसः प्रभवो गतः श्रितसुधासन्दोहजीवातवः॥
विद्यायां विषबुद्धयो हि वृषलाः सभ्यास्त्विदानीन्तनाः।
किं कुर्वेऽम्ब! कृषे! व्रजामि शरणं त्वामेव विश्वावनीम्॥

अर्थात्—सुधा के समान जीवन के ओषधि रूप नाना जी, चन्द्रभानु, आनन्दराय आदिक विद्वान् प्रभु अब नहीं रहे। आजकल के दुःशील अधिकारी ऐसे हैं जो विद्या में विष की भावना करते हैं। सारे संसार की पालनकर्त्री हे मा कृषे! इसीलिये हम तेरी शरण आए हैं। करें क्या?

इस श्लोक में उल्लिखित नाना जी, पेशवाओं के प्रसिद्ध प्रधान नाना फड़वीस जान पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बड़े ही गुणग्राही थे। १७९७ ई० में वे अहमदनगर में कैद किए गए और १७९९ ई० में वे मरे। नन्दिराय अथवा नन्दिराज नामक मैसूर के राजा का एक प्रधान था। इसीके हाथ से हैदर अली ने राज्यसूत्र छीना था। बाल कवि का आनन्द राय सम्भवतः यही होगा। १७६१ ई० में यह अधिकारच्युत हुआ था। इन दोनों पुरुषों के लोकान्तरित होने पर कवि ने महिषशतक बनाया है, क्योंकि ऊपर दिए गए श्लोक में यह स्पष्ट लिखा है कि, ये लोग अब नहीं रहे। अतएव यह निभ्रान्त है कि बाल कवि ने इस शतक की रचना १९वीं शताब्दी के आरम्भ में की है अर्थात इनको हुए अभी १०० वर्ष भी नहीं हुए।

९—"महिशषतक" के १८वें श्लोक में श्रीधर और अम्बुदीक्षित और २०वें में कुट्टि नामक कवियों के नाम आए हैं। वहां के वर्णनक्रम से, इन कवियों की, बाल कवि के समय, विद्यमानता द्योतित होती है। परन्तु ये तीनों कवि कहां हुए और कहां रहे, इसका पता नहीं लगता। श्रीधर से श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी से शायद अभिप्राय हो। ७४वें श्लोक में भैंसे की समता कवि ने चन्दा ख़ां से की है; परन्तु इस चन्दा ख़ां की भी कोई वार्ता विदित नहीं।

१०—बाल कवि बहुत अर्वाचीन हैं; परन्तु इनकी कविता में अर्वाचीनता का चिन्ह नहीं है। इनकी कविता प्राचीनों की सी बहुत ही सरस और सरल है। "महिषशतक" में इन्होंने अपने पाण्डित्य की पराकाष्ठा दिखलाई है। ३० से लेकर ८५ श्लोक तक जो कुछ इन्होंने कहा है। सब दो दो अर्थों से गर्भित कहा है। भैंसे ऐसे निन्द्य पशु में दैत्य, देवता, तपस्वी, गृहस्थ, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि सभी का तादात्म्य दिखला देना अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है।

इस शतक में १०७ पद्य शार्दूल क्रीड़ित वृत्त में हैं। पहले के १४ पद्यों में भूमिकास्वरूप काव्य करने के कारण इत्यादि का विवरण है। १५ से २९ तक और ८६ से १०५ श्लोक तक भैंसे की सामान्य प्रशंसा और राजाओं तथा उनके आश्रित अधिकारियों की निन्दा है। १०६ में भोसलों को आशीष और १०७ में ग्रन्थ समाप्ति, स्वनाम-निदेश आदि है। बीच के ३० से ८५ श्लोक पर्यन्त जो कुछ है विलक्षण है। जिस भैंसे को कानपुर की सड़कों पर गाड़ी खींचते देख करुणा आती है, वह वहां रावण के समान गम्भीर गर्जन कर रहा है; कर्ण के समान दान दे रहा है; अर्जुन के समान बाण चला रहा है; इन्द्र के समान सिंहासनासीन होकर सुख भोग कर रहा है और मुनियों के समान ध्यान में निमग्न हो रहा है! कभी वह मीमांसक बनता है, कभी तार्किक, कभी वैय्याकरण, कभी वेदपाठी, कभी ज्योतिर्विद् और कभी कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी महाकवि!! हमारे महिषासुर के पुण्यवान् पुत्र किस श्लोक में किसकी समता धारण कर रहे हैं, यह हम सविस्तर लिखते हैं। देखिए—

श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम	श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम
३०,३१,३२	राजा	५०	बिट
३३	बालक	५१	भरताचार्य्य
३४	दुष्टों के दण्डदाता	५२	मत्स्यावतार
३५	यजुर्वेदाध्यायी	५३	कूर्म्मावतार
३६	मध्वाचार्य्य	५४	वाराह
३७	रामानुज	५५	नृसिंह
३८	महायोगीश्वर	५६	वामन
३९	दीक्षित	५७	परशुराम
४०	परब्रह्म	५८	राम
४१	इन्द्र	५९	बलराम
४२	मन्मथ	६०	कृष्ण
४३	शालग्राम	६१	बौद्ध
४४	समुद्र	६२	कल्की
४५	हनूमान्	६३	शङ्कर
४६	कार्तवीर्य्यार्जुन	६४	पर्वत
४७	सुकवि	६५	अनेक प्राचीन राजाओं का समूह
४८	सत्कविकृत-प्रबन्ध		
४९	रसिक	६६	अर्जुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकाङ्क	जिससे समता की गई है उसका नाम	श्लोकाङ्क	जिस से समता की गई है उसका नाम
६७	कर्ण	७७	मीमांसक
६८	भारत की कथा	७८	ग्रन्थरूप
६९	द्रोण	७९	नवरसरूप
७०	कपिशताकार	८०	अष्टदिक्पाल
७१	बालि	८१	सुवर्ण
७२	लङ्का	८२	मुनि
७३	रावण	८३	रोगी हो कर दृढ़ाङ्गधारी
७४	चन्दा ख़ां		
७५	महावैय्याकरण	८४	गृहस्थ
७६	तार्किक	८५	महिषासुर

भैंसे ! तू बड़ा भाग्यशाली है !

११—ग्रन्थारम्भ में बाल कवि कहते हैं—

"सब संसार का कल्याण हो; मनस्ताप से सन्तप्त सज्जन सुखी रहें; राजा लोग सुपथ पर चलें; उनके धर्म्मिष्ठ मन्त्री दीर्घायु हों ! भोसल वंश के भूपाल चिरजीवी हों और उनकी सभा के सभ्यों का मान बढ़े ! अधर्म्म से धान-धन्य सम्पादन करने वाले और राजा के समीप-स्थित लोगों को उत्कोच (रिश्वत) द्वारा वश करके प्रजा का सर्वस्व हरने वाले अधिकारी यमालय को जावें ! इस चोल देश में जीविका का और कोई मार्ग न देख कर जिन द्विजोत्तमों को महानुचित कृषी करनी पड़ी, उनको भी जो दुराचारी जन दुर्वचन कहते हैं उनका मुख क्रिमियों का निवासस्थान होवे !! वेद में कहा है कि कृषी से दुर्भक्ष नहीं होता और आपत्ति में मनु ने भी कृषी करना दोषरहित माना है। इसीसे हम ने इस समय कृषी का आश्रय लिया है। ईश्वर हमारी सहायता करे। कृषी का आश्रय न लें तो करें क्या ? आज कल के राजा तो केवल द्रव्यहरण करना जानते हैं, और कुछ नहीं।

मधु से भी मीठी उक्तियों से इन लक्ष्मीलोलुप राजाओं की स्तुति करते करते जब हम थक गए, तब हमने वैश्यवृत्ति का आश्रय लिया और शत निष्क व्यय करने पर महिष नाम के प्रभु तक हमारी पहुंच हुई। इस नए प्रभु ने हमारी सम्यक् प्रकार से रक्षा की; अतः आज हम इसकी सहर्ष स्तुति करते हैं। जो जिसकी रक्षा करता है, वही उसका प्रभु है। इस श्रीमान् महिष ने हमारी स्पष्ट रक्षा की है। इसीलिये इसकी स्तुति करके हम अपनी वाणी को सफल करना चाहते हैं। हमें पीड़ा पहुंचाने वाले और हमारी महिमा को न जाननेवाले पुरुषों की जो हमने निन्दा की है, उसे सुन कर गुणग्राही राजा प्रसन्न होवें। भाग्यवानों के यहां अनादर होकर कृषी द्वारा जो कुछ हमने सम्पादन किया था, उसे लूट ले जानेवाले सुबेदारों की अधम भैंसे की स्तुति के मिष, जो हमने निन्दा की है और उनको जो वाग्दण्ड दिया है, उसके लिये कवियों को निरङ्कुश माननेवाले विद्वान् हमें क्षमा करें" !

यह "महिषशतक" की भूमिका है। इस लिखने से यह विदित होता है कि उस समय मैसूर की राज्य-व्यवस्था बहुत ही बिगड़ गई थी। किसी का धन और जीवन सुरक्षित न था।

१२—श्रीमान् महिषमहीप की कुछ महिमा सुनिए—

स्तोतुं त्वां महिषाधिराज सुगुणं दीदांसते धीर्मम ।
त्वञ्च स्तुत्यतया प्रबन्धवचसां योग्योऽसि किन्त्वन्वहम् ॥
वित्तोन्मत्तनरेन्द्रदुर्गुणघटामिथ्यास्तवोपक्रमै—
र्वाग्भिः पर्य्युषिताभिरद्यभवतः कुर्वे नुतिं क्षम्यताम् ॥

भावार्थ—हे महिषाधिराज ! हम आपकी स्तुति तो करना चाहते हैं; परन्तु सर्व-गुण-सम्पन्न आप बड़े बड़े ग्रन्थों में नई नई उक्तियों द्वारा वर्णन किए जाने योग्य हैं। धनोन्मत्त राजाओं की दुर्गुण-घटाओं का प्रतिदिन मिथ्या स्तवन करनेवाली अपनी उच्छिष्ट वाणी से हम आज आपकी स्तुति करते हैं, हमारा अपराध क्षमा हो।

अष्टास्वभ्रमुवल्लभादिषु भवानेकस्त्वमत्रागतः ।
किम्वा जङ्गमतां गतः कुलगिरिष्वेकस्त्वमत्युन्नतः ॥
आहोस्विन्महिषासुरस्त्वमधुना हन्तावतीर्णः पुन—
र्ब्रूहि श्रीमहिषेन्द्र विस्मयकरं स्मेरं मदीयं मनः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ–आठ दिग्गजों में से क्या आप एक दिग्गज तो नहीं आगए? अथवा अत्यन्त ऊंचे महेन्द्रादि सात विख्यात पर्वतों में से एक आपको चलने फिरने की शक्ति तो नहीं मिल गई? किम्वा आपके रूप में कहीं उस महिषासुरने फिर तो अवतार नहीं लिया? हे महिषेन्द्र! हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिए, हमको बड़ा विस्मय हो रहा है॥

मूर्ता किं तमसां छटा किमथवा नीलाचलो जङ्गमो।
जीमूतः किमु सञ्चरिष्णुरवनौ पादैश्चतुर्भिर्युतः॥
इत्येवं किल तर्कयन्ति मसृणत्वङ्मांसलः श्यामलो।
येषां सैरिभमण्डलेश्वर दृशः पन्थानमारोहसि॥९०॥

भावार्थ–हे भैंसों के मण्डलेश्वर! चिकनी त्वचा वाला आपका महा पीवर काला काला शरीर जिसके नेत्रों के सम्मुख आ जाता है, उसे यह भ्रम होता है कि यह अन्धकार की मूर्तिमती छटा तो नहीं? किम्वा गमनशील नीलाचल पर्वत तो नहीं? अथवा पृथ्वी पर चार पैरों से चलने वाला महामेघ तो नहीं?

भ्रातः सञ्चर मा बहिर्बहुतरव्याहारचूडामणे।
त्वामालोक्य समुन्नताकृतिधरं सञ्चारिणं भीषणम्।
कोऽप्येष क्षितिभृत्क्षितौ पुनरसावित्याग्रहोदग्रधी-
र्दम्भारिस्तव दम्भनाशनकृते दम्भोलिमुत्तम्भयेत्॥९१॥

भावार्थ–बहुत खानेवालों के बाबा, भाई महिष! आप बाहर न निकला करें। इधर उधर फिरनेवाले आपके भयङ्कर भूधराकार रूप को देख कर इन्द्र को कहीं यह भ्रम न हो जावै कि कोई पक्षधारी पर्वत फिर पृथ्वी पर आगया! ऐसा भ्रम हो जाने से आपके दम्भ को दूर करने के लिये कहीं उसे अपना वज्र न उठाना पड़े!!

त्वं बद्धोऽसि हि मद्गुणैर्दृढमहं बद्धोऽस्मि च त्वद्गुणै-
स्त्वं मां रक्षसि कासराधिप सखे रक्षामि च त्वामहम्॥
इत्यन्योन्यकृतोपकारमुदितावावामिह द्वावपि।
स्थास्यावः शरदां शतं द्रुतममी नश्यन्तु नः शत्रवः॥२४॥

भावार्थ–आप हमारे गुण (रस्सी) से बँधे हैं और हम आपके गुण से बँधे हैं, आप हमारी रक्षा करते हैं और हम आपकी। इस प्रकार परस्पर उपकार द्वारा प्रसन्न होनेवाले हम दोनों सौ वर्ष तक जीते रहें; और हमारे शत्रुओं का शीघ्र ही नाश होवै!

१३–अब उन्मत्त राजाओं के विषय में बाल कवि की दो एक उक्तियां सुनिए—

विद्वन् मा कुरु साहसं शृणु वचो वक्ष्यामि यत्तेहितं।
त्यक्त्वा कामदमत्र सैरिभपतिं निर्व्याजबन्धुं नृणाम्॥
श्रीरङ्गाभिधपत्तनं प्रति सखे मा गा ज्वरस्यालयं।
दूरे श्रीर्निकटे कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः॥१९॥

भावार्थ–हे विद्वन्! हे सखे! सुन; हम तेरे हित की बात कहते हैं। सारी कामनाओं के सिद्ध करनेवाले, मनुष्यों के अकारण बन्धु इस महिष नरेश को छोड़ कर महा सन्तापकारी श्रीरङ्गपत्तन नगर की ओर जाने का तू कभी साहस न कर। वहां धन प्राप्ति दूर; परन्तु यमराज के आगमन का सूचक उसके वाहन के गले की घण्टा का शब्द निकट है।

न ब्रूषे परुषं न जल्पसि मृषावादान्न गर्वोन्नतिं।
धत्से प्रत्युत लांगले विनियुतः सङ्क्लेशयित्वा वपुः॥
मर्त्यानामनुपाधिजीवनकृते त्वं कल्पसे कासर।
त्वय्येवं सति दुर्नृपाननुसरन् हन्तास्म्यहो वञ्चितः॥२१॥

भावार्थः–आप न कभी कठोर वचन कहते हैं, न झूठ बोलते हैं, न किसी प्रकार का गर्व ही रखते हैं; प्रत्युत हल में जोते जाने पर, अपने शरीर को कष्टित करके, जीवों की जीविका सम्पादन करते हैं। ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न आपके रहते, दुःशील राजाओं की सेवा करके हम अवश्य ठगे गए!

तिष्ठन्तु क्षितिपा धनान्धतमसप्राग्भारदूरीभवत्-
कृत्याकृत्यविवेकमत्तहृदया नैवाश्रये तानहम्॥
एहि त्वं सरसीतटं तव वपुर्मूर्धाभिषेकं जले-
रस्मत्संवसथावनाय कुरु राजेव संरक्ष माम्॥३०॥

भावार्थ–धन के मद से कृत्याकृत्य-विचार-हीन उन्मत राजा अपने घर बैठे रहें। अब हम उनके आश्रय की परवाह नहीं करते। आप हमारे साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलैय्या के तट तक चलिए; अपने ग्राम के पालन-निमित्त, वहां, हम जल से आपका मूर्धाभिषेक करें। राजा के समान आप ही हमारी रक्षा कीजिए!

१४-मैसूर के सूबेदारों को बालकवि का दिया हुआ वाग्दण्ड देखिए—

देहं स्वं परिताप्य यद्धि भवता धान्यं धनं वार्जितं।
तत्सर्वं प्रसभं हरन्ति हि सुबेदाराः स्वकीयं यथा॥
हेतुस्तत्र किलायमेव महिष ज्ञातो मया श्रूयतां।
पुत्रा एव पितुर्हरन्ति सकलं प्रेम्णा बलाद्वा धनम्॥२६॥

भावार्थ-हे महिष! अपने शरीर को इतना परिताप पहुंचा कर, जो कुछ धन अथवा धान्य आपने उपार्जन किया है, उस सबको अपना ही सा समझ कर, ये सूबेदार बल पूर्वक हरण कर रहे हैं। इसका कारण हमने समझ लिया। सुनिए, बलात्कार अथवा प्रेम से पुत्र ही पिता का धन हरण करते हैं; यही कारण है जो ये आपका सर्वस्व लूट रहे हैं! अर्थात् ये लोग आपके लड़के (भैंसे) हैं!!

क्षुद्बाधां यदि यासि कासरपते तर्हीदमाकर्ण्यता-
मस्माभिर्हि तृणीकृतान् खलु सुबेदारान् सुखं भक्षय॥
निःसारानपराधलेशरहितानकिञ्चित्करान्।
घासान् भक्षयता त्वया कृषिमतां को वोपकारो भवेत्॥२७॥

भावार्थ-हे महिषराज! यदि आपको क्षुधा लगे तो, हमारे द्वारा तृणवत् माने गए इन सूबेदारों को आप सुख पूर्वक खा जाइए। इन निरापराध, निःसार और तुच्छ कुश, काश आदि तिनकों को खाने में हमारे समान किसानों को भला आपसे क्या लाभ पहुंचैगा?

१५-"महिषशक" में जो दो दो अर्थों से गर्भित श्लोक हैं उनको भाषा में अच्छे प्रकार समझाना कठिन है। तथापि दो एक के भावार्थ लिखने का प्रयत्न करके, हम इस निबन्ध की समाप्ति करेंगे। महिषासुर जी का 'सुकवि' होना देखिए—

उल्लेखान् विविधान् करोषि च पदन्यासस्तवान्यादृशः।
पद्यालोकनदत्तदृष्टिरसि च प्रायः प्रबन्धे स्थितः॥
कोशाधारतया स्थितश्चरसिक*प्राये स्थले सादर-
स्तेन श्रीमहिषाधिराज सुकविं त्वामेव मन्यामहे॥४७॥

भावार्थ—कवि, नाना प्रकार के उल्लेखादिक अलङ्कारों की रचना करता है; आप भी (अपने सींगों से) अनेक उल्लेख (पृथ्वी पर रेखाएं खींचना) करते हैं। कवि, लोकोत्तर पदों की योजना करता है; आपकी भी पद-योजना (पाद-क्षेप) लोकोत्तर होती है। कवि, पद्यावलोकन (पद्य के देखने) में दत्तदृष्टि रहता है; आप भी पद्यावलोकन (पद्या = मार्ग के अवलोकन) में दत्तदृष्टि रहते हैं। कवि, प्रबन्ध (ग्रन्थ) के सहारे रहता है; आप भी प्रबन्ध (बन्धन) के सहारे रहते हैं। कवि को कोश (शब्दकोश) का आधार रहता है; आप को भी कोश (द्रव्यवान् घर) का आधार रहता है। कवि "रसिकप्राये स्थले सादरः" अर्थात् रसिक-युक्त स्थल से सादर स्नेह रखता है; आप भी "चरसि कप्राये स्थले सादरः" अर्थात् जलयुक्त स्थान ही में विचरण करते हैं। अतएव, हे महिषाधिराज! हम आपही को सुकवि मानते हैं।

१६-कृष्ण की साम्यता सुनिए:—

संप्राप्तः सहजं बलं भुवि महान् जातोऽसि कृष्णात्मना।
कंसा†नन्दमहो मुखेन सरसः गृह्णासि गोपान्वितः॥

---

* 'क' का अर्थ जल और 'चरसि' का अर्थ फिरना है। कवि के अर्थ में पदच्छेदः—(च) रसिकप्राये स्थले सादरः। महिष के अर्थ में पदच्छेदः—चरसि कप्राये स्थले सादरः। दोनों में अक्षर वही रहते हैं, परन्तु पदों का विश्लेषण करने से पृथक् पृथक् दो अर्थ निकलते हैं।

† इस श्लिष्ट वाक्य को हम हिन्दी में भली भांति नहीं दरसा सकते। संस्कृत में महिष के लिये ऐसा अन्वय होगा—

गोपान्वितः (सन्) अहो त्वं सरसः कं (जलं)
मुखेन सानन्दं गृह्णासि।

और यदुनाथ के लिये ऐसा होगा—

गोपान्वितः (सन्) मुखेन सरसः (यदुनाथः) अहो कंसानन्दं गृह्णाति।

दोनों पद्यों में, इस श्लोक के दूसरे चरण के अक्षरों में साम्य है; परन्तु श्लिष्ट पदों को अलग अलग करने से जुदे जुदे दो अर्थ निकलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैकाभिर्महिषीभिरन्वहमपि क्रीडां विवित्से मुदा ।
तत्साक्षाद्यदुनाथ एव महिषाधीश त्वमालक्ष्यते ॥६०॥

भावार्थः—इस भूमण्डल में बल (बलराम) को सहज ही पाकर, कृष्ण की आत्मा द्वारा, यदुनाथ उत्पन्न हुए हैं; आप भी बल (शक्ति) को सहज ही में पाकर कृष्णात्मा (काले आत्मा के, काले रङ्ग के) उत्पन्न हुए हैं। मुख में सरसता को धारण करनेवाले यदुनाथ ने गोपालों से अन्वित हो कर कंस के आनन्द को ले लिया (नाश किया) है; आप भी गोपालों ही से अन्वित होकर मुख से तड़ाग के जल को सानन्द ग्रहण करते हैं। यदुनाथ ने अनेक महिषी गणों (रानियों के समूह) के साथ प्रतिदिन क्रीड़ा की है; आप भी अनेक महिषी गणों (भैंसियों के समूह) के साथ सदैव क्रीड़ा करते हैं। अतः हे महिषी के अधीश्वर! आप साक्षात् यदुनाथ (कृष्ण) दिखलाई देते हैं!

१७—दो अर्थ वाला बस एक और पद्य सुन लीजिए। महिष महाराज की, इसमें, अनेक कपियों से समता की गई है—

सुग्रीवोसि महान् गजोसि वपुषा नीलः प्रमाथी तथा ।
धूम्रश्चासि महानुभाव महिष त्वं दुर्मुखः केसरी ॥
इत्थं ते सततं महाकपिशताकारस्य साहाय्यतः ।
सीतां प्राप्य विलङ्घ्य दुःखजलधिं नन्दामि रामः स्वयम् ७०

भावार्थ—हे महानुभाव महिष! आप सुग्रीव (अच्छी ग्रीवावाले) हैं; शरीर से महागज (गजनाम का एक कपि भी हो गया है) हैं; प्रमाथी (प्रमाथी नाम के कपि तथा मथन करनेवाले) हैं; धूम्र (धूम्र नाम के कपि तथा धूम्रवर्णवाले) हैं; केसरी (केसरी नामक कपि तथा 'के' [जल में] 'सरी' [प्रवेश करने वाले] हैं, इस प्रकार कपिशताकारधारी (सैकड़ों कपियों के आकार तथा कपिश रङ्ग के आकार वाले) आपकी सहायता से सीता (जानकी तथा हल से विदीर्ण हुई भूमि) को पाकर दुःख रूपी जलधि को पारकर, स्वयं राम (रमण करने वाले) होकर हम आनन्द कर रहे हैं!

हम भी अब बालकवि को आनन्द करते छोड़, दो एक बातें और लिखकर, लेखनी को विश्राम देना चाहते हैं।

१८—नैषध के त्रयोदश सर्ग में दो दो अर्थवाले केवल पच्चीसही तीस श्लिष्ट श्लोक हैं; परन्तु "महिषशतक" में ऐसे ऐसे कोई ५६ श्लोक हैं। ये सब श्लोक अर्थद्वय से गर्भित होकर भी सरस हैं और सरल भी हैं। यह शतक कवियों की निरङ्कुशता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। कवि सब कुछ करने में समर्थ हैं; वे चाहें राई का पर्वत बना दें और चाहें पर्वत की राई! इसीलिये बिल्हण कवि ने विक्रमाङ्कदेवचरित के अन्त में लिखा है हैं कि, कवियों से विरोध करना उचित नहीं; रुष्ट होने से वे बड़ों बड़ों की कीर्ति को धूलि में मिला देते हैं और प्रसन्न होने से अकिञ्चन जनों को भी इन्द्रासन पर आसीन कर देते हैं।

मनोहर छटा

नीचे पर्वत थली रम्य रसिकन मन मोहत ।
ऊपर निर्मल चन्द्र नवल आभायुत सोहत ॥
कबहुं दृष्टि सों दुरत छिपत मेघन के आड़े ।
अन्धकार अधिकार तुरत निज आय पसारे ॥
नवल चन्द्रिका छिटकि फेरि सब बनहिं प्रकाशत
निर्मल द्युति फैलाय बेगि तमपुंज बिनासत ॥
प्रकृति चित्र की छटा होत परिवर्त्तित ऐसी ।
चित्रकार की अजब अनोखी गति है जैसी ॥
भई प्रकृति है मौन पौन हू सोवन लागी ।
पशु पक्षी हू मनहुं दियो यहि जग कहं त्यागी ॥
केवल कहुं कहुं झींगुर अरु झिल्ली झनकारत ।
जलप्रपात रव मन्द मधुर झरनन कर आवत ॥
कतहुं श्याम रङ्ग शिला कहूं थल कहुं हरियाली ।
बहत मन्द परवाह युक्त झरना छबि शाली ॥
कहुं बिकराल बिशाल शिला आड़त तेहि बेगहिं ।
उमगि उच्छलित होय तऊ धावत गहि टेकहिं ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय मिलत निज प्रिय सरिता सों कोटि यतन करि
प्रेमिन के पथरोधन को दरसावत दुस्तर ॥
राजत कतहूं झाड़िन को अवली तट ऊपर ।
कतहुं खड़े दो चार जङ्गली वृक्ष मनोहर ॥
तिन सब कर प्रतिबिम्ब भांति जल मांहि लखाई ।
देखन हित निज रूप प्रकृति दर्पन ढिग आई ॥
तरु मण्डप के रन्ध्रन बिच सों छनि छनि आवत ।
शशि किरनन को पुञ्ज सरस शोभा सरसावत ॥
करत अलौकिक नृत्य आय निर्मल जल माहीं ।
निरखि ताहि मन मुग्ध होय थिर रहत तहांहीं ॥
पहुंच दृष्टि की जात जहां तक दीसत याही ।
शैल नदी तरु भूमि अटपटी औ कछु नाहीं ॥
निरखि लेहु एक बेर चहूं दिशि नैन पसारी ।
मन महं अङ्कित करहु माधुरी छवि अति प्यारी ॥
इतहीं चिन्ता तजत आय जग के नर नारी ।
इतहीं अनुभव करत सुक्ख सब दुःख बिसारी ॥
इतही प्रेम पियास बुझत प्रेमी गण की अति ।
आय मिलत जब प्रेम प्रेयसी मन्द मधुर गति ॥

पंडित रामचंद्र शुक्ल

साहित्य समालोचना

(भाग २)

गत अगस्त की संख्या में तो भारतमित्र जी के सम्पादक महाशय ने जो कुछ अपनी ओर से हमपर कृपा की थी उसका उत्तर हुआ अब "पर्यालोचक" महाशय का जो "साहित्य समालोचना" नामक लेख उसी पत्र के खण्ड २३ संख्या ५१ (३१ दिसम्बर सन् १९००) और खण्ड २४ संख्या १ (५ जनवरी सन् १९०१) में प्रकाशित हुआ उसपर हमें यह वक्तव्य है:—सब से पहिला तो हमारा प्रश्न यही है कि आप अपना नाम प्रकाशित करते क्यों डरते हैं, किसी ओट से कोई काम करना और विशेष कर विद्या विषयक, कदाचित् कोई भी श्रेष्ठ न बतलावेगा। आपके इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते कि "हिन्दी भाषा में उत्तम ग्रन्थकार और समालोचक दोनों का अभी अभावही है"। उनमें प्राचीन कवियों की तो गणना ही क्या करनी है, पर आधुनिक महाशयों ही में से स्वयं पण्डित श्रीधर जी पाठक, पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, पण्डित मदन मोहन जी मालवीय बी. ए. एल. एल. बी., बाबू राधाकृष्ण दास जी, पण्डित राधा चरण जी गोस्वामी, पण्डित गङ्गा प्रसाद जी अग्निहोत्री, बाबू श्यामसुन्दर दास जी बी. ए., पण्डित किशोरीलाल जी गोस्वामी, बाबू कार्तिक प्रसाद जी खत्री, पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, बाबू कृष्णबलदेव जी वर्म्मा, बाबू केशवप्रसाद सिंह जी, पण्डित अमृतलाल जी शर्म्मा, बाबू जगन्नाथ दास जी बी. ए., महता लज्जाराम जी, पण्डित माधव प्रसाद जी मिश्र, बाबू तोताराम जी वकील, मुंशी देवी प्रसाद जी, मुन्सिफ योधपुर, पुरोहित गोपीनाथ जी एम. ए., लाला सीता राम जी बी. ए. पण्डित युगुल किशोर जी मिश्र, पण्डित देवीदत्त जी त्रिपाठी, पण्डित भैरव प्रसाद जी (विशाल), इत्यादि इत्यादि अनेक परम विज्ञ ग्रन्थकार और सुलेखक वर्तमान हैं। तब न जानें आपने किस आधार पर उत्तम ग्रन्थकारों का अभावही बतला दिया। हां समालोचकों का एक प्रकार से कुछ कुछ अभाव सा कहा भी जा सकता है, पर इस प्रथा की हमारे यहां विशेष उन्नति नहीं थी, तो भी थोड़े बहुत उत्तम समालोचक भी होही गए और वर्तमान भी हैं और उनकी संख्या दिन दिन वर्धमान ही होती जाती है. जैसा स्वयं आप कुछ आगे चलकर स्वीकार करते हैं। हां इस प्रसंग में "भारत मित्र" जी का पोथियों से आलोचना का विस्तार बढ़ जाने का भय हमें अवश्य स्मरण आता है। फिर आप लिखते हैं कि हमारी समालोचना पर जो आपने भारतमित्र के साढ़े तीन कालम रँगे वह केवल "प्रसङ्ग वशतः" आपने लिखा। वाहवा! अच्छा आपका "प्रसङ्ग वशतः" मुख्य लेख तो केवल एकही कालम के तृतीय भाग मात्र (४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंक्तियों ही) में समाप्त हो गया और जो "प्रसङ्ग वशतः" लिखा गया उसका राम राम कर साढ़े तीन कालम (४०३ पंक्तियों के पश्चात्) अन्त मिला !!! हम तो कहेंगे कि आप हमारा ही लेख खण्डन करने को बैठे थे और जिसे आप अपने लेख का मुख्य भाग कहते हैं वह हमारी समझ में केवल भूमिका मात्र प्रतीत होती है, अस्तु।

(१) "खण्डितोपमा दूषण" लीजिए अब आप के अनुरोध से हम इस दोष को "स्पष्ट रूप से" दिखाते हैं—"हरि समान हरि कुमति निसातम सुमति प्रकासी" इसका अर्थ यह हुआ कि (हे हरिश्चन्द्र ! तुमने) सूर्य के समान

(क) कुमति रूपी रात्रि के अन्धकार का नाश कर।

(ख) सुमति.....का प्रकाश किया—

इसमें (ख) भाग में खण्डितोपमा है और उससे बचने को उपरोक्त पद में ऐसे शब्दों की आवश्यकता थी कि जिनका अर्थ यह होताः—(हे हरिश्चन्द्र ! तुमने) सूर्य समान (क) कुमति रूपी रात्री के अन्धकार का नाश कर (ख) सुमति रूपी दिन के प्रकाश का विस्तार किया। ऐसा अर्थ होने से पद में दोनों चरणार्ध एकसे होते और उपमा खण्डित न होती।

पर्यालोचक जी के मतानुसार "इसमें एक प्रकार का "हेतुरूपक" अलङ्कार है उपमा का प्राधान्य नहीं है यद्यपि वह गौण रूप में विद्यमान है अतः खण्डितोपमा दूषण समालोचकों का भ्रम है। कोई कोई इसमें लुप्तोपमा समझते हैं, पर हमें तो रूपक जान पड़ता है" प्रथम तो हेतुरूपक का वर्णन भाषा के प्रसिद्ध आचार्य्यों ने नहीं किया है। अतः यह कविप्रणीत न होने के कारण प्रमाणित नहीं हो सकता है। कदाचित् पर्यालोचक महाशय हेतूत्प्रेक्षा के सम्भ्रम में पड़कर हेतुरूपक लिख गए हों। रूपक को उपमा से नितान्त प्रथक बतलाना भी स्वयं पर्यालोचक जी का भ्रम है। रूपक तो उपमा के अन्तर्गत है। यथा—

अलङ्कार में मुख्य द्वै उपमा और सुभाव
सकल अलङ्कारन विषे दरसत इनको भाव
(देवजी)

और पूर्णोपमा के उदाहरण प्रायः रूपक सेही देख पड़ते हैं—यथा

"फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे
दौरि आए भौंर से करत गुनी गुन गान
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी
चिरया सी जागी चिन्ता जनक के जियरे
धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत आजु
भोर कैसे नखत नरिन्द भए पियरे"
(रघुनाथ जी)

इसी प्रकार का पाठक जी का भी कवित्त है—परन्तु उपमा और रूपक में भेद केवल इतनाही है कि रूपक में वाचक और धर्म नहीं होते—यथा—

"उपमा अरु उपमेय सों वाचक धर्म मिटाय।
एकै करि आरोपिए सो रूपक कविराय"॥
(दास जी)

सुतराम् रघुनाथ जी और पाठक जी के कवित्त उपमालङ्कार से भूषित इसी कारण हैं कि इन दोनों में वाचक और धर्म दोनो विद्यमान हैं अतः ये रूपक कैसे हो सकते हैं? हमको आश्चर्य है कि पर्यालोचक महाशय इसको रूपक कैसे कहते हैं! लुप्तोपमा इस कारण से यह नहीं है कि इसमें वाचक, धर्म, उपमेय, और उपमान सभी प्रस्तुत हैं। परन्तु खण्डितोपमा हमने इस कारण कहा कि इसमें धर्म खण्डित है अर्थात् उसका तारतम्य नहीं ठीक है। एतावता इसमें चार चरणों के स्थान पर केवल साढ़े तीन चरण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी अवस्था में खण्डितोपमा दूषण बतलाना हमारा भ्रम कैसे हुआ ?

(२) "मनोविनोद के २रे और ३रे भागों की न्यूनता" इसका निबटेरा तो केवल सहृदयता पर निर्भर है। "काव्य की प्रशस्यता" के विषय में हम पर्यालोचक" महाशय से पण्डित गङ्गाप्रसाद जी अग्निहोत्री द्वारा अनुवादित पण्डित विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूनकर कृत "विद्वत्व और काव्यत्व" तथा "समालोचना" नामक निबन्ध और बाबू जगन्नाथ दास (रत्नाकर) बी. ए. कृत "साहित्य रत्नाकर, काव्य निरूपण खण्ड" के अवलोकन करने का अनुरोध करते हैं। "मनोविनोद" के इन दोनों भागों में वैसे विलक्षण पद्य एक भी नहीं हैं जैसे प्रथम भाग में बाहुल्यता से वर्तमान हैं और जिनकी सविस्तर विवेचना हमारी समालोचना में प्रस्तुत है। हमने इन दोनों भागों की जो कुछ निन्दा कीहै वह अधिकांश में केवल आपेक्षक है। आप काव्य की प्रशस्यता केवल रस, भाव, और अलङ्कारों पर निर्भर करते हैं। इस विषय पर हमने अपने भाषा साहित्य विषयक लेख में बहुत कुछ लिखा है। सबसे प्रथम तो वाक्य की मधुरताही द्रष्टव्य है यथा।

"व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह।
गुन गुन भूखन भूखनै दूषन दूषन एह" ॥
(कुल पति जी)

इन द्वितीय और तृतीय भागों में वाक्य मधुरता वैसी नहीं है जैसी कि प्रथम भाग में और हम कहने में किञ्चित् मात्र भी सङ्कोच नहीं करते हैं कि प्रथम भाग के घनाष्टक, घन विनय, जगत सचाई सार इत्यादि पद्यों का दशमांश सुन्दर भी गोपिकागीत के अतिरिक्त एक पद्य तक इन दो भागों में नहीं है और तृतीय भाग में समस्यापूर्ति ऐसे पद्य क्या वास्तव में उपहासास्पद नहीं हैं ? इसका सविस्तर वर्णन हम इसी लेख में करेंगे—

३—"ऊजड़ गाम में अनुवाद की अशुद्धियां"—इस विषय में हमारा पहिला प्रश्न तो यही है कि आपने अङ्गरेज़ी में कहां तक अभ्यास किया है ? "A breath can make them, as a breath has made." इस पूरी पंक्ति का भाव "अनुवाद ("फूंकहि मांहि वै बनत फूंकही सों मिटि जांहीं") की पंक्ति के पूर्वार्द्ध में कदापि नहीं भरा हुआ है। हम आपके इस कथन से सहमत हैं कि "सम्भव है कि यदि अंत्यानुप्रास का बन्धन न होता तो गोल्डस्मिथ भी पाठक जी ही की भांति निज पंक्ति का निर्माण करता"। पर इससे तो आपने स्वयं मान लिया कि गोल्डस्मिथ और पाठक जी की इस पंक्ति के आशय में विभिन्नता अवश्य है ! अब "शुद्ध अनुवाद" में तो फेर आही गया। फिर आप कहते हैं कि "बनत रहत वै सदा एक फूंकहि के मांही" यह अनुवाद शुद्ध होता पर हमारी समझ में तो यह और भी अशुद्ध है "The county blooms—a garden and a grave !" इसके अनुवाद ("लसत देश कहुँ बाग कहूँ मरघट मय होई") को हमने जो अशुद्ध बतलाया सो भी बहुत ठीक बात है। मूल का आशय यह है कि "देश एकही स्थान पर एक साथ ही बाग और मरघट हो रहा है पर अनुवाद का यह भाव हो जाता है कि "देश का कुछ भाग बाग और कुछ मरघट प्रतीत होता है" इस पंक्ति का जो द्वितीय अनुवाद पाठक जी ने दिया है वह (लसत देश यक संग बाग अरु मरघट होई) अवश्य शुद्ध है परन्तु इनके भावों में अन्तर है और प्रथम अनुवाद में हम हिन्दी जाननेवालों के लिये द्वितीय की अपेक्षा कोई विशेष रोचकता नहीं देखते जिसके कारण वह अशुद्ध होने पर भी लिखा जाता। ये अशुद्धियां हम एक भी न बतलाते यदि "उजड़गाम" भी "एकान्तवासी योगी" की भाँति कुछ स्वच्छन्दता से अनुवादित हुआ होता।

[क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालकविनोद

वसन्त

१

नव वसन्त बहार भई जबै,
सब कली वन की विकसीं तबै ।
सुखद शीतल मन्द सुहावनी
विमल वायु बही मन भावनी ॥

२

रुचिर मौरन के रस तें पगी
पिक कुहू कुह बोलन है लगी ।
भँवर फूलन फूलन धावहीं ;
निज मनोहर शब्द सुनावहीं ॥

३

कमलिनी दिन माहिँ नई नई ,
कुमुदिनी निशि में, सब तें छई ।
जल सुगन्धित तालन को भयो,
रहि कहूं न मलीनपनो गयो ॥

४

जहँ लखौ तहँ पेड़न पैं चहूं
सुमन लाल कहूं, पियरे कहूं ।
खिलि रहे सुखमा सरसावहीं ;
महक मोहक मञ्जु उड़ावहीं ॥

५

अरुण रङ्ग मनोहर तें रँगे ,
कुसम लाल पलाशन में लगे ।
लखि जिन्हैं मन में यह आवई ;
कह इन्हैं वन-आगि जरावई ?

६

ऋतु वसन्तहि पात सड़े गले ,
जिन दए उन पेडन पै, भले ।
नवल पल्लव सुन्दर सोहहीं ;
सब मनुष्यन के मन मोहहीं ॥

७

हम तुम्हैं यह सत्य सुनावहीं ;
सुनहुं, बालक ! दान वृथा नहीं ।
जिन पुरातन दीन्ह तिन्हैं नयो ,
लखहु, पेड़नहू मिलिही गयो ॥

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रगुप्त की रिपोर्ट

चिट्ठीरसां–आपके नाम एक वी० पी० भी है।

बाबू साहब–वी० पी० ! मेरे नाम !! नामुमकिन !!!

चि०–यह लीजिए।

बा०–(ख़ूब देख भाल कर) यह मेरे लिये नहीं!

चि०–नाम तो इस पर आपही का है; हिन्दी में है; सो भी छपा हुआ है। (पढ़ता है)

बा०–नहीं, नहीं ! जहां से यह किताब आई है वहां यह नाम कोई नहीं जानता।

चि०–क्या आपके कई नाम हैं ?

बा०–बड़ा गुस्ताख़ है।

चि०–क़ुसूर माफ़ हो; इसी नाम पर आए हुए अख़बार वग़ैरह मैं रोज़ही आपको दे जाया करता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

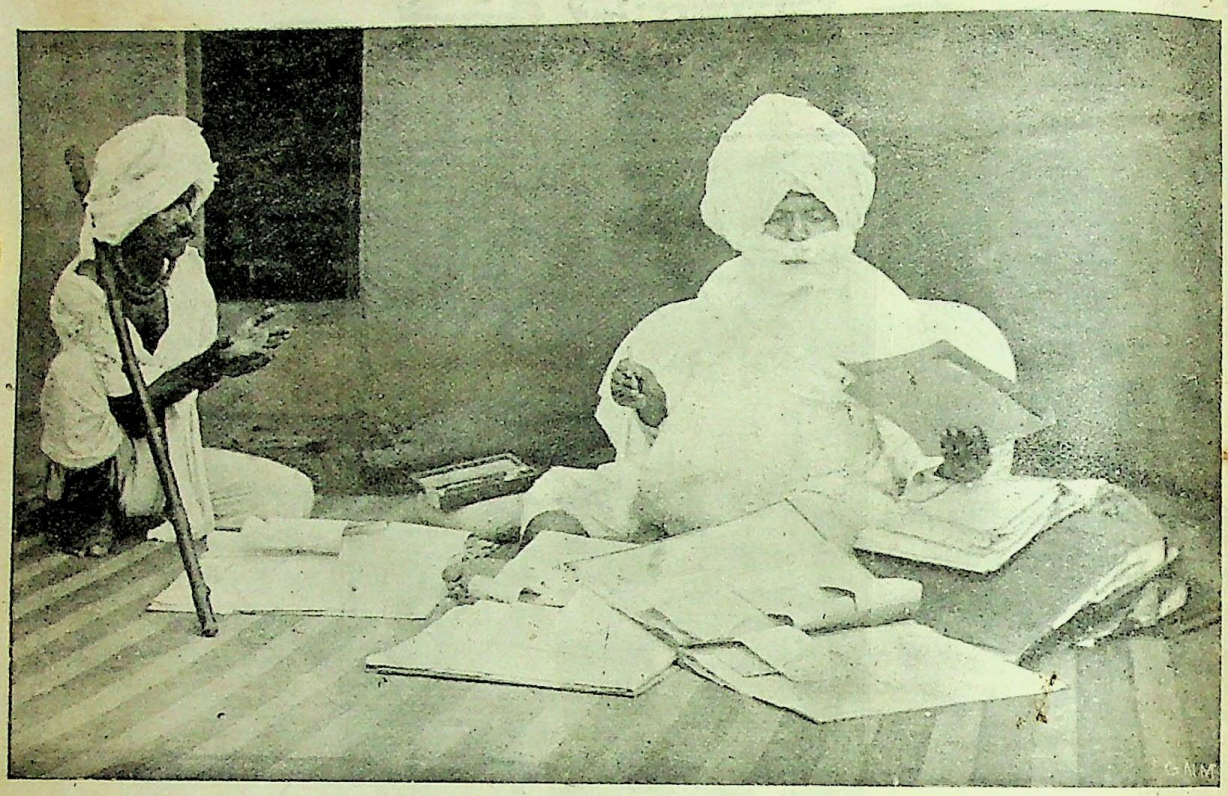

बा०–अरे मूर्ख ! मेरे नाम के अगाड़ी और पिछाड़ी जो कुछ होना चाहिए वह इस पर नहीं है। मेरा नाम बाक़ायदे नहीं लिखा।

चि०–अच्छा आप इसपर लिख दीजिए कि अगाड़ी पिछाड़ी के न होने से आप लेने से इनकार करते हैं।

बा०–फिर गुस्ताख़ी ! मैं तुम्हारी शिकायत करूंगा। (यह कह कर, खड़े ही खड़े, पेंसिल से पैकेट पर 'इनकार किया' लिख कर बाबू साहब ने उसे चिट्ठीरसां को वापस किया)

चि०–(चलता हुआ)

बा०–हँः वी० पी० ! अभी दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए ! ! मेरी प्रतिष्ठा में चोट लगने का भी ख़याल नहीं ! ! !

चित्रगुप्त (पार्षद की ओर देखकर)–अरुणक ! यह सम्वाद जो मैंने अभी दर्ज रजिस्टर किया, उसकी यह नकल, तब तक, प्रयाग की 'सरस्वती' में छपने के लिये तुम फौरन दे आओ।

अरुणक–जो आज्ञा, महाराज ! (जाता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] नवम्बर १९०१ ई० [संख्या ११

विविध वार्ता

हमारे पास एक प्रति लाहोर के दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालिज की सन् १९००-१९०१ की वार्षिक रिपोर्ट आई है जिसकी प्राप्ति हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। हमको स्वयं भी इस कालिज के देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। इस कालिज का प्रबन्ध एक कमेटी के आधीन है जिसके सभासद इस रिपोर्ट के अनुसार ५२ हैं। इस कमेटी के आधीन और सब-कमेटियां हैं जिनमें मुख्य कालिज और मुख्य कमेटी हैं। इसके ९ सभासद हैं जिनमें ४ वकील, २ अकौनटेण्ट, १ ट्रान्सलेटर, १ इञ्जीनियर और १ प्रिन्सपल महाशय हैं। कालिज विभाग में इस वर्ष ३५५ लड़के और स्कूल विभाग में ५८७ हैं। परीक्षा में यहां के लड़कों ने अच्छा परिणाम दिखाया है और इनमें से बहुतों को सर्कारी स्कालरशिप भी मिलते हैं। इस समय कमेटी के हाथ में चार लाख रुपए के लगभग है। हमें इस कालेज को देख कर विशेष सन्तोष प्राप्त होता है, विशेष कर इसलिये कि इससे पढ़ कर ऐसे लोग निकल रहे हैं जिनकी हमें आवश्यकता है। हमारे पाठकों को विदित होगा कि गत अकाल के समय इस कालेज के अनेक लड़कों ने दूर दूर तक जाकर अनाथ बालक बालिकाओं की रक्षा करके अपने सच्चे देशहित का परिचय दिया था। यदि वास्तव में कालिज ऐसे लड़के तैय्यार करता है जो पढ़ कर देशाभिमानी होते हैं और उसके उद्धार और हित में अपना समय और धन लगा सकते हैं, तो हमारी सहानुभूति ऐसे विद्यालय से बढ़ कर और कहीं के लिये नहीं हो सकती। इस कालिज और स्कूल में हिन्दी सब बालकों को पढ़ाई जाती है, पर जहां तक हमें ज्ञात है, उपयुक्त पुस्तकों का प्रबन्ध यहां नहीं है और यह बात कालिज के प्रबन्धकर्ताओं और आर्य्य समाज के लिये लज्जा की है। हमें विश्वास है कि कालिज के अधिकारीगण इस ओर ध्यान देंगे और इस अभाव की पूर्ति के लिये पूर्ण उद्योग करेंगे। इस समय कालिज को एक अच्छे भवन की बड़ी ही आवश्यकता है। इस के सफ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता पूर्वक कार्य को देख कर यह बात आश्चर्य सी जान पड़ती है कि अब तक यह काम क्यों न हो गया। कमेटी का अनुमान है कि इस काम में कम से कम ७५०००) लगेगा। ऐसे अच्छे काम के लिये यह कुछ अधिक नहीं है। इस विद्यालय से बहुत कुछ लाभ हुआ है और आशा है कि भविष्यत् में इससे और भी लाभ हो। ऐसी अवस्था में क्या यह हिन्दू मात्र और विशेष कर आर्यसमाजनुयायी लोगों का धर्म नहीं है कि इस कार्य को अपनी उदार सहायता से बनवा दें। जहां तक हमारा विश्वास है इस कालेज से केवल आर्यसमाजियों को ही लाभ नहीं है, वरन् पंजाब-निवासी हिन्दू मात्र के बालक इसमें शिक्षालाभ करते हैं। इस दशा में पक्षपात को छोड़ कर ऐसे विद्यालय की पूर्ण सहायता होनी चाहिए। प्यारे हिन्दुओ! व्यर्थ में तुम्हारा रुपया बहुत कुछ जाता है, अनेक सर्कारी चन्दों में तुम्हें ज़बरदस्ती रुपया देना पड़ता है, तो क्या तुम स्वतः कुछ देश-हितकर कार्य्यों में अपनी उदारता का परिचय नहीं दे सकते?

* *
*

हमने सुना है कि श्रीनगर पूर्निया के उदार राजा कमलानन्दसिंह ने अयोध्यानिवासी लछिराम कवि को 'कमलानन्द कल्पतरु' नाम का अलंकार का ग्रन्थ बनाने के लिये २००) रु० पुरस्कार और ५००) रु० के कपड़े दिए हैं, तथा वह ग्रन्थ छपवा देने के लिये ले लिया है, जिसमें अनुमान से हजार बारह सौ रुपया लगेगा। सारांश यह कि राजा साहब ने एक अलंकार ग्रन्थ के लिये अढ़ाई तीन हज़ार रुपया खर्च डाला। हम राजा साहब की उदारता की निन्दा नहीं करते, परन्तु साथही हमको यह सुन कर कुछ विशेष सन्तोष भी प्राप्त नहीं हुआ। हमारे असन्तुष्ट होनेके कई कारण हैं! यदि शीत ऋतु हो और हम उसमें शीत के कारण अत्यन्त पीड़ित हों, तो हमारा काम केवल एक कम्बल ही से चल सकेगा; परन्तु उसकी अपेक्षा यदि हमें बढ़िया से बढ़िया गर्मी के कपड़े मिलें तो हम दाता के यद्यपि अनुगृहीत होंगे, पर अपने अभाव की पूर्ति न देख असन्तुष्ट बने रहेंगे। हमारे इस कथन का तात्पर्य यह है कि हमें अब अलंकार और साहित्य विषयक कविता के ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं है। इनकी हमारे यहां भरमार है। कवियों से प्रार्थना है कि अब वे अधिक शृङ्गार रस में फंस कर साथही हमारे पूज्य देवी देवताओं को न खींचें। इस समय हमें आवश्यकता है ऐतिहासिक और वैज्ञानिक ग्रन्थों की। टाड का इतिहास अनुवादित पड़ा रहे। पृथ्वीराज रासो के छपने के दिन न आवें; भारतवर्ष का अच्छा इतिहास लिखा जायही नहीं; पुराने अलभ्य ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े रहें और राजा साहब अपनी उदारता अलंकार ग्रन्थों के प्रकाशित कराने में दिखावें—यह जानकर हमारे हृदय को व्यथा होती है। राजा साहब पढ़े लिखे और विज्ञ हैं, अतएव ही हमने इतना लिखने का साहस किया; नहीं तो हम मौनही साध चुपचाप बैठे रहते, चूं भी न करते। राजा साहब ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थायीकोष में २०००) रु० देकर तथा अन्य कार्य करके सुकीर्ति प्राप्त की है। हमें आशा है कि भविष्यत् में हमें राजा साहब को उपालम्भ देने का अवसर न प्राप्त होगा।

* *
*

गत संख्या में हम एज्यूकेशन कान्फरेंस के विषय में कुछ लिख चुके हैं, और हमारा विचार था कि उस संख्या में उसपर अपनी पूरी सम्मति दें। पर यह जान कर कि आगामी फ़वरी मास में एजूकेशन कमीशन बैठेगा, हम विस्तार पूर्वक कुछ न कहेंगे। केवल दो तीन विषयों पर अपनी सम्मति दे इस विषय को फ़र्वरी तक के लिये छोड़ देंगे। भारतवर्ष में इस समय पांच विश्वविद्यालय वर्तमान हैं; परन्तु विचित्रता यह है कि इन सभों में नियमादि और पठन पाठन की रीति एक दूसरे से नहीं मिलती। इससे यदि एक विद्यालय का बालक दूसरे विश्वविद्यालय में पढ़ना चाहे तो उसको विशेष कष्ट उठाना पड़ता है और यह समझ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं आता कि एकही देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पठन पाठन की रीति भिन्न भिन्न क्यों की जाय। यदि एक प्रकार की पढ़ाई एक स्थान के लिये उपयोगी है तो वह दूसरे स्थान के लिये भी उतनीही आवश्यक होगी। अतएव सब विश्वविद्यालयों के एक से नियम होने चाहिएं। इन विश्वविद्यालयों के जो फ़ेलो नियत किए जाते हैं, उनके लिये विद्या प्राप्त करने को कोई अवधि नहीं है। चाहे वे निरक्षर भट्टाचार्य हों, परन्तु धनवान या गवर्नमेंट की दृष्टि में अच्छे ठहरें तो वे फ़ेलो नियत कर दिए जाते हैं। इसके साथही यह भी आवश्यक नहीं है कि फ़ेलो विश्वविद्यालय के अधिवेशनों में जाया करें। इलाहाबाद विस्वविद्यालय में तो अनेक ऐसे फ़ेलो हैं जिन्हें अङ्गरेज़ी में हस्ताक्षर तक करने नहीं आता और न जिन्होंने कभी किसी अधिवेशन की शोभा अपनी उपस्थिति से बढ़ाई हो। ऐसे सभ्यों से क्या लाभ है यह समझ में नहीं आता। हमारी सम्मति में फ़ेलो पांच वर्ष के लिये नियत किए जांय और यदि विश्वविद्यालय के कार्य में वे उत्साह दिखावें तो वे पुनः नियत किए जावें, अन्यथा उनके स्थान पर दूसरे चुने जांय। दूसरा विषय जिसपर इस समय विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, वह यह है कि लड़के पढ़ लिख कर वास्तव में योग्यता प्राप्त करें और अपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह पूर्णतया कर सकें। जो पुस्तकें आज कल पढ़ाई जा रही हैं, वे ऐसी रद्दी हैं कि उनसे लाभ की कोई आशा ही कभी नहीं की जासकती। हमारी समझ में एन्ट्रेंस तक साहित्य संबन्धी पुस्तकें नियत ही न की जांय, वरन् यह स्थिर कर दिया जाय कि लड़के की ऐसी योग्यता होनी चाहिए। अनुवाद और लेख लिखने पर अधिक ध्यान दिया जाय और इतिहास आदि की पुस्तकें न नियत होकर विभाग नियत कर दिए जांय। इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि लड़कों की रटने की बान छूट जायगी और अध्यापकों को भी कुछ पढ़ना होगा और अपने लेकचर पहिले से तैय्यार करने पड़ेंगे, और तब पठन पाठन का विशेष लाभ होगा। आज कल की अवस्था विचित्र है कि लड़के तो बी०ए०, एम०ए० पास कर लेते हैं, अङ्गरेज़ी में कहिए तो रो पीट कर कुछ लिख पढ़ या कह सुन भी लेंगे, परन्तु निज भाषा में एक पंक्ति भी लिखना उनके लिये दुस्साध्य कार्य है। इससे बड़ी भारी हानि यह है कि अन्य विदेशीय भाषा की कठिनता के आगे उन्हें नवीन नवीन विद्याओं की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता और इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि वे अनुवाद करके या इधर उधर से चुराकर ग्रन्थकार बनने का साहस कर बैठते हैं। इसलिये हमारी सम्मति है कि देशभाषाओं की पढ़ाई बी०ए० तक हो। यह हमारी समझ में नहीं आता कि जब इङ्गलैण्ड में अंग्रेज़ लोग, जिनकी मातृभाषा अङ्गरेज़ी है, उसमें एम०ए० पास कर सकते हैं, तो भारतवासी अपनी भाषा में एम०ए० पास क्यों न करसकें। अभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने यह स्थिर किया है कि एन्ट्रेन्स में बालकों को देशभाषा अवश्य पढ़नी होगी। परन्तु मिडिल में इसपर ज़ोर नहीं दिया गया है। मिडिल में बालक देशभाषा पढ़ या न भी पढ़ सकता है, परन्तु एन्ट्रेन्स में उसे अवश्य पढ़नी होगी। इससे भाषाओं की पढ़ाई में हानि होगी। आशा है पश्चिमोत्तर प्रदेश का शिक्षाविभाग इस पर ध्यान देगा।

* * *

हमारे पाठकों में से बहुतों को यह ज्ञात होगा कि १४ नवम्बर को सर ऐन्टनी म्याकडोनेल इस प्रदेश की लेफ़्टनेन्ट गवर्नरी सर जे० डी० लैटूश को सौंप कर निज देश को पधारे और अब शासनकाल सर लैटूश का है। यों तो कई लेफ़्टनेन्ट गवर्नर आए और चले गए, पर हमें विश्वास है कि सर ऐन्टनी का नाम इन सबसे अधिक काल तक स्मरणीय बना रहेगा। इनसा उदार और दृढ़ शासक अब तक कोई नहीं आया था। न्याय की ओर इतना अधिक इनका ध्यान था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी लोगों के सिर पटकने पर भी इन्होंने निज न्यायशील नीति का अवलम्बन किया। सर्कारी नौकरों में से अनेक घूसखोरों को निकाला, दीन प्रजा की पुकार पर ध्यान दिया, अकाल और प्लेग के समय उपयुक्त प्रबन्ध किया और सबसे बढ़कर यह काम किया कि नागरी अक्षरों का अदालतों में प्रचार किया। चाहे और सब बातें लोग भूल जांय, पर केवल इसी आज्ञा के लिये इनका नाम इस प्रदेश और हिन्दी के इतिहास में चिर-स्मरणीय बना रहेगा। यह बात दूसरी है कि दो एक बातों में हमारी सम्मति सर ऐन्टनी से न मिलती हो, परन्तु इससे हमें उनके विरुद्ध न होना चाहिए। हमें उनके समस्त शासनकाल पर ध्यान करके और उनके समस्त उपकारों और कार्यों का स्मरण करके, तब उनके विषय में कुछ कहना चाहिए। हम तो मुक्तकण्ठ से यह कहेंगे कि लाट म्याकडोनेल सा उदार, दृढ़, न्यायप्रिय और उपकारी शासक अब तक हमको नहीं मिला था। यह जानकर हमें विशेष आनन्द प्राप्त हुआ कि अवध के ताल्लुकदारों ने इनकी एक प्रतिमूर्ति और इन्हींके नाम से क़ैसरबाग लखनऊ में एक हाल बनाना स्थिर किया है। अब शासनकाल सर लैटूश का है। हमारे पाठकगण कदाचित इस बात को न जानते होंगे कि ये महाशय बहुत दिनों तक बनारस के कमिश्नर रह चुके हैं और अब तक लोग उनकी दयालुता की प्रशंसा करते हैं। सर लैटूश हिन्दी भली भांति जानते हैं, और ऐसा सुनने में आया है कि प्रयाग के भारतीभवन पुस्तकालय के बहुत दिनों तक सबस्क्राइबर रहे थे। हमें विश्वास है कि इनके शासनकाल में हिन्दी की विशेष उन्नति होगी और ये चलते समय उससे अधिक यश और वाहवाही ले जांयगे जितनी कि अभी सर ऐन्टनी ने ली है।

——

जीवनाग्नि

उस समय मैं सरकारी कालेज में अध्यापक का कार्य करता था।

एक दिन धनपतिराय के वकील की चिट्ठी मिली। खोल कर पाठ करने से मालूम हुआ कि मेरे प्यारे मित्र का देहान्त हो गया है और अपनी विल (वसीयतनामे) में वे अपने एकमात्र पुत्र रञ्जन का तत्वावधान मेरे ऊपर छोड़ गए हैं। एक बक्स भी डाकवाला मेरे नाम दे गया। उस पर लिखा हुआ था कि रञ्जन यदि बीस वर्ष की अवस्था तक जीवित रहे तो उसे यह बक्स खोलने को कहना, तब तक इसे अपने पास रख छोड़ना।

देखते देखते बीस वर्ष होगए। छोटा बालक रञ्जन अब क्रमशः यौवन में पदार्पण कर रहा था। उसके समान रूपवान् पुरुष देश भर में दुसरा और न था। मैंने बड़े यत्न से उसका पालन पोषण किया था और उचित शिक्षा के लिये उसे अपने ही कालेज में भर्त्ती करा दिया था। इसी वर्ष, अर्थात् जब वह बीस वर्ष का हुआ, तो वह बी०ए० की परीक्षा में पास हो गया। ऐसे शुभ अवसर पर मैंने उसके पिता के उस बक्स को स्मरण कर आज उसे अपने सामने रञ्जन से खुलवाया; परन्तु उसमें बड़े यत्न से रक्षित एक खण्ड काग़ज़ को छोड़ और कुछ नहीं मिला। कुछ संस्कृत, कुछ महाराष्ट्री और कुछ पुराने पाली अक्षरों में उसपर लिखा हुआ था। बड़े परिश्रम से उसे पढ़ कर हम लोगों ने उससे नीचे लिखे हुए भावार्थ को समझा, अर्थात्—भारतवर्षीय दक्षिण सागर में ... द्वीप के पश्चिम ओर एक और द्वीप है। उसका नाम काग़ज़ पर नहीं लिखा था, परन्तु किस मार्ग के अवलम्बन से वहां तुरन्त पहुंच सकते हैं और पथ में कौन कौन से देश और कैसी कैसी वस्तुएं मिलती हैं, यह सब उसमें निर्दिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। फिर वह देश कैसा है, और वहां के दूसरे दूसरे समाचार, उसमें इस भांति से लिखे थे की काग़ज़ के ध्यान पूर्वक पाठ करने से वहां का पता ठीक ठीक लग सकता था।

फिर उसी काग़ज़ से ज्ञात हुआ कि वहां पर एक स्त्री है। यदि उस स्त्री तक कोई पहुंच सके तो जीवनाग्नि का गोला वह दिखा देगी। वह कहीं ऐसे स्थान में छिपी हुई है कि उस स्त्री को छोड़ दूसरा कोई उसका पता नहीं बता सकता। उस अग्नि का यह गुण है कि उसमें प्रवेश करने से मनुष्य यद्यपि अमर नहीं होता, तौभी सहस्रों वर्ष तक जीवित रह सकता है। धनपतिराय रञ्जन को उस अग्नि का पता लगाने के लिये बारम्बार आज्ञा दे गए हैं। इन सब अद्भुत व्यापारों को पाठ करके रञ्जन ने कहा "इसमें कोई सन्देह नहीं कि पिता बड़े चतुर थे"।

रञ्जन की बात सुन कर मुझे हँसी आगई, परन्तु बड़े कष्ट से हँसी रोक कर मैंने पूछा, "रञ्जन, ये सब देख सुन कर तुम्हें क्या ज्ञात होता है?" रञ्जन पहिले मुंह सिकोड़ कर सिर हिलाने लगा। फिर बोला कि "बुढ़ापे में पिता जी की बुद्धि सठिया गई थी"। मैंने पूछा "क्यों?"

रञ्जन—"क्यों कैसा? ऐसा पागल कौन है कि उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में ऐसी कथा पर विश्वास कर सके?"

मैंने कहा "ठीक कहते हो"।

इसके पीछे फिर दो महीने बीत गए। परन्तु सच पूछिए तो मेरा हृदय कौतुहल से पूर्ण हो रहा था, और उस देश में जाकर वह कथा यथार्थ है वा नहीं, यह देखने की मुझे बहुत उत्कण्ठा हो रही थी। परन्तु कोई मुझे बावला न समझे, इसी-से मैं अपने मन की बात मनही में गुप्त रखता।

मेरे ही हृदय में यह कौतुहल उद्दीपित नहीं हुआ था। रञ्जन पहिले पहिल काग़ज़ की बात पर हंसता था, परन्तु वास्तव में उसके भी मन में बड़ा हलचल होने लगा। वह भी लज्जा के मारे मुझसे इस विषय में कुछ नहीं कहता था। निदान एक दिन वह बोला कि इस समय तो हमलोगों के पास कोई काम नहीं है, एक बार देशाटन कर आवें तो कैसा हो? मैंने पूछा "कहां जाओगे?" रञ्जन कुछ बेर तक सोचने लगा, फिर बोला "दक्षिण सागर की ओर जाने से कुछ हानि है?"

मैं और हंसी नहीं रोक सका, जोर से हंसने लगा। मेरे हंसने से रञ्जन कुछ लज्जित होकर बोला "मैं उस द्वीप में जाने के लिये घबरा रहा हूं यह न सोचिए, दक्षिण सागर में सुना है कि मोतियों का व्यापार अच्छा होता है, उसके विषय में कुछ जानकारी हो जाय तो अच्छा हो"।

मैंने कहा "कुछ हानि नहीं है। एक पन्थ दो काज हो जायंगे। परन्तु इस बात को किसीसे प्रकाशित न करना, लोग सुनकर हमलोगों को पागल समझेंगे। फिर हम उनके सामने अपना मुख नहीं दिखा सकेंगे।

रमुआ नाम का एक नौकर हमारे पास बहुत दिनों से था। मैंने उससे पूछा तू भी साथ चलेगा? रञ्जन ने कहा "रमुआ, तुझे काला पानी देखने की इच्छा नहीं होती?" रमुआ ने दो तीन बार सिर खुजा कर कहा "अच्छा मुझे कोई उजर नहीं है"।

सब बात पक्की हो गई। थोड़े ही दिनों में मन्द्रास होते हुए हमलोग सेतुबन्ध रामेश्वर पहुंचे। फिर वहां से सिलोन गए, और गाली बन्दर से एक छोटा सा जहाज दक्षिण जा रहा था, एक दिन हम लोग भी उसके यात्री हो गए।

द्वीपपुञ्जों के समीप पहुंचते पहुंचते हमलोगों के दुःख का आरम्भ हुआ। अबतक हमलोग बेखटके यात्रा कर रहे थे, परन्तु अकस्मात् हमारी सुख शान्ति सब नष्ट होने लगी। एक दिन आंधी चली, जहाज़ डूबने लगा। द्वीपों के छोटे छोटे से नालों में घूमना पड़ेगा, इस लिये हमलोगों ने एक छोटी सी नौका सिलोन में मोल ले ली थी। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा कि जहाज़ के बचने की कोई सम्भावना नहीं है, तब हमलोग तीनों मनुष्य अपनी उस छोटी सी नाव को समुद्र में डाल कर उस पर कूद पड़े। हमलोग आधी मील भी न गए होंगे कि जहाज़ जल में मग्न हो गया। उसी समय हमारी छोटी सी नाव भी डूबने ही पर थी परन्तु भारी भारी तरंगों से पूर्ण समुद्र के ऊपर हमलोग तिनके के समान बह चले। नाव कभी लहरों के भीतर लुप्त हो जाती और कभी वायुवेग से बिजली के समान दौड़ने लगती। चारों ओर घना अन्धकार छा रहा था, सारा आकाश बादलों से ढका हुआ था, और ठहर ठहर कर बिजली पल भर के लिये जलमय जगत को आलोकित कर देती थी। साथही साथ वज्रविनाद से सारी पृथिवी कांप उठती थी। हमलोग तीनों मनुष्य नौका के पेटी में तख़्तों को जोर से पकड़ कर बैठे थे। इतना ज्ञान हमलोगों को था कि यदि नौका पर हमलोग बैठे रह जांय तो मृत्यु का भय नहीं है, क्योंकि नौका एयर-टाइट (वायुपूर्ण) थी, किसी प्रकार से डूब नहीं सकती थी। यह हम ठीक नहीं कह सकते कि कब तक उन पर्वताकार तरंगमालाओं ने हमारी नाव को गेंद बना कर एक ओर से दूसरी ओर दूर दूर तक फेंका था, परन्तु कुछ काल पीछे सौभाग्यवश बादल फट गए और चारो ओर फिर स्वच्छ हो गया। देखते देखते फिर नीले रङ्ग के आकाश को हंसाता हुआ चन्द्रमा खिल उठा। उसी चांदने में जान पड़ा कि हमारी नाव एक छोटी सी नदी के भीतर प्रवेश कर रही है। चारो ओर निरीक्षण किया, परन्तु समुद्र का वहां पर पता न लगा। वायु के झोंके से हम लोग समुद्र से बहुत दूर आ पड़े थे। अस्तु, हमारे प्राण बचा लेने के लिये जगत्पिता परमेश्वर को हमलोग धन्यवाद देने लगे।

चारो ओर घना जङ्गल, जहां तक दृष्टि जाती थी केवल जङ्गल ही जङ्गल देख पड़ते थे। ये निश्चय ही हिंसक बनैले जन्तुओं से पूर्ण थे, निश्चय इनमें असंख्य सिंह विचरते होंगे। हमलोगों ने डर के मारे नदी के बीचो बीच लङ्गर डाल दिया और तनिक देर निद्रा की चेष्टा करने लगे, परन्तु मच्छड़ों के उपद्रव से नींद असम्भव हो गई। पैर से सिर तक चादर लपेट कर हमलोग पड़ रहे, परन्तु वहां पर ऐसी अवस्था में निद्रादेवी का अनुग्रह लाभ करना सम्भव नहीं था। इस समय रमुआ चिल्ला उठा। उसे देखने को ज्योंही हमलोगों न मुह खोला, एक मच्छड़ ने रञ्जन को नाक पर ऐसा काट लिया कि उसने तुरन्त अपना मुख छिपा लिया। परन्तु मैंने मच्छड़ों की दंशनयन्त्रणा को न मान सिर उठा कर देखा। जो कुछ देखा उससे मेरा सारा शरीर कांपने लगा। एक बड़ा भारी सिंह तैर कर हमलोगों की ओर आ रहा था, उसके दोनों नेत्र उज्वल नक्षत्रों की नांई चमक रहे थे, उसके केशर खड़े थे, और केशरों में होकर कल कल शब्द करता हुआ जल प्रवाहित हो रहा था।

मेरा कण्ठ सूख गया, और मैं भौचक्का सा हो गया। धीरे धीरे बोला "रञ्जन उठो, भयानक विपत्ति आ पहुंची है"। रञ्जन उछल पड़ा और सामने सिंह को देखकर पिस्तौल उठाकर बोला "कैपिटल शिकार मिल गया। बहुत अच्छा पट्ठे, तनिक और सामने आ जा"। रञ्जन का साहस देख मेरे भी हृदय में साहस आया, और मैं भी पिस्तौल लेकर उठ बैठा।

हमलोगों को उठते देख शेर तिल भर भी भयभीत न हुआ, बरु पहिले से अधिक शीघ्रतर नौका की ओर आने लगा। मैंने लक्ष्य कर फ़ायर कर दिया, परन्तु उसी क्षण एक विकट चिल्लाहट से चारों ओर गूंजने लगा, अकस्मात् बड़े वेग से नदी का जल आलोड़ित होने लगा। हमलोग नाव पर से जल में गिरने लगे, परन्तु उसकी पेटी में बैठे थे इससे बच गए। फिर एक पल भर पीछे देखा कि सिंह जल के भीतर से नाव के पास ही अपना सिर निकाल रहा है और गर्ज़ता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने वाले दोनों पैरों से नाव को पकड़ रहा है। हम दोनों ने तुरन्त उसके सिर में गोली मारी। नाव फिर, समुद्र में आंधी के समय जिस भांति नाच रही थी उसी भांति, उछलने लगी। परन्तु सिंह दृष्टि से अगोचर हो गया।

उस रात्रि को नींद और नहीं आई। दूसरे दिन बड़े तड़के हमलोगों ने नाव खोल दी। समुद्र की ओर जाने से कोई लाभ नहीं था। जहां पर जहाज़ डूब गया था, वहां छोटी छोटी इतनी पहाड़ियां थीं कि उस ठौर पर कभी किसी जहाज़ के आने की सम्भावना नहीं थी; समुद्र की ओर जाना और मृत्यु को बुला लेना दोनों बराबर था। दूसरे पक्ष में नदी की राह लेने से किसी लोकालय में पहुंच जांयगे वा नहीं यह भी कौन कह सकता था—परन्तु उसी ओर जाए बिना दूसरा उपाय और नहीं था, इस कारण हमलोग घने जङ्गल ही में नाव चलाने लगे।

हमारी नौका दिनभर चलती रही। दोनों ओर जङ्गलही जङ्गल दीखता था, मनुष्यों की बस्ती का चिन्हमात्र नहीं मिलता था। धीरे धीरे सन्ध्या हो आई। तब भयानक जीवों से परिपूर्ण इस देश में और आगे बढ़ना अनुचित जान हमलोगों ने बीचो बीच ही नाव लंगर के सहारे ठहराई, और कुछ खा पी कर सो रहे।

एक बड़ा हुल्लड़ सुनकर सब की नींद टूट गई। हमलोग चौंक कर उठ बैठे, देखा कि तीर पर असंख्य मनुष्य हाथों में बर्छे लेले कर हमारी ओर लक्ष्य कर रहे हैं और एक अद्भुत भाषा में हुल्लड़ मचा रहे हैं। उनमें से कोई कोई जङ्गल से लकड़ी काट कर बेड़ा बना उस पर बैठ हमारे पास आने का उपक्रम कर रहे थे। यह सब देख कर उनके आने के पहिले ही हम लोगों ने नाव खोलदी और उनके पास जा पहुंचे। उनमें से कोई कोई हम पर आक्रमण करने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु पीछे से किसीने पुकार कर कहा देखो तो इनका रङ्ग गोरा है कि काला? सामनेवाले एक असभ्य ने कहा इनमें से दो गोरे हैं और एक सांवला है। पीछे से उत्तर मिला, सब लोग हट जाओ। रानी की आज्ञा है कि इनको देखते ही मेरे पास ले आना। इनपर अस्त्र प्रयोग न करना। इस आज्ञा को सुनते ही सम्मुखवर्त्ती असभ्य लोगों का दल हट गया। उनमें से एक वृद्ध ने आकर हमसे पूछा "तुम लोग कौन हो, कहां से आए हो?" मैं उनकी भाषा कुछ कुछ समझता था। वह सिलोन और मद्रास वासियों की भाषा से कुछ कुछ मिलती जुलती थी। उसी भाषा में मुझसे जहां तक बन पड़ा मैंने उत्तर दिया "हम लोग विदेशी हैं। जहाज़ डूब जाने पर यहां आ पहुंचे हैं"।

बूढ़े ने कहा "तुम्हारे यहां आने का समाचार रानी जी ने पहिले ही से कह दिया था। अब हम आपको राजधानी में ले चलेंगे।

हमलोगों को बड़ा अचम्भा हुआ और मैं रञ्जन की ओर निहारने लगा। देखा कि वह भी मेरी ओर निहार रहा है। तो क्या धनपतिराय जी का लेख सत्य है? उन्होंने जीवनाग्नि के देश में जाने के लिये जो पथ बताया था और पथ में जो जो वस्तुएं दृष्टिगोचर होंगी यह सब जो लिखा था, सो सब हमको देख पड़ा। उन्हें देखकर हमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ था, परन्तु वृद्ध के वाक्यों को सुन कर हमारा कौतुहल उद्दीपित हो आया और हमलोग सोचने लगे कि क्या धनपतिराय जो कुछ लिख गए हैं सब सत्य है?

मैंने पूछा तुम्हारी रानी यहां से कितनी दूर रहती हैं? वृद्ध ने उत्तर दिया कि राजधानी यहां से तीन दिन की राह है।

इसके उपरान्त वृद्ध के आज्ञानुसार सब लोग नाव में से सब वस्तु किनारे पर लाने लगे। उन्हें रोकना हमने वृथा समझा, क्योंकि क्रुद्ध होने पर वे हमें तुरन्त मार सकते थे। हमलोग चुपचाप खड़े खड़े उनका कार्य देखने लगे। तब वृद्धने कहा "अब चलिए, हमलोग अपने गन्तव्य पथ पर चलें। कल एक गांव में हमलोग पहुंचेंगे। वहां से रानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास समाचार भेजा जायगा, और ३ दिन में उत्तर आजायगा। मैंने पूछा तुम्हारी इस राजधानी का क्या नाम है। उसने उत्तर दिया "कर कर का गिरिकन्दर"।

हमलोग सब चलने लगे। जङ्गल के बीच में होकर सकरी छोटी पगडण्डी पर हमलोग दिन भर चले, हमारे साथी—न मालूम वे हमारे रक्षक थे कि भक्षक—बड़ा कोलाहल मचाते हुए चले। उनके भयङ्कर शब्द से दूर दिगन्त तक जङ्गल गूंजने लगा। हिंसक जन्तु सब उसे सुन कर दूर भाग गए।

रात्रि को एक स्थान पर हमलोग ठहर गए। असभ्य लोग जङ्गल ही में रहते हैं। वहां पर उन्हें कुछ भी भय नहीं लगता था। वे दो हरिण और बहुत से पक्षी मार लाए और उन्हें अग्नि में भूंज कर खाने लगे। पास ही कई केले और दूसरे फलों के वृक्ष थे, हमने उन्हींसे अपनी क्षुधा की शान्ति की। हमलोग बहुत थक गए थे, इसलिये ईश्वर के हाथ आत्मसमर्पण कर हरी हरी दूब पर लेट गए। कुछ देर में वह वृद्ध दलपति हमारे पास आया और हमारे देश की बहुत सी बातें पूछने लगा, तथा हमने भी उसके मुख से वहां की बहुत सी कथाएं सुनीं। जान पड़ा कि यहां के निवासी संख्या में बहुत कम हैं, और जङ्गल के बीच में दूर दूर पर उनकी छोटी छोटी बस्तियां हैं। प्रत्येक बस्ती पर एक एक दलपति नियत है, और ये सब गांव, सारा देश, जङ्गल पहाड़, सब उसी एकमात्र रानी के अधीन है। प्रजालोग दैववश ही कभी उन्हें देखपाते हैं। नहीं तो वह अपना गृह त्याग कर वर्ष में कदाचित एकही आध दिन बाहर निकलती हैं। उनके नौकर चाकर सब गूंगे हैं, इससे रानी किस भांति से अपना समय काटती हैं किसीको नहीं ज्ञात है। यहां के दुर्दान्त वनवासी एक मात्र रानी ही का भय मानते हैं और कदापि उनकी आज्ञा के विपरीत काम करने का साहस नहीं करते। कारण यह है कि उनमें कई एक अलौकिक शक्तियां हैं। साधारण मनुष्य में उन शक्तियों का रहना असम्भव जान पड़ता है। इसलिये रानी को लोग देवता (ट्रू ड्रू पड़ाङ) का अवतार जानते हैं। रानी का बयस अनिश्चित है। वृद्ध के बाप दादा के समय में भी वही रानी राज्य करती थी और अब तक वह नवयौवनसम्पन्ना है।

दूसरे दिन हमलोग एक छोटी सी बस्ती में जा पहुंचे। गांव भर के बालक युवा जरठ नर नारी सब हमलोगों को देखने आए और बड़े आश्चर्य से आंखें फाड़ फाड़ अपना आश्चर्य जताने लगे। पहिले उन्होंने हमलोगों के समान मनुष्य नहीं देखा था। उन लोगों में और सब स्त्रियों से सुन्दरी एक युवती थी; वह मुख से एक शब्द भी नहीं बोली, परन्तु धीरे धीरे रञ्जन के पास चली आई और दोनों हाथों को उसके गले में डाल कर उसकी देह से चिपट गई और बार बार उसका मुख चूमने लगी। मैं तो यह देख कर स्तम्भित हो गया, मेरा हृदय धड़ धड़ धड़कने लगा और मैंने सोचा कि ये राक्षस अब थोड़ी देर में हमलोगों को बलिदान देंगे। रञ्जन भी उस छोकरी की करतूत से विस्मित हो गया और व्याकुल होकर चारो ओर स्त्री पुरुषों को देख देख घबराने लगा। परन्तु वास्तविक घटना हमलोगों के समझ में न आई। आश्चर्य की बात है कि जङ्गली लोग इससे क्रुद्ध नहीं हुए, और बूढ़ा दलपति एक ओर खड़ा होकर मुसकराता रहा।

उससे पूछने पर जान पड़ा कि कन्या का नाम नीरा है और इस देश की विवाहपद्धति ऐसीही होती है। वर कन्या के इच्छानुसार विवाह बन्धन जितने दिन तक वे चाहें रह सकता है। आज राजनाथ राय, बी. ए., का विवाह इसी भांति हो गया और जब उसने अपनी अवस्था में इस परिवर्त्तन का अनुभव किया तो वह कुछ दुखी नहीं जान पड़ा। मैंने इससे जितनी लज्जा अनुभव की, उसे उसकी एक अंश भी न हुई; हां, रमुआ मारे लाज के अधमरा हो गया। परन्तु थोड़ी देर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रञ्जन नीरा का हाथ पकड़ कर गांव की परिक्रमा करने चला गया, और हम दोनों चुपचाप वहीं बैठे रहे।

दूसरे दिन सुना कि दलपति राजधानी चला गया है। इससे हमने समझ लिया कि उसके लौटने तक हमें इन असभ्यों ही के बीच रहना पड़ेगा। अस्तु, इससे हमें कुछ विशेष क्लेश नहीं हुआ और वे लोग भरसक हमारी सेवा करने लगे। दो दिन ऐसे ही बीत गए। तीसरे दिन रमुआ के साथ एक मनुष्य से तकरार हो गया। उस दिन हमलोगों ने देखा कि वे लोग गुट्ट बांध कर धीरे धीरे कुछ कह सुन रहे हैं। हमने समझ लिया कि अब हमारे सर्वनाश का प्रबन्ध हो रहा है। बूढ़ा दलपति भी उपस्थित नहीं था, यदि वह रहता तो इन बनैलों को अपने शासन में ले आता। नीरा ने रञ्जन से कहा कि ये लोग रमुआ को मार डालेंगे! इसे सुनकर हमलोग पहिले ही से सावधान हो गए, और अपने जेब के पिस्तौलों को तैयार कर लिया।

सन्ध्या होते होते हमलोगों ने देखा कि वे अस्त्र शस्त्र ले ले कर हमारी ओर आ पहुंचे! उनमें एक मनुष्य एक लम्बी छुरी निकाल कर रमुआ के गले पर फेरने आया। मेरा हृदय डर के मारे कांपने लगा, परन्तु रञ्जन ने चट जेब से पिस्तौल निकाल कर उस मनुष्य पर चला दी। सारा जङ्गल उसके शब्द से हिल उठा और वह मनुष्य भूमि पर गिर पड़ा। असभ्यों ने कभी बन्दूक का शब्द नहीं सुना था और उसके गुण से भी वे परिचित न थे। इस अपूर्व घटना को देखकर वे भय से स्तम्भित हो गए। थोड़ी देर तक किसीकी बुद्धि ठिकाने न रही। उन्हींमें का एक मनुष्य सामने पड़ा लोहू लोहान हो रहा था, इसे देख कर पत्थर भी पिघल जाता, वे मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गए। अकस्मात् सब लोग एक स्वर से एक विकट शब्द करते हुए बर्छे ले ले कर हम लोगों पर टूट पड़े।

हमलोग केवल तीन मनुष्य और वे सैकड़ों थे। पिस्तौल हमारे अभी खाली हो जांयगे और तब वे राक्षस हमें मार डालेंगे, यह सोच कर मैं बहुत घबराया; परन्तु रञ्जन पास की एक पहाड़ी की ओर लपका और हमसे भी अपने साथ जाने को उसने कहा। हमलोग पल भर के भीतर दौड़ कर पहाड़ी की ओर अपनी पीठ कर के खड़े हो गए, इससे कोई पीछे से हमारे ऊपर आक्रमण न कर सका।

इधर वे लोग हमारी ओर आने लगे। उनसे बोलने की चेष्टा वृथा थी, क्योंकि कोई किसीकी भाषा ठीक ठीक नहीं समझता था। तौभी हम लोग चुप चाप खड़े रहे; पहिले किसीको हम मारना नहीं चाहते थे। वे हमारे और भी निकट आए और क्रोध से गर्जने लगे। रञ्जन चिल्ला कर बोला "यही समय है, फ़ायर"—और तीन पिस्तौलों से बड़े जोर से दूसरे शब्दों को दबाते हुए शब्द हुआ, सबके सामने धुंआ भर गया, और तीन मनुष्य फिर गिरे। जंगली लोग तितर बितर हो कर पीछे हट गए।

कोई पांच मिनट काल फिर बीत गया, तब विकट गर्ज्जन करते हुए वे हम पर फिर धावित हुए, उनमें से तीन मनुष्य फिर मारे गए।

आत्मीय, स्वजन, भाई, पुत्र, पिता, इत्यादि को आंखों के सामने मरते देख वे धीरे धीरे उन्मत्त हो गए, अब उन्हें मृत्यु से कुछ डर न रह गया। हम भी पिस्तौल दागने लगे, वे भी मरने लगे। धीरे धीरे हमारी गोलियां सब शेष हो गईं। तब मृत्यु निश्चित जान, दूसरा कोई उपाय न देख, हमलोग तीनों मनुष्य उन लोगों में घुस पड़े। पहिले वे कुछ भय खा कर हट गए, परन्तु दूसरी ही क्षण में उन्होंने हमें फिर घेर लिया।

मैंने देखा कि रञ्जन गिर पड़ा और एक मनुष्य उसकी हत्या के लिये उसपर लपका; फिर देखा एक लड़की ने आकर रञ्जन को बचा लिया; जो उसे मारने आता था, वह उसीके सामने अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह रख देती थी; मैने उसे पहिचान लिया, वह नीरा थी।

उसी क्षण ऐसा जान पड़ा कि बूढ़ा दलपति चिल्ला रहा है, किन्तु इसके पीछे किसके भाग्य में क्या हुआ मैंने कुछ नहीं जाना। मेरा सिर चक्कर खाने लगा, अंग अंग शिथिल हो गए, नेत्रों से अग्निशिखा निकलने लगी, मैं चारो ओर उज्वल ज्योति देखने लगा, वह ज्योति धीरे धीरे अन्धेरे में मिल गई, फिर मेरी दशा क्या हुई मैंने कुछ नहीं जाना।

जब मुझे ज्ञान हुआ, तो नेत्र खोल कर मैंने देखा कि एक कोठरी में लेटा हुआ हूं, सारे अङ्ग में बड़ा दर्द हो रहा है और बल मुझमें राई भर नहीं बचा है। धीरे धीरे पिछली रात्रि की सब कथा स्मरण हो आई। अपनी सारी देह को देखा, परन्तु कहीं बहुत चोट नहीं लगी थी। मैं उठ बैठा, और देखा कि जिस कोठरी में हमलोग पहिले टिके थे, यह वही कोठरी है।

रमुआ मेरे पास ही पड़ा था। उसे मैंने जगाया। राक्षसों ने उसे जीता छोड़ दिया है यह देख कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ; परन्तु रञ्जन को न देख कर हृदय व्याकुल होने लगा। हम दोनो ढाढ़स बांधकर कोठरी से बाहर आए। वहां बूढ़ा दलपति बैठा था, उसने हमसे क्षमा मांगी और कहा, मेरे यहां पर न रहने के कारण यह सब गड़ बड़ हो गया है; ये लोग सब पशुओं के समान हैं, क्रोध होने से इन्हें ज्ञान नहीं रहता। आपसे जिन्होंने अपराध किया है, रानी निश्चय उनको प्राणदण्ड देगी। मैंने पूछा "रानी ने हमलोगों के विषय में क्या आज्ञा दी है?"

बूढ़ा—आप सबको राजधानी में बुलाया है, कल ही वहां की यात्रा करेंगे।

मैं—रञ्जन कहां है, उसपर तो कोई आपत्ति नहीं आई?

बूढ़ा—नहीं! वह अच्छी तरह हैं। जिस समय ये लोग आप लोगों को मार रहे थे, ठीक उसी समय मैंने आकर सबको रोक दिया था। तनिक भी और देर हो जा जाती तो आप लोगों को न बचा सकता। तब तो बड़ा अनर्थ हो जाता।

मैं—क्यों?

बूढ़ा—तब रानी जी निश्चय हम सबका जड़ मूल से नाश कर डालतीं।

मैं रञ्जन के लिये घबराने लगा। रानी के विषय में यद्यपि बहुत कुछ पूछने को मुझे था, तौभी मैंने उसे कहा मुझे रञ्जन के पास ले चलो।

देखा कि रञ्जन सो रहा है और उसके सिर के पास बैठी नीरा उसकी सेवा करी है। मैंने उसे पुकारा, परन्तु वह न बोला। देह पर हाथ रक्खा तो देखा कि उसे प्रबल ज्वर चढ़ रहा है। मैंने बूढ़े से कहा "इसकी इस दशा में हमलोग कैसे राजधानी जा सकते हैं?"

बूढ़े ने कहा "जाना ही होगा। चाहे जैसे हो। रानी की आज्ञा टल नहीं सकती। इन्हें ले जाने का प्रबन्ध मैं करूंगा"।

वैसा ही हुआ। दूसरे ही दिन हमलोग करकर की ओर चलने लगे। दलपति ने हरी हरी पत्तियों से एक डोली बना कर उसमें रञ्जन को सुला दिया, चार राक्षस उसे उठा कर ले चले।

दूसरे दिन सन्ध्या के पहिले ही हमलोग एक बड़े पर्वत के सम्मुख पहुंचे। पर्वत को काट कर एक मार्ग बना था, और उसके दोनो ओर असंख्य छोटे छोटे से दीपक जल रहे थे। द्वार पर बहुत सी सेना खड़ी थी, सेनापति ने दलपति से सब कथा सुन कर द्वार छोड़ दिया। हमलोग कन्दर के भीतर घुसे।

थोड़ी दूर आगे बढ़ कर हमने देखा कि एक ठौर पर दो द्वाररक्षक खड़े हैं। उन लोगों ने हमें देख कर भूमि तक सिर झुका कर अभिवादन किया, पर कुछ कहा नहीं; रानी के सब सेवक गूंगे थे।

थोड़ी दूर और आगे एक मनुष्य हमारे सम्मुख आया और हमलोगों को अपने साथ लिवा ले चला। एक कोठरी में हमलोग गए और वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रञ्जन को लेटा दिया। नीरा साथ ही साथ आई थी, वह उसीके पास बैठी रही। हमलोग दूसरी कोठरी में ठहरे। भोजन बहुत उत्तम मिला। फिर मैं सो गया। [शेष आगे]

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास यदि विचारपूर्वक अवलोकन किया जाय, तो उसमें यह विलक्षणता मिलेगी कि संसार की प्रत्येक जाति, चाहे वह उन्नति की दौड़ में पीछे ही क्यों न हो, वर्तमान प्रचलित कई प्रथाओं से असन्तोष प्रगट करती है। यह भाव किसी विषय विशेष में ही प्रगट नहीं होता, वरञ्च धर्म, साहित्य, सामाजिक नियम तथा राजनैतिक प्रणाली, सब इस शताब्दी में युक्ति की कठोर विवेचना से हिल गए हैं। योरप की वर्तमान जातियों में रूस को लोग प्रायः अर्द्ध सभ्य कहते हैं, परन्तु उसमें भी आज कौन्ट टोल्सटाय (Count Tolstoy) ने जो आन्दोलन मचा रक्खा है, और जिसके कारण रुस की सरकार ने उन्हें अपने राज्य से निकाले जाने की आज्ञा भी दी है, विज्ञ पठितसमाज से गुप्त नहीं है। एक ओर तो वह दल है जो कौन्ट को अधर्मी राजद्रोही कह कर ठट्ठे मारता है, और एक ओर रुस और संसार मात्र का सभ्य समाज है जो इनको देश हितैषिता का अवतार और सत्य सिद्धान्तों का वक्ता कहता है। यह तो योरप की एक जाति की बात हुई। अमेरिका के आदि निवासी रेड इन्डियन (Red-Indians) भी परिवर्तन की उमंग में शिक्षा लाभ और उच्चपद प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। अफ़्रिका में मिश्री लोग स्त्रियों को स्वतन्त्र करने के हेतु आन्दोलन कर रहे हैं, और आश्चर्य की बात यह है कि बड़े बड़े मुफ्ती और मुल्ला आज इस मत से सहानुभूति प्रगट करते हैं। एशिया एक विशाल महाद्वीप है, इसमें अनेकानेक जातियां वास करती हैं, पर इसमें भी आज कोई ऐसी जाति नहीं है जो उन्नति करने का उद्योग न करती हो। जिस जाति ने समयानुकूल सामयिक त्रुटियों के दूर करने में शीघ्रता की, वह शीघ्र उन्नति के शिखर पर चढ़ गई। गत शताब्दी के प्रारम्भ में जापान का नाम केवल व्यापारियों और यात्रियों को ही मालूम था; आज जापान का सामना करने से रूस भी भयभीत होता है और संसार की सब जातियां उसको उन्नति का आदर्श मानती हैं। जिसने इस १९वीं शताब्दी के विचार-प्रवाह के विरुद्ध चलने का प्रयत्न किया, उसको क्षति होने में अधिक विलम्ब नहीं हुआ। चीन का प्राचीन बल और सौभाग्य उसे चाहे कुछ काल लों और स्वतन्त्र रखे, पर यदि वह जापान का अनुकरण करने पर सनद्ध न होगा तो उसके दिन भी गिने हुए हैं।

भारतवर्ष में उन्नति की चेष्टा का अभाव कभी नहीं रहा। जब जब भारतवासियों को शान्ति और सुख प्राप्त हुआ, इन्होंने उन्नति के चिन्ह प्रगट किए। मुसलमानों के राज्य में अकबर का समय मरुस्थल में वाटिका के समान था, और इसीलिये उस समय बीरबल, टोडरमल ऐसे राजनीतिज्ञ तथा तुलसीदास जी ऐसे कवि उत्पन्न हुए। पर आज कल हमें सम्पूर्ण रूप से शान्ति प्राप्त है, सद्विचारों के प्रचार करने में पूरी सुगमता है; पेशावर से मन्द्राज जाना ऐसा है जैसा अगले समयों में दिल्ली से आगरे जाना था। इस समय में यदि हममें महानुभाव उत्पन्न न हों तो हमारी जाति के स्वत्व में शंका करनी अनुचित न होगी। परन्तु हममें इस समय कई एक ऐसे महात्मा हुए हैं जिन्होंने हमें जीवित रक्खा है। अंग्रेजी शिक्षा के आरम्भ ही से हमारी कई एक प्रथाओं की नीती-शून्यता और हमारे विश्वासों की निर्बलता हममें इनकी ओर ऐसी घृणा उत्पन्न करा रही थी कि यदिये स्वतन्त्रता के आचार्य न जन्म लेते तो हिन्दू जाति का नाम संसार में जीवित न रहता और हमारे शास्त्रों का वैसा ही शुष्क मान्य रहता जैसा आज लैटिन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीक का हो रहा है। उन्हीं महापुरुषों में से एक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती थे।

संक्षिप्त जीवनी

स्वामी जी का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात देश के मोरवी नगर में हुआ था। ये अवदीच्य ब्राह्मण थे। इनका असल नाम मूलशंकर था। इनके पिता अम्बाशंकर एक प्रतिष्ठित जिमींदार थे। इनको बाल्यावस्था ही में रुद्री और शुक्ल यजुर्वेद आरम्भ करा दिया गया था। इनके पिता शैव थे, इस कारण पुत्र से नित्यप्रति पार्थिव पूजन कराया करते थे। जब इनकी अवस्था दस वर्ष की हुई, तो एक दिन शिवरात्रि का व्रत करने को इनसे कहा गया, परन्तु इनकी माता जी ने ऐसा न करने दिया। जब यह चौदह वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इनको व्रत रखने पर बाध्य किया और इन्हें शिवरात्रि की कथा सुनवाई जो इनको बहुत प्रिय लगी। हिन्दूमात्र शिवरात्रि को जागना धर्म्म समझते हैं। इनके पिता इन्हें लेकर नगर के बाहर एक शिवालय में गए। वहां और बहुत से लोग थे। बारह बजे तक तो लोग पूजा करते रहे और फिर नींद के झोके आने लगे और वहां ही सब लोग सो गए। बालक मूलशंकर इस भय से न सोया कि कहीं उसके व्रत का फल नष्ट न हो जाय। जब बिलकुल सन्नाटा हो गया तो एक बिल से चूहा निकला और महादेव के लिङ्ग के उपर चढ़ कर अक्षतादि खाने लगा। यह देखकर चंचल बालक के हृदय में विचारों की तरङ्गें उठने लगीं। वह सोचने लगा कि महादेव जी तो त्रिशूलधारी हैं, बड़े बड़े दैत्यों का संहार करते हैं, पर इस समय इस छोटे से चूहे को भी अपने ऊपर से हटाने की सामर्थ्य नहीं रखते। यह शंका यहां लो बढ़ी कि उसने तुरन्त अपने पिता को जगा कर उनसे यही प्रश्न पूछा। पिता जी बड़े क्रोधित हुए और कहने लगे कि यह तो केवल महादेव की मूर्ति है। जब बालक की शंका समाधान नहीं हुई, तो वह यह कहकर वहां से उठ खड़ा हुआ कि जबलों मैं महादेव जी का प्रत्यक्ष दर्शन न करलूंगा, व्रत इत्यादि भी कभी नहीं करूंगा। घर जाकर उसने माता से भोजन मांग अपनी भूख मिटाई। स्वामी जी के चचा इनसे बड़ा स्नेह रखते थे। स्वामी जी की अवस्था जब बीस वर्ष की हुई, तब इनके चचा की मृत्यु हो गई। यह दुःख इनके लिये असह्य सा था। इनके चित्त में मनुष्यसम्बन्धी कतिपय प्रश्न उत्पन्न होने लगे। अपने मित्र तथा विज्ञ पण्डितों से इन्होंने यह पूछा कि मनुष्य अमर किस प्रकार से हो सकता है। सबने एकही उत्तर दिया कि "योगाभ्यास से"। तब इनके मन में यह समाई कि किसी प्रकार घर छोड़ दें। माता पिता से यह प्रार्थना की कि मुझे विद्याध्ययन के हेतु काशीजी जाने दीजिए। उन्होंने यह बात स्वीकार न की वरन् वे उनके विवाह की बात चीत करने लगे। यह देख कर स्वामी जी ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं कदापि विवाह न करूंगा। परन्तु विवाह की सब तैय्यारियां हो गईं। जब एक महीना रह गया तब स्वामी जी बहाना कर घर से निकल पड़े। इधर उधर भ्रमण करते हुए इन्हें कई एक साधू मिले। इनमें से एक ने इनकी अंगूठियां ठगलीं और दूसरे ने, जो एक रानी को अपने फन्दे में फसा लाया था, इनसे हंसी ठठ्ठा करना आरम्भ किया। इसलिये यह कहीं न ठहरे, और यह सुनकर कि सिद्धपुर में एक बड़ा मेला होता है, उसी ओर चल पड़े। किसीने इनके पिता से यह समाचार कह दिया। पिता चार सिपाही साथ ले वहां पहुंचे और उन्होंने इन्हें एक मन्दिर में आ पकड़ा। पिता के देखते ही वह उनके पैरों पर गिर पड़े। पिता ने क्रोध में आकर इनका तूंबा तोड़ डाला, कोपिन फाड़ डाली, और इनको उन चार सिपाहियों के पहरे में छोड़ दिया। चौथे दिन यह रात्रि के समय सिपाहियों को सोता छोड़ भाग निकले और गांव के बाहर एक वाटिका में एक पेड़ पर चढ़ बैठे और दिन भर भूखे प्यासे वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। वहां से चल कर कई स्थानों पर कितने ही साधुओं से मिले और योगाभ्यास भी किया। घूमते घामते अलकनन्दा नदी के उद्गम तक पहुंचे। वहां बड़ी बर्फ थी, मन में आया कि हिमालय पर गलकर जीवन दें; पर फिर सोचा कि बिना ज्ञान प्राप्त किए मरना पाप है, इसलिये विद्या प्राप्त करनी चाहिए। यह निश्चय कर वह मथुराजी पहुंचे। उस समय वहां एक विलक्षण विद्वान रहते थे। ये दोनों आंखों से अन्धे थे और उनकी अवस्था उस समय ८१ वर्ष की थी। इनका नाम स्वामी विरजानन्द था। इन्हें प्राचीन आर्य ग्रन्थों के अतिरिक्त नवीन ग्रन्थों पर रुचि न थी। स्वामीजी ने इनसे ही विद्याभ्यास आरम्भ किया और इनके नित्यप्रति भोजनादि का प्रबन्ध एक धर्मात्मा गृहस्थी अमर लाल जी ने कर दिया था, जो इनसे बड़ा स्नेह रखते थे। स्वामी दयानन्द दत्तचित्त हो श्री स्वामी विरजानन्द जी से पढ़ते और उनकी आदर पूर्वक बड़ी सेवा भी करते रहे। नित्य ही उनके लिये यमुना जी से जल लाया करते। वे अढ़ाई वर्ष लों मथुरा में रहे और अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र इत्यादि ग्रन्थ समाप्त किए। विद्यार्थियों का यह एक नियम है कि जब उनकी शिक्षा समाप्त हो जाती है तो अपनी कृतज्ञता का परिचय देने के हेतु वे गुरु जी के सम्मुख कुछ भेंट लेजाते हैं। स्वामी दयानन्द के पास कुछ धन तो था ही नहीं, विचारे कुछ लौंग के दाने लेजा कर गुरु जी से आज्ञा मांगने गए। गुरु जी ने कहा "क्या मैं तुमसे ऐसा पदार्थ मांगूंगा जो तुम्हारे पास न हो"। इस के उत्तर में स्वामी जी ने सविनय निवेदन किया कि जो कुछ मेरी सामर्थ्य में है मैं भेंट करने को उद्यत हूं। गुरु जी ने कहा "जा, वेदविद्या संसार से उठ गई है, उसका प्रचार कर, मत मतान्तरों को दूर कर, देश का सुधार कर, मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा भरी है, ऋषिकृत ग्रन्थ इससे रहित हैं, इसे स्मरण रख; यही ऋषिकृत और मनुष्यकृत ग्रन्थों की पहचान है"। स्वामी दयानन्द ने गुरु की आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा की और गुरु का आशीर्वाद ले वे वहां से विदा हुए और उसी दिन से इनके परोपकारी जीवन का आरम्भ समझना चाहिए।

स्वामीजी की शिक्षा और उनके सिद्धान्त।

हम प्रथम ही कह चुके हैं कि देशहित का अंकुर उसी दिन जमता है कि जब मनुष्य प्रचलित प्रथाओं से असन्तोष प्रगट करता है। इस प्रकार का असन्तोष स्वामी दयानन्द को बाल्यावस्था ही से उत्पन्न होने लगा। मूर्त्ति पर से चूहे का अक्षत लेना, पिता का विद्याध्ययन की अपेक्षा बालक के विवाह की अधिक चिन्ता करना, घर छोड़ने पर ठग साधुओं का मिलना, इन सबने उनके चित्त में प्रबल असन्तोष का प्रादुर्भाव कर दिया था। पर यदि यह असन्तोष असन्तोष ही बना रहता तो स्वामी दयानन्द एक कट्टर नास्तिक होते। पर ईश्वर ने इनको सन्तोष की भी सामग्री प्रदान की और आबू पर्वत पर अच्छे अच्छे योगियों के दर्शन भी करा दिए, जिनसे इन्होंने योगाभ्यास के गुप्त तत्वों को सीखा। स्वामी विरजानन्द जी से मिलकर इनको वेदों, उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थों पर श्रद्धा हुई और इन ग्रन्थों को पढ़कर उन्होंने उनमें भारत के सुधार की कुञ्जी पाई। स्वामीजी का सिद्धान्त था कि प्रथम शिक्षाप्रणाली का सुधार होना अत्यन्तावश्यक है। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास के आरम्भ में उन्होंने लिखा है—"विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और लड़के और लड़कियों की पाठशाला एक दूसरे से दो कोस की दूरी पर होनी चाहिए" और "पाठशाला से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे और सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन, दिए जांय; चाहे वह राज कुमार या राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए। उनके माता पिता अपने सन्तान से वा सन्तान अपने माता पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से न मिल सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें। जब भ्रमण करने को जावें, तब उनके साथ अध्यापक रहें, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें, और न आलस्य प्रमाद कर सकें"। आगे चलकर उसी समुल्लास में मनु जी के "कन्यायां सम्प्रदानं च कुमाराणाम् च रक्षणम्" का अभिप्राय यों लिखते हैं कि यह "राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि लड़के और लड़कियों को पांचवें या आठवें वर्ष से आगे कोई अपने घर न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, नहीं तो दण्डनीय होवेंगे"। अपने समस्त ग्रन्थों में विद्यार्थियों के हेतु ब्रह्मचर्य्य की अतीव आवश्यकता पर स्वामी जी के समान किसी सुधारक ने ऐसा जोर नहीं दिया है। "चौबीस वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रह कर वेदविद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे"। फिर पृष्ठ ४६ में लिखा है—"जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य्य रहे तो स्त्री १७ वर्ष; जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष। इसी प्रकार ४८ वर्ष से आगे पुरुष और २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य्य न रखना चाहिए"। स्वामी जी की सम्मति थी कि विद्या का अधिकार सब वर्णों को है। पृष्ठ ५४ में इसका कारण यह लिखा है कि "आचार्य राजा इतर क्षत्री वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावे क्योंकि वे जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्री आदि न करें, तो विद्या, धर्म, राज्य, और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती; क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने से क्षत्री आदि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं, जीविका के आधीन और क्षत्री आदि के आज्ञा दाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्डादि में फँस जाते हैं। और जब क्षत्री आदि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्म पथ में चलते हैं और उन क्षत्री आदि विद्वानों के आगे पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते। और जब क्षत्री आदि अविद्वान होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्री आदि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें; क्योंकि शास्त्रादि ही विद्या धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावत् नहीं करते, इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते, और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्म-युक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्री आदि को नियम में चलानेवाले ब्राह्मण और सन्यासी तथा ब्राह्मण और सन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्री आदि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुष में विद्या और धर्म्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए"। स्वामी जी की इस शिक्षाप्रणाली का सार वही है जो आज कल योरप में वर्ता जाता है। Compulsory Education अर्थात् प्रत्येक बालक का पाठशाला में विद्या पढ़ने के लिये वाध्य किया जाना, Boarding schools अर्थात् छात्रशालाओं का पाठशाला के साथ साथ रहना और Levelling tendency अर्थात् सब जाति का शिक्षा पाना है। परन्तु स्वामी जी की बतलाई प्रणाली कुछ कठोर है, क्योंकि बालकों को माता पिता से पत्र व्यवहार तक करने की मनाही की गई है। स्वामी जी की सम्मति थी कि इन पाठशालाओं में वेद और शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान करा दिया जाय और प्रत्येक बालक को सर्व शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। पर कतिपय ग्रन्थों का निषेध करते हुए स्वामी जी लिखते हैं कि रघुवंश, तुलसीकृत रामायण और "सर्व भाषा ग्रन्थ" कपोलकल्पित हैं। हमारी समझ में यह स्वामी जी की भूल है। नाटकादि का पढ़ना पढ़ाना ऐसा बुरा नहीं है जैसा वे समझते थे। नाटक मनुष्यजीवन के कर्तव्यों को चित्राङ्कित और सजीव कर देते हैं। शेक्सपीअर और कालिदास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटकों को पढ़ते हुए हममें अपने जीवन की भिन्नता और गम्भीरता के सम्बन्ध में उच्चभाव उत्पन्न होते हैं। तुलसीदास की रामायण में श्री रामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार माना है और रामायण में बहुत सी असम्भव बातों का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसीसे स्वामी जी ने इसको पढ़ने का निषेध किया है। प्रथम तो स्वामी जी ने तुलसीदास जी की भक्ति और अद्भुत कवित्वशक्ति को पूर्णरूप से नहीं पहचाना, और फिर यदि मान भी लिया जाय कि उसमें उनके मतविरुद्ध बातें हैं, तौभी उसका निषेध कर आप "न गच्छेत जैन मन्दिरम् न पठेत यावनी भाषाम्" इत्यादि वाक्यों का अनुमोदन कर संकीर्णहृदयता का प्रचार किया है। हमें खेद के साथ आश्चर्य होता है कि स्वामी जी ने "सब भाषा ग्रन्थों" को "कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ" कैसे कह दिया जब कि वे स्वयं अपने ग्रन्थों को भाषा ही में लिखते थे। स्वामी जी के अन्यान्य सिद्धान्त आज कल सर्वसाधारण पर विदित हैं। स्वामी जी ने ईश्वर को निराकार मानकर मूर्तिपूजा का निषेध किया है, श्राद्धों को व्यर्थ माना है, विधवा विवाह को अनुपयोगी समझ "नियोग" अर्थात् विधवा स्त्री को सन्तान उत्पन्न कराने के लिये अपने पति के भाई से समागम करने की आज्ञा दी है। ईश्वर, जीव, प्रकृति को अनादि और नित्य माना है, हिन्दूमात्र को एक दूसरे के साथ खाने की आज्ञा दी है; परन्तु इसके ही साथ यह भी लिखा है कि केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकती; जब तक आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य्य का सेवन न करना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विद्या और वेदविद्या का आचार, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण दूर न होंगे, सच्चा सुधार स्वप्नमात्र है।

द्वीप द्वीपान्तर में जाने की आज्ञा स्पष्टरूप से दी है। सत्यार्थप्रकाश, दशम समुल्लास, २६४ पृष्ठ में लिखा है—"जब महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था, उस में सब भूगोल के राजाओं को बुलाने का निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव, चारों भाई चारों दिशा में गए थे; जो दोष इसमें मानते तो कभी भी न जाते। सो प्रथम आर्यावर्तदेशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे, और जो आज कल छूत छात और धर्म्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मुर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश देशान्तर, द्वीप द्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते, वे देश देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति भांति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूर वीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला, महाभ्रष्ट म्लेच्छ कुलोत्पन्न, वेश्यादि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन नहीं होते, किन्तु देश देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम से छूत और दोष मानते हैं!!! आगे चल कर लिखते हैं कि हमें देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो पाप के काम करने में लगता है"। फिर आगे "इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा दिया। हाथ पर हाथ धरे घर बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें, परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है।

पञ्जाब में आज कल एक शुद्धी सभा स्थापित है। इसके चलानेवाले सिक्ख लोग हैं। इसका उद्देश्य यह है कि यदि कोई हिन्दू मुसलमान वा इसाई होकर पुनः हिन्दू धर्म्म स्वीकार करे तो वह उचित संस्कार के पश्चात् हिन्दू करलिया जावे। स्वामी दयानन्द इससे परम सहानुभूति रखते थे। कई एक समय बहुधा अन्य धर्मावलम्बियों के पुनः संस्कार के समय उपस्थित भी थे। यदि विचार कर देखा जाय तो Conversion अर्थात् पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार की प्रथा हिन्दुओं में न होने से हिन्दू-धर्म्म को बहुत हानि हुई। जब शंकर बौद्धों को हिन्दू कर सके, तो यदि गुरु नानक के अनुयायी स्वामी दयानन्द ने मुसलमानों और ईसाईयों को हिन्दू कर-लिया तो क्या पाप किया। यदि यह कहा जाय कि मुसलमान और ईसाई मांस भक्षण से कुत्सित हो जाते हैं तो हम यह कहते हैं कि जिला प्रतापगढ़, सुलतानपुर, और बिहार की ओर एक वृहत संख्या मुसलमानों की है कि जो नाममात्र के तो मुसलमान हैं, परन्तु उनकी रीति चाल सब हिन्दुओं की है। वे "खांजादे" कहलाते हैं। इनमें बहुधा बूढ़े लोग अबतक शिखा रखते हैं। जो कायस्थों से मुसलमान हुए हैं "लाल" कहलाते हैं और अपने नाम के साथ "लाल" शब्द का प्रयोग करते हैं—जैसे "हसन अली लाल"। चौका देकर रोटी करते और खाते हैं, हिन्दुओं से प्रीति रखते हैं। क्षत्री मुसलमान क्षत्री मुसलमान ही से विवाह करते हैं, जैसे मन्द्राज के तरफ ब्राह्मण ईसाई ब्राह्मण ईसाई से। दक्षिण के ओर मैमू मुसलमान हिन्दु धर्म्म शास्त्र के अनुसार चलते हैं और अदालत में उनके मुकद्दमें भी मनु इत्यादि धर्म्म शास्त्रों के अनुसार होते हैं। निदान इस भारतवर्ष में असंख्य ऐसे लोग पड़े हैं कि जो जनसंख्या में तो मुसलमान और ईसाई लिखे गए हैं, पर वास्तव में आचार विचार में वैसेही कट्टर हिन्दू हैं कि जैसे हिन्दुनाम-धारी। यही मुसलमान जब कुछ वर्षों के अनन्तर शहर के मुसलमानों से विवाहादि करने लगेंगे तो इनमें भी गोमांस भक्षण इत्यादि आचारभ्रष्टता आजायगी। इसलिये इन दिहाती मुसलमानों को हिन्दू करना गोरक्षा का भी एक सहज उपाय है। इसके अतिरिक्त पुनःसंस्कार की प्रथा न होने से कितने ही बालक जो धोखे अथवा भूल से ईसाई हो गए थे, ईसाईही बने रहे, यद्यपि वे स्वयं या उनके माता पिता हृदय से चाहते थे कि वे हिन्दू बना लिए जांय। पश्चात्ताप से पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है। पर हमारा वर्तमान हिन्दूसमाज इस सिद्धान्त पर नहीं चलता। हमने जानकर "वर्त्तमान" शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि महा-राष्ट्र इतिहासवेत्ताओं ने लिखा है कि पेशवा लोग बहुधा उन हिन्दू बालकों को, जो मुसलमान हो जाते थे, फिर हिन्दू बना लेते थे।

स्वामी जी की शिक्षा का प्रभाव

जबसे स्वामी जी ने देशोपकार करने की प्रतिज्ञा की, वे नगर नगर भ्रमण करते रहे और जहां जाते वहां व्याख्यान देते या शास्त्रार्थ करते थे। भारतवर्ष में जितने धर्म्म आज लों प्रचलित हैं, सबके प्रतिनिधि उनसे विवाद करने जाते। उस समय लोगों को आश्चर्य होता था कि एक सन्यासी सुधार की वही बातें कहता है कि जो अबलों वे हिन्दू धर्म्म के विरोधियों से सुना करते थे। पण्डितसमाज इस बात पर चकित होता कि वह अपने कथन का प्रमाण वेदों और उपनिषदों से देते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वामी जी के व्याख्यान सुनने को शहर का शहर उमड़ पड़ता और उनके शास्त्रार्थ की चर्चा घर घर होने लगती। जो स्वामी जी से सहमत नहीं होते, उन्हें धर्म्म-सभा के स्थापित करने की सूझी और जो स्वामी जी के अनुयायी थे, उन्होंने "आर्य्य समाज" स्थापित किया। पहिले पहल यह समाज बम्बई में खुला। पर आर्य्य समाज का जितना प्रबल दल आज कल पञ्जाब में है, उतना और कहीं नहीं। इसका कारण चाहे जो कुछ हो, पर गुरु नानक की शिक्षा से छूत छात का आडम्बर कम होने से मानो पञ्जाब एक दयानन्द और उसकी शिक्षा को स्वागत करने के हेतु प्रस्तुत था। यह स्वामी जी ही की शिक्षा का प्रभाव है कि जिस देश में संस्कृत का पढ़ना पढ़ाना थोड़े से ब्राह्मणों में केवल विवाहादि कराने के हेतु नाम मात्र को रह गया था, वहां आज क्वेटा में भी जो बिलोचिस्तान में हैं, संस्कृत की एक पाठशाला स्थापित हो। इस समय भारतवर्ष में जातीय गौरव और देशहित की शिक्षा यदि किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल में मिलती है तो वह "दयानन्दएंग्लो-वैदिककालिज लाहौर" है। यहां के प्रिन्सिपल लाला हंसराज जो अवनैतिक अध्यापक हैं, जिनके चरित्र का अपने छात्रों पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। बालिकाओं के शिक्षार्थ सबसे उत्तम पाठशाला "जालन्धर कन्या महाविद्यालय" है। स्वामी जी ने मरने से पूर्व जो वसीयत (स्वीकार पत्र) लिखी थी, उसमें उन्होंने अपने सर्वस्व को अन्यान्य देशोपकारी कार्य्यों के अतिरिक्त "आर्यावर्त के दीनों और अनाथों की सहायता और उनकी विद्या शिक्षा में ख़र्च करने" की आज्ञा भी दी थी और इस कार्य को आर्यसमाज ने ऐसे उत्साह और सुप्रबन्ध से चलाया है, कि हम सनातन धर्म्मावलम्बियों को लज्जा आनी चाहिए। मध्यप्रदेश में अकाल के पड़ने पर माता अपने बच्चों को बेचती थीं और ईसाई पादड़ी उन्हें दयाकर अपने अनाथालयों में रख पालन करते थे। हममें बहुत से लोग ईसाईयों को गाली देकर यह कहते हैं कि वे धोखे से ईसाई कर लेते हैं। पर ऐसा कहना अपने आलस्य और देशहितैषिता के अभाव का परिचय देना है। पञ्जाब आर्यसमाज की ओर से कितने ही सुशिक्षित एम.ए., बी.ए., अकाल पीड़ित देशों में जा छोटे छोटे अनाथ-निराश्रय बच्चों को लाए और उनके पालन पोषण और शिक्षा के प्रबन्ध के निमित्त उन्होंने फ़िरोज़पुर इत्यादि नगरों में अनाथालय स्थापित किए। ये सब बालक, जो आज इन आश्रमों में पाले जाते हैं, या तो काल के कवर होते, अथवा मिस्टर स्मिथ या सैय्यद अली कहलाते।

स्वामी जी की शिक्षा का बड़ा भारी प्रभाव यह हुआ कि आज कल के हिन्दू यह समझने तो लगे कि सुधार करने के हेतु हमें विदेशीय आचार्यों से शिक्षा ग्रहण करने और विदेशीय जातियों का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। आज कल की दूषणीय प्रथाएं प्राचीन आर्यों से प्रचलित नहीं हैं। बालविवाह, "नौ कनौजिया दस चूल्हा," विदेश जाने का निषेध, स्त्रियों को मूर्ख रखना, इत्यादि आधुनिक प्रथाएं हैं जो बौद्धों और मुसलमानों के समय से जड़ पकड़ गई हैं।

वेदों की सच्ची प्रतिष्ठा जितनी स्वामी जी के समय में हुई है, उतनी शायद जैमिनी जी के समय में हुई होगी। चारों वेद इस समय ५) में मिलते हैं। सन् १८६२ की बात है कि वल्लभकुल सम्प्रदाय के आचार्य से बम्बई हाईकोर्ट में पूछा गया कि हिन्दुओं की प्राचीन पुस्तकें कौन कौन सी हैं। उन्होंने कहा कि पहली पुराण, दूसरी वेद, तीसरी शास्त्र है। इसी प्रकार जब ईसाई पादड़ी वेदों का अनुसन्धान करने लगे तो उन्हें कपोलकल्पित कई एक ग्रन्थ मिले, परन्तु सच्चे वेदों का कहीं पता भी न था। मृत जर्मन पण्डित मेक्समूलर ने पहिले पहिल ऋग्वेदसंहिता को प्रकाशित कराया। परन्तु पहिले पहिल उसका हिन्दी अनुवाद करने का गौरव स्वामी दयानन्द सरस्वती ही को प्राप्त है। वेदों के कई अनुवाद सायनाचार्य जी, महीधर जी, रमेशचन्द्र दत्त इत्यादि के मिलते हैं। महीधर जी वेद को वाममार्ग की तरफ खींचते हैं, रमेशचन्द्र दत्त युरोपीय पुरातत्वज्ञों की नांई वेदों में सभ्यता की क्रमिक उन्नति ढूंढ़ते हैं और आर्यों को वैदिक समय में गोमांसभक्षक बताते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेदों को ईश्वरकृत मान कर उनको मनुष्यजीवन सम्बन्धी अकाट्य सिधान्तों का भण्डार दिखलाने का प्रयत्न किया है। अंग्रेज़ लोग सायनाचार्य्य के अनुवाद पर अधिक श्रद्धा रखते हैं। स्वामी जी ने लिखा है कि वेदों का अनुवाद करने के हेतु आधुनिक कोश, व्याकरण से सहायता नहीं मिलती, वरञ्च निघंटू और अष्टाध्यायी, जिनका पढ़ना पढ़ाना आजकल बन्द है, परमोपयोगी हैं। तात्पर्य यह कि सब योरोपीयन तथा हिन्दू पुरातत्वज्ञ और स्वामी जी इस बात पर सहमत हैं कि वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। परन्तु पूर्वकथित लोग वेद को केवल ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हैं, और उसमें मानुषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति नीति की उतरोत्तर वृद्धि का मर्म पाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी समझ में वेदों के पीछे के ग्रन्थ बढ़ी हुई सभ्यता का परिचय देते हैं, परन्तु स्वामी जी का मत था कि वेदों में आदर्श रीति नीति का वर्णन है और पीछे के सब ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक आदरणीय हैं। हम इस लेख में इस का निर्णय नहीं किया चाहते कि इसमें कौन सा मत सत्य है, क्योंकि इसका विचार इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है कि "ईश्वरकृत ग्रन्थ की आवश्यकता है या नहीं?" जिसपर हम इस पत्रिका में विचार नहीं किया चाहते।

चरित्र और स्वभाव

आज कल के सन्यासियों में स्वामी दयानन्द जी सा देशहितैषी मिलना बहुत कठिन है। स्वामी जी के विरोधी भी कहते हैं कि वह बालजितेन्द्रिय थे। उनके चरित्र में कोई धब्बा नहीं था। वह जहां जाते पाठशालाएं स्थापित करते और लोगों को सुमार्ग की ओर ले चलते। महाराना चित्तौड़ से मिलकर उन्होंने उनको परस्त्रीगमन निषेध का उपदेश दिया। जोधपुर के महाराज की शोचनीय दशा देख कहने लगे कि आप मुझसे अपनी दिनचर्य्या सुनाकर अपनी दशा सुधार लें। एक बेर की बात है कि नन्ही जान, जो महाराज जसवन्त सिंह जी की एक वाराङ्गना थी, उनके पास बैठी थी, की इतने में महाराज को स्वामी जी के आने का समाचार मिला। महाराज ने नन्हीजान को चले जाने का सङ्केत किया। जब उसको चौपान में बैठा कर उठाने लगे तो एक ओर चौपान झुक गया। महाराज ने आप अपने एक हाथ का सहारा दिया। इतने में स्वामी जी जा पहुंचे और महाराज साहेब को यह करतूत देख दुःख से पीड़ित हो बोले "हा खेद! सिंह की ध्वजा पर कुतिया का इतना जोर! ऐसे समागम से यदि कुत्ते न उत्पन्न हों तो और क्या हो!!" स्वामी जी के चरित्र की ऐसी ऐसी घटनाएं स्पष्टरूप से सिद्ध कर देती हैं कि उन्हें देशहितैषिता का एक स्वाभाविक नशा था जो सत्य कहने में उन्हें निर्द्वन्द बना देता था।

चन्दापुर के एक रईस ने उत्सव कराना चाहा। आपने सम्मति दी कि प्रत्येक धर्म्मप्रतिनिधि को बुलवा कर उनसे अपने अपने धर्म पर व्याख्यान करा दो, सत्य का निर्णय भी हो जावेगा और उत्सव का उत्सव। उन्होंने साहेब कलकटर से ऐसा होने के लिये आज्ञा भी ले ली और ईसाई पादड़ी तथा मुसलमानों से स्वामी जी से विवाद भी हुआ।

महाराना चितौड़ से कह कर उन्होंने राज-कचहरियों में नागरी करा दी। सन् १८८२ ई० में जब शिक्षा-कमीशन बैठा था तो उन्होंने पश्चिमोत्तर-प्रदेश-निवासियों से मेमोरियल (प्रार्थना पत्र) भेजने का अनुरोध किया था और लिखा था—"ऐसा ज्ञात हुआ है और गत दिवस नैनीताल की सभा की ओर से एक इसी विषय में पत्र भी आया था, उसके अवलोकन से निश्चय हुआ कि पश्चिमोत्तर देश से मेमोरियल नहीं गया। इसलिये आप को अति उचित है कि मध्यप्रदेश में सर्वत्र पत्र भेजकर बनारस आदि स्थानों से, और जहां जहां से परिचय हो, सब नगर व गांवों से मेमोरियल भेजवाइए। यह काम एक के करने का नहीं है और अवसर चूके यह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हो गया तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नीव पड़ जावेगी"। अन्तिम वाक्य नागरी प्रेमियों को कण्ठस्थ करने योग्य हैं। उन्हीं के लिखने पर फरुखाबाद आर्यसमाज की ओर से सहस्रों हस्ताक्षर कराए गए और मेमोरियल भेजा गया।

स्वामी जी के मत प्रचार करने के ढङ्ग में हमें एक बड़ा दूषण दीखता है। यद्यपि हम इस बात को मानते हैं कि स्वामी जी का प्रबल हौसिला यह था कि भारतवर्ष में एक धर्म्म हो जावे, इस लये वे सब धर्म्मवालों से विवाद करते थे। सत्यार्थ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों में बार बार यह कहा है कि "मेरा तात्पर्य किसी को हानि या विरोध करने का नहीं है, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है;" "सर्वशक्तिमान परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों की आत्माओं में प्रकाशित करें"। पर इसके साथ ही हमें यह कहने में भी कोई संकोच नहीं कि वे विरोधियों को ऐसे कटु और कभी कभी असभ्य वाक्य कह जाते थे कि जो एक महान् सुधारक को उचित नहीं थे, और उन्हींके सिद्धान्तों के प्रचार में विलम्ब डालते थे। बहुत से लोग यह कहेंगे कि स्वामी जी सुधार के विचार ऐसे मूर्खान्ध दल पर फैलाते थे कि बिना कटुवाक्य कहे वे सफलीभूत न होते। हम केवल इसके उत्तर में यही कहना चाहते हैं कि यदि स्वामी जी चाहते तो ऐसे शब्दों का प्रयोग न करते। संसार में सुकरात (Socratese) ऐसे कई एक बड़े बड़े सुधारक हुए, जिन्होंने प्रिय मधुर शब्दों को कदापि नहीं छोड़ा और साथ ही वे अपने उद्देश्य में कृतकार्य हुए। सत्य तो यह है कि स्वामी जी एक उद्दंड देश-हितैषी हुए हैं। देशाभिमान, देशभक्ति और देशानुराग उनकी सब बातों में पाया जाता है। एक समय उन्होंने स्वदेशीय वस्तु प्रचार पर एक व्याख्यान दिया था। आज कल जिन जिन बातों की भारतवर्ष में आवश्यकता है, उन्हें वे भले प्रकार समझ गए थे, पर उन्हें एक मत फैलाने की एक ऐसी धुन थी कि दिल्ली दरबार में सय्यद अहमद खां इत्यादि महानुभावों को अपने डेरे पर बुलवा कर उन्होंने कहा था कि भारतवर्ष में एक धर्म होना चाहिए और उन्हीं भावों का सत्यार्थप्रकाश समाप्त करते हुए उल्लेख भी उन्होंने किया है—

"सर्व सत्य का प्रचार कर सबको एक मत करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा, सबसे सबको सुख लाभ पहुचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा, सहाय, और [illegible] प जनों की सहायता और सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिसमें सब लोग सहज में धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

पंडित रामनारायण मिश्र [illegible]

आधुनिक ग्रन्थकार और प्रकाशक

मनु, वाल्मीकि, नारद, वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य जैसे प्राचीन और यूरोप तथा एमेरिका में निवास करनेवाले अर्वाचीन विद्वानों के सिद्धान्त जानने और उपदेश सुनने के लिये पुस्तकें फोनोग्राफ़ हैं। मास्टर विद्यार्थियों को संथा कण्ठ न होने पर मारता है किन्तु पुस्तक से बेमारे शिक्षा मिल जाती है। जो व्यक्ति पुस्तक से प्रेम रखता है उसे विश्वस्त मित्र, सच्चे उपदेशक और सुशासक की आवश्यकता नहीं रहता है। पापों से छुड़ा कर सुमार्ग में लगाने, विपत्ति के समय धैर्य देने और निरुद्यमी को उद्योगी तथा कङ्गाल को लक्ष्मीसम्पन्न बनाने के लिये पुस्तक मित्र से बढ़ कर शिक्षा देती है। अपराधी को उसका अपराध और दण्ड बतला देने के लिये पुस्तक बिना फीस का वकील है। पुस्तक ही होनहार प्रजा को भले और बुरे मार्ग पर चलाने का सांचा है।

यूरोपियन लोग पुस्तकों के गुणों को अच्छी तरह जानते हैं। उन लोगों में पुस्तकों का बड़ा आदर है। नवीन पुस्तक प्रकाशित होते ही हाथो हाथ बिक जाती है। समय के फेर से भारतवासी पुस्तकों के लाभों को भूल गए हैं। यहां एक बार छपने बाद पुस्तक को प्रेस का पुनरावृत्ति के लिये मुख देखना भी नसीब नहीं होता है। प्रथम तो उत्तम पुस्तकों के छपने का सौभाग्य ही क्यों मिलने लगा। कदाचित् छपी भी तो प्रकाशकों की अलमारियां सेवन किया करती हैं। किन्तु यूरोप और एमेरिका में एक एक पुस्तक सौ सौ संस्करण को पहुंचती हैं। भारतवर्ष की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन कहावत है कि लक्ष्मी और सरस्वती का बैर है। अर्थात् जिस घर में विद्या है उसमें धन नहीं, और धनवाले में विद्या नहीं रहती। परन्तु यूरोप वालों ने इस बात को मिथ्या कर डाला। वहां अनेक विद्वान् केवल पुस्तक रचना से ही धनाढ्य हुए हैं। सत्य पूछो तो यूरोप वालों के लिये पुस्तकें बनाना भी आज कल अच्छा पेशा होगया है। परन्तु भारत की अपेक्षा वहां ग्रन्थकर्त्ता बनना बड़ा कठिन है। यूरोप और एमेरिका में ग्रन्थरचना करने का वही साहस कर सकता है जो समालोचकों की लेखनी के कुठार के आगे बच सके। केवल इतनाही नहीं, वरन वहांवालों को इस कार्य के लिये श्रम भी अधिक पड़ता है। इसका फल यह होता है कि वहां के ग्रन्थकर्त्ता वास्तव में विद्वान् होते हैं और पुस्तकें लाभ उठाने योग्य।

भारतवर्ष और विशेष कर हिन्दी भाषा में प्रायः इसका उलटा व्यवहार है। ऐसा कहने से मेरा यह प्रयोजन नहीं है कि हिन्दी में पुस्तकें अच्छी प्रकाशित नहीं होती हैं, किन्तु सच्ची समालोचना के अभाव से उत्तम पुस्तकों को कूड़ा करकट ढांक लेता है। इधर तो समालोचना का अभाव है, और उधर पाठशालाओं में जो शिक्षा मिलती है वह अपूर्ण और सदोष है; इस कारण पाठक को उत्तम पुस्तक के पढ़ने का अधिकार नहीं होता है। जो लोग मदरसों में पढ़ते हैं, वे तो अर्द्धदग्ध की तरह न इधर के रहते हैं और न उधर के; और जिन्होंने नहीं पढ़ा है वे दूषित किस्से और हंसी दिल्लगी की पुस्तकों के अतिरिक्त और ग्रन्थों को पुस्तक ही नहीं समझते हैं। इसके सिवाय द्रव्य की सङ्कीर्णता भी उत्तम पुस्तक प्रकाशित होने में बाधा डालती है; परन्तु इस विषय में आज कुछ लिखने की इच्छा नहीं है। इस समय केवल इतना ही लिखना है कि हिन्दी के वर्तमान ग्रन्थकार और प्रकाशक कैसे हैं। मेरा कथन किसी पर आक्षेप की दृष्टि से नहीं है, किन्तु सच्ची बात पर लोगों का ध्यान आकर्षित करना मेरा कर्तव्य है।

मेरी समझ में अच्छे अच्छे विद्वान् जिनकी लेखनी से देश का उपकार और भाषा का भण्डार भरना सम्भव है, उनमें से थोड़ों को छोड़कर शेष पुस्तक बनाने में उपेक्षा करते हैं। प्रत्युत ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो अंगरेजी वा संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी भाषान्तर करने के लिये, अन्य भाषाओं को टटोलते हैं। हिन्दी में नवीन रचित पुस्तकें कम बनती हैं, किन्तु अधिकतर ऐसी हैं जिनको बङ्गला गुजराती मराठी की पुस्तक के आधार पर लिख कर लेखक अपनी रचना प्रसिद्ध करता है। हिन्दीवालों में ऐसे लोगों की भी न्यूनता नहीं है जो दूसरे की बनाई पोथी के सींग पूंछ और नाम बदल कर अपने स्वार्थ वा प्रशंसा के लिये आप रचयिता वा अनुवादक बनते हैं और इसके द्वारा परिश्रम करनेवाले के मुख का कौर छीन कर स्वयं लाभ उठाते हैं। इनके अतिरिक्त वे लोग हैं जो पुस्तक रचने की योग्यता न होने पर भी ग्रन्थकारों की लिस्ट में नाम लिखवाने के लिये रद्दी सद्दी पुस्तकें बनाकर ग्रन्थकार बनते हैं। इसका यही फल होता है कि जैसे जैसे अनभिज्ञों और अधसिखुओं की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, वैसे ही वैसे विद्वानों की लेखिनी ढीली पड़ती जाती है और भाषा का भण्डार कूड़े करकट से भरता जाता है।

भाषा का भण्डार कूड़े करकट से भरने और उत्तम पुस्तक प्रकाशित न होने का भार केवल रचयिताओं ही पर नहीं है। अनेक प्रकाशक भी इस दोष के भागी हैं। आज कल के प्रकाशकों में से कितने ही लोगों ने एक सिद्धान्त बना लिया है। वह सिद्धान्त चाहे उनके लिये लाभदायक हो, किन्तु भाषा और व्यापार को इससे अवश्य हानि होती है। वह सिद्धान्त यह है कि जब तक एक व्यक्ति किसी पुस्तक को अधिक द्रव्य लगा कर बनवाता और छापता है, दूसरे प्रकाशक चुपचाप बैठे रहते हैं; किन्तु उसके प्रकाशित ग्रन्थ की अधिक बिक्री देखते ही उसपर चढ़ पड़ते हैं। गवर्नमेंट ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कापीराइट का नियम प्रचलित किया है, वह उनके अभीष्ट सिद्धि में बाधा डालता है, इस कारण उन्हें इसके लिये कुछ प्रबन्ध करना पड़ता है। वे लोग इस कार्य के लिये उस पुस्तक का नाम बदल कर थोड़ा बहुत विषय भी बदल डालते हैं और बस, इसके द्वारा उसके मूल प्रकाशक को हानि के गढ़े में डाल कर लाभ उठाने को आप तैयार होते हैं। यह तो स्वार्थी प्रकाशकों की दशा है। किन्तु जो लोग प्रजा की रुचि नहीं जानते, अथवा जिन्हें यह विदित नहीं है कि किस पुस्तक की बिक्री अधिक होती है और कौन कौन सी पुस्तक का प्रकाशित करना देशोपकार का हेतु है, वे पुस्तक छापने में सैंकड़ों रुपया व्यय कर व्याज की चक्की में पिसते और अन्त में चार दिन की टुटरूं टूं करके प्रेस बेचते फिरते हैं।

थोड़े काल से हिन्दी पुस्तकों की आलोचना करने के लिये समालोचक समिति स्थापित करने की चर्चा हुई है, और हर्ष का विषय है कि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा इस कार्य को अपने माथे लेना चाहती है।* समिति से किसी अंश में कूड़ा करकट पुस्तकों का प्रकाशित होना बन्द हो सकता है, परन्तु मुझे सन्देह है कि समिति की ओर से कड़ी समालोचना होने पर बिक्री बन्द होने का डर कर, प्रकाशक लोग उसके पास पुस्तकें न भेजेंगे और द्रव्याभाव से वह पुस्तकें खरीद कर समालोचना न कर सकैगी। इस कारण इस पत्रद्वारा मैं पुस्तकप्रकाशकों और लेखकों से मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, उस पर ध्यान देने का निवेदन करता हूं। आशा है कि अब से हिन्दी भाषा को इन कलङ्कों से मुक्त करने का लेखक अनुवादक और प्रकाशक यत्न करेंगे और समिति भी अपना कार्य आरम्भ कर यह प्रमाणित कर देगी कि भाषा के भण्डार में से कूड़ा करकट पुस्तकों को निकाल फेंकना ऐसा होता है।

मैं प्रजा को आईन के बन्धन से अधिकतर जकड़ना अच्छा नहीं समझता हूं, और मेरी सदा इच्छा यही रहती है कि जो कार्य हम स्वयं कर सकते हैं उनमें सरकार से सहायता न मांगी जाय। परन्तु भारत की शिक्षित प्रजा बिना सरकार की प्रेरणा के कुछ काम करना नहीं जानती हैं, इसलिये मुझे यहां पर यह लिखने की आवश्यकता हुई है कि जो लेखक वा प्रकाशक आईन से बचने के लिये पुस्तक का नाम वा थोड़ा बहुत विषय बदल कर औरों को क्षति पहुंचाना चाहते हैं वे अवश्य सरकार की दृष्टि में आने योग्य हैं। और इसके सिवाय अर्द्धदग्ध लेखकों को योग्यता प्राप्त करने की उत्तेजना देकर योग्य विद्वानों का नवीन पुस्तकों की रचना और भाषान्तर में उत्साह बढ़ाना भी कम आवश्यक नहीं है। अन्त में मैं इतना और लिखना चाहता हूं कि आज कल ऐयाशी, तिलस्म, जासूसी और प्रेम कहानी के नाटक उपन्यासों से जो हिन्दी का भण्डार भरा जा रहा है, यह भी साहित्य के लिये हितावह नहीं है। इसकी जगह यदि हिन्दी के प्रेमी चरित्र शोधन, व्यापार, शिल्प, विज्ञान, रसायन, यूरोप और भारतके इतिहास, यूरोपवालों की उन्नति के स्वरूप और साधन आदि के विषय में अपनी लेखनी उठाने का साहस करें तो अवश्य हिन्दी का उपकार हो सकता है।

* काशी ना० प्र० सभा ने उस कार्य को करना स्वीकार नहीं किया—देखो सरस्वती भाग २ पृष्ठ २५४ --सम्पादक।

अज्ञात (शायद— मिश्रबन्धु)

फ़तहपुर सिक्री

भारतवर्ष के, और विशेष कर उसके मुसलमानी राजत्वकाल के, इतिहास में दिल्ली के बादशाह अकबर का नाम इस समय संसार में प्रसिद्ध है, और वह अब तक मुसलमानी बादशाहों में अत्यन्त बुद्धिमान, नीतिकुशल, दूरदर्शी, योग्य और न्यायप्रिय माना जाता है। वास्तव में बाल्यवस्था ही में बिना किसी प्रकार की शिक्षा अथवा किसी भांति का अनुभव प्राप्त किए इतने भारी राज्य का स्वामी हो बैठना और परस्पर में विरोध वैमनस्य फैलानेवाले राज्यों को जीतकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आधीन कर उनसे एक सामराज्य स्थापित करना, और उसके लिये ऐसी नीति का अवलम्बन करना कि जिससे वह राज्य युगयुगान्तर के लिये बना रहे, एक अलौकिक बुद्धि ही का काम था। हिन्दुओं को उच्च उच्च पद देकर और उन्हें सम्मानित करके अपनी ओर मिला लेना और प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिन्दू राज्यों से विवाहसम्बन्ध जोड़कर अपना पैर दृढ़ता से जामाना, और साथही अपने धर्म्म में क्रमशः परिवर्तन कर उसे हिन्दूओं के अनुकूल इस ढङ्ग से बना लेना कि जिसमें कट्टर मुसलमानों को छोड़कर और कोई भी विरोध न कर सके, अकबर की ही भाग्यपट्टलिका में लिखा था। सच तो यों है कि यदि अकबर की कुटिल नीति उसके पीछे भी चली जाती और औरङ्गज़ेब अपने कट्टरपने से उसमें उलट पलट न कर देता, तो आज दिन भारतवर्ष में मुगलों का ही राज्य दिखाई देता, हिन्दू राज्य कदाचित कहीं नाममात्र को ही रह गए होते। परन्तु ईश्वर की बलवती इच्छा के आगे जोर किसका है। सभी हाथ मल के रह जाते हैं। होता वही है जो उसने सोच रक्खा है। जो कुछ हो, परन्तु अकबर की प्रशंसा फिर भी संसार में उसकी बुद्धिमानी और नीतिकुशलता के लिये सदा होती रहेगी और औरङ्गज़ेब सदा इसलिये निन्दित बना रहेगा कि अकबर की उस नीति को उलट कर उसने भारतवर्ष से मुसलमानी राज्य की नेह स्वयं उखाड़ डाली।

आज हमारा विषय अकबर का जीवनचरित लिखने का नहीं है। उसके राज्य की मुख्य मुख्य घटनाएं सब इतिहासप्रिय लोगों पर पूर्णतया प्रगट हैं। आज हम उसकी एक राजधानी के विषय में कुछ लिखा चाहते हैं। अकबर ने पहिले तो अपनी राजधानी दिल्ली में और फिर आगरे में बनाई। संसार में चाहे कोई कितना बड़ा प्रतापी, बलवान और धनवान क्यों न हो, उसे सदा कोई न कोई वाञ्छा बनी रहती है। अकबर को सब कुछ रहते हुए भी सन्तान के न होने, अथवा यों कहिए कि दो बेर होकर जीवित न रहने से, बड़ी मानसिक व्यथा थी। आगरे से दक्षिण पश्चिम कोई २४ मील की दूरी पर एक छोटे से गांव में एक प्रसिद्ध फकीर शेख सलीम चिश्ती रहते थे। इन तक अकबर की व्यथा पहुंची और उन्होंने, ऐसा कहा जाता है कि, यह आशीर्वाद दिया था कि जा तुझे एक पुत्र होगा। सन् १५६९ ई० में, जब अकबर रणथम्भोर का क़िला जीत कर लौटा तो वह इन चिश्ती महाशय की मज़ारत को कई बेर गया और वहां दस दस बीस बीस दिन तक रहा। इस बेर बेर जाने आने का परिणाम यह हुआ कि वहां उसने अपने रहने के लिये स्थान बनवाए। शेख साहब ने एक मसजिद और मज़ार बनवानी प्रारम्भ की। देखा देखी अकबर के मन्त्रियों और दर्बारियों ने अपने अपने रहने के लिये भी स्थान बनवाए। सन् १५७२ में जब अकबर गुजरात जीतकर यहां लौटा तो उसने इस स्थान का नाम फ़तहपुर रक्खा। पहिले वहां जो गांव था उसका नाम सिक्री था, इसलिये इतिहास में यह स्थान फ़तहपुर सिक्री के नाम से प्रसिद्ध है। इसी वर्ष में अकबर की रानी जोधाबाई को फ़तहपुर में एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शेख साहब के उपलक्ष में सलीम रक्खा गया। आगे चलकर यही सलीम जहांगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस अवसर पर अकबर ने यहां पर और अनेक राजप्रासाद बनवाए और चारों ओर एक पक्की पत्थर की दीवार बनवादी। तबसे वह यहां विशेष कर रहने लगा। परन्तु काल बड़ा बली है। सदा किसी वस्तु को एकही अवस्था में रहने नहीं देता। अपने चञ्चल और क्रूर हाथों से कुछ न कुछ उलट फेर करता ही रहता है। जहां एक समय बड़े बड़े राजप्रासाद खड़े थे, वहां अब खण्डहर देखने में आते हैं। इसी फ़तहपुर को अब देखकर पूर्वकाल की राजश्री का अनुमान मात्र हम कर सकते हैं। कुछ दिनों तक फ़तहपुर की अवस्था बड़ी मन्द थी, परन्तु अब लार्ड कर्ज़न महोदय की कृपा से मरम्मत हो रही है, और आशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि बचे बचाए स्थान आगे के लिये सुरक्षित हो जांय। हम अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं कि जब कभी उन्हें आगरे जाने का अवसर प्राप्त हो, तो वे अवश्य कष्ट उठाकर फ़तहपुर देखने जांय। हमें विश्वास है कि वे उस स्थान को देखकर वहां तक जाने में जो कष्ट उन्हें होगा उसे भूल जांयगे। आज हम अपने पाठकों के कौतूहलवर्द्धनार्थ इस स्थान के मुख्य मुख्य राजप्रासादों और स्थानों का चित्र देकर उनका संक्षेपतः कुछ वर्णन भी करेंगे, जिसमें हम आशा करते हैं कि उनको इन स्थानों के स्वयं देखने की इच्छा उत्पन्न हो और वे अपनी इच्छा को पूर्णकर अपने नेत्रों को सफल करें।

हम मुख्य मुख्य प्रासादों का वर्णन करने के पहिले इस नगर का साधारणतः वर्णन करेंगे। इस नगर की परिधि सात मील के लगभग है और जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, यह आगरे से २४ मील की दूरी पर है। परन्तु आगरे से फ़तहपुर तक एक अच्छी पक्की सड़क बनी हुई है, जिसके दोनों ओर सुन्दर पेड़ों की पंक्तियां अपनी शीतल छाया से पथिकों के श्रम को दूर करती हैं। यह नगर सन् १५६९ और १६०१ ई० के बीच में बना है। उसके तीन ओर ऊंची पक्की दीवाल है, जिनमें स्थान स्थान पर ६ या ७ बड़े बड़े फाटक हैं। चौथी ओर एक बड़ी भारी झील से यह रक्षित है। इस नगर के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि अकबर की मृत्यु के पीछे यह छोड़ दिया गया और फिर इसमें कोई न रहने लगा। यदि शेख़ सलीम चिश्ती की मजार और जामे मसजिद वहां न होती, तो आज दिन लोग इस नगर को भूल ही जाते और जितने राजप्रासाद वहां इस समय वर्तमान हैं, सब खण्डहर हो खण्डहर देख पड़ते। परन्तु ईश्वर की कृपा से बहुत से प्रासाद वहां ज्यों के त्यों वर्तमान हैं और इधर भारत गवर्नमेण्ट में लाखों रुपए खर्च करके उनका जीर्णोद्धार कराया है, जिससे उनकी अवस्था अब बहुत अच्छी हो गई है। यहां जितने भवन इस समय वर्तमान हैं, सब प्रायः लाल पत्थर के बने हैं, जो निकट की पहाड़ी से खोद कर लिए गए थे। अकबर की बनवाई हुई इमारतों में प्रायः यह देखने में आता है कि उसने लाल पत्थर से बहुत काम लिया है। संगमर्मर तो नाममात्र को है।

आगरे से जो सड़क फतहपुर को चली आई है उसपर से नगर के अन्दर जाने में दो सड़कें मिलती हैं। इनमें से एक तो नगर के दक्षिण पश्चिम ओर को चली गई है और दूसरी शाही भवनों की ओर आती है। इस सड़क के दोनों ओर पहिले दूकानें और छोटे छोटे मकान थे और एक प्रकार का छोटा सा बाज़ार बसा हुआ था। इस सड़क पर पहिला देखने योग्य जो स्थान मिलता है वह दीवान आम है। उसके पूर्व ओर एक बड़ा भारी चौक है जो लगभग ३१८ फ़ीट लम्बा और १८१ फ़ीट चौड़ा है, और पश्चिम की ओर एक खुला हुआ मैदान है जिसमें पहिले एक सुन्दर वाटिका लगी हुई थी। इस ओर से महलों और दूसरे राजभवनों में जाने का मार्ग है।

पूरबवाले चौक के चारो ओर दालान बनी हुई है, जिसके आगे छज्जे निकले हुए हैं। दीवान आम के नाम से प्रसिद्ध जो स्थान है वह ३० फ़ीट लम्बा और २१ फ़ीट चौड़ा है। उसके चारो ओर १० फ़ीट चौड़ा एक बरामदा चला गया है। पूर्व वाले बरामदे के तीन भाग कर दिए गए हैं, और बीच में लाल पत्थर की सुन्दर जाली बनी हुई है। इन्हीं दो जालियों के बीच में न्यायाधीश बादशाह के बैठने का स्थान था। दीवान आम से सटे हुए और बड़े बड़े दालान हैं जिनमें लाखों मनुष्य बैठ सकते हैं। अब इन दालानों की अवस्था बुरी हो रही है। दीवान आम की बनावट में किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। दिल्ली और आगरे के किलों में जैसे दीवान आम हैं, वैसी ही बनावट इसकी भी है।

दीवान आम के पूर्व वाले चौक में से होकर फिर उसी सड़क पर चले जाने से जिस पर से होकर आए थे एक और चौक मिलेगा। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीवान आम के ठीक दक्खिन ओर है और यहां पर सड़क गोल होकर गई है। यह दूसरा चौक ३२६ फीट लम्बा और २१० फीट चौड़ा है। इसके दक्षिण ओर अकबर का दफ्तरख़ाना था और उत्तर ओर उसके रहने के स्थान थे। राजकाज के कार्य्यों में यह अत्यन्त आवश्यक है कि दफ्तर कार्यकर्ता के निकट ही हो। यह दफ्तरख़ाना ४४ फीट लम्बा और २८ फीट चौड़ा है और इसके चारो ओर १८ फ़ीट चौड़ा एक बरामदा चला गया है। इस कोठरी के पूर्व और पश्चिम ओर एक एक और उत्तर ओर तीन द्वार हैं, तथा दक्षिण ओर तीन खिड़कियां हैं। बीचवाली खिड़की में से एक छाया हुआ छज्जा निकला है जिसमें से बैठकर देखने से उस किञ्चित् पहाड़ी देश की शोभा विचित्र देख पड़ती है। इस दफ्तरख़ाने के दक्षिण-पूर्व कोने में एक घुमौवां सीढ़ी है जिसपर होकर छत पर जाने का मार्ग है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि जब कभी उन्हें यहां जाने का अवसर प्राप्त हो तो वे इस स्थान की छत पर चढ़कर समस्त नगर की शोभा देखें। इस भवन की बनावट यद्यपि साधारण है, पर पत्थर पर काम अच्छा किया गया है। एक समय वह था कि यहां पर न जाने कैसे कैसे बहुमूल्य काग़ज़ रक्खे रहते होंगे, और एक समय यह है कि अब वहां नित्यप्रति झाड़ू भी नहीं लगता।

हम कह चुके हैं कि दफ्तरख़ाने के उत्तर ओर अकबर के रहने के स्थान थे जिन्हें अब तक लोग महल ख़ास कहते हैं। कुछ लोगों का यह अनुमान है अकबर ने पहिले पहल इन्हीं स्थानों को बनवाया था। जो हो, दफ्तर ख़ाने के ठीक सामने तो अकबर का ख़ाबगाह है। यह एक छोटी सी कोठरी है जो १४ फीट लम्बी और उतनी ही चौड़ी है। इस कोटरी से जोधाबाई, सुलतानाबेगम, मरीयम आदि के प्रासादों और महलों को जाने के लिये दालानें बनी थीं परन्तु, अब अनेक स्थानों से वे टूट गई हैं। ख़ाबगाह की कोठरी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, फतहपुर-सिक्री के सब स्थानों से उत्तम थी। उसकी बनावट और चित्रकारी अब तक मन को मोहित कर लेती है। इस कोठरी के ठीक पीछे एक और कोठरी है जिसमें ऐसा कहा जाता है कि एक साधू, जिसे अकबर बहुत मानता था, रहता था। परन्तु इसकी बनावट साधारण है। ख़ाबगाह वाली कोठरी किसी समय चित्रकारी से खूब भरी हुई थी, पर अब भी जो कुछ बाकी बच रहा है उसे देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि यहां कैसी कुछ कारीगरी दिखाई गई थी। इसमें स्थान स्थान पर सुन्दर सुनहले अक्षरों में फारसी की शेरें लिखी हुई थीं, जिन में से अब केवल ये पढ़ी गई हैं—

फर्शे ऐवाने तोरा आइनः साजद रुज्वां।
ख़ाके दर्गाहे तोरा सुर्मः कुनद हूरुलऐन॥
क़िसरे शाहस्तः बहर बाब व अ़ज खुल्दबरीं।
सखुने नेस्तदरीं बाबाक खुलदेस्त बरीं॥
गुरफ़-ए-शाह नशीनो खुशो मतबूओ बलन्द।
कर्दः दर क़ितए ऊ जिन्नते आला तरमीन॥
चूं मलिके हरकि कुनद सिजद ए-ख़ाके दरे तौ।
शवद अज ख़ासियते ख़ाके दरत जुहरः जबीं॥

कोठरी के चारों ओर ध्यान पूर्वक देखने से ऐसा जान पड़ता है कि उसमें आठ बड़े बड़े चित्र चित्रित थे। इनमें से अब कोई भी पूरा नहीं है। कई तो पूर्ण नष्ट हो गए हैं, परन्तु जो बर्तमान हैं उनके देखने से ऐसा जान पड़ता है कि वे हिन्दुओं के देवी देवताओं तथा अन्य अन्य दृश्यों के चित्र थे। एक स्थान पर बुद्ध देव की मूर्ति है। दूसरे स्थान पर नावें बनी हुई हैं। कहीं हरिणों का शिकार हो रहा है और कहीं कुछ लोग खड़े हैं। इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि अकबर के पास चित्रों का अच्छा संग्रह था। इससे सम्भव है कि उन्हीं में से कुछ चित्रों की नकल यहां बनवाई गई हो। जो कुछ हो, परन्तु इस कोठरी को सुन्दर और मनोहर बनाने में ऐसा जान पड़ता है कि कोई बात उठा नहीं रक्खी गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्वाबगाह के ठीक सामने एक पक्का तालाब है जो २९५ वर्ग फ़ीट की लम्बाई और चौड़ाई में है। इसमें चारो ओर पक्की सीढ़ियां लगी हुई हैं और बीच में एक ऊंचा चौतरा है जिसपर जाने के लिये तालाब के चार किनारों से सुन्दर पत्थर के खम्भों पर एक पुल है। इसकी चौड़ाई केवल २० इञ्च है। इस तालाब में पानी नहरों से, जो खज़ाने से लगी हुई थीं, आता था और तालाब को सदा सुथरा रखने के लिये उत्तर की ओर एक छेद बना हुआ है जिससे पानी निकाल दिया जाता था।

इस तालाब के उत्तरपूर्व कोने की ओर सुलताना बेगम के रहने का स्थान था और उसके साथ ही सटा हुआ एक बगीचा था, जिसका हम पहिले वर्णन कर चुके हैं और जो दीवान आम के पश्चिम पड़ता है। तालाब के उत्तर पश्चिम कोने की ओर लड़कियों के पढ़ने का स्कूल है। इन दोनों के बीच में और तालाब के ठीक उत्तर एक दालान चली गई है जिससे दोनो में जाने आने का मार्ग है।

सुलताना बेगम का महल यद्यपि बहुत छोटा है, अर्थात् भीतर की कोठरी केवल १३ फ़ीट लम्बी और लगभग उतनी ही चौड़ी है, परन्तु बनावट उसकी ऐसी सुन्दर और मनोहर है कि मिस्टर फ़र्गूसन के विचार में इससे और बीरबल के भवन से बढ़कर सुन्दर और मनोहर काम की और कोई दूसरी इमारत अकबर की बनवाई हुई नहीं है। इससे अधिक सुन्दर और अच्छे बेलबूटों का काम ध्यान में कदाचित ही आ सकता है। इसपर विशेषता यह है कि इतना अधिक भी काम नहीं बनाया गया है कि वह भद्दा हो जाय। खम्भों और छतों पर अत्यन्त सुन्दर बेल बुटे बने हुए हैं। कहीं बगीचा लगा हुआ है, कहीं झरने बह रहे हैं और पशु पक्षी जलविहार कर रहे हैं, और कहीं घन घोर जङ्गल का चित्र खींचा हुआ है। कई एक विचारशील महाशयों ने कहा है कि यह घर मानो रत्नों की डिबिया है। वास्तव में यह ध्यान पूर्वक देखने योग्य है।

इसके ठीक सामने लड़कियों के पढ़ने के लिये एक स्कूल बना था, जिसमें दो कमरे हैं। उसमें शाहज़ादियां और उमराओं की लड़कियां पढ़ना लिखना सीखती थीं।

इस स्थान के ठीक पश्चिम में एक स्थान बना हुआ है जो "पञ्च महल" के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बनावट विचित्र है। इसके पांच खन है और सब एक दूसरे के सहारे खम्भों पर खड़े हैं। पहिले खन में ८४, दूसरे में ५८, तीसरे में २०, चौथे में १२ और पांचवें में केवल ४ खम्भे हैं। इसकी ऊँचाई लगभग ६० फ़ीट है, परन्तु बैठने का सबसे ऊंचा स्थान उससे १५ फ़ीट नीचा है, क्योंकि उपर जा कर गुम्बज बना दिया गया है। यह पञ्चमहल किस अभिप्राय से बनाया गया था कुछ समझ में नहीं आता। सम्भव है कि गर्मी के दिनों में अकबर यहां पर अपने स्नेही मन्त्रियों के साथ बैठता हो परन्तु इसमें आने के लिये एक द्वार महलों से लगा हुआ है, इससे ऐसा सम्भव जान पड़ता है कि इस पर अकबर की बेगमें बैठती हों। जो कुछ है, स्थान सुन्दर और सुहावना है और इसके धुर ऊपर चढ़ने से चारो ओर की छटा अच्छी दिखाई देती है।

इस स्थान के पूर्व की ओर एक बड़ा सा चौक है जिसमें पचीसी खेलने के लिये पत्थर की चौपड़ बनी हुई है। ऐसा कहा जाता है कि मोहरों के स्थान पर यहां लौंडियां भिन्न भिन्न रङ्ग के कपड़ों से सज धज कर बैठाई जाती थीं। अकबर स्त्रीप्रिय और विषयी था, यह बात तो यहां से पूर्णतया प्रगट है। जिस किसी ने उसके नौरोज़ या खुशरोज़ के बाज़ार का हाल पढ़ा होगा, वह इस बात को भली भांति समझ जायगा।

कर्नल टाड अपने इतिहास में लिखते हैं कि वर्ष में एक दिन बादशाही महलों में बाज़ार लगता था, जिसमें विक्रेता अमीर उमरा और सरदारों तथा दर्बारियों की महिलाएं और कन्याएं रहती थीं, और क्रेता अकबर की बेगमें। अकबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी भेस बदलकर इस क्रय विक्रय को देखने जाता था। परन्तु वास्तव में वह राजपूत स्त्रियों के सतीत्व धर्म्म को क्रय करने के लिये भेष बदलता था। वह उन महिलाओं में से एक को पसन्द कर लेता था और उसे महलों तक ले आने का भार कुटनियों पर छोड़ आप चल देता था, जिसमें इस भेद को कोई जानने न पावें। वह मर्दों का भी एक बाज़ार करता था जिसमें आप खुला खुली चीज़ें खरीदने जाता था। अकबर को इस कुत्सित नीच कर्म का फल बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज की सती साध्वी पत्नी ने चखाया था। एक वर्ष यह स्त्रीरत्न भी इस दुष्ट के जाल में फँस गई, और जब उसने देखा कि मुझे धोखा दिया गया है तो वह कटार निकाल अकबर के सामने खड़ी होगई और बोली कि 'रे नीच नराधम! आज तुझे समाप्त कर तेरे इस कुत्सित नीच कर्म को सदा सर्वदा के लिये रसातल में पहुचाऊंगी'। अकबर भयभीत हो उसके पैरों पर गिर पड़ा और क्षमा मांग कर उसने उससे प्रतिज्ञा की कि इस दिन से अब मैं इस कर्म को छोड़ दूंगा। हमारे पाठकों को विदित होगा कि येही पृथ्वीराज, जिनकी धर्मपत्नी ने अपने ऐसे साहस और सतीत्वधर्म का परिचय दिया, प्रतापसिंह के पूर्ण सहायक थे। इन्हींकी कविताशक्ति ने अन्त तक प्रताप को निज पण पर दृढ़ रक्खा। अब तक आगरे के किले में वह स्थान दिखाया जाता है जहां यह बाज़ार लगता था। जिस दिन हमें इसे देखकर संतप्त होना पड़ा था, उसी दिन कुछ अङ्गरेज़ उस चौक में टेनिस खेल रहे थे। अकबर का अनन्य भक्त अबुल फ़ज़ल लिखता है कि बादशाह उन बाज़ारों में इसलिये जाते थे कि जिसमें देश की अवस्था का पता लग जाय। हा अकबर! जब तक तेरे चिन्ह इस भारतवर्ष में वर्तमान रहेंगे, तेरी उज्वल कीर्ति के सामने यह बड़ी भारी कालिमा सदा देख पड़ती रहेगी।

इस पचीसी चौक के ठीक उत्तर दीवान ख़ास और आंख मिचौली खेलने का स्थान बना हुआ है। दीवान खास की बनावट विचित्र है। बाहर से देखने पर यह भवन दोखन का जान पड़ता है। परन्तु पहिले खन के ठीक बीच में एक खम्भा खड़ा है, जिस पर से चार धरने चार ओर चली गई हैं, और बीच में एक स्थान बैठने का बना है। दीवान ख़ास की बनावट में विशेषता यह है कि भीतर बैठा हुआ बाहर का सब हाल देख सकता है और बाहर से कोई यह नहीं जान सकता कि भीतर क्या हो रहा है। ऊपर के खन में चार ओर चार दालानें हैं, जिनमें ऐसा कहा जाता है कि अकबर के मन्त्री लोग बैठकर काम काज करते थे और अकबर बीच में बैठा हुआ उनकी बातें सुनता और अपनी सम्मति देता था।

इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि सन् १५७५ ईसवी में अकबर ने एक इबादतख़ाना बनवाया था, जिसमें भिन्न भिन्न धर्म के लोग इकट्ठे होते और आपस में वाद विवाद करते थे, तथा अकबर उन सबकी बातों को सुनता था। ऐसा कहा जाता है कि इस घर में चार दालानें थीं जिनमें धार्म्मिक लोग तथा अकबर के आमात्यवर्ग बैठते थे और बीच में अकबर के बैठने का स्थान बना था। यहां अकबर प्रति शुक्रवार को आता था। यहीं पर अबुल फ़ज़ल, फ़ैज़ी और बीरबल से अकबर की घनिष्ट मित्रता हुई थी। सब धर्मों की बातें सुनते सुनते अकबर का विश्वास अपने धर्म से उसके कट्टरपन के कारण हटने लगा और उसके मित्रों ने भी उसको निज धर्म्म की पोल पुरी पुरी खोल दी। यह बात यहां तक बढ़ी कि फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़ल की सहायता से वह अपने को पृथ्वी पर ईश्वर का दूत मानने और सूर्य की पूजा करने लगा। अकबर का विश्वास था कि जिस बात को मन सत्य न माने, उसे कभी हठ से न मानना चाहिए। सती बन्द करने में वह इसी कारण से दत्तचित्त हुआ। हिन्दुओं की ओर वह अधिक झुकता था और इसका कारण केवल अपनी कुटिल नीति का पोषण करना था। अकबर के दर्बार में नरहरि नाम का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कवि था। जब गोहत्या बहुत बढ़ गई तो उसने एक दिन बहुत सी गौओं को इकट्ठा कर सबके गले में एक पटरी लटकादी और उसपर यह छप्पय लिख दिया—

अरिहु दन्त तृन दबहिं ताहि नहिं मारि सकइ कोई।
हम सन्तत तृन चरहिं उचरहिं दीन होई।
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थम्भन जावहिं
हिन्दुन मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह नरहरि सुनु साह बर बिनवत गउ जोरे करन
केहिअपराध मोहि मारियतु मुयउ चाम सेवत चरन

अकबर जब उधर से चला तो उसने अधिक गौओं को खड़ा देखकर उसका कारण पूछा। नरहरि ने कहा कि ये कुछ प्रार्थना करने आई हैं। इसपर उसने उस करुणामय प्रार्थना को सुनकर, ऐसा कहा जाता है कि, अपने राज्य से गोवध उठा दिया था जिससे हिन्दू उसके चिरकृतज्ञ हो उसको बड़ाई करने लगे।

अस्तु इस इबादतख़ाने के प्रभाव से न जाने क्या का क्या हो जाता, और सारा हिन्दू भारतवर्ष आज मुसलमान हो जाता, परन्तु जगतकर्ता को यह स्वीकार न था। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि दीवानख़ास ही इबादतख़ाना था, परन्तु महलों के बीच में होने के कारण यह सम्भव नहीं जान पड़ता।

मिस्टर स्मिथ अनुमान करते हैं कि यह पहिले दीवान आम के सामनेवाले चौक में बना था। जो कुछ हो, परन्तु अभी तक कोई स्थान ऐसा नहीं मिला है जिसे हम इबादतख़ाना कह सकें।

[शेष आगे।

साहित्य समालोचना

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

४—"कटूक्ति" अर्थात् श्रुतिकटु—इसमें हमने "गहरे गहरे गर्त खड्ड दीरघ गहराई" और "उठयो खड्ड सों रहै बवंडर बीचहि छांड़यो" में श्रुतिकटु दोष आरोपित करने में अंगरेज़ी मत के विरुद्ध अवश्य लिखा, पर जब अंगरेज़ी से भाषा साहित्य के आचार्यों का मत नितान्त विरुद्ध है तब भाषा ही की रीति माननीय है। श्रुतिकटु के विषय में संस्कृत और भाषा पद्य काव्यों में बड़ी ही अन्तर है, संस्कृतज्ञ महाशयों के कर्ण भाषाकवियों की अपेक्षा बड़े सहनशील होते हैं। संस्कृत में बिना द्वित्व शब्दों के काम ही नहीं चल सकता, परन्तु भाषा पद्य में ऐसे शब्द विशेषतः कर्णकटु माने गए हैं, अतः संस्कृत के प्रमाण इस विषय पर भाषा पद्य काव्य में माननीय नहीं हैं। फिर हिमालय के वर्णन में पाठक जी ने शृङ्गार प्रधान रक्खा है, क्योंकि आद्योपान्त उसकी शोभा ही का वर्णन अधिक किया है, और अन्त में यह भी लिखा है कि "श्रीधर दृग छकि रहत अटल छवि निरखि हि मालय"—जिससे यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि हिमालय को देख कर ये डरने के स्थान पर प्रसन्न हुए; तो ऐसी स्थिति में उसका वर्णन रौद्र प्रधान कैसे हो सकता है। जब तुलसीदास जी का रामचन्द्र जी के मुख से वन का वर्णन करा के सीता जी को डराना अभीष्ट था, तो भी उस महाकवि ने ऐसे कठोर व श्रुतिकटु शब्दों का व्यवहृत होना अनुचित ही विचारा और यों वर्णन किया,—

कानन कठिन भयङ्कर भारी।
घोर घाम हिमि बारि बयारी॥

कुस कण्टक वन कांकर नाना।
चलव पयादेहि बिनु पदत्राना॥

चरन कमल मृदु मञ्जु तुमारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥

कन्दर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥

भालु बाघ केहरि वृक नागा।
करत नाद सुनि धीरज भागा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि सयन बलकल वसन असन कन्द फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥
नर अहार रजनीचर करहीं ।
कपट वेष वन कोटिन फिरहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी ।
विपिनि विपति नहिं जाइ बखानी ॥
व्याल कराल विहग वन घोरा ।
निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये ।
मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये ॥ इत्यादि

अब यदि कहा जाय कि तुलसीदास जी ने खड्ग देखे नहीं तो यह बात माननीय कैसे हो कि उक्त महात्मा कभी हिमालय पर गए ही नहीं, जिनका कि जन्म केवल तीर्थयात्रा ही में व्यतीत हुआ ? तो पाठक जी को निष्प्रयोजन ऐसे शब्दों में वर्णन करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी ?

"सत्य धर्म कर्म निष्ठ धीर वीर वर वरिष्ठ
सौम्यता बिसिष्ट शिष्ट सादर सतकारी"

इत्यादि पद में (आपके कथनानुसार) यमक तो है नहीं, क्योंकि यमक का लक्षण यों है,—यथा

"वहै शब्द फिर फिर परै अर्थ औरई और
सो यमकानुप्रास है भेद अनेकनि ठौर"
(दास जी)

हां अनुप्रास अर्थात् पदमैत्री अवश्य है, परन्तु जैसा कि हमने अपने साहित्य-आलोचना में लिखा है, यह एक बहुत छोटा गुण है और इसके निमित्त शब्दों में एक दोष लाना निन्दनीय है। यदि इस पद के शब्द श्रुतिप्रिय कहे जांय तो कदाचित् कर्णकटु शब्दों का उदाहरण भाषा साहित्य में मिलना दुस्तर हो जाय।

आप लिखते हैं कि "भूदृग दृष्टि शिथिल तन दुर्बल ज्यों नव शुष्क मृणाल"। यदि इस पंक्ति का माधुर्य्य कर्कशता के नाम से पुकारा जा सकता है, तो सहृदयता का अन्त है। इसमें यह निवेदन है कि सहृदयता का लक्षण स्वर्गवासी पण्डित विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर अपने "समालोचना नाम निबन्ध" में यों लिखते है कि "किसी ग्रन्थ के अंतःकरण के पूर्ण अभिनिवेश की योग्यता को सहृदयता कहते हैं"। अतएव किसीके काव्य के दोषों के छिपाने को सहृदयता कदापि नहीं कह सकते ! दास जी श्रुतिकटु के विषय में यों कहते हैं,—

"कानन को करुवो लगै दास सुश्रुतिकटु रूष्टि
त्रिया अलक चक्षुश्रवा डसैं परत ही दृष्टि ॥"

और इसका तिलक यों किया है "चक्षुश्रवा औ दृष्टि ए शब्द ही दुष्ट हैं, श्रुति शब्द सकारन के समासते दुष्ट भयो। त्रिया शब्द में को रकारही दुष्ट है, यहां तीनौं भाँति को श्रुतिकटु कह्यो"। सो यह टीका दास जी ने मानो हमारे पाठक जी ही के छन्द निमित्त रची थी। महाकवि तुलसीदास जी ने अपनी रामायण* अयोध्या काण्ड के पूर्वार्ध ही में ३७१ स्थानों में (श) के स्थान पर (स), १६४ शब्दों में (ण) के स्थान पर (न), ६८ में (ॅ अर्थात् रेफ्) के स्थान पर (र)–(यथा अर्घ्य, का अरघ),–२० में (क्ष) के स्थान पर (छ), १७ में (व) के स्थान पर (उ)–(यथा स्वभाव का सुभाउ),–१५ में (य) का (ज), ३४ स्थानों पर मिलित अक्षरों को अलग करके–(यथा परस्पर का परसपर)–लिखा है, और ९ स्थानों पर अर्द्ध 'ऋ' वा 'र' उड़ादिया है–(यथा तृण का तिन इत्यादि)। "सुकवि नाम प्रभु नाम कै कै रस रौद्र प्रधान–तंह श्रुतिकटु की दोष नहि"। इन स्थानो पर श्रुतिकटु दोष न माननीय होने पर भी इन महोदय ने रामचन्द्र जी के स्थान पर रामचंद ही लिखना उचित समझा। उदाहरणस्वरूप हम कुछ परिवर्तित शब्द और पद नीचे उद्धृत करते हैं, परन्तु खेद का विषय है कि प्रेसों की मुद्रित अन्य रामायणों में प्रायः पण्डितों के संशोधक होने के कारण उक्त महाशयों द्वारा परिवर्तित शब्दों के स्थान पर शुद्ध संस्कृत के इतने शब्द आ गए हैं कि रामायण की मुख्य भाषा ही लुप्तप्राय हो गई; यथा—

* बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस में मुद्रित प्रति देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध शब्द	परिवर्तित शब्द	उदाहरण अयोध्याकाण्ड पूर्वार्द्ध से उद्धृत।
भक्त	भगत	हरउ भगत मन कै कुटिलाई
योग्य	जोगु	जारइ जोगु सुभाउ हमारा
शुद्ध	सूध	काह करौं सषि सूध सुभाऊ
तृण	तिन	चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे
द्वै	दुइ	दुइ बरदान भूप सन थाती
लवण	लोन	मानहु लोन जरे पर देई
असाध्य	असाधि	देषी व्याधि असाधि नृप
पल्लव	पालव	पालव बैठि पेडु यहि काटा
ज्वर	जर	जरहि बिषम जर लेहि उसासा
भ्रमर	भँवरु	निरषि राम मनु भँवरु न भूला
शोक	सोग	लोग सोग श्रम बस गए सोई
स्वप्न	सपन	देषिय सपन अनेक प्रकारा
वृद्ध	बिरिध	जे तिन महँ वय बिरिध सयाने
युक्ति	जुगुति	ते करि जुगुति राम पहिँचाने
द्युति	दुति	इनते लहि दुति मरकत सोने
अमृत	अमिय	बानी मधुर अमिय रस बोरी
स्वर्ग	सरगु	सरगु नरकु अपवरगु
दृष्टि	डीठि	लोचन सजल डीठि भई थोरी
श्रृंगमेरु	सिंगरौर	सो जामिनि सिंगरौर गंवाई
अर्घ्य	अरघ	सादर अरघ देई घर आने
पण	पनु	जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा

भाषा के प्रायः सभी अन्य कवियों ने इसी हेतु शब्दों को परिवर्तित किया है—और देव जी और मतिराम जी का काव्य मानो इसका उदाहरण ही हो रहा है; उनसे कहां तक उद्धृत किया जाय और कवियों को लीजिए—

"डीठि बरत बांधी अटन चढ़ि धावत न डरात
नीठि नीठि करि कै गई डीठि डीठि सों जोरि"
(बिहारी लाल जी)

"डीठि सी डीठि लगी इनके
उनके लगी मूठि सी मूठि गुलाल की"
(पदमाकर जी)

इत्यादि, इत्यादि, कहां तक लिखें। स्वयं पाठक जी ने भी कई स्थानों पर ऐसा किया है, परन्तु इन स्थानों में शब्दों का परिवर्तन न जानें क्यों नहीं किया। अब यदि ऊपर उद्धृत पदों में शुद्ध शब्द अर्थात् दृष्टि, निष्ट, और मुष्टि लिख दिए जांय, तो क्या ये पद कर्णकटु न हो जांय? आप कहते हैं कि "सत्य धर्म कर्म निष्ठ इत्यादि इस पद के शब्द कंकड़ नहीं हैं रत्न हैं"। इसमें यही निवेदन है कि शब्द ही रत्न होते हैं और वही कंकड़ पत्थर, परन्तु इन रत्नों के परखनेवाले जौहरी केवल काव्य आचार्य्य हैं। सो देखिए इन रत्नों को वह किन दामों पर आंकते हैं, यथा—

(१) "कानन को करुवो लगै दास सु श्रुतिकटु स्रष्टि
त्रिया अलक चक्षु श्रवा डसै परतही दृष्टि"
(दासजी)

(२) "श्रवन सुनत नहि भावै श्रुतिकटु होय
कर्ताथ्या इत्यादिक जानों सोय" (जगत सिंह)
(इन के मत में दोषोद्धार ठीक नहीं। ब
कविन में होइ तौ शांत करिलेइ आपु न करै।

(३) "श्रवन सुने अति कटु लगै श्रुतिकटु ताहि
बखानि।
देखि जलक्षन मुख मलिन चढ़ति अटा पर
बाल"
[टी० यहां जलक्ष श्रुतिकटु है, जलद कह्यो
चाही"] (प्रताप साहि।

(४) "सुनतै श्रुति नहिं भावई पढ़त जीभ सन कष्ट
श्रुति कटु सो यह जानिए सकल कवित में भ्रष्ट"

"कैसे पुन्य थल पर श्रीपति कनक वेलि जैसे रुपगिरि पर बिद्रुम की छरी है। कैसे रूप गिरि पर विद्रुम की छरी कहि जैसे छीर सिंधु पर ब्रह्म ज्योति धरी है। कैसे छीर सिन्धु पर ब्रह्म ज्योति धरी कहि, जैसे हीरा हारन पै लालन की लरी है। कैसे हीरा हारन पै लालन की लरी कहि, जैसे धौरे धाम पर गोरी भोरी खरी है" यामे पुन्य विद्रुम ब्रह्म शब्द कटु। रसिकप्रियायां यथा—

"कानन के रंगे रङ्ग नैनन के डोलौ, सङ्ग नासा अग्र रसना के रसहि रसाने हौ। और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौ जूजाने जाहु, प्रौढ़ रूढ़ केसौदास परि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिचाने हैं ॥ तन आन मन आन कपट निधान कान्ह, सांची कहौ मेरी आन काहे को डेराने हैं। वै तो हैं बिकानी हाथ मेरे हैं तिहारे हाथ, तुम वृजनाथ हाथ कौन के बिकाने हैं।

या में अग्र पद श्रुति कटु" (श्री पति जी)

क्या श्री धर जी के पद्य श्री पति जी के उदाहरणों से भी मृदुल और सौष्ठव हैं?

(५) "छन्दोभंग"—पर्यालोचक महाशय लिखते हैं कि "पाठक जी के मत में सरस वाक्य मात्र कविता है" इस विषय की हमने "सरस्वती" के दिसम्बर सन् १९०० वाले अङ्क में प्रकाशित अपने "हिन्दी काव्य" में विवेचना की है और बाबू जगन्नाथ दास ने साहित्य रत्नाकर काव्य निरूपण खण्ड में "पाठक जी के मत" का (जो वास्तव में सूरति मिश्र के दिए हुए एक लक्षण का स्वल्पांश है) युक्ति और प्रमाण सहित खण्डन किया है। जब तक आप या पाठक गण विपक्ष प्रमाण दे उसे अशुद्ध न सिद्ध कर दें, तब तक एक ही बात का पिष्टपेषण करना हमें अभीष्ट नहीं।

फिर आप कहते हैं "छन्दोभङ्ग यद्यपि पद्य सम्बन्धी एक दूषण है, तथापि यदि उससे रस भङ्ग न हो तो दूषण नहीं"। यह तो बड़ी ही विलक्षण कहावत है और इस हिसाब से स्वयं पाठक जी का रचा हुआ पद "पङ्कज वृन्द विसै परभात सुहातौ सौ बात वहै मद सान्यों" यदि यों पढ़ें कि 'परभात पङ्कज वृन्द विसै बात सुहातौ सौ वहै मद सान्यों" तो भी छन्दोभङ्ग उसमें नहीं ठहर सकता; क्योंकि "उससे रसभङ्ग नहीं होता"। पर हम तो जानते हैं कि पर्यालोचक महाशय को छोड़ और पृथ्वी मण्डल में कोई भी ऐसा न कहेगा। तुलसीदास जी अथवा उनसे भी बड़े किसी कवि की रचना में पाए जाने से क्या छन्दोभङ्ग दूषण ही न रह जायगा? जब हम स्वयम् गोस्वामी जी की कविता पर अपनी समालोचना प्रकाशित करेंगे तब आप क्या कहेंगे? क्या संस्कृत साहित्य प्रणाली के आचार्य्यों ने दोषों के उदाहरणों में कालिदास, भारवि, भवभूति और श्रीहर्ष, प्रभृति की कविता उद्धृत नहीं की है? छन्दोभङ्ग तो सुपाठ्यता का बाधक अवश्यमेव होता है, और "खल्यान के काम से किसान निवट गए" और समस्यापूर्ति वाले कवित्त "आज क्यों गोकुल गलीन अलबेली नारि सखी औ सहेली संग हेली करति हैं" इत्यादि इन सभों में क्या छन्द की सुपाठ्यता और श्रुतिप्रियता छन्दोभङ्गों से वस्तुतः बाधित नहीं होती? हम तो कहते हैं कि ये पद छन्द ही कहलाने योग्य नहीं हैं! जिन दो सवैयों के प्रथम चरणों में हमने दो दो लघु अक्षरों की कमी बतला कर उनमें छन्दोभङ्ग ठहराया था, उनमें तो आपके मत से भी छन्दोभङ्ग अवश्य है, चाहे वह सुपाठ्यता का बाधक न होने से "क्षन्तव्य" भले ही हो। तब आपका कहना कि "उक्त (दो दो लघु) वर्णों का छोड़ना दूषण नहीं है" कैसे ठीक माना जाय, क्योंकि आपही के उपरोक्त मतानुसार वह एक "क्षंतव्य" दूषण निस्सन्देह है? "छन्दोभङ्ग" किसी छन्द के पिङ्गल व रीति ग्रन्थों के विरुद्ध होने से होता है। यदि घर जानी मन मानी की ठहरै तो गद्य और पद्य में भेद ही क्या रहजाय? जो आप छन्द के प्रथम पद में दो वर्ण कम कर सकते हैं, तो द्वितीय अथवा किसी अन्य चरण में वर्णों की कमी कोई क्यों नहीं कर सकता? फिर ऐसी दशा में छन्द का बनना असम्भव हो जायगा और प्रत्येक छन्द और कवि के भ्रमानुसार विचारा पिंगल कहां तक झोंके खायगा? और प्रतिदिन उसके नियम कहां परिवर्तित होंगे? सरस्वती के ३५६ पृष्ठ वाले तक छन्द में छन्दोभङ्ग नहीं है, पर्यालोचक जी के रुचिके प्रतिकूल वह भले ही हो।

"यतिभङ्ग"—हम ऊपर कह आए हैं कि किसी सत्कवि की रचना में आजाने से कोई दूषण दूषणों की श्रेणी से नहीं हटा दिया जासकता—सो यदि भारतेन्दु जी की कविता में कहीं "यतिभङ्ग दूषण मिलजाय तो इससे यह स्थिर कर लेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अब वह दूषण ही न रहा, सर्वथा भ्रममूलक है। श्रीपति जी ने केशवदास जी की कविता से यतिभङ्ग का उदाहरण दिया है, यथा–

"बृज की कुमारिका वै लीन्हें सुक सारिका, पढ़ावैं कोक कारिका न केसव सवै निवाहि"। यदि बड़े कवियों के काव्य में आने से दूषण भूषण हो जाते हैं तो इसमें तथा और और सहस्रों स्थलों पर वह कैसे दूषण बने रहे ?

हम पहिले ही से जानते हैं कि Hermit की प्रथम चार पंक्तियों का जो हमने अनुवाद किया, उसमें भी यतिभंग है। पर इससे क्या ? यदि बाबू हरिश्चन्द्र जी और हमारी कविता में कोई दूषण संस्थापित हो जाय तो क्या पाठक जी की रचनाओं के अर्थ वही दूषण भूषण हो जायगा ? फिर हमने तो यह थेड़ासा अनुवाद यही सिद्ध करने को किया हो था कि पंक्ति प्रति पंक्ति और शब्द प्रति शब्द अनुवाद का निर्दोष होना एक प्रकार से असम्भव सा है। हम इस लेख के प्रथम भाग में सिद्ध कर-चुके हैं कि हमारे कवि जी की "नवीन" और "पुरानी कृत्ति" में विशेष अन्तर नहीं है और यदि है भी तो उनकी बालकाल की कविता ही विशेष श्लाघनीय कही जायगी। अतः समस्यापूर्ति के अंतर्गत घनाक्षरी आदि का "पाठक जी की पुरानी कृति" कहने से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि उनके उसी काल (सन् १८८४-८५) के भ्रमराष्टक, हिमालय इत्यादि अत्यन्त विलक्षण पद्य भी वर्तमान हैं, वास्तव में वह अवश्यमेव एक असम कवि (Unequal Poet) हैं।

हम नहीं समझते कि पाठक जी ने किस विचार से "बिना सोधे ही उक्त घनाक्षरियों को संग्रह में सन्निवेशित कर दिया"। "उनका वैसाही छपना उन्हें 'भलेही प्रिय लगे, पर औरों को तो वह कदापि "प्रिय' न लगैगा। फिर पाठक जी ने कुछ अन्य पद्यों को संशोधित भी किया है (जैसे वसन्तागमन और वसन्त राज्य)। तब इन घनाक्षरियों को शोधने में क्या दोष था ? यदि उन्हें घनाक्षरी से बड़ा प्रेम नहीं है तो उनके निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी ? पर्यालोचक जी लिखते हैं "पण्डित श्यामविहारी जी को पाठक जी ने अपनी उक्त घनाक्षरियों का दोष स्वयं सूचित कर दिया था, और उन्हीं घनाक्षरियों पर समालोचकों ने बड़े वेग का आक्षेप किया है! यह उनका परम सौजन्य है"। जब गोलोकवासी पण्डित अम्बिकादत्त जी ने यह लिखा था कि "मैंने अपना पचड़ा गाया है", तब भी बंगवासी ने उनका खण्डन क्यों किया ? यह तो संस्कृत और भाषा कवियों की प्रणाली सी है कि कविजन आधीनतासूचक बचन लिखते हैं; यथा रघुवंशे–

"मंदः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
(महाकवि कालिदास जी)

"कहँ रघुपति के चरित अपारा
कहं मति मोरि निरत संसारा
जेहि मारुत महँ मेरु उड़ाही
कहहु तूल केहि लेखे माही"
(तुलसीदास जी)

पर्यालोचक जी के उपरोक्त कथन पर हमें कुछ विस्तार पूर्वक लिखना पड़ता है! जब हमने अपने दो एक मित्रों के आग्रहवशात् पाठक जी से उनकी कविता पर समालोचना करने की आज्ञा मांगी तब उन्होंने हमें अंगरेज़ी में एक वृहत पत्र लिखा, जिसका कुछ आशय हम यहां पर प्रकाशित करते हैं—"मुझे ज्ञात है कि मेरी कविता में दोषों और त्रुटियों का एक समूह वर्तमान है.....अपनी कतिपय रचनाओं में अनेक अशुद्धियों और दूषणों का होना मुझपर विदित है, जिनमें से कुछ तो मुद्रण की और शेष साहित्यसम्बन्धी हैं। ए० वा० यो० में पृष्ठ ४ पंक्ति ६ में "धुआं" के स्थान पर "फुआं" और पृष्ठ ७ पंक्ति ११ में "प्रथम" के स्थान पर "प्रेम" पढ़िये। यह मुद्रण की (अशुद्धियां) हैं। ऊ० ग० क्रोड़पत्र में पंक्ति * के नोट को कृपया

* पंक्ति शब्द के आगे थोड़ा स्थान छूटा है और उनकी गणना सम्भवतः पत्र में भूल से छूट गई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटा हुआ समझिए। मनोविनोद की मेरी कतिपय प्राचीनकाल की घनाक्षरियों में भी अशुद्धियां पाई जांयगी, पर मैंने उन्हें उसी स्वरूप में जिसमें वे प्रथम वार रची गई थीं, उनको मिती के कारण रहने दिया है"। सो इस पत्र में पाठक जी ने हमें अपनी घनाक्षरियों में दोष का होना अवश्य सूचित कर दिया था, पर हमने जो उनमें भी दूषण बतलाए उसके कारण यह हैं— ,

यदि पाठक जी चाहते तो जैसे उन्होंने ऋतुआगमन और बसन्तराज्य (सन् १८८१ के रचे हुए पद्यों) को सन् १९०० में संशोधन किया है, वैसेही इन्हें भी उसी प्रकार संशोधन की मिती का नोट लगा कर शुद्ध कर सकते थे। पर उन्होंने ऐसा न किया और पर्य्यालोचक जी के कथनानुसार "उन (घनाक्षरियों) का वैसाही छपना उन्हें (अर्थात् पाठक जी को) प्रिय लगा"। इससे तो यही ज्ञात होता है कि पाठक जी महाशय को उनमें कोई विशेष दूषण कदापि नहीं जान पड़ा था। ऐसी दशा में उन घनाक्षरियों और इस पद में कि "ज्वार बाजरा आदि कभी के कट गए—खल्यान के काम से किसान निबट गए" जो हमने अत्यन्त भदेसिल छन्दोंभङ्ग बतलाए तो क्या पाप किया? यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु में "कोई विशेष दूषण" न माने और हमें वही वस्तु अत्यन्त दूषित समझ पड़े, तो क्या ऐसा कह देना इतना बड़ा दोष है कि इस बात पर हमें कोई "दुर्जन" इत्यादि उपाधियों से विभूषित करने लगे! हमें तू-तू मैं-मैं करना अभीष्ट नहीं है, पर्य्यालोचक जी हमारे पाठक जी को कविता में कोई दूषण ठहराने के अपराध में चाहे हमारा "सौजन्य" समझें और चाहे दौर्जन्य!! पर आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि ऐसे शिष्ट और सभ्य शब्दों का व्यवहार करते हुए भी पर्य्यालोचक जी हमारी समालोचना में "अविनीत" और "असाधु" भाषा व्यवहृत समझ उसपर ऐसे तीव्र कटाक्ष करें!!!

आप कहते हैं "भदेसिल, अच्छाई नहीं उड़ जायगी, छन्द भी गढ़ लेते हैं, बिलकुल डुबोही दिया, ये (शब्द) असाधु और अविनीत हैं"। इस पर हमारा प्रश्न तो यह है कि इनमें से कोई वाक्य ऐसा भी है कि जिसमें हमने पाठक जी को "दुर्जन" बतला दिया हो? फिर अन्तिम वाक्य के सिवाय शेष तीन हमारी समझ में अणुमात्र भी असाधु या अविनीत नहीं हैं। "भदेसिल" शब्द अपने आशयानुसार आप भी वैसाही अवश्य है, पर उसमें असाधुता क्या है? "अच्छाई उड़जायगी" इसमें भी असाधुता की क्या बात है? और जिस सम्बन्ध में ये शब्द आए हैं, उससे तो पाठक जी की प्रशंसा की गई है, सो प्रशंसा में भी अविनीतता आपको कैसे मिल गई? "छन्द गढ़ लेना" इसमें भी असाधुता की कोई बात नहीं है! "गढ़लेना" अंगरेज़ी शब्द "to coin" का अनुवाद है, जो अंगरेज़ी पुस्तकों में बराबर व्यवहृत होता है। हां, यदि कोई कहे की "वह मनुष्य बातें बहुत गढ़ता है," तब यह शब्द प्रसंगवशात् असाधु कहा जायगा। पर हमने इस आशय में उसका व्यवहार नहीं किया है। "डुबोही दिया" वस्तुतः अविनीत शब्द है, किन्तु वह इतना कटु कदापि नहीं जितना किसीको दुर्जन कह देना। जहां हमने पाठक जी की इतनी प्रशंसा की कि जिसका वारापार नहीं, और जो हमारी समालोचना के अवलोकन से भली भांति जानी जा सकती है और जिसको पढ़कर (स्वयं) पाठक जी भी "आल्हादित हैं," वहां यदि उनकी कवित्व शक्ति पर (स्वयं उनपर नहीं) दो एक तीक्ष्ण शब्दों का समुचित रीति पर प्रयोग कर दिया, तो वह पर्य्यालोचक जी की हम पर इस कृपा का शतांश भी निन्द्य नहीं कहा जा सकता कि जिससे उन्होंने, हमारे काव्य अथवा समालोचना को छोड़ स्वयं हमारे "सौजन्य" पर इतना घोर आक्षेप किया!! अस्तु इसपर अब अधिक कुछ न लिख हम आगे बढ़ते हैं [शेष आगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सं० सर० आगत तिथि २(१२)

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] दिसम्बर १९०१ ई० [संख्या १२

विविध वार्त्ता

इस दिसम्बर मास की संख्या के साथ "सरस्वती" के जीवनकाल का यह दूसरा वर्ष समाप्त हुआ। इस वर्ष में हमने किस प्रकार इस पत्रिका को चलाया और कहां तक हम अपने पाठकों को प्रसन्न करके निज मातृभाषा हिन्दी की सेवा कर सके हैं, इन बातों का निर्णय करना हमें उचित नहीं है। इनपर विचार करने का भार हम अपने सहृदय पाठकों और विचारवान हिन्दी मर्म्मज्ञों पर छोड़ते हैं। परन्तु इतना हम कहदेना उचित समझते हैं कि विवाद और परस्पर की निन्दा और ईर्षा-द्वेष से हम बचे रहे, और लेखों के स्वीकार करने या लिखने में हमने किसीका पक्ष अथवा विरोध नहीं किया है। हमने इस भाव से जहां तक हमसे बन पड़ा है अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। हम इस स्थान पर अपनी तथा प्रकाशक की ओर से उन सब महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने समय समय पर लेखों द्वारा हमारी सहायता की है। यदि इन महाशयों की सहायता न होती, तो हम कदाचित उतने भी सफल न हो सकते जितने कि हम हुए हैं। साथही हम उन सच्चे देशहितैषी उदारचेता लोगों के भी कृतज्ञ है जिन्होंने अपने अमूल्य कटाक्षों से हमारा उपकार कर आप तमाशा देखा और दूसरों को दिखाया है! इन देशप्रिय, भाषाप्रिय तमाशबीनों की यदि कृपा रही तो हमें दृढ़ विश्वास है कि हमारी हिन्दी की खूबही उन्नति होगी!! इन महानुभावों ने यदि हमपर कटाक्ष किया तो क्या किया, इनको तो प्रकृतिही ऐसी है! परन्तु हमारे दोष और त्रुटियों को जो महाशय चाहे जिस प्रकृति से दिखा दें, हम उनके कृतज्ञ ही होते हैं; क्योंकि सरस्वती के समान नवीन उद्यम में हमको स्वयं ही बड़ी बड़ी त्रुटियां दिखाई पड़ती हैं; हम स्वयं ही उनके सुधारने के लिये दत्तचित्त हैं। परन्तु हां, हमको विशेष आश्चर्य तो उस समय होता है जब कटाक्षकारों में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको देखते हैं जिन्होंने जन्म भर उर्दू पढ़ने लिखने में अपना काल बिताया है और जिन्होंने इस समय यह न जानते हुए भी, कि हिन्दी और उर्दू के व्याकरण में क्या क्या मुख्य भेद हैं और कैसे शुद्ध हिन्दी लिखी जा सकती है, अपनेको हिन्दी का धुरन्धर लिक्खाड़ मान रक्खा है और जो वामन समान हो अपने से उच्चतम पुरुषों की पगड़ी तक अपने नन्हें नन्हें हाथों के पहुंचाने का साहस करते, और यदि आज कल हरिश्चन्द्र जीवित रहते तो उनसे भी लेखनी रखवा लेने की डींग हांकते हैं। ऐसे परनिन्दारत और 'विषकुम्भम् पयोमुखम्' की उपाधि को चरितार्थ करनेवाले महानुभावों को हम दूरही से प्रणाम करते हैं और उनकी बातों पर उपेक्षा करना ही उचित समझते हैं। हमने गत दो वर्षों में ऐसे लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान देना उचित न समझा और मौन साधकर अपने कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहने ही में अपना सौभाग्य माना। इस वर्ष जिन जिन महानुभाव लेखकों ने हमारी भेट लेना उचित समझा, आर्थिक पुरस्कार से हमने उनकी सेवा की। हिन्दी के इतिहास में यह बात नई है, पर इससे अनेक लाभ समझ हमने इसी नीति का अवलम्बन करना उचित समझा। किन्तु इन सब बातों के करने पर भी हमें इस वर्ष कई सौ रुपयों का घाटा उठाना पड़ा। यह बात हिन्दी समाज के लिये लज्जा की और हमारे लिये निरुत्साह की है। इस अवस्था में हम काश्मीराधिपति श्रीमान महाराज प्रताहसिंह जी और रीवांधिपति श्रीमान महाराज वेंकट रामानुजप्रसाद सिंह जी के विशेष अनुगृहीत हैं, कि उन्होंने सरस्वती की विशेष सहायता कर हमारे उत्साह को बढ़ाया और अपनी गुणग्राहकता का विशेष परिचय दिया। अस्तु घाटा सहने पर भी हम तीसरे वर्ष में भी इस पत्रिका को निकालेंगे, क्योंकि 'सरस्वती' के ग्राहक अन्तःसलिला फल्गू नदी की भांति धीरे धीरे, मृन्दु मन्द गति से, नित्य प्रति बढ़ते ही जाते हैं। हिन्दी में सरस्वती एक नवीन वस्तु है, और इसके रूप, रंग, सज, धज, लेख आदि सब बातों को इसकी वर्तमान अवस्था से अधिकतर सुन्दर बनाना हमको अभीष्ट है। परन्तु हिन्दी रसिकों की सहायता बिना हम अभी अधिक कुछ नहीं कर सकते। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी के रसिक हमारी अधिकतर सहायता करने से आगामी वर्ष में पराङ्मुख न होंगे।

* *
*

हमें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी लिखित एक प्रति "हिन्दी कालिदास की समालोचना" प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में लाला सीताराम द्वारा अनुवादित कुमारसम्भव, ऋतुसंहार, मेघदूत और रघुवंश, कवि कालिदास के इन्हीं चार काव्यों की समालोचना है। पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री इस पुस्तक के विषय में लिखते हैं कि—

"हिन्दी में द्विवेदी जी की उक्त कृति का नाम सुनकर केवल हिन्दी वा संस्कृत के विद्वान् मात्र ही नहीं, किन्तु उपाधिधृक लोगों के निम्नश्रेणिस्थ अङ्गरेज़ी के विद्वान् लोग भी आश्चर्य्य चकित होंगे, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है। क्योंकि हिन्दी में पुस्तकाकार समालोचनाओं का प्रकाशित होना आज दिन लों अभूतपूर्व है। अभी लों ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता ही नहीं थी; यही कारण है कि अद्यावधि हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों की सृष्टि नहीं हुई। पर अब ईश्वर की कृपा से ऐसे अनेक ग्रन्थों की आवश्यकता उपस्थित हुई है। ऐसे अवसर पर उक्त द्विवेदी जी ने, प्रचण्ड परिश्रम कर उक्त ग्रन्थ की सृष्टिद्वारा हिन्दी के पठितसमाज को जो आशातीत लाभ पहुंचाने का परम श्लाघ्य प्रयत्न किया है, तदर्थ हिन्दी का पठितसमाज आपका चिर कृतज्ञ रहैगा।

"संसार भर के विद्वान् मात्र के मुख से यह बात सुनाई देती है कि संसार में ऐसा कोई मनुष्य न होगा जो सरस्वती के लाल कालिदास का नाम न जानता हो। इस विस्तृति एवं चिर विख्याति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कोई कारण अवश्यमेव होना चाहिये; क्योंकि जबसे यह प्रपञ्च आविर्भूत हुआ है, तबसे इसमें कई कविगण हुए होंगे, पर उनके ग्रन्थ और नाम न जाने कब लुप्त हो गए। इस कथन से यह बात सिद्ध होती है कि जिस कवि की कृति, परिवर्त्तनशील संसार के अनेकानेक हेर फेरों को देख, प्रचण्ड बली काल द्वारा कवलित न होकर, उत्तरोत्तर विद्वज्जनों द्वारा अधिकाधिक समादृत होती आई है, उसमें निःसंदेह कोई न कोई पीयूषपूरित द्रव्य अवश्यमेव रहना चाहिये। हमारे केवल संस्कृत के पण्डितों में भी ऐसे लोग इने गिने ही होंगे कि जो हमारे शृङ्गार-दीक्षागुरु कालिदास की कृति के अमरत्व का यथार्थ कारण जानते होंगे। इसका कारण प्रायः उक्त लोगों की विचार-शिथिलता कहा जाता है। पर धन्य है हमारे द्वीपान्तर निवासी विद्वज्जनों की जिज्ञासा और विचारचंचलता को, कि जिनके संसर्ग से, आज हमारे यहांके असामान्यप्रतिभाशाली कविवरों के अलौकिक आनन्दप्रद विजृम्भण का यथार्थ ज्ञान हमलोगों को प्राप्त होने लगा है। आज का हमारा समालोच्य ग्रन्थ इसी प्रकार के लोकोत्तर आनन्द का परिचायक है।

"हमारे काव्यप्रेमी पाठकों के लिये यह परम शुभ संवाद है कि, जो लोग गुरुमुख परंपरा से कविता कामिनी के विलास स्वरूप कालिदास के अनूठे काव्य की प्रशंसा सुनते आए हैं, पर उस प्रशंसा का यथातथ्य कारण नहीं जानते हैं,—वे लोग द्विवेदी जी कृत उक्त ग्रन्थ द्वारा अपनी चिरोत्थित जिज्ञासा को सुख से परिपूर्ण कर सकते हैं; अर्थात् इस अनूठे ग्रन्थ द्वारा विवेकी पाठकों को कविता के सोदाहरण उन उन अत्यन्त आवश्यक गुणों का बोध हो सकता है कि जिनसे संयुक्त होने के कारण भगवती सरस्वती के अंशावतार कालिदास की कविता इस प्रकार आदरास्पद हुई है। साथ ही साथ उदाहरणों के सहित कविता के उन उन हेय दोषों का भी भली भांति ज्ञान होता जाता है कि जिनके योग से, कवि-यश-लोलुप, मन्द एवं पाण्डित्य बल से हठात् अक्षर जोड़ कर कवि बननेवाले लोगों की नीरस, क्लिष्ट तथा शब्दाडम्बरयुक्त, अतः उद्वेगकारिणी, कविता हास्यास्पद होती है।"

वास्तव में द्विवेदी जी ने इस समालोचना को छापकर सबसे बड़ा उपकार तो यह किया है कि हिन्दी पढ़नेवालों को इस बात से सचेत कर दिया कि लाला सीताराम के अनुवाद में कालिदास की कविता का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता और उन्हें उचित नहीं है कि बिना मूल कविता के पढ़े अनुवाद के आशय पर विश्वविख्यात रससिद्ध कविचूड़ामणि कालिदास की अद्भुत अलौकिक कविता पर अपनी सम्मति प्रकाशित करें।

* *
*

मराठी भाषा से अनुवादित "प्रणयिमाधव" नाम के उपन्यास की एक प्रति हमें अनुवादक पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री से प्राप्त हुई है जिसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। हिन्दी में आज कल उपन्यास विशेष रूप से निकल रहे हैं, परन्तु यह उनमें का नहीं है। आज कल के साधारण उपन्यासों में तिलस्म की ही भरमार रहती है और वे इस प्रकार की भाषा में लिखे जाते हैं कि कोई पढ़ा लिखा विचारवान मनुष्य उन्हें अपनी माता, स्त्री अथवा कन्या के हाथ तक पहुंचाने में भी पाप समझेगा। औरों को जाने दीजिए स्वयं लेखक महाशय भी कदाचित ऐसा करने का साहस न करेंगे। परन्तु प्रणयिमाधव में इन अवगुणों का पूर्ण अभाव है। अनुवादक महाशय स्वयं लिखते हैं कि "इसमें यद्यपि ऐयारों की ऐयारी तथा तिलस्म की ऊटपटांग लीला का वर्णन नहीं है, तथापि हम आशा करते हैं कि इसमें जो कुछ है सो हमारे करुणारसप्रधान नाटक प्रणेता भवभूति प्रणीत सुविख्यात 'मालतीमाधव" नामक नाटक के आधार पर लिखे जाने के कारण सरसचेता पाठकों के चित्त में रस का अविर्भाव करने के लिये अलम् है।" मालती का चरित्र जैसा इस उपन्यास में लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, वह आदर्श बनाने योग्य है। सुअवसर मिलने पर भी अपनी इच्छा होने पर, सहवर्गियों की सम्मति होने पर, जिस कन्या ने अपने माता पिता की आज्ञा बिना अपना परिणय नहीं किया और उसके बदले असह्य मानसिक व्यथा सहन की, वह कन्या यदि आदर्श स्वरूप न मानी जायगी तो और कौन ऐसी हो सकती है जिसे हम ऐसा समझ सकते हैं। हमारी सम्मति में यह पुस्तक बालिकाओं के पढ़ने योग्य है।

यह पुस्तक बम्बई के लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस से छपकर प्रकाशित हुई है, इसी कारण से इसका प्रूफ भली भांति नहीं शोधा गया है और इसमें भाषा और व्याकरण की अशुद्धियां रह गई हैं।

* * *

फिरोज़पुर के अनाथालय की एक रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई है। गत अकाल के समय पञ्जाब के आर्य्य-समाज ने जो देशहितकर काम किया, उसे देख कर लम्बी लम्बी बातें बनानेवालों को लज्जित होना चाहिए। ठीक परीक्षा के समय परीक्षा छोड़, सब प्रकार के कष्ट उठाकर वैदिक कालिज के विद्यार्थियों ने अकालपीड़ित प्रान्तों में यात्रा कर अनाथ मातृ-पितृ-विहीन बालक और बालिकाओं की रक्षा की, और उन्हें, जैसा कि नवम्बर की सरस्वती में पण्डित रामनारायण मिश्र लिख चुके हैं, मिस्टर स्मिथ और सैय्यद अली होने से बचाया,—सनातनधर्म्मावलम्बिओ, भारत धर्म्ममहामण्डल के पक्षपातिओ, भारतहितैषिओ, बताओ तुमने भी इन दीन बालकों के लिये कुछ किया अथवा अब भी कुछ करने की इच्छा रखते हो? हा! हमारा देश दानशील है; हम दानी कहलाते हैं और इसके अभिमान में फूले नहीं समाते; पर वास्तव में हम कैसे हो रहे हैं, हमारे देश के बिचारे अनाथ बालक भूख के मारे मर जांय, सर्दी में कपड़े बिना ठिठुर जायं, पर हमें अपनी विदाई से, अपनी वाह वाही से, अपने स्वार्थरत कार्य्यों से प्रयोजन है; वे मरें चाहे जीएं, अवसर पड़ने पर, कुछ कमा खाने का सुबीता होने पर, हम भी बड़ी बड़ी मीटिंगों में इनके नाम आंसू टपका लेंगे। हा! जिस समय हम उन अनाथ बालक बालिकाओं के अस्थिपञ्जर मात्र शरीर को, उनकी मन्द अवस्था को, उनकी शक्तिहीनता को और उनके करुणोत्पादक सूखे मुर्झाए तथा मृतवत् मुख को देखते हैं, तो हमें नैराश्य आ घेरता है और हम रोमाञ्चित हो विह्वल हो जाते हैं। ईश्वर, दयामय ईश्वर, दीननाथ! तेरे कौनसे ऐसे अपराध हमने किए हैं जो हमारे देश की यह दशा हो और हमारे देश के धनी दानी अपनी घोर-निन्दा से न जागें! ऐसे दीन बालकों की जिन्होंने रक्षा की है, उनका सारा देश चिरकृतज्ञ बना रहेगा; परन्तु कृतज्ञता से काम नहीं चल सकता। इन परोपकारी लोगों की सहायता करना हमारा परम धर्म होना चाहिए। हम अपने पाठकों से सानुनय प्रार्थना करते हैं कि वे इन बालकों की सुध लें और जो कुछ उनसे बन पड़े, इनकी सहायता में भेजें। एक सप्ताह तक हम सुगमता से कोई एक व्यसन छोड़ सकते हैं। उससे जो बचत हो, वही इन अनाथ दीन जीवों के लिये बहुत होगी। हमें यह जानकर परम सन्तोष होगा कि हमारी प्रार्थना वृथा नहीं हुई है। दानियों को अपना दान लाला लाजपतराय, वकील, चीफ़कोर्ट, लाहौर, के पास भेजना चाहिए और अनाथालय की पूरी रिपोर्ट मंगाकर देखना चाहिए कि उन्होंने अब तक क्या किया है और उन्हें अब किन किन बातों का अभाव है।

दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला का प्रेमपत्र

[रोला]

तव चरननि में नमति सीस वनवासिनि दासी।
जदपि बिसारयौ नाथ ताहि तुम ह्वै बिस्वासी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा रविवर्माकृत शकुन्तला-पत्रलेखन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूलि सकति नहिँ तऊ अभागिनि कबहु आपकों।
नाम आपको जपति नसावन हेतु ताप कों ॥१॥

हाय विवस आसामद में ह्वै मैं उन्मादिनि।
हेरौं धूलाराशि नाथ जब नभपथगामिनि ॥
पवन सब्द जब सुनौं दूर के कोऊ बन में।
तबहि चौंकि कै करन भावना लागौं मन में ॥२॥

सङ्ग पदातिक मत्त करी बहु रतन सजित तन।
बाजी राजी सुरथ सारथी दास दासि गन ॥
आवत आश्रम बीच मनो परि आसा के छल।
प्रियम्बदा अनसूया को बुलवाइ लाइ गल ॥३॥

कहति दुहू सों हुलसि सखी बीते इतने दिन।
सुमिरन कीन्यौ आज अरी निज दासी को तिन ॥
वह देखो उड़ि धूल राशि छायी अकास में।
सुनहु कोलाहल पुरवासी आवत निवास में ॥४॥

मोहि लै जैवे हेत आज प्रानेस हुकुम सों।
विदा होइहौं अबै सखी सुनु सांचे तुमसों ॥
देखि दसा यह प्रियम्बदा अनसूया रोवति।
धाय लाइ गल भरि उसास मेरो मुख जोवति ॥५॥

वह निकुञ्ज बन मांहि सोघ्र धावौं दुत गति सों।
पूज्यौ पदजुग नाथ जहां पहिले निज मति सों ॥
हेरौं चहुं दिस व्यग्रभाव सों फूल प्रफुल्लित।
सुनौं मधुर पिकगान लखौं लतिकागन प्रसरित ॥६॥

अलि गुञ्जन नदि नाद सुनौं मर्मर पातन को।
ररे परेवा बैठि ऊपरे तरु साखन को ॥
करत प्रेम आलाप कपोतिनि सङ्ग मौज सों।
चोंच चोंच सों लाइ चाव चढ़ि चारु चोज सों ॥७॥

निदरि सुमन सन कहौं "अरी कुञ्जनि की सोभा।
केहि कारन तू करत हंसी लखि मम मन छोभा?
क्यों बरसत है आज सुधापरिमल, समीर कों?"
कहौं पिकहिं-"सुनु कोकिल क्यों नहि धरत धीर कों?

क्यों तू गावत तान सोत बरसत क्यों बन में?
कौन सोक के काल मोद धुनि करत मगन में?
तुम ऋतुराज अधीन सखा वह अहै मदन को।
होत मदन सों मुग्ध जासु लखि रूप गुनन को ॥९॥

गावत लहि सुख कहा कहो ताके वियोग में?"
सुनि अलि के गुञ्जार भावना करौं सोग में ॥
मृदु स्वर सों दुखनी के दुख सों देवी बन की।
रोवति है-सुनि नदीनाद यह बात मनन को ॥१०॥

निन्दत हैं वनदेव तुम्हें कछु बोलि गंभीरा।
भय सों कांपौं नृपति पाइ मन में अति पीरा ॥
सोचत जौ वे देहिं कोपवस साप आपकों।
तब हा ह्वै है कहा सुमिरि पावति संताप कों ॥११॥

कहति पत्र सों "सुनहु पत्र तोहि लखे सरस तन।
नाचत तुम संग आई प्रेम सों पौन मुदित मन ॥
पै जब जाहु सुखाइ कालवस तबहि घृना करि।
तुरतहिं तोहि उड़ाइ देत है हाय दूर धरि" ॥१२॥

त्योंहीं कहा भुपाल तज्यो एहि दासिहिं बन में।
इहि विधि नाथ अनेक भावना आनौ मन में ॥
मूंदि जरे ये नैन बैठि कै मैं रसालतल।
बहुरि भावना करौं भ्रान्तिमद माति पलहिं पल ॥

पैहौं दरसन चरनपद्म को शीघ्र तिहारे।
यह विचारि मढ़ि मोद होत हिय कम्प हमारे ॥
सुनौं जहां पद सब्द नैन खोलौं हुलास सों।
हेरि कुरङ्गिनि निकट, हाय, रोवौं हतास सों ॥१४॥

गारी दै कै दूरि करौं तेहि कराघात सों।
ऊंचे अलिहिं पुकारि कहौं अति विनय बात सों ॥
'अहो सिलीमुख मोहि आक्रमण करहु आय करि।
गूंज अभागी अधर हमारो एक बार फिरि ॥१५॥

दासी के रक्षार्थ अचानक पुरुकुल राजा।
दैहैं दर्सन आय साधिहैं मेरो काजा" ॥
किन्तु पुकारौं वृथा नाथ! मैं ताहि छोभ सों।
मधुलोभी अलि अबै धाइ हैं कौन लोभ सों ॥१६॥

इहि आनन को निरखि गयो रस सूखि जाहि को।
फूल सुखाये कबै आदरत कौन ताहिको ॥
रोइ प्रवेसौं सोइ लतामण्डप में प्रभुवर।
जहां, बिचारो भूप, होइ सुमिरन यदि अवसर ॥

जहां बैठि कै लिखी गीतिका यह हतभागिनि।
कमल दलन पै, जहां अचानक आप नृपति मनि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइ जुडायो विषम बिरह को दुख सब मेरो ।
पद्मपत्र लै नित कितने क्या लिखौं घनेरो ॥१८॥

कैसे कहिहौं कौन भांति सोइ हाय रोय कै ।
कबहुं पवन कों कहौं अञ्जलीबद्ध होय कै—
"वायुराज ! यह लेख हमारो दै उड़ाय कै ।
फेकु राजपद तले दया अपनी दिखाय कै ॥१९॥

जहां विराजैं नृपति सङ्ग में राजासन पै ।
मेरो जीवन प्राननाथ, सिरमौर नृपन पै" ॥
ह्वै अनमनी कहौं कबहूं करि मृगिहिं सँबोधन ।
"हारिनि ! मनोरथ गती तोहि विधि दीन्ही भावन ॥

जाहु जहां प्रानेश बेगि लै लेख हमारो ।
विरह बिथा बढ़ि रही कौन विधि धीरज धारों ॥
पाल्यौ सैसव मांहि जतन सों तोहि हिये धरि ।
अहो बचाओ अधम प्रान यह आज कृपा करि"२१

और कहा अब कहौं, कहौं तो सुनहिं कौन जन ।
देखहु भूप विचारि होइ जौ कछु सुमिरन मन ॥
अनसूया अरु प्रियम्वदा सखि बिन कोउ नाहीं ।
जानत मम दुख हाय इहां निर्जन बन माहीं ॥२२॥

यदि आवत यह दोउ सखी मेरे ढिग कबहीं ।
पोछौं आंसूधार निम्न कारन सो तबहीं ॥
देति तुम्हें अपवाद मन्द भाषत भूपाला ।
देखि विवस अति मोहि कोपकरि कै ऋषिबाला२३

तव निन्दा प्रभु मोहि बज्र सम लागै हिय में ।
कढ़ै न मुख सों बैन रोष दाहै रुकि जिय में ॥
और और थल हैं जितने सब ठौर जायकै ।
रोय रोय कै करौं भ्रमन, दुख तहां पायकै ॥२४॥

ओहि तरुतल गन्धर्व व्याह विधि जहं प्रभु कीन्ही
छलि मन मेरो मोहि बनाय निज दासी लीन्ही ॥
ओहि निकुञ्ज में जहां साजि दासी फुलसज्जा ।
प्रथम समागम किया चापि पद तजि सब लज्जा !

करि नहिं सकत बखान होत जो भाव हमारो ।
कहा हिये में मोर उदय, (तुम आप विचारो) ॥
ओहि निकुञ्ज में जांउ जबै अति व्याकुल मन में ।
सान्ति पाइवे हेत, तहां प्रभु एकहु छन मैं ॥ २६ ॥

हाय विधाता ! तेरे मन में यही फव्यौ क्या ?
प्रेमवृक्ष के साखन में फल यही फल्यौ क्या ?
याही विधि प्रति द्यौस अनाथिनि मैं, पिय प्यारे !
भ्रमन करौं ; तुम कछू कष्ट जानत न हमारे ॥२७॥

पितृस्वसा गौतमी तापसी वृद्धा मेरी ।
भाग्य यही सुधि रहै तासु जप तपसों घेरी ॥
नहि तो होतो सर्वनाश निहचै कोऊ दिन ।
लखि मेरी यह दशा शाप तोहि देती अनगिन ॥२८॥

नहि अब इच्छा केस बांधिवे फूल रतन सों ।
बेनी गुहौं बनाय चारु मैं परम जतन सों ॥
मैले बल्कल पहिरि आवरों मलिन अङ्ग कों ।
अन्न मांहि रुचि नांहि तज्यौ सब राग रङ्ग कों ॥२९॥

नहि जानौं मैं कहौं कौनसी बात कौनकों ।
हाय सून्य मन व्है विषाद में स्वास पौन कों ॥
छाड़ि, विकल व्है घूमि झूमि पुनि भूमि पड़ति मैं ।
होत रंच सुधि, नाथ ! सामुहें तुमहि लखति मैं ३०

व्है असङ्क तब अङ्क भरन कों भुजनि बढ़ावों ।
चरनकमल पर सांस धरन हित आतुर धावों ॥
तुव पद परस न पाय रोय मैं हा हा रव सों ।
नाथ सहौं सन्ताप नित्य बिछुरे तुम जब सों ॥३१॥

कौन कहेगो, कौन पाप सों यह बिड़म्बना ।
सहौं; विधाता कौन पाप सों करैं पीड़ना ॥
पूछौं मैं यह बात कौन सों कहां जाय कै ।
कोऊ नहिं लखि परै मोंहिं जो दे बतायकै ॥३२॥

जगविरामदायिनि निद्रा जौ कबहिं कृपा करि ।
लेति मोहिं दुख हाइनि कों निज सुखद अङ्क भरि
देखौं सपन अनेक नाथ तो पैं तिहि औसर ।
तिनको करौं बखान कौन विधि सों मैं कातर ३३

हेम रचित मनि खचित राजप्रासाद मनोहर ।
गजरद निर्मित द्वार लखौं द्वारी अरु करिवर ॥
ठौर ठौर में सुमन सेज सुवरनमय आसन ।
दासी विद्याधरी गंजिनी घिरि चहुं पासन ॥३४॥

नाचति गावति कोउ कोउ लै जोवति भूषन ।
कोऊ लावत राज भोग बहु भांति अदूषन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनि मुक्तन की रासि रासि देखौं मैं ढेरी।
जच्छराज गृह मांहि रहै जैसे बहुतेरी ॥ ३५ ॥

सुने बोन धुनि हाय केलि आनद उपवन में।
होत मत्त मन मोर पाय सौरभ अति तन में ॥
जिमि बसन्त में नन्दन बन में होत सुनी मैं।
तात कण्व मुख सों यह बानी सत्य गिनी मैं ॥३६॥

देखौं तुम्हें नरेन्द्र स्वर्ण सिंहासन ऊपर।
सिर पै सोहत राजछत्र नृपदण्ड लसै कर ॥
मण्डित बहु अनमोल रतन सों; धरा ससागर।
राजिव पदतल परति हाथ में लिये राजकर ॥३७॥

कितने रोवौं जागि, नाथ सो कासों कहिहौं।
विषम बिरह की बिथा कहां लों मन में सहिहौं
जानति दासी हैं नरेन्द्र देवेन्द्र समाना।
सम्पति महिमा अहै तिहारी कृपानिधाना ॥३८॥

तुम जग में हो अद्वितीय कुल मान धनन में।
गिनौं राजकुल छत्रपती तोहि राजागन में ॥
किन्तु करै नहिं लोभ कछू दासी यह धन को।
केवल सेवन चहै नाथ तुम जुगल चरन को ॥३९॥

नाथ यही इक लोभ अहै चिर आस जीय की।
सत्य कहौं प्रानेस कथा निज जरे हीय की ॥
मैं बनबासिनि नारि नित्य फलमूल अहारिनि।
कुस आसन सायनी तथा बल्कल पट धारिनि ४०

कौन काज है मोहि राजसुख राजभोग सों।
यह इच्छा इक सेइ तुम्हें मैं बचौं सोग सों ॥
करति केलि विधु सङ्ग रोहिनी नित अकास में।
सेवति भू पैं ताहि कुमुदिनी खड़ी आस में ॥४१॥

दासी मोहिं बनाय, नाथ, राखहु निज पदतल।
पैहो अति सुख तबहि बहैहौं मोद अश्रु जल ॥
सैसव में तजि दियो मातु मोहिं कौन पाप सों।
नहि जानौं मैं; चिर अभागिनी भरी ताप सों ॥४२॥

पर अन्नन सों बच्यौ प्रान मम परपालन सों।
नवजोबन सुख लियो लूटि पुनि तुम ख्यालन सों ॥
कौन दोष सों कहो, नाथ ! अपराधिनि दासी।
सकुन्तला तेरे पद में अबला बनबासी ॥४३॥

सुख पच्छी मन मांहि कियो जो हुतो बसेरो।
ताहि व्याध बनि बध्यो कौन यह न्याव निवेरो ॥
अजित बाहुबल सुन्यौ प्रतापी श्रेष्ठतर।
सूर सिरोमनि आप जगत विख्यात नृपतिवर ४४

कहो यसस्वी हाय कौन जस उमह्यौ तेरो ?
(दासी अबला नारि) हरन कै सुख लेहुं मेरो ॥
तात कण्व बन मांहि आइहैं, नाथ ! जबै फिरि।
कहिहै दासी कहा ताहि सों कहो कृपा करि ४५

अनसूया जब तुम्हें बिनिन्दहि मन्द कथा कहि।
प्रियम्वदा अपवाद देहि जब तुम्हें कोप लहि ॥
कहा बोलि यह दासी दोउन कों समुझावै।
कहो नाथ मोहि सोइ कौन सी बात बनावै ॥४६॥

कहा बोधि एहि जरे प्रान कों तोषौं प्यारे।
कहो; करै मिनती दासी गहि चरन तिहारे ॥
बनबासी नरराज पुरी अरु राज सभा मंह।
नहिं जानत परवेस कौन विधि सों करिहौं तहं ४७

पै जलधारा मांहि सुनी है डूबत जोजन।
धरत तृनहिं यदि और कछू नहिं मिलै ताहि छन।
कौन सहज में तजत हाय आसा जीवन की।
करहु कृपा प्रानेस कहत दासी निज मन की ॥४८॥

जौं अज्ञानबस कियो कछू मैं भारी दोषा।
उचित नहीं प्रानेस आपको करिवो रोषा ॥
छमा श्रेष्ठतम अहै भूप के सब गुनगन में।
दासी कों तेहि हेतु छमा करि लेहु सरन में ॥४९॥

गर्भवती विकला अबला मैं तुमहिं पुकारौं।
हे जीवन-आधार भूपवर ! मोहिं उबारो ॥
निज सेवक कों नाथ दया करि इतै पठावहु।
अपनी दासी सकुन्तला कों बेगि बुलावहु ॥ ५० ॥

राजा कमलानन्द सिंह

जीवनाग्नि

[२]

दूसरे दिन मैं दलपति के साथ रानी के दर्शन को चला। बहुत सी छोटी छोटी गलियों और छोटी बड़ी कोठरियों में घुमते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमलोग एक बड़े से गृह के सामने आ खड़े हुए। द्वार पर एक द्वारपाल खड़ा था, वह भीतर गया और तुरन्त लौट कर हमलोगों को भीतर ले चला। सच पुछिए तो मेरा कलेजा कांप रहा था, पल भर के लिये मेरे हृदय में भय समा गया। परन्तु मैं ढाढ़स बांधकर भीतर घुसा।

देखा, वहां कोई नहीं था। एक दूसरी कोठरी में जाने के लिये द्वार पर एक पर्दा पड़ा हुआ था। बूढ़े दलपति ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा 'रानी जी उस कोठरी में हैं,' और वह भुमि पर हाथ और पैर रखकर चतुष्पद की भांति भीतर घुसा, परन्तु मैं सीधा ही चला गया। अन्दर जाकर मैंने देखा, कि एक तखत पर एक स्त्री बैठी है, सिर से पैर तक श्वेत वस्त्रों से उसका शरीर ढका है, परन्तु वस्त्रों के भीतर से उसके लम्बे लम्बे केश चारों ओर शोभा फैला रहे हैं। उसने हाथ उठा कर हमारी अभ्यर्थना की। उतने ही में जो कुछ मैंने देखा वैसा रूप पहिले कभी नहीं देखा था। उसकी सुन्दरता ऐसी चटकदार थी कि देखकर मेरे मन में भय का संचार होने लगा। मेरे पैर कांपने लगे, मानो घुटनों को टेक कर उसके सम्मुख बैठ जाने को मेरा हृदय व्याकुल हो रहा था। ऐसे समय मधुर वीणा की झङ्कार के सदृश स्वर से हिन्दी भाषा में वह बोली "विदेशी, डरते क्यों हो?" मनुष्यकण्ठ से ऐसा मधुर स्वर मैंने पहिले कभी नहीं सुना था। वीणा, जलतरङ्ग, पियानो, आदि अनेक मधुर बाजे मैंने सुने थे, किन्तु उनमें ऐसा मीठापन, ऐसी हृदयोन्मादिनी मुग्धकारिणी शक्ति नहीं थी। मैं क्या उत्तर दूं मुझे नहीं सूझा। हृदय की रास भर सक खींचकर केवल यही बोल सका—"महाराज्ञी! आपके अलोकसामान्य अनिर्वचनीय रूप ने मुझे मुग्ध कर दिया है। मेरे अन्तःकरण में डर समा गया है।"

रानी ने हँसकर कहा—"जान पड़ता है कि अब भी पुरुष पहिले की नाई स्त्रियों की वृथा बड़ाई किया करते हैं। चलो, कुछ हानि नहीं, तुम्हारी बातों से मैं प्रसन्न हुं। आओ, यहां बैठो।"

मेरे सिर में तो घुमरी आ रही थी। नाना भांति की चिन्ताएं मेरे अन्तःकरण को समुद्र की लहरों की भांति आलोड़ित कर रही थीं, मैं बार बार सोच रहा था कि "क्या धनपतिराय की कथा सत्य है? क्या यही वह स्त्री है?" जब मैं इस चिन्तासागर में डूब रहा था, उस समय रानी हमारे संगी दलपति के साथ कुछ बातें कर रही थी। पीछे उसने उसको विदा कर मुझसे कहा "बहुत दिनो से बाह्य जगत् से मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है, बहुत दिनों से मैंने वहां का कोई समाचार नहीं सुना है; बैठिए, आपसे कुछ सुन लूं"।

मैंने कहा "मैं महारानी जी की आज्ञा यथासम्भव पालन करूंगा"।

रानी—मैंने सुना था कि बुद्धावतार होने वाला है। बुद्ध ने जन्म ले लिया?

इस प्रश्न को सुनकर मेरा हृदय भीतरी हृदय के भी भीतर धँस गया। आज सहस्रों वर्ष की कथा यह स्त्री किस ढंग से पूछ रही है? बड़ी व्याकुलता से उसकी ओर देखकर मैंने कहा "महारानी! आज २००० वर्ष से भी ऊपर की बात है कि बुद्धदेव ने जन्म लिया था और राजपाट सब छोड़ कर सन्यास ले धर्म्म संचार किया था। इस धर्म्म का आजदिन इतना प्रताप है कि चीन जापान ब्रह्मा इत्यादि सब देशों में इसीका प्रचार है। भूमण्डल के निवासियों में प्रति सैकड़े में से चालीस मनुष्य इस धर्म्म को मानते हैं"।

"तो क्या भारतवर्ष में अब हिन्दू नहीं हैं।"

"जी, ऐसा नहीं। बौद्ध धर्म्म का बहुत दिनों तक भारतवर्ष में बड़ा प्रताप रहा; परन्तु पीछे से ब्राह्मणों का सनातन धर्म्म ही प्रबल हो गया, और यद्यपि मुसलमान, ईसाई आदि बहुत से विधर्म्मी राजाओं ने आकर काल पाकर अपना अपना शासन विस्तार करने से हिन्दुधर्म्म को फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कुछ हानि हुई, परन्तु भारतवर्ष में अब भी हिन्दुओं ही की संख्या सबसे अधिक है।

रानी फिर मुझसे मगधराज्य का समाचार पूछने लगी। मैंने भी जहां तक बन पड़ा उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। परन्तु धीरे धीरे मेरे मन से जब भय दूर हो गया, तो बड़ी ढिठाई से मैंने उस का परिचय पूछा।

उसने मुसकरा कर उत्तर दिया कि दो सहस्र वर्ष से भी पहिले मैंने इसी करकर नगर में जन्मग्रहण किया था और मैं धूमकेतु नामक एक पुरुष की प्रेयसी थी। मेरा नाम अश्वगन्धा है। मेरेही समान लघुमाया नाम की एक अनार्य्य कन्या भी धूमकेतु की प्रेमभागिनी थी। इस कारण ईर्षावश होकर मैंने अपने हाथों से धूमकेतु का नाश कर दिया था और उसी दिन से आज तक धूमकेतु की राह जोहते हुए इस गुफा में मैंने दो सहस्र वर्ष व्यतीत कर दिए हैं। धूमकेतु किसी न किसी समय फिर पृथ्वीतल पर जन्म लेगा और तब फिर आकर मुझ से मिलेगा।

इस गुफा के नीचे जीवनाग्नि रात दिन सुलग रही है। और जो कोई एक बार उस अग्नि में स्नान करता है, वह अश्वगन्धा के समान अमर हो जाता है।

इन सब बातों पर मुझे दूसरी अवस्था में कदापि विश्वास न होता, परन्तु जब मुझे अपने मित्र धनपति राय के पत्र का स्मरण हुआ तो सब घटना ठीक ही जान पड़ने लगी। मैं आश्चर्य से स्तम्भित और भय प्राप्त होकर रानी से विदा हुआ। आते समय उसे रञ्जन की कथा कहना नहीं भूला; मैंने कहा "महारानी, आपकी क्षमता असीम है, मेरा साथी बहुत बीमार है, आप औषधि देकर उसकी प्राण रक्षा कीजिए।"

रानी ने चौंककर कहा, "क्या यह तुम्हारा पुत्र है?"

मैंने उत्तर दिया "नहीं, उसका पिता मेरा परम मित्र था।"

रानी ने कहा कि "अच्छा आज संध्या के समय मैं उसे देखने जाउंगी।"

मैं रञ्जन की कोठरी में लौट आया। नीरा उसकी ऐसी सेवा कर रही थी, मानो अपने पति के लिये अपना प्राण तक निछावर करने को वह तैयार है। परन्तु रञ्जन का स्वरूप देखकर मुझे बड़ा भय हुआ। मैंने उसके शरीर पर हाथ रक्खा तो जान पड़ा मानो अग्निशिखा निकल रही थी; वह अचेत पड़ा था, पीड़ा उसकी बहुत कठिन जान पड़ी। अब इसमें कुछ सन्देह न रहा कि उसका जीवन सङ्कट में पड़ा है। मेरे दोनों नेत्रों से आंसू के प्रवाह निकलने लगे। मुझे रोते देख नीरा ने बड़ी व्याकुलता से पूछा "क्या ये अब अच्छे नहीं होंगे?"

मैं क्या करूं; उसका मुख देख कर मेरा हृदय फटने लगा। मैंने कहा "अच्छे क्यों नहीं होंगे। नीरा, कोई डर नहीं है।"

सन्ध्या होते होते रञ्जन के प्राण की आशा मैंने बिलकुल छोड़ दी। मैंने समझ लिया कि उसके मरण का समय आ पहुंचा। उसका चेहरा फीका पड़ गया था, सांस बहुत धीरे धीरे चल रही थी, आंखें खुली हुई थीं। नेत्रों की पुतलियां नक्षत्रों के समान चमक और चक्र के समान घूम रही थीं। मृत्यु के पूर्ववर्त्ती सब लक्षण एक एक करके आ पहुंचे। हाय, इस दूर देश में क्या मैं उसे इस जङ्गल में विसर्ज्जन करने के लिये इतना कष्ट उठाकर अपने देश से आया था?

और अश्वगन्धा! अश्वगन्धा कहां गई? क्या वह मृत शरीर में प्राण लौटाने को समर्थ है? क्या सब यत्न, सब उद्यम, सब चेष्टा विफल हो जायगी? नीरा उन्मादिनी के समान कभी रञ्जन के हृदय से लपट जाती, कभी उसका मुख चूमती और कभी मेरे पैरों को पकड़ आर्त्त स्वर से पूछती "आप इनकी प्राण रक्षा कीजिए। ये बोलते क्यों नहीं हैं?" मैं क्या कह सकता था। उसके साथ साथ मैं भी बड़ा विकल होने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे समय अकस्मात् कोठरी में उजाला भर गया। हम लोग सब चौंक पड़े, देखा कि महारानी खड़ी हैं। वह टकटकी बांधकर रञ्जन को देख रही थी, मानो आंखों में पलक ही नहीं थे,—सारा शरीर उसका निष्पन्द, मानो केश से पदाङ्गुलि तक सब पत्थर हो गया था। मैं उस समय रञ्जन की दशा देखकर उन्मत्त हो गया था, बोल उठा, "रानी, यदि इसके प्राण बचा लेने की सामर्थ्य आपमें हो तो इसकी रक्षा कीजिए, और देर मत कीजिए। क्या आप नहीं देखती हैं कि यह मरने ही पर है।"

मेरी बात सुनकर मानो उसे चैतन्य हुआ। चौंककर बोली "विदेशी! तुमने मेरा सर्वनाश कर डाला। तुमने ये संवाद मुझे पहिले क्यों नहीं दिया था? हाय, हाय, जिसकी बाट देखते देखते मुझे दो सहस्र वर्ष बीत गए, उसे पाकर भी मैं खो बैठी हूं"। फिर वह रञ्जन के पास बैठ कर कातरता से बोलने लगी, "धूमकेतु, प्यारे धूमकेतु, तुम्हारी अश्वगन्धा तुम्हें पुकार रही है, नेत्र खोल कर देखो।"

मैंने सोचा यह स्त्री निश्चय पागल हो गई है। नहीं तो मृतप्राय रञ्जन को धूमकेतु कहकर नहीं पुकारती। मैं भूल गया कि वह वहां की रानी है। जोर से उसका हाथ पकड़ कर मैंने उसे एक झटका दिया और कहा "आप नहीं देखती हैं कि यह युवा मर रहा है। यदि यही सचमुच आपका धूमकेतु है तो इसके प्राण बचालेने की चेष्टा कीजिए। नहीं तो झूठमूठ रोकर सारा भुमण्डल वहा देने से भी धूमकेतु नहीं लौटेगा"।

मेरी बातों से मानो उसका ज्ञानोदय हुआ। वह चौंक कर बोली, 'तुम ठीक कहते हो। क्या मैं पागल हो गई।" यों कह कर उसने अपने बस्त्रों में से एक छोटा सा पात्र निकाला और उसमें जो औषधि थी उसे रञ्जन के मुख में डाल दिया। औषधि से क्या फल हो हम लोग सांस रोककर बड़ी व्यग्रता से देखते रहे। अश्वगन्धा भी बड़ी व्यग्रता से रञ्जन के मुख को देखती रही। देखिए क्या होता है? क्या रञ्जन औषधि के गुण से मृत्युमुख से बच जायगा? क्या इस औषधि से उसे कुछ उपकार पहुंचेगा?

पांच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट इसी भांति शंका में बीत गए। तब जान पड़ा कि उसके मुख पर फिर धीरे धीरे शान्ति विराजित होने का उपक्रम हो रहा है। धीरे धीरे मुख का फीकापन घटने लगा, फिर थोड़ी देर पीछे सांस ज्यों का त्यों चलने लगा। हम लोगों ने जान लिया कि रञ्जन को निद्रा आ गई।

अश्वगन्धा ने तब मेरी ओर लौटकर कहा "अब और कोई डर नहीं है। मेरा धूमकेतु कल दोपहर तक अच्छा हो जायगा"।

मैंने कहा "महारानी, आपके इस अनुग्रह को मैं जीवनभर नहीं भूलूंगा"। इतने में अश्वगन्धा की दृष्टि नीरा पर पड़ी। उसे देख और चौंक कर बोली यह कौन है? मैं क्या कहूं कुछ कह न सका, चुप हो रहा। नीरा भी डर के मारे कुछ न बोल सकी। तब रानी ने उसे हाथ से द्वार दिखा कर कहा "जाओ"।

नीरा मेरे पास हट कर बैठी, परन्तु गृह को त्याग कर नहीं गई। आज तक रानी की आज्ञा पालन न करने का साहस किसीने नहीं किया था, इस कारण बालिका के इस कार्य्य से अश्वगन्धा के नेत्रों से अग्निशिखा निकलने लगी। उसने फिर हाथ उठाकर कहा "जाओ"।

अब नीरा बोल उठी "मैं नहीं जाऊंगी। अपने पति को त्याग कर मैं कभी न जाऊंगी। अरी निठुर रानी! मैं जानती हूं, तू अभी मेरे प्राण ले लेगी। मैं उससे नहीं डरती, परन्तु चाहे जो हो जाय, मैं अपने पति को छोड़ कर कभी नहीं जाऊंगी। मेरा प्रेम उसपर नहीं छूटने का; तुम चाहो तो अभी मुझे मार डालो।"

अश्वगन्धा के शरीर से बिजली छूटने लगी। वह धीरे धीरे नीरा के पास आकर खड़ी हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी अद्भुत दशा जगत में कभी किसीने नहीं देखी है और न उसके वर्णन की उपयोगी भाषा ही आजतक उत्पन्न हुई है।

फिर ज्वाला धीरे धीरे हट गई। अश्वगन्धा ने लौट कर रञ्जन का हाथ पकड़ कर कहा। "क्यों प्यारे, अब तुम्हें और कोई भय है?"

परन्तु यह क्या हुआ? क्या हमलोग स्वप्न देख रहे थे वा जाग्रत थे? हमारे देखते देखते अश्वगन्धा में एक बड़ा परिवर्तन होने लगा। उसका अपरूप रूप पल भर में लुप्त हो गया—उसके वह केश, वह रङ्ग, वह शोभा, सब देखते देखते कहां चली गई, हम लोग अवाक् स्तम्भित खड़े रहे।

अश्वगन्धा ने भी अपनी दशा जान ली; कहने लगी—"प्यारे, यह क्या हुआ! मुझे आंखों से और सुझाई क्यों नहीं पड़ता, मेरे शरीर का बल क्यों दूर हुआ जाता है?"

हम दोनों नीरव खड़े रहे, जाना कि दो सहस्र वर्ष के बुढ़ापे ने आकर उसे घेर लिया है, और उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

अश्वगन्धा देखते देखते डोकरी बुढ़िया हो गई, और थरथराते हुए भूमि पर गिर पड़ी। तब वह बड़ी कातरता से रञ्जन से बोलने लगी—"धूमकेतु! प्रियतम! मुझे मत भूलना। मैं फिर वैसी ही सुन्दरी हो जाऊंगी, फिर तुमसे प्रेम करूंगी"।

उसके मुख से और बोली नहीं निकली। हमने देखा कि वह परलोक को सिधारी। जिस अग्नि ने उसे अमर किया था उसीने उसका नाश कर डाला।

हमलोग कब तक चुपचाप खड़े रहे, ठीक नहीं कह सकते। परन्तु जब फिर बोलने की सामर्थ्य हमलोगों को हुई, तब मैंने कहा "रञ्जन, अब क्या करोगे?"

रञ्जन—"यहां से भागने की चेष्टा करनी चाहिए।"

मैं—"एक बार अग्निपरीक्षा करने से कुछ हानि है? सुना तो कि अश्वगन्धा फिर आवेगी"।

रञ्जन—"वह मेरे लिये दो सहस्र वर्ष लों ठहरी रही सो ठीक है, परन्तु मैं उसके लिये बैठ रहना नहीं चाहता। अब यहां से भाग चलने की राह देखिए"।

अस्तु, ज्यों त्यों कर हमलोग उस कन्दरा से बाहर भाग आए और बूढ़े दलपति की सहायता से प्राण बचा कर, जङ्गलियों के हाथ से बचते हुए समुद्रतीर पर आ अहुंचे। कई दिनों तक आपत्तियां झेलकर एक जहाज़ मिला। वस्त्र हिला हिला कर जहाज़ के यात्रियों से अपना मनोरथ ज्ञात किया, और जब उन्होंने एक नाव भेज दी तो हमारे प्राण बचे। यह जहाज आस्ट्रेलिया की ओर जा रहा था। आगे हमारी कथा आपलोगों को सुनने की रुचि हो तो फिर किसी समय निवेदन करेंगे।*

फोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

दूसरा प्रकार

प्लेट को जल में भिगा दो १ आउन्स जल में २० ग्रेन आयोडाइड अफ पोटासियम में पुनः प्लेट को १० मिनिट तक भिगा दो।

यदि बहुत पुराना सिलवर का दाग हो तो और भी देरी तक भिगाओ और एक आउन्स जल मे ½ ड्राम साइनाइड अफ पोटासियम मिला कर उस प्लेट को डुबा दो और धीरे धीरे रुई से उसे छुड़ाओ। यदि दाग पुराना हो तो उसी अरक में और भी थोड़ा साइनाइड मिला कर थोड़ी देरी तक प्लेट उसमें रख कर जलसे धो कर सुखा लो।

* यह कहानी हैगर्ड साहब रचित एक अंग्रेज़ी उपन्यास के आशय पर लिखी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुंधले प्लेट को साफ़ करना।

जो प्लेट धुंधला हो गया हो, तो निम्नलिखित अरक में ५ मिनिट तक प्लेट को भिगा कर पीछे साफ करके जल से धो लो।

क्रोमिक एसिड	... ...	३० ग्रेन
ब्रोमाइड पोटासियम	...	६० ग्रेन
जल	... ...	१० आउन्स

ड्राइ प्लेट का एक दूसरा डेवलपर

इससे भी आलोकचित्र बहुत सुन्दर स्फुटित होता है।

१ नं०	क्रोमिक एसिड ...	५ ग्रेन
	जल	४ आउन्स
२ नं०	एमोनिया	१ ड्राम
	जल	९ ड्राम

एक नम्बर का ४ आउन्स और दो नम्बर के अरक की ३० बूंद मिलाकर प्लेट धोओ, किन्तु एमोनियां की तीस बूंद पहिले न डाल कर क्रमशः तीस बूंद तक मिलाओ। पहिले १० बूंद मिला कर कार्य्य प्रारम्भ करो। यह अरक बनाया हुआ बहुत दिनों तक काम देने योग्य रहता है।

धातु के पत्रादिकों पर चित्र उतारना।

उज्वल धातु के पत्रादि पर चित्र उतारने के पहिले उसकी उज्वलता नष्ट करनी होगी; ऐसा न करने से कहीं तो एक दम सफेद हो जायगा, और कोई स्थान अत्यन्त काला रह जायगा। इस लिये उसपर निम्न लिखित द्रव्य लगा देना बहुत आवश्यकीय है। ह्वाइटलेड, तारपीन तैल, एक में मिला कर उसमें सूखी स्याही मिला कर पीछे जापान का गोल्ड साइज़ मिला कर लगा दो। थोड़ी ही देर में यह सूख जायगा। जब अच्छी तरह सूख जाय तब चित्र उतार कर पुनः तारपीन का तेल लगा लो और पुनः पोंछ कर साफ़ कर लो।

छपे हुए चित्र को कार्ड में चिपकाने के लिये अरक।

इस अरक से चित्र खराब न होगा, वरन अत्यन्त सुन्दर होगा, पर कठिनता के साथ चिपक सकेगा।

जेलेटिन्	... ...	४ आउन्स
जल	... ...	१६ आउन्स
ग्लिसरिन	... ...	१ आउन्स
मिथिलेटेड स्पिरिट एलकोहल	...	५ आउन्स

पहिले जेलेटिन को जल में मिला कर पीछे ग्लिसरिन को मिलाओ और सबके पीछे स्पिरिट को मिला दो।

आलोकचित्रण के शिल्पांश सम्बन्ध के विषय में मोटे मोटे अथवा आवश्यकीय सम्पूर्ण विषय-लिखे गए हैं, और थोड़े आवश्यक ज्ञातव्य विषय आगे परिशिष्ट में लिखे जाते हैं, जिससे आशा है, कि जो शिक्षार्थी इसपर ध्यान देकर कार्य करेगा, वह यथासम्भव कभी धोखा न खायगा।

परिशिष्ट।

१—आलोकचित्रण अथवा फोटग्राफ़ी के सभी काम धीरता से करने चाहिये।

२—पहिले सुन्दर और स्वच्छ "नेगेटिव" के उतारने की चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि यही काम सबसे कठिन है, और प्रिण्ट इत्यादि कार्य्य इससे सुगम हैं। यदि यह किसी व्यवसायी फोटोग्राफर से प्रथम करा लिया जाय तो कोई हानि नहीं है।

३—फोटो उतारने के पहिले लैन्स को साबर से पोछ कर तथा क्यामरा के अन्दर के गरदे को झाड़ कर तब कार्य्य आरम्भ करना उचित है।

४—प्लेट से भरी हुई स्लाइड सदा कपड़े में लपेट कर रखनी चाहिये।

५—खराब नेगेटिव से अच्छे प्रिण्ट होने की आशा रखनी वृथा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर द्वार की ओर संकेत कर उसने कहा "फिर कहती हूं कि चली जा"। नीरा को इतना साहस नहीं हुआ कि रानी की ओर देखे, परन्तु बड़े धीरज से उसने कहा, "आप मुझे मार डालिए, जीते जी मैं अपने पति का साथ नहीं छोड़ूंगी।"

अश्वगन्धा ने नीरा के मस्तक पर अपना हाथ रक्खा। मुझे जान पड़ा मानो अकस्मात् आकाश से बिजली ने उतर कर नीरा के सिर को छू लिया—दूसरे ही क्षण में कुम्हलाए हुए पुष्प की भांति नीरा भूमि पर गिर पड़ी। उसके मुख और नेत्र देखकर मैंने जाना कि वह इस लोक को छोड़ कर कहीं और चली गई।

इस डाकिनी व्यापार को देखकर मेरा तालू सूख गया, हृदय की आहट बन्द हो गई, सारा शरीर काठ हो गया। सहसा अश्वगन्धा ने मेरी ओर देख कर कहा "जो मेरे अवाध्य होते हैं उन्हें मैं ऐसाही दण्ड देती हूं। धूमकेतु मेरा है। दूसरी जो कोई उसपर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करेगी, वही मेरे कोप में भस्मीभूत होवेगी। विदेशी! तुमने देखा?"

मैं कुछ उत्तर न दे सका। तब उसने कहा "धूमकेतु का यहां रहना अच्छा नहीं। मैं उसे अभी अपने प्रासाद में लिए जाती हूं"। यों कह कर उसने अपने हाथों से ताली बजाई, देखते देखते चार पांच नौकर वहां आ पहुंचे। अश्वगन्धा ने उनसे कहा "इन्हें हमारे वहां ले चलो"। फिर मुझसे बोली "तुम कभी कभी मुझसे मिला करो"।

नौकर हाथों हाथ रञ्जन को उठा कर ले गए, अश्वगन्धा भी साथ साथ चली गई; मैंने नहीं समझा कि मैं सोता हूं वा जागता, यह सब सच मुच हो रहा है वा मैं स्वप्न देखता हूं। अकस्मात् मेरी दृष्टि नीरा की मृतदेह पर पड़ी—मैं घबरा कर बड़े वेग से बाहर चला गया।

रञ्जन की नींद दूसरे दिन टूटी। आश्चर्य औषधि के आश्चर्य गुण से उसके शरीर में अब कुछ दुःख नहीं था। उठते ही उसने नीरा को बुलाया, पर नीरा तो था नहीं।

नीरा के बदले अश्वगन्धा ने पास आकर कहा "आर्यपुत्र! नीरा कौन है? मैं ही आपकी दासी हूं। देखिए, आपके लिये दो सहस्र वर्ष लें आशा लगाकर बैठी हूं। जो इच्छा हो, आज्ञा कीजिए, दासी अपने प्राण तक देकर तुम्हारी आज्ञा पालन करेगी"।

रञ्जन उसकी कथा सुनकर घबराने लगा और चारो ओर देखने लगा। उसने सोचा वह स्त्री निश्चय पागल है। परन्तु अश्वगन्धा के अपरूप रूप ने उसके हृदय को मोह लिया। तब उसने धीरे धीरे कहा "मैं आपको नहीं पहिचानता हूं, नीरा नाम की एक बालिका ने मेरी बहुत सेवा की है वह कहां गई?"

अश्वगन्धा ने उत्तर दिया "मैंने उसे मारडाला है"।

रञ्जन ने इस संवाद के सुनते ही जेब से पिस्तौल निकाल कर कहा "तू डाइन है, मैं तुझे मार ही डालूंगा"। अश्वगन्धा ने तुरन्त अपनी ओढ़नी उतार कर फेंक दी—उसकी सुन्दरता को देख कर कौन नहीं मोहित होता। रञ्जन के हाथ से पिस्तौल गिर पड़ी, वह मन्त्रमुग्ध की भांति उसकी रूपराशि को देखने लगा—अपने जीवन भर में ऐसी रूपवती को पहिले उसने और नहीं देखा था।

उसका भाव देखकर अश्वगन्धा मृदु मधुर हँसने लगी और बोली, "प्रियतम! धूमकेतु! तुम किसे मारोगे? मैं तो तुम्हारी ही अश्वगन्धा हूं"।

रञ्जन अश्वगन्धा के रूप के सामने, नीरा, जगत संसार, सब कुछ भूल गया। अश्वगन्धा के प्रेम समुद्र में वह डूब गया।

* * *

धनपति राय जो कुछ लिख गए थे, सब दे लिया। अब "जीवनाग्नि" देखनी रह गई। जि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात को सोचकर हम पागल का पागलपन समझते थे, आज उसे अपनी आंखों से देख लिया। इस भांति सुख चैन से एक सप्ताह बीत गया। एक दिन अश्वगन्धा ने रञ्जन से कहा "धूमकेतु, मैं तो अमर हूं, परन्तु तुम्हारा मानवी शरीर नाशमान क्षणभंगुर है। कौन जाने फिर किसी दिन तुम्हें खो बैठूंगी। आओ, तुम भी मेरे साथ अमर हो जाओ"।

रञ्जन ने पूछा "कैसे अमर हो सकता हूं?"

अश्वगन्धा ने कहा "उसका उपाय मैं बता दूंगी। इसी स्थान के नीचे भूगर्भ में 'जीवनाग्नि' जल रही है, उसी अग्नि में स्नान करने से मनुष्य अमर हो जाते हैं। मैं रञ्जन की ओर देखने लगा; रञ्जन मेरी ओर देखने लगा। तब मेरे मित्र की कथा प्रलापवाक्य नहीं थी—वह सब सत्य है!

हमलोगों को निरुत्तर देख अश्वगन्धा बोली "प्रियतम! तो क्या तुम मेरी बात को स्वीकार नहीं करते हो?"

रञ्जन ने कहा "प्यारी, तुम्हें छोड़ क्या मैं जी सकता हूं? प्राण रहते मैं तुम्हें नहीं त्याग सकता। हां, मैं इस अग्नि में तुम्हारे लिये कूदूंगा"।

मैंने कहा "मुझे इस अग्नि में स्नान करने की इच्छा नहीं है, परन्तु आज्ञा हो तो आप लोगों के साथ इस अत्याश्चर्य अग्नि को मैं भी देखूं"।

अश्वगन्धा ने मेरी बात मान ली। उसी रात्रि को अग्नि दर्शन की बात ठहर गई।

कुछ रात बीते हमलोग तीनों जन अन्धेरी गुफा के भीतर जाने लगे। उस पथ का वर्णन आवश्यक नहीं है, क्योंकि उस भयानक स्थान का वर्णन हो ही नहीं सकता। अन्त में हमलोग एक ठौर पर पहुंचे। अश्वगन्धा ने कहा "यहीं, इसी ठौर पर ठहर जाओ, अग्नि का दर्शन हो जायगा।"

हमलोग चुपचाप वहां खड़े रहे। थोड़ी देर पीछे एक अद्भुत शब्द सुनाई पड़ा और हमने देखा कि एक बड़ा भारी आग का गोला लुढ़कता लुढ़कता आ रहा है। वह धीरे धीरे हमलोगों के पास आया—और पास आया—फिर बिलकुल सामने ही आ पहुंचा। उसके उज्वल तेज से चारो ओर प्रकाशित हो गया। उसके सारे पिंड से सैकड़ों बिजली की शिखाएं लपलपाने लगीं। डर से मेरा हृदय कांपने लगा। परन्तु देखते देखते अग्नि भी लोप हो गई। अश्वगन्धा बोली "अभी फिर आवेगी। प्रियतम तैयार हो जाओ।"

रञ्जन चुपके से खड़ा था। सच तो यों है कि वह भी भयभीत हो गया था। अश्वगन्धा बोली "क्या तुम डर रहे हो?"

रञ्जन ने कहा "प्यारी, मिथ्या कहने से कुछ लाभ नहीं। मुझे सच मुच थोड़ा सा भय हो रहा है। कौन कह सकता है कि मैं इस अग्नि में भस्मीभूत नहीं हो जाऊंगा? अस्तु, तौभी मैं इसमें कूद पड़ूंगा। मैं कापुरुष नहीं हूं"।

अश्वगन्धा—"तुम्हारे भय पाने में अचरज की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारा भय छुड़ा दूंगी। पहिले मैंही इस अग्नि में स्नान करूंगी, तब तुम निडर होकर इसमें प्रवेश कर सकोगे"।

फिर वह शब्द सुन पड़ने लगा। धीरे धीरे वह फिर हमारे समीप आया। फिर वह अग्निमण्डल देख पड़ा, वह फिर हमारे समीप आ गया। तब अश्वगन्धा अपने सब वस्त्र उतार कर सम्पूर्ण नग्नावस्था में अग्नि की मार्ग में जा खड़ी हुई। आहा, उसकी वह शोभा, वह रूप, वह सुन्दरता वर्णनातीत है। जगत में ऐसी मनोहरता न कभी हुई है न होगी। सृष्टिकर्त्ता, तेरी रचना की बलिहारी है!

धीरे धीरे अग्नि उसके समीप आई। तब अश्वगन्धा ने उसे अपने दोनों हाथों से आलिङ्गन किया, फिर उसमें घुस कर डुबकियां मारने लगी। दोनों चिल्लुओं में अग्नि लेले कर अपने सिर पर ढालने लगी, कभी थोड़ा सा मुख में भर कर कुल्ला करने और कभी दूर फेंकने लगी, उसके उन्नत पयोधरों पर अग्नि लुढ़कने लगी, ऐसी सुन्दरता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—चित्र उतारने के समय अपने आदर्श दार्थ के समस्त अंश के फ़ोकस करने का उद्योग रना चाहिये। यदि सम्पूर्ण अंश के फ़ोकस करने असमर्थ हो, वा किसी कारण विशेष से सम्पूर्ण ान का फ़ोकस ठीक न होता हो, तो आदर्श दार्थ के प्रधान प्रधान अंश का उत्तमत्ता के साथ ोकस करना उचित है। अर्थात् मनुष्य के चित्र आंख का, बहुत से लोगों के सम्मिलित चित्र में नुष्यों का और नैसर्गिक चित्र (Landscape) में ामने के पदार्थ (Foreground subject) का ोकस करके तब कैमरे को स्क्रू से अच्छी तरह स देना चाहिये।

७—परिस्फोटन (Develope) करने के पहिले ा सब कार्य्य समाप्त हो जाने के पीछे सब डिश र ग्लास को अच्छी तरह धो डालना उचित है।

८—डेवेलप इत्यादि कार्य्य के लिये उत्तम और शुद्ध अरक व्यवहार करना अच्छा है। साधारण रण के लिये सस्ता द्रव्य लेकर और व्यवहार करने सदा खराब काम होंगे, और लाभ के बदले उलटी नि सहनी पड़ेगी। प्रत्येक अरक के व्यवहार ने के लिये अलग अलग डिश, बोतल और ोप व्यवहार करने चाहिये। सम्पूर्ण द्रव्यों पर म्बर और नाम का लेबिल लगा रखना सर्वोत्तम ।

९—बदली वा पानी बरसते में नैसर्गिक चित्र तारने का कभी उद्योग न करो।

१०—प्लेट और प्रिण्ट से हाइपो अच्छी तरह ो लेना चाहिये। ऐसा न करने से नेगेटिव का फ़िल्म नष्ट हो और चटक जाता है और इसका ण्ट बहुत जल्दी उड़ जाता है।

११—चित्र उतारने के समय लेन्स में सूर्य्य ी किरण प्रविष्ट न हो, इसका अधिक ध्यान खना चाहिये।

१२—जब कभी तुम्हें बाहर काम करने के ये जाना पड़े, तब अपने सम्पूर्ण आवश्यकीय द्रव्यों को देख कर मिला लो। यह द्रव्य वहां मिल जायगा यह ध्यान करके किसी द्रव्य के लेजाने में आलस न करना चाहिये। और सबसे पहिले कैमरा, लेन्स, कैमरा कसने वाला स्क्रू, डार्कस्लाइड, ग्राउण्ड ग्लास, और क्याप कभी नहीं छोड़ने चाहियें।

१३—डिश, प्रिण्ट और नेगेटिव को अच्छी तरह धोना लाभकारी है। यहां यह कहना बुरा न होगा कि उपर्युक्त वस्तु को सदा स्वयं अपने हाथहो से अच्छी तरह धोना चाहिये।

१४—जल्दी और सुन्दर चित्र उतारने के लिये स्वच्छता अर्थात् सफाई का अभ्यास करो, जैसे कैमरा और लैन्स का साफ करना, डार्क रूम का दरवाज़ा और खिड़की को साफ़ रखना, अरकों का स्वच्छ रखना; और अपने लिये निर्मल वायु का सेवन तथा मस्तिष्क को ठीक रखना।

१५—फोटोग्राफ़र और कैमरे का अत्यन्त गरम स्थान में वा अत्यन्त शीतलस्थान में रहना अच्छा नहीं है। अपने कैमरे और केमिकल्स (अरक) को गरमियों में ठंढी जगह और जाड़े की ऋतु में गरम स्थान में रखना लाभकारक होगा और आपभी गरमी में शीतल और शीत के समय गरम स्थान में रहना उतम है।

१६—निर्मल वायु स्वास्थ्य का मूल है। तुम्हारे डार्करूम के द्वार का किवाड़ा खोल कर निर्मल वायु आने का उपाय (Ventilation) वेन्टीलेशन द्वारा सदा करना चाहिये, तुम्हारा कमरा और डार्कटेण्ट में भी निर्मल वायु का आना बहुत आवश्यक है।

१७—फोटोग्राफ़िक जर्नल को पढ़ कर आवश्यकीय स्थानों में चिन्ह (Mark) करना परमावश्यक है, किन्तु सबकी परीक्षा करने का उद्योग न करना चाहिये, क्योंकि सब विषय तुम्हारे हाथ से नहीं अच्छे होंगे। इसका कारण यह है कि सब ठिकाने का जल वायु एक सा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८—पहिले एक विषय में अभ्यास कर लेने पर तब और और विषयों की परीक्षा वा उनका अभ्यास करने से लाभ हो सकता है।

१९—केवल अनुमान पर निर्भर करके कभी आलोक चित्रण के अरकों को मिलाना न चाहिये। सब वस्तु को परिमाण के साथ मिलाना उचित और उपयोगी है।

२०—किसी कार्य्य के विफलमनोरथ होने पर किसी विज्ञ फोटोग्राफ़र से परामर्श ग्रहण करना चाहिये।

२१—जहां कल का जल न मिलता हो, वहां जल को गरम करके फिल्टर कर लो और पीछे ठंढा होने पर कार्य्य में लाओ*।

समाप्त

बालक-विनोद

ईश्वर की महिमा।

१

हे हे महाप्रभु! महा-महिमा तुम्हारी
जिव्हा नहीं कह सुना सकती हमारी।
सौ वर्ष भी यदि सदा तव कीर्त्ति गावै,
तौ भी कभी न उसके वह पार जावै॥

२

पृथ्वी, समुद्र, सर, पेड़, पहाड़ सारे
हैं सत्य सत्य जगदीश! दिए तुम्हारे।
हे नाथ! आप यदि सूर्य हमें न देते,
पक्षी, मनुष्य, पशु, जीव न एक जीते॥

३

जो ये अनेक फल हैं हमको दिखाते,
खाते नहीं हम कभी जिनको अघाते।
जो फूल नेत्र-सुखदायक ये खिले हैं;
सो भी सभी तव कृपाकण से मिले हैं।

४

देते न जो तुम हमें अनमोल आँख,
पाते उन्हें न, करते यदि यत्न लाख।
हे दीनबन्धु! गुणसिन्धु! पवित्रनाम!
हे नाथ! हे अति कृपालु! तुम्हें प्रणाम॥

५

जो जो छिपाय हम काम बुरे करैं हैं;
जानै न और, इससे मन में डरैं हैं।
सो सो सदा तुम उसी क्षण जान लेते;
तत्काल दण्ड हमको जगदीश! देते॥

६

जो झूठ बात हम, हे प्रभु! बोलते हैं,
अच्छे बुरे विषय में मुंह खोलते हैं।
सो भी कभी न तुमसे छिपती छिपाए;
होते अनेक हमसे अपराध आए॥

७

हे हे दयालु! इससे कर जोड़ते हैं;
सारी कुचालु अब से हम छोड़ते हैं।
जो भूल चूक परमेश्वर! हो हमारी,
कीजै क्षमा; शरण में हम हैं तुम्हारी॥

साहित्य समालोचना

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(६) "चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी"—इस विषय में पर्य्यालोचक जी कहते हैं "इस समस्या की पूर्त्ति में हमें कोई दोष नहीं दिखाई देता, न जाने किस आधार पर समालोचकों ने इसका उपहास किया है। क्या यह पूर्त्ति उससे भी बुरी है जिसमें 'पूरो अमी की कटोरियासी' इन शब्दों का व्यवहार किसी कवि ने किया है?"

* स्थानाभाव से फोटोग्राफ़ी के समाप्त होने में बहुत विलम्ब हो गया। परन्तु बहुत से महाशय, सरस्वती की पुरानी प्रतियां अब और न मिलने के कारण, इस प्रबन्ध के सब लेख नहीं पा सके हैं और इसलिये हमें बार बार पत्र लिखते हैं। उनके और दूसरे लोगों के लाभार्थ फोटोग्राफ़ी पुस्तकाकार छप रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) वस्तुतः इसकी पूर्त्ति में कोई विशेष दोष नहीं है, पर हमने इसका उपहास क्या किया ? हमने तो इतनाही लिखा है कि इसपर "इन (पाठकजी) की पूर्त्ति देख पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का स्मरण आता है"। तो इसमें उपहास की कौन सी बात हुई ? इसका आशय इतनाही हो सकता है कि उक्त मिश्र जी की पूर्त्ति पाठक जी की पूर्त्ति से श्रेष्ठतर है और इसकी सत्यता के कदाचित् पाठक जी तक भी विरोधी न होंगे। दोनों महाशयों की पूर्त्तियां हमने समालोचना में उद्धृत करही दी हैं, अतः उनके भावों में जो अन्तर है उसे दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, यदि आप पाठक जी की प्रत्येक रचना को हिन्दी के सभी मृत और जीवित कवियों की रचनाओं के उत्तमोत्तम भागों से भी श्रेष्ठतर मानते हों तो उसकी बातही और है।

(ख) हमने यह कहीं नहीं लिखा है कि पाठक जी की यह अथवा कोई अन्य पूर्त्ति या रचना त्रैलोक्य के शेष समस्त कविताओं से निकृष्ट है, और कटोरिया वाले कवित्त का हमने नाम तक नहीं लिया, वरन हमने तो मनोविनोद के भाग २ व ३ की आपेक्षक न्यूनता बतलाते समय तक स्पष्ट रीति पर लिख दिया कि आधुनिक "मध्यम श्रेणी वाले कवियों की उपहासजनक कविता को म. वि. के इन दोनों भागों से भी किसी अंश में समता" नहीं की जा सकती है। तब पर्यालोचक जी ने यह निष्कर्ष कहां से निकाल लिया कि हम "पूरी अमी की कटोरिया" वाली पूर्त्ति से पाठक जी की पूर्त्ति को निकृष्टतर मानते हैं। यदि उपर्युक्त पूर्त्ति से हमारे पाठक जी की पूर्त्ति अच्छी भी मान ली जाय तो क्या इससे उसको उत्तम पूर्त्तियों की श्रेणी में स्थान मिल गया ? और यदि "किसी" की कविता को कहिए तो आल्हा, विरहा, और कबीर, इत्यादि की भी रचना किसी न किसी व्यक्ति ने की ही है, पर "पूरी अमी की कटोरिया" वाली पुर्त्ति ऐसी निकृष्ट कदापि नहीं जैसी आप उसे समझते हैं और न वह "किसी" अज्ञात तुक जोड़ने वाले की रची ही हुई है। उसके रचयिता सुप्रसिद्ध साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त जी व्यास थे और इसी पूर्त्ति पर प्रसन्न हो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने व्यास जी को सुकवि की उपाधि दी थी। आप उसे चाहे जैसी समझें !

(७) "बच्चा" और "भीय" शब्द—हमारी समझ में "जगत है सच्चा तनिक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद" पद में "बच्चा" शब्द यदि गाली न भी माना जाय तो "असाधु और अविनीत" अवश्य है। यह पद यातो प्रतिवादी या पाठक के प्रति कहा गया है। प्रथम अवस्था में वह गालि प्रदान ही माना जायगा, क्योंकि अपने प्रतिवादी को बच्चा कहने का यही आशय हो सकता है कि "अभी लड़के हो, इन बातों को समझो" और द्वितीय स्थिति में वह शब्द या तो गालीद्योतक है या असाधु और अविनीत। किसी लेखक को अपने पाठकों के प्रति ऐसा कहने का कदापि अधिकार नहीं कि "तुम तो अभी छोकड़े हो, इन बातों के समझने का प्रयत्न करो"। आप अपना "वात्सल्य भाव" अपने लड़के बाले और शिष्यों ही पर प्रगट करने के अधिकारी हैं, न कि अपने प्रतिवादी या पाठकगणों के प्रति। ऐसी अवस्था में हमने यदि "बच्चा" शब्द गालीद्योतक बतलाया तो क्या दोष किया ? तब पर्यालोचक जी का हमारे ऊपर यह तीव्र आक्षेप कि "यह एक अपूर्व विज्ञता और और मर्मज्ञता की बात आप के श्रीमुख से प्रगट हुई है" हम नहीं कह सकते कि कहां तक उचित है। हम तो किसी व्यक्ति को इस प्रकार मूर्ख बनाना उचित नहीं समझते, परन्तु आप कदाचित इसीको सभ्यता और सुलेखकता की मुख्य सामग्री मानते हों।

"भीय" शब्द के विषय में हम आपसे झगड़ा नहीं कर सकते, क्योंकि आप श्री वृन्दावन के निकटवर्ती डहरे परन्तु वृन्दावनवासी स्वयम् श्री राधाचरण जी गोस्वामी हमें लिखते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भीय" व्रज भाषा का कोई स्वतन्त्र शब्द नहीं है, वह "भीः" शब्द का अपभ्रंश हो सकता है अतः इसको हम "भय" का उपर्युक्त गोस्वामी जी "भीः" का और आप "भियो" का अपभ्रंश बतलाते हैं, तो इससे यह सिद्ध हुआ कि यह शब्द अपभ्रंश अवश्य है। सुतरां हमारा पूर्व कथन तौभी पुष्ट रहा, क्योंकि अनुप्रास के अर्थ पाठक जी ने किसी न किसी शब्द के स्थान पर 'भीय' लिख कर अवश्य अपनी कविता को च्युत संस्कृत दूषण से विभूषित किया।

(८) "पाठक जी के विषय में कतिपय अनुमान"—समालोचकगण बहुधा जिस कवि की रचना पर आलोचना करते हैं उसके विषय में न्यूनाधिक अनुमान अवश्य करते हैं। देखिए न, बाबू राधाकृष्ण दास जी और बंगवासी ने बिहारी लाल जी के विषय में कितने अनुमान किए हैं। परन्तु इन अनुमानों को कोई व्यक्ति पूर्णतया खण्डित नहीं कर सकता, क्योंकि वह महाकवि और उससे विशेषतः परिचित महाशय तक अभाग्यवश आज विद्यमान नहीं हैं। किन्तु हमने पाठक जी के विषय में कतिपय अनुमान इस कारण लड़ाए कि देखें शुद्ध अनुमान करने की हमारी कहां तक योग्यता है, क्योंकि हम जानते ही थे कि (पाठक जी के एक वर्तमान कवि होने के कारण) हमारे अशुद्ध अटकलों का या तो वेही, या उनसे विशेष परिचित कोई अन्य महाशय, खण्डन अवश्य करेंगे। तो ऐसी स्थिति में हम पर्यालोचक जी की इस आज्ञा का (कि हमें इन विषयों पर पाठक जी से पूछ कर लिखना उचित था) पालन कैसे कर सकते थे? आपकी समझ में हमने "कई एक निर्मूल बातें प्रकाश की हैं," पर आप ही के लेख से हमारे अनुमानों का कई अंशों में समर्थन होता है।

(क) हमने पाठक जी के बदरिकाश्रम जाने का अनुमान किया था, पर वास्तव में वहां तो वह नहीं गए थे, किन्तु "हिमालय पर आठ नौ वर्ष निवास कर चुके हैं," क्या हमने यह नहीं लिखा है कि हिमालय पर के कतिपय दृश्य इन्होंने "ऐसी रीति से लिखे हैं कि जिससे ज्ञात होता है ये केवल चित्तही की उपज नहीं हैं"। हमारा इतना अनुमान तो आपही के कथनानुसार शब्द प्रति शब्द शुद्ध है। फिर हमारा बदरिकाश्रम वाले अनुमान का भी मुख्य प्रयोजन यही था कि "ये महाशय हिमालय को पधारे थे"। हमने समझा कि हमारे पाठक जी ब्राह्मण हैं, यदि हिमालय पर गए होंगे तो श्री बदरिकाश्रम को भी अवश्य गए होंगे। अब आप ही न्याय कीजिए, हमारा अनुमान कितनी सत्य निकला।

(ख) पाठक जी के ग्रन्थों में छन्दों के नाम न लिखे रहने का हमने तीन में से कोई एक कारण होना बतलाया है—(१) छन्दों के नामों में आचार्यों का एक मत न होना; (२) पाठक जी का नवीन प्रकार के छन्द निर्माण करना; (३) छन्दों का नाम ही न जानना (और इस तीसरे अनुमान का प्रमाण हमें मनोविनोद के प्रकाशक के "वक्तव्य" से मिला कि "पद्य रचना में रुचि पाठक जी को सदा स्वाभाविक रही है, परन्तु सीखने का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया")* हमको यह भी सन्देह उपस्थित हुआ था कि संस्कृत और भाषा के बड़े बड़े कवियों की भांति सम्भव है कि हमारे पाठक जी ने भी इस वक्तव्य में ऊपरी दिखाव की नम्रता मात्र की हो, इसी कारण हमने उपर्युक्त तृतीय कारण में डरते डरते यह लिख दिया। यदि हमको इस बात का निश्चय होता तो यह निश्चयात्मक शब्दों में लिख देते, क्योंकि हमतो राग द्वेष छोड़ सत्य समालोचना करने बैठेथे। परन्तु आपके कथन से हमको अब यह ज्ञात होता है कि हमारे उस वक्तव्य का केवल दिखाव मात्र होनेवाला अनुमान भी यथार्थ था।

* यह हमारे अनुमान का दृढ़ आधार अवश्य जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) विधवा विवाह के विषय में तो हम निडर होकर कहेंगे कि अपने पद्यों की ध्वनि से पाठक जी उसके पक्षपाती निस्सन्देह जान पड़ते हैं और सम्भव है कि वे प्रथम इसकी ओर रहे हों, पर अब उनके विचारों में कुछ परिवर्तन हो गया हो। नहीं तो "पहिले तुम बालक ब्याह रीति को तोड़हु। पीछे विधवातिय कष्ट हरन मन जोड़हु" के द्वितीय पद का और क्या अर्थ हो सकता है? विधवाओं के दुःख सूचक अन्य पद्यों के विषय में तो आप यह कह कर बात बना लेंगे कि पाठक जी उनमें बाल विवाह ही की कुरीति पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि यदि बालविवाह की रीति प्रचलित न होती तो उन विधवाओं को सम्भवतः यह वेदना न झेलनी पड़ती पर इस स्थान पर आप क्या कह सकते हैं? यदि आप कहिए कि उनको रङ्गीन वस्त्र, आभूषण आदि न पहिराने और उनके अधिक व्रतों के रखवाने के विषय में यह पद्य रचा गया है, तो आपका मुख चिढ़ाना मात्र होगा; क्योंकि ये ऐसे कष्ट नहीं हैं कि जिनके विषय में कुरीति संशोधक ऐसी पुकार करें, वरन् एक प्रकार से तो यह उपयोगी रीतें हैं। फिर इस बात से पाठक जी की कुछ निन्दा भी हमने नहीं की। हम स्वयम् इस कुरीति के विरोधी हैं। आपने कदाचित् हमारी समालोचना में दोषों की संख्या वृद्धि के हेतु यह भी लिख दिया हो।

(९) "समालोचना की भाषा" जिसे पर्य्यालोचक जी "असाधु" और "अविनीत"—भाषा कहते हैं उसके विषय में हम ऊपर अपना कथन प्रकाशित कर चुके हैं। अब केवल "आक्षेपास्पद" "अशुद्ध" और "अव्यवहृत" भाषा पर जो आपको हमारी समालोचना में दृष्टिगोचर होती है, कुछ कहना शेष है।

प्रथमतः हमारी समालोचना में "अनेक शिक्षा और लाभदायक संकेत" बतलाने पर हम आपको धन्यवाद देते हैं। हमारी समालोचना के विषय में जो बातें आप आक्षेपास्पद बतलाते हैं, उनका भी उत्तर हम ऊपर दे आए हैं। यह बात तो कदाचित् अधिकांश हिन्दीरसिक मानते हैं कि द्वितीय भाग प्रथम की अपेक्षा बहुत न्यून है, क्योंकि उसमें "बालविधवा और" और "गोपिका गीत" को छोड़ कर शेष वर्णन प्रथम भाग के वर्णनों में अधिकांश की छाया तक नहीं छू पाते। और तृतीय भाग पर तो परमेश्वर की कृपाही है। उसमें सिवाय "इवाञ्जलाइन" और "प्रेम पियाला" के भला आपही कहिए कि कौन सा वर्णन रोचक है? विशेष दोष हमने इस कारण नहीं दिखलाए कि हम किसी सज्जन के परिश्रम की विशेष निन्दा करना अनुचित और ऐसे निन्दक को ईश्वर के प्रचण्ड कोप का भागी समझते हैं।

यदि दोष दिखाने को कहिए तो क्या आपको स्मरण नहीं है कि कुलपति मिश्र ने कहा है कि "ऐसो कवित न जगत में जामैं दूषण नाहिं"?

लीजिए, हम आपके कहने से विवश होकर पाठक जी कृत "भ्रमराष्टक" की गौरव स्वरूप एक ऐसी सवैया में आपको दूषण दिखलाते हैं, जिसको हमीने बड़े मान के साथ सबसे प्रथम उद्धृत किया था यथा—

"ए अलि श्यामता तो मैं घनो छवि सों
कटिपै पट पीत विराजै।
बाल लता बनवारी नई तिनके
ढिग तू छिन पै छिन भ्राजै॥
प्यारी सी गुञ्ज सों कुञ्जन मैं
बनवारी की बांसुरी को धुनि लाजै।
श्याम भये वृजवारिन कौ द्रुम
नारिन माहिं तू श्याम सो राजै॥"

इसके तुकान्त 'विराजै' 'भ्राजै' समसरि, विषमसरि, और कष्टसरि तीनों को उल्लंघन कर के असंयोग मिलित पर जा ठहरे। ऐसे तुकान्त काव्यप्रणाली में निन्द्य गिने जाते हैं। प्रथम और तृतीय पदों में 'कटि' व 'गुञ्ज' शब्द के प्रथम 'तेरी' शब्द अपनी ओर से मिलाना पड़ता है। फिर 'गुञ्ज' का अर्थ तो घुंघची है भ्रमर के गुञ्जार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ में इसका प्रयोग करने से असमर्थ दोष लगता है। द्वितीय चरण में वाल शब्द के अर्थ यदि युवती के लें तो भ्रमर का तो लताओं में भ्राजित होना कहा है, परञ्च कान्ह और युवतियों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि 'भ्राजै' शब्द का कर्ता केवल 'तू' है, लता में पुष्पों का तो वर्णन हुआ ही नहीं है, फिर मलिन्द की वहां क्या आवश्यकता थी? यदि 'वाल' के अर्थ नवीन के लीजिये तो अर्थ पुनरुक्ति होती है। 'भ्राजै' शब्द श्रुतिकटु है। छिन पै छिन प्रापही के मतानुसार अव्यवहृत है। चतुर्थ चरण में तारतम्य बिगड़ता है। उसमें यह कहा है "श्याम ब्रज की युवतियों के लिये हुए" और "तू लता रूपी युवतियों में श्याम की भांति विराजमान है"। तारतम्य तो यही मांगता है कि "तू द्रुम की युवतियों के लिये हुआ"। तृतीय चरण में पहिले भ्रमर का वर्णन हुआ है फिर श्याम का, परन्तु चतुर्थ चरण में इसका उलटा हो गया है। फिर इस छन्द में अतत्प्रकर्षता दोष भी विराजमान है, क्योंकि तृतीय चरण में तो भ्रमर श्याम से बढ़ गया है, परन्तु चतुर्थ में फिर गिर कर उनके समान ही रह गया। अलङ्कार का भी पूर्णरूप से निर्वाह नहीं हुआ है। सम्पूर्ण सवैया में समतद्रूप प्रधान है। किन्तु तृतीय चरण में अधिक तद्रूप हो गया है; और इसमें वाचक रहने के कारण रूपक भी नहीं हो सकता। अब स्थूलरूपेण 'विकटोरिया रानी' वाली समस्या के भी एक आध दोष लीजिए, जिसमें पर्यालोचक जो कहते हैं कि कोई दोष नहीं है। सरस्वती के ५६५ वें पृष्ठ पर देखिए। प्रजा शब्द स्त्रीलिङ्ग अवश्य है, परन्तु 'प्रजागन' नहीं, क्योंकि इसके अर्थ प्रजान के गन हैं, अर्थात् इसमें षष्ठीतत्पुरुष समास है। अतः यह शब्द पुल्लिङ्ग है। अतएव इसके विशेषण 'फूली' और 'आनँदसानी' स्त्रीलिङ्ग लिखना रचयिता की भूल है। फिर स्त्रीलिङ्ग को भी नहीं निभा सके, क्योंकि द्वितीय चरण में 'प्रतीति भरे' विशेषण पुल्लिङ्ग रक्खा है। चतुर्थ चरण में प्रजाओं के प्रकार में भी श्रीमती का पवित्र नाम आ ही गया है, फिर नाम उच्चारण करना क्यों लिखा? यह उच्चारण निष्प्रयोजन है।

ये समस्त दोष इन कवित्तों में वर्तमान अवश्य हैं, परञ्च सहृदय समालोचकों का यह धर्म नहीं है कि "जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी—सो जानै जनु आयु खुटानी"। उनको उचित है कि समालोचना लिखते समय यह भी सोच लें कि इन रचनाओं के करने में बिचारे कवि ने कितना परिश्रम किया होगा; और उनकी विशेष निन्दा करने में उसके चित्त पर कितनी चोट लगेगी। इसीसे हमारा मत है कि बिना स्वयं कवि हुए कोई व्यक्ति सच्चा सहृदय समालोचक नहीं हो सकता। उपर्युक्त प्रकार के दोष दिखाने से हम समालोचक को कवि का शत्रु समझेंगे। फिर जब उत्तम कवित्तों में इतने दोष दिखा सकते हैं, तो क्या हम "कीकर पतान में" इत्यादि समस्याओं की पूर्तियों में दोष नहीं बतला सकेंगे? परन्तु नहीं, हमने उनके विषय में मौन धारण ही श्रेष्ठ समझा। हमने भाषा के उत्तमोत्तम शत नवीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना लिखने का निश्चय किया है और उन आलोचक ग्रन्थों के आधार पर "हिन्दी का जन्म और गौरव" या किसी अन्य ऐसे ही नाम की पुस्तक निर्माण करने का भी विचार है। इसमें हिन्दी में उसके जन्म से अद्यावधि क्या क्या उन्नति तथा अवनति हुई है, और उसके स्वरूप में क्या क्या हेर फेर हुआ है, इनका वर्णन किया चाहते हैं। यह कार्य बिना बहुतायत से समालोचना सम्बन्धी ग्रन्थ प्रस्तुत होने के और किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसी हेतु हमने समालोचना करने का प्रारम्भ किया है और जब शङ्कर की कृपा से एक सौ उत्तमोत्तम कवियों की समालोचना हो जायगी, तब उक्त ग्रन्थ के बनाने का प्रयत्न करेंगे। [इस अपने अभिप्राय को हमने विस्तार पूर्वक वर्णन इस कारण किया कि कदाचित् कोई सुलेखक हमारे इस विचार को उत्तम समझ कृपा करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समालोचनाओं द्वारा हमारी सहायता करे, अथवा स्वयं उस ग्रन्थ के निर्माण करने का प्रयत्न करे।] हमने पण्डित श्रीधर पाठक जी को उन शत महाकवियों में समझा है. इस कारण से भी हमने इनके दोषों का बड़े बिस्तार से वर्णन करना अयोग्य जाना, नहीं तो दोष दिखाना भला क्या बड़ी बात थी। यदि कतिपय विद्वज्जन हमारी सहायता करेंगे तो हम भी अपने अभीष्टसाधन (उक्त ग्रन्थ के निर्माण) में बहुत शीघ्र सफलमनोरथ होंगे, नहीं तो कई वर्ष इस कार्य में लगना सम्भव है; किम्बहुना।

(१०) "अन्य लेखकों के उपकारार्थ" जो पर्य्यालोचक महाशय ने हमारी समालोचना की भाषा में त्रुटियां दिखलाई हैं, उनके विषय में हमें केवल यही वक्तव्य है कि आप अव्यवहृत किस पदार्थ को कहते हैं? क्या आंखों पर पट्टी बांध कर पुराने ढर्रे पर चले जाने के सिवाय कोई मनुष्य कोई नई वस्तु नहीं लिख सकता? क्या श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने भुंइ, फुटै, बाड, माहुर, गनी, गाई, अवड़ेरि, खटांहि, दुइ भीतर, जिनिसि, सुवर, सयाने (युवापुरुषों के अर्थ में), जहिया, तहिया, चौपट, झंगुलिया, हलरावैं, जानवी, अनइस, वाट परै, कठौता, देवा, लेवा, कतहुं, ठाहर, ठाढ़, साउज, मुठभेरो, वेहड़, चिढ़ै, थन, डोरियाये, वारहबाट, ढरके, खम्भारू, पनही, गुदरत, गांड़र, नेवाजा, नेहू, अकसर, डावर, निरावहिं, उबरिहसि, ठकुर सोहाती, डहरुआ, नहरुआ, मां (माता के अर्थ में), इत्यादि इत्यादि शब्दों का प्रयोग नहीं किया है? और क्या तब से अद्यावधि समस्त लेखक सोते थे और उनको अन्य लेखकों के सुधार का इतना विचार न था? वरन दास जी ने उन्हीं महाशय के अनेक प्रकार के शब्दों के व्यवहार करने के कारण यहां तक कहा है कि—

"तुलसी गङ्ग दुवौ भये सुकबिन के सरदार।
इनकी काव्यन में मिली भाषा विविधि प्रकार॥"

यदि आप कृपया रत्नाकर जी कृत हम्मीरहठ की भूमिका देखिए तो आप "कवि जी" शब्द को अव्यवहृत न पाइएगा। हां, यदि आप उनके ऊपर हमारे समान दयादृष्टि नहीं रखते थे, तो लेखकों के हितार्थ आपको उनकी भूल भी सुधारनी आवश्यकीय था। भाषा का यह सहज स्वरूपही है कि उसमें अनेक प्रकार की बोलियां होती हैं। जब श्री गोस्वामी जी ने इतने शब्द लिखे और वे अणुमात्र पातक के भागी न हुए, तो हम दोही एक शब्दों में इस घोर कोपसागर में क्यों निमग्न हुए जाते हैं। आप तो यहां तक जांय कि यदि तुलसीदास जी ने श्रुतिकटु और छन्दोभङ्ग तक किया हो तो आप भी कर सकते हैं, और हमको इतनी अनुग्रह पाने का भी सौभाग्य नहीं प्राप्त है?

"विद्याओं के अनुवाद" के यदि आप ठीक अर्थ लगाते तो कदाचित् यह पद आपको अशुद्ध न जंचता। क्या 'संस्कृत विद्या की पुस्तकें उत्तम हैं' यह वाक्य आपको अशुद्ध जान पड़ता है? फिर 'भाषा के अनुवाद' अर्थात् 'भाषा में अन्य भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद', यह वाक्य आपको कैसे अशुद्ध जान पड़ा? सम्भवतः आपने 'अन्य विद्याओं' से उन विद्याओं का अर्थ समझा जिनकी पुस्तकों का अनुवाद किसी दूसरी भाषा में हो। परन्तु वास्तविक अर्थ इसका उन विद्याओं का है जिनकी पुस्तकों में अन्य विद्याओं की पुस्तकों का अनुवाद होता है। सूक्ष्म में अनुवाद शब्द का अर्थ अनुवादक पुस्तकों का है, आप कृपया उस स्थल पर हमारा लेख फिर पढ़िए। "ही", "भी", "अति" "अत्यन्त" आदि तो ऐसे शब्द हैं कि इनका व्यवहार करना प्रायः लेखक की इच्छा पर निर्भर है। इनसे कोई विशेष अर्थ का साधन तो होता ही नहीं, हां इन किसी शब्द पर ज़ोर (Emphasis) देने के निमित्त प्रयोग किए जाते हैं। सम्भव है कि हमने किसी स्थान पर इन शब्दों द्वारा ज़ोर देना योग्य समझा हो और आप उसे अनुचित मानते हों। जब तक आप किसी स्थानविशेष पर इनका अनुचित प्रयोग न बतलाइएगा, तब तक हम अपने लेखों में आप की इस अनुमति पर अनुगमन नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हां, दो एक स्थानों पर हमारे लेखों में कर्तृवाच्य (Active voice) और कर्म वाच्य (Passive voice) का अशुद्ध फेर अवश्य पड़ गया है, जिन पर आपका ध्यान भी न गया और जिनको हम अवश्य अशुद्ध मानते हैं। परन्तु ऐसी अशुद्धियां तभी हो जाती हैं जब लेखक अपने लेखों को एक ही बार दुहरा कर प्रेस को भेज देते हैं। और यों तो अनेक अशुद्धियां भा० मि० के १७ दिसम्बर वाले तथा आप के "साहित्य-समालोचना" लेखों में भी हो गई हैं। किन्तु इन तुच्छ बातों पर हम विचार ही नहीं करते। आपने "सरस्वती" में तो छापे की अशुद्धियां बतला दीं, परन्तु भला अपने इस छोटे से लेख ही में आपने सात सात पंक्तियां क्यों अशुद्ध कह कर काटीं? क्या यह अशुद्धियां नहीं हैं? अलमिति विस्तरेण। अन्त में हम पर्य्यालोचक महाशय को अपनी समालोचना को "निस्सन्देह साधारणतः एक अच्छी समालोचना का उदाहरण" बतलाने पर धन्यवाद देकर लेख को समाप्त करते हैं॥

मिश्रबन्धु

जापान के सम्राट और सम्राज्ञी

इस मास की संख्या में जापान के वर्त्तमान राजा और रानी का चित्र प्रकाशित हुआ है। मुत्सुहितो इस शताब्दी के विख्यात सम्राटों में गिने जाते हैं। इनका जन्म ३ नवम्बर, १८५२, में हुआ था। यह जैसे ही विशालबुद्धि, सम्पन्न, सर्वप्रिय और गम्भीर राजनीतिज्ञ हैं, वैसी ही उदार, सुशील और विदुषी स्त्री से इनका विवाह हुआ है। इनके १ पुत्र और ५ कन्याएं हैं। वर्त्तमान समय में जापान की जो उन्नति की है उसके अन्य कारणों के अतिरिक्त ऐसे शासक का होना भी एक महान कारण और इस देश के लिये बड़े ही सौभाग्य की बात थी।

चीन देश के नाम से भारतवासी भली भांति परिचित हैं। जापानी भी धर्म में, रीति व्यवहार में चीननिवासियों के सदृश हैं, परन्तु जापान को एशिया का इङ्गलैण्ड कहते हैं। स्वतंत्रता के प्रादुर्भाव में, कला कौशल की उन्नति में, पुरानी कुरीतियों के संशोधन में जापान आजकल एक आदर्श समझा जाता है। इसी जापान ने ४ वर्ष व्यतीत हुए चीन को परास्त किया था और अपनी राजनैतिक कीर्ति सारे संसार में फैलाई थी। हमें आशा है कि ऐसे देश का संक्षिप्त वृत्तान्त न केवल लाभदायक ही वरञ्च रोचक भी होगा। हम इस छोटे निबन्ध में जापानदेश की उन्नति के सम्बन्ध में कुछ कहेंगे।

जापानदेश में पूर्वकाल से दो राजा चले आते थे। एक "शोगन" और दूसरे "मिकाडो" कहलाते थे। इन दोनों में सदैव खटपट रहा करती थी। ये परस्पर में एक दूसरे की आज्ञा का विरोध किया करते थे। मिकाडो घर से बाहर नहीं निकलते थे। इनकी स्त्रियों और मंत्री के अतिरिक्त और कोई इनका मुख भी नहीं देख सकता था। यदि किसीको कभी इनसे मिलने की आज्ञा भी मिलती तो राजा परदे के अन्दर रहते। सन् १८५६ ई० में शोगम ने योरोपीयन जातियों को जापान से व्यापार करने की आज्ञा दी, परन्तु मिकाडो ने इसका बड़ा विरोध किया। पर योरोपियन लोगों को ज्योंही एक वेर आज्ञा मिली फिर वह कब टलनेवाले थे। परिणाम यह हुआ कि स्वयं मिकाडो योरोपियन लोगों से कुछ समागम बढ़ाने लगे। इसी समय कुछ जापानी युवकों ने योरोप की यात्रा की और वहां की राज्य-प्रणाली देखकर उनकी आंखें खुलीं। उन्होंने अपने देश में आते ही आन्दोलन मचाया कि जापान में दो शासक रहने की कोई आवश्यकता नहीं। इस नवीन दल का इतना प्रभाव फैला कि शोगन पद सदैव के लिये तोड़ दिया गया। इसी समय मिकाडो का देहान्त हुआ और उनका पुत्र गद्दी पर बैठा। इस समय जो मन्त्री नियत हुआ वह भी नवीन विचारों से सहानुभूति रखता था। इसका नाम ओक्यूबो था। इसने राजा को सलाह दी की राजा का परदे में रहना राज्य की वृद्धि के उपयोगी नहीं और उनसे परदे के बाहर आने की प्रार्थना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सात शताब्दी बीत गईं और हे महाराज! हमारे सम्राट तब से परदे में रहते आए हैं। भूमि पर कभी पैर नहीं रखा। संसार में क्या हो रहा है इसका समाचार महाराज के पवित्र कानों तक नहीं पहुंचता, इसलिये आज से इस झूठी मर्य्यादा को भुला दीजिए"। राजा की अवस्था इस समय केवल १८ वर्ष की थी। उन्होंने मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार किया, परन्तु उनके बाहर आते ही नवीनत्व के विरोधियों ने जिनकी संख्या अनगिनत थी, विद्रोह खड़ा कर दिया। तीन दिन तक घोर युद्ध होता रहा, अन्त में मिकाडो की जय हुई। इतिहासप्रेमियों पर विदित है कि जर्मनी में जब बिस्मार्क मन्त्री नियत किए गए थे, तो प्रत्येक ज़मीन्दार अपनी ज़मीन का पूर्ण अधिकारी था और राजा को उसके अधिकार में हस्तक्षेप करने का नियम न था। परन्तु बिस्मार्क ने अपने जीते जी जर्मनी को एक राजा की ज़मीन्दारी बना दिया। उसी प्रकार जापान में भी इस समय प्रत्येक ज़मीन्दार अपने को राजा समझता था। योरप से आए हुए नवयुवक लोगों ने इसको तोड़ने का यत्न किया और उसमें वे कृतकार्य हुए। सन १८७१ ई० में सब ज़मीन्दार और धनाढ्य लोग टोकियो में, जो जापान की राजधानी है, मिले और अपना अपना सिर राजा के आगे झुकाया। उसी वर्ष डाकखाने और टकसाल खोले गए, तार जारी की गई और दूसरे वर्ष रेल चलाई गई। सीतला से बचने के लिये टीका लगाया जाने लगा सन् १८७५ में भिन्न प्रान्तों के राज्याधिकारियों की सभा की गई, जिसमें वे लोग अपने अपने प्रान्तों की उन्नति पर विचार करने लगे। फिर प्रान्तिक सभाएं स्थापित हुईं और उनमें सर्वसाधारण की सम्मति प्रतिनिधि सभ्यों द्वारा ली जाने लगी। सन् १८७४ में योरप के ढंग पर धनाढ्य लोग लार्ड बनाए गए जिसमें धनाढ्यों की सभा सर्वसाधारण की सभा से पृथक स्थापित की जाय। सन् १८८५ में पुरानी कौंसिल, मन्त्री का पद इत्यादि तोड़ दिए गए और कैबिनेट अर्थात राज्य मन्त्रियों की एक सभा स्थापित हुई और बड़े पदों पर विद्वान लोग नियत किए गए। ८००० अनावश्यक पदों को तोड़ कर बहुतसा व्यर्थ व्यय बचालिया गया। सन् १८८९ में न्यायालय खोले गए और न्याय करने के लिये जज नियत हुए। अन्य धर्मावलम्बियों को दुःख देने, और लोगों को स्वतन्त्रता के साथ बोलने और लिखने की रुकावट भी दूर करने की आज्ञा दी गई और सन् १९०० ई० में पार्लेमेण्ट अर्थात् मुख्य राजसभा स्थापित हुई और इसके द्वारा देश का प्रबन्ध होने लगा। ये सब संशोधन और उन्नति इतनी शीघ्र हुई कि इस परिवर्तन को लोग "भूकम्प" कहते हैं। जैसे विलायत की राज्यसभा में दादा भाई और भौनगरी ऐसे अन्यधर्मावलम्बी भी सभासद हो सकते हैं, उसी प्रकार जापान की राज्यसभा में ईसाई सभासद भी हैं। सेना का प्रबन्ध योरोपियन ढङ्ग का है। प्रत्येक जापानी को लड़ने जाना आवश्यक है। जो इससे बचना चाहे २७० डालर दे। जो पूर्ण रूप से युद्ध विद्या में निपुण हो जाता है वह "जातीय सभा" का सभासद कहलाता है, जो किसी विशेष कार्य पड़ने पर एकत्रित की जाती है।

जापान में बालक की शिक्षा जब वह ६ वर्ष, ६ मास और ६ दिन का होता है, आरम्भ होती है। प्राचीन प्रणाली की शिक्षा अब उठा दी गई। अब आधुनिक रीति के स्कूल और कालेज खुल गए हैं। शिक्षा में एक बहुमान्य प्रणाली किण्डरगार्टन कहलाती है। इसके द्वारा बालकों को आनन्द विनोद में सब आवश्यक शिक्षा मिल जाती है। जैसे ५ गेंद लिए और उन पर क्रम से ५ वर्णाक्षर लिख दिए। अब उन गेंदों को भूमि पर लुड़का कर बालक से किसी अक्षर-विशेष का गेंद लाने को कहा। ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती है इसमें उत्तरोत्तर कठिनाइयां डालते जाते हैं। हमारे मित्र पण्डित महावीरप्रसाद जी ने सरस्वती की गत २ संख्याओं में इसी प्रकार की पद्य रचना की हैं। जिन पाठ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शालाओं में इस प्रकार की शिक्षा होती है। उनमें बहुधा स्त्रियां पढ़ाया करती हैं। यह प्रणाली जापान में भी उन्नति पर है। जापान में शिक्षा Compulsory अर्थात आवश्यक है। यदि कोई बालक उचित वयस होने पर पाठशाला में न जाय तो उसके माता पिता दण्ड के भोगी होते हैं। स्कूल छोड़ने पर कालेज में पढ़ना पड़ता है। यदि एक बेर जापान के टोकियो युनिवर्सीटी का वार्षिक विवरण (Calendar) पढ़िए तो विदित होगा कि जापान में कालेज के विद्यार्थियों को कैसी मनोहर और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है। कोई विषय नहीं जिसके अध्यापक न हों। एम-ए तक पढ़ने के पीछे यदि इच्छा और योग्यता हो तो किसी एक विषय पर दत्तचित हो अनुसन्धान कीजिए, उसके हेतु वृत्ति (Post Graduate Studies) स्थापित हैं। जापान में भूकम्प बहुत आते हैं और इनसे हानि भी बहुत होती है, इसलिये वहां एक (Seismological observatory) है अर्थात् एक ऐसा मानमन्दिर है कि जिसमें भूकम्प आनेके चिन्ह पूर्वही प्रगट होने लगते हैं। ऐसे मन्दिरों द्वारा भूकम्प के उपद्रव कुछ अंश में कम हो चले हैं। इस विषय पर भी कालेज में शिक्षा होती है। जैसे भारतवर्ष में शिक्षाविभाग के प्रान्तिक उच्च पदाधिकारी डाईरेक्टर होते हैं उस प्रकार जापान का प्रबन्ध नहीं है। वहां एक minister of state for education अर्थात् समस्त जापान के शिक्षा-विभाग का एक उच्च पदाधिकारी है। भारतवर्ष में भी हमारे वर्त्तमान बड़े-लाट लार्ड कर्जन महोदय इसी प्रकार का एक पद स्थापित करने का विचार कर रहे हैं। मिनिस्टर महाशय की गतवर्ष की रिपोर्ट से प्रतीत हुआ है कि आजकल शिक्षा के लिये २० लाख रुपया बचत के कोष Reserved fund में है। ८४६५६०२ रु० (अङ्गरेज़ी सिक्का) अर्थात् ४२३२८०१ येन (जापानी सिक्का) जापान की सरकार शिक्षा के सहायतार्थ देती है। बहरे गूंगों के स्कूलों में ९,९९५ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। कला कौशल की शिक्षा में सरकार ६७२०० रु० वार्षिक देती है। इसी प्रकार व्यापार की शिक्षा, कृषीविद्या, नाविक (nautical) विषयक शिक्षा में सरकार रुपया देती रहती है। परन्तु जापानी लोग केवल सरकारी सहायता ही से इस ओर उन्नति नहीं कर रहे हैं। व्यापारियों की कम्पनियां, इञ्जिनियर, डाक्टर लोग अपने नाम पर वृत्ति स्थापित करते हैं। वृद्ध धनाढ्य लोग वसीयतद्वारा लाखों रुपया शिक्षा की उन्नति के निमित्त देते हैं। कतिपय कन्या महाविद्यालय लोग अपने ही चन्दे और प्रबन्ध से चला रहे हैं। सरकार की ओर से एक प्रकार की वृत्ति विदेश में जाकर शिक्षा पाने का ऐसी उत्तम है कि उसका अनुकरण इस देश में बड़ा उपयोगी होगा। यदि कोई बालक अपने कालेज में असाधारण योग्यता दिखलावे तो उसको इस अभिसन्धि पर मासिक कुछ द्रव्य दिया जाता है कि जब वह संसार में स्थिति पाकर द्रव्य उपार्जन करने लगे तो उतना ही मासिक सरकार द्वारा वह किसी दूसरे बालक को शिक्षा लाभ के हेतु देता रहे और जितना धन उसको सरकार की ओर से मिला था, उस पर ब्याज सरकार में जमा करदे। संस्कृत से जापान निवासियों को बड़ा अनुराग है। भाषा तत्वज्ञान (Philology) में संस्कृत पढ़ना आवश्यक रखा है। जापान में जब शिक्षा आरम्भ हुई थी तो विदेशी लोग पढ़ाया करते थे। परन्तु अब फ्रेंच, अङ्गरेजी और जर्मनी भाषा पढ़ानेवाले अध्यापक भी जापानी हैं।

इस समय कई एक हिन्दू बालक जापान में शिक्षा पा रहे हैं। बम्बई प्रान्त में मृत रानाडे के प्रबन्ध से हिन्दू बालकों को जापान भेजने के हेतु एक वृत्ति स्थापित हुई थी। पञ्जाब में भी दो एक वृत्तियां ऐसी हैं और कई एक उत्साही पञ्जाबी युवाजन इस समय जापान में शिक्षा पा रहे हैं और भारतवर्ष की वर्त्तमान दशा पर व्याख्यान दे कर उन्होंने जापानियों की सहानुभूति प्राप्त की है और बहुत सा चन्दा जमा करके भारतवर्ष में भेजा है। एक बङ्गाली महाशय जो जापान से शिक्षा पाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आए हैं। यहां पेन्सिल का कारख़ाना खोलनेवाले हैं। जापान गवर्नमेंट ने इन्हीं भारतवर्षीय विद्यार्थियों के अनुरोध से हिन्दू विद्यार्थियों की फ़ीस, छात्रालय का व्यय इत्यादि न्यून कर दिया है। यहां लों कि यदि वे जापानी जहाज़ पर पहिले से पत्र व्यवहार करके जापान जायं तो उनका किराया भी आधा लगता है।

प्रिय पाठकवृन्द एक बेर जापानी सम्राट् मुत्सुहितो के (चित्र में) पुनः दर्शन कर लो। यही महाशय प्रथम परदे से निकाले गए थे और जितनी उन्नति जापान ने की है, वह सब इन्हींके समय में और इन्हींके कारण हुई है। आजकल इनके वर्त्तमान मन्त्री M. Ito. (एम् इटो) इन्हींकी आज्ञा से सारे योरोप में राजनैतिक अभिप्राय से परिभ्रमण कर रहे हैं। हे परमेश्वर! हमारे भारतवर्षीय राजा महाराजाओं के चित्त में भी देशहितैषिता का प्रादुर्भाव हो और वे जापानी सम्राट के चरित्र से शिक्षालाभ करें।

फ़तहपुर सिक्री

[पूर्व प्रकाशितान्तर]

ऊपर जिस पंजमहल का वर्णन हो चुका है, उसके ठीक उत्तर की ओर एक बड़ा सा चौक है जिसके किनारे पर अस्पताल था। पंजमहल के दक्खिन की ओर मरियम बेगम के रहने के महल हैं जो अब "सुनहरे मकान" के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये बीबी मरियम कौन थीं इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। कई एक इतिहासकारों ने लिखा है कि यह पुर्तगाल की रहनेवाली एक कृस्तान स्त्री थी; परन्तु अकबर के समय के लिखे हुए इतिहासों में इसका वर्णन कहीं भी नहीं मिलता। आईन अकबरी में जहां अकबर की स्त्रियों की नामावली दी है, वहां किसी कृस्तानी स्त्री का वर्णन नहीं है। आईन अकबरी में अकबर की निम्नलिखित सात स्त्रियों का नाम मिलता है—

(१) सुलताना रुक़िया बेगम (मिर्ज़ा हिंदाल की लड़की)। यह ८४ वर्ष की होकर मरी। इसको कोई सन्तति नहीं हुई थी पर इसने शाहजहां को अपने हाथों पाला और खिलाया था।

(२) सुलताना सलीमा बेगम। यह बाबर की बेटी गुलरुख़ बेगम की लड़की थी। पहिले सलीमा बेगम का विवाह बैरमख़ां से हुआ था। पर उसकी मृत्युके पीछे अकबर ने उससे स्वयं विवाह कर लिया। यह कविता अच्छी करती थी और उसने अपना नाम "मख़फ़ी" रक्खा था। औरङ्गज़ेब की लड़की ज़ेबुन्निसा ने भी अपना यही नाम रक्खा था।

(३) आमेर के राजा बिहारीमल की कन्या और राजा भगवानदास की बहिन। अकबर ने इसे सांभर में व्याहा था। इसे मरियमुज़्ज़मानी की उपाधि थी।

(४) अबदुल बासी की सुन्दरी स्त्री।

(५) बीबी दौलत शाह।

(६) अब्दुल ख़ां की कन्या।

(७) मीरां मुबारक शाह की कन्या।

अब यदि मरियमज़ज़मानी [illegible] ही मरियम मान लेते हैं तो अकबर की और कोई हिन्दू बेगम नहीं थी कि जिसके लिये "जोधाबाई" के नाम से प्रसिद्ध महल बनवाया जाता। टाड अपने राजस्थान में लिखता है कि अकबर का विवाह जोधपुर के राजा की कन्या से हुआ था और जहांगीर का आमेर के राजा की कन्या से। इस अवस्था में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु विशेष प्रमाणों के न मिलने पर आईन अकबरी की ही बात सत्य माननी पड़ेगी। मरियम नाम की अकबर की कोई पत्नी अवश्य थी। पर वह हिन्दू थी या नहीं, यह समझ में नहीं आता। अस्तु, जो कुछ हो, जो स्थान इस समय मरियम के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें कई कोठरियां हैं। इन सबमें रंगाई का काम बहुत ही किया हुआ था। हम पहिले लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हैं कि अकबर को तसवीरों का बड़ा शौक़ था। अब तक यह बात प्रसिद्ध है कि इस भवन में शाहनामे के चित्र खींचे हुए थे, परन्तु अब वे यहां तक नष्ट भ्रष्ट से हो गए हैं कि उनमें कोई बात बाक़ी नहीं रह गई है। ऊपर के खन में छत और धरनें तक रंग से भरी हुई हैं। बीच बीच में फ़ैज़ी की बनाई हुई शेरें भी लिखी हुई थीं। इन सब बातों पर ध्यान देकर यही निश्चय होता है कि यह महल सलीमा बेगम का था। इसके साथ में बगीचा, स्नानगृह आदि भी बना हुआ है।

इस भवन के ठीक पश्चिम की ओर जोधाबाई का भवन है। ऊपर हम कह चुके हैं कि आईन अकबरी के अनुसार अकबर ने अपना विवाह आमेर के राजघराने से किया था। परन्तु और प्रमाणों के देखने पर यह बात सत्य नहीं जान पड़ती। कर्नल टाड का इतिहास इसके विरुद्ध कहता है। रुक़ेयात आलमगीरी में अकबर की हिन्दू स्त्री का नाम जोधाबाई प्रसिद्ध है जो जोधपुर के राजघराने की थी। दन्तकथाएं भी इसीके पक्ष में कहती हैं। इससे सम्भव यह जान पड़ता है कि अकबर के लड़के सलीम का विवाह आमेर में हुआ हो और उसने स्वयं अपना विवाह जोधपुर में किया हो। इस समय राजपुताने के वंश, जिन्होंने अकबर से नाता जोड़ा था, यह कहते हैं कि उन्होंने राजकन्याओं के डोले नहीं दिए थे, वरन् अकबर को प्रसन्न रखने के लिये और साथही अपने वंश की पवित्रता को रक्षित रखने के लिये, उन्होंने लौंड़ियों को राजकन्याएं कहकर उनके डोले दिए थे। इन बातों में कहां तक सत्यता है यह नहीं कहा जा सकता, परन्तु यदि लौंडिएं दी गई हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। अस्तु, जोधाबाई का राजप्रासाद फ़तहपुर सिक्री के सब भवनों से बड़ा है। इसके समान दूसरा भवन कोई नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि जोधाबाई का अकबर के यहां सबसे अधिक सम्मान था। अकबर से कुटिलनीतिवाले बादशाह के लिये ऐसा करना बहुत सम्भव था, और विशेषकर उस अवस्था में जब कि उससे एक पुत्र उत्पन्न हो चुका था। इस भवन की बनावट निरी हिन्दुओं की सी है। प्रासाद में आने का मुख्य मार्ग पूर्व की ओर से है। अन्दर जाते ही एक बड़ा सा आंगन मिलता है जिसके बीच में एक छोटा सा कुण्ड और सामने के दालान में किसी देवता का मन्दिर था। उत्तर की ओर, बैठने का घर और हवाई महल के नीचे का भाग है। दक्षिण की ओर, बैठने का घर और स्नानागार आदि हैं। पूर्व ओर, पश्चिम की ओर से ऊपर जाने का मार्ग है। दूसरे भवन की बनावट भी नीचे की भांति है। चारों दिशाओं और कोनों में कोठरियां हैं और सबके बीच में बड़े बड़े दालान हैं। उत्तर की ओर हवाई महल है जो एक बड़े से बरामदे की भांति आगे को निकला हुआ है, और तीन ओर बड़ी बड़ी पत्थर की जालियों से घिरा हुआ है। इस प्रासाद की बनावट सुन्दर सादी और हिन्दू ढङ्ग की है। बाहर से देखने पर महल ठीक राजपुताने के महलों का सा देख पड़ता है। इसकी नक़ल जहांगीर ने आगरे के क़िले में बनवाई थी, जो उसकी हिन्दू बेगम के लिये था और जो अब जहांगीरी महल के नाम से प्रसिद्ध है।

जोधाबाई के महलों के ठीक पश्चिम अस्तबल थे और उनके ठीक उत्तर राजा बीरबल के रहने का स्थान था। यह प्रसिद्ध है कि यह बीरबल की बेटी का महल है। फ़तहपुर सिक्री में जितने स्थान अकबर के बनवाए हुए हैं, उन सभों में जैसा कि हम आगे लिख चुके हैं, राजा बीरबल और सुलताना बेगम के भवनों की बनावट सबसे उत्तम और मनोहर है। भारतवर्ष भर में ऐसा कोई हिन्दू न होगा जो इनके नाम से परिचित न हो। ये कालपी के रहनेवाले, जाति के ब्राह्मण थे और पूर्व नाम इनका महेशदास था। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और यही कारण हुआ कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्ता की मीमांसा में प्रवृत्त होना हमलोगों के लिये असाध्य है। इस प्रबन्ध का संकलयिता हिन्दुस्थानी है, पाठकगण चाहे सब न हों, परन्तु अधिकांश ही हिन्दुस्थानी वा हिन्दीभाषी हैं। हम लोगों में से अनेक मनुष्य "ण" और "न", वर्गीय "ब" और अन्तस्थ्य "व"; तथा "श", "ष", "स" आदि वर्णों के उच्चारण आदिक अभी तक समझने में असमर्थ हैं। सुतरां "षड़ज", "ऋषभ", "गन्धार", "मध्यम", "पंचम", "धैवत" और "निषाद" आदि सप्तस्वर पर्याययुक्त रुप से साधन पूर्वक, किसी राग रागिनी में प्रवृत्त होना हम लोगों के लिये विड़म्बना मात्र है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक रागिनी शक्तिमई है। यथास्थान से यथाविधि उसके आलाप न होने से उस शक्ति का उद्दीपन नहीं होता। शक्ति का उद्दीपन न होने से शक्ति के कार्य्य भी जान नहीं पड़ते। योगी ऋषीलोग योग की सहायता से ही राग रागिनियों के आलाप का अभ्यास किया करते थे। सुतरां उनकी शक्ति का भी पूर्ण उद्दीपन होता था। आज कल गाना बजाना प्रसन्नतालाभ, "शौक़" या "दिल्लगी" का काम समझा जाता है। शौकीन लोग साधना के मार्ग से बहुत दूरी पर अवस्थित हैं। सुतरां इस प्रकार के लोगों पर निर्भर करने के कारण आर्य्य संगीतशास्त्र की दुर्गति जहां तक होनी संभव है वहां तक हुई है। दीपक राग या मल्लारी रागिनी में क्या शक्ति है? उसे प्रकृत साधक गायक के मुख से सुन कर प्रत्यक्ष करने की चेष्टा से संप्रति हमलोगों को निरस्त होना पड़ा। हम लोगों की घोर चेष्टा है ऐतिहासिक प्रमाण। तानसेन अकबर बादशाह के प्रधान गायक थे। उस समय के इतिहास में तान गीतशक्ति का कोई उल्लेख है वा नहीं इसका अनुसन्धान किया जा सकता है। परन्तु इस के बीच में भी एक विषय का बड़ा सन्देह उपस्थित है। बादशाह की अमलदारी में अनेक सम्भ्रान्त मुसलमान नाच गाना देखने सुनने के रसिया वा शौक़ीन थे, मद्यपान में भी कसर नहीं करते थे। परन्तु इन सब बातों के लिखने में उनकी बड़ी आपत्ति थी, क्योंकि इसे धर्मविगर्हित वा हराम समझते थे। दीपक रागिनी द्वारा जो तेज उद्दीप्त होता है, इसे यदि उन लोगों ने प्रत्यक्ष गोचर किया भी, तौभी यही समझा होगा कि यह सब प्रेतक्रिया वा "शैतानी हरकत" हैं; सुतरां उल्लेख-योग्य नहीं। जो हो, तानसेन के सम्बन्ध में मुसलमान इतिहास से जो कुछ प्राप्त हुआ है, वह अबकी बात नहीं है।

त्रिलोचन मिश्र के पितामह अर्थात् दादा ग्वालियर के अधिपति महाराज रामनिरञ्जन के प्रधान गायक थे। त्रिलोचन दादा के साथ राज सभा में आते जाते थे। इनको बाल्यावस्था ही में यह प्रगट हो गया था कि ये सङ्गीतविद्या में विशेष सुख्याति संचय करेंगे। महाराज रामनिरञ्जन ने उक्त युवक की सङ्गीत-पारदर्शिता से परम प्रसन्न होकर इनको तानसेन की उपाधि से विभूषित किया। इससे त्रिलोचन मिश्र को लोग तानसेन के नाम से पुकारने लग गए। विस्तार अर्थ बोधक "तन" धातु से "तान" पद साधित होता है। अनुलोम-विलोम गति से गमक-मूर्छनादि द्वारा किसी रागादि को सम्यक् प्रकार से विस्तार करने का नाम "तान" हुआ और इसमें जो प्रधान वही "तानसेन" हुआ। सुतरां अल्प अवस्था ही में त्रिलोचन मिश्र को तानसेन की उपाधि का प्राप्त होना कुछ कम गौरव का विषय नहीं है। तानसेन ने पहिले वृन्दावन में हरिदास स्वामी जी से गायन-विद्या सीखी, इसके अनन्तर दिल्ली में गन्धर्वजातीय "बैजू बावरे" से सङ्गीत शिक्षा लाभ की और राग रागिनी के वर्तमान करने की शक्ति सञ्चय की। बादशाहशिरोमणि अकबर शाह ने इस प्रतिभाशाली गायक का परिचय पाकर अपनी सभा या दर्बार में पद प्रदान किया। तानसेन ने अकबर के दर्बार में जाने के पहिले ही ग्वालियर में हिन्दू शास्त्रानुसार अपना बिवाह किया था। इस बिवाह से एक कन्या उत्पन्न हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। कन्या भी प्रधान गायिका हुई। ये मल्लारी राग में सिद्ध हुई। तानसेन के दिल्ली में अकबर शाह के दर्बार में नियुक्त होने पर भी इनकी हिन्दू गृहस्थी ग्वालियर में ही रही। ऐसा प्रवाद है कि अकबर शाह की एक कन्या ने तानसेन की राग से मोहित होकर इनको पतित्व में वरण किया। यवनी या मुसलमानी से बिवाह करने ही के कारण त्रिलोचन मिश्र जी ब्राह्मणत्व से पतित होकर "मियां तानसेन" के नाम से साधारण में परिचित हो गए। इतिहास में अकबर की तीन कन्याओं का उल्लेख देख पड़ता है। यथा शाहज़ादी ख़ानम, शकुन्निसा, और आराम बानू। इन तीनों में से किसी एक ने ही मिश्र जी को आत्मसमर्पण किया था, ऐसा तो जान नहीं पड़ता। इनके अतिरिक्त गोली, ख़वास, बांदी, लौंडी और हिन्दू रजवाड़ा द्वारा प्रदत्त "डोला" वा दासी के गर्भ-जात कन्या का मिश्र जी के साथ बिवाह का होना असम्भव भी नहीं है, क्योंकि ऊर्द्धोक्त प्रकार नामधारिणी बहुत सी उत्पति अकबर की थीं। जिन तीनों का नाम इतिहास में पाया जाता है, कदाचित् ये बादशाह की वास्तविक बिवाहिता स्त्रियां वा बेगमों की गर्भ-जात होंगी; क्योंकि दासीपुत्र या पुत्री वा सन्तान का नामोल्लेख करने का नियम इतिहास में नहीं है। "ख़ास बेगमें" के अतिरिक्त ऊपर लिखी स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न सन्तानों का बखान मुसलमान लेखकों द्वारा लिखित इतिहासों में होना सम्भव नहीं है। इस विषय के प्रमाण संग्रह के विषय में लोक-प्रवाद पर ही निर्भर करना पड़ता है। बौद्ध अत्याचार वा मुसलमान-शासन-विभ्राट के प्रताप से हिन्दू-इतिहास लुप्त-प्राय हो गया है। बाध्य होकर मुसलमानी इतिहास वा जनप्रवाद पर निर्भर करना पड़ता है। सुतरां किसीके जीवनचरित्र संग्रह करने में भी बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ती हैं। जन्म, बिवाह, सन्तति, मृत्यु तक लिखने ही से सब बखेड़ा पार हो जाता है। हमलोगों ने तानसेन के विषय में भी यही सब लिखा है। अब मृत्युकथा लिखने ही से समाप्ति हो जावेगी। मूल बात यह है कि योरोप में जिन सब उपादानों से जीवनी सङ्कलित होती है, वर्तमानकाल में हमारे देश में उन सब उपादानों का एक प्रकार से सम्पूर्ण अभाव है। इससे जनश्रुति को अवलम्बन कर ही लिखने में रत होना पड़ा है। तानसेन की मृत्यु-घटना जिस प्रकार सुनी है उसी प्रकार लिखते हैं। पञ्जाब में एक वृद्ध ब्राह्मण सङ्गीतविद्या में विशेष पारदर्शी थे। उनके पौत्र और पौत्री इनसे शिक्षा पाकर सुगायक और सुगायिका हुए। वृद्ध ब्राह्मण ने पौत्र को सङ्गीतशास्त्र के विषय में प्रतिभा-सम्पन्न देख और राजसभा को ही उसके लिये प्रकृत कार्य्यस्थल विचार, उसे दिल्लीश्वर अकबर शाह के समीप प्रेरण कर दिया। उक्त युवक बादशाह की राजधानी में आकर यह सोचने लगा कि किस प्रकार से बादशाह के दर्बार में पहुंचे, और कौन बादशाह से परिचय करवा दे। चिन्ता करते और बिचारते उन्हें तानसेन का स्मरण हुआ। वे चट मियां तानसेन के पास गए और अपना अभिप्राय कहकर प्रगट किया। तानसेन पञ्जाबी युवक का सङ्गीत में अधिकार देखकर केवल चमत्कृत ही नहीं हुए, वरन् ईर्षा, द्वेष और डाह से दग्ध भी होगए। इन्होंने बिचारा कि इस युवक के दर्बार में उपस्थित होकर गाने से मेरी प्रतिपत्ति वा प्रतिष्ठा घट जायेगी। वास्तव में तानसेन ने उस पञ्जाबी युवक को सङ्गीतविद्या मे अपना समकक्ष वरन् श्रेष्ठ समझा। सुतरां सहायता करनी तो दूर रही, वरन् मियां जी इस चिन्तन करने में प्रवृत्त हो गए कि किस प्रकार से इसका प्राण-बध-साधन करें और इसीका उपाय अन्वेषण करने लगे। तानसेन पञ्जाबी युवक की प्रकाश भाव से तो उत्तम अभ्यर्थना और आतिथ्य सत्कार करने लगे और यह स्वीकार कर युवक को आश्वासन दिया कि बादशाह के दर्बार में लेजाकर भली भांति परिचय और प्रवेश करा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर ने इनका इतना अधिक सम्मान किया। सब हिन्दू पारिषदों में अकबर को जितने बीरबल प्यारे थे, इतना दूसरा कोई न था। जिस समय यूसुफ़ज़ई लोगों ने बिजौर और सवाद में विद्रोह खड़ा किया तो सेनानायक के लिये बीरबल और अबुलफ़ज़ल दोनों निर्वाचित हुए। अन्तमें बीरबल चुने गए, पर अकबर को यह बात रुचिकर न होने पर भी माननी पड़ी। दुर्भाग्यवश इस लड़ाई में वे आठ हज़ार सिपाहियों के साथ मारे गए। इनकी मृत्यु का समाचार जिस समय आगरे पहुंचा तो किसीका इतना साहस न हुआ कि उसे उस समय अकबर तक पहुंचावे। इन्हीं दिनों में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशोराय ओड़छे के दर्बार की ओर से प्रवीणराय पातुरी के साथ अकबर के यहां गए हुए थे। सब लोगों ने इनकी बुद्धि की कुशाग्रता पहिले ही से जान ली थी, अतएव सभों ने इनसे प्रार्थना की कि महाराज! इस सम्वाद को आपही अकबर तक पहुंचाइए। इन्होंने भी इस बात का बीड़ा उठा लिया। जिस समय ये दर्बार में पहुंचे तो चारों ओर दर्बारी सब निज निज स्थान पर पंक्ति बांधे बैठे थे। सब सोच सागर में निमग्न थे, पर कोई बोलने का साहस तक भी न करता था। अबुलफ़ज़ल, जिससे पहिले ही केशवदास जी से बातें हो चुकी थीं, बड़ी व्यग्रता से इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि देखें कि यह किस उपाय का आश्रय लेते हैं। इतने में इन्होंने पहुंच कर अकबर को आशीर्वाद दिया और यह दोहा पढ़ा—

भूपति सब याचक भए, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरवर देन॥

अकबर स्वयं हिन्दी का कवि था। समझ गया कि प्रियपात्र स्नेहभाजन बीरबल अब इस संसार में नहीं है,—मूर्छित हो गया और पीछे कई दिनों तक उसने इनका बड़ा शोक मनाया। इन्हीं बीरबल के लिये उसने ठीक जोधाबाई के प्रासाद के निकट ही भवन बनवाया जो सन् १५७१ ई० में बनकर तैय्यार हुआ था। इसमें नीचे के खन में चार बड़ी बड़ी कोठरियां हैं और ऊपर के खन में दो कोठरियां और दो बड़ी बड़ी छतें सुन्दर जाली से घिरी हुई थीं। पत्थर का काम ऐसी सुन्दरता से किया गया है कि वह देखतेही बन आता है। हमें दुःख है कि स्थानाभाव और समयाभाव के कारण न हम इस भवन का पूरा पूरा वर्णन कर सकते हैं और न उसकी कारीगरी का नमूना ही उपस्थित कर सकते हैं। अस्तु, हमारी प्रार्थना आगरे जाने और रहनेवालों से है कि वे इस स्थान को देख स्वयं उसकी सुन्दरता का अनुभव कर लें। इस भवन के वर्णन के साथ फ़तहपुर सिक्री के राजप्रासादों का वर्णन समाप्त होता है। अब यहां पर केवल एक स्थान वर्णन करने योग्य रह गया है और वह शेख़ सलीम चिश्ती का मज़ार है। यह राजप्रासादों के उत्तर पश्चिम कुछ दूरी पर है।

लाल पत्थर की बड़ी ऊंची ऊंची दीवारों से घिरी हुई एक अच्छी लम्बी चौड़ी भूमि है। इसमें चिश्ती साहब का समाधिस्थान है। फ़तेहपुर सिक्री में इस स्थान को छोड़कर और कोई स्थान संगमरमर का बना हुआ नहीं है। और संगमरमर का काम भी ऐसा बना है जो दूसरी जगह जल्दी देखने में नहीं आता। संगमरमर की जाली तो ऐसी सुन्दर बनी हुई है कि देखकर मन मोहित हो जाता है। परन्तु इन जालियों की शोभा एक प्रकार से मिट्टी में मिल रही है। जितने लोग वहां ज़ियारत को जाते हैं, और विशेष कर पुत्र की कामना करने वाली स्त्रियां, उन जालियों में एक चिथड़ा बांध आती हैं जिसमें चिश्ती साहब उनकी प्रार्थना भूल न जांय। जब उनकी मनौती पूरी हो जाती है तो वे उसे खोल आती हैं। इन चिथड़ों से जालियां सदा ढकी रहती हैं और ऐसी भद्दी मालूम पड़ती हैं कि उनकी ओर जी देखने को नहीं चाहता। जिस समय हम इस स्थान को देखने गए थे तो लाखों ही मनुष्यों के चिथड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें बँधे हुए थे, जिससे केवल यही सिद्ध होता है कि लाखों हो मनुष्यों की प्रार्थना पूरी न हुई होगी। जो कुछ हो, परन्तु उनसे जालियों की सुन्दरता पूरी पूरी नष्ट हो जाती है। इस स्थान के एक ओर एक बड़ा सा लकड़ी का फाटक है जिसपर घोड़ों की सैकड़ों नालें लगी हुई हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि यहां नाल लगा देने से घोड़े की बिमारी अच्छी होती है।

जहां चिश्ती महाशय की समाधि है, वह स्थान संगमरमर का बना है और उसपर सोनहला और रुपहला काम बड़ा सुन्दर बना हुआ है। हमें दुःख है कि इस चित्रकारी का नमूना हम अपने पाठकों को नहीं दिखा सकते। इसी स्थान में एक मसजिद भी है, तथा पासही शेख़ साहब के रहने का स्थान पर अनेक मसजिदें हैं। अब तक वह स्थान दिखाया जाता है जहां सलीम जोधाबाई के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

शेख़ साहब के मज़ार से सटे हुए अबुल फज़ल और फ़ैज़ी के मकान हैं। इनमें कोई विशेषता नहीं है। एक में अब अङ्गरेज़ी स्कूल और दूसरे में हिन्दी का स्कूल होता है।

इस वर्णन के साथ हमारा यह लेख समाप्त होता है। छोटे छोटे स्थानों का वर्णन हमने जान बूझ कर छोड़ दिया है। इस लेख के लिखने से हमारा उद्देश्य यही था कि हमारे पाठकों को इस नगर के देखने का उत्साह हो तो जो महाशय वहां जायंगे वे सब स्थानों को स्वयं देखलेंगे।

त्रिलोचन मिश्र वा मियां तानसेन

मियां तानसेन का जीवनचरित्र लिखने के पूर्व थोड़ी सी भूमिका लिखनी आवश्यक है; क्योंकि उनकी जीवनी किम्वदन्ती, दन्तकथा, जनश्रुति और चलित गाथाओं से जितनी संग्रह की गई है, वह अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण है। आजकल जैसा समय वर्तमान है, इसमें क्या कोई अलौकिक घटनाओं पर विश्वास करेगा? कोई विश्वास करे वा नहीं, परन्तु "अलौकिक" का अर्थ क्या है, इसका विचार करना प्रथम उचित है। जो कुछ मनुष्य-क्षमता से अतीत है वही अलौकिक है। यहां पर मनुष्य क्षमता के कहने से मनुष्य की साधारण क्षमता समझनी चाहिए। मनुष्य-विशेष को विशेष क्षमता है। इसे बहुतेरे अस्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु वही विशेष क्षमता सर्वसाधारण के साध्य न हो तो जिन लोगों ने उस क्षमता को प्रत्यक्ष किया है, वे लोग उसे "अलौकिक क्षमता" की संज्ञा बिना दिए और क्या कर सकते हैं। वास्तव में क्षमता वा शक्ति की लौकिकता वा अलौकिकता नहीं है। जिसे लोग अनायास समझ सकते हैं उसे ही लौकिक कहते हैं, और जिसे लोग सहज में हृदयंगम न कर सकें उसे अलौकिक वा दैविक कहते हैं। जिन लोगों को प्राचीनकाल के साथ वर्तमान काल की तुलना करने की क्षमता या अभ्यास है वे लोग यह विशेष रूप से जानते हैं कि अनेकानेक दैवी शक्ति अधुना लौकिक शक्ति में विख्यात हो गई हैं, और पूर्व में जो लौकिक शक्ति के नाम से परिगणित होती थीं, वह हमलोगों की बुद्धि के अगम्यवशतः दैवी शक्ति में परिणत हो गई हैं। यह शक्ति ही बड़ी दुर्बोध्य है, सुतरां कठोर साधनासापेक्ष है। हम लोगों के शरीर के अभ्यन्तरही में जो जो शक्ति सुसुप्तावस्था में वर्तमान है, उन उन शक्तियों की उद्दीपना द्वारा अनेक अलोकसामान्य घटना संसाधित हो सकती हैं। यहां पर "जो जो" शब्द के कहने से शक्ति का बहुत्व स्वीकार नहीं किया गया है, उसके कार्य्य का बहुत्व स्वीकार किया गया है। तानसेन के विषय में वर्तमान प्रबन्ध में हम लोग दो बातों की मीमांसा में व्याप्त हैं। वे दो बातें ये हैं—प्रथम यह कि दीपक राग से गायक का देह तेजोमय होता है वा नहीं? दूसरे यह कि मल्हारी रागिणी से वर्षा हो सकती है या नहीं। परन्तु इन दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ूंगा। पञ्जाबी युवक ने भोजनादि कर पथश्रांति दूर करने के लिये शयन किया। जब ये गम्भीर निद्रा में अभिभूत हुए, ऐसे समय में तानसेन मियां ने उनकी शय्या के समीप जाकर तीक्ष्णधार कटार से उनके शरीर को टुकड़े टुकड़े काट कर उन्हें यमलोक पहुंचा दिया और घर के पास एक गड़हा खोदकर दबा दिया। यह पहिले ही कहा जा चुका है कि पञ्जाबी युवक की सहोदरा भी पितामह के घर में थी। भाई बहिन में आपस में बड़ाही स्नेह तथा प्रेम था। जब युवक घर से चलती समय प्रतिज्ञा कर आया था, कि जब तक कोई विघ्न न होगा मैं बराबर प्रति सप्ताह निश्चय पत्र भेजा करूंगा। युवक ने दिल्ली पहुंचकर तानसेन के साथ परिचय आदि के विषय का पत्र तो भगिनी को लिखा; इसके अनन्तर जिस प्रकार प्रतिश्रुत हो आए थे उस प्रकार कुशल-समाचार पूर्ण पत्र दूसरे सप्ताह में न पहुंचा, क्योंकि दूसरे सप्ताह के आने के पूर्व ही युवक इस लोक से चल बसा था। जब बहुत दिन तक भाई का पत्र बहिन को नहीं पहुंचा, तब बड़ी चिन्ता हुई। इन्होंने सोचा कि यदि भाई स्वस्थ और जीवित होते तो अवश्य चिट्ठी लिखते। अन्त को भगिनी ने पितामह की अनुमति ले दिल्ली की यात्रा की। अकबर शाह के दर्बार में स्त्रियों को भी प्रवेशाधिकार था। सुतरां उक्त युवती दर्बार में उपस्थित हो गई। और अकबर से अपने सहोदर का हाल पुछा। बादशाह वा उनके दर्बार का कोई भी कर्म्मचारी युवक के विषय में कुछ नहीं जानता था। इसलिये कोई उन्हें कुछ भी न बता सका। पञ्जाबी ब्राह्मण-कन्या एक तो युवती, दूसरे परमा सुन्दरी, नव-यौवन-सम्पन्ना, उस पर सङ्गीत में भी सुनिपुणा, सुतरां बादशाह की इनपर सहानुभूति हुई। युवती ने दिल्ली पहुंचने और मियां तानसेन के घर ठहरने आदि विषयक पत्र, जोकि भाई ने भेजे थे, बादशाह को दिखलाए। उस समय तानसेन दर्बार में वर्तमान नहीं थे। अकबर शाह ने तानसेन को बुलवा भेजा और पंजाबी युवक का अन्तिम पत्र दिखलाकर पूछ जांच की। तानसेन ने युवक का आना स्वीकार कर कहा कि "पत्र में सब ठीक ही लिखा है, परन्तु पंजाबी युवक भोजन के अनन्तर बाहर जा कर नहीं लौटा"। इस पर युवती को संतोष न हुआ; वह बारम्बार यही कहने लगी कि "मेरा भाई सुगायक कलावंत (कलामत) था, तानसेन ने विद्वेषवश, उसको मार डाला है, इसमें सन्देह नहीं"। इन्होंने बादशाह से यह प्रार्थना की कि "यदि आप मेरे साथ तानसेन के घर तक कृपा कर पधारें तो सब रहस्य खुल जायगा। तानसेन ने अपने गृह के चाहे जिस भाग में मेरे भ्राता के शव को गाड़ रक्खा हो, मेरी संगीतशक्ति के प्रभाव से वह मृत शरीर मेरे समीप आ जायगा"। अकबर शाह भी कौतूहलपरवश हो युवती और तानसेन को साथ लेकर उनके घर पहुंचे। युवती ने गान आरम्भ किया। ऐसा प्रवाद है कि युवती के संगीत प्रभाव से युवककी समाधि (क़बर) फटकर सात टुकड़े हो गई और क़बर के बीच से मृत देह वशिष्ट अस्थि कंकाल युवती के समक्ष उपस्थित हुआ। ऐसी दशा में अकबर को कोई सन्देह नहीं रहा और यह ज्ञात हो गया कि तानसेन ही ने अत्याचार व हत्या भी की है। बादशाह ने क्रुद्ध होकर तानसेन का बड़ा अपमान किया और यथेष्ट भर्त्सना की। इधर रोरुद्यमाना युवती को विविध प्रकार सान्त्वना देकर विदा किया। युवती ने गृह में प्रत्यावर्तन कर आनुपूर्विक सब बातें वृद्ध पितामह को सुनाईं। पौत्र के शोक से वृद्ध ने अभिभूत होकर, तानसेन को नृशंस हत्या का समुचित प्रतिफल प्रदान करने के मानस से अकबर की राजधानी की ओर यात्रा की और वहां पहुंचकर किसी सभासद की सहायता से अकबर के समीप उपस्थित हुए। वृद्ध ने बादशाह से प्रार्थना की कि "आपने दीपक राग से कोई गीत सुना है कि नहीं मैं नहीं जानता, परन्तु मैंने दीपक राग साधा है, इस राग में भी आपको दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गीत सुनाऊंगा, यही मेरी अभिलाषा है। बादशाह ने अनुमति दी और वृद्ध गाने लगे। संगीत आरम्भ होने के पूर्व ही वृद्ध के अनुरोध से सभा गृह के दीपक आदि बुझा दिए गए थे। वृद्ध को नायिका सिद्ध थी। गाते गाते नायिका की सहायता से सभा के दीपक आदि अकस्मात् सहसा बल उठे। इस पर बादशाह और सब सभासद लोग गायक की प्रशंसा करने लगे। केवल तानसेन ही ने समझ लिया कि दीपक नहीं कान्हड़ा राग वृद्ध ने गाया है। सुतरां इन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि "यह गीत कान्हड़ा राग में गाया गया है, दीपक में नहीं"। वृद्धने भी इस बात को स्वीकार किया। अकबर शाहने कहा—"मियां तानसेन, आपके गाने से कभी दीपक प्रज्वलित होते नहीं देखा, यदि आपने दीपक राग साधा हो तो आपही दीपक राग में एक गीत सुना दीजिए"। बादशाह का आदेश अलङ्घ्य हुआ। तानसेन ने पहले तो टालने की चेष्टा की, परन्तु कुछ न चली, अन्त को इन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि मैं दीपक राग में गा सकता हूं, परन्तु इसमें मेरा प्राणान्त हो जावेगा; इस गीत की शक्ति से हमारे शरीर में जो तेज उत्पन्न होगा, उससे मैं मर जाऊंगा। जब मैं यमुना के जल में धस कर दीपक अलापता था, तब जल तक गर्म हो जाता था। बादशाह यदि अनुग्रह कर समय दें तो मैं ग्वालियर से अपनी लड़की को बुलालूं। वह मल्हारी राग आलाप करेगी और मैं दीपकराग आलाप करूंगा तो मेरे प्राण रक्षा की सम्भावना है"। तानसेन के अनुनय विनय करने पर भी बादशाह ने एक न मानी। अगत्या बाध्य होकर तानसेन को गाना आरम्भ करना पड़ा। सभास्थ सभी गीत से मुग्ध होगए। बादशाह बारम्बार वाहवाही देकर तानसेन को प्रोत्साहित कर बढ़ावा देने लगे। सब कोई एकाग्र वा तद्गत-चित्त से सुनने लगे। दीपक के तेज से तानसेन के शरीर में प्राण-वायु क्षीण प्रवाहित होने लगी, अन्त को प्राणान्त होगया। परन्तु बादशाह को यह ज्ञात न हुआ कि तानसेन परलोक पधार गए हैं। गीतबन्द होने के कारण बादशाह तानसेन पर विरक्ति प्रकाश करने लगे। शीघ्र ही भ्रम मिट गया, देखा कि तानसेन की भी तान पूरी हो गई। तब पञ्जाबी वृद्ध गायक की खोज होने लगी, कुछ अनुसन्धान न मिला। वृद्ध इससे पूर्व ही निज मनोरथ सिद्ध समझ कर दर्बार से चम्पत होचुका था। तब ग्वालियर में इनकी कन्या को समाचार गया। तानसेन की कन्या आई और मल्हारी रागिनी में गाने लगी। ऐसा प्रवाद है कि क्रमागत एक सप्ताह तक वर्षा दिल्ली में होती रही। राजमार्ग, गली, कूचे, जलमग्न हो गए, परन्तु तानसेन के प्राण न लौटे। अन्त में ग्वालियर में ले जाकर तानसेन को क़बर दी गई। आज तक वह क़बर वहां वर्तमान है। प्रति वर्ष उस स्थान पर मेला लगता है और देशी, परदेशी गायकगण इकट्ठे होकर गाते बजाते और तानसेन पर सम्मान प्रदर्शित करते हैं तथा कबर की मिट्टी भी खाते हैं। गवैयों का ऐसा दृढ़ विश्वास है कि तानसेन के साथ ही दीपकराग का भी लोप हो गया है। मियां तानसेन के रचे गीतों में हिन्दूत्व की पूर्ण प्रतिभा प्रतिबिंबित है जो कि साधारण पर विदित ही है। अतएव यहां पर इस प्रबन्ध की समाप्ति करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112842
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

Catalogued
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri